हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—४८

इब्ने ख़लदून का मुक़द्दमा

[विश्व-इतिहास की प्रस्तावना]

लेखक

अब्दुर्रहमान इब्ने खलदून
(१३३२–१४०६ ई०)

अनुवादक

सैयिद अतहर अब्बास रिजवी

एम० ए०, पी-एच० डी०, यू० पी० एजूकेशनल सर्विस,

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण
१९६१

मूल्य

मुद्रक
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

यह पुस्तक अरवो के विस्तृत साम्राज्य के इतिहास की भूमिका (मुकद्दमा) के रूप में लिखी गयी थी। हजरत मुहम्मद के निधन के वाद एक शताव्दी वीतते-वीतते उनके अनुयायियो का राज्य विस्के से सिन्ध तक फैल गया और इसके परिणामस्वरूप सभ्यता एवं सस्कृति का जो दौर आरभ हुआ, उसी का विश्लेषण इब्ने खलदून ने अपने 'विश्व-इतिहास' मे किया है। उसने स्वयं कई स्थानो की यात्रा की थी, पुराने अवशेष खुद अपनी आँखो से देखे थे। वीस वर्ष तक उसने राजनीति में सक्रिय भाग लिया था और इस अवधि में अनेक पदाधिकारियो, राजदूतो एव विद्वानो से वातचीत करने का अवसर उसे मिला। जीवन के अतिम २३ वर्ष उसने मिस्र में व्यतीत किये, जिसमें उसने गहन अध्ययन-मनन का प्रयत्न किया और अपने पुराने विचारो में भी संशोधन किया।

ऐतिहासिक तथ्यो से उसने महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं और उनका समावेश अपनी पुस्तक में किया है। १४वी से १८वी शताब्दी तक अनेक विद्वानो ने उसके विचारो से प्रभावित होकर लाभ उठाने का प्रयत्न किया। १९वी शताब्दी में यूरोपवालो का ध्यान भी "मुकद्दमा" की ओर गया और उन्होने उसका महत्त्व समझा। फ्रेञ्च, जर्मन, अग्रेजी आदि भाषाओ में ही नही, उर्दू में भी इसका अनुवाद हो चुका है। हिन्दी के पाठक भी इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में अभिव्यक्त विचारो और तथ्यों से लाभान्वित हो सके, इस दृष्टि से इसका यह हिन्दी अनुवाद हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

यह ग्रन्थ हिन्दी समिति ग्रन्थमाला का ४८ वाँ पुष्प है। इसके अनुवादक डा० सैयिद अतहर अव्वास रिज़वी अरवी-फारसी के अच्छे ज्ञाता और इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। पी-एच० डी० की उपाधि आपने आगरा विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी और आपके शोध-प्रवन्ध का विषय था, "अवुल फज्ल ऐण्ड हिज़ टाइम्ज़"। आपने फारसी तथा अरवी के अनेक ग्रन्थो का अनुवाद हिन्दी में किया है। आपकी भाषा सरल और मुहावरेदार होती है। आशा है, आपकी यह रचना भी, अपने ऐतिहासिक, सास्कृतिक एवं सामाजिक महत्त्व के कारण, हिन्दी में समादृत होगी।

अपराजिता प्रसाद सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

दो शब्द

इब्ने खलदून के मुकद्दमे के महत्त्व, हस्तलिखित पोथियो, सस्करण तथा फ्रासीसी, अग्रेज़ी एव उर्दू भाषान्तर के विषय मे भूमिका में विस्तार से उल्लेख कर दिया गया है। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद में मुकद्दमे के केवल उन्ही अशो का अनुवाद किया गया है जो सभ्यता के विकास तथा समाज-शास्त्र एव इतिहास के दर्शन से सम्बन्धित है। इब्ने खलदून ने इसी क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मौलिक योगदान किया है। भूगोल तथा इस्लाम के धार्मिक सिद्धान्तो एव अरबी साहित्य से सम्बन्धित अशो का अनुवाद नही किया गया है। यह अनुवाद बूलाक तथा क्वातरमेर के सस्करण पर आधारित है और मिस्र के बाद के सस्करणो, विशेष रूप से डा० अली अब्दुल वाहिद वाफी के सस्करण (१९५८–५९ ई०) से भी लाभ उठाया गया है। अनुवाद करते समय फ्रासीसी, अग्रेजी तथा उर्दू के अनुवादो से भी सहायता ली गयी है। शब्दार्थ की अपेक्षा भावार्थ को अधिक महत्त्व दिया गया है। फ्रासीसी अनुवाद मे अधिकाशत तथा अग्रेज़ी अनुवाद में कही-कही १४वी शती के पारिभाषिक शब्दो के लिए २०वी शती ई० के ऐसे पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया गया है, जिनसे अनेक प्रकार की शकाएँ उत्पन्न हो जाती है। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि इन शब्दो का मूल रूप में ही प्रयोग किया जाय और ऐसे शब्दो का प्रयोग न किया जाय जो उस समय प्रचलित न थे।

मै डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष हिन्दी समिति का विशेष रूप से आभारी हूँ कि उन्होने इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के अनुवाद करने का मुझे आदेश दिया और समय-समय पर मेरी कठिनाइयो का समाधान करते रहे। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अरबी विभाग के अध्यक्ष डा० अब्दुल हलीम, रीडर डा० मकबूल अहमद, इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० नूरुल हसन तथा पुस्तकालयाध्यक्ष प्रोफेसर बशीरुद्दीन का भी मै आभारी हूँ, जिनकी कृपा द्वारा मुझको सभी सहायक ग्रथ मिलते रहे और जो अनुवाद की कठिनाइयो मे भी मेरा हाथ बटाते रहे।

अन्त में मै अपने उन सब हितैषियो एव मित्रो के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके प्रयत्नो के फलस्वरूप यह ग्रथ इस रूप में प्रकाशित हो रहा है और जिनके नाम कुछ कारणो से मै नही लिख सका हूँ।

सैयिद अतहर अब्बास रिज़वी

विषय-सूची

अध्याय ३

अध्याय ४

अध्याय ५

अध्याय ६

परिशिष्ट

नोट—ताराकित खंडों का अनुवाद नहीं किया गया है।

चित्रों तथा मानचित्रों की सूची

* ये चित्र अलग से छपे है

इब्ने ख़लदून का चित्र

(एक मिस्री कलाकार द्वारा)

भूमिका

"मुकद्दमे" की पृष्ठ-भूमि

इब्ने खलदून ने "मुकद्दमे" की रचना अरबों के विशाल साम्राज्य के इतिहास की प्रस्तावना के रूप में की है। १४वी शती ईसवी के पश्चिम एव पूर्व की राजनीतिक उथल-पुथल तथा ससार की अनेक सभ्यताओ के अभ्युदय एव ह्रास के आलोचनात्मक अध्ययन ने उसके समक्ष मानव-सभ्यता एव सस्कृति से सम्वन्धित कुछ विशेष समस्याएँ प्रस्तुत कर दी, जिनका उसने इतिहास की पृष्ठ-भूमि में समाधान करने का प्रयत्न किया है। सभ्यता एव सस्कृति के प्राचीन केन्द्रो, अरबो, अजमियो एव उत्तरी अफ़्रीका के वरवरो के इतिहास तथा उनकी सस्कृति का उसने वड़ा गहन अध्ययन किया था। इन देशों की सभ्यता के अवशेषों का उसने घूम-घूमकर निरीक्षण भी किया और वहाँ के विद्वानो से भेंट करके उनके विषय में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया। अत "मुकद्दमे" को भली-भाँति समझने के लिए विश्व-सभ्यता के इतिहास के साथ-साथ अरवो के साम्राज्य की उस रूप-रेखा को भली-भाँति समझ लेना परमावश्यक है जिसकी पृष्ठ-भूमि में "मुकद्दमे" की रचना हुई। इस स्थान पर अरवों के साम्राज्य एव सस्कृति का सविस्तर इतिहास देना तो सम्भव नही, अत. केवल उन्ही घटनाओ की ओर संकेत किया जाता है जिनका "मुकद्दमे" में वार-वार उल्लेख हुआ है और जिनसे इब्ने खलदून ने महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं।[1]

अरव

यद्यपि अरब को इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व विश्व-इतिहास में अधिक महत्त्व न प्राप्त हो सका था, किन्तु अरब के आस-पास के देश प्राचीन काल से ही सभ्यता की क्रीड़ा-

१. विशेष समस्याओं की संक्षिप्त जानकारी के लिए, "*Encyclopaedia of Islam*" (इंसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम) तथा J P. Hughes, "*A Dictionary of Islam*" London 1935 (टी. पी. ह्यूज़ : ए डिक्शनरी आफ इस्लाम, लन्दन १९३५ ई०) देखिए।

भूमि रह चुके थे। उत्तर में सीरिया (शाम) तथा इराक (मेसोपोटामिया), पश्चिम में मिस्र, पूर्व से कुछ दूरी पर ईरान और उत्तर-पश्चिम में कुछ दूर हटकर एशिया माइनर (कोचक अथवा लघु) तथा कुस्तुन्तुनिया है। समुद्र के उस पार दूसरी ओर हिन्दुस्तान है और ग्रीस (यूनान) का फासिला भी अधिक नही।

वैसे तो अरब का बहुत बड़ा भाग रेगिस्तान है और पहाड़ो का जाल सारे देश में फैला हुआ है, किन्तु यहाँ की भौगोलिक दशा, जल-वायु, रहन-सहन एव इतिहास को देखते हुए इसे दो मुख्य भागो में विभाजित किया जा सकता है—उत्तरी अरब तथा दक्षिणी अरब। उत्तरी अरब का प्रमुख भाग हिजाज़ है जहाँ कभी-कभी तीन-तीन वर्ष तक सूखा पड़ा रहता है और कभी तूफान के साथ थोडे समय के लिए इतने ज़ोर की वर्षा हो जाती है कि सैलाव तक आ जाते है। इसी से यहाँ कुछ वाग लग जाते है और कही-कही उपजाऊ भूमि की छोटी-छोटी पट्टियाँ भी दिखाई देने लगती है। अत यहाँ के निवासी प्राय यायावरो के समान जीवन व्यतीत करते हैं। वे अपने वालों के खेमे तथा डेरे लिये हुए एक स्थान से दूसरे स्थान का चक्कर लगाया करते है। दक्षिणी अरब के कुछ भागो में नियमित रूप से वर्षा भी हो जाती है और कृषि भी होती रहती है। इस भूभाग का सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण एव उपजाऊ स्थान यमन है। यहाँ के निवासी तथा हज़रमौत एव समुद्रीय तट के अन्य नगरो एव कस्बो में बसनेवाले घर वनाकर निवास करते है। उत्तरी अरब के निवासी शुद्ध अरबी तथा कुरान की भाषा वोलते हैं और दक्षिणी अरब के निवासी अपनी प्राचीन सामी भाषा में वातचीत करते हैं, जो सवाई अथवा हमीरी कही जा सकती है और अफ्रीका के "इथियोपिक" से मिलती-जुलती है। दक्षिणी अरबवालो ने सभ्यता के क्षेत्र में प्राचीन काल से ही कुछ-न-कुछ उन्नति करना प्रारम्भ कर दिया था और तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अपना स्थान वना लिया था। सुमेरिया, वेबिलोनिया, असीरिया, ईरानी यहूदियो तथा ईसाइयो की सभ्यता की भी गहरी छाप इन पर पडती रही। लोवान और मसालों के अतिरिक्त मिदियान से यमन तक की खानो में निकलनेवाला शुद्ध सोना भी इनके गर्व का वहुत वडा विषय था।

दक्षिणी अरब के राज्य

दक्षिणी अरब में कुछ महत्त्वपूर्ण राज्य भी हुए है। इनका प्राचीनतम राज्य, जिसका पता चल सका है, "मईनी" अथवा "मीनियन" राज्य था जो १२०० से ६५० ईसा-पूर्व तक चलता रहा। "सवाई" अथवा "सैवियन" राज्य ६५० से ११५

ईसा-पूर्व तक बताया जाता है। मारिब के प्रसिद्ध बाँध का इसी राज्यकाल में निर्माण हुआ। इनके राज्य में कुछ समय तक बडी सुख-शान्ति रही और वाणिज्य तथा व्यापार की भी उन्नति होती रही। ११५ ईसा-पूर्व में "हमीरी" राज्य ने "सबाई" राज्य पर अधिकार जमा लिया। इस राज्यकाल में बदवियो अथवा बद्दुओ से रक्षा के लिए गुमदान के प्रसिद्ध किले का निर्माण हुआ, जिसकी अरब भूगोलवेत्ताओ ने भूरि-भूरि प्रशसा की है। कहा जाता है कि इसमें २० मजिलें थी जिनमें से प्रत्येक १०–१० हाथ ऊँची थी। ३४०–३७८ ई० तक अबीसीनियावालो ने आक्रमण करके इनके राज्य पर अधिकार जमा लिया, किन्तु ३७८ ई० में हमीरी राज्य पुन. स्थापित हो गया और ५२५ ई० तक चलता रहा। इनके राज्य में ७० ई० से यहूदी और ३५६ ई० से ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ हो गया, अत. दोनो धर्मों में धीरे-धीरे सघर्ष रहने लगा, जिसने बाद में उग्र रूप धारण कर लिया। ५२३ ई० में अबीसीनिया के बादशाह नेगस ने दक्षिणी अरब के ईसाइयो की सहायता के बहाने से यमन की विजय करके ५२५ ई० में अपना राज्य स्थापित कर लिया। वे लोग ५७५ ई० तक दक्षिणी अरब में राज्य करते रहे। उनके एक बादशाह अबरहा ने अपने राज्यकाल में सना में एक भव्य गिरजाघर का निर्माण कराया। उसने मक्के पर भी अधिकार जमाने का प्रयत्न किया और ५७० अथवा ५७१ ई० में वह हाथी पर बैठकर मक्के पर आक्रमण हेतु पहुँचा। हिजाज़वालो ने हाथी काहे को देखा था। वे इस सेना से बड़े प्रभावित हुए। किन्तु अबीसीनिया की सेनावालो में चेचक की महामारी फैल गयी और यह सेना नष्ट हो गयी।[1]

उत्तरी अरब के राज्य

व्यापार के कारण उत्तरी अरब में भी कही-कही छोटे-छोटे राज्य स्थापित होते रहे, जिनमें प्राचीनतम "नब्तियो" अर्थात् "नबातियस" का राज्य है। "ये लोग एक खानाबदोश कबीले से सम्बन्धित थे और ईसा-पूर्व छठी शती में उत्तरी अरब के किन्ही-किन्ही भागो में अपने राज्य स्थापित करने लगे। १०५ ई० के लगभग इनके प्रभुत्व का अन्त हो गया।

१. देखिए, नबेह् ए फेरिस, द ऐन्टीक्वीटीज आफ़ साउथ अरेबिया (Nabih A Faris *The Antiquities of South Arabia*, Princeton 1938) तथा अरबी में "सिफत जजीरतुल अरब" (लाइडेन १८८४), मसूदी, "मुरूजुज्-जहब"। अबरहा के आक्रमण का कुरान शरीफ में भी उल्लेख हुआ है।

उत्तर-पश्चिमी अरब में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण गस्सानियो का राज्य हुआ है जो अपने आपको दक्षिणी अरब के एक कबीले से सम्बन्धित बताते थे। इन्हें अधिक प्रसिद्धि छठी शती ईसवी में प्राप्त हुई। इस शती में हारिस द्वितीय (५२९–५६९ ई०) को बडी उन्नति प्राप्त हो गयी। वह बज़टाइन राज्य (रोमन साम्राज्य का पूर्वी भाग) का बहुत बडा समर्थक था। उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी मुज़िर के राज्यकाल में भी बैज़टाइन वालो से इन लोगो का बडा मेल-जोल रहा।

अरब के उत्तर-पूर्वी भाग के लाख़मीद[1] का राज्य तीसरी शती ईसवी के अन्त में स्थापित हुआ। इनकी राजधानी हीरह में थी और ईरानियो के राज्य से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। ४१८ से ४६२ ई० के मध्य में हीरहवालो ने ईरान के राजनीतिक मामलो में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया था। मुज़िर तृतीय (५०५–५५४ ई०) के राज्यकाल में हीरह उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच गया। बाद में लाख़मीद के शासको ने भी ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। इनका अन्तिम बादशाह नोमान तृतीय अबू काबूस (५८०–६०२ ई०) हुआ है। ६०२ ई० के बाद ईरानियो ने अरब के राज्य पर पूर्ण रूप से अपना अधिकार जमा लिया, किन्तु ६३३ ई० में ख़ालिद बिन बलीद ने हीरह को विजय करके मुसलमानो के राज्यो में सम्मिलित कर लिया।

४८० ई० के लगभग मध्य अरब के किन्दह कबीले को भी बड़ी उन्नति प्राप्त हुई, किन्तु वे लोग अधिकाश दक्षिणी अरब के प्रभाव-क्षेत्र के अधीन रहे। इस्लाम के प्रारम्भ में किन्दह कबीले के बहुत-से लोगो को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हो गया था। अशास बिन कैस, हज़रमौत के सरदार ने शाम तथा इराक की विजय में उल्लेखनीय भाग लिया।[2]

हिजाज़

इस्लाम की जन्म-भूमि हिजाज़ भी छठी शती ईसवी के कुछ पूर्व सबाई तथा हमीरी राज्य के प्रभुत्व के अधीन थी, किन्तु इस्लाम के अभ्युदय तथा इन राज्यो के पतन के बीच का समय "जाहीलिया" युग के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका यह अर्थ नही कि उस युग में अरब असभ्य थे, अपितु उनमें उस उच्च स्तर की सभ्यता न पायी जाती थी जो

१. बनी लख़म अथवा बनू लख़म।
२. देखिए, अरबी में इब्ने अब्द रब्बीही, "इक़्द" भाग १, तबरी भाग २ तथा अंग्रेजी में हित्ती, "हिस्ट्री आफ द अरब्ज़"।

दक्षिणी अरब के नगरों में वर्तमान थी। हिजाज़ तथा नज्द के निवासी, जैसा पहले कहा जा चुका है, बदवी जीवन व्यतीत करते थे। "अय्यामुल अरब" अथवा अरबो का युग इसी बदवी जीवन के युग का दूसरा नाम है। इस युग में मवेशियों, चरागाहो तथा झरनो के लिए विभिन्न कबीले इधर-उधर मारे-मारे फिरा करते थे। स्वाधीनता, स्वाभिमानिता, आत्म-विश्वास, वीरता, पौरुष तथा इनके साथ-साथ कविता एव वाक्पटुता उनके जीवन की मुख्य विशेषताएँ थी। वे अतिथि-सत्कार के उच्च उदाहरण भी प्रस्तुत करते रहते थे। ६०५ ई० के लगभग तय कबीले के प्रसिद्ध सरदार हातिम ने बदवियो के अतिथि-सत्कार को अमर बना दिया। बदवी अपने कबीले के सरदार अथवा शेख के आदेशानुसार हर बलिदान के लिए तैयार रहते थे। उनका धर्म तथा अध्यात्मवाद प्रकृति पर आधारित था और प्रकृति के महान् तत्त्वो का मुकाबिला करने में जब वे असमर्थ हो जाते तो उन्ही के आगे शीश नवा देते और उन्हें अपना इष्ट-देव मान लेते थे। बदवियो के जीवन में बहुत थोडी-सी ही चीज़ो को महत्त्व प्राप्त हो सका है। उनमें खजूर, घोडे तथा ऊँट प्रमुख है। हज़रत मुहम्मद का यह आदेश बड़ा प्रसिद्ध है कि "तुम अपनी चाची खजूर का सम्मान करो जो कि उसी मिट्टी से बनी है जिस मिट्टी से आदम बने थे।"[1] ऊँट के बिना तो उनका जीवन सम्भव ही न था। बदवियो की सारी सम्पत्ति का मूल्यांकन ऊँटो की सख्या से ही किया जाता था। बदवी ऊँट का मास खाते, जल के स्थान पर उसका दूध पीते, उसकी खाल के खेमे-डेरे बनवाते तथा बालो के कपडे पहनते थे। हजरत उमर का यह कथन कि "अरब वही उन्नति कर सकता है जहाँ उसका ऊँट" बड़ा सारगर्भित है। घोडा यद्यपि अरब की विशेष सम्पत्ति समझा जाता था, किन्तु वह केवल गण्यमान्य व्यक्तियो एवं धनी लोगो के पास ही होता था।

बदवी अपने शेख के आदेशो का आँख बन्द करके पालन करते थे और अपने कबीले के लिए प्रत्येक बलिदान करने को उद्यत रहते थे। वे अपने अतिरिक्त किसी अन्य को उन्नति के पथ पर नही देख सकते थे। अरब कबीलो को उनकी आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओ एव मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियो के कारण निरन्तर एक-दूसरे पर छापा मारना पड़ता था। उमय्या राज्यकाल का एक कवि कहता है—"हमारा तो काम ही अपने शत्रुओ पर, अपने पडौसियो पर तथा अपने भाइयो पर, यदि भाई के अतिरिक्त कोई अन्य छापा मारने के लिए न मिले, आक्रमण करना है।"[2] "गज़ब" ने, जो उनके

१. सुयूती, "हुस्न अल-मुहाज़रह" (काहेरा १३२१ हि०) भाग २ पृ० ५५
२. अबू तम्माम "अशआर अल-हमासह" (बोन १८२८ ई०) पृ० १७१

कौमी खेल-कूद थे, इसी वजह से अत्यधिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था। मुहम्मद साहब के युद्धो को भी गज़्व के नाम से पुकारा जाता है और उन्हें बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

कबीलो के अलग-अलग रहने तथा सभी आदमियो के एक-दूसरे पर निर्भर होने के कारण इन लोगो में एक प्रकार का प्रेम-भाव पैदा हो जाता था, जिसकी वजह से कबीलो तथा कौमो के सगठन में अत्यधिक सहायता मिलती थी। यह भावना "अस-बियह" अथवा "असबियत" के नाम से प्रसिद्ध है। इसी के कारण एक कबीला अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु दूसरे कबीले से युद्ध करते समय अपने प्राणो की बलि देना बडी साधारण बात समझता था। बदवी भाट का यह गीत सर्वदा उसके कबीले में गूँजता रहता था कि "अपने कबीले के प्रति निष्ठावान् रहो। कबीले का हक इतना अधिक है कि पति अपनी पत्नी को त्याग सकता है।"[1] कबीले के नाम पर ही अरबो के नाम रखे जाते थे और एक कबीले के सभी प्राणी उसके "बनू" अथवा सतान कहे जाते थे।

इस्लाम ने इन भावनाओ से पूर्ण रूप से लाभ उठाया और जब इस्लामी सेनाओ का संगठन हुआ तो सेना के विभिन्न दस्तो को कबीलो के विभाजन के आधार पर बाँटकर उन्हें एक-दूसरे से आगे बढ जाने की प्रेरणा दी जाने लगी। किन्तु जब विजय तथा आगे बढने का मार्ग धीरे-धीरे बन्द होने लगा तो इसी भावना के कारण अरबो का राज्य टुकड़े-टुकडे भी हो गया।[2]

हिजाज़ का रेगिस्तानी भू-भाग भी अपने तीन नगरों, ताएफ, मक्के तथा मदीने पर गर्व कर सकता है। ताएफ, मक्के की अपेक्षा अधिक उपजाऊ एव आकर्षक नगर है।

१. अल-मुबर्रद, "अल-कामिल" (लाइपज़िग १८६४ ई०) पृ० २२९
२. देखिए अरबी में फ़ुतूहुल बुल्दान (अंग्रेज़ी अनुवाद : हित्ती; द ओरिजिंस आफ द इस्लामिक स्टेट—*The Origins of the Islamic State*, New York 1916, अंग्रेजी में टी. ई. लारेंस "सेविन पिलर्स आफ विज़्डम (T. E. Lawrence : *Seven Pillars of Wisdom*), William R. Brown, *The Horse of the Desert* (New York 1929); *The Manners and Customs of the Rawala Bedouins* (New York 1928); Hamidullah "*Place of Islam in the History of Modern International Law*"; "*The City States of Mecca* (Islamic Culture, Hyderabad, July 1938 : "*The Muslim Conduct of State*".

लाल सागर से ४० मील पर एक उजाड, पथरीली घाटी में स्थित मक्का, इस्लाम के अभ्युदय के पूर्व व्यापार का वडा भारी केन्द्र था। वहाँ के प्रसिद्ध पूजागृह "कावा" के कारण, जो कुरैश कवीले की देख-रेख में था और जहाँ दूर-दूर से यात्री आया करते थे, नगर वडा समृद्ध हो गया था। उकाज़ का मेला केवल व्यापार का ही साधन न था, अपितु वडे-वडे विद्वान् भी उस समय वहाँ एकत्र होते थे। यसरिव अथवा मदीना, मक्के से लगभग तीन सौ मील उत्तर में स्थित है और उस समय भी यमन तथा शाम (सीरिया) के व्यापारियों द्वारा लाभान्वित हुआ करता था। यहाँ की भूमि भी उपजाऊ है। वनू नज़र तथा वनू कुरैजह नामक यहूदी कवीलो ने यहाँ की कृषि का विशेष रूप से उत्कर्ष किया था। इस प्रकार हिजाज़वाले भी सभ्यता के कुछ केन्द्रो से प्रभावित होते रहते थे। दक्षिणी अरव के प्रभाव के अतिरिक्त अवीसीनिया, ईरान तथा शामवालों की छाप भी यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति पर थी।

कावे की मूर्तिपूजा के साथ-साथ इस्लाम के अभ्युदय के समय हिजाज मे यहूदी तथा ईसाई धर्म का भी काफी ज़ोर हो गया था, यद्यपि यह धर्म अपने मूल सिद्धान्तो की उपेक्षा के कारण पतनशील थे। एकेश्वरवाद की आवाज़ें उठानेवाले भी कही-कही मिल जाते थे जो "हनीफी" धर्म के अनुयायी कहलाते थे। अन्य मूर्तियों के साथ-साथ "हलह" अथवा कुरान शरीफ के शब्दो में "अल्लाह" को भी अरववाले वड़ा महत्त्व देते थे।[1] "और यदि इन लोगो (काफिरो) से पूछो कि आकाश तथा भूमि को किसने पैदा किया और चद्रमा तथा सूर्य को किसने अपने वश में रखा, तो वोल उठेंगे कि अल्लाह ने, फिर किधर वहके जा रहे है।[2]"

हज़रत मुहम्मद

इसी वातावरण में २० अप्रैल ५७१ ई० को मुहम्मद साहव का मक्के के कुरैश कवीले में जन्म हुआ। इनके पूर्वजो में क़ुसैय को मक्के के इतिहास में वड़ा महत्त्व

१. देखिए, ताहा हुसेन, "अल अदवल जाहिली" (काहेरा १९२७ ई०), इब्ने कुतैवह, "अल-शेर वल शुअरा" (लाइडेन १९०४), अल-अज़रकी, "अख्वार मक्का" (लाइपज़ेग १८५८ ई०), इब्ने वतूता, Anne and Wilfred S. Blunt, "*The Seven Golden Odes of Pagan Arabia*" (London 1903); John L Burckhardt, "*Travels in Arabia* (London 1829)
२. क़ुरान शरीफ, सूरा अन्कवूत ६

प्राप्त है। क़ुरैश को संगठित करके उन्होने कावे के यात्रियो के लिए भोजन और विशेष रूप से जल का प्रवन्ध किया। कुसैय के छ पुत्रो में अब्दे मनाफ उनके उत्तराधिकारी वने। अब्दे मनाफ के भी छ ही वेटे थे जिनमें हाशिम को उनके पिता के जीवन-काल में ही वड़ा महत्त्व प्राप्त हो गया। कावे के हाजियो के पीने के जल की इन्होने वडी अच्छी व्यवस्था की। वैज़ंटाइन के शाहशाह ने उन्ही के प्रयत्न से कुरैश को व्यापारिक कर से मुक्त कर दिया। अवीसीनिया के वादशाह से भी उन्होने इसी प्रकार की सुविवाएँ प्राप्त की। हाशिम के पुत्र, अब्दुल मुत्तलिव ने ज़मज़म के कुवे का पता लगवाकर उसे साफ कराया। हजरत मुहम्मद के पिता अब्दुल्लाह इन्ही के पुत्र थे, किन्तु अब्दुल मुत्तलिव के जीवनकाल में ही वे युवावस्था में मृत्यु को प्राप्त हो गये। हज़रत मुहम्मद का पालन-पोपण प्रारम्भ में उनके दादा और उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके चाचा अवू तालिव ने किया, किन्तु अब्दुल मुत्तलिव की मृत्यु से हाशिम की सतान को वडा धक्का पहुँचा और अब्दुल मुत्तलिव का उत्तराविकारी उमय्या का पुत्र हरव हो गया।

मुहम्मद साहव वाल्यावस्था से ही चिंतनशील व्यक्ति थे। अत मक्के की विभिन्न विचारवाराओ का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पडना स्वाभाविक ही था। वाल्यावस्था से ही उन्होंने अपने चाचा अवू तालिव के साथ व्यापार के सवंध में विभिन्न स्थानो की यात्रा प्रारम्भ कर दी और आस-पास के देश घूम-घूमकर देखे। २५ वर्ष की अवस्था में उन्होने खदीजा नामक एक धनी विधवा से विवाह कर लिया और उनके व्यापार के सम्वन्व में विभिन्न स्थानो की यात्रा करने लगे। जो समय उनका अन्य कार्यो से वचता उसे वे मक्के के वाहर हिरा नामक गुफा में ध्यान-मग्न रहने में व्यतीत किया करते थे। इसी वीच में मुसलमानो के विश्वास के अनुसार ६१० ई० में उन्हें ईश्वर की ओर से प्रेरणा प्राप्त हुई कि ईश्वर एक है और वे उसके रसूल है और उन्हें इस्लाम धर्म का प्रचार करना चाहिए। वे अपने कार्य हेतु कटिवद्ध हो गये। इस्लाम की शिक्षा के अनुसार वे मक्केवालो की मूर्तिपूजा के घोर विरोवी थे। इस कारण मक्केवालो ने उन्हें नाना प्रकार से तग करना प्रारम्भ कर दिया। ६२० ई० में यसरिव के खज़रज कवीले के कुछ लोग उकाज़ के मेले में मक्के पहुँचे और हज़रत मुहम्मद के प्रवचन से वड़े प्रभावित हुए और उन्हें मदीने आमत्रित कर लिया। हज़रत मुहम्मद अपने लगभग २०० अनुयायियो को गुप्त रूप से मदीने भेजकर स्वय २४ सितम्वर ६२२ ई० को मक्के से मदीने चले गये। यह प्रसिद्ध प्रवास "हिजरत" कहलाता है और मक्के से मदीने जानेवाले हज़रत मुहम्मद के मित्र तथा सहायक "महाजिर" अथवा "हिजरत करनेवाले" कहलाते है। १७ वर्ष उपरान्त खलीफा उमर ने १६ जुलाई से प्रारम्भ करके हिजरत

की महत्त्वपूर्ण घटना के आधार पर एक नये सवत् का प्रचलन कर दिया। मदीने में पहुँचकर हजरत मुहम्मद के जीवन ने एक नयी करवट ली और वहाँवालो की सहायता से इस्लाम को वडी उन्नति प्राप्त हुई।

हजरत मुहम्मद के मदीने के सहायक "असार" के नाम से प्रसिद्ध हुए। मदीने पहुँचते ही हज़रत मुहम्मद ने एक मस्जिद तथा अपनी पत्नियो के लिए छोटे-छोटे घरो का निर्माण कराया। "महाजिरो" ने छोटे-छोटे व्यापार प्रारम्भ कर दिये और मुहम्मद साहव के आदेशानुसार "महाजिर" तथा "असार" लोग भ्रातृ-भाव में वँध गये। किन्तु मक्केवालो के विरोध की भावनाएँ दव न सकी और उन्होने मदीने के यहूदियों को मुसलमानो के विरुद्ध भडकाना प्रारम्भ कर दिया और स्वय भी आक्रमण की तैयारियाँ करने लगे। ६२४ ई० में मदीने से दक्षिण-पश्चिम में २० मील पर स्थित वद्र नामक स्थान पर हज़रत मुहम्मद का मक्केवालो से युद्ध हुआ जिसमें मक्केवाले पराजित हो गये। ६२५ ई० में मक्केवालों ने उहुद के युद्ध में अपनी पराजय का वदला ले लिया। ६२७ ई० में मक्केवालो, वदवियो तथा अवीसीनिया के व्यापारियों ने मदीनेवालो पर पुन. चढाई की, किन्तु हज़रत मुहम्मद ने अपने एक ईरानी सहायक सलमान के कहने पर खाई खुदवाकर इस प्रकार अपनी रक्षा की कि मक्केवाले तग आकर भाग गये। ६२८ ई० में हजरत मुहम्मद १४०० मुसलमानो सहित मक्के पहुँचे और "हुदैविया" की सन्धि द्वारा प्राचीन शत्रुता को कुछ हद तक कम कर दिया। ६३०–३१ ई० में हज़रत मुहम्मद ने तवूक नामक गस्सानियो के राज्य के सीमात पर पहुँचकर ईसाइयो से सन्धि कर ली और इसी वर्प मक्के को भी पूर्ण रूप से विजय कर लिया और इस प्रकार कावे पर मुसलमानो का अधिकार स्थापित हो गया।

६३०–३१ ई० से ही दक्षिणी अरव एव विभिन्न कवीलो के दूत हज़रत मुहम्मद की सेवा में पहुँचने लगे और उन्होने इस्लाम स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे वहुत-से वदवी कवीले मुसलमान हो गये। ६३१–३२ ई० में हजरत मुहम्मद ने अपने साथियो सहित वडी शान से मक्के का हज किया। किन्तु वे इसके उपरान्त अधिक दिन जीवित न रह सके और ८ जून ६३२ ई० को उनका निधन हो गया।[1]

१. देखिए, अरवी में इब्ने हिशाम, "सीरत"; अल-बुखारी, "सहीह"; तवरी, वाकेदी, "मग़ाज़ी"; इब्ने साद, "तवकात"; शहरस्तानी, "मिलल वलनिहल" (लन्दन १८४२–६ ई०), Hitti, *"History of the Arabs"*; C, Brockelmann, *"History of the Islamic People,"* Pringle Kenne-

इस्लाम

मुसलमानों के विश्वास के अनुसार हज़रत मुहम्मद को समय-समय पर ईश्वर के आदेश 'जिवरील" फिरिश्ते द्वारा प्राप्त होते रहते थे। यह आदेश हज़रत मुहम्मद के जीवनकाल में तो लोग कठस्थ कर लेते थे, किन्तु वाद में इन्हें खजूर की पत्तियो एव सफेद पत्थर की तख़्तियो पर लिखवाकर सुरक्षित किया जाने लगा। जव हज़रत उस्मान (६४४–६५६ ई०) खलीफ़ा हुए तो ६५१ ई० में उन्होने इन्ही आदेशों अथवा 'कुरान" को वडे सु-व्यवस्थित ढग से सकलित करा दिया। हजरत मुहम्मद के आचार-व्यवहार एव उनकी वाणी भी वाद में धीरे-धीरे सकलित हुई और यह सकलन "हदीस" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस्लाम का धर्मविधान अथवा "शरीअत" या "शरा" कुरान तथा हदीस पर ही आधारित है। क़ुरान के अध्याय अथवा सूरे दो विभिन्न भागो में विभाजित हैं। एक तो वे सूरे जो 'हज़रत' के मक्के के जीवन काल से सम्वन्धित है, और दूसरे वे जो उनके मदीने के जीवनवृत्त पर आधारित है। इन दोनो में स्पष्ट अन्तर है। मक्के के सूरो में ईश्वर तथा मनुष्य के पारस्परिक सम्वन्धो एव ईश्वर के प्रति प्रेम भावनाओ का समावेश है। यह सूरे छोटे-छोटे है और इनकी सख्या लगभग ९० है, किन्तु मदीने के जीवन काल के सूरे सख्या में २४ है और कुरान के लगभग एक तिहाई भाग के वरावर हैं। वे नमाज, रोज़े, हज, ज़कात, जेहाद सम्वन्धी आदेशो एव अन्य धार्मिक नियमो पर प्रकाश डालते है। चोरी, सूद, व्यभिचार एव चरित्र सम्वन्धी अन्य समस्याओ तथा दासो के प्रति व्यवहार एवं अन्य कानूनो का इन्ही सूरो से पता चलता है। इनके अतिरिक्त प्राचीन काल के इतिहास से सम्वन्वित आद, समूद, लुकमान, अवरहा, सात सोनेवालो, आदम, नूह, इवराहीम, इस्माईल, मूसा, याकूव, यूसुफ, दाऊद, सुलेमान इत्यादि पैगम्वरो की कहानियाँ, जिनमें अधिकाश इजील (वाइविल) की ही कहानियों के समान है, कुरान में दी हुई है।

हज़रत मुहम्मद के वाद के प्रथम चार ख़लीफा

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त सवसे वडा प्रश्न उनके उत्तराधिकारी की नियुक्ति का था। उत्तराधिकारी के प्रश्न पर मतभेद हो जाना कोई आश्चर्य की वात न थी और प्रारम्भ में इस मतभेद ने कोई उग्र रूप धारण नही किया। हजरत मुहम्मद

dy, *Arabian Society at the time of Muhammad*" (उर्दू) शिवली नोमानी, "सीरतुन्नवी"
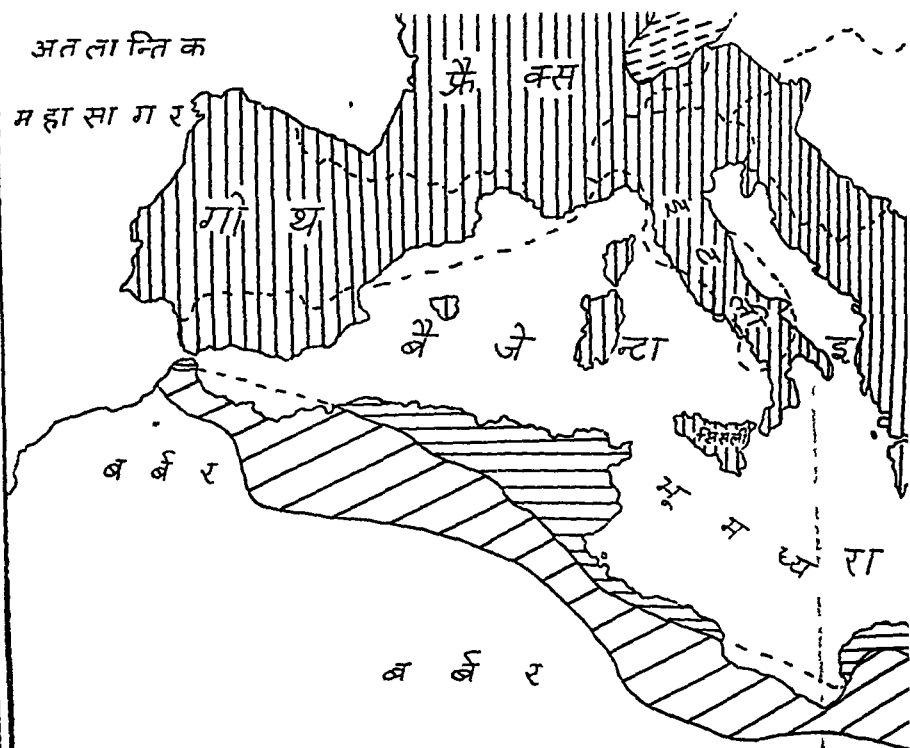
सातवी ईसवी शती - प्रथम हिजरी शती

मील

० १०० २०० ३०० ४०० ५०० ६०० ७०० ८०० ९०० १०००

अनुमानित सीमायें ६०० ई. - - - - - - -

- जिन पर पूरी शती ईसाइयो का अधिकार रहा
- जिन पर अन्य जातियो का पूरी शती अधिकार रहा
- मुसलमानो द्वारा ईसाइयो से विजित प्रदेश
- मुसलमानो द्वारा अन्य जातियो से विजित प्रदेश
- ईसाइयो द्वारा अन्य जातियो से विजित प्रदेश
- अन्य जातियो द्वारा ईसाइयो से विजित प्रदेश
- ऐसे प्रदेश जिनको मुसलमानो ने ईसाइयो से जीता पर बाद मे जिनपर ईसाइयो ने पुन अधिकार जमा लिया।
- ऐसे प्रदेश जिनको मुसलमानो ने अन्य जातियो से जीता पर बाद मे अन्य जातियो ने जिनपर पुन अधिकार जमा लिया

के ससुर वृद्ध अबू वक्र प्रथम खलीफा नियुक्त हो गये। वे केवल दो वर्ष (६३२–६३४ ई०) तक ही ख़लीफा रह सके। इसी बीच अरब के बहुत से कबीलो ने विरोध प्रारम्भ कर दिया। ख़ालिद बिन वलीद ने छ मास में इस विरोध का दमन करके मध्य अरब में एक प्रकार की शान्ति स्थापित कर दी, किन्तु अब अरबवालों को अन्य ऐसे स्थानों की खोज करना अनिवार्य था जहाँ वे इस्लाम के प्रचार के नाम पर अपने सगठन तथा युद्ध के नये नियमो की परीक्षा कर सकते। इसमें सन्देह नही कि उस समय के बदवी समाज में क़ुरान की शिक्षा के कारण महान् क्रान्ति आ गयी थी और इस्लाम ने बदवियो के जीवन में एक नव-चेतना तथा नव-स्फूर्ति का संचार कर दिया था। वे सब जब एक धर्म के सूत्र में बँधकर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रेगिस्तानी क्षेत्र से निकलकर समृद्ध स्थानो की ओर बढे तो प्रत्येक स्थान पर विजय ने आगे बढकर उनका स्वागत किया। ईरान के प्रसिद्ध सेनापति रुस्तम ने तो खुल्लमखुल्ला अरब आक्रमणकारियो से कह दिया कि "तुम्हारी आवश्यकताओ एव दरिद्रता ने, जो कुछ तुम कर रहे हो उसके लिए तुम्हें विवश कर दिया है।"[1] प्रारम्भ में तो अरबो के इन छापो का उद्देश्य केवल अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त करना ही रहा होगा, किन्तु धीरे-धीरे एक दृढ साम्राज्य की नीव भी पड गयी। जो स्थान विजित हुए वहाँ के सब निवासियो ने तुरन्त ही न तो स्वय इस्लाम धर्म स्वीकार किया न उन सबको मुसलमान बनाया ही जा सका, वे १००–२०० वर्ष बाद तक विभिन्न परिस्थितियों में शनै-शनै मुसलमान होते गये। अत इन विजयो को अरबी सगठन की विजय ही कहना चाहिए, किन्तु इस तथ्य की भी उपेक्षा सम्भव नहीं कि इस्लाम ही इस सगठन का एक मात्र स्रोत था और अरब-वाले शाम, मेसोपोटामिया, ईरान तथा अन्य देशो की ओर बढते चले गये। उस समय के निरकुश साम्राज्यो एव ज़ालिम पुजारियो तथा पादरियों के कारण वहाँ के निवा-सियो को नित्य घोर कष्टो का सामना करना पड़ता था, अत. वे कोई न कोई परिवर्तन चाहते ही थे। इस्लाम ने इस कमी को पूरा किया।[2]

१. फ़ुतूहुल बुल्दान पृ० २५६–५७, हित्ती द्वारा अंग्रेजी में अनुवाद पृ० ४११–१२.
२. प्रारम्भिक विजयों के विषय में देखिए, तबरी, वाक़ेदी, याक़ूबी, इब्न अल-असीर तथा मसऊदी के इतिहास एवं अल बसरी की फ़ुतूह-अल-शाम, इब्ने असाकिर की "तारीख अल-कबीर", "फ़ुतूहुल बुल्दान", इब्न अल-तिकतका, "अल फ़ख़री", दीनावरी, "अल-अख़्बार अल-तिवाल," इब्न अब्द अल हकम, "फ़ुतूह मिस्र" तथा अंग्रेजी में Olmstead, "*History of Palestine*", A. S.Butler,

सितम्बर ६३५ ई० में ६ मास के अवरोध के उपरान्त खालिद ने दमिश्क़ को विजय कर लिया। ७४० ई० तक उत्तर से दक्षिण तक पूरा सीरिया अथवा शाम मुसलमानो के अधीन हो गया। सीरिया से अरब आक्रमणकारी सुगमतापूर्वक मिस्र और तदुपरान्त उत्तरी अफ्रीका में पहुँच गये। वही से अरमीनिया, उत्तरी मेसोपोटामिया, जौर्जिया, अज़रबाईजान भी शनै-शनै विजय कर लिये गये।

ईरान की विजय के लिए खलीफा उमर (६३४–६४४ ई०) ने साद इब्ने अबी वक्कास को चुना। उसने अपने ६ हज़ार सैनिको को लेकर ३१ मई ६३७ ई० अथवा प्रथम जून को ईरान के सेनापति रुस्तम को हीरह के समीप कादिसिया के रणक्षेत्र में घोर युद्ध के उपरान्त पराजित कर दिया। रुस्तम मारा गया। जून में ही साद ने फ़ारसवालो की राजधानी मदायन पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। ऐवाने किसरा अथवा किसरा के भव्य भवनो को देखकर अरबों का चकित हो जाना स्वाभाविक ही था। यदि इस अवसर पर उन लोगो ने काफूर का प्रयोग नमक के स्थान पर करना प्रारम्भ कर दिया तो कोई आश्चर्य न होना चाहिए। इब्ने खलदून ने अपने मुक़द्दमे में इन ऐतिहासिक तथ्यो से बडे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले है।

ईरान की विजय के उपरान्त अरबो ने बसरा को अपनी छावनी बनाकर अपने आक्रमणकारियो को विभिन्न दिशाओं में भेजना प्रारम्भ कर दिया। प्राचीन नैनवा के स्थान पर स्थित मोसल नामक नगर ६४१ ई० में अरबो के अधिकार में आ गया। ६४९–५० ई० में इसतख पर भी विजय प्राप्त हो गयी। इससे पूर्व ही अरब आक्रमणकारी खुरासान तथा आक्सस तक पहुँचने लगे। ६४३ ई० में बिलोचिस्तान के समुद्र के किनारे के मकरान नामक भाग पर अरबो का अधिकार स्थापित हो गया। ६४२ ई० में बैज़टाइन अथवा रूम के पूर्वी साम्राज्य के अरमीनिया पर आक्रमण हेतु हबीब इब्न मसलमह को भेजा गया और ६५२ ई० में उसने पूर्णरूप से विजय प्राप्त कर ली। कूफे की छावनी अरबो के इस नये साम्राज्य की राजधानी बन गयी और हज़रत उमर के आदेश के विरुद्ध मदायन के राजप्रासादो के नमूने के महल बनवाने के प्रयत्न किये गये।

"The Arab Conquest of Egypt", Hitti *"History of the Arabs"*, C Brockelmann, *"History of the Islamic People"*, Lane Poole, *"The First Mohammedan Treaties with Christians"* (Proceedings of the Royal Irish Academy. Vol. 24, 1904)

सभ्यता का प्राचीन केन्द्र मिस्र, शाम तथा हिजाज दोनो से ही अत्यधिक निकट है। यही से उत्तरी अफ्रीका पर आक्रमण करने के द्वार खुल जाते हैं। सिकन्दरिया उस समय वैज़टाइन के समुद्री वेडे का मुख्य केन्द्र था। इसके अतिरिक्त यहाँ की धन-सम्पत्ति एव उपजाऊ भूमि की प्रशसा से अरवी साहित्य भरा हुआ था। यद्यपि खलीफा उमर तथा उस्मान दोनो मिस्र पर आक्रमण करने के पक्ष मे न थे, किन्तु ४५ वर्षीय योद्धा अमर विन आस, जो जाहिलिया के युग से मिस्र से परिचित था, दिसम्बर, ६३९ ई० में उत्तरी मिस्र के प्रसिद्ध नगर फरमा (पेलूसियम) की ओर पहुँच गया और एक मास के युद्ध के उपरान्त उसे विजय कर लिया। जुलाई, ६४० ई० में अरव सेनाओ को मिस्र के विरुद्ध एक वहुत वडी विजय प्राप्त हो गयी। इसी वीच में अमर इब्ने आस के पास २० हजार अरव सैनिक और पहुँच गये जिनकी सहायता से वह सिकन्द-रिया तक वढता चला गया और ८ नवम्वर ६४१ ई० को वहाँ के मुख्य पादरी से सन्धि कर ली। सितम्वर ६४२ ई० में सिकन्दरिया की सेनाओ ने नगर खाली कर दिया और अमर इब्ने आस को पूर्णरूप से उस पर अधिकार प्राप्त हो गया। हेलियोपोलिस नामक छाँवनी पर फुज़्तात नामक एक अन्य नगर वसाया गया जो कि शाम की जावियह तथा वसरा और कूफा के समान अरव सेना की छावनी वन गया।

६४९ ई० में मुआविया ने कुवरुस (सिपरस) पर, जो कि वैजटाइन राज्य का समु-द्रीय केन्द्र था, अधिकार जमा लिया। इस प्रकार अरव समुद्री युद्ध में भी धीरे-धीरे भाग लेने लगे। ६५५ ई० में मुआविया के शामी-मिस्री वेड़े ने वैज़टाइन के ५०० जहाजी वेडे फिनिक्स के समीप अपने अधिकार में कर लिये। ६६८ अथवा ६६९ ई० में एक जहाजी वेड़ा सिकिल्लिया (सिसली) तक पहुँच गया और उसने वहाँ पर भी लूट-मार की।

मेसोपोटामिया, ईरान तथा मिस्र की विजय के उपरान्त अरव न केवल एक वहुत वडे साम्राज्य के ही स्वामी हुए अपितु उन्होने विश्व की सभ्यता के प्राचीनतम केन्द्रो पर भी अधिकार जमा लिया। कला, ज्ञान-विज्ञान, राजनीति तथा सभ्यता एव सस्कृति के अन्य क्षेत्रों में वदवियो ने किसी प्रकार कोई उन्नति न की थी, अत वे इन स्थानों को केवल "ईश्वर की वाणी" तथा हज़रत मुहम्मद के चरित्र के उच्च उदाहरणो के अति-रिक्त कोई अन्य वात सिखा ही क्या सकते थे। अत. इन देशो की सभ्यताओ ने अरव वालो पर अपनी पूरी-पूरी छाप डाली। जिस प्रकार विजयी रोमनो के राज्य में पराजित यूनानी सभ्यता की ज्योति सदा ही जलती रही, उसी प्रकार अरव के वदवियो की सभ्यता ने भी मिस्री, इराकी, ईरानी तथा यूनानी सभ्यता से प्रभावित होकर अरवी भापा

द्वारा एक नया रूप धारण कर लिया। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि अरब सभ्यता मेसोपोटामिया की प्राचीन सैमिटिक सभ्यता का ही ऐसा रूप बन गयी जो असीरिया, बेबीलोनिया, फिनीशिया, अरमीनिया तथा हेब्रू सभ्यता पर आधारित था।

हज़रत अबू बक्र के समय में विजयो का जो क्रम प्रारम्भ हुआ वह हज़रत उमर के ज़माने में उन्नति के शिखर पर पहुँच गया, पर हज़रत अली (६५६–६६१ ई०) के समय तक पहुँचते-पहुँचते यह धारा रुक गयी। इस प्रकार हज़रत मुहम्मद के निधन के उपरान्त एक ही पीढी में अरब राज्य आक्सस से उत्तरी अफ्रीका तक पहुँच गया। अब सभ्यता एव सस्कृति के उस चक्र का चलना स्वाभाविक ही था जिसका विश्लेषण इब्ने खलदून ने अपने मुक़द्दमे में विस्तार से किया है।

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के उपरान्त ही कुछ लोग उनके भाई एव उनकी प्रिय पुत्री फातेमा के पति हज़रत अली को अपना इमाम अथवा नेता मानने लगे थे और उनका विचार था कि हज़रत अबू बक्र का खलीफा होना घोर अन्याय था। इस प्रकार मुसल-मानो के बहुत से दल बन गये जिनमें शीओ का दल खुल्लमखुल्ला सुन्नियो का विरोधी हो गया। ६५६ ई० में हज़रत अली, हज़रत उस्मान के स्थान पर खलीफा हुए, किन्तु उन्हें मुहम्मद साहब की पत्नी एव हज़रत अबू बक्र की पुत्री हज़रत आयशा के घोर विरोध का सामना करना पडा। हज़रत आयशा ऊँट पर सवार होकर अपने सहायकों सहित हज़रत अली से युद्ध करने निकली। ९ दिसम्बर ६५६ ई० को बसरा के बाहर हज़रत आयशा की पराजय हुई। हज़रत आयशा के ऊँट पर सवार होने के कारण यह युद्ध जमल (ऊँट) का युद्ध कहलाता है। हज़रत अली ने अपनी राजधानी कूफे में बनायी, किन्तु शाम के गवर्नर मुआविया इब्ने अबी सुफयान ने आपका विरोध प्रारम्भ कर दिया। फुरात नदी के पश्चिम में रक्का के समीप सिफ्फीन के रण-क्षेत्र में हज़रत अली की इराकी तथा मुआविया की शाम की सेनाओ में युद्ध हुआ जो कई सप्ताह तक चलता रहा, किन्तु २६ जुलाई ६५७ ई० को जब हज़रत अली को विजय प्राप्त होनेवाली थी, अमर इब्ने आस की युक्ति से विवाद का निर्णय मध्यस्थो को सौंप दिया गया। मुआविया की ओर से अमर इब्ने आस तथा हज़रत अली की ओर से मूसा अल-अशअरी मध्यस्थ नियुक्त हुए। अमर इब्ने आस ने मूसा से अपनी युक्ति द्वारा हज़रत अली को पदच्युत करा दिया। इससे हज़रत अली की शक्ति को बडा धक्का पहुँचा। उनके सहायको का एक बहुत बडा समूह मध्यस्थों की नियुक्ति पर हज़रत अली का विरोधी बन गया। ये लोग खारजी कहलाये और ६५९ ई० में हज़रत अली को नहरवान नामक नहर के किनारे उन लोगो से युद्ध करना पड़ा। यद्यपि वे पराजित

हो गये, किन्तु उनकी शक्ति किसी प्रकार कम न हुई और वे अब्बासियों के राज्य काल तक विभिन्न प्रकार के आदोलन चलाते रहे। जनवरी ६६१ ई० में हजरत अली की हत्या करा दी गयी और उनके स्थान पर मुआविया (६६१–६८० ई०) ईलिया में (यरोशलम के समीप) खलीफा हो गये। मुआविया ने दमिश्क को ही राजधानी बनाये रखा। उनके खलीफा हो जाने के उपरान्त हज़रत मुहम्मद के बाद के प्रथम चार खलीफाओ का युग समाप्त हो गया और बनी उमय्या की खिलाफत प्रारम्भ हुई।

मुआविया ने अपने पुत्र यज़ीद (६८०–६८३ ई०) को अपने स्थान पर खलीफा नियुक्त किया। यज़ीद के राज्यकाल में १० मुहर्रम ६१ हि० (१० अक्टूबर ६८० ई०) को अमर इब्ने साद ने लगभग ४००० अश्वारोहियो सहित कूफे से २५ मील उत्तर पश्चिम मे करबला में हज़रत अली के पुत्र इमाम हुसेन एव उनके १०० से कम सहायकों को घेरकर शहीद कर दिया। इमाम हुसेन के वध के कारण शीओं का विरोध और भी बढ गया। बनी उमय्या के विरोधी इस करुणाजनक घटना को बहाना बनाकर उनके विरुद्ध नाना प्रकार के षड्यन्त्र करने में सफल होने लगे।

उमय्या खलीफाओ में अब्दुल मलिक (६८५–७०५ ई०) तथा वलीद (७०५–७१४ ई०) बडे प्रसिद्ध हुए है। उनके समय में नये देशो की विजय का दूसरा क्रम प्रारम्भ हुआ। हज्जाज इब्ने यूसुफ जो हिजाज़ में स्थित तायफ नामक स्थान का एक अध्यापक था, ६९२ ई० में अरब का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। दो वर्ष में उसने हिजाज के विद्रोहियो को बुरी तरह कुचल दिया। ६९४ ई० में वह इराक़ के विभिन्न राजनीतिक एव धार्मिक दलो के विद्रोह के दमन हेतु नियुक्त किया गया। उसने कुछ ही वर्षो में इराक तथा ईरान के बहुत बडे भाग की अशान्ति का कुछ समय के लिए अन्त कर दिया। उसके एक सेनापति कुतेबह इब्ने मुस्लिम ने ७०५ ई० में बल्ख, ७०६–९ ई० में बुखारा तथा आसपास के स्थान (७१०–१२ ई०) एव समरकन्द, ख्वारिज्म तथा पश्चिम की ओर के अन्य देश विजय कर लिये। ७१३–१५ ई० में उसने फरगाना पर भी आक्रमण किया। बुखारा, बल्ख तथा समरकन्द बौद्ध धर्म के केन्द्र थे। इस प्रकार अरबो को एक नयी सस्कृति के सम्पर्क में आने का अवसर मिल गया। खलीफा हिशाम (७२४–४३ ई०) द्वारा नियुक्त ट्रासाक्ज़ियाना का गवर्नर नस्र ७३८–४० ई० के बीच चीन तक पहुँच गया। ७५१ ई० में अरबो ने समरक़न्द के उत्तर-पूर्व में स्थित शाश (ताशकन्द) को भी विजय कर लिया। इस प्रकार मध्य एशिया में मुसलमानो का प्रभुत्व पूर्णरूप से स्थापित हो गया। बौद्ध धर्म के उपरान्त अरबो का सम्पर्क चीनियो से भी हुआ और मंगोलों ने इस्लाम के इतिहास में महत्त्वपूर्ण

भाग लिया। ७१० ई० में मुहम्मद विन कासिम मुकराम को पूर्णरूप से अपने अधिकार में करता हुआ ७११–१२ ई० में सिन्ध पहुँचा और सिन्ध विजय करते हुए ७१३ ई० में मुल्तान तक पहुँच गया।

मिस्र की विजय के वाद ही पश्चिम दिशा में इफरीकिया पर भी आक्रमण प्रारम्भ कर दिये गये थे। ६७० ई० में मुआविया के एक सेनापति उक़वा इब्ने नाफे ने कैरवान नगर की स्थापना करके वरवर कवीलो पर छापे मारना प्रारम्भ कर दिये। ६७८ ई० में हस्सान इब्ने नोमान गस्सानी ने वैजनटाइन शक्ति का अन्त करके कारथेज पर अधिकार जमा लिया और वरवर कवीलो को अच्छी तरह कुचल दिया। हसन लगभग ६९९ ई० तक इफरीकिया का गवर्नर रहा। उसके उपरान्त मूसा इब्ने नुसैर को उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया गया और कैरवान की राजधानी को मिस्र से पृथक् करके दमिश्क के खलीफ़ा के अधीन कर दिया गया। उसने अपने राज्य को तनजा (तांजीर) तक वढ़ा लिया। जव मूसा ने उत्तरी अफ़्रीका के समुद्रीय तट को अटलाटिक तक विजय कर लिया तो दक्षिण-पश्चिमी यूरोप की विजय के द्वार भी खुल गये। ७११ ई० में मूसा का एक वरवर सहायक तारिक स्पेन तक पहुँच गया और शीघ्र ही उन्दलुस (आईवेरियन पेनिंसुला) पर भी अधिकार जमा लिया गया। वे निरन्तर वढते ही गये और फ्रास में प्रविष्ट होकर दक्षिणी यूरोप में फैल गये, किन्तु फ्रैंक एव अन्य जातियो ने चार्ल्स मोर्टल के नेतृत्व में फ़्रांस में पाइतिये के पास तूर के युद्ध में अरवो को पराजित करके (७३२ ई०) उनके कदम रोक दिये।

इस प्रकार हजरत मुहम्मद के निधन से ७३२ ई० तक अर्थात् १०० वर्ष के भीतर उनके अनुयायियो ने विसके की खाड़ी से लेकर सिन्ध नदी तथा चीन तक और अरव सागर से लेकर नील नदी तक अपना राज्य स्थापित कर लिया। अरवो की राजधानी दमिश्क के नव-निर्मित गगनचुम्वी राजप्रासाद, उद्यान एवं भोग-विलास के साधन साधारण वदवियो को उस समय भी आश्चर्यचकित करते रहते थे।

वनी उमय्या की राज्यव्यवस्था

वनी उमय्या तथा वनी अव्वास के राज्यकाल में भी प्रान्तो का विभाजन वैज़नटाइन तथा ईरानी साम्राज्य के विभाजन के आधार पर रहा।[१] मुख्य प्रान्त इस प्रकार थे—

१. पृ० १२ पर जिन ग्रंथों का उल्लेख हुआ है उनके अतिरिक्त देखिए "अल-मावरदी", "अल-अहकाम-अल-सुल्तानियह" इब्ने ख़लदून, "मुक़द्दमा" अंग्रेजी में, J. B.
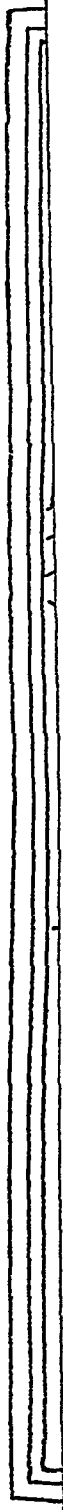
१—सीरिया, फ़िलिस्तीन।

२—कूफा इराक सहित।

३—वसरा, ईरान, सिजिस्तान, ख़ुरासान, बहरैन, उमान तथा नज्द एव यमाम सहित।

४—अरमीनिया।

५—हिजाज।

६—करमान तथा भारत के सीमान्त प्रान्त।

७—मिस्र।

८—इफरीकिया।

९—यमन तथा शेष दक्षिणी अरब।

कुछ समय उपरान्त थोड़ा-बहुत परिवर्तन करके समस्त अरब राज्य पाँच मुख्य अधिकारियो के अधीन कर दिया गया। मुआविया ने बसरे तथा कूफे के राज्य को मिला दिया और कूफे को राजधानी बना दिया। बाद में इराक़ के गवर्नर को अपना नायब ख़ुरासान तथा ट्रांसाक्जियाना के लिए अलग से नियुक्त करने की अनुमति दे दी गयी जो कि साधारणत मर्व में रहता था। इसी प्रकार सिन्ध तथा पजाब के हाकिम अलग हो गये। हिजाज, यमन तथा मध्य अरब को एक हाकिम के अधीन कर दिया गया। अल जज़ीरह, दजला तथा फ़ुरात के बीच का भाग, अरमीनिया में मिला दिया गया और अज़रबाईजान तथा एशिया माइनर (कोचक, लघु) के कुछ भागो को मिलाकर तीसरा प्रान्त बन गया। मिस्र के ऊपर तथा नीचे के भाग को मिलाकर चौथा प्रान्त और इफरीकिया को, जिसमें उत्तरी अफ्रीका तथा सिसली और आस-पास के द्वीप सम्मिलित थे, पाँचवाँ प्रान्त बनाया गया। यहाँ की राजधानी कैरवान थी। हाकिम (गवर्नर) राज्यकर वसूल करने के लिए अपने आमिल (अधिकारी) नियुक्त करता था। स्थानीय व्यय वही की आय से पूरा किया जाता था और जो कुछ बचता था वह खलीफा के खजाने में भेज दिया जाता था। क़ज़ा (न्याय) विभाग केवल मुसलमानो

Bury, "*The Imperial Administrative System in the Ninth Century*", Morris Jastrow Jr., "*The Civilization of Babylonia and Assyria*", K. A C. Creswell, "*Early Muslim Architecture*", A S. Wensinck, "*A Hand book of early Muhammedan Tradition*, Nicholson, "*A Literary History of the Arabs*"

के लिए सीमित था। अन्य लोग अपनी प्राचीन प्रथाओ का ही पालन करते थे। सेना का प्रवन्ध वैजनटाइन नियमो पर आवारित था। सेना पाँच भागो में विभाजित थी। मध्य भाग, दायाँ और वायाँ भाग तथा आगे और पीछे के भाग। दमिश्क में जो सेना भरती की जाती थी उसमें सीरिया निवासी अथवा शामी अरब होते थे। जहाजी वेडा वैजटाइन नियमों पर तैयार किया गया।

सामाजिक दशा

राज्य में प्रमुख स्थान मुसलमानो को प्राप्त था। उन वदवी अरवो तथा लोगो को, जो खलीफाओ के निकटवर्ती अथवा विश्वासपात्र होते थे, विशेष अधिकार प्राप्त होते थे। उनसे नीचे के ऐसे मुसलमान, जो वाद में इस्लाम स्वीकार करते थे, मवाली कहलाते थे। वे निम्नवर्ग के समझे जाते थे। यद्यपि कहने को तो इस्लाम ने सभी मुसलमानो को भाई-भाई वना दिया था, किन्तु वास्तव में ऊँच-नीच का अन्तर अरब राज्य में भी समाप्त न हो पाया था। मवालियो ने धीरे-धीरे उच्च वंश के अरवो से सम्पर्क स्थापित करके तथा शादी-व्याह द्वारा ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने का थोड़ा-वहुत प्रयत्न किया और वहुत-से राजनीतिक आन्दोलन चलाकर अपने लिए उच्च स्थान प्राप्त करने की कोशिश की, किन्तु समस्त भेद-भाव पूर्णरूप से कभी न मिट सके। उस समय के अरब राज्य में तीसरा वर्ग ज़िम्मियो अथवा उन ईसाइयों, यहूदियों आदि का था जिन्होंने इस्लाम स्वीकार न किया था, अपितु जिज़िया अदा किया करते थे, जिसके कारण उनकी हर प्रकार की रक्षा करना मुसलमानो का कर्त्तव्य समझा जाता था। सर्वप्रथम यह अधिकार कुरान के अनुसार केवल यहूदियो तथा ईसाइयो को ही प्राप्त था, किन्तु धीरे-धीरे यह अधिकार अग्निपूजकों और वरवर काफिरो तथा अन्य जातिवालो को भी प्राप्त हो गया। सवसे निम्नवर्ग दासों का था। यद्यपि इस्लामी शरीअत के अनुसार कोई मुसलमान दास न वनाया जा सकता था, किन्तु अन्य धर्मवाले इस्लाम स्वीकार कर लेने के उपरान्त भी वास्तव में समाज में वहुत अधिक न उठ पाते थे। पूर्व तथा मध्य अफ्रीका के काले दास, फरगाना, चीन तथा तुर्किस्तान के पीले ग़ुलाम और निकट पूर्व एव दक्षिणी यूरोप के सफेद दास वाज़ारों में विकते थे और उनका मूल्य उनकी योग्यता तथा रूप-रंग के अनुसार निश्चित होता था। दासियो अथवा कनीज़ो के साथ विवाह तो नहीं हो सकता था, किन्तु वे रखैल स्त्रियों के समान होती थीं। उनसे जो संतान उत्पन्न होती वह स्वामी की होती थी और दासी को "उम्मे वलद" अथवा वच्चो की

माता का सम्मान प्राप्त हो जाता था। वह अपने पति-स्वामी द्वारा बेची नही जा सकती थी, अपितु मृत्यु के उपरान्त मुक्त कर दी जाती थी।

उमय्या काल का सांस्कृतिक जीवन

उमय्या राज्य में जाहीलिया युग के निकट होने के कारण साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान की उतनी उन्नति तो न हो सकी, जितनी कि अब्बासियो के राज्यकाल में हुई, किन्तु फिर भी सस्कृति के क्षेत्र में उमय्या वशवालो ने थोडा-बहुत योगदान अवश्य किया। कूफा और बसरा दोनो नगर उमय्या राज्यकाल में उन्नति के शिखर पर पहुँच गये। कुरान शरीफ के अध्ययन तथा इस्लाम के धर्मविधान को नियमित रूप देने की आवश्यकता के कारण अरबी भाषाविज्ञान की बड़ी उन्नति हुई और साथ ही साथ हज़रत मुहम्मद की हदीसें जीवन की विभिन्न आवश्यकताओ के लिए ढूँढी जाने लगी और कुछ लोगो ने तो विशेष रूप से हदीसें गढ़ना अपना व्यवसाय बना लिया। इस्लामी धर्म-विधान अथवा फिकह, जिसका स्रोत कुरान शरीफ तथा हदीस हैं, रोमन कानून के समान निश्चित रूप में तैयार होने लगी। अरब इतिहास-रचना के काल का भी उसी युग से अभ्युदय हुआ। हदीस अर्थात् हजरत मुहम्मद की सीरत (जीवनी) तथा विजयो (मगाजी) के विवरणो के सकलन की आवश्यकता ने इतिहास के ज्ञान को उन्नति प्रदान की।

उमय्या काल से ही अनेक धर्मों पर आधारित दार्शनिक आन्दोलन प्रारम्भ हो गये थे। ८वी शती ई० के प्रथम आधे भाग में वासिल इब्ने अता ने मोतजेला (हेतुवादी) विचारो को फैलाना प्रारम्भ कर दिया। वह हसन बसरी (जन्म ६४२ ई०, मृत्यु ७२८ ई०) का शिष्य था जो कदर[1] के सिद्धान्तो को मानता था। इसी सिद्धात से मोतजेला दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। उनका मुख्य सिद्धान्त था कि "जो गुनाहे कबीरा[2]

१. कदर अथवा तकदीर, मुसलमानो के धार्मिक विश्वासो का एक मुख्य सिद्धान्त है। इसके अनुसार जो कुछ अच्छा या बुरा हो गया, अथवा हो रहा है या होगा, सबका सब ईश्वर की इच्छा से होता है, जो कि भाग्य की लेखनी द्वारा "लोहे महफ़ूज़" (सुरक्षित तख्ती) पर लिख दिया गया है।
२. गुनाह अथवा पाप मुसलमानों के अनुसार दो भागों में विभाजित किये जाते हैं, सग़ीरह(साधारण) और कबीरा अथवा घोर पाप, जिनका कड़े शब्दों में निषेध हुआ है और जिनके लिए बड़े-बड़े दंड निश्चित हुए हैं।

करता है वह धर्मनिष्ठ मुसलमानो की श्रेणी से गिर जाता है, किन्तु काफिर नही हो जाता अपितु मध्य की श्रेणी का स्वामी होता है। मनुष्य जो कुछ करता है वह स्वय करता है।"

कला के क्षेत्र में उमय्या काल में मस्जिदो के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। मस्जिदों में अधिक सख्या में लोगो के नमाज़ पढने का प्रवन्ध करना पडता है, अत इस आवश्यकता की दृष्टि से स्थानीय शैलियो के आधार पर मेहराव, मकसूरा एव गुम्वद के निर्माण की कला को उन्नत किया गया। जिस दिशा में नमाज़ पढी जाती है उसका पता मेहराव से चलता है। मकसूरा की आवश्यकता खलीफाओ की प्रतिरक्षा के विचार से हुई, जहाँ वे सवसे अलग भी रह सकते थे और एकान्त में ईश्वर का ध्यान भी कर सकते थे। इसी प्रकार वनी उमय्या युग में मीनारो की भी आवश्यकता हुई और उन्हें भी मस्जिद का विशेष अग वना लिया गया। उमय्या काल में कुछ विशाल भवन वनवाये गये, किन्तु महलो के निर्माण में कोई अधिक प्रगति न हुई।

यद्यपि इस्लाम ने सगीत पर विशेष प्रतिवन्ध लगा रखा था, किन्तु उमय्या काल में यह वधन धीरे-धीरे टूटता गया और सगीत के विना राजप्रासाद की महफिलें सूनी ही समझी जाने लगी। इस्लाम के अनुशासन का पालन कुछ थोडे-से ही लोगो तक सीमित था, अन्यथा अरवो के सामाजिक एव सास्कृतिक जीवन में वहुत वडी क्रान्ति आ गयी। भोगविलास के साधन, जिनके लिए हज़रत उमर भी कभी-कभी अपने सेनापतियो को फटकारा करते थे, वढते गये। मुआविया के पुत्र यज़ीद के राज्यकाल में तो खुल्लमखुल्ला मदिरा का प्रयोग होने लगा। सगीत तथा नृत्य के विना खलीफा को किसी समय चैन न आता था। यज़ीद के वाद भी मदिरापान, सगीत तथा नृत्य दरवार की विशेषता वने रहे। महल को सजाने के लिए चित्रकला, जिसका निषेध भी इस्लाम द्वारा हुआ है, खुल्लम-खुल्ला प्रचलित हुई।

अव्वासियों का प्रचार

इस प्रकार उमय्या राज्यकाल में ही इस्लाम के वहुत से कट्टर नियमो की या तो खुल्लम-खुल्ला अवहेलना होने लगी और या उनके लिए इस्लामी धर्मशास्त्रो से ढूंढ-ढूंढकर कोई-न-कोई वहाने तराशे जाने लगे और जैसा कि इब्ने खलदून ने सिद्ध किया है, सभ्यता एव संस्कृति की आवश्यकताओ को इस्लाम के सारे नियमो पर प्राथमिकता प्राप्त हो गयी। अव्वासी राज्यकाल में तो यह धारा उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गयी। किन्तु अव्वासियो ने भी प्रारम्भ में उमय्या राज्य को समाप्त करने

के लिए उनकी इन धर्म-विरोधी वातो का प्रचार करके लोगों को बुरी तरह उभारा। हजरत अली के अनुयायी, जो इमाम हुसेन के वध को कभी न भूल सके थे, उमय्या राज्यकाल के अन्त में उनका खुल्लम-खुल्ला विरोध करने लगे। इराकवाले, जिनकी अधिक जनसख्या शीआ हो चुकी थी, राष्ट्रीयता की भावनाओ के आधार पर भी शामियो के प्रभुत्व को अच्छी दृष्टि से न देखते थे। अब्वासी, जो मुहम्मद सा०हव के चाचा अब्वास इब्ने अब्दुल मुतल्लिव इब्ने हाशिम की सतान थे, हज़रत अली के सहायको को मिलाकर वनी उमय्या के विरोधी दलो के नेता वन गये। उन्होने डेड-सी के दक्षिण में स्थित हुमेयमह नामक स्थान को जो एक प्रकार से अलग-थलग भी था और दूसरी ओर से विभिन्न कारवानो के मार्ग पर पडता था, अपने प्रचार का केन्द्र वना लिया। ईरानी, जो अपनी सभ्यता के स्वर्णयुग को न भुला सके थे, मुसलमान हो जाने पर भी अरव वदवियो को घृणा की दृष्टि से देखते थे। शीओ पर जो अत्याचार उमय्या काल में हुए उनके कारण ईरानवालो की सहानुभूति उनसे हो गयी थी। इस प्रकार शीओ, खुरासानियो तथा अब्वासियो ने हजरत मुहम्मद के चाचा अब्वास की सतान के एक व्यक्ति, अवुल अब्वास अस्सफ्फाह् की पताका के नीचे इस्लाम के प्राचीन शुद्ध रूप के पुनरुत्थान का दावा करके अपना सगठन अलग वना लिया। अवू मुस्लिम खुरासानी नामक एक ईरानी ने इस आन्दोलन का वडी योग्यता से नेतृत्व किया और ९ जून ७४७ ई० को इस आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। सन् ७५०ई० में उमय्या राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करके अवुल अब्वास अस्सफ्फाह् ने अब्वासी राज्य की स्थापना कर दी।

वनी अब्वास का राज्य[1]

क्योकि इस्लाम के पुनरुत्थान की आड़ में इस आन्दोलन का सचालन किया गया था, अत अव अब्वासी खलीफा हजरत मुहम्मद के वुरदे (चुगे) को पहनकर शुक्रवार

१. पृ० ११, १२, १७ पर जिन ग्रंथों की चर्चा की गयी है उनके अतिरिक्त निम्नांकित ग्रंथ देखिए, कुदामह्, "किताव अल-खराज", "अल, मिलल वन्नहल", अल इदरीसी, "सिफ़त अल मगरिव," "फिहरिस्त," अल-वेरूनी, "तहकीक मा ले अल-हिन्द", दमीरी "हयात अल हैवान"; हाज्जी खलीफा तथा इब्ने खल्लिकान के ग्रंथ, इखवान, "रसाएल", ग़ज्जाली "अह्या अल-उलूम", अल-नववख्ती, "फिरक अल-शीअह्" तथा अंग्रेजी में, Le Strange, "*Eastern Caliphate*", William Willcocks, "*Irrigation of Mesopotamia*", E.G Browne, "*A Literary History of Persia*", "*Arabian Medicine*", W.A. Green-

की सामूहिक नमाजो में उपस्थित होने लगे और शरीअत के विद्वानो का मजमा अपने चारो ओर एकत्र रखने लगे। इन लोगो ने ऐसी हदीसें गढनी प्रारम्भ कर दी जिनके आधार पर अब्बासी राज्य को एक पवित्र धार्मिक रूप देकर अत्यन्त दृढ बना दिया गया। यद्यपि इस्लामी राज्य के बहुत बडे भाग पर अब्बासियो का अधिकार स्थापित हो गया, किन्तु स्पेन, उत्तरी अफ्रीका, उमान, सिन्ध, यहाँ तक कि खुरासान में भी उनकी कुछ न चल पायी। मिस्र ने तो केवल नाम मात्र को उनकी अधीनता स्वीकार की। शाम में सर्वदा झगडे होते ही रहे। अब्बासी तथा हज़रत अली के समर्थक भी सगठित न रह सके। उनमें से जो लोग यह समझ रहे थे कि अब्बासी लोग उनके लिए युद्ध

hill, "*A Treatise On Small-Pox and Measles*" (Translation); O. Cameron Gruner, "*A Treatise on the Canon of Medicine of Avicenna*", Chaucer, "*A Treatise on the Astrolobe*" Daoud S. Kasir, "*The Algebra of Omar Khayyam*", "*Introduction to the History of Science*", Alfred Guillaume, "*The Traditions of Islam*", Khalil A Totah, "*The Contribution of the Arabs to Education*", Reubern Levy, "*A Baghdad Chronicle*", W. Barthold, "*Turkestan down to the Mongol Invasion*", Thomas W. Arnold and Adolf Grohmann, "*The Islamic Book*", B Moritz, "*Arabic Paldeography*", "Farmer, "*Arabian Music*", Thomas Arnold and Alfred Guillaume, "*The Legacy of Islam*", Reynold A. Nicholson, "*The Mystics of Islam*", "*Kashf-al-Mahjub*" of Hujwiri, Margaret Smith, "*Rabia the Mystic and Her Fellow Saints in Islam*", "*Al Ghazzali*", W. Ivanow, "*A Guide to Ismaili Literature*", Henry Yule, "*The book of Senor Marco Polo, the Venetian*", relevant topics in, "*Encyclopaedia of Islam*", A. S. Tritton, "*The Caliphs and their Non-Muslim Subjects*", S. Khuda Bakhsh, "*A History of Islamic People*", "*The Orient under the Caliphs*", "*Islamic Civilization*", Vols I, II, Margaret Graham Weir, "*The Arab Kingdom and its fall* by J. Wellhausen".

कर रहे हैं, उन्हें शीघ्र ही निराश होना पडा। इस प्रकार पूरी इस्लामी आबादी एक खलीफा के अधीन न रह सकी और मावरदी इत्यादि इस्लामी राजनीति के विद्वानों को इन घटनाओ की दृष्टि में खिलाफत के वडे विचित्र सिद्धान्त वनाने पडे। इब्ने खलदून ने सभ्यता के विकास की पृष्ठ-भूमि के सिलसिले में इन नियमो पर प्रकाश डाला है।

सपफाह ने अपने राज्य को दृढ रूप से स्थापित करने के लिए कूफा तथा वसरा दोनों को त्याग कर फुरात नदी के बायें तट पर तथा इराक के उत्तर में स्थित अम्बर नामक स्थान पर हाशिमिया नगर वसाया। वह अधिक दिन जीवित न रह सका और ७५४ ई० में उसका देहान्त हो गया। उसका भाई अबू जाफर मसूर (७५५–७७५ ई०) उसके स्थान पर खलीफा हुआ। उसने समस्त विरोधी दलो एव अन्य राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलनो को बुरी तरह कुचल दिया और ७६२ ई० में अलिफ लैला के प्रसिद्ध नगर वगदाद का निर्माण करवाया। वगदाद, जिसका नाम मसूर ने दारुस्स-लाम रखा था, दजला (टिगरिस) नदी के पश्चिमी तट पर, जहाँ इससे पूर्व कई वड़ी-वडी राजधानियाँ वनकर मिट चुकी थी, वसाया गया। इसके निर्माण में ४८,८३,००० दिरहम व्यय हुए और लगभग एक लाख मेमार तथा कारीगर चार वर्ष तक इसका निर्माण करते रहे।

उसके राज्यकाल में प्रधान मन्त्री का पद खालिद इब्ने वरमक को, जो वरमक वजीरो के प्रसिद्ध वश का सस्थापक था, प्राप्त हुआ। उसका पिता बरमक वल्ख के बौद्ध-विहार का एक प्रभावशाली नेता था। मसूर के उत्तराधिकारी महदी (७७५-७८५ ई०) ने अपने पुत्र हारून की शिक्षा-दीक्षा खालिद वरमकी के पुत्र यहया को सौंप दी थी। हारून उसे पिता कहता था। जब हारून खलीफा हुआ तो उसने यहया को अपना प्रधान मत्री वनाकर उसे असीमित अधिकार सौंप दिये। ८०५ ई० में यहया की मृत्यु हो गयी और उसके पुत्र फजल तथा जाफ़र ७८६–८०३ ई० तक वडी शान से शासन-प्रवन्ध करते रहे। वगदाद के उत्तर में इनकें महल दान-पुण्य एव कलाकारो तथा साहित्यकारो के आश्रय के केन्द्र वन गये। उनकी धन-सम्पत्ति की विशालता एव उदारता की कहानियो को अरवी तथा फारसी साहित्य ने अमर वना दिया है।

अब्बासी वश को हारूनुर्रशीद (७८६–८०९ ई०) तथा मामूनुर्रशीद (८१३–८३३ ई०) के राज्यकाल में विशेष उन्नति प्राप्त हुई। कहा जाता है कि अब्बासी खलीफाओं का राज्य वास्तव में मसूर के समय से प्रारम्भ हुआ, मामून के राज्यकाल में उन्नति के शिखर पर पहुँचा और मोतज़िद (८९२–९०२ ई०) के राज्यकाल में

पतन के गर्त में पहुँच गया, यहाँ तक कि १२५८ ई० में मगोलो ने उसे हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

हारून की उदारता एव दानशीलता के कारण शीघ्र ही राजधानी में कवियो, गायको, नर्तकियो तथा अन्य कलाकारो का एक बहुत बडा समूह एकत्र हो गया। हारून के मित्र अबूनुवास नामक कवि ने अपनी रचनाओ द्वारा उसके दरबार की शान व शौकत को अमर बना दिया। अब्बासी खलीफाओ के समान उनके वजीर तथा बेगमें भी साहित्य एवं सस्कृति की उन्नति करने का प्रयत्न किया करती थी। हारून की पत्नी जुबैदह ने अनेक नये-नये फैशन निकाले। खलीफा महदी (७७५–७८५ ई०) की पुत्री तथा हारून की सौतेली बहिन उलय्यह भी इस मामले में किसी से पीछे न थी। शादी-व्याह के अवसरों पर तो व्यय की कोई सीमा ही न रहती थी। खलीफा मामून के विवाह में, जो उसके वजीर हसन इब्ने सहल की १८ वर्षीय पुत्री बूरान से हुआ, इतना अधिक धन व्यय किया गया कि उसकी कहानियो ने अरबी साहित्य की रोचकता में चार चाँद लगा दिये। ससार के विभिन्न भागो से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये थे और दूर-दूर से विचित्र एव अद्भुत वस्तुएँ राजधानी में पहुँचने लगी थी। अन्य व्यवसायवालो की भी उन्नति होना स्वाभाविक ही था।

खलीफा महदी के जमाने से जो बौद्धिक जागृति प्रारम्भ हुई वह हारून तथा मामून के समय में उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी। सस्कृत, ईरानी, शामी तथा यूनानी ग्रन्थो के अनुवाद के कारण अरबी भाषा समृद्ध हो गयी। ७७१ ई० में ही एक भारतीय यात्री ने बगदाद में सिद्धात (सिन्द हिन्द) नामक ज्योतिष के ग्रन्थ को प्रचलित करा दिया। मसूर के आदेशानुसार मुहम्मद बिन इबराहीम अल फज़ारी ने ७९६–८०६ ई० के मध्य में इसका अरबी भाषान्तर तैयार किया। उसी यात्री द्वारा गणित के एक ग्रन्थ को भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई और 'सख्या' का ज्ञान, जिसे यूरोपवाले अरबी, और अरबवाले हिन्दी कहते हैं, इस्लामी ससार में प्रचलित हो गया। कुछ समय-उपरान्त अरब की गणित विद्या में दशमलव प्रणाली भी प्रचलित हो गयी। यह भी भारत की ही देन थी। ईरानियो ने पचतत्र (कलीला व दिमना) नामक राजनीतिक कहानियो के ग्रन्थ को, जो नोशीरवाँ के युग में ईरान पहुँचा था, अरबी में प्रचलित करा दिया। अल-अगानी, अल-इक्द, अल-फ़रीद तथा तुरतूशी के "सिराजुल-मुलूक" में इन कहानियो के हवाले भरे पड़े हैं।

यूनानी ग्रन्थो के प्रारम्भिक अनुवादको में यह्या इब्न-अल-बतरीक (७९६ ई० अथवा ८०६ ई० के लगभग) हुआ है, किन्तु अनुवादको का नेता, अथवा अरबी के शब्दो

में "शेख," हुनियन इब्ने इसहाक (८०९–७३ ई०) था। अरस्तू के कई ग्रन्थो के अनुवाद उसी ने किये। साबित इब्ने कुरा (८३६–९०१) ने दूसरे क्षेत्र में अधिक योगदान किया। उसने हुनियन के अनेक ग्रन्थो में संशोधन करके कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के अनुवाद किये।

कुछ अनुवादको ने कई मौलिक ग्रन्थो की भी रचनाएँ की। ७५० से ८५० ई० तक के लगभग १०० वर्ष के अनुवादो के युग के उपरान्त मौलिक ग्रन्थो की रचना का युग प्रारम्भ हुआ। इस क्षेत्र में सबसे अधिक उन्नति चिकित्सा शास्त्र में हुई। अबू बक्र मुहम्मद इब्ने जकरिया राजी (८६५–९२५ ई०) जिसका जन्मस्थान तेहरान के समीप रैय था, चिकित्सा शास्त्र के लेखको में सर्वोच्च माना जाता है। उसके ग्रन्थो की सख्या भी बहुत अधिक है और वे मौलिक भी कहे जाते हैं। शल्य-चिकित्सा में भी उसने कुछ आविष्कार किये। फेहरिस्त नामक ग्रन्थ के अनुसार उसने ११३ बडे तथा २८ छोटे ग्रन्थों की रचना की। "किताबुल असरार" अथवा "रहस्यो की पुस्तक" नामक उसकी रचना को बडी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उसने चेचक के उपचार के विषय में "अल-जुदरी वलहसबा" नामक ग्रन्थ की रचना की। "हावी" नामक उसका ग्रन्थ तो एक प्रकार से चिकित्सा शास्त्र का कोश है। राजी के बाद इब्ने सीना (९८०–१०३७ ई०) जिसे अरब लोग शैखुर्रईस कहते है, चिकित्सा शास्त्र के अतिरिक्त दर्शन, भाषा एव काव्य के सम्बन्ध में भी कई ग्रन्थो का रचयिता हुआ है। उसके ग्रन्थो में "किताब-अल-शिफ़ा" जो एक प्रकार से दर्शन शास्त्र का कोश है तथा "कानून फी-अल-तिब" जिसमें यूनानी तथा अरबी चिकित्सा शास्त्र के सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला गया है, बडे प्रसिद्ध हैं।

दर्शन शास्त्र में अरबो ने कोई मौलिक योगदान तो नही किया, किन्तु यूनानी दर्शन शास्त्र को अपने ढग से इस्लामी रग मे रगकर अरबी भाषा में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उनके दर्शन में, दर्शन तथा धर्म दोनो की सीमाएँ एक दूसरे से मिलती-जुलती देख पडती है। धीरे-धीरे अरबो में दार्शनिको के दो समूह बन गये, जो फिलासफह अथवा हुकमा एव मुतकल्लेमून अथवा अहल-अल-कलाम के नाम से प्रसिद्ध हुए। मुतकल्लेमून ने अपने तर्क के लिए धर्म का सहारा लिया, किन्तु दार्शनिक अथवा फिलासफह या हुकमा वे लोग थे जो धर्म की चिन्ता किये बिना दार्शनिक सिद्धान्तो पर अपने विचार आधारित करते थे। अबू यूसुफ याकूब इब्ने इसहाक अलकिन्दी ९वीं शती ई० में कूफे में पैदा हुआ और बगदाद में उसे उन्नति प्राप्त हुई। अरब-वशीय होने के कारण वह अरबो का दार्शनिक कहा जाता है। नव-अफ़लातून-वादी सिद्धान्तो के आधार

पर उसने अफलातून तथा अरस्तू के विचारो को अपने दर्शन में मिलाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। वह नव-पायथागोरस-वादी गणित को सभी विज्ञानो का आधार मानता था। उसने इस्लामी सिद्धान्तो का यूनानी दर्शन के साथ समन्वय करने का वड़ा प्रयत्न किया। उसकी यह कोशिश 'अल-फाराव' ने भी जारी रखी। मुहम्मद इब्ने तरखान अबू नसर अल-फारावी मावराउन्नहर में पैदा हुआ। उसने अफलातून, अरस्तू तथा सूफियो के सिद्धान्तो को मिलाकर अपने दर्शन का आधार वनाया। इब्ने सीना ने भी, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, दर्शन शास्त्र में काफी योगदान किया। ९७० ई० के समीप वसरा में कुछ ऐसे दार्शनिको का समूह एकत्र हो गया जो पायथा-गोरस-वादी सिद्धान्तो की ओर आकृष्ट थे और इख्वानुस्सफा (निष्ठा पर आधारित विचारो के माननेवाले भाई) कहलाते थे। उन्होने अपने ग्रन्थो द्वारा वाद के लेखको एव दार्शनिको को वडा प्रभावित किया।

यद्यपि अरवो का ज्योतिप हिन्दुस्तानी, ईरानी तथा यूनानी सिद्धान्तो पर आधारित था और ९वी शती ई० के प्रारम्भ में उन लोगो ने वेधशालाएँ तैयार करानी प्रारम्भ कर दी थी, किन्तु मामून के समय में इस ज्ञान को विशेष उन्नति प्राप्त हुई। ज्योतिष के साथ-साथ भूगोल को भी अरवो के व्यापारिक जीवन के कारण अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। टालोमी के "अलमगेस्ट" के अनुवाद का प्रयत्न यहया इब्ने खालिद इब्ने वरमक के समय से ही प्रारम्भ हो गया था। इसके वाद कई अन्य विद्वानो ने इस ग्रन्थ के अरवी भाषान्तर तैयार किये, जिनमें हज्जाज इब्ने मतर (८२७–८२८ ई०), हुनयन इब्ने इस्हाक एव सावित इब्ने कुर्रा (९०१ ई०) के अनुवाद विशेप रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी बीच में अरववालो को भारत की प्रसिद्ध वेधशाला का, जो उज्जैन में थी, ज्ञान प्राप्त हो गया और उज्जैन नगर उनके ग्रन्थो में अरीन के नाम से स्थान पा गया। इब्ने खुराजवेह (लगभग ९१२ ई०), इस्तखारी इब्ने हौकल, मक-दिसी, इब्ने वाजेह अल-याकूवी तथा हसन इब्ने अहमद अल-हमदानी ९वी तथा १०वी शती ई० के विख्यात भूगोलवेत्ता हुए हैं। याकूत इब्ने अब्दुल्लाह अल-हमवी (११७९-१२२९ ई०) के "मोजमुल वुल्दान" को भूगोल का कोश समझा जाता है।

इतिहास की रचना में तो अब्बासी राज्यकाल उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया। कूफे के हिशाम अल कलवी (८१९ ई०) ने इस्लाम से पूर्वकाल के इतिहास पर विस्तार से प्रकाश डाला है, किन्तु प्रारम्भिक इतिहासकार केवल हज़रत मुहम्मद की जीवनी एव चरित्र अथवा "सीरते रसूल अल्लाह" विषयक ग्रन्थो की रचना करते थे। इब्ने इस्हाक (मृत्यु लगभग ७६७ ई०) ने सर्वप्रथम मुहम्मद साह के जीवन से सम्वद्ध-

एक वृहत् ग्रथ की रचना की, किन्तु वह ग्रन्थ अव प्राप्य नही है। इब्ने हिशाम ने, जिसकी मृत्यु ८३४ ई० में काहेरा में हुई, इब्ने इस्हाक के ग्रन्थ का सक्षिप्त सस्करण प्रस्तुत किया। हज़रत मुहम्मद की जीवनी के साथ-साथ उनके प्रारम्भिक युद्धो पर भी ग्रन्थ लिखे गये। मूसा इब्ने उकवह (७५८ ई०) तथा वाकेदी (८२३ ई०) ने, जो मदीने के निवासी थे, इस क्षेत्र में वड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इब्ने अब्दुल हकम (८७०–७१ ई०) ने जो मिस्र निवासी था, "फुतूह मिस्र व अखवारोहा" में मिस्र तथा उत्तरी अफ्रीका एव स्पेन की विजयो के विषय में एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिखा। अहमद इब्ने यहया अल वलाजुरी (८९२) ने "फुतूहल वुल्दान" एव "अन्सावुल अशराफ" नामक ग्रन्थ लिखकर ऐतिहासिक रचनाओ के द्वार खोल दिये।

प्रारम्भिक इतिहासकारो में मुहम्मद इब्ने-मुस्लिम अल-दीनावरी अथवा इब्ने कुतैवह (मृत्यु ८८९ ई० वगदाद) ने "कितावुल मआरिफ" नामक ग्रन्थ की रचना की। उसके समकालीन अवूहनीफा अहमद इब्ने दाऊद अल दीनावरी (८९५ ई०) ने "अल-अखवार अल-तिवाल" नामक ग्रन्थ की रचना की। उसी युग का एक महत्त्वपूर्ण भूगोलवेत्ता तथा इतिहासकार इब्ने वाजेह अल याकूवी था।

प्रमुख इतिहासकारो में अवू जाफर मुहम्मद इब्ने जरीर अल-तवरी (८३८–९२३ ई०) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह अपने वृहत् ग्रथ ("अख्वार अल-रूसुल वल-मुलूक" के लिए वडा प्रसिद्ध है। वाद के इतिहासकारो ने उसके लिखे इतिहास को ही अपनी रचनाओ का आधार वनाया है। उसने हज़रत आदम से लेकर अपने काल तक की विभिन्न तिथियो की अनेक मुख्य घटनाओ का उल्लेख करते हुए ९१५ ई० तक का इतिहास लिखा है। तवरी को अपने कार्य में इतनी रुचि थी कि वह ४० वर्ष तक ४० पृष्ठ प्रति दिन के हिसाव से लिखता रहा। सामग्री की खोज में उसने ईरान, इराक, शाम तथा मिस्र की यात्राएँ की। इसी सिद्धान्त पर वाकेदी अपने ग्रन्थ की रचना कर चुका था और उसी का अनुसरण मिसकवये, इवनुल असीर, अवुल फिदा (१२७३–१३३१ ई०) तथा अलज़हवी (१२७४–१३४८ ई०) ने किया।

अवुल हसन अली अल-मसऊदी (मृत्यु ९५६ ई०) ने, जो अरवो का हेरोडोटस कहलाता है, अपने इतिहास को विभिन्न विषयो के क्रमानुसार विभाजित किया। उसने प्रत्येक वर्ष का अलग-अलग इतिहास लिखने के स्थान पर विभिन्न शाही वंशो, अमीरों तथा अन्य लोगो का इतिहास लिखा। इब्ने खलदून तथा वाद के अन्य इतिहासकारो ने उसी का अनुसरण किया। उसके वहुत-से ग्रन्थ नष्ट हो गये किन्तु "मुरुजुज्ज़हव

व मादन अल जवाहर" नामक उसका ग्रन्थ, जिसमें ९४७ ई० तक का इतिहास दिया हुआ है, ऐतिहासिक एव भौगोलिक ज्ञान का कोश है।

मुसलमानो की धार्मिक आवश्यकताओ के अनुसार हदीस के ज्ञान की उन्नति होना स्वाभाविक ही था। कुरान के पश्चात्, सुन्नत अथवा मुहम्मद साहब के कारनामे तथा वाणी इस्लामी विधान के मूल आधार है। वास्तव में हदीस हज़रत मुहम्मद के ही कारनामो एव वाणी का सग्रह है, किन्तु इसमें मुहम्मद साहब के सहायको, साथियो, मित्रो एव सतान का भी उल्लेख आ जाता है। हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के ढाई सौ वर्ष के भीतर हदीसो का एक बहुत बड़ा सग्रह एकत्र हो गया। प्रत्येक राजनीतिक तथा धार्मिक कठिनाई के समय वास्तविक अथवा गढी हुई हदीसो से काम लिया जाता था। प्रामाणिक हदीसो के लिए दो चीज़ें परमावश्यक है—"इस्नाद" अथवा जिन लोगो द्वारा वह हदीस सुनी गयी उनका क्रम तथा "मत्न", अथवा हदीस के शब्द। क्रम इस प्रकार होता है—"क" ने मुझे यह हदीस बतायी जिसे उसने "ख" से सुना और "ख" ने "ग" से और "ग" ने "घ" से। इस प्रकार के क्रम में हदीस सुनानेवालो की प्रसिद्धि एव चरित्र पर बड़ा ज़ोर दिया जाता था। इसी आधार पर हदीसो का विभाजन तीन भागो में होता था—'सहीह' (प्रामाणिक), 'हसन' (ठीक) तथा 'ज़ईफ' (कमज़ोर)। हदीस के ग्रथो में मुहम्मद इब्ने इस्माईल अल-बुखारी (८१०-७० ई०) के ग्रन्थ को बडा सम्मान प्राप्त है। मुस्लिम इब्ने अल हज्जाज (८७५ ई०) ने भी हदीसो को सकलित करके एक बृहत् ग्रन्थ तैयार किया और बुखारी के ग्रन्थ के समान अपने ग्रन्थ का नाम "सहीह" रखा। हदीस के इन दो ग्रन्थो के अतिरिक्त बसरे के अबू दाऊद (८८८ ई०) की "सुनन", तिरमिज़ी (८९२ ई०) के "जामे", इब्ने माजा क़ज़वीनी (८८६ ई०) के "सुनन" तथा नसाई (मृत्यु ९१५ ई०) के "सुनन" को भी महत्त्व प्राप्त है।

हदीस के साथ-साथ फिकह का ज्ञान भी अरबो का ही आविष्कार है और रोमनो के बाद मध्ययुगीन अरब ही इस क्षेत्र में सबसे आगे दृष्टिगत होते हैं। फिकह, साधारणत कुरान तथा सुन्नत एव मुहम्मद साहब की हदीसो पर आधारित है। इनके अतिरिक्त 'कयास' (सादृश्य, व्यापक से व्याप्य का तर्क) तथा 'इजमा' (मुसलमानो की सर्वसम्मति) को भी फिकह में विशेष स्थान प्राप्त है। इन्ही के आधार पर इस्लाम के धर्मविधान अथवा शरीअत का निर्माण हुआ। फिकह के क्षेत्र में चार विद्वानो ने विशेष रूप से योगदान किया। नोमान इब्ने साबित अबू हनीफा, जिन्होंने अपना अधिकाश जीवन कूफे तथा बगदाद में व्यतीत किया और ७६७ ई० में मृत्यु को प्राप्त हुए,

इस्लाम के धर्म-विधान के निर्माताओ में सर्वश्रेष्ठ माने जाते है। उनके एक शिष्य अबू यूसुफ (७९८ ई०) ने उनकी शिक्षाओ एवं उनके सिद्धांतो को "कितावुल खराज" नामक ग्रन्थ में सकलित किया। समस्त सुन्नी ससार का लगभग आधा भाग उन्ही का अनुयायी है। आटोमन राज्य, हिन्दुस्तान तथा मध्य एशिया के सुन्नी मुसलमान उन्ही की व्याख्या के समर्थक हैं। मालिक इब्ने अनस (७१५–७९५ ई०) की "मुवत्ता," मालिकी धर्मविधान का प्राचीनतम ग्रन्थ है। मिस्र के नीचे के भाग को छोडकर पूरे उत्तरी अफ्रीका के सुन्नी इसी विधान को मानते हैं। मुहम्मद इब्ने इदरीस अल-शाफई द्वारा इस्लाम के विधान की व्याख्या को जो लोग स्वीकार करते हैं, वे शाफई कहलाते हैं। शाफई का जन्म ७६७ ई० में गज्जह में हुआ और वे ८२० ई० में काहेरा में मृत्यु को प्राप्त हुए। मिस्र के नीचे के भाग, पूर्वी अफ्रीका, फिलिस्तीन तथा पश्चिमी और दक्षिणी अरववाले और हिन्दुस्तान के समुद्र तट के भाग के कुछ सुन्नी मुसलमान उन्ही के धर्म-विधान के अनुयायी हैं। अहमद इब्ने हम्वल (मृत्यु ८५५ ई०) शाफई के शिष्य थे। अपने कट्टर सिद्धान्तो के कारण उन्हे अपने जीवन-काल में वडे-वडे कष्ट भोगने पडे। उन्होने मोतज़ेला विचारको का घोर विरोध किया और खलीफा मामून ने, जो मोतजेला का समर्थक था, उन्हें मृत्युदड भी दिया, किन्तु वगदादवालें इनका सर्वदा अत्यधिक आदर-सम्मान करते रहे। इनके अनुयायियो की सख्या वहुत कम है और केवल वहावी ही इनके धर्म-विधान को मानते हैं। इन चार विद्वानो के अतिरिक्त सुन्नियो के मतानुसार इजतेहाद (शरीअत अथवा सुन्नत की व्याख्या) के द्वार वन्द हो गये और अव किसी को इस दिशा में कोई मौलिक कार्य करने का अधिकार नहीं। केवल उन्ही विद्वानो के सिद्धान्तो पर टीका-टिप्पणी की जा सकती है।

अव्वासी राज्यकाल कलाकौशल की उन्नति के लिए भी वड़ा प्रसिद्ध है। यद्यपि इस समय जो भवन वर्तमान हैं उनमें वहुत थोड़े-से ही प्रारम्भिक अव्वासी खलीफाओ के वताये जाते हैं, किन्तु कला के अन्य क्षेत्रो के, विशेषत. सुलेख और चित्रकला की उन्नति के तत्कालीन वहुत-से उदाहरण मिलते हैं। सगीत की जो उन्नति उमय्या राज्यकाल में हुई वह अव्वासी दौर में भी जारी रही। हारूनुर्रशीद के दरवार में सगीतज्ञो को विशेष प्रोत्साहन मिलता था। खलीफा मामून तथा खलीफा मुतवक्किल (८४७–८६१ ई०) का मुसाहिव इसहाक इब्ने इवराहीम मौसवी (७६७–८५० ई०) संगीत का वडा माहिर समझा जाता था। नृत्य के क्षेत्र में भी वगदाद का दरवार दमिश्क के दरवार से किसी प्रकार पीछे न था। अव्वासी राज्यकाल में सगीत के कई ग्रन्थो के अनुवाद हुए और कई मौलिक ग्रन्थो की रचना भी की गयी।

धर्म के क्षेत्र में नये विचारो का प्रचार हुआ और वहुत-से नये धार्मिक आन्दोलन एव विचारधाराएँ प्रचलित हो गयी। मोतज़ेला आन्दोलन, जो उमय्या खलीफाओ के समय में ही प्रारम्भ हो चुका था, अव्वासी खलीफा मामून के समय में वडी उन्नति कर गया। खलीफा की दर्शन-शास्त्रीय रुचि ने इस आन्दोलन को राज्य के धर्म का रूप दे दिया। मामून ने ८२७ ई० में कुरान के "खल्क" होने के विषय में घोषणा करा दी। वास्तव में यह वडा ही साहसपूर्ण कदम था। कट्टर धर्मनिष्ठ लोग कुरान को ईश्वर की वाणी कहते हैं और उनका विचार है कि जिन शब्दो में ईश्वर का आदेश हुआ, वे मूल रूप में कुरान में सुरक्षित हैं। मोतज़ेला इसका खडन करते हैं। "खल्क" का सिद्धात यह है कि "शब्द मनुष्य के वनाये हुए हैं।" मामून ने अपने समस्त अधिकारियो को इसी सिद्धान्त को मानने पर विवश किया। अहमद इब्ने हम्वल को प्राचीन कट्टर विचारो से विचलित न होने के कारण मृत्युदण्ड भोगना पड़ा। मामून के दो उत्तराधिकारियो के राज्यकाल में मोतज़ेला सिद्धान्तो का ही ज़ोर रहा, किन्तु ८४८ ई० में मुतवक्किल ने इस नयी विचारधारा का दमन करा दिया। इस समय के मोतज़ेला विद्वानो में नज्ज़ाम (८४५ ई०) वड़ा प्रसिद्ध हुआ है।

मोतज़ेला विचारधारा का विरोध करनेवालो में प्रमुख वगदाद का अवुल हसन अली अल अशअरी (९३५–३६ ई०) था। वह भी प्रारम्भ में मोतज़ेला विद्वानो का शिष्य रह चुका था। उसने "कलाम" के ज्ञान का प्रचार किया। अशअरी के सिद्धान्तो का अधिक प्रचार अवू हामिद अल गज़्ज़ाली (जन्म १०५८ ई०, मृत्यु ११११ ई०) द्वारा हुआ। उन्होंने इस्लाम के शुद्ध नियमो के पालन पर विशेष ज़ोर दिया। वाद में उनके ऊपर सूफी मत का अधिक प्रभाव पड़ा और वे इस्लाम के कट्टर अनुयायियो के एक प्रकार के नेता हो गये।

तसव्वुफ अथवा सूफी मत की भी अधिक उन्नति इसी युग में हुई। यह लोग भी अपने सिद्धातो को कुरान तथा हदीस पर आधारित करते थे। प्रारम्भ में केवल दरवेशो अथवा सन्तो का समूह ही इसमें सम्मिलित रहा, किन्तु धीरे-धीरे नव-अफलातून-वादी, ज्ञेयवादी तथा वौद्ध आदि मतो की भी गहरी छाप उनके ऊपर पड़ी और उनमें से अधिकाश सर्वेश्वरवाद सम्वन्धी दर्शन को मानने लगे।

शीआ

उमय्या राज्यकाल के समान अव्वासी राज्यकाल में भी शीओं का जीवन कष्ट में ही व्यतीत हुआ। यद्यपि अव्वासी राज्य की स्थापना में शीओं का भी वड़ा हाथ था

किन्तु अब्बासियो ने इनके दमन में कोई कसर न उठा रखी थी। खलीफा मुतवक्किल तो अपने कट्टरपन में उमय्या खलीफाओ से भी बढ गया। ८५० ई० में उसने नजफ में हजरत अली तथा करबला में इमाम हुसेन के रौजो को नष्ट करा दिया। शीआ भी अपनी स्थिति से भली-भाँति परिचित थे और दमनचक्र के बावजूद जब कभी उन्हें अवसर मिल जाता वे खलीफाओ को हानि पहुँचाने से न चूकते। उन्होने अपनी बचत के लिए "तकीयह" अथवा अपने वास्तविक विचारों को गुप्त रखने का सिद्धान्त निकाल लिया। शीओ का दावा था कि हज़रत अली केवल हज़रत मुहम्मद के राज्य के ही उत्तराधिकारी नही हैं अपितु मुहम्मद साहब के धर्म के रहस्यो से भी वे ही पूर्ण रूप से अवगत हैं और अन्य लोग उन्हे नही जानते। शीआ इस बात का प्रचार करते थे कि इमाम केवल ईश्वर की ओर से ही नियुक्त होता है और उसका हज़रत अली की सतान होना परमावश्यक है। १२ इमामो के माननेवाले "असना अशअरी" कहलाये, किन्तु शीओ के कुछ समूह ऐसे भी हुए जो इनसे कम इमामो को भी मानते थे और इस आधार पर उनके बहुत से गिरोह हो गये हैं।

छठे इमाम जाफर सादिक (मृत्यु ७६५ ई०) के पुत्र इस्माईल से जिनका उनके पिता के ही जीवनकाल में निधन हो गया था (७६० ई०), एक अन्य शाखा निकली जो इस्माईली कहलाती है। उन्होने अपने विचारो का बड़े रहस्यमय ढग से प्रचार किया और राजनीति के क्षेत्र में वे सुन्नियो के कड़े विरोधी सिद्ध हुए। उन्होने बहुत-से स्थानों पर अपने गुप्त केन्द्र बनवा लिये, जहाँ से वे भीतर ही भीतर अब्बासी खलीफाओं का तख्ता पलटने का प्रयत्न किया करते थे। बड़े-से-बड़े सुन्नी आलिम तथा हाकिम की हत्या करा देना उनके बायें हाथ का खेल था। इस प्रकार के इस्माईली बातिनी (गुप्त रहनेवाले) कहलाते थे। उनका विचार था कि कुरान के अर्थ को उसके रहस्य का पता लगाकर ही समझा जा सकता है। कुरान के शब्दो के अर्थ का कोई अधिक महत्त्व नही। महत्त्व केवल उस रहस्यमय व्याख्या का है जो वे किया करते थे। इस्माईली सिद्धान्तो का सबसे अधिक प्रचार अब्दुल्लाह द्वारा सर्वप्रथम बसरा में, तदुपरान्त उत्तरी शाम स्थित सलामिया नामक स्थान से हुआ। वह लोगो को महदी[1] के प्रकट होने के विषय में आश्वासन दिलाया करता था। उसकी मृत्यु ८७४ ई० के लगभग हुई किन्तु इससे पूर्व ही हमदान क़रमत नामक एक इराकी किसान उसका शिष्य बन गया, जिसने बड़े उत्साह से अब्दुल्लाह के सिद्धातो का प्रचार किया और उसके माननेवाले क़रामती

१. महदी के विषय में इब्ने खलदून ने इस ग्रंथ में विस्तार से लिखा है।

कहलाने लगे। ८९० ई० के लगभग उसने कूफे के समीप अपने प्रचार का एक केन्द्र वना लिया। नवती किसानों तया अरवो की वहुत वड़ी सख्या उसके सिद्धातो को मानने लगी। वसरे में ज़ज (नीग्रो) लोगो ने ८६८ ई० तथा ८८३ ई० के मध्य खलीफाओ के विरुद्ध जो सघर्ष प्रारम्भ किया उसमें उसने उनका साथ देकर खलीफाओं को वहुत तग किया। ८९९ ई० में करमत के एक प्रचारक सईद अल हसन अल जन्नावी ने फारस की खाड़ी के पश्चिमी तट पर एक अन्य राज्य स्थापित कर लिया, जिसकी राजधानी अल-आहसा (अल-हुफूफ) निश्चित हुई। शीघ्र ही इस राजधानी ने वगदाद के राज्य की नीव हिला दी। असहा से इस्माईलियो के विभिन्न समूह अब्वासी राज्य के आस-पास के स्थानो पर आक्रमण करने लगे। अल जन्नावी ९०३ ई० के लगभग यमामह को अपने अधिकार में करके उमान तक छापे मारने लगा। उसके पुत्र अवू-ताहिर सुलेमान ने इराक के नीचे के अधिकाश भाग नष्ट-भ्रष्ट करके ९३० ई० में मक्के पर अधिकार जमा लिया। १० वी तथा ११वी शती ई० में करमत एव अल जन्नावी के अनुयायी अपने केन्द्र सलामिया से निकलकर शाम तथा इराक पर छापे मारने लगे, यहाँ तक कि खुरासान और यमन तक भी सुरक्षित न रह सके।

इन्ही सिद्धान्तो को लेकर १२वीं शती ईसवी में हसन इब्ने सब्वाह (११२४ ई०) ने हशाशून (अयवा हशीश नामक एक प्रकार का नशा खिलानेवालो के समूह) का संगठन किया, जो अग्रेज़ी में 'असेसिन' कहलाते है। १०९० ई० में उसने कज़वीन के दक्षिण-पश्चिम में स्थित अल-अमूत नामक पर्वतीय किले को अपने अधिकार में कर लिया। वहाँ से वह अपने शिष्यो को, जो उसके धर्म के दाई (प्रचारक) कहलाते थे, अव्वासी राज्य के विभिन्न प्रातो में भेजने लगा। उनके सगठन के निम्न वर्ग में फिदाई होते थे जो अपने स्वामी के प्रत्येक आदेश का पालन करने के लिए सर्वदा कटिवद्ध रहते थे। १०९२ ई० में इन लोगों ने प्रसिद्ध सलजूक वज़ीर निज़ामुल मुल्क की हत्या कर दी। खलीफा तथा अन्य सुल्तानो ने इनके विनाश का वड़ा प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें सफलता न मिल सकी। अन्त में १२५६ ई० में हुलाकू ने इन्हें पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया।

पूर्व के राज्य तथा अव्वासी ख़लीफ़ाओं का पतन[1]

जहाँ एक ओर हारूनुर्रशीद एव मामूनुर्रशीद के राज्य का ऐश्वर्य तथा गौरव इतिहास के पाठको को आश्चर्य-चकित किये विना नही रहता, वहाँ दूसरी ओर उमय्या

१. पृ० २१ व २२ पर जिन ग्रंथो की चर्चा की गयी है उनके अतिरिक्त अंग्रेजी में देखिए

वंश के विशाल राज्य का क्षेत्र अब्बासी राज्य की स्थापना के समय से ही कम होने लगा था। उन्दुलुस, मगरिब और बाद में मिस्र अब्बासियो के हाथ से निकल गये। पूर्व में भी राजधानी से दूर के स्थानो को धीरे-धीरे उन्ही के ईरानी तथा तुर्क दासो ने उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर निकालना प्रारम्भ कर दिया।

ताहिरी वंश—सर्वप्रथम जिस व्यक्ति ने बगदाद के अधिकार-क्षेत्र से पृथक् होकर स्वतत्र-जैसा राज्य स्थापित किया, वह खुरासान का एक ईरानी दास ताहिर इब्न अल-हुसेन, मामूनुर्रशीद का सेनापति था, जिसे ८२० ई० में मामून ने बगदाद के पूर्व के अपने समस्त राज्य का हाकिम नियुक्त कर दिया था। उसने अपनी राजधानी मर्व में बनायी और अपनी मृत्यु के पूर्व ही खलीफा का नाम भी खुत्बो से पृथक् करा दिया। ताहिर के उत्तराधिकारियो ने अपना राज्य हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त तक बढ़ा लिया और अपनी राजधानी नीशापुर में बनायी। वे ८७२ ई० तक राज्य करते रहे।

सफ्फारी वंश—८७२ ई० में याकूब इब्न अल-लैस अल-सफ्फार (८६७–८७८ ई०) ने, जो एक साधारण वश का व्यक्ति था, अपनी वीरता से ताहिरी वश का अन्त कर दिया और यह वश ९०८ ई० तक राज्य करता रहा, किन्तु सामानियो ने इसके राज्य को नष्ट कर दिया।

सामानी वश—सामानी राज्य के सस्थापक का पूर्वज बल्ख का सामान नामक एक जरदुश्ती था। उसके एक पौत्र नस्र इब्न-अहमद (८७४–८९२ ई०) ने सामानी राज्य की स्थापना की, किन्तु उसकी उन्नति उसके भाई तथा उत्तराधिकारी इस्माईल (८९२–९०७ ई०) के द्वारा ही हुई। सामानियो के राज्यकाल में ही मावराउन्नहर (ट्रासाक्जियाना) पर पूर्ण रूप से अधिकार प्राप्त हुआ। उनकी राजधानी बुखारा और उनका प्रसिद्ध नगर समरकन्द, दोनो बगदाद का मुकाबला करने लगे।

गजनवी—अपने राज्य में सामानियो ने उत्तर से आनेवाले तुर्क खानाबदोशो को अत्यधिक आश्रय दिया। इस प्रकार तुर्कों का प्रभुत्व बढ़ता ही गया। ९६१ ई० में

Stanley Lane Poole, *"The Mohammadan Dynasties"*, M. Nazim, *"The Life and times of Sultan Mahmud of Ghazna"* Harold Bowen, *The Life and Times of Ali Ibn Isa the 'Good Vizier*, Stanley Lane Poole, *"Catalogue of Oriental Coins in the British Museum"* तथा फ़ारसी में, "राहत अल-सुदूर", जुवैनी, "तारीखे जहां कुशा" रशीदुद्दीन, फ़जलुल्लाह, "जामे-उत्तवारीख".

अलप्तगीन नामक एक तुर्क दास को सामानियो ने खुरासान का हाकिम नियुक्त कर दिया। उसने ९६२ ई० में गजनी पर अपना अधिकार जमा लिया और अपना एक पृथक् राज्य स्थापित कर लिया। उसके दास तथा जामाता सुवुक्तगीन (९७६–९९७ ई०) ने अपना राज्य खुरासान तथा हिन्दुस्तान में पेशावर तक वढा लिया। ९९४ ई० में गजनवियो ने सामानियो के राज्य का आक्सस के दक्षिण का पूरा भाग अपने अधिकार में कर लिया। सुवुक्तगीन का पुत्र महमूद (९९९ ई०–१०३० ई०) अपने हिन्दुस्तान के आक्रमणो के लिए प्रसिद्ध है। तुर्कों के इस्लामी राजनीति में प्रविष्ट हो जाने के उपरान्त ईरानियो के प्रभुत्व का अन्त हो गया, परन्तु इनके राज्य का सगठन भी सामानियो अथवा सफ्फारियो की भाँति सैनिक शक्ति पर आधारित था। सैनिक शक्ति के ह्रास के साथ-साथ वडे राज्यो का पतन भी होने लगता है। महमूद की मृत्यु के उपरान्त उसका राज्य भी टुकडे-टुकड़े हो गया। उत्तर तथा पश्चिम में तुर्किस्तान के खानो ने तथा ईरान के सलजूको ने गजनवियो का राज्य छीन लिया। ११८६ ई० में आधुनिक अफगानिस्तान के गोरियो ने इनके राज्य को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। इनकी शक्ति का मुख्य आधार इनका सैन्य-सगठन था और इनकी राजनीति प्राचीन ईरान की राजनीति पर आधारित थी। धार्मिक विचारो में ईरान के प्राचीन धर्म एव वौद्ध मत से भी ये वड़े प्रभावित हुए थे और सवको मिला-जुलाकर इस्लामी चोला पहना दिया था।

वुवय्या—इधर तो अव्वासियो का पूर्वी राज्य विभिन्न ईरानी तथा तुर्क वंशो के अधिकार में चला गया, उधर वुवहयिद अथवा वुवय्या ईरानियो एव सलजूक तुर्कों ने अव्वासियो पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया कि इनका राज्य वगदाद में केवल नाम मात्र को रह गया।

८वें अव्वासी खलीफा अल मोतसिम (८३३–४२ ई०) ने अपने रक्षार्थ ४००० तुर्कों की एक सेना वनायी थी। यह सेना विशेप रूप से खुरासानियो को, जिनकी सहायता से अव्वासियो ने राज्य स्थापित किया था, वश में रखने के लिए नियुक्त की गयी थी, किन्तु अव्वासियो को शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि वे रक्षक नही अपितु उनके लिए भक्षक सिद्ध हो रहे हैं। उनके अत्याचार से वचने के लिए ८३६ ई० में खलीफा मोतसिम अपनी राजधानी वगदाद से टिगरिस तट पर ६० मील दूर स्थित सामर्रा नगर को ले गया। उसने इस नगर का नाम "सुर्रा मन रा" (धन्य हो वह जो उसे देखे) रखा। यहाँ मस्जिदो एव महलो का निर्माण कराया गया। सन् ८३६ से ८९२ ई० तक यह नगर अव्वासियो की राजधानी वना रहा।

दिसम्वर ८६१ ई० में खलीफा मुतवक्किल (८४७–८६१ ई०) की हत्या तुर्कों द्वारा उसके पुत्र ने करा दी। उसकी मृत्यु के उपरान्त तो खलीफा तुर्कों के हाथ की कठपुतली हो गये। अन्त पुर की स्त्रियो ने अपने पुत्रो एव आश्रितो के राज्य के लिए खुल्लम-खुल्ला उनसे मिलकर षड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया और लगभग २०० वर्ष तक अव्वासी खलीफाओ की राजधानी में यही खेल खेला जाता रहा।

दिसम्वर, ९४५ ई० में खलीफा अल मुस्तकफी (९४४–४६ ई०) के समय में अहमद विन वुवय्या ने, जो अपने-आपको ईरान के प्राचीन सासानी वश से सम्वन्धित वताता था, तुर्कों का प्रभुत्व समाप्त कर दिया और खलीफा अल-मुस्तकफी (९४४–९४६ ई०) ने उसे "अमीरुल उमरा" तथा "मुइज्जुद्दौला" की उपाधियाँ प्रदान की। इन लोगो ने शीराज को अपनी राजधानी वनाया और ९४५–१०५५ ई० तक ये खलीफाओ को कठपुतली वनाये रहे। ये लोग शीआ थे। अत. शीओ की प्रथाए दरवार में प्रचलित हो गयी। उनमें सवसे प्रसिद्ध अज़्दुद्दौला (९४९-९८३ ई०) हुआ, जिसने अपने राज्य का क्षेत्र वहुत वढा लिया और शाहशाह की उपाधि धारण कर ली। किन्तु १०५५ ई० में सलजूक तुर्को ने तुगरिल वेग के नेतृत्व में वगदाद में प्रविष्ट होकर वुवय्या वश का अन्त कर दिया।

सलजूक़ वंश—९५६ ई० के लगभग सलजूक तुर्को ने अपने तुर्कमान गुज़्ज़ कवीले की शक्ति वुखारा के आस-पास वढानी प्रारम्भ कर दी। सलजूक का एक पौत्र तुगरिल अपने भाई के साथ खुरासान तक धावे मारने लगा। १०३७ई० में दोनो ने मर्व तथा नीशापुर को गजनवियो के हाथ से छीन लिया और वल्ख, जूरजान, तवरिस्तान, ख्वारिज़्म, हमदान, रैय एव इस्पहान तक अपना राज्य वढाते-वढाते १८ दिसम्बर १०५५ ई० को तुगरिल वेग अपने तुर्क सैनिको को लेकर वगदाद के द्वार पर पहुँच गया। वुवय्या का तुर्क सेनापति एवं वगदाद का रक्षक नगर छोड़कर भाग गया। खलीफा ने उसका भव्य स्वागत करके उसे "अस्सुल्तान" की उपाधि प्रदान की और समस्त अधिकार उसे सौप दिये। तुगरिल (१०३७–१०६३ ई०), उसके भतीजे तथा उत्तराधिकारी अल्प अरसलान, (१०६३ ई० १०७२ ई०) तथा अल्प अरसलान के पुत्र मलिक शाह (१०७२–१०९२ ई०) ने सलजूक राज्य की शक्ति वहुत वढ़ा दी। अल्प अरसलान के सैनिको ने वाइज़ंटाइन शक्ति के छक्के छुडा दिये और एशिया माइनर (लघु) को अपने अधिकार में कर लिया। १०८४ ई० में कूनियह (इकूनियम) सलजूको के उस क्षेत्र की राजधानी वन गया। अल्प अरसलान तथा मलिक शाह के राज्यकाल में उनके ईरानी वज़ीर निज़ामुल् मुल्क को वड़ा प्रभुत्व प्राप्त हो गया। इब्ने खलदून के

अनुसार मलिक शाह के २० वर्ष के राज्यकाल में समस्त अधिकार निज़ामुल् मुल्क को ही प्राप्त रहे। "सियासतनामा" नामक राजनीति का प्रसिद्ध ग्रन्थ उसी की रचना बताया जाता है। उमर ख़्ययाम (मृत्यु ११२३ ई०) निज़ामुल् मुल्क का ही आश्रित था। मलिक शाह के बाद सलजूक राज्य का भी पतन हो गया।

ख़लीफा अल-नासिर (११८०–१२२५ ई०) ने सलजूकों की शक्ति का अन्त करने के लिए ख़्वारिज़्म के बादशाह तकश (११७२–१२०० ई०) को, जो ख़्वारिज़्म-शाही तुर्क वश से था, सलजूकों के इराक अजम (मेडिया) पर आक्रमण करने के लिए उकसाया। सलजूको को परास्त करने के उपरान्त ख़्वारिज़्म-शाहियो ने उनका स्थान ले लिया और ख़लीफा की सारी आशाएँ समाप्त हो गयी। उसके पुत्र अलाउद्दीन मुहम्मद (१२००–१२२० ई०) ने ईरान का बहुत बड़ा भाग, बुख़ारा, समरकन्द तथा ग़ज़नी अपने अधिकार में कर लिये। वह बगदाद पर भी दाँत लगाने तथा हज़रत अली की किसी सतान को बादशाह बनाने की योजना बनाने लगा।

इसी बीच में मगोलों के कबीलों को संगठित करके चिंगीज़ ख़ां (लगभग ११५५–१२२७ ई०) ने बुख़ारा, समरकन्द, बल्ख़ तथा ख़्वारिज़्म को बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। १२५३ ई० में चिंगीज़ ख़ा का पौत्र हुलाकू मगोलिया से एक बहुत बड़ी सेना लेकर निकला। उसने ख़लीफा अल मुस्तासिम (१२४२–१२५८ ई०) को इस्माईलियो के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए लिखा, किन्तु उसे इसका कोई उत्तर न प्राप्त हुआ। १२५६ ई० में मगोलों ने इस्माईलियो के सभी प्रसिद्ध किले यहाँ तक कि अल अमूत तक पर अधिकार जमा लिया। १० फरवरी १२५८ ई० तक हुलाकू के सैनिको ने बगदाद को अपने अधिकार में कर लिया और २० फरवरी को ख़लीफा तथा उसके उच्च पदाधिकारियो की हत्या करके बगदाद की ईंट से ईंट बजाकर अब्बासी ख़लीफाओ के राज्य को समाप्त कर दिया। १२६० ई० में हुलाकू ने शाम पर चढाई कर दी, किन्तु वह मिस्र के ममलूक सेनापति कूतुज़ का मुकाबला न कर सका। इस प्रकार मंगोलो का तूफान पश्चिम की ओर न बढ पाया, किन्तु आमू दरिया से शाम के सीमान्त तक के प्रदेश मगोलो के अधीन हो गये। हुलाकू ने ईल ख़ान की उपाधि धारण कर ली, किन्तु उसके सातवें उत्तराधिकारी गाज़ान महमूद (१२९५–१३०४ ई०) ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। मगोल भी ईरानियो की सेवाओ की उपेक्षा न कर सके। जुवैनी वशवाले, विशेष रूप से "तारीख़े जहा कुशा" का लेखक अता मलिक जुवैनी (मृत्यु १२८३ ई०) तथा "जामे-उत्तवारीख़" का लेखक रशीदुद्दीन फज़लुल्लाह (मृत्यु १३१८ ई०) उनके दरबार के बहुत बड़े विद्वान् हुए हैं।

अफ़्रीका, मिस्र तथा स्पेन

अफ़्रीका—वनी अव्वास के राज्य की स्थापना के वाद भी स्पेन में वनी उमय्या के राज्य का अन्त न हो सका और न उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका के वरवरो ने अव्वासी राज्य की अधीनता स्वीकार की। वरवर यद्यपि मुसलमान हो गये थे, किन्तु उन्हें अरबो का प्रभुत्व पसन्द न था, अत विभिन्न धार्मिक एव राजनीतिक आन्दोलनो को जितनी सफलता उत्तरी अफ़्रीका में मिली उतनी किसी अन्य स्थान पर नही मिली।

इदरीसी वंश—७८५ ई० में जव इदरीस इब्ने अब्दुल्लाह अल हसन के एक प्रपौत्र को मदीने में हज़रत अली के सहायको के प्रचार में सफलता प्राप्त न हुई तो वह मगरिव (मोराको, उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका) भाग गया और वहाँ उसने इदरीसी वश के राज्य की स्थापना की जो ७८८ से ९७४ ई० तक चलता रहा। इनकी राजधानी फास अथवा फेज़ में थी और यह शीओ का प्रथम स्वतत्र राज्य हुआ। इनको वरवरो से, यद्यपि वे सुन्नी थे, विशेष सहायता मिली, किन्तु मिस्र के फ़ातेमी तथा स्पेन के उमय्या वश के वीच में होने के कारण इन्हें सर्वदा दोनों राज्यों से खतरा वना रहता था।

(१) इब्ने इज़ारी, "अख़्वार मसमूआ फ़ी फ़तह अल-उन्दुलुस", अल-इदरीसी, "ज़िक्र अल-उन्दुलुस", इब्ने खलदून, "कितावुल इब्र", अल, ज़रकशी, "तारीख़ अल-दौलतैन अलमुवहहेदिया वहल हफसियह", इब्ने वस्साम, "अल-ज़खीरह फ़ी महासिन अहल अल जज़ीरह", अल दव्वी, "वुग़यत अल मुल्तामिस फ़ी तारीख़ रिजाल अल-उन्दुलुस, इब्न अलकूतियह, "तारीखे इफ़तिताह अल उन्दुलुस", अब्दुल वाहिद अल मुर्राकुशी "अलमीजिव फ़ी तलखीसअ ख्वार अल-मगारिव, "इब्नअल-ख़तीव", अल-इहातह फी अख़्वार गरनाता", "अख़्वार अल-अस्र फ़ी इनकिज़ा दौलत वनी नस्र" तथा अंग्रेजी में Stanley Lane Poole and Arthur Gilman, "*The Moors in Spain*", Edward Creasy, "*The Fifteen Decisive Battles of the World,*" S.P. Scott, "*History of the Moorish Empire in Europe*", Henry Coppee, "*History of the Conquest of Spain by the Arab Moors*" Francis G. Stokes, "*Spanish Islam*", John W. Draper, "*A History of the Intellectual Development of Europe*", "*The Cambridge Medieval History.*"

फिर भी वे लगभग २०० वर्ष तक राज्य करते ही रहे, किन्तु कारडोवा (स्पेन) के खलीफा हकम द्वितीय (९६१–९७६ ई०) के राज्यकाल में इस वश का अन्त हो गया।

वनी अग़लव—जिस प्रकार इदरीसियो ने उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में अपने स्वतत्र राज्य की स्थापना की उसी प्रकार वनी अगलव अथवा अगलावइद्स ने उत्तर-पूर्वी अफ्रीका में अपना स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया। इस राज्य के सस्थापक इवराहीम इब्न अल-अगलव को हारूनुर्रशीद ने इफरीकिया (ट्युनिस तथा उसके आस-पास के भूभाग) का हाकिम नियुक्त किया था, किन्तु उसने स्वतत्र रूप से राज्य करना प्रारम्भ कर दिया और फिर किसी अव्वासी ने अपना कोई हाकिम वहाँ नियुक्त नही किया। उन्होने अमीर की उपाधि धारण कर ली और ८००–९०९ ई० तक राज्य करते रहे। इवराहीम के वहुत से उत्तराधिकारी उसी के समान साहसी तथा वीर थे। वे अपने जहाज़ी वेडे इटली, फ्रास तथा सारडीनिया तक भेजने लगे। ९०२ ई० में इन लोगो ने सिसली पर पूर्ण रूप से अधिकार जमा लिया। ज़ियादतुल्लाह प्रथम (८१७–८३८ ई०) ने अपने राज्यकाल में कैरवान की मस्जिद का निर्माण प्रारम्भ कराया जो इवराहीम द्वितीय (८७४–९०२ ई०) के राज्यकाल में पूरी हुई। यह मस्जिद पूर्व के देशो की भव्य मस्जिदो से किसी प्रकार कम नही। मक्के, मदीने तथा वैतुल मुकद्दस (येरोशलम) की मस्जिदो के समान इसे भी मुसलमानो ने स्वर्ग के चौथे द्वार में सम्मिलित कर लिया। १०९ वर्ष के राज्य के उपरान्त ९०९ ई० में ज़ियाद-तुल्लाह तृतीय (९०३–९०९ ई०) के राज्यकाल में फातेमियो ने उनके राज्य पर अधिकार जमा लिया।

मिस्र

फातेमी वंश—८९० ई० के लगभग मुहम्मद अल हवीव, जो अपने को हज़रत अली एव उनकी पत्नी हज़रत फातेमा की सतान वताता था, यह प्रचार करने लगा कि उन्ही के वश से महदी पैदा होनेवाले हैं। वह शीओ की इस्माईली शाखा का समर्थक था। सना (यमन) के अवू अब्दुल्लाह अल हुसेन अल शीई नामक एक व्यक्ति ने, जो मुहम्मद का शिष्य हो गया था, हज के समय उत्तरी अफ्रीका के वरवरो, विशेष रूप से कुतामह वरवरो को मिला लिया और ९०९ ई० में उसने वनी अगलव के ज़ियाद-तुल्लाह तृतीय को पराजित कर उसकी राजधानी अर्रक्कादह पर, जो कैरवान के समीप है, अधिकार जमा लिया। इसी वीच में फातेमी मुहम्मद की मृत्यु हो गयी किन्तु उसका पुत्र उवैदुल्लाह (९०९–९३४ ई०) भागकर अफ्रीका पहुँचा और अवू अब्दुल्लाह ने

उसे ९१० ई० में अर्रक्कादह् में सिंहासनारूढ कर दिया । उसने मोराको तक अपना अधिकार बढा लिया और महदीया नामक अपनी राजधानी अलग बसायी । ९१४ ई० में उसकी सेना ने सिकन्दरिया पर अधिकार जमा लिया, किन्तु सेना को वापस होना पड़ा । ९२१ ई० में उसके पुत्र अबुल कासिम को भी पराजित होकर लौट जाना पड़ा ।

९३७ ई० में मुहम्मद इब्ने तुग्ज नामक अब्बासियो के तुर्क हाकिम ने खलीफा अर्राज़ी से प्रार्थना की कि उसे इखशीद की उपाधि प्रदान करके अधिक अधिकार दे दिये जायँ । खलीफा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । उसने शाम, फलस्तीन तथा मक्का-मदीना अपने अधिकार में कर लिये । ९४६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी और काफ़ूर नामक उसके एक हब्शी ख्वाजा सरा ने उसके पुत्रो की ओर से राज्य करना प्रारम्भ कर दिया । ९६६ ई० से उसने स्वतत्र रूप से शासन करना शुरू कर दिया । ९६८ ई० में काफूर की मृत्यु हो गयी और ५ फरवरी ९६९ ई० को फातेमी सेनापति जौहर रक्कादह् से एक बहुत बडी सेना लेकर निकला और ९ जुलाई ९६९ ई० को सिकन्दरिया पर पूर्ण रूप से अधिकार जमा लिया । जौहर ने काहेरा अल-मुइज्जिया नामक नया नगर बसाया जो ९७३ ई० से फातेमियो की राजधानी बना । ९७२ ई० में उसने अल अज़हर की मस्जिद का निर्माण कराया । अल-शीई के बाद जौहर ही फातेमी राज्य का दूसरा महान् सस्थापक कहा जा सकता है । मिस्र के साथ उत्तरी अफ्रीका भी उसने विजय कर लिया । इस वश के पाँचवें बादशाह मसूर निज़ार अल अज़ीज (९७५–९९६ ई०) के राज्यकाल में फातेमी वश का राज्य एटलाटिक से लाल सागर, यमन, मक्का तथा दमिश्क तक पहुँच गया । उसने काहेरा में बहुत-सी मस्जिदो, महलो, पुलो तथा नहरो का निर्माण कराया । वह बगदाद तथा कारडोवा पर भी लोभ की दृष्टि डालने लगा । फातेमियो ने अब्बासियो की भाँति तुर्को एव हब-शियो को बहुत बडी सख्या में नौकर रखा, जो बाद में उनके राज्य के पतन का कारण बन गये । १०४३ ई० से सलजूको के प्रभुत्व के कारण शाम और बाद में अफ्रीका के प्रान्त फातिमी राज्य से पृथक् होने लगे । ऊपरी मिस्र की बनी हिलाल तथा सुलैम जातियाँ १०५२ ई० से त्रिपोली एव ट्युनिस में धावे मारने लगी । सिसली फातेमियो के अधिकार से निकल गया । १०९९ ई० में सलीबी योद्धाओ ने येरोशलम पर अधि-कार जमा लिया और ईसाइयो के निरन्तर आक्रमणो के उपरान्त सलाहुद्दीन अय्यूबी ने ११७१ ई० में मिस्र विजय करके फातेमी वश का अन्त कर दिया । फरवरी ११९३ ई० में सलाहुद्दीन की मृत्यु हो गयी । उसके उत्तराधिकारी १२४९ ई० तक मिस्र में राज्य करते रहे ।

ममलूक सुल्तान—१२४९ ई० में अय्यूबी अल-सालेह की विधवा ने मिस्र का राज्य अपने अधिकार में कर लिया और ८० दिन तक उत्तरी अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया में राज्य करती रही। जब अमीरो ने उसके सेनापति इज़्ज़ुद्दीन ऐवक को अपना सुल्तान बना लिया तो उसने उससे विवाह कर लिया। ऐबक (१२५०–१२५७ ई०) पहला ममलूक सुल्तान हुआ है। वह अपना अधिकाश जीवन शाम, फिलिस्तीन एव मिस्र के रण-क्षेत्रो में व्यतीत करता रहा। १२६० ई० में ममलूक नायब तथा सेनापति अल मुज़फ्फर सैफुद्दीन कूतूज़ (१२५९–६० ई०) ने हुलाकू की सेना से टक्कर लेकर मगोलो के तूफान को आगे बढने से रोक दिया। प्रारम्भिक ममलूक सुल्तानो में अल मलिक, अल-ज़ाहिर रुक्नुद्दीन बेबर्स अल् बुन्दु कदारी जो एक तुर्क दास था, बड़ा प्रतापी बादशाह हुआ। वास्तव में ममलूक वश का सस्थापक उसी को कहना चाहिए। उसने काहेरा तथा दमिश्क के मध्य में अत्यन्त द्रुतगामी डाक का प्रबध कराया। जलसेना का पुनरुत्थान तथा शाम के किले को दृढ बनवाना उसके अन्य कारनामो में सम्मिलित हैं। अपने राज्य को धार्मिक लोगो की दृष्टि में अधिक पवित्र बनाने के लिए उसने जून १२६१ ई० में अब्बासी खलीफा अल ज़ाहिर (१२२५–२६ ई०) के पुत्र को दमिश्क से बुलवाकर अल मुस्तनसिर के नाम से खलीफा बना दिया। खलीफा मुख्य रूप से प्रबध किया करते थे और ममलूक सुल्तानो की इच्छानुसार बनाये-बिगाडे जाते थे। ममलूक सुल्तानो का वश दो शाखाओ में विभाजित हो गया था। राज्य की स्थापना से १३८२ ई० तक जिन ममलूको का राज्य रहा वे बहरी कहलाते थे। १३८२ ई० से सरकेशियन तुर्क ममलूको का राज्य प्रारम्भ हुआ जो १५१७ ई० तक चलता रहा। ये बुरजी ममलूक कहलाते थे। इनका सस्थापक इब्ने खलदून का आश्रयदाता अज़्ज़ाहिर सैफुद्दीन बरकूक (१३८२–१३९८ ई०) था। उसके पुत्र अल नासिर नासिरुद्दीन फरज के राज्यकाल (१३९८–१४०५ ई०) में तीमूर ने आक्रमण किया।

तीमूर ने तातारी कबीलो की एक बहुत बड़ी सेना सगठित करके १३८० ई० से अपनी विश्व-विजय की योजना के अनुसार आक्रमण प्रारम्भ कर दिये। १३९३ ई० में उसने बगदाद पर अधिकार जमा लिया। १३९४ ई० में उसकी सेनाओ ने मेसोपोटामिया में बुरी तरह लूट-मार की। १३९५ ई० में उसने किपचाक के भूभाग पर आक्रमण किया और एक वर्ष से अधिक वर्त्तमान काल के मास्को पर अपना अधिकार जमाये रहा। १३९८–९९ ई० में वह देहली तक पहुँच गया और तूफान की भाँति १४०१ ई० में उत्तरी शाम को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। तीन दिन तक अलेप्पो में लूट-मार होती रही। २०,००० मुसलमानो के सिरों का एक बहुत बड़ा मीनार तैयार

कराया गया। सुल्तान फरज की सेना पराजित हुई और तीमूर ने दमिश्क पर अधिकार जमा लिया, किन्तु वह मिस्र तथा अफ्रीका की ओर न बढ सका और शीघ्र ही वगदाद वापस चला गया, जहाँ पुन. हत्याकाड एव लूटमार प्रारम्भ कर दी और सिरो के १२० मीनार वनवाये। २१ जुलाई, १४०२ ई० को उसने अकरा में उतमान सेना को पराजित करके सुल्तान वायजीद प्रथम को वन्दी वना लिया। १४०४ ई० में तीमूर की मृत्यु हो गयी और उसकी मृत्यु के साथ मगोलो के विश्व विजय के स्वप्न भी समाप्त हो गये। इन वाहरी आक्रमणो तथा साधारण आंतरिक विद्रोहो के वावजूद मिस्र, इब्ने खलदून के अनुसार ममलूको के राज्यकाल में मुसलमानो के अन्य राज्यो की अपेक्षा सवसे अधिक उन्नत एव सभ्य था। पश्चिमी शाम, मक्का-मदीना सहित हिजाज प्रान्त मिस्र के राज्य के अधीन थे और यमन तक उसकी सीमा फैली हुई थी। भारत के व्यापारिक मार्ग पर मिस्रवालो को पूरा अधिकार प्राप्त था। ममलूक वादशाहो ने अपनी धन-धान्य-सम्पन्नता के कारण कला, साहित्य, दर्शन, विज्ञान एव सस्कृति के अन्य क्षेत्रो में वडी उन्नति कर ली थी। इब्ने खलदून ने एक आदमी से जो हज करके लौटा था, काहेरा के विषय में प्रश्न किया तो उसने उत्तर दिया कि जिसने काहेरा नही देखा, वह इस्लाम के ऐश्वर्य एव गौरव का अनुमान कर ही नही सकता। १५१७ ई० में उतमान सुल्तान सलीम ने मिस्र पर अधिकार जमाकर उसे अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

स्पेन तथा उत्तरी अफ्रीका—जब ७५० ई० में अब्वासी खलीफा सफ्फाह ने वनी उमय्या के वशवालों की हत्या करानी प्रारम्भ कर दी तो १०वें उमय्या खलीफा हिशाम (७२४–७४३ ई०) का पौत्र अब्दुर्रहमान, अब्वासी खलीफाओ के चगुल से निकलकर उत्तरी अफ्रीका होता हुआ सितम्वर ७५५ ई० में स्पेन पहुंचा और १५ मई ७५६ ई० को उसने कारडोवा पर अधिकार जमा लिया। वहाँवालो ने उसे "अमीर" स्वीकार कर लिया। ३२ वर्ष के घोर सघर्ष के उपरान्त जब ७८८ ई० में उसकी मृत्यु हुई तो उसने अपने पुत्र हिशाम के लिए स्पेन का दृढ एव विस्तृत राज्य तथा एक वहुत वडी सेना छोडी, किन्तु अरव अमीरो का पारस्परिक विरोध तथा नव-मुस्लिमो के अधिक अधिकार की अभिलाषा दव न सकी। अब्वासियो के समान अब्दुर्रहमान को भी अपनी रक्षा हेतु अन्य कौमो की नियुक्ति करनी पडी। अब्दुर्रहमान द्वितीय (८२२–८५२ ई०) के राज्यकाल में ईसाइयो ने मुसलमानो की शक्ति का मुकावला करना पुन. प्रारम्भ कर दिया। उसके उत्तराधिकारी मुहम्मद प्रथम (८५२–८८६ ई०) के राज्यकाल में स्थिति और भी खराव हो गयी। अब्दुर्रहमान तृतीय (९१२–९६१ ई०) ने अपने राज्यकाल

के लगभग ५० वर्षों मे अपनी शक्ति के पुनरुद्धार का प्रयत्न किया। उसके राज्यकाल में फातेमियो ने उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न किया। ९२९ ई० में उनके दल-वल को तोडने एव मुसलमानो में अपनी राज्यसत्ता को दृढ बनाने के लिए अब्दुर्रहमान तृतीय ने खलीफा तथा अमीरुल मोमनीन के साथ-साथ "नासिर ले दीनिल्लाह" की उपाधि धारण कर ली और उत्तरी अफ्रीका के कुछ भागों को विजय करके फ़ातेमियो को आगे वढने से रोक दिया। वगदाद के तुर्क दासों के समान स्पेन के सकालेवा दास (सलाव) भी, जो अधिकांश युद्ध में वन्दी वनाये जाते थे, खलीफाओ के वडे विश्वासपात्र थे और अरवो को उनका प्रभुत्व पसन्द न था। उसके राज्यकाल में उन्दुलुस (आईवेरियन प्रायद्वीप) सभ्यता एव सस्कृति का केन्द्र वन गया। कृषि, कलाकौशल एव व्यापार की वडी उन्नति हुई। प्रथम वनी उमय्या अमीर के समय से ही मस्जिदो एव महलो का निर्माण प्रारम्भ हो गया था और भवननिर्माण कला की एक नयी शैली उन्नति करने लगी थी। अब्दुर्रहमान तृतीय के राज्यकाल में ९३६ ई० में कारडोवा के समीप उत्तर में अज्जहरा नामक नगर वसाना प्रारम्भ किया गया। साहित्य, दर्शन-शास्त्र एव इतिहास की रचना को भी प्रश्रय प्रदान किया गया।

मुलूकुत्तवाएफ—अब्दुर्रहमान तृतीय, हकम द्वितीय (९६१—९७६ ई०) तथा अल हाजिव उल मसूर (९७७–१००२ ई०) के राज्य के वाद स्पेन के विशाल राज्य का पतन होने लगा। वरवर, अरव, सकालेवा तथा स्पेनवाले राज्य के टुकडे-टुकडे करके आपस में वाँटने का प्रयत्न करने लगे। ११वी शती ई० के प्रथम आधे भाग में लगभग २० छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये। इस स्थिति को अरववाले मुलूकुत्तवाएफ अथवा विभिन्न दलो के वादशाहो का राज्य कहते हैं।

वनू अब्बाद—इन राज्यों में सेविल का वनू अब्बाद का राज्य (१०२३–१०९१ ई०) सवसे अधिक शक्तिशाली था। इस राज्य के शासक अपने आपको हीरह के लाखमीद वादशाहो की सतान वताते थे। इनके राज्य के अन्तिम काल में ईसाइयो ने अपनी शक्ति वढानी प्रारम्भ कर दी थी, किन्तु यूसुफ इब्ने तशफीन नामक मोराको के शक्तिशाली वरवर ने नवम्वर १०९० ई० में गरनाता और १०९१ ई० में सेविल पर अधिकार जमा लिया। इन लोगो ने टोलेडो एव सरगोसा के अतिरिक्त स्पेन के समस्त इस्लामी राज्य पर अधिकार जमा लिया।

मुरावेतीन—मुरावेतीन ने ११वी शती ई० के मध्य में एक धार्मिक दल के रूप में अपनी शक्ति वढानी प्रारम्भ की। सर्वप्रथम सिनहाजा कवीले की लमतूना शाखा ने

इनका साथ दिया। सिनहाजा कवीलेवाले सहारा के विशाल रेगिस्तान में खाना-वदोशों के समान जीवन व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे इन लोगो ने पूरे उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका पर अपना प्रभुत्व जमा लिया और वाद में स्पेन को भी अपने अधिकार में कर लिया।

मुरावेतीन राज्य के सस्थापक यूसुफ इब्ने ताशफीन (१०६१–११०६ ई०) ने १०६२ ई० में मराकश अथवा मोराको नामक नगर वसाया, स्पेन में करतेवा (कारडोवा) के स्थान पर सेविल को अपनी राजधानी वनाया। ५० वर्ष से अधिक काल तक मुरावेतीन शक्ति उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका तथा दक्षिणी स्पेन में अपनी राज्यसत्ता जमाये रही। वे अव्वासी खलीफाओ के अनुयायी तथा धर्म के सम्वन्ध में इतने कट्टर थे कि यूसुफ के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अली (११०६–११४३ ई०) के राज्य में अलगज्ज़ाली के ग्रन्थ स्पेन तथा मगरिव में इस कारण जलवाये गये कि उनमें फकीहो के, विशेष रूप से मालिकी फकीहो के, विरुद्ध वातें पायी जाती थी। इन लोगो ने "अमीरुल मुस्लेमीन" की उपाधि धारण की। मुरावेतीन वरवर भी शीघ्र ही मोराको एवं उन्दुलुस नगरो की सस्कृति तथा भोग-विलास के शिकार हो गये और मुवह्हेदीन ने ११४७ ई० में इनके राज्य का अन्त कर दिया।

मुवह्हेदीन—मुवह्हेदीन वंशवालो ने भी अपना सगठन वरवर कवीलो मे धार्मिक प्रचार के रूप में प्रारम्भ किया। वरवर की मसमूदह् शाखा के मुहम्मद इब्ने तूमर्त (१०७८–११३० ई० लगभग) ने महदी की उपाधि धारण कर ली और वे इस वात का दावा करने लगे कि वे इस्लाम के तौहीद (एकेश्वरवाद) के सिद्धान्त का प्राचीन शुद्धतम रूप मनवाना चाहते हैं। इसी कारण उनके अनुयायी मुवह्हेदीन कहलाने लगे। ११३० ई० में इब्ने तूमर्त की मृत्यु हो गयी और जनातह् कवीले के एक कुम्हार अव्दुल मोमिन इब्ने अली ने उसका स्थान ले लिया और ११४४ से ११४६ ई० के मध्य में मुरावेतीन की सेना को तलेम्सान के समीप पराजित करके फास, क्योटा, ताजीर तथा अगमात को अपने अधिकार में कर लिया। ११ मास के अवरोध के उपरान्त (११४६–४७ ई०) मराकश को विजय करके उसने मुरावेतीन के राज्य का अन्त कर दिया। तदुपरान्त पाँच वर्ष के भीतर उसने स्पेन को पूर्ण रूप से अपने अधिकार में कर लिया। ११५२ ई० में इन्होने अलजीरिया, ११५८ ई० में ट्युनिस तथा ११६० ई० में त्रिपोली पर अधिकार जमा लिया। ११६३ ई० में अव्दुल मोमिन की मृत्यु हो गयी। ११७० ई० में मुवह्हेदीन ने अपनी राजधानी सेविल में वना ली। इस वंश का सवसे प्रसिद्ध वादशाह अव्दुल मोमिन का पौत्र अवू यूसुफ याकूव अल मंसूर (११८४–

११९९ ई०) हुआ है। सलाहुद्दीन अय्यूवी (सलादिन) ने उसी के दरवार में वहुमूल्य उपहार सहित अपने राजदूत भेजकर सलीवी युद्ध लड़नेवाले ईसाइयो (क्रुसेडर्स) के विरुद्ध सहायता मँगवायी। उसके राज्यकाल में कला एव सस्कृति को विशेष प्रोत्साहन प्रदान हुआ। उसने मोराको में सिकन्दरिया के नमूने पर रिवात अल-फतह का निर्माण कराया और एक अस्पताल भी वनवाया जिसे वहाँवाले ससार की अद्वितीय वस्तु समझते थे। मुवह्हेदीन ने स्पेन में ईसाइयो की वढती हुई शक्ति को रोकने का भी प्रयत्न किया। मंसूर का पुत्र मुहम्मद अल-नासिर (११९९–१२१४ ई०) १२१२ ई० में कारडोवा के ७० मील पूर्व "लस नवास डा तोलोसा" में, जिसे अरव उकाव पर्वत कहते हैं, ईसाई वादशाहो की सगठित सेना से वुरी तरह पराजित हो गया। कहा जाता है कि उसके ६ लाख सैनिको में से केवल १००० सिपाही ही वचकर वापस जा सके। अल-नासिर मराकश भाग गया, जहाँ दो वर्ष उपरान्त उसकी मृत्यु हो गयी।

वनू नस्र-मुवह्हेदीन का स्पेन का राज्य ईसाई वादशाहो ने आपस में वाँट लिया। मुसलमानो का राज्य स्पेन की एक छोटी-सी दक्षिणी पट्टी के चारों ओर गरनाता तक सीमित रह गया, जहाँ वनू नस्र ने एक नये वश की स्थापना की जो १२३२ ई० से १४९२ ई० तक चलता रहा। मोराको का राज्य खलीफा मुहम्मद अल-नासिर के उत्तराधिकारी अब्दुल मोमिन की सतान के अधिकार में १२६९ ई० तक रहा। तदुपरान्त वनू मरीन नामक वरवरो की एक शाखा ने उस राज्य पर अधिकार जमा लिया।

वनू नस्र (१२३२–१४९२ ई०) का सस्थापक मुहम्मद इब्ने यूसुफ़ नस्र था जो इब्न अल-अहमर कहलाता था। इसी कारण यह वश वनू अल अहमर भी कहलाता है। मुहम्मद (१२३२–१२७३ ई०) मदीने के खज़रज कवीले से सम्वन्धित होने का दावा करता था। उसने अल-गालिव की उपाधि धारण कर ली और गरनाता के दक्षिण-पूर्व में अल-हमरा नामक किले का निर्माण कराया। उसके वश के प्रयत्न से अल हमरा के किले की गणना ससार के उच्चकोटि के किलो में होने लगी।

मुहम्मद पंचम (१३५४–५९ ई०) तथा मुहम्मद षष्ठ (१३६२–१३९१ ई०) सरीखे इस वंश के वादशाहो ने स्पेन के गिरते हुए गौरव को सँभालने का वड़ा प्रयत्न किया और साहित्य एवं कला की उन्नति की।

मग़रिव

त्रिपोली से गरनाता तक का भाग जिसे अरव मगरिव कहते थे, इब्ने खलदून के अनुसार उन्नति एव सभ्यता में मिस्र का पासग भी न था। १३ वी शती ई० के मध्य से

उत्तरी अफ्रीका तीन राज्यो में विभाजित हो गया, जो १४ वी शती ईसवी के अन्त तक आपस में निरतर युद्ध करते रहे—

(१) पूर्वी अलजीरिया, ट्युनीसिया एव त्रिपोलितानिया के हफसी।

(२) मोराको के मरीनी।

(३) पश्चिमी अलजीरिया के ज़यानी।

हफसी—हफसी उत्तरी अफ्रीका के एक वरवर कवीले से सम्बन्धित थे। उन्होने तीन शताब्दियों (१२२८–१५७४ ई०) से अधिक इफरीकिया पर राज्य किया। इस वश का नाम हितता के सरदार शेख अवू हफस उमर के नाम पर पडा जो इब्ने तूमर्त के मुख्य चेलो एव अब्दुल मोमिन के विश्वास-पात्रो में था। १२२८ ई० तक हफसी मुवह्हेदीन के अधीन रहे। १२२८ ई० में अवू ज़करिया नामक इफरीकिया के हाकिम ने ट्युनिस में अपना स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया और धीरे-धीरे कसन्तीना, विजाया, तलेम्सान इत्यादि पर अधिकार जमा लिया। मरीनियों तथा मिकान्सा वालों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और उसका राज्य क्योटा से ताजीर और भूमध्यसागर से सिजिलमासा तक फैल गया। जव १२४९ ई० में उसकी मृत्यु हुई तो उस समय के मुसलमानो के अफ्रीकी राज्य का वह सबसे अधिक शक्तिशाली वादशाह था।

वनी हफस का राज्य स्थापित हो जाने से इफरीकिया में कुछ वर्षों के लिए शान्ति एव समृद्धि का सचार हो गया और ट्युनिस न केवल राज-सत्ता का ही केन्द्र बना अपितु सास्कृतिक एव आर्थिक उन्नति का भी वहाँ विशेष संचार होने लगा। इस वश के वादशाहो ने यूरोप के ईसाई वादशाहो से मैत्री के सम्बन्ध स्थापित रखा, जिसके फलस्वरूप यूरोप एव अफ्रीका के व्यापार की वड़ी उन्नति हुई। किन्तु १२८३ ई० तक हफसी राज्य दो शाखाओ में विभाजित हो गया। ट्युनिस पर अवू हफस का राज्य रहा और विजाया में अवू ज़करिया का (१२८४ ई०)। तेईस वर्ष तक इन दोनो का आपस में घोर युद्ध होता रहा जिसमें इफरीकिया तथा मध्य मगरिव के अरव कवीलो एव तलेम्सान के अब्दुल वादियो ने कभी इस पक्ष का और कभी उस पक्ष का साथ देकर खूव लाभ उठाया। १३१८ ई० में अवू यहया ने ट्युनिस में पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और इफरीकिया एव मध्य मग़रिव के राज्य को अपने अधीन कर लिया। उसे अपने शत्रुओ के घोर विरोध के कारण चार वार राज्य से वचित होना पडा किन्तु अन्त मे मरीनियो की सहायता से उसे पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हो गयी। १३४६ ई० में अवू यहया की मृत्यु के उपरान्त पुन. अशान्ति फैल गयी। राज्य के अधिकारी अवुल

अब्बास को हटाकर अबू हफस स्वय बादशाह बन बैठा। यह देखकर मरीनी वश के सुल्तान अल हसन ने कसन्तीना तथा विजाया पर अधिकार जमा लिया और १३४७ ई० में ट्युनिस को विजय कर लिया। किन्तु १३४८ ई० में उसे विद्रोही अरबो ने कैरवान के समीप पराजित कर दिया। उधर उसके पुत्र अबू इनान ने भी विद्रोह कर दिया था अत. वह अपने जीते हुए स्थानो को अपने अधिकार में न रख सका। हफसियो ने विजाया तथा कसन्तीना विजय कर लिया, किन्तु १३५३ ई० में मरीनी अबू इनान ने विजाया पर अधिकार जमा लिया और १३५७ ई० में कसन्तीना एव ट्युनिस को भी हथिया लिया, किन्तु शीघ्र ही अरबो के आक्रमण के कारण उसे बनी हफस का राज्य छोड देना पडा और अबू इस्हाक द्वितीय ने ट्युनिस पर अधिकार जमाकर बनी हफस का राज्य पुन स्थापित कर लिया, किन्तु राज्य में अशान्ति एव उथल-पुथल उसी प्रकार होती रही। अबू इस्हाक द्वितीय ट्युनिस का स्वामी था, विजाया पर अबू अब्दुल्लाह ने अधिकार जमा लिया और कसन्तीना पर अबुल अब्बास ने। अन्त में अबुल अब्बास ने बनी हफस के प्राचीन राज्य के बहुत बडे भाग को विजय कर लिया (१३६८—६९ ई०) और उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी अबू फारिस अज़ीज (१३९३-१४३४ ई०) मगरिब की शक्तियों में सतुलन रखने में बहुत बडी सीमा तक सफल रहा।

मरीनी वंश—बनू मरीन ने १२१६ ई० से अपनी शक्ति बढानी प्रारम्भ की और ५३ वर्ष में मेकनेस, फास, रहत तथा सेल पर अधिकार जमा लिया। १२६९ ई० में अमीर अबू यूसुफ याकूब ने मराकश को विजय करके मरीनी राज्य दृढ बना लिया। १३४० ई० तक वे लोग स्पेन के युद्धो में भाग लेते रहे किन्तु यूरोप के ईसाई बादशाहो द्वारा स्पेन में अधिक प्रभुत्व प्राप्त कर लेने के कारण इन लोगो ने उस ओर से निराश होकर केवल उत्तरी अफ्रीका की राजनीति में अधिक-से-अधिक भाग लेना प्रारम्भ कर दिया और तलेम्सान पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। कई बार वहाँ वालो को मरीनियो ने बुरी तरह पराजित कर दिया। १२९९ ई० से ८ वर्ष तथा ३ मास तक वे तलेम्सान वालो को घेरे रहे। इसी बीच में मरीनियो के स्थायी शिविर के कारण मनसूरा नामक नगर बस गया। १३३७ ई० में मरीनी बादशाह अबुल हसन ने तलेम्सान पर अधिकार जमा लिया और वह तथा उसका पुत्र २२ वर्ष तक वहाँ राज्य करते रहे।

१३४७ ई० में अबुल हसन ने इफरीकिया पर आक्रमण किया, किन्तु अप्रैल १३४८ ई० में अरब कबीलो ने उसे बुरी तरह पराजित कर दिया और मगरिब में मरीनियो की शक्ति डाँवाडोल हो गयी। उसके पुत्र अबू इनान ने भी इफरीकिया विजय करने का प्रयत्न किया किन्तु उसे कोई सफलता न प्राप्त हुई। अबुल हसन तथा अबू इनान के

न इन्ने
:रवार
लमान
अथवा

परान्त
करने
ते थे।
वने में
पुतली
टाकर
लम के

यों का
रासन
७ से
ज्य पर
राजित
अपना
रहा।

२ हि०
ता का

तारीफ़
। द्वारा
भत्तंजी

राज्यकाल में फास के दरबार को बडी उन्नति प्राप्त हो गयी थी और अब्दुर्रहमान इब्ने खलदून तथा इब्नुल खतीब सरीखे विद्वान् एव इब्ने बत्तूता सरीखा पर्यटक इस दरबार द्वारा आश्रय प्राप्त करते रहे। अबू इनान (१३४८–५८ ई०) ने स्पेन के मुसलमान शिल्पकारो एवं भवन निर्माण करनेवालो को बुलवाकर अपनी राजधानी फेज़ अथवा फास की बडी उन्नति की।

इफरीकिया विजय में असफलता के कारण तथा अबू इनान की मृत्यु के उपरान्त मरीनी राज्य की प्रतिष्ठा को बहुत बडा धक्का पहुँचा। कबीलो ने कर अदा करने की ओर से उपेक्षा प्रारम्भ कर दी और जब तक वे विवश न हो जाते, कर न देते थे। बडे-बडे पद पिता से पुत्र को प्राप्त होने लगे। शाही वशवाले भी षड्यत्र रचने में किसी से पीछे न थे। वे किसी-न-किसी बालक को सिंहासनारूढ करके उसे कठपुतली बनाये रखते, यदि उनमें से कोई अपने अधिकार बढाना चाहता तो वे उसे हटाकर दूसरे को सिंहासनारूढ कर देते। इसी सिलसिले में मरीनी सुल्तान अबू सालिम के सैनिको ने १३६१ ई० में उसकी हत्या कर दी।

ज़यानी वंश—बनी हफस तथा मरीनी वश के बाद बरबर कबीले के जयानियो का नाम लिया जा सकता है, जो तलेम्सान पर राज्य करते थे। १२३६ ई० से यगमुरासन नामक ज़यानी वश के सुल्तान ने स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया। १३३७ से १३४८ ई० तथा १३५२ से १३५९ ई० तक दो बार मरीनियो ने इनके राज्य पर अधिकार जमाया, किन्तु १३४८ ई० में अबू हम्मू प्रथम ने मरीनियो को पराजित किया। पर १३५२ ई० में वह पुन पराजित हो गया, पर १३५९ ई० में उसने अपना राज्य दुबारा विजय कर लिया, जो १५५४ ई० तक उसी के वश में चलता रहा।

(२)

इब्ने ख़लदून

अब्दुर्रहमान इब्ने मुहम्मद हज़रमी[1] का जन्म ट्युनिस में १ रमज़ान ७३२ हि० (२७ मई १३३२ ई०) को हुआ। अरबो में पुत्र के नाम के सम्बन्ध से भी पिता का

१. इब्ने खलदून की जीवनी जो इन पृष्ठो में दी गयी है, उसकी "आत्मकथा" अत्तारीफ बे-इब्ने खलदून व रिहलतुहू गरबन व शरकन (मुहम्मद तावीत अत्तंजी द्वारा संकलित तथा काहेरा से १९५१ ई० में प्रकाशित) पर आधारित है। अत्तंजी

नाम प्रसिद्ध हो जाता है। इस प्रकार वह अबू ज़ैद अयवा ज़ैद का पिता भी कहलाता था। उसकी उपाधि वलीउद्दीन थी, किन्तु वह इब्ने खलदून के नाम से प्रसिद्ध है। उसके पूर्वज अपने आपको यमन के एक कवीले का वताते थे जो हज़रमौत में निवास करता था। इस कारण वह हज़रमी कहलाता था। ८वी शती ईसवी में जब बनी उमय्या के स्थान पर वनी अब्बास सिंहासनारूढ हुए तो उनके समर्थक स्पेन की ओर भाग गये। खलदून, जिसके नाम पर यह वश चला, बनी उमय्या अमीरो का राज्य दृढ हो जाने के उपरान्त वहाँ पहुँचा। यद्यपि इब्ने खलदून के वंश को समकालीन राज्यो में समय-समय पर वडी प्रतिष्ठा प्राप्त होती रही, किन्तु उनके विषय में स्वय उसे भी अधिक ज्ञान नही था। उसने उनके विषय में जो कुछ लिखा है वह स्पेन के इतिहासो

ने इब्ने खलदून के बहुत से संकेतों तथा हवालों को टिप्पणियों द्वारा स्पष्ट भी कर दिया है और उन बहुत से लोगों की जिनका इब्ने खलदून ने उल्लेख किया है, संक्षिप्त जीवनियाँ भी दी हैं। आत्मकथा के अतिरिक्त इब्ने खलदून के समकालीन इब्नुल खतीब के गरनाता के इतिहास "अल-इहातह फी अख़्बार ग़रनातह" (काहेरा से १९०१ ई० में दो भागों में प्रकाशित) तथा इब्ने खलदून के मुकद्दमे एवं बरबरों के इतिहास से विशेष सहायता ली गयी है। फ़्रांसीसी तथा अंग्रेज़ी में इब्ने खलदून की जीवनी एवं मुकद्दमे के विषय में कई लेख तथा ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है, जिनका उल्लेख "सहायक ग्रथों की सूची" में कर दिया गया है। इन सबमें मुहसिन महदी का ग्रंथ, "इब्ने खलदून्स फिलासफी आफ हिस्ट्री (*Ibn Khaldun's Philosophy of History*) लन्दन से १९५७ ई० में प्रकाशित बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। डॉ० अली अब्दुल वाहिद वाफी द्वारा संकलित, "मुकद्दमये इब्ने खलदून" में भी, जो मिस्र से १९५७-५८ ई० में प्रकाशित हुआ है, (पृ० १-२०३ में) अरबी भाषा में इब्ने खलदून की जीवनी तथा मुक़द्दमे के विषय में विस्तार से लिखा गया है। फ़्रंज रोजेंटहाल द्वारा अंग्रेजी में तीन भागो में अनूदित तथा लन्दन से १९५८ ई० में प्रकाशित इब्ने खलदून के "मुकद्दमे" में भी इब्ने खलदून की जीवनी तथा मुक़द्दमे के विषय में लिखा गया है। इब्ने खलदून के मुकद्दमे को भली भांति समझने में फ़्रंज रोजेंटहाल के निम्नांकित दो ग्रंथ भी बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं—*The Technique and Approach of Muslim Scholarship* (१९४७ ई०) तथा *A History of Muslim Historiography* (१९५२ ई०).

पर आधारित है। ९वी शती ईसवी के अन्त में उसके पूर्वजो में एक व्यक्ति कुरयव हुआ है, जिसने उमय्या वश के विरुद्ध विद्रोह करके सेविल में एक स्वतत्र-जैसा राज्य स्थापित कर लिया। वह राज्य लगभग १० वर्ष तक चलता रहा। ८९९ ई० में उसकी हत्या करा दी गयी।

११वी शती ईसवी के प्रारम्भ में जब स्पेन का केन्द्रीय राज्य छिन्न-भिन्न हो रहा था तो इब्ने खलदून के वंश को सेविल के क्रान्तिकारियो के नेतृत्व के कारण वडा महत्त्व प्राप्त हो गया। उसका एक पूर्वज अवू मुस्लिम उमर विन अहमद इब्ने खलदून (मृत्यु १०५७–५८ ई०) दर्शन-शास्त्र एव विज्ञान में अपनी रुचि के कारण वडा प्रसिद्ध हुआ। वह अपने समय के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक मसलमा अल मजरीती का शिष्य था। जव टयुनिस के हफस वश के सस्थापक सेविल में हाकिम थे तव इब्ने खलदून के पूर्वज लोग उनके विश्वासपात्र वन गये। वहाँ की राजनीति पर उनका गहरा प्रभाव था। १३वी शती ईसवी के लगभग जव ईसाई लोग सेविल पर प्रवल आक्रमण करने लगे तो इब्ने खलदून के पूर्वजो का वश सेविल की पराजय (१२४८ ई०) के पूर्व ही उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका चला गया, जहाँ के दरवार की ओर से उसका भली-भाँति स्वागत हुआ।

सर्वप्रथम जो व्यक्ति उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका पहुँचा, वह उसके परदादा का परदादा अलहसन विन मुहम्मद था। वह सर्वप्रथम क्योटा पहुँचा और वहाँ से हज करने चला गया। हज से लौटकर वह वनी हफस के सुल्तान अवू ज़करिया के पास वोन पहुँचा। वहाँ उसे जागीर प्रदान की गयी। उसके कुछ अन्य वशवालों को भी वनी हफस द्वारा उच्च पद प्राप्त हुए। उन्होने वहाँ के राजनीतिक एव सास्कृतिक जीवन मे वडा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। "मुकद्दमे" में कई स्थानो पर इस वात की चर्चा हुई है कि किस प्रकार स्पेन के शरणार्थियो ने उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के सास्कृतिक जीवन को उन्नति पर पहुँचाया। अपने पूर्वजो के इस कारनामे पर इब्ने खलदून सर्वदा गर्व करता हुआ दृष्टिगत होता है और स्पेन की सभ्यता एव सस्कृति की छाप उसके मस्तिष्क से कभी भी न मिट सकी।

हसन विन मुहम्मद के पुत्र अवूवक्र मुहम्मद को "साहिवुल अशगाल" का उच्च पद प्राप्त हो गया था, किन्तु १२८३ ई० में इब्ने अवी उमरा की, वनी हफस के विरुद्ध विद्रोह कर देने के कारण हत्या कर दी गयी। उसने राजनीति सम्वन्धी एक छोटे-से ग्रथ की रचना भी की थी जिससे सम्भवत. इब्ने खलदून ने पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की।

इब्ने खलदून के दादा मुहम्मद को वनी हफस के राज्य में नायव हाजिव का पद प्राप्त था। किन्तु समकालीन राजनीति की अनिश्चित दशा एव वनी हफस के

राज्य के पतन के कारण उसने अपने अन्तिम जीवन काल में एकान्तवास ग्रहण करके धार्मिक जीवन विताना प्रारम्भ कर दिया और यही परामर्श उसने अपने पुत्र को भी दिया। दोनो अबू अब्दुल्लाह् जुवैदी नामक एक प्रसिद्ध सूफी के शिष्य हो गये। मुहम्मद की १३३६-३७ ई० में मृत्यु हो गयी। उसका पुत्र अर्थात् इब्ने खलदून का पिता मुहम्मद पठन-पाठन के कार्य में ही जीवन व्यतीत करता रहा और १३४८-४९ ई० की भीपण प्लेग में मुहम्मद की मृत्यु हो गयी। इब्ने खलदून के अनुसार उसके पिता को सर्वदा उसकी शिक्षा की चिन्ता रहा करती थी। इब्ने खलदून के वश में उच्च कोटि की शिक्षा एव राजनीति दोनो की ही परपराएँ वर्तमान थी।

इब्ने खलदून ने अपने पिता एवं अपने अनेक समकालीन आलिमो से शिक्षा ग्रहण की थी। उसके अधिकाश गुरुओ के पूर्वजो का वतन स्पेन था। नकली[1] एव अकली[2] ज्ञान के सभी क्षेत्रो में उसे अच्छी शिक्षा प्राप्त हुई थी। धार्मिक विपयो के अतिरिक्त उसे तर्क-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, ज्योतिप, चिकित्सा-शास्त्र इत्यादि की भी शिक्षा मिली थी। रचनाशैली में कुशलता एव इतिहास के ज्ञान में दक्षता भी उसने प्राप्त की थी।

१३४७ ई० में फास (फेज) के मरीनी सुल्तान अवुल हसन ने, जो १३३७ ई० से अब्दुल वाद वश के तलेम्सान पर अधिकार जमाये हुए था, ट्युनिस विजय कर लिया, किन्तु १३४८ ई० में अरव कवीलो द्वारा कैरवान में पराजित होकर उसे ट्युनिस छोड़ना पडा और १३५७ ई० तक वनी हफस का राज्य वडे खतरे में रहा। १३५७ ई० में अवुल हसन के पुत्र अवू इनान ने ट्युनिस को विजय कर लिया, किन्तु १३५८ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी और फिर कुछ समय के लिए उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका को आक्रमणो से मुक्ति प्राप्त हो गयी।

१३४७ ई० में मरीनी वश की विजय के उपरान्त ट्युनिस में अवुल हसन के साथ कुछ प्रसिद्ध विद्वान् भी पहुँचे। इब्ने खलदून ने इनमें से मुहम्मद (विन अली) विन सुलेमान अस्सत्ती, अब्दुल मुहैनन विन मुहम्मद अल हज़रमी (१२७७-७८ से १३४९ ई०) और सवसे प्रमुख मुहम्मद विन इवराहीम अल अविली (१२८२-८३ से १३५६ ई०) से शिक्षा ग्रहण की। अविली के ट्युनिस से चले जाने के

१. कथन पर आधारित (कुरान शरीफ तथा हदीस पर आधारित) ज्ञान, देखिए अध्याय ६।
२. वुद्धि अथवा तर्क पर आधारित ज्ञान, गणित, दर्शनशास्त्र इत्यादि, देखिए अध्याय ६।

उपरान्त इब्ने खलदून का भी मन अपने वतन में न लगा और वह वहाँ से चल खडा हुआ ।

प्लेग के कारण इब्ने खलदून के पिता एव माता की मृत्यु हो चुकी थी और केवल उसका वडा भाई मुहम्मद ही वश के वडे-वूढों में रह गया था। २० वर्ष की अवस्था में वह "साहिव अल-अलामह" अथवा हस्ताक्षर करने का अधिकारी नियुक्त हो गया। इस पद के अन्तर्गत उसे फरमानो पर शीर्षक लिखना पडता था। यद्यपि यह कोई वहुत वडा पद न था, किन्तु वह हफ़सी वश का विश्वास-पात्र था। फिर भी वह १३५२ ई० में ट्युनिस से मरीनी राज्य में चला गया और १३५३ ई० की गरमी में उसने अवू इनान से भेंट की। १३५३-५४ ई० में वह विजाया में रहा जो मरीनी वश के उच्च पदाधिकारियो के अधीन था।

फास (फेज) में

१३५४ ई० में वह अवुल हसन के पुत्र अवू इनान के निमत्रण पर फास (फेज) पहुँचा और वहाँ के विद्वानो की गोष्ठियो से लाभान्वित होने लगा। वह वहाँ कुरान के प्रसिद्ध विद्वान् मुहम्मद विन अस्सफार व एक अन्य विद्वान् मुहम्मद विन मुहम्मद अल मक्करी के सम्पर्क में आया। उसने दर्शन-शास्त्र के माने हुए विद्वान् मुहम्मद विन मुहम्मद अलवी (१३१०-११ से १३६९-७० ई०) से भी शिक्षा ग्रहण की, जो कहा जाता है कि इब्ने खलदून के ट्युनिस के एक गुरु मुहम्मद इब्ने अब्दुस्सलाम का भी गुरु था। वह काजी मुहम्मद विन अब्दुर्रज्ज़ाक तथा मुहम्मद विन यहया अल वरजी (१३१०-११ से १३८४ ई०) की गोष्ठियो में भी रहा। उसकी वहाँ प्रसिद्ध ज्योतिपी एव चिकित्सक इवराहीम विन जर्रार से भी भेंट हुई। उसको फेज में शरीफ मुहम्मद विन अहमद अस्सवती (१२९७-९८ से १३५९ ई०) से भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ और वह प्रसिद्ध विद्वान् अवुल वरकात मुहम्मद विन मुहम्मद अल वल्लाफीकी (मृत्यु १३७०ई०) की शिक्षा से भी, जिसके हवाले उसने मुकद्दमे में कई स्थानो पर दिये है, लाभान्वित हुआ।

फज में इब्ने खलदून कुछ समय तक विद्याध्ययन में ही व्यस्त रहा, किन्तु उसे शीघ्र ही दरवार के विद्वानो के साथ अवू इनान के दरवार से भी सम्वन्धित होना पडा। १३५५ ई० मे उसे अवू इनान ने अपना कातिव (सचिव) नियुक्त कर लिया और सुल्तान की सेवा में जो प्रार्थनापत्र प्रस्तुत होते उन पर एव अन्य कागजो पर वह शाही आदेश लिखा करता था। उसे यह कार्य पसन्द न था। वह लिखता है कि "उसके पूर्वजो ने इस प्रकार का कार्य कभी न किया था। वे सुल्तानो की परामर्श-

गोष्ठियो के मुख्य अग रह चुके थे और समकालीन राजनीति एव क्रान्तियो में भाग लिया करते थे।" यद्यपि उसने इस पद पर अधिक समय तक कार्य न किया, किन्तु इसके सहारे से उसे अन्य देशो के राजदूतो से विचार-विनिमय करने तथा समकालीन उत्तरी अफ्रीका एव मुसलमानी स्पेन की राजनीतिक दशा का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो गया।

वह वनी हफ़स के शाहज़ादे अवू अव्दुल्लाह का, जो उन दिनो फ़ेज में था, वड़ा घनिष्ठ मित्र हो गया। अवू इनान अवू अव्दुल्लाह की सहायता से ट्युनिस से वनी हफ़स में फूट डालकर उस देश पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता था, किन्तु थोडे दिन वाद अवू इनान को यह सन्देह हो गया कि इब्ने ख़लदून अवू अव्दुल्लाह से मिलकर उसके विरुद्ध पड्यत्र रच रहा है, अत उसने १० फरवरी १३५७ ई० को इब्ने खलदून तथा अवू अव्दुल्लाह को वन्दी वना लिया। उसके वाद ही अवू इनान ट्युनिस पर आक्रमण हेतु रवाना हो गया। ऐसी अवस्था में वह इब्ने खलदून को मुक्त रहने ही किस प्रकार दे सकता था। अवू अव्दुल्लाह को तो कुछ समय उपरान्त वन्दीगृह से छोड दिया गया, किन्तु इब्ने खलदून वन्दीगृह में ही रहा। २७ नवम्बर १३५८ ई० को अवू इनान की मृत्यु हो गयी और २१ मास के उपरान्त उसे वन्दीगृह से मुक्त कर दिया गया। अवू इनान की मृत्यु के पश्चात् मरीनी वश का पतन प्रारम्भ हो गया। राज्य के वज़ीरो ने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और प्रत्येक उच्च पदाधिकारी शाही वश के किसी न किसी व्यक्ति का समर्थक वनकर पड्यत्र रचने लगा। इब्ने खलदून ने राज्यो की इस प्रकार की अव्यवस्थित दशा से अपने मुकद्दमे में वड़े ही महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं।

इब्ने ख़लदून ने स्वय अवू इनान के भाई अवू सालिम की, जो देश से निर्वासित हो चुका था, वापिसी के लिए प्रयत्न किया। अवू सालिम ने जुलाई १३५९ ई० में २६ वर्ष की अवस्था में मरीनी राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया। उसने इब्ने खलदून को "कातिव-अल सिर वल तौकी वल इन्शा" नियुक्त कर दिया। वाद में उसने उसे अपने राज्य के "मज़ालिम" विभाग का मुख्य अधिकारी वना दिया। इस विभाग के अन्तर्गत उन अभियोगो के निर्णय की देखरेख करनी पडती थी जिनका सम्वन्ध "शरा" से न होता था। उसे अपना यह नया कार्य पसन्द भी था और इस विभाग के अध्यक्ष के रूप में उसने जो सेवाएँ की उनसे वह सन्तुष्ट भी था। अवू सालिम, इब्ने खलदून की आशा के विरुद्ध, वुद्धिमान् एव न्यायकारी वादशाह न निकला और दरवार के पड्यत्र का शिकार हो गया। १३६१ ई० में राज्य के अधिकारियो ने अवू सालिम के विरुद्ध विद्रोह करके उसकी हत्या कर दी।

उस समय अब्दुल वादियों ने अपनी शक्ति का पुनर्गठन करके तलेम्सान पर अधिकार जमा लिया था। सुदूर पूर्व में विजाया, किसिन्तीना तथा ट्युनिस में वनी हफ़स अपनी शक्ति का पुनरुद्धार करने लगे थे। इस अनिश्चित वातावरण के कारण इब्ने खलदून ने फेज़ से चला जाना ही उचित समझा। किन्तु वहाँ वालो को यह भय हुआ कि कही वह अपने अफ़्रीका की राजनीति के ज्ञान से किसी अन्य पक्ष को अनुचित लाभ न पहुँचा दे, अत. उन्होंने उसे इस शर्त पर जाने की अनुमति दी कि वह अफ्रीका के किसी राज्य में न जायगा अपितु स्पेन चला जायगा। तदनुसार वह फेज से प्रस्थान करके २६ दिसम्बर १३६२ ई० को गरनाता पहुँच गया।

स्पेन में

गरनाता के मुहम्मद पंचम (१३५४-१३९१ ई०) से, अबू सालिम के राज्यकाल में इब्ने खलदून की मित्रता हो गयी थी। १३५९ ई० में मुहम्मद के दरबार वालो ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करके उसके भाई को उसके स्थान पर बादशाह बना दिया। मुहम्मद भागकर अबू सालिम के पास पहुँचा। उस समय इब्ने खलदून अबू सालिम का सचिव था। उसने मुहम्मद का भव्य स्वागत कराया। कुछ समय उपरान्त अबू सालिम के प्रयत्न से मुहम्मद के प्रधान मंत्री इब्नुल खतीब को भी गरनाता वालो ने मुक्त कर दिया और वह मुहम्मद के पास फेज़ पहुँच गया। इब्नुल खतीब की विद्वत्ता से इब्ने खलदून अत्यधिक लाभान्वित हुआ और उसी की प्रेरणा से उसने अल बरजी की कविता के विषय में कुछ विशेष बातें लिखी, जिन्हें इब्नुल खतीब ने अपने गरनाता के इतिहास में सकलित कर लिया। इब्ने खलदून के प्रयत्न से मुहम्मद को गरनाता का राज्य प्राप्त करने में बडी सहायता मिली। जब मुहम्मद अपने राज्य पर पुन' अधिकार जमाने के लिए १३६१ ई० में गरनाता रवाना हुआ तो अपने परिवार को इब्ने खलदून की ही देख-रेख में छोड गया। इस कारण जब इब्ने खलदून गरनाता पहुँचा तो बादशाह एव प्रधान मत्री दोनो ने उसे हाथो हाथ लिया और वह उनका विश्वासपात्र बन गया।

१३६४ ई० में कास्तिल्ला के ईसाई बादशाह पेडरो प्रथम "अत्याचारी" के पास उसे एक शिष्ट-मडल का नेता बनाकर इस आशय से भेजा गया कि वह ईसाई बादशाह एव मुसलमानो में सन्धि करा दे। इब्ने खलदून की पेडरो से सेविल में, जो उसके पूर्वजो का वतन था, भेंट हुई। पेडरो इब्ने खलदून के उत्तरी अफ़्रीका की राजनीतिक दशा के ज्ञान के विषय में सुनकर तथा यह जानकर कि उसके पूर्वज सेविल

के ही निवासी थे, वडा प्रभावित हुआ। उसने इब्ने खलदून को अत्यधिक प्रोत्साहन प्रदान किया और उसके पूर्वजों की जागीर उसे वापस कर देने तथा अपने राज्य में ठहर जाने का उससे आग्रह किया। किन्तु इब्ने खलदून ने यह स्वीकार न किया और अपना कार्य समाप्त करके वादशाह के उपहार लेकर वह गरनाता लौट आया। पेडरो के राज्य में उसे मुसलमानो के प्राचीन राज्य के ऐश्वर्य एव गौरव के अवशेष देखने एवं मुसलमानो की वर्तमान स्थिति पर गौर करने का अवसर मिला। उसने देखा कि मुसलमानो का प्रभुत्व किस प्रकार घटता जा रहा है। वह जिस सन्धि के लिए गया था वह वरावर के राज्य वालों की सन्धि न थी, अपितु एक उन्नति के पथ पर अग्रसर तथा दूसरे पतनशील राज्य के मध्य की सुलह थी।

गरनाता में इब्ने खलदून ने अपने परिवार को भी किसिन्तीना से बुलवा लिया। मुहम्मद पचम युवक एव जागरूक भी था, अत इब्ने खलदून ने उसे अपने विचारो से प्रभावित करना प्रारम्भ कर दिया। इब्ने खलदून समझता था कि सम्भवत उसकी शिक्षा द्वारा मुहम्मद अपने राज्य को उसकी कल्पना के "आदर्श राज्य" में परिवर्तित कर सकेगा। अवू सालिम के दरवार में उसे इस दिशा में कोई सफलता न प्राप्त हुई थी, सुल्तान ने उसकी ओर अधिक ध्यान न दिया था। उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका में सभ्यता एव सस्कृति की वे परम्पराएँ भी न थी जो स्पेन में थी, अत वह मुहम्मद की शिक्षा में अपनी पूरी योग्यता का प्रयोग करने लगा। उसने "अल्लका लिल सुल्तान" नामक एक ग्रथ की रचना भी की जिसमें सुल्तानो के लिए जिस तर्क-शास्त्र की आवश्यकता होती है उसका उल्लेख किया।

सुल्तान का प्रवान मत्री इब्नुल खतीव, इब्ने खलदून एव मुहम्मद की गोष्ठियो के विपय में सन्देह करने लगा। जव उसे इब्ने खलदून की योजनाओ का पता चला तो उसके क्रोव की कोई सीमा न रही। इब्नुल खतीव का सभवत विचार था, जो वाद में ठीक ही निकला कि इब्ने खलदून मुहम्मद को जिस मार्ग पर ले जाना चाहता है, मुहम्मद उसके योग्य नही। इससे राज्य को वडी हानि उठानी पडेगी। वह इब्ने खलदून की विद्वत्ता से प्रभावित था और इब्ने खलदून भी आजीवन उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करता रहा।

विजाया मे

इसी बीच में वनी हफस के अवू अब्दुल्लाह ने जून १३६४ ई० में विजाया पर अधिकार जमा लिया। उसने इब्ने खलदून को भी अपने राज्य में आमन्त्रित किया और

उसे हाजिब बना देने का आश्वासन दिलाया। इब्ने खलदून ग़रनाता से चल दिया और मार्च १३६५ ई० में बिजाया पहुँच गया। मुहम्मद पचम उसके प्रस्थान से बडा प्रभावित हुआ और उसने ११ फ़रवरी १३६५ ई० को इब्नुल खतीब से लिखवा-कर उसके पास एक पत्र भिजवाया जिसमें उसकी अत्यधिक प्रशसा की गयी थी। इब्ने खलदून अपने बिजाया के जीवन से बडा सतुष्ट था। वह अपनी आत्म-कथा में लिखता है—"सुल्तान ने आदेश दिया कि दरबारी रोजाना प्रात काल मेरे दरबार में उपस्थित हुआ करें। मैंने शासन का कार्य संभाल लिया और राज्य के हित एव अन्य समस्याओ का पूर्ण रूप से समाधान करने लगा।"

"सुल्तान ने कस्बा के महाविद्यालय के आचार्य का पद भी मुझे प्रदान कर दिया। मैं अत्यन्त व्यस्त रहने के बावजूद, दिन के प्रथम भाग में अपना कार्य समाप्त करके कस्बा महाविद्यालय में जाकर बैठ जाता और वहाँ पठन-पाठन का कार्य प्रारम्भ कर देता और उसे कभी न त्यागता।"

अबू अब्दुल्लाह् यद्यपि युवक था, किन्तु उसमें एक गुणवान् बादशाह बनने की योग्यता न थी। शीघ्र ही उसकी प्रजा उसकी कठोरता एव निष्ठुरता के कारण उससे बुरी तरह असतुष्ट हो गयी। उसी समय में अबू अब्दुल्लाह् का चचेरा भाई अबुल अब्बास भी किसिन्तीना का बादशाह् था। उसने अबू अब्दुल्लाह् की प्रजा की सहायता से उसके विरुद्ध युद्ध छेड दिया। इस युद्ध में इब्ने खलदून ने अबू अब्दुल्लाह् के राज्य की बडी सहायता की। बिजाया में धन की कमी हो जाने के कारण वह बिजाया के पर्वतीय बरबरो से कर वसूल करने के लिए तैयार हो गया, यद्यपि यह कार्य बडा खतरनाक था। मई १३६६ ई० में अबू अब्दुल्लाह् की मृत्यु हो गयी। इब्ने खलदून ने उसके उत्तराधिकारी के राज्य में रहना पसन्द न किया और वह अबुल अब्बास के पास चला गया। किन्तु उसने वहाँ पहुँचते ही भाँप लिया कि अबुल अब्बास से उसकी अधिक दिनो तक नही निभ सकती और उसने आग्रह करके वहाँ से चले जाने की अनुमति प्राप्त कर ली।

बिस्करा मे

ट्युनिस से १३५२ ई० में उसके चले जाने के उपरान्त रियाह् दवाविदह् अरबो को राज्य प्राप्त हो गया। उनकी अनुमति से उसने बिस्करा में निवास करना प्रारम्भ कर दिया। इसी बीच में उसे पता चला कि उसके भाई यहया को अबुल अब्बास ने बन्दी बना दिया है। अब इब्ने खलदून बड़े असमंजस में पड़ गया।

उस समय उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीक़ा में, तलेम्सान में अब्दुल वादियो का राज्य था जिनका वादशाह अवू हम्मू था। ट्युनिस के अवू हफ़स उसके सहायक थे। उनके विरोधियों में वे अब्दुल वादी थे जो तलेम्सान पर अपनी राज्यसत्ता स्थापित करना चाहते थे। वनी हफ़स का अवुल अव्वास, जो किसिन्तीना तथा विजाया का वादशाह था, उनका सहायक था। अरव के कवीले इस अवसर पर कभी इस पक्ष का और कभी उस पक्ष का साथ देने लगते थे। इब्ने खलदून ने इस स्थिति से पर्याप्त लाभ उठाया। उसे अरव कवीलो का वडा अच्छा ज्ञान हो गया था और वह जिस प्रकार चाहता उनसे लाभ उठा लेता था।

तलेम्सान के अवू हम्मू का विवाह विजाया के अवू अब्दुल्लाह से हुआ था जो इब्ने खलदून का मित्र तथा आश्रयदाता था। उसने इब्ने खलदून को अपने राज्य में प्रधान मत्री वना देने का आश्वासन दिलाकर आमत्रित किया। उसका एक पत्र मार्च १३६८ ई० को प्राप्त हुआ, किन्तु इब्ने खलदून ने अपने भाई यहया को जो वदीगृह से मुक्त हो गया था, तलेम्सान भेज दिया और वह स्वय कही न गया। उस समय वह राजनीति की अनिश्चित दशा से निराश हो गया था और अव कुछ समय विद्याव्ययन में व्यतीत करना चाहता था।

इसी वीच मरीनी वश ने फ़ेज़ के सुल्तान अब्दुल अज़ीज़ (१३६६-१३७२ ई०) के नेतृत्व में वहुत अधिक उन्नति प्राप्त कर ली थी। १३७० ई० में उसने तलेम्सान पर चढाई की। इस कारण अवू हम्मू की स्थिति डाँवाडोल हो गयी। अप्रैल १३७० ई० में अवू हम्मू से इब्ने खलदून ने भेंट की, किन्तु अब्दुल अजीज़ की विजयो के कारण वह समझ गया कि उसका उत्तर-पश्चिमी अफ़ीका में रहना उचित नही और उसने स्पेन भाग जाना निश्चय कर लिया, किन्तु इसमें वह सफल न हो सका। मार्ग में ही उसे वन्दी वना लिया गया और अब्दुल अजीज़ की सेवा में उपस्थित किया गया, किन्तु उसे मुक्त कर दिया गया और वह तलेम्सान के समीप अल-उब्वाद चला गया। एक दो सप्ताह वाद ही अब्दुल अज़ीज़ ने उसे अपनी सेवा में सम्मिलित हो जाने के लिए विवश कर दिया। वह ४ अगस्त १३७० ई० को विस्करा पहुँच गया और अरव कवीलो की राजनीति में भाग लेने लगा। दो वर्ष उपरान्त अब्दुल अज़ीज़ ने उसे फेज़ वुलवा लिया और ११ सितम्वर १३७२ ई० को वह अपने परिवार को विस्करा छोडकर फेज़ की ओर चल दिया, किन्तु मार्ग में ही उसे अब्दुल अजीज़ की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ। अवू हम्मू के पक्षपाती वद्दुओ ने उसे मार्ग में वडे कष्ट पहुँचाये। वह लिखता है—"उन लोगो ने हमारा मार्ग रोका और जो कुछ हमारे पास था वह

सब लूट लिया। हममें से कुछ लोग अपने प्राण लेकर दवदू पर्वत की ओर भाग गये और कुछ पैदल ही गये। मै भी उन्ही लोगो में था। दो दिन मैंने बिना वस्त्र के काटे। अन्त में आबादी में पहुँचा और दवदू में जाकर अपने साथियो से मिल गया।" इस तरह की कठिनाइयाँ झेलता हुआ वह किसी न किसी प्रकार फेज पहुँच गया।

पुनः स्पेन में

वहाँ की अनिश्चित राजनीति के कारण उसने फेज से स्पेन चला जाना ही अपने लिए हितकर समझा। उस समय गरनाता में इब्नुल खतीब के स्थान पर इब्ने ज़मरक प्रधान मंत्री था। इब्नुल खतीब की भाँति वह भी अबू सालिम के समय में फेज पहुँचा था और इब्ने खलदून ने उसका भी बडा भव्य स्वागत कराया था। किन्तु इब्ने खलदून के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ थी। फेज़ तथा गरनाता के सम्बन्ध उस समय बहुत बिगड चुके थे और युद्ध छिड जाने तक की नौबत आ गयी थी। फेज़ के शासन ने उसे जाने की अनुमति न दी, किन्तु १३७४ ई० में वह गरनाता पहुँच गया।

गरनाता के सुल्तान मुहम्मद में भी इस समय बड़ा परिवर्तन आ चुका था। इब्नुल खतीब को जैसा भय था वही हुआ। इब्ने खलदून का, दर्शन-शास्त्र से रुचि रखनेवाला बादशाह, बहुत बड़ा अत्याचारी बन चुका था। उसने इब्नुल खतीब को गरनाता से निर्वासित कर दिया। जब वह मरीनी दरबार में चला गया तब भी मुहम्मद उसकी हत्या कराये बिना संतुष्ट न हुआ। जब मुहम्मद को यह ज्ञात हुआ कि इब्ने खलदून ने इब्नुल खतीब की सहायता की थी, तो उसने उसे अपने राज्य से निकलवा दिया।

क़िला इब्ने सलमह मे

इब्ने खलदून गरनाता से हुनैन पहुँचा। हुनैन उस समय तलेम्सान के अधीन था जहाँ सुल्तान अबू हम्मू शासन कर रहा था। अबू हम्मू से इब्ने खलदून के सम्बन्ध अच्छे न थे, किन्तु अबू हम्मू बिजाया-विजय के स्वप्न देख रहा था, अतः उसने इब्ने खलदून से काम लेने का निश्चय कर लिया। इब्ने खलदून के एक मित्र ने भी उसकी बडी सहायता की। वह अबू हम्मू के राज्य में अल-उब्बाद के समीप निवास करने लगा। ५ मार्च १३७५ ई० को उसका परिवार भी फ़ेज़ से वही पहुँच गया।

इसी बीच अबू हम्मू ने उसे एक शिष्ट-मंडल का नेतृत्व सौंपकर दवाविह अरबो के पास जाने का आदेश दिया। इब्ने खलदून ने एकान्तवास करने का निश्चय कर लिया था, किन्तु अबू हम्मू के आग्रह पर उसे यह सेवा स्वीकार करनी ही पडी। उसने सोचा कि सम्भवत इस प्रकार शासन की सेवा से उसे मुक्ति प्राप्त हो जाय। तलेम्सान से प्रस्थान करके वह अरब जुगवह नामक कबीले की सुवैद शाखा के प्रमुख वश औलाद आरिफ के साथ ठहर गया और अपने परिवार को भी वही वुलवा लिया। औलाद आरिफ ने पूरे परिवार को किला इब्ने सलमह में निवास करने की अनुमति दे दी। यह उरान प्रान्त का एक ग्राम तथा किला था जिसे मरीनी वश के अबू इनान ने इन्हें प्रदान कर दिया था। वहाँ इब्ने खलदून को तीन वर्ष से अधिक शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने का अवसर मिल गया।

अव उसकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की हो चुकी थी। अपने जीवन के २० वर्ष तक मुसलमानो के पश्चिमी राज्यो की राजनीति में भाग लेने के कारण उसे इस विपय का उत्तम ज्ञान हो गया था। उसे अनेक महत्त्वपूर्ण राजदूतो, पदाधिकारियो, शासको, कबीले के सरदारो एव विद्वानो से विचार विनिमय का अवसर भी प्राप्त हो चुका था। इतने अधिक वैयक्तिक ज्ञान एव विद्वत्ता की पृष्ठभूमि में उसने किला इब्ने सलमा में अपने इतिहास-ग्रथ की रचना प्रारम्भ की। वह लिखता है—"नवम्बर १३७७ ई० में मैं वहाँ के शान्त वातावरण में ईश्वर की कृपा से पाँच महीने में प्राक्कथन (मुकद्दमे) की रचना पूरी कर सका।" तदुपरान्त इब्ने खलदून ने अरब, वरवर एव ज़नाता का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया। वहाँ कोई वडा पुस्तकालय प्राप्त न था। अव तक उसने जो कुछ लिखा था वह अपनी स्मृति एव उन टिप्पणियो के आधार पर लिखा था जो उसके पास थी। इसी बीच में वह रुग्ण हो गया। वह किसी अच्छे पुस्तकालय की खोज में था, जहाँ वैठकर शान्तिपूर्वक अपने इतिहास की रचना कर सकता। वह लिखता है कि "मेरा हृदय तूनिस (ट्युनिस) की ओर आकृष्ट हुआ जहाँ मेरे पूर्वजो का घर, अवशेप तथा मकवरे थे।

इस समय ट्युनिस में वनी हफस का अवुल अब्बास शासन कर रहा था। ११ वर्ष पूर्व इब्ने खलदून का अवुल अब्बास से सघर्ष हो चुका था, किन्तु उसने जो कार्य प्रारम्भ किया था उसे पूरा करने का अवसर ट्युनिस में ही मिल सकता था, अत उसने अवुल अब्बास को पत्र लिखकर वहाँ के पुस्तकालयो में अध्ययन करने एव अपने जन्म-स्थान तथा अपने पूर्वजो के मकवरो के दर्शन करने की अनुमति माँगी। अवुल अब्बास ने उसकी एव उसके पूर्वजो की विद्वत्ता के कारण उसे तत्काल अनुमति दे दी

और वह नवम्बर अथवा दिसम्बर १३७८ ई० में ट्युनिस पहुँच गया। अबुल अब्बास अब ४३ वर्ष का हो चुका था। समकालीन राजनीति का उसे अच्छा ज्ञान हो गया था और वह उत्तरी अफ्रीका की समस्याओ को भली-भाँति समझने लगा था तथा उनका समाधान करके अपने राज्य को दृढ बनाना चाहता था। उसे इब्ने खलदून के ज्ञान से लाभान्वित होने की बडी इच्छा थी, अत उसने उसे अत्यधिक प्रोत्साहन दिया। वह लिखता है कि "सुल्तान ने मेरा भली-भाँति स्वागत किया और मुझे सतुष्ट रखने का बडा प्रयत्न किया, राज्य की समस्याओ के विषय में मुझसे परामर्श किया। फिर मुझे तूनिस (ट्युनिस) भेजा और अपने हाकिम को आदेश दे दिया कि वह मेरे निवास, वृत्ति एव अन्य आवश्यकताओ का उचित प्रवन्ध कर दे" किन्तु दरबार के विश्वासपात्रो ने उसके विरुद्ध षड्यत्र रचना प्रारम्भ कर दिया।

इब्ने खलदून ने वहाँ शिक्षा देनी प्रारम्भ कर दी, परन्तु प्रसिद्ध फकीह इब्ने अरफह अल वरगमी (१३१६-१४१० ई०) ने उसका विरोध प्रारम्भ कर दिया, कारण कि अधिकाश विद्यार्थी इब्ने अरफह के पास से भाग-भागकर इब्ने खलदून के पास पहुँचने लगे। दरबारवालो ने अबुल अब्बास के कान भरने प्रारम्भ कर दिये और उसे समझा दिया कि इब्ने खलदून को ट्युनिस में छोडना खतरे से खाली नही, अत अबुल अब्बास इब्ने खलदून से अभियानो पर जाने का आग्रह करने लगा। इब्ने खलदून को पठन-पाठन का जीवन त्यागना पसन्द न था। अक्तूबर १३८२ ई० में जब अबुल अब्बास एक अभियान पर जा रहा था तो इब्ने खलदून को भय हुआ कि कही उससे फिर अभियान पर जाने का आग्रह न किया जाय। उसी समय ट्युनिस के बन्दरगाह से एक जहाज सिकन्दरिया जा रहा था, अत. इब्ने खलदून ने हज करने के लिए मक्का चले जाने की अनुमति माँगी। अबुल अब्बास ने उसे अनुमति दे दी और २४ अक्तूबर १३८२ ई० को वह जहाज़ से इस्कन्दरिया के लिए रवाना हो गया। उसका परिवार ट्युनिस में ही रह गया।

इब्ने खलदून ने अपने चार वर्ष के ट्युनिस के निवास-काल में अपने इतिहास-ग्रथो में उस सामग्री के आधार पर, जो ट्युनिस में प्राप्त थी, सशोधन एवं परिवर्तन किये। उसने अबुल अब्बास को भी अपने इतिहास की एक प्रति भेंट की, किन्तु इसमें समकालीन बादशाह की प्रशसा न थी। इससे अबुल अब्बास को और भी अधिक शका हो सकती थी, अत. उसने उसके समाधान हेतु अबुल अब्बास की सेवा में एक कसीदा भेंट किया, जिसके १०१ शेरो में बादशाह की प्रशसा के साथ-साथ इतिहास के विषय में इस प्रकार लिखा गया था—

शेर

और आपके सामने युग एव युगवालो के कुचक्र के सम्वन्ध में उन शिक्षाओं को प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनके गौरव को वे लोग स्वीकार करेंगे जो न्याय-कारी हैं।

* * *

यह पृष्ठ भूतकाल के लोगों के इतिहास की व्याख्या कर रहे है। ये किसी घटना का सक्षिप्त रूप में और किसी का विस्तार से उल्लेख करते है।

* * *

जो तवावेआ, अमालेका और उनसे भी प्राचीन कौमो, समूद एव प्रारभिक आद के गुप्त हाल को ज़ाहिर करते हैं।

* * *

मुजार एव वरवर में से उन लोगो के इतिहास को भी, जो इस्लाम स्वीकार करने के वाद इस्लाम पर दृढ़ रहे।

* * *

इन पृष्ठो की रचना में मैंने प्राचीन काल के विद्वानो की रचना का साराश प्रस्तुत किया है और जिन वातो की ओर से उन्होने उपेक्षा दर्शायी उनका प्रारम्भ से उल्लेख कर दिया है।

* * *

इस अपरिचित विवरण को, जो वनपशुओं के समान वश में न आता था, मैंने ऐसा वश में कर लिया कि अव वाणियाँ मेरे विवरण का अनुकरण करेंगी।

इब्ने खलदून मिस्र में '

४० दिन से अधिक की यात्रा के उपरान्त वह ८ दिसम्वर १३८२ ई० को सिकन्दरिया पहुँचा। इस वार वह हज के लिए मक्का न जा सका और ६ जनवरी १३८३ ई० को काहेरा के लिए रवाना हो गया। उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के देशो के विपरीत यहाँ नगर की सभ्यता एव सस्कृति उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। राजधानी के ऐश्वर्य तथा गौरव ने उसे चकित कर दिया। वहाँ की राजनीतिक दशा उस समय तक पतित न हुई थी। ममलूको के अधीन मिस्र काफी

धन-धान्यसम्पन्न था, किन्तु इब्ने खलदून को शीघ्र पता चल गया कि उन्नत सभ्यता के साथ-साथ वहाँ चरित्रहीनता एव नैतिक पतन का भी अभाव नही। एक नये देश में उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका अथवा स्पेन के समान कोई पद प्राप्त कर लेना सरल न था। किन्तु काहेरा के कुछ विद्वान् उसके पहुँचने के पूर्व ही उसकी विद्वत्ता से प्रभावित हो चुके थे और उसे वहाँ पहुँचते ही हाथों हाथ लिया गया तथा अल अज़हर विश्व-विद्यालय में आचार्य के पद पर नियुक्त कर दिया गया।

उसके पहुँचने के कुछ मास पूर्व मलिक अज़्ज़ाहिर बरकूक (१३८२-१३९९ ई०) मिस्र का सुल्तान हो गया था। नये-नये विद्वानो को आश्रय प्रदान करने में उसकी बडी रुचि थी। इब्ने खलदून शीघ्र ही उसका विश्वासपात्र बन गया और बरकूक की मृत्यु (१३९९ ई०) तक दोनो के सम्बन्ध अच्छे रहे। इब्ने खलदून आजीवन उसके प्रति आभार प्रदर्शित करता रहा। मिस्र पहुँचने पर अल्तून बूगा अल जुबानी (मृत्यु १३९० ई०) इब्ने खलदून का मित्र हो गया। वह बडा प्रभावशाली तुर्क अधिकारी था। उसने इब्ने खलदून का बरकूक से भी परिचय कराया और मिस्र के दरबार के अन्य उच्च पदाधिकारियो से भी।

इब्ने खलदून अपने जीवनकाल के शेष २३ वर्षों में कभी आचार्य, कभी महा-विद्यालय के प्रधान और कभी क़ाज़ी के पदो पर आरूढ़ होता रहा। यदि उसकी युवावस्था में उसे यह पद प्राप्त होते तो वह इनको कभी अच्छी दृष्टि से न देखता, किन्तु अब उसने जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का निश्चय कर लिया था उसके अनुसार यह पद बड़े ही महत्त्वपूर्ण थे। उसे अपनी रचनाओ में संशोधन एव परिवर्धन का भी समय मिलने लगा और वह अधिक शान्ति से इतिहास एव मुकद्दमे को उच्च कोटि के ग्रथ बनाने के लिए समय निकाल सका।

मिस्र के निवास-काल में उसे पूर्व एव पूर्व के देशो के इतिहास तथा राजनीति के अध्ययन का भी अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। बरकूक ने इब्ने खलदून के अफ़्रीकी देशो की राजनीति के ज्ञान से बडा लाभ उठाया। वह जितने वर्ष मिस्र में रहा प्राय अपने देश के ही वस्त्र धारण किया करता था और अपने देशवासियो की यथा-सभव सहायता किया करता था। अपने देश की स्मृति उसके हृदय से न मिट सकी और वह उसे किसी प्रकार की हानि पहुँचते न देख सकता था।

अजहर विश्वविद्यालय में कुछ समय तक आचार्य पद पर कार्य कर लेने के उपरान्त बरकूक ने उसे कमहीयह महाविद्यालय में मालिकी फ़िक़ह का आचार्य नियुक्त कर दिया। उसने १९ मई १३८४ ई० से इस महाविद्यालय में आचार्य पद का कार्य भार

सँभाल लिया। इस अवसर पर उसने जो उद्घाटन-वक्तव्य दिया तथा अन्य स्थानो पर आचार्य पद पर नियुक्ति-विपयक जो उद्घाटन-भापण दिये उन्हें अपनी आत्म-कथा में उद्धृत किया है।

कमहीयह महाविद्यालय के उद्घाटन-भापण में उसने तुर्कों एव वरकूक की प्रशसा के साथ-साथ यह वताया कि वह किस प्रकार आचार्य के कर्त्तव्यो का पालन करना चाहता है। ज़ाहिरीयह महाविद्यालय नया स्थापित हुआ था, अत उसने वहाँ दूसरे ही प्रकार से अपना भापण दिया। वहाँ उसने महाविद्यालय के निर्माता वरकूक की प्रगसा विशेष रूप से की। उसका सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण उद्घाटन-भापण सुरगतमिशीयह महाविद्यालय का था। वरकूक की प्रशसा से प्रारम्भ करके उसने यह वताया कि आचार्य के रूप में उसके कार्य के क्या मुख्य सिद्धान्त होंगे। इसके साथ-साथ उसने इमाम मालिक की "मुवत्ता" का वडा विद्वत्तापूर्ण विश्लेपण किया। इन तीनो भापणो से मिस्र के विद्वान् वडे प्रभावित हुए और उसकी विद्वत्ता का लोहा मानने लगे।

आचार्य के रूप में उसे प्राय फिकह् तथा हदीस की शिक्षा देनी पडती थी, किन्तु वह इतिहास के विषय में भी भापण किया करता था और "मुकद्दमे" पर भी।

८ अगस्त १३८४ ई० को वरकूक ने उसे मुख्य मालिकी काज़ी नियुक्त कर दिया। वीच-वीच में वह इस पद से पृथक् होता रहा, किन्तु फिर भी वह पाँच वार इस पद पर नियुक्त हुआ और जव उसकी मृत्यु हुई तो भी वह मुख्य काज़ी के पद पर आरूढ था। वह कर्त्तव्य परायणता के सामने आलोचकों की अधिक चिन्ता न करता था। उसने भ्रष्टाचार का अन्त कराने तथा "शरीअत" के अनुसार निर्णय करने का घोर प्रयत्न किया। वडे से वडा पदाधिकारी अथवा सम्मानित व्यक्ति उसे प्रभावित करके कर्त्तव्य के सन्मार्ग से विचलित न कर सकता था। स्पेन तथा उत्तर-पश्चिमी अफ़्रीका में उसे सुल्तानो को राजनीति की शिक्षा देकर एक आदर्श राज्य स्थापित करने में असफलता हो चुकी थी। विभिन्न सामाजिक ढाँचो के गहन अध्ययन के कारण उसे विश्वास हो गया था कि किसी प्रकार के प्रचार अथवा भापण द्वारा सामाजिक सुधार सम्भव नही। उसने भली-भाँति यह समझ लिया था कि यदि शासक अपने राज्य को दृढ वना ले, अपनी प्रजा की रक्षा कर सके तथा विद्वानो को आश्रय प्रदान कर सके और आलिम लोग शरीअत एव देश के कानून को भली भाति समझकर उसका पालन कर सकें तो जहाँ एक ओर समाज का कल्याण हो सकेगा वहाँ दूसरी ओर राज्य भी उन्नति कर सकेगा। इन्ने

खलदून ने काज़ी के पद पर आरूढ़ होकर उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार आचरण करने का घोर प्रयत्न किया।

कमहीयह महाविद्यालय के आचार्य का पद ग्रहण करने के उपरान्त ही उसने अपने परिवार को भी मिस्र बुलवा लेने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। अबुल अब्बास, इब्ने खलदून के परिवार को जाने की अनुमति न देना चाहता था। वह समझता था कि सम्भवत. उसके कारण इब्ने खलदून पुन उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका वापस आ जायेगा, किन्तु वरकूक ने अबुल अब्बास को एक पत्र इब्ने खलदून के परिवार को मिस्र आने की अनुमति देने के लिए ८ अप्रैल १३८४ ई० को ट्युनिस भेजा। अबुल अब्बास ने इब्ने ख़लदून के परिवार को जाने की अनुमति दे दी, किन्तु जिस जहाज़ में उसका परिवार आ रहा था वह सिकन्दरिया के बन्दरगाह के समीप अक्तूबर-नवम्बर १३८४ ई० में नष्ट हो गया। इब्ने ख़लदून को इस दुर्घटना से बहुत बडा धक्का पहुँचा।

काज़ी के पद से मुक्त हो जाने के उपरान्त उसे ज़ाहिरीयह महाविद्यालय में मालिकी फिकह का आचार्य नियुक्त कर दिया गया। २९ सितम्बर १३८७ ई० को वह हज के लिए मक्का रवाना हो गया और ८ मास की यात्रा के उपरान्त वापस आया। मार्ग में उसनें पूर्व के बडे-बडे विद्वानों से भेंट की। वापसी के उपरान्त जनवरी १३८९ ई० में वह सुरगतमिशीयह महाविद्यालय में हदीस का आचार्य नियुक्त कर दिया गया। इसके बाद ही बेबर खानकाह के अध्यक्ष का पद भी रिक्त हो गया। आचार्य के पद के साथ-साथ अध्यक्ष का पद भी उसे प्रदान कर दिया गया।

१३८९ ई० में वरकूक के विरुद्ध मिस्र में विद्रोह हो गया और वह राज-सिहासन से वचित कर दिया गया, किन्तु २ फरवरी १३९० ई० को वह पुन. सिहासनारूढ हो गया। इस बीच में इब्ने खलदून को भी मिस्र के अन्य फकीहो की भाँति वरकूक के विरुद्ध एक घोषणापत्र पर हस्ताक्षर करने पड गये थे। वरकक इससे अत्यधिक रुष्ट हुआ। इब्ने खलदून ने अपनी सफाई में एक कविता की रचना करके उसे वरकूक की सेवा में प्रस्तुत किया। वरकूक कविता से वड़ा प्रभावित हुआ और उसने अपने पुराने आश्रित को, जिसकी मिस्र में इतनी उन्नति उसी के कारण प्राप्त हुई थी, क्षमा कर दिया। किन्तु उसके शत्रुओ ने अवसर पाकर उसे बेबर खानकाह की अध्यक्षता के पद से पृथक् करा दिया, यद्यपि वरकूक तथा इब्ने खलदून के पारस्परिक सम्बंध अधिक ख़राव न हो सके। २१ मई

१३९९ ई० को वरकूक ने उसे आचार्य पद के साथ मालिकी काज़ी का पद भी प्रदान कर दिया।

एक मास उपरान्त वरकूक की मृत्यु हो गयी और उसका १० वर्ष का वालक फरज उसके स्थान पर सिंहासनारूढ हुआ। उसने इब्ने खलदून को उन पदो पर, जो उसके पिता ने उसे प्रदान किये थे, आरूढ रहने दिया। १४०० ई० में वह फरज के साथ दमिश्क की यात्रा को गया। वापस होते समय उसने फलस्तीन, येरोशलम, वेथलेहेम तथा हरवोन के दर्शन किये। वहाँ से लौटने के उपरान्त कुछ षड्यत्रकारियो के कारण वह काज़ी के पद से हटा दिया गया।

उस समय तीमूर के तातारी (मुगुल अथवा मगोल) शाम पर वढते चले आ रहे थे और मिस्र खतरे में था। फरज सेना लेकर उनसे युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। इब्ने खलदून को भी, यद्यपि वह काजी के पद से मुक्त हो चुका था, फ़रज के साथ अपनी इच्छा के विरुद्ध जाना पडा। सेना नवम्वर १४०० ई० में युद्ध के लिए रवाना हुई और एक मास उपरान्त दमिश्क पहुँच गयी। तीमूर दमिश्क की ओर रवाना हो चुका था और फरज ने उसके पहुँचने के पूर्व नगर की प्रति-रक्षा की व्यवस्था कर ली। तीमूर के पहुँचने पर एक मास तक दोनो ओर से झडपें होती रही।

जनवरी १४०१ ई० के प्रथम सप्ताह में फरज एव उसके विश्वासपात्रो को पता चला कि सुल्तान के विरुद्ध मिस्र में षड्यंत्र हो रहा है और वे लोग वापस चले गये। दमिश्क वालों की समझ में न आता था कि वे क्या करें। उस समय सैनिक एवं असैनिक अविकारियो में घोर मतभेद हो गया। सैनिक अधिकारी युद्ध को चलाते रहने के पक्ष में थे, किन्तु असैनिक अधिकारी, काज़ी एव फकीह इत्यादि, जिनमें इब्ने खलदून भी सम्मिलित था, दमिश्क को समर्पित कर देने की राय दे रहे थे। अन्त में दमिश्क समर्पित कर दिया गया जिसे तातारियो ने लूट-कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

जव दमिश्क के काज़ी तीमूर की सेवा में उपस्थित हुए तो उसने इब्ने खलदून के विषय में प्रश्न किये और उससे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। क्योंकि सैनिक लोग अव भी द्वारो पर अविकार जमाये हुए थे, अत इब्ने खलदून को दमिश्क की चहार-दीवारी के वाहर रस्सी वाँधकर लटका दिया गया और १० जनवरी १४०१ ई० को उसने तीमूर से भेंट की। इब्ने खलदून तीमूर से कई वार मिला और वह फरवरी १४०१ ई० तक उस युग के विश्वविजेता के साथ रहा।

इब्ने खलदून ने अपनी भेंटो के समय अपने साथियो एव अपनी रक्षा के सम्बन्ध में घोर प्रयत्न किये। उसकी उपस्थिति से तीमूर ने पश्चिम के देशो के विषय में सविस्तर ज्ञान प्राप्त करने एव उसके अनुभव से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। किन्तु इब्ने खलदून ने तीमूर को इस सम्बन्ध में जितने भी उत्तर दिये उनमें इस बात का प्रयत्न किया कि मिस्र अथवा पश्चिम के देशों की कमज़ोरी का तीमूर को जितना कम से कम ज्ञान हो वह अच्छा। तीमूर ने इब्ने खलदून को पश्चिम के देशो का सविस्तर भूगोल लिखने का आदेश दिया और उसका मगोली भाषा में अपने तथा अपने सेना-पतियो के लिए भाषांतर कराया। इब्ने खलदून को सम्भवत अपने इस कार्य से बडा क्षोभ हुआ और जैसे ही वह तीमूर के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हुआ, उसने उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के निवासियो के नाम एक बड़ा लम्बा चौडा पत्र लिखा, जिसमें उसने तातारियो के इतिहास एव तीमूर का बडा विशद वर्णन किया। तीमूर के पास से वापस आते हुए जहाज में इब्ने खलदून की मुलाकात एशिया माइनर के उतमान सुल्तान बायजीद यिलदिरिम के राजदूत से हो गयी। उसके द्वारा इब्ने खलदून को उस ओर के देशों का भी विस्तृत ज्ञान प्राप्त हुआ।

मार्च १४०१ ई० में इब्ने खलदून मिस्र वापस पहुँच गया, और अप्रैल १४०१ ई० में तीसरी बार पुन. काज़ी नियुक्त कर दिया गया, किन्तु मार्च १४०२ ई० में वह अपने पद से पृथक् कर दिया गया। जुलाई १४०२ ई० में वह पुन काज़ी नियुक्त हुआ और सितम्बर १४०३ ई० में पदच्युत कर दिया गया। ११ फरवरी १४०५ ई० को वह फिर क़ाज़ी बनाया गया और मई १४०५ ई० के अन्त में पुन. इस पद से हटा दिया गया। मार्च १४०६ ई० में उसे फिर काज़ी नियुक्त किया गया, किन्तु कुछ दिन उपरान्त १७ मार्च १४०६ ई० को उसकी मृत्यु हो गयी और काहेरा के नस्र द्वार के बाहर सूफिया क़ब्रिस्तान में उसे दफन कर दिया गया।

इब्ने खलदून का परिवार

सम्भवत· उसका विवाह बनी हफ्स के सेनापति मुहम्मद बिन अल हकम (मृत्यु १३४३ ई०) की पुत्री से ट्यूनिस में ही हो गया था, किन्तु जब १३६३ ई० में वह स्पेन जाने लगा तो उसे अपनी पत्नी एवं परिवार वालो को उसके भाई के घर किसिन्तीना भेज देना पड़ा। यद्यपि उसे अपने परिवार वालों से बड़ा स्नेह था, किन्तु किसी एक स्थान पर स्थायी रूप से न रहने के कारण उसे उनसे बार-बार पृथक् होना पड़ता था और कभी-कभी उसके कारण उन लोगो को स्वतंत्रता से वञ्चित कर दिया

जाता था। किन्तु जब उसे मिस्र में शान्ति से कुछ समय रहने का अवसर मिला तो उसने अपने परिवार को वहाँ बुला भेजा। पर जिस जहाज़ में वह परिवार आ रहा था, ट्युनिस से आते हुए वह नष्ट हो गया। उस जहाज़ में उसकी पत्नी एव पाँच पुत्रियों की मृत्यु हो गयी, किन्तु दो पुत्र मुहम्मद तथा अली किसी न किसी प्रकार सुरक्षित पहुँच सके। सम्भवतः इब्ने खलदून ने मिस्र में पुन विवाह किया।

(३)

मुक़द्दमा

इब्ने खलदून ने अपने इतिहास की प्रस्तावना के प्रारम्भ में केवल थोडे से ही पृष्ठ लिखे थे, जिसमें इतिहास के महत्त्व एव इतिहासकारो की सामान्य भूलो तथा उनके कारणों की चर्चा की थी और दिखाया था कि किस प्रकार अपने सामाजिक वातावरण से अनभिज्ञ होने के कारण बड़े बडे इतिहासकार तक भूलें कर जाते हैं। "मुकद्दमे" का शेष भाग वास्तव में उसके इतिहास (कितावुल इब्र) का प्रथम भाग है जिसमें उसने अपने निष्कर्षों की व्याख्या की है और उन्हें उदाहरण सहित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। किन्तु इब्ने खलदून के जीवन-काल में ही प्रस्तावना एव प्रथम भाग दोनो "मुकद्दमे" के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे और एक ही ग्रथ समझे जाते थे।

उसने "मुकद्दमे" की प्रस्तावना में इतिहासकारो की भूलो के सम्बन्ध में १२ उदाहरण दिये हैं, जिनसे पता चलता है कि मनुष्य के प्रकृति एव मानव-समाज सबधी अज्ञान के कारण इतिहासकारो का भ्रम में पड जाना स्वाभाविक है। अत उसके लेखानुसार इतिहासकारो के लिए यह आवश्यक है कि वे आलोचनात्मक दृष्टि से प्रत्येक बात की खोज का सर्वदा प्रयत्न करते रहें और किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व विभिन्न अवसरो पर घटनेवाली घटनाओं की तुलना किया करें। उसने जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं उनकी आलोचना उसने ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक, सैनिक एव आर्थिक दृष्टिकोण से की है। किसी घटना को स्वीकार करने अथवा रद्द करने के पूर्व सुल्तानो के चरित्र, नैतिकता, धार्मिक विचारो एव सामाजिक व्यवहार की भी उसने आलोचना की है और यह दिखाया है कि कभी कभी षड्यन्त्रकारियों द्वारा भी बादशाहो के विरुद्ध झूठी-सच्ची बातें प्रसिद्ध हो जाया करती हैं। ईर्ष्या एव द्वेष तथा अज्ञानता का भी झूठे समाचारो के प्रसिद्ध हो जाने में बडा हाथ होता है। प्रारम्भ के इतिहासकारो की भूल का परिणाम यह होता

है कि वाद के इतिहासकार, जो आलोचनात्मक दृष्टि से घटनाओ का विवेचन नही करते, वे आँख वन्द करके उनका अनुकरण करने लगते है और इतिहास विश्वास के योग्य नही रह जाता। अत इब्ने खलदून ने इतिहास की रचना के लिए ऐतिहासिक घटनाओ की स्वाभाविक स्थिति के ज्ञान को परमावश्यक वताया है। घटनाओ के साथ-साथ उनके सूत्रो के विषय में भी प्रामाणिक ज्ञान की आवश्यकता के विषय में उसने विवेचना की है।

"कितावुल इब्र" की प्रस्तावना में सभ्यता की विशेषताएँ वताते हुए उसने मानव की आदि-कालीन स्थिति से लेकर प्राचीन काल के मेसोपोटामिया, दक्षिणी अरव, मिस्र, ईरान, यूनान एव रोम की सभ्यताओ की पृष्ठभूमि में निष्कर्ष निकाले है।

पहले अध्याय में उसने मनुष्य के प्राकृतिक वातावरण का विश्लेषण करते हुए मनुष्य के सामाजिक वातावरण पर उसका प्रभाव सिद्ध किया है और यह दिखाया है कि मनुष्य के चरित्र पर किस प्रकार जलवायु का प्रभाव पड़ता है तथा अकाल और अल्प-मूल्यता से मनुष्य के शरीर एव चरित्र किस तरह प्रभावित होते है। इसके अतिरिक्त इसी अध्याय में मनुष्य की परोक्ष की वातों में रुचि एव उनके ज्ञान की प्राप्ति के प्रयत्न के सम्वन्ध में आलोचनात्मक परीक्षा की है।

दूसरे अध्याय में आदि-कालीन सभ्यता का मुख्य रूप, जिसे वदवी सभ्यता कहा जाता है, दिखलाया गया है। उस सभ्यता में मनुष्य की आवश्यकताएँ अधिक नही होती। अरव तथा अफ्रीका के वरवरो के जीवन एव सभ्यता में इस समूह का जो स्थान है और ऐसा जीवन उनके चरित्र पर जो छाप डालता है और उनमें जिस प्रकार वीरता एवं प्रति-रक्षा की भावनाएँ उत्पन्न करता है, उसे भली-भाँति स्पष्ट किया है। "असवियत" एव अरवो के सामाजिक जीवन पर उसके प्रभाव का विशेप विवेचन भी इस अध्याय में किया गया है।

तीसरे अध्याय में खिलाफत एव सल्तनत के पारस्परिक सम्वन्ध, धार्मिक प्रचार का नयी सल्तनतो पर प्रभाव, सल्तनत की विशेपताएँ, उसके गुण एव दोष, खिलाफत एव सल्तनत के पद तथा दोनो के पदाधिकारियो के अधिकारो आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

चौथे अध्याय में नगरो की स्थापना, नगर के भवनो के निर्माण, नगर की सस्कृति एव सभ्यता के विकास तथा सल्तनतो का नगर के जीवन एव सभ्यता से सम्वन्ध और नगरो के पतन एव विनाश की चर्चा की गयी है।

पाँचवें अध्याय में मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओ एव जीविकोपार्जन के साधनो, व्यापार, कृषि, कला-कौशल तथा बदवियो एव नगर-वासियो के जीविकोपार्जन के साधनो के अन्तर का उल्लेख किया गया है।

छठे अध्याय में ज्ञान-विज्ञान की क़िस्मो, इस्लामी देशो की शिक्षा-पद्धति तथा मुसलमानो की समस्त प्रचलित ज्ञानशाखाओ का विस्तार से उल्लेख किया गया है। इस प्रकार तत्कालीन सभ्यता एव सस्कृति की कोई ऐसी शाखा शेष नही रही जिसकी इब्ने खलदून ने चर्चा न की हो।

इब्ने खलदून ने प्राचीन एव मध्य-कालीन सभ्यता के अनेक बड़े-बडे केन्द्र देखे थे। मिस्र में तो वह स्वय २३ वर्ष तक रहा। अन्य स्थानो में या तो वह स्वय पहुँचा और या उसने वहाँ के यात्रियो के मुँह से उन स्थानो के पर्यटन के वर्णन सुने। उन स्थानो की सभ्यताओ के अभ्युदय एव उन्नति के ग्रथो का उसने अध्ययन किया था और उनके अवशेष देखकर उनके प्राचीन गौरव का अनुमान लगाया था। इस प्रकार वह इस बात से सतुष्ट हो गया था कि सभ्यता की उन्नति मिल-जुलकर काम करने पर निर्भर है।

इब्ने खलदून के अनुसार समस्त सामाजिक सगठन दो विभिन्न वातावरणो से सम्बन्धित होते है। एक का सम्बन्ध है रेगिस्तान के उस जीवन से जिसे वह "बदवी" जीवन कहता ह, और दूसरे का सम्बन्ध नगर के जीवन से है जिसे वह "हज़री जीवन" कहता है। पहले प्रकार के जीवन में मनुष्य की आवश्यकताएँ थोड़ी एव उसका जीवन सरल तथा सादा होता है। "बदवी" जीवन से इब्ने खलदून का तात्पर्य प्रत्येक स्थान पर खानाबदोशो के जीवन से नही, अपितु उन लोगों के जीवन से भी है जो ग्रामो में निवास करते है और कृषि एव पशु पालन करके जीवन निर्वाह करते है। इसी प्रकार वह नगरो को कृषि एवं कृषको से रहित नही समझता। इस प्रकार विभिन्न सामाजिक सगठन ही उसके अध्ययन का मूल विषय है। सामाजिक संगठन का मूल आधार उसने "असबियत" को बताया है।

"असबियत" अथवा 'असबिया' का ठीक हिन्दी अनुरूप शब्द बता सकना कठिन ह। इब्ने खलदून ने इसे अपने ग्रथ भर में एक बडा प्रशसनीय गुण बताया है। उसके अनुसार प्रत्येक सामाजिक सगठन इसी पर आधारित होता है। उसने "बदवी" समाज में इसे बडा महत्त्व दिया है और नगर की सभ्यता एव संस्कृति के पतन तथा बडे-बड़े राज्यो के विनाश का मूल कारण "असबियत" की कमी अथवा एकान्त अभाव ही बताया है।-

अरवी साहित्य में भी "असवियत" शब्द का वहुत अधिक प्रयोग हुआ है। प्राचीन "वदवी" कवीलों के जीवन का आधार ही, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, असवियत था। असवियत के अधीन कोई भी व्यक्ति अपने कवीले के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति को जिन्दा रहने का पात्र न समझता था। अनुचित पक्षपात एव न्याय अन्याय आदि सभी वातो में कवीले का गुणगान करना ही "असवियत" माना जाता था। इस्लाम के अभ्युदय के उपरान्त इस भावना का इस्लाम की उन्नति के मार्ग में वाधक होना स्वाभाविक ही था, अत. इस्लाम ने "असवियत" की घोर निन्दा की है। किन्तु इब्ने खलदून ने कवीले अथवा समूह वालों के पारस्परिक प्रेम, सगठन, दु ख-सुख में एक-दूसरे का साथ देने, युद्ध के समय एक-दूसरे की रक्षा करने एवं हाथ वटाने तथा अन्याय एव अत्याचार को रोकने की भावनाओ को "असवियत" वताया है। इसका अर्थ केवल अनुचित पक्षपात, अधा प्रेम एव अपनी शक्ति का सगठन करके दूसरो पर अत्याचार करना नही है।

कुछ अन्य अरवी भाषा के लेखकों ने भी इस भावना को प्रशसनीय वताया है। इतिहासकार इब्ने असीर के अनुसार कवीलो की कठिनाई के समय सहायता करने का नाम "असवियत" है। इब्नुल खतीव ने लिखा है कि "असवियत का उपयोग देश अथवा कौम के प्रेम को जागृति देने के लिए किया जा सकता है, अत इसकी कोई आलोचना नही करनी चाहिए।" 'वदवी' कवीलो का, जिनमें न तो कोई शासन होता है और न कोई विधान, जीवन निर्वाह "असवियत" के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से सम्भव नही। यही सिद्धान्त पशुओ के लिए, चरागाहों की खोज में फिरनेवाले क़वीलों एव उन ग्रामीणो के लिए भी लागू किया जा सकता है जो किसी शासन के अधीन नही होते। इस सम्बन्ध में वशो अथवा कुलो के ऐक्य का भी वडा महत्त्व है। खून के रिश्ते वडे मजवूत होते है। उनके प्रभाव से यदि कोई मनुष्य अपने किसी निकटतम सम्वन्धी पर अत्याचार होते देखता है अथवा उसे खतरे में फँसा हुआ पाता है तो उसका रक्त खौलने लगता है। पारस्परिक स्नेह एवं प्रेम द्वारा भी सहानुभूति एवं निष्ठा की ऐसी ही भावना उत्पन्न हो जाती है। इसी आधार पर इब्ने खलदून ने "असवियत" को दो भागो में विभाजित किया है, एक साधारण और दूसरी विशेष। विशेष "असवियत" निकटतम सम्वन्ध के कारण उत्पन्न होती है और साधारण "असवियत" पूरे कवीले अथवा समूह में पायी जाती है। इस प्रकार धीरे-धीरे कवीलो के जिस वंश अथवा घराने में अत्यधिक "असवियत" पायी जाती है वही राज्य का स्वामी वन जाता है। उस पर अन्य कौम का कोई आदमी

शासन नही कर सकता। इस प्रकार इब्ने खलदून के अनुसार " असवियत " के कारण ही स्वाभाविक रूप से नये राज्यो एवं शासन का अभ्युदय होता है। " असवियत " के बल पर ही बादशाह अपनी कौमवालों तथा अपनी प्रजा पर अधिकार स्थापित रखता है। यदि एक कबीले के विभिन्न घरानो की अलग अलग " असवियत " हो तो एक शक्तिशाली " असवियत " का होना परमावश्यक है जिसे देश अथवा राज्य की " असवियत " कहा जा सकता है। यदि ऐसी कोई " असवियत " न हो तो कबीले एवं वश का सगठन छिन्न-भिन्न हो जायगा। जिस कौम में " असवियत " की भावनाएँ दृढ हो जाती है उसका राज्य सुगमतापूर्वक नष्ट नही हो पाता। यदि एक वश से राज्य निकल जाता है तो दूसरे वश को प्राप्त हो जाता है। जब राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तो अन्य कौमो एव सभ्यताओ से उनका सम्पर्क बढ जाता है। उनकी " असवियत " की भावनाओ का धीरे धीरे पतन होने लगता है, इस कारण राज्य का भी विनाश हो जाता है। एक " असवियत " वाली शक्तिशाली कौम को दूसरी कमजोर " असवियत " वाली कौम पर शनै. शनै राज्य प्राप्त करने में सुगमता होती है और उसके राज्य का क्षेत्र भी बढ़ जाता है, किन्तु एकाएक बहुत-से राज्यो को केवल " असवियत " के सहारे पर विजय कर लेना सम्भव नही।

इस स्थान पर अरबो की विजय के लिए, जो उन्होने हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के लगभग ३० वर्ष के भीतर प्राप्त कर ली, उसे एक पृथक् सिद्धात निर्धारित करना पडा। इतने महान् कार्य को सम्पन्न कर लेना उसके निकट केवल " असवियत " द्वारा सम्भव न था। उसके लिए इब्ने खलदून को धर्म का सहारा लेना पडा। उसने एक नया सिद्धांत प्रस्तुत किया कि अरब वालो को जब कभी प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो धर्म के प्रचार के कारण ही हुआ। उसने अरबो की विजयो में उनकी आर्थिक आवश्यकताओ का भी हाथ स्वीकार किया है, किन्तु इस विषय में वह अन्य मुसलमान विचारको से अलग होकर स्वतन्त्र कारण न सोच सका और " असवियत " एव आर्थिक आवश्यकताओ के सिद्धात को अरबो की प्रारम्भिक विजयों पर लागू न कर सका। बनी उमय्या की खिलाफत के प्रति श्रद्धा के कारण उसने खिलाफत तथा इमामत के सिद्धान्तो और उनके कारनामों को साधारण सल्तनतो के सिद्धातों से अलग कर दिया तथा दोनो का सविस्तर उल्लेख किया। पर वह अपने इस सिद्धात को कहीं भी न भूला कि सभ्यता के विकास का अध्ययन मनुष्य की सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओ की पृष्ठभूमि में करना चाहिए।

मुकद्दमे की ख्याति

इब्ने खलदून ने अपने मुकद्दमे में सभ्यता के विकास का जिस प्रकार तर्कपूर्ण विवरण दिया है, उसका अनुकरण कोई अरबी अथवा फारसी लेखक न कर सका। सम्भवत. किसी ने इस प्रकार का कोई किसी अन्य ग्रथ लिखने की चेष्टा भी नही की थी। किन्तु उसके कार्य के महत्त्व से उसके समकालीन एव बाद के सभी विद्वान् प्रभावित दीख पड़ते हैं। इतिहास को उसके बताये हुए शोधपूर्ण नियमो के आधार पर अनेक विद्वानो ने लिखने का प्रयत्न किया है। मक्के के इतिहासकार अल-फासी (१३७३–१४२९ ई०) ने अपने "इक्द" नामक ग्रथ में इब्ने खलदून के हवाले दिये हैं। १४२५ ई० के लगभग मुहम्मद बिन अहमद बिन मुहम्मद इब्ने अज्ज़मलकानी ने इब्ने खलदून के इतिहास के कुछ अश "तज़किरा" नामक अपने ग्रथ में उद्धृत किये हैं। मकरिज़ी, इब्ने हजर तथा सखावी, अस्सुयूती तथा अन्य १५वी शती ईसवी के विद्वानों ने उसके ग्रथ से लाभ उठाया है।

१६वी तथा १७वी शती ईसवी के विद्वानो ने भी उसकी रचना के महत्त्व को समझने का प्रयत्न किया है। १७वी शताब्दी ई० के प्रारम्भ में उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के एक विद्वान् अल मकर्री ने उसकी रचनाओ का अपने ग्रन्थो में अत्यधिक प्रयोग किया है, किन्तु उतमान तुर्को ने इब्ने खलदून की रचनाओ एवं विचारो से सबसे अधिक लाभ उठाया। बिरसी एफिन्दी, ताशकोम रूज़ादेह (१४९५–१५६१ ई०), हाज्जी खलीफा (१६०९–५७ ई०), तबए बे (लगभग १६७०) नाएमा (१६८८–८९–१७१६ ई०) आदि विद्वान् तथा १८वी शती ईसवी के एव उसके बाद के तुर्की विद्वान् उसकी रचनाओ से प्रभावित थे।

१९वी शती ईसवी के प्रारम्भ से यूरोप वालो ने भी इब्ने खलदून तथा उसके "मुकद्दमे" का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। सामाजिक शास्त्र, राजनीति एव इतिहास की रचना के सम्बन्ध में बहुत-से ऐसे नये विचार, जिनका प्रचार यरोप मे बाद में हुआ, इब्ने खलदून १४वी शती ईसवी में अपने मुकद्दमे में व्यक्त कर चुका था।

ऐरनोल्ड जे. टुआइनबी (Arnold J. Toynbee) ने लिखा है–"अब्दुर्रहमान इब्ने मुहम्मद इब्ने खलदून अल हज़रमी ट्यूनिस निवासी (१३३२–१४०६ ई०) अरबी प्रतिभाशाली व्यक्ति था, जिसने व्यस्त आयु के कार्यरत जीवन के ५४ वर्षो की अवधि के ४ वर्ष से भी कम के समय में अपनी साहित्यिक जीवन-कृति

की रचना की, जिसकी तुलना, सूक्ष्म दृष्टि तथा कल्पना की गभीरता, विस्तार एव वौद्धिक शक्ति के विचार से थ्यूसीडाइड्स या मेकेवली की कृति से की जा सकती है। इब्ने खलदून का तारा उस अवकार की, जिसमें से होकर वह चमकता है, पृष्ठभूमि में और भी अधिक प्रकागमान है, क्योंकि यदि एक ओर थ्यूसीडाइड्स, मेकेवली तथा क्लेरेन्डन को अपने-अपने दीप्तिमान् देशों तथा कालो का चमकीला प्रतिनिधि माना जाय, तो दूसरी ओर इब्ने खलदून अपने देश के आकाश का एक मात्र नक्षत्र कहा जायगा। वास्तव में वह उस सभ्यता के, जिसका सामाजिक जीवन सम्पूर्णत. नीरस, दरिद्र, अपवित्र, क्रूर तथा अल्पकालिक था, इतिहास का एक मात्र प्रमुख व्यक्ति है। वौद्धिक क्रियाशीलता के अभीष्ट क्षेत्र में, ऐसा प्रतीत होता है कि वही अपने किसी भी पूर्वगामी से प्रेरित नही हुआ था और न अपने समकालीनो में ही उसे आत्मीयता का अनुभव हुआ। साथ ही साथ अपने अनुगामियो में भी उसने प्रेरणा की चिनगारी प्रज्ज्वलित की, तथापि उसने अपने विश्व-इतिहास के मुकद्दमे में इतिहास के ऐसे दर्शन की कल्पना तथा उसका प्रतिपादन किया है जिसके कारण नि सन्देह ही वह अपनी भाँति की एक महान् कृति के रूप में है, जिसकी रचना किसी भी व्यक्ति ने किसी भी काल अथवा स्थान में कभी की है। व्यावहारिक क्रियाशीलता के जीवन के प्रति क्षणिक उपेक्षा ने ही इब्ने खलदून को अपने रचनात्मक विचारो को साहित्यिक रूप देने का अवसर दिया है।"[१]

जार्ज सार्टन (George Sorton) ने लिखा है—"इब्ने खलदून एक इतिहास-कार, राजनीतिज्ञ, समाज-शास्त्र-वेत्ता, अर्थशास्त्र-ज्ञाता, मानवीय मामलो के वर्तमान तथा भविष्य के इतिहास को समझने के निमित्त उनका गहन अध्ययन करनेवाला तथा मानव जाति के भूतपूर्व इतिहास का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का इच्छुक व्यक्ति था। वह मध्यकालीन युग का सवसे महान् ऐसा इतिहासकार ही केवल न था, जो वौने अल्पज्ञ इतिहासकारो के सम्मुख देव के समान प्रतीत होता है, अपितु वह इतिहास के प्रथम दार्शनिको में से एक है और मेकेवली, वोडिन, वाइको, काम्ते तथा करनॉट का पूर्वगामी है। मध्ययुगीन ईसाई इतिहासकारो में केवल दो एक ही ऐसे है जिनकी तुलना उससे की जा सकती है। उदाहरणार्थ आटोवान फ्रेजिग तथा

1. *A Study of History*, Vol III, Arnold J. Toynbee. Royal Institute of International Affairs And Oxford University Press

सैल्सवरी का 'जान', परन्तु वास्तविक रूप से उनमें व इसमें उससे भी अधिक अन्तर है जितना इसमें और वाइको में है। विलक्षण बात यह है कि इब्ने खलदून ने उन विधियो की कल्पना करने का साहस किया जो आजकल ऐतिहासिक शोध कार्य की विधियाँ कही जाती है।"[१]

रावर्ट फ्लिट (Robert Flint) ने कहा है—"जहाँ तक इतिहास, विज्ञान अथवा दर्शन क्षेत्र का सम्बन्ध है, अरबी साहित्य उसका एक अत्यन्त देदीप्यमान अलकार है। न तो परिनिष्ठित और न ही मध्यकालीन ईसाई ससार में ऐसी चमक-दमक का निकटवर्ती कोई अन्य व्यक्ति पाया जाता है। केवल इतिहासकार की कोटि के इब्ने खलदून (१३३२-१४०६ ई०) से श्रेष्ठतर अनेक लोग अरबी लेखको में हो चुके है, परन्तु इतिहास सिद्धान्तज्ञ (थ्योरिस्ट) के रूप में उनमें से किसी भी काल अथवा किसी भी देश में वाइको के समय तक, जिसका प्रादुर्भाव ३०० वर्ष वाद हुआ, इब्ने खलदून के तुल्य कोई न हुआ। अफलातून, अरस्तू तथा आगस्टाइन उसकी वरावरी के थे, शेष सव इस योग्य भी न थे कि उनका उल्लेख उसके नाम के साथ किया जाय। अपनी मौलिकता, दूरदर्शिता, विद्वत्ता तथा ग्रहणशीलता के कारण वह प्रशसनीय था। ऐतिहासिक दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र में वह अपने सहधर्मियो तथा समकालीनो में उसी प्रकार अद्वितीय एव पृथक् था जिस प्रकार काव्यक्षेत्र में दान्ते तथा विज्ञान के क्षेत्र में रोजर वेकन अपने-अपने समकालीनो में थे। अन्य अरवी इतिहासकारो ने यद्यपि वह सब ऐसी सामग्री, जिसका प्रयोग वे कर सकते थे, अवश्य एकत्र की, किन्तु उसका वास्तविक उपयोग इब्ने खलदून ने ही किया।"[२]

मुकद्दमे की हस्तलिखित प्रतियाँ

अरवी एवं फारसी के वहुत कम ऐसे ग्रथ होगे जिनकी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ इतनी अधिक संख्या में मिलती हो, जितनी इब्ने खलदून के मुकद्दमे की। सम्भवत. इसका कारण उसके ग्रथ की प्रसिद्धि है जिससे प्रभावित होकर विद्वानो

1 *Introduction To The History of Science*, George Sorton. Baill ier, Tindall and Cox.

2 *History of the Philosophy in History*, Robert Flint. Wm. Black & Sons Ltd.

ने १९वी शती ई० से ही मुकद्दमे की प्रामाणिक प्रतियो की खोज एव रक्षा का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया था।

प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति तुर्की के सुलेमानिया पुस्तकालय की दामाद इब्राहीम पोथी है। इसमें ८६६ न० की प्रति पर नकल करने की कोई तिथि नही दी है, किन्तु ८६७ न० की प्रति उसी व्यक्ति की नकल की हुई है जिसने ८६६ न० की प्रति नकल की है। ८६७ न० की प्रति ४ सफर ७९७ हि० (२९ नवम्बर १३९४ ई०) को तैयार हुई थी। लिपिकार का नाम अब्दुल्लाह बिन हसन बिन शिहाब है। प्रति के प्रथम पृष्ठ से पता चलता है कि यह मिस्र के ममलूक सुल्तान अज़्ज़ाहिर बरकूक (१३८२–९९ ई०) के लिए तैयार की गयी थी और उसे इब्ने खलदून ने बरकूक को नम्रतापूर्वक समर्पित किया था।

(२) दूसरी प्रति 'फेज़ प्रति' के नाम से प्रसिद्ध है जो ७९८ हि० (१३९६ ई०) में नकल की गयी थी। इब्ने खलदून ने अपने लिखे सम्पूर्ण इतिहास को फेज की कैरवान मस्जिद को वक्फ करके भेजा था। "मुकद्दमा" इसी का एक भाग था।

(३) तुर्की येनो समी नं० ८८८, १० जमादि-उल-अव्वल ७९९ हि० (९ फरवरी १३९७ ई०) इब्ने खलदून के हाथ की लिखी हुई एक प्रति से नकल की गयी थी।

(४) तुर्की के अतिफ एफिन्दी पुस्तकालय की पोथी न० १९३६ भी इब्ने खलदून के जीवन-काल में ही नकल की गयी थी। यह प्रति कई विद्वानो के पास रह चुकी है। इनमें से सर्वप्रथम टिप्पणी मुहम्मद बिन यूसुफ बिन मुहम्मद अल इस्फीजावी की है, जो कि शनिवार २४ शाबान ८०४ हि० (२९ अप्रैल १४०२ ई०) की लिखी हुई है।

(५) तुर्की की हुसेन चेलेबी की हस्तलिखित प्रति नं० ७९३ जो बरस्सा में है, इसकी नकल ८ शाबान ८०६ हि० (२० फरवरी १४०४ ई०) को समाप्त हुई। लिपिकार का नाम इबराहीम बिन खलील अस्सादी अश्शाफेई अल-मिस्री है। यह भी कई विद्वानो के पास रह चुकी है जिनमें एक यहया बिन हिज्जी अश् शाफेई थे, जिनकी ८५० हि० (१४४६–४७ ई०) की एक टिप्पणी भी हस्तलिखित प्रति पर वर्तमान है।

(६) अहमते तृतीय, ३४०२ नं० एक अन्य हस्तलिखित प्रति है जिसकी नकल करनेवाले ने कोई तारीख नही लिखी, किन्तु इस प्रति के एक स्वामी मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान अद्दारीब ने ८१८ हि० (१४१५–१६ ई०) तारीख उस पर डाली है।

इनके अतिरिक्त तुर्की, पेरिस, मिस्र एवं अन्य स्थानों पर बाद की तारीखो की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।

संस्करण

इब्ने खलदून के "मुकद्दमे" के इस समय तक अनेक संस्करण भी हो चुके है जिनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण निम्नाकित हैं।

(१) ई० एम० क्वातरमेर (E. M. Quatremere) द्वारा सम्पादित १८५८ ई० का पेरिस का सस्करण Prolégomènes d' Ebn-Khaldoun (प्रोलेगेमेने डा इब्ने खलदून) के नाम से तीन भागो में प्रकाशित हुआ था। यह सस्करण चार हस्तलिखित पोथियो पर आधारित है।

(अ) बिबलोथेके नेशनेल न० १५२४, जो ११४६ हि० (१७३३ ई०) की है।

(आ) आमर के कैटलाग की म्युनिख की हस्तलिखित प्रति नं० ३७३, जो ११५१ हि० (१७३८ ई०) की है।

(इ) दामाद इबराहीम की पोथी जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

(ई) १०६७ हि० (१६५६–५७ ई०) की क्वातरमेर की हस्तलिखित पोथी, जो अब बिबलोथिके नेशनेल की हस्तलिखित पोथी न० ५१३६ है।

(२) लगभग उसी समय सफर १२७४ हि० (सितम्बर-अक्तूबर १८५७ ई०) में नस्र अल-हूरीनी द्वारा सम्पादित "मुकद्दमा" क़ाहेरा के समीप बूलाक नामक स्थान से प्रकाशित हुआ।

(३) १२८४ हि० (१८४७–४८ ई०) में "इब्र" का सम्पूर्ण ग्रथ बूलाक से सात भागो में प्रकाशित हुआ, जिसमें से प्रथम भाग "मुकद्दमे" से सम्बन्धित है।

(४) मिस्र के डा० अली अब्दुल वाहिद वाफी ने १९५७–५८ ई० में इब्ने खलदून के "मुकद्दमे" का एक उत्तम सस्करण मिस्र से प्रकाशित कराया है, जिसमें बहुत-सी हस्तलिखित पोथियो का उपयोग करके पिछले सस्करणो की अनेक अशुद्धियाँ ठीक की गयी है।

(५) इन मुख्य संस्करणो के अतिरिक्त बूलाक के संस्करण के आधार पर बहुत-से सस्करण हुए है जिनमें एक १८७९–८० ई० में बैरूत से प्रकाशित हुआ था। इसके बाद १९०९ ई० तथा १९३० ई० में भी अनेक संस्करण हुए।

अनुवाद (तुर्की)

१७३० ई० में पीरज़ादे एफ़िन्दी ने मुकद्दमे का आद्योपान्त अनुवाद किया, जो काहेरा से १२७५ हि० (१८५९ ई०) में प्रकाशित हुआ।

फ़्रांसीसी

"मुकद्दमे" का फ़्रासीसी भाषा में अनुवाद तीन भागो में क्रमश १८६२, १८६५, तथा १८६८ ई० में पेरिस से प्रकाशित हुआ। इसका अनुवाद डब्लू० एम० स्लेन (W. M. Slane) ने क्वातरमेर (Quatremere) के सस्करण के आधार पर किया था, किन्तु बूलाक के सस्करण तथा पेरिस की हस्तलिखित पोथियो से भी मुकाबला कर लिया गया था। १९३४—३९ ई० में पेरिस से ही इसको पुन. फ़ोटो विधि से छापा गया। यद्यपि कुछ विद्वानो ने अनुवाद में अनेक त्रुटियाँ बतायी हैं किन्तु अधिकाश शोध कार्य इसी अनुवाद के आधार पर होता रहा है।

अंग्रेजी

अंग्रेज़ी में अभी तक पूरे मुकद्दमे का कोई अनुवाद न था, किन्तु १९५८ ई० में फ़्रेंज़ रोज़ेन्थाल (Franz Rosenthal) ने लन्दन से इसका अनुवाद तीन भागो में प्रकाशित कराया है। यह अनुवाद प्रकाशित सस्करणों के अतिरिक्त तुर्की में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर किया गया है। इससे पूर्व भी कुछ अशो के निम्नाकित अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

(१) आर० ए० निकोल्सन (R. A. Nicholson) के Translation of Eastern Poetry and Prose नामक ग्रथ में इसका कुछ अश कैम्ब्रिज से १९२२ ई० में प्रकाशित हुआ था।

(२) १९५० ई० में लन्दन से प्रकाशित चार्ल्स इसावी के An Arab Philosophy of History नामक ग्रथ में इब्ने खलदून के मुकद्दमे के कुछ आवश्यक उद्धरण प्रकाशित हुए थे।

जर्मन

(१) म्युनिख तथा बर्लिन से १९३२ ई० में अरविन रोज़ेन्थाल ने मुकद्दमे के उद्धरण "गेडाकन यूबर डेन स्टाट" (Gedanken Uber den Staat) के नाम से प्रकाशित कराये थे।

(२) ए० शीमेल (A. Schimmel) ने १९५१ ई० में इब्ने खलदून के मुकद्दमे के उद्धरण "आऊस गेवेलटे अब शेनेटे आउस डेयेर मुकद्दमे" (Ibn Chaldun : Ausgewahlte Abschnitte aus der muqaddima) के नाम से प्रकाशित किया था।

उर्दू अनुवाद

(१) इब्ने खलदून के मुकद्दमे का उर्दू अनुवाद सर्वप्रथम मौलवी अब्दुर्रहमान ने किया, जो २०वी शती ई० के प्रारम्भ में तीन भागो में लाहौर से प्रकाशित हुआ था और इसके कई सस्करण हो चुके हैं।

(२) हाल में ही मौलाना साद हसन खाँ यूसुफी ने पूरे "मुकद्दमे" का अनुवाद कराची (पाकिस्तान) से प्रकाशित कराया है।

सै० अ० अ० रिजवी

मुक़द्दमा

प्रस्तावना तथा विश्व-इतिहास (किताबुल इब्र) का प्रथम भाग

प्राक्कथन

इतिहास की व्याख्या

इतिहास का ज्ञान सभी कौमों और नस्लों में प्रचलित है। उसे प्राप्त करने एवं उसके प्रचार हेतु लोग वड़ी खुशी से यात्रा के कष्ट भी उठाते रहे है। निम्न वर्ग के लोगो की भी इस ज्ञान में उतनी ही रुचि है जितनी कि गण्य-मान्य लोगो एव सुल्तानो की। विद्वान् तथा अज्ञ दोनो ही इसे प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते हैं। इतिहास वाह्य रूप से भूतकाल की घटनाओ एव पिछले राज्यो का हाल हमारे समक्ष प्रस्तुत किया करता है। वीते हुए दिन वह हमारे सामने लाकर रख देता है। नाना प्रकार के कथनो एवं उदाहरणो से वह परिपूर्ण होता है और हमारी गोष्ठियो के लिए विचार-विनिमय का वड़ा ही उत्तम विषय रहता है। इतिहास से यह भी पता चलता है कि ससार की दशा में समय-समय पर किस प्रकार परिवर्तन होता रहता है और किस प्रकार विभिन्न कौमो एव राज्यो का प्रादुर्भाव हुआ और किस प्रकार उन्हें उन्नति प्राप्त हुई, किस प्रकार वे पृथ्वी पर फैली और उसे आवाद किया। यहाँ तक कि उनके ऐश्वर्य का युग कैसे समाप्त हुआ और कैसे पतन ने उन्हें किसी अशुद्ध अक्षर की भाँति दुनिया के पर्दे से मिटा दिया। यह तो इतिहास का एक रूप है, किन्तु वास्तव में यदि गहन दृष्टि से देखा जाय तो इतिहास में वडी गूढ वातें भी मिलेंगी। उससे सृष्टि की रचना एव तत्सम्वन्धी कारणो का पता भी चलता है। घटनाएँ जिस धारा में प्रवाहित होती रहती हैं उनका परिचय इतिहास द्वारा मिलता है। वह उनके कारणो एव रहस्यो को वताता है। यही कारण है कि दर्शन-शास्त्र में इतिहास को भी एक स्थान प्राप्त है और यह उचित भी है कि उसकी गणना दर्शन-शास्त्र में की जाय।

इन्ही कारणों से विश्वस्त इस्लामी इतिहासकारों ने ससार की समस्त घटनाओ को सकलित किया और फिर उन्हें ग्रन्थो के रूप में प्रस्तुत किया, किन्तु मूर्खों ने वातें गढ-गढकर उसे असत्य एव मिथ्या घटनाओ का भडार वना दिया। झूठी, अप्रामाणिक

एव निराधार बातें इधर-उधर से लेकर अथवा स्वय गढकर इसमें सम्मिलित कर दी। फिर बाद में आनेवाले उन्ही को मानते रहे और सुनी-सुनायी बातें हम तक पहुँचा दी। न उन्होंने घटनाओ के कारणो पर दृष्टि रखी और न उन विशेष परिस्थितियो पर ध्यान दिया जिनमें वे घटनाएँ घटी और न निराधार एव मिथ्या बातो को इतिहास से पृथक् किया। इस प्रकार के अधिकाश आधुनिक इतिहास शोध एव अनुसधान से शून्य है और निराधार एव कपोल-कल्पित बातो के भडार बने हुए हैं। लोग प्राय आँख मूँदकर एक-दूसरे की नकल ही किया करते है और अयोग्य लोग ज्ञान-विज्ञान पर अधिकार जमाये रहते है तथा अज्ञान का अन्धकार ससार में व्याप्त रहता है। फिर भी सत्य से कोई टक्कर नही ले सकता और उसे सर्वदा विजय प्राप्त होती है। काल्पनिक एव असत्य घटनाओ का इतिहास में मिश्रण करनेवाले जिस प्रकार चाहें झूठी-सच्ची बातो को मिलाते रहें, किन्तु परखनेवाले तथा समझनेवाले खरे-खोटे को पहचान ही लेते हैं, उनकी विद्वत्ता तथ्य की खोज कर ही लेती है।

कुछ इतिहासकार

इस प्रकार यद्यपि बहुत-से लोगो ने इतिहास लिखे है और क़ौमो के विभिन्न विवरणो को सकलित किया है। किन्तु ऐसे इतिहासकार जो प्रसिद्धि एव श्रेष्ठता के क्षेत्र में अग्रसर हो सके और जिन्होने अपने से पूर्व की रचनाओ का निचोड अपने ग्रथो में भरने की चेष्टा की, इतने कम हैं कि उन्हें अँगुलियो पर गिना जा सकता है, अपितु यह कहना चाहिए कि वे तीन-चार से अधिक नही। उदाहरणार्थ इब्ने इसहाक,[1] तबरी,[2] इब्नुल कलबी,[3] मुहम्मद बिन उमर अल वाकेदी,[4] सैफ बिन उमर अल असदी[5] तथा मसऊदी[6]।

१. मुहम्मद बिन इसहाक, मुहम्मद साहब की प्रसिद्ध जीवनी के रचयिता। इनकी मृत्यु बग़दाद में १५० अथवा १५१ हि० (७६७–६८ ई०) में हुई। ये कुछ समय तक मदीने तथा मिस्र में भी रहे।

२. अबू जाफर मुहम्मद बिन जरीर अत्तबरी का जन्म आमुल में २२४ हि० (८३८–९ ई०) में तथा मृत्यु बग़दाद में ३१० हि० (९२३ ई०) में हुई। ये अपने ग्रंथ तारीखुर्रुसुल वल मुलूक के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं।

३. हिशाम बिन मुहम्मद जिनकी मृत्यु २०४ अथवा २०६ हि० (८१९–२० अथवा ८२१–२२ ई०) में हुई।

यद्यपि मसऊदी एव वाकेदी की रचनाओ की भी लोग कटु आलोचनाएँ करते है और विद्वान् एव जानकार लोग उन्हें विश्वस्त नही समझते, किन्तु फिर भी बहुत वडी सख्या में लोग उन घटनाओ को विश्वास के योग्य समझते है जिनका वर्णन उनके इतिहासो में हुआ है और उनकी रचनाशैली की प्रशसा तथा उनका अनुसरण करते हैं। सक्षेप में शोध मे रुचि रखनेवाले व्यक्ति उनके विवरण को विवेक की तराजू में तौलकर स्वय निर्णय कर सकते है कि उसमें क्या-क्या त्याज्य है और क्या स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में ससार में जितनी घटनाएँ घटती है वे विशेष परिस्थितियो में ही घटती हैं और उन्ही पर अवलम्बित होती है।

फिर इन इतिहासकारो के अधिकाश इतिहास साधारण प्रथा एव नियम पर आधारित है। इनमें साधारणत इस्लाम के दो राज्यो, बनी उमय्या एव बनी अब्बास तथा उनके अधीनस्थ प्रदेशो का इतिहास होता है। प्रारम्भ से अन्त तक जो परिणाम उनके राज्यो का हुआ, उसका भी इनमें उल्लेख होता है। उनमें कुछ ऐसे इतिहासकार भी है जिन्होंने इस्लाम से पहले की कौमो एव राज्यो का इतिहास भी विस्तार से लिखा है और उस युग की प्रसिद्ध घटनाओ का भी उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ मसऊदी अथवा उसका अनुसरण करनेवालो का नाम लिया जा सकता है। इसके उपरान्त वे लोग आये जिन्होने स्वातत्र्य के खुले मैदान को त्याग कर अनुकरण के सँकरे एव अँधेरे मार्ग पर चलना प्रारम्भ किया। उन्होने अत्यधिक प्राचीन घटनाओ के वर्णन की उपेक्षा करके केवल अपने ही काल के सविस्तर इतिहास की रचना की। उन्होने केवल अपने नगर एव देश की घटनाओं पर विशद दृष्टि डालकर अपने-अपने राज्यो एव नगरो का इतिहास लिख डाला। उदाहरणार्थ उन्दुलुस का इतिहास-कार अबू हय्यान[1] जिसने अपने इतिहास ग्रथ में केवल उन्दुलुस एव बनी उमय्या के

४. मुहम्मद बिन उमर अल-वाकेदी जिनका जन्म मदीने में १३० हि० (७४७–४८ ई०) तथा मृत्यु २०७ हि० (८२३ ई०) में हुई। ये अपने ग्रन्थ किताबुल मगाज़ी के लिए प्रसिद्ध हैं।

५. सैफ बिन उमर अल-असदी की मृत्यु १८० हि० (७९६–९७ ई०) में हुई।

६. अली बिन हुसेन अल मसऊदी प्रसिद्ध इतिहासकार एवं भूगोलवेत्ता हुए हैं। इनकी मृत्यु ३४५ अथवा ३४६ हि० (९५६ या ९५७ ई०) में हुई। मुरूजुज्जहब व मादनुल जवाहर नामक इनकी रचना बड़ी प्रसिद्ध है।

१. हय्यान बिन खलफ, जन्म ३७७ हि० (८९७–८८ ई०) मृत्यु ४६९ हि० (१०७६ ई०)

दोष उत्पन्न होते हैं, उन्हें भी सामने लाया गया है, ताकि सृष्टि के ढाँचे का भी ज्ञान हो जाय और यह भी पता चल सके कि किस प्रकार शासको ने अपने शासन की रूपरेखा बनायी। इस प्रकार दूसरो के अनुकरण से मुक्ति भी प्राप्त हो गयी है और पिछली कौमो और उनके इतिहास का ठीक ठीक ज्ञान भी। इस तरह इस ग्रथ को मने एक मुकद्दमे एव तीन भागो में विभाजित किया है। उनका विषय-विस्तार निम्नलिखित है—

मुकद्दमा · इतिहास के ज्ञान की श्रेष्ठता, उसके विभिन्न नियमो का निश्चित होना एव पहचान तया इतिहासकारो की भूलो की ओर सकेत और उनकी समीक्षा।

भाग १ . सभ्यता एवं संस्कृति का वर्णन, उनसे सम्बन्धित सस्थाएँ उदाहरणार्थ देश, राज्य, जीविकोपार्जन, उद्योग-धधे, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान एव उनके साधन तया कारण।

भाग २ · अरब, उसके कबीले तया नस्लें, उनके राज्य (आदि काल से आधुनिक समय तक) उनकी समकालीन कौमें तया राज्य, उदाहरणार्थ नबत[1], सुरयानी[2], फारस[3], बनी इसराईल[4], किब्त[5], यूनान[6], रूम[7], तुर्क तथा फिरग[8]।

भाग ३ : बरबर[9] एव उनसे सम्बद्ध जनता और उनके कबीलो का प्रारम्भिक इतिहास, विशेष रूप से मगरिब एव वहाँ के राज्य।

१. उत्तरी अरब का प्राचीनतम राज्य। लगभग ३१२ ईसा-पूर्व में ये लोग काफी शक्ति-शाली हो गये थे। १०५ ई० से इनका पतन प्रारम्भ हो गया।
२. सीरिया वालो का प्राचीन राज्य।
३. ईरान का प्राचीन राज्य।
४. इस्राईलाइट्स जिनका फ़लस्तीन पर राज्य था।
५. काप्ट्स, मिस्र के मूल निवासी।
६. ग्रीस।
७ बाईजण्टाइन।
८ फ़्रैंक अयवा यूरोप निवासी।
९. बारबरे।

इसके उपरान्त मैंने पूर्व की यात्रा की ताकि वहाँ के ज्ञान से लाभान्वित हो सकूँ और हज इत्यादि के उत्तरदायित्व को पूरा कर सकूँ। इसी अवसर पर मैंने ईरानियो एव तुर्कों की सल्तनतो के इतिहास एव उन राज्यो की अधिक जानकारी प्राप्त की। उनके आसपास की समकालीन कौमो एव सुल्तानो का इतिहास पहले बड़ा सक्षिप्त था, किन्तु इस यात्रा के कारण सुगमतापूर्वक उसकी भी पूर्ति हो गयी। इसके साथ-साथ मैं प्रत्येक बात के कारणो पर भी वाद-विवाद कर सका हूँ। इस तरह इस ग्रथ में सृष्टि का पूर्ण इतिहास आ गया है। यह नाना प्रकार के रहस्यो से परिपूर्ण है और राज्यो के कारणो एव स्थिति के विषय में विस्तार से लिखा गया है। इस प्रकार इस ग्रथ में दर्शन के रहस्य भी है और ऐतिहासिक वर्णन भी।

यत इस ग्रथ में अरब एव बरबर जातियो के नागरिको एव बदवी[1] बस्तियो का इतिहास दिया गया है और उनके समकालीन बडे बडे राज्यो का वर्णन भी लिखा गया तथा इनके प्रारम्भिक एव अन्तिम इतिहास के विषय में शिक्षाओ का एक भडार भी प्रस्तुत किया गया है, अत इस ग्रथ का नाम **किताबुल इब्र व दीवानिल मुब्तेदा वल ख़बर फ़ी अय्यामिल अरब वल अजम वल बरबर व मन आसरहुम मिन ज़विस् सुल्तानिल अकबर**[2] रखा। यथासम्भव मैंने कौमो एव राज्यो के प्रारम्भिक इतिहास का वर्णन बडे विस्तार से किया है और पिछली शताब्दियो में जो परिवर्तन हुए तथा जो क्रान्तियाँ हुई, उनके कारणो का विस्तृत उल्लेख करने मे कोई कसर उठा नही रखी। उनकी सभ्यता एव सस्कृति जो-जो रूप धारण करती रही उनका सविस्तर उल्लेख इस पुस्तक में मैंने किया है। उदाहरणार्थ उनके राज्य, उनके धर्म, उनके नागरिक एव ग्रामीण जीवन, उनके सम्मान तथा अपमान, उनकी अधिकता एव न्यूनता, उनके ज्ञान एव उद्योग, उनके कला-कौशल और उनके परिवर्तनशील नागरिक एवं बदवी जीवन का विशेष वर्णन मैंने अपने इतिहास में किया है। इस सम्बन्ध मे जो घटनाएँ घटी उनके साथ-साथ भविष्य में सभाव्य घटनाओ का भी वर्णन किया गया है। इसके साथ-साथ इनकी विशेष परिस्थितियो एव उनके कारणो का भी सविस्तर उल्लेख कर दिया है। इस प्रकार इस ग्रथ में विचित्र और आश्चर्यजनक ज्ञान तथा अन्य रहस्यो के साथ-

१. यायावर, अरब के भ्रमणकारी क़बीलो का जीवन।
२. शिक्षाओं का ग्रंथ, प्रारम्भिक एवं बाद के इतिहासो का संग्रह, अरब, ग़ैर अरब (अजम) बरबर तथा उनके समकालीन प्रतिष्ठित सुल्तानों का इतिहास।

की कसौटी पर जांचा ही और न इस बात पर ध्यान दिया कि एक ही प्रकार की घटनाओ से किस प्रकार के निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। उन्होने न तो सृष्टि की स्वाभाविक दशा तथा राजनीति के नियमानुसार उनकी परीक्षा की, न विवेक, बुद्धि एव ज्ञान से काम लिया। इस कारण वे सत्य एव सन्मार्ग से पृथक् हो गये और कल्पना एव मिथ्या के जगल में भटकते रहे। कहानियो में धन-सम्पत्ति एव सेनाओ की सख्या के प्रश्न पर विशेष रूप से ऐसी भूलें हुई, क्योकि कहानियो में झूठ एव अशुद्ध वर्णन बहुत बडी सीमा तक प्रविष्ट हो सकते हैं। अत नियमो एव सिद्धान्तो के अनुसार इनकी परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

उदाहरणार्थ मसऊदी एव बहुत से अन्य इतिहासकारो ने बनी इसराईल[1] की सेना की सख्या का विवरण देते हुए लिखा है कि जब मूसा[2] ने रेगिस्तान में सशस्त्र सैनिको अर्थात् ऐसे सैनिको की, जिनकी अवस्था २० वर्ष से अधिक थी, गणना करायी तो उनकी सख्या छ लाख अथवा इससे कुछ अधिक निकली। इसे लिखते समय इतिहासकार मिस्र एव शाम[3] के राज्य पर दृष्टि रखना भूल गये और यह न सोचा कि वहाँ इतनी अधिक सेना रखी भी जा सकती है। उन्होने नही सोचा कि जो राज्य बहुत बडा होता है उसमें ही इतनी बडी सेना रखी जा सकती है। राज्य की आय के अनुसार उस पर व्यय किया जाता है। आय को देखते हुए उससे अधिक सेना रख लेना सम्भव नहीं। इसका प्रमाण राज्यो की प्रसिद्ध घटनाओ एव साधारण स्वभाव से मिल जाता है। फिर भी इतनी अधिक सेना के लिए युद्ध करना भी सम्भव नही, कारण कि वहाँ कोई ऐसा बडा मैदान नही जो दृष्टि के पहुँचने की दूरी से दुगुना, तिगुना अथवा इससे भी अधिक बडा हो जहाँ सेना की पक्तियाँ खडी हो सकें। यदि वे किसी न किसी प्रकार खडी हो भी जायँ तो दोनो पक्षो का एक-दूसरे पर आक्रमण करना तथा एक-दूसरे के विषय में सूचनाएँ एव विजय पाना सम्भव नही। इस प्रकार वर्त्तमान काल की घटनाओ का भूतकाल की घटनाओ से एव भविष्य की घटनाओ का वर्त्तमान काल की घटनाओ से साम्य होना चाहिए।

फारस का राज्य बनी इसराईल के राज्य से बहुत बड़ा था, जैसा कि बख्त नस्र[4]

१. इसराईलाइटस।
२. मोज़ेज़।
३. सीरिया।
४. नेबूकदनजर।

के उस पर प्रभुत्व से ज्ञात होता है। उसने उस राज्य को पददलित करके पूर्ण रूप से विजय कर लिया था। बैतुल मुकद्दस[1] को,जो उनके धर्म एवं राज्य का केन्द्र था, उसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, हालाँ कि वह फारस के राज्य का केवल एक हाकिम ही था। उसके विषय में यह भी कहा जाता है कि वह पश्चिम दिशा के सीमान्त भू-भाग का एक सरदार था। फारस वालो का राज्य दोनो इराक[2], खुरासान, मावराउन् नहर[3] और कैस्पियन सागर के दरबन्द तक फैला था। यह राज्य बनी इसराईल के राज्य से कही अधिक बड़ा था। फिर भी फारस के राज्य की सेना इस सख्या तक न पहुँच सकी। उनकी बडी से बड़ी सेना की सख्या जो कादिसिया[4] में एकत्र हुई थी, सैफ बिन उमर अल असदी के वर्णन के अनुसार १ लाख २० हजार थी। यही इतिहासकार लिखता है कि फारस के राज्य की सुव्यवस्थित सेना उस समय दो लाख थी। हजरत आयशा[5] एव जुहरी[6] का कथन है कि कादिसिया में रुस्तम के नेतृत्व में जो सेना साद से युद्ध करने आयी थी उसकी सख्या केवल ६० हजार थी। यदि बनी इसराईल की सेना की सख्या इतनी भी होती तो उनके राज्य का क्षेत्र बहुत अधिक बडा हो गया होता और उनका राज्य दूर-दूर तक फैल चुका होता, क्योकि देशो एव राज्यो के क्षेत्रफल उनके सहायको एव उनकी सेना की अधिकता तथा न्यूनता के कारण घटते-बढते रहते है। ..[7]

१. येरोशलम।
२. मेसोपोटामिया तथा उससे मिला हुआ उत्तर-पश्चिमी फारस।
३. ट्रांसाक्ज़ियाना।
४. कादिसिया नजफ के दक्षिण तथा कूफे की छावनी से १८½ मील है। यहाँ हजरत उमर के सेनापति साद इब्ने अबी वक़्क़ास और ईरान के सेनापति रुस्तम में ३१ मई अथवा १ जून ६३७ ई० को घोर युद्ध हुआ, जिसमें ईरानी हार गये।
५. हजरत अबू बक्र, मुसलमानों के प्रथम खलीफा की पुत्री तथा मुहम्मद साहब की प्रिय पत्नी। इनका ६७ वर्ष की अवस्था में ६७८ ई० में निधन हुआ।
६. मुहम्मद बिन मुस्लिम जिसकी मृत्यु १२३–१२५ हि० (७४० और ७४२-४३ ई०) के मध्य हुई।
७. इतिहासकारों की इस प्रकार की भूलों के सविस्तर उदाहरण यहाँ दिये गये है। उनका अनुवाद नहीं किया गया।

राज्य समाप्त हो जाने के उपरान्त कौमो की दशा, आचार-विचार, ऐश्वर्य एव वैभव सभी में परिवर्तन हो गया और मस्तिष्क से उनका ख्याल भी मिट गया।

स्थिति एव आचार-विचार के परिवर्त्तन का एक व्यापक एव वडा कारण यह है कि प्रत्येक कौम एव जाति अपने वादशाहो के आचार-विचार का पालन करती है। यह दार्शनिक नियम कि "लोग अपने वादशाह के धर्म का पालन करते है," इस रहस्य की ओर सकेत करता है। जब एक राज्य वाले दूसरे राज्य वालो पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते है तो वे विवश होकर अपने से पहले के राज्य वालो की ओर आकृष्ट होते है और उनकी वहुत-सी वातो को अगीकार कर लेते है, किन्तु वे अपनी कौमी विशेषताओ को भी नही त्यागते। इस प्रकार दोनो की आदतो में सघर्ष होता रहता है। इसके वाद जव कोई अन्य राज्य प्रारम्भ होता है तो पराजित राज्य एव विजेता राज्य में पुन. टक्कर होती है किन्तु यह टक्कर पिछले सघर्ष से हलकी होती है। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है, यहाँ तक कि कौमें अपने आचार-विचार में पिछले लोगो से पूर्णत पृथक् हो जाती है।

सक्षेप में जव तक कौमो के राज्यो में निरन्तर रद्दोवदल होती रहेगी तो उनके आचार-विचार एव चरित्र में भी इसी प्रकार परिवर्त्तन होता रहेगा।.. .

आज के युग में शिक्षा जीविकोपार्जन का एक साधन वन गयी है और वश के गौरव एव सम्मान का इससे कोई सम्वन्ध नही है। शिक्षक दरिद्र, अज्ञात एव वड़ा साधारण व्यक्ति होता है, अत वहुत से निम्न वर्ग के लोग तथा शिक्षा देने का व्यवसाय करनेवाले उस उच्च सम्मान का स्वप्न देखने लगते है जिसके वे कदापि पात्र नही होते। वे सुगमतापूर्वक उसे प्राप्त कर लेना सम्भव समझते है। सक्षेप में इन्ही आशाओ में वे अपने आपको भूल जाते है। कभी उनकी आशाएँ टूट भी जाती है और वे निराशा के गर्त में गिर जाते है, किन्तु वे फिर भी उस उत्कृष्ट सम्मान की प्राप्ति असम्भव नही समझते। उन्हें यह ध्यान ही नही आता कि वे भी अन्य उद्योग एव व्यवसाय करने-वालो के ही समान पेशेवर है और उस उत्कृष्ट सम्मान का उनसे क्या सम्वन्ध हो सकता है। इस्लाम के प्रारम्भ एव वनी उमय्या तथा वनी अब्बास के राज्यकाल में शिक्षा की यह दशा न थी जो अव है। शिक्षा को उद्योग एव व्यवसाय के रूप में न समझा जाता था, अपितु मुहम्मद साहव की रवायतों[1] को नकल करना ही शिक्षा समझा जाता था। इस्लाम की अज्ञात वातो को प्रचार की दृष्टि से सिखाना ही शिक्षा थी।

१. वाणी, कथन, परम्परा।

इस प्रकार उत्कृष्ट वश वाले, सम्मानित व्यक्ति एव कौम के बडे-बडे नेता ही शिक्षा दिया करते थे। कुरान एव हदीस की शिक्षा वे प्रचार की दृष्टि से देते थे न कि व्यवसाय की दृष्टि से। उनकी दृष्टि में कुरान शरीफ वह किताव थी जो उनके रसूल पर उतरी थी। यही उनके पथप्रदर्शन का स्रोत थी। इस्लाम उनका धर्म था। इसी किताव की खातिर उन्होंने काफिरो से युद्ध किया और इसी की वजह से उन्हें अन्य कौमो पर प्रभुत्व प्राप्त हुआ। इसी कारण उनकी सर्वदा यही महत्त्वाकांक्षा रहती थी कि वे इसकी शिक्षा अन्य लोगो को प्रदान करें। इस मार्ग में न उन्हें उनके सांसारिक उच्च पद रोक पाते थे और न वश का गौरव। इसका खुला प्रमाण यह है कि मुहम्मद साहव ने वहुत बडे-बडे सहावियो[1] को अरव में इस्लाम की शिक्षा का प्रचार करने के लिए अरवी शिष्ट-मडलो के साथ भेजा। इस कार्य के हेतु मुहम्मद साहव ने अशरये मुवश्शेरा[2] को भी भेजा और उनके उपरान्त अन्य लोगो को भी। जब इस्लाम की नीव दृढ और उसकी जडे मजवूत हो गयी और ससार की दूर-दूर की कौमें भी इस्लाम से लाभान्वित हुईं तो विभिन्न परिस्थितियो में इस्लामी धर्मशास्त्र में इस्लाम के नियमो को ढूंढ निकालने की आवश्यकता पडने लगी। एक ऐसे विधान की आवश्यकता होने लगी जो लोगो को त्रुटियो, भूलो एव दोषो से सुरक्षित रख सके। ज्ञानोपार्जन परमावश्यक हो गया। इस प्रकार ज्ञान भी कला-कौशल की श्रेणी को प्राप्त हो गया। इसका सविस्तर उल्लेख ज्ञान एव शिक्षा के अध्याय में किया जायगा। कौमी असवियत[3] रखनेवालो ने देश एव शासन की ओर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया। ज्ञान एव शिक्षा का प्रचार अन्य लोगो के अधीन हो गया, मानो इस प्रकार ज्ञान ने केवल एक व्यवसाय का जामा पहन लिया हो। धन-धान्य से सम्पन्न लोग इसकी उपेक्षा करने और शिक्षा के कार्य को अपमानजनक समझने लगे। शिक्षा का कार्य निम्न वर्ग के लोगो के हाथ में चला गया। कौमी सम्मान के स्वामी तथा राज्य के वैभवप्राप्त लोग इस कार्य को अपने सम्मान के विरुद्ध समझने लगे।

अव यह ज्ञात ही है कि हज्जाज विन यूसूफ के पूर्वज, सकीफ[4] के सम्मानित

१. मुहम्मद साहव के मित्र, सहायक।
२. मुहम्मद साहव के १० प्रमुख सहावी—अबू बक्र, उमर, उस्मान, अली, तलहा, जुबैर, अब्दुर्रहमान, इब्न औफ़ साद इब्ने अबी वक्कास, सईद इब्ने जैद, अबू उवैदह।
३. कौम से ऐसा प्रेम जो हर दशा में उसे संगठित रखता था।
४. अरव का एक सम्मानित कबीला।

व्यक्तियो में से थे। वे अरबी असबियत एव कुरेशी[1] सम्मान के भी स्वामी थे। साथ-साथ यह भी सच है कि इस युग में इस्लाम की शिक्षा ने वह रूप धारण न किया था जो आज है। वह एक व्यवसाय न बनी थी, अपितु जिस प्रकार इस्लाम के प्रारम्भ में उसे गर्व का विषय समझा जाता था, उसी प्रकार उस समय भी उसे एक सम्मानित वस्तु समझा जाता था।

इसी प्रकार का भ्रम इतिहास का अध्ययन करनेवालों को उस समय होता है जब वे काजियो[2] के विषय में सुनते है। जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि वे सेनाओ के सेनापति भी होते थे, तो उनका उत्साह बढ जाता है और वे भी वैसा सम्मान प्राप्त करने की अभिलाषा करने लगते हैं। वे उस समय के काजियो के पद को भी वैसा ही समझने लगते हैं जैसा कि वह आज है।[3] .....प्राचीन काल में काज़ी का पद उन्ही को प्राप्त होता था जो राज्य से निकटतम सम्बन्ध रखते थे और राज्य के विश्वास-पात्र होते थे। उनकी स्थिति वैसी ही थी जैसी कि आजकल मगरिब में वज़ीरो की है। उनका बडी-बडी सेनाएं लेकर निकलना तथा महान् कार्य सम्पन्न करना इसका खुला प्रमाण है, कारण कि ये कार्य उन्ही को सौंपे जाते थे जो विशेष असबियत रखते थे। ऐसी ही दशा में सुननेवालो को भ्रम हो जाता है और वे इस प्रकार की मिथ्या स्थिति से मनमाने निष्कर्ष निकाल लेते हैं। इस प्रकार की भूल अधिकाश इस युग के अल्प-दर्शी उन्दुलस वाले कर बैठते है। इसका कारण यह है कि उनके देश से असबियत बहुत समय पहले ही समाप्त हो गयी थी। जब से उनके राज्य का पतन हुआ और बर-बरो की असबियत के गुणो का उनमें अभाव हो गया, तब से अरब की वशावलियाँ मात्र उनके पास रह गयी। एक-दूसरे की सहायता करने का गुण उनमें न रहा, अत अब उनकी गणना उस अपमानित प्रजा में होती है जो दूसरो के प्रभुत्व एव अधीनता में दासो के समान जीवन व्यतीत कर रही है, किन्तु उन्हें भ्रम इसी बात का है कि उनका वश ही उनके प्रभुत्व का कारण है। यदि आप वहाँ के उद्योग-धधे एव विभिन्न व्यवसाय करनेवालों को देखें तो आप उन्हें अपने उसी खोये हुए प्रभुत्व का स्वप्न देखते हुए पायेंगे। किन्तु जो लोग कौमो, कबीलो एव उनके राज्यो के विषय से भली-भाँति

१. अरब का एक प्रमुख कबीला।
२. इस्लामी राज्य के न्यायाधीश।
३. इस स्थान पर कुछ प्राचीन काजियो की कीर्ति पर प्रकाश डाला गया है। इसका अनुवाद नहीं किया गया।

परिचित है और जिन्हें इस बात की जानकारी है कि किस प्रकार कौमें एव कबीले एक दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त करते है, वे इस बारे में बहुत कम भूलें कर सकते है।

इसी प्रसग में यह बात भी है कि इतिहासकार जब राज्यो तथा बादशाहो के शासनप्रबध पर वाद-विवाद करने लगते है तो उनका नाम, वश, पिता-माता, अन्त-पुर, उपाधि, अँगूठी, काज़ी, हाजिब[1] तथा वजीर सभी का उल्लेख कर डालते है। वे लोग बनी उमय्या एव बनी अब्बास के राज्यकाल के इतिहासकारो का आँख बन्द करके अनुसरण करते है। वे उनके उद्देश्यो को ध्यान में नही रखते और न सूझ-बूझ से काम लेते है। प्राचीन काल के इतिहासकार अपने समकालीन सुल्तानो अथवा आने-वाली सतान के लिए इस आशय से इतिहास लिखते थे कि वे अपने पूर्वजो के इतिहास से परिचित होकर उनका अनुसरण कर सकें और उन्ही के पदचिह्नो पर चल सकें तथा उन सुल्तानो के उपरान्त उनकी सतान किसी को कोई बड़ा पद देने अथवा कोई प्रान्त प्रदान करने के समय अपने सम्बन्धियो को अन्य लोगो पर प्राथमिकता (तर-जीह) दे सके। उस युग में राज्य की ओर से असबियत वाले लोग ही काज़ी नियुक्त किये जाते थे और उनकी गणना, जैसा कि हम लिख चुके है, वज़ीरो में होती थी। अत. प्राचीनकाल के इतिहासकारो के लिए यह परमावश्यक था कि वे ये सब बातें बिना कुछ घटाये बढाये लिख दें। अब सल्तनतों में परिवर्तन हो चुका है और इतिहास का यह उद्देश्य हो गया है कि वह लोगो को बादशाह के व्यक्तिगत गुणो एव उसके समय की घटनाओ की जानकारी कराये, जिससे पता चल सके कि किन-किन राज्यो ने एक दूसरे पर प्रभुत्व प्राप्त किया और यह भी ज्ञात हो सके कि किन-किन कौमो का अभ्यु-दय एव विनाश हुआ। ऐसी स्थिति में, आधुनिक काल के इतिहासो में वर्णित सतानों, स्त्रियो, अँगूठी पर खुदे वाक्यो, उपाधियो या विरुदो, काज़ियो, वजीरो तथा हाजिब आदि सबधी सविस्तर उल्लेखो से क्या लाभ? क्योकि न तो अब वे नियम ही प्रच-लित है और न वश और न वे पद अथवा रुतबे। यत. ये इतिहासकार प्राचीनकाल के लोगो के इतिहास के उद्देश्य को न समझ सके, अत. अपनी असावधानी एव अनुकरण की भावना के कारण इन लोगो ने अपने इतिहासो में इसी प्रकार की बातें लिख डाली है। हाँ, जो वजीर इतने प्रभावशाली हो गये कि उनके बादशाहो का यश भी उनकी

१. राज-दरबार का एक मुख्य अधिकारी जो सुल्तान एवं अन्य लोगों के बीच में मध्यस्थ रहता था।

उपस्थिति में साधारण प्रतीत होने लगा, उदाहरणार्थ हज्जाज, बनू मुहल्लब[1], बरामेका,[2] बनू सहल इब्ने नव बख्त,[3] काफूर इखशीदी,[4] इब्ने अबी आमिर इत्यादि, इनके पूर्वजो का अथवा इनका विवरण देने में कोई आपत्ति नही। कारण कि ये इस योग्य हैं कि बादशाहो की श्रेणी में ही इनकी गणना की जा सकती है।

अब हम यहाँ एक ऐतिहासिक रहस्य की चर्चा करके इस अध्याय को समाप्त करते हैं। वह इस प्रकार है कि इतिहास किसी विशेष युग अथवा विशेष कौम के हाल एव अवशेष के वर्णन को कहते हैं, किन्तु ससार की कौमो तथा प्राचीन काल की सामान्य घटनाओं का उल्लेख भी इतिहासकार के लिए परमावश्यक होता है। इसका कारण यह है कि इतिहासकार के अधिकाश उद्देश्य इन्ही पर अवलम्बित होते हैं, अत उसके विवरण अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। कुछ इतिहासकार इसके लिए अपने ग्रथ को अनेक भागो में विभक्त करते हैं। इसी लिए मसऊदी ने मुरूजुज् जहव में इस नियम का पालन किया है। उसने अपने युग तक की समस्त पश्चिम एव पूर्व के ससार की कौमो की सविस्तर चर्चा की है। उनके धर्मो, स्वभाव, नगरो, पर्वतो, नदियो, प्रदेशो एव राज्यो का वर्णन किया है। अरब एव अजम के कबीलो एव कौमो की विभिन्न शाखाओ का अलग-अलग उल्लेख किया है। इसी कारण उसे इतिहासकारो में बडा ऊँचा दर्जा प्राप्त है। अन्य इतिहासकारो ने इसी लिए अपने अधिकाश अनुसधानो का आधार इसी इतिहास को बनाया है। वे उसके कथन को मौलिक सिद्धान्त मानते हैं।

तदुपरान्त बकरी[5] का युग आया। सभ्यताओं एव देशो का विवरण देने में उसने भी इसी नियम का पालन किया, किन्तु उसके काल में कौमों की दशा में अधिक

१. ये बनी उमय्या के राज्यकाल में हुए हैं।
२. ये प्रारम्भिक अब्बासी राज्यकाल में हुए है।
३. ये भी प्रारम्भिक अब्बासी राज्यकाल में हुए हैं।
४. अल-मिस्क काफूर, फ़ुस्तात के इखशीद वंश के राज्यकाल में वज़ीर नियुक्त हुआ किन्तु धीरे-धीरे उसने अत्यधिक अधिकार प्राप्त कर लिया और ९६६-९६८ ई० तक स्वतंत्र रूप से राज्य करता रहा।
५. इन लोगो ने स्पेन के उमय्या वंश के राज्यकाल में प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था।
६. अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता, जिसका जन्म ४३२ हि० (१०४०-४१ ई०) तथा मृत्यु ४८७ हि० (१०९४ ई०) में हुई। इब्ने ख़लदून ने अपने ग्रंथ में कई स्थानो पर इसकी चर्चा की है। इसका एक ग्रंथ 'मीजम मा स्ताजम'

परिवर्तन नही हुआ था, अत उसने उनकी उपेक्षा की। पर हमारे युग अर्थात् आठवी शताब्दी हि० के अन्त (१४वी शताब्दी ई०) में मगरिब की दशा कुछ की कुछ हो गयी है। उसे अपनी आँखो से देख रहे हैं। बरबरी कौमो की प्राचीन दशा अचानक बदल गयी। पाँचवी शताब्दी हि० (११वी शताब्दी ई०) के प्रारम्भ में अरब उनके देश में जाने लगे थे और उन्होने उन्हें पराजित करके अपने राज्य वहाँ स्थापित कर लिये थे। उनका देश उनके हाथ से छिन गया और जो भाग बरबरो के अधिकार में रह गये उनके शासन के मामलो में भी अरब लोग हस्तक्षेप करने लगे। आठवी शताब्दी हिजरी के मध्य (१४वी शताब्दी ई०) मे समस्त पूर्व तथा पश्चिम में एक भयकर प्लेग का प्रकोप हुआ। उसने बहुत-सी कौमो का समूलोन्मूलन कर दिया। आबादियो के रग-रूप नष्ट हो गये। इस महामारी का प्रकोप ऐसे समय हुआ जब कौमें अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच, कर पतनोन्मुख हो रही थी, अत महामारी के कारण उनके ऐश्वर्य एव वैभव में कमी हो गयी। उनका सगठन छिन्न-भिन्न हो गया। मनुष्यो के कम हो जाने के कारण, जनसख्या में कमी हो गयी। नगर एव प्रदेश उजड गये और उनके चिह्न मिट गये। बस्तियाँ नष्ट हो गयी और राज्य एव कबीले शक्तिहीन हो गये। पूर्व में भी वही विपत्ति आयी जो पश्चिम में आयी थी, किन्तु उसका परिणाम हुआ उनकी जन-सख्या एव दशा के अनुरूप। एक ही बार में समस्त ससार विनाश के चगुल में फँस गया। जब इस प्रकार ससार की दशा में पूर्ण परिवर्तन हो गया तो मानव जाति की दशा भी पहले की दशा के मुकाबले में कुछ से कुछ हो गयी और यह ज्ञात होने लगा कि जो ससार हम इस समय देख रहे हैं, उसका जन्म पुन: हुआ है। अत इस समय यदि कोई व्यक्ति ससार, उसके प्राणियो, कौमो, कबीलो तथा उनके धर्म का, जो पूर्णत. परिवर्तित हो गये है, इतिहास लिखे तो उसके लिए यह परमावश्यक है कि वह इतिहास लेखन में मसऊदी का अनुसरण करे ताकि उसके बाद के आनेवाले इतिहासकार उसकी नकल कर सकें।

यदि ईश्वर ने चाहा तो हम अपने इस ग्रथ में यथासम्भव मगरिब के इतिहास का इसी प्रकार का सविस्तर विवरण देंगे और घटनाओ तथा कहानियों के प्रसग में सकेत द्वारा बतायेंगे कि हमने अपनी इस रचना में मगरिब के ही कबीलो एव कौमों तथा राज्य का विशेष रूप से उल्लेख किया है, न कि समस्त ससार का। इसका

१९४५-५१ ई० में काहेरा (केअरो) से प्रकाशित हो चुका है। दूसरा ग्रंथ 'अल मसालिक वल ममालिक' अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

कारण यह है कि हमें पूर्व के देशों एव क़ौमो का पर्याप्त ज्ञान नही है और जिन वातों की हमें सूचना है उनसे उन वातो का ज्ञान नही प्राप्त हो सकता जिन्हें हम आवश्यक समझते हैं।[1] मसऊदी को इन वातो का ज्ञान, जैसा कि उसने अपने ग्रथ में लिखा है, अपनी लम्वी चौडी यात्राओ के कारण प्राप्त हो गया था। इस पर भी वह उचित रूप से मग़रिव का वर्णन नही कर सका है.....।[2]

१. इब्ने खलदून ने सम्भवतः शीघ्र ही अपनी योजना वदल दी, कारण कि उसने पूर्व के देशों का भी अपने इतिहास में विस्तार-सहित उल्लेख किया है।
२. यहाँ उन स्वरों के, जो अरवी नहीं है, लिखने की विधि इब्ने खलदून ने वतायी है। इस अंश का अनुवाद नहीं किया गया।
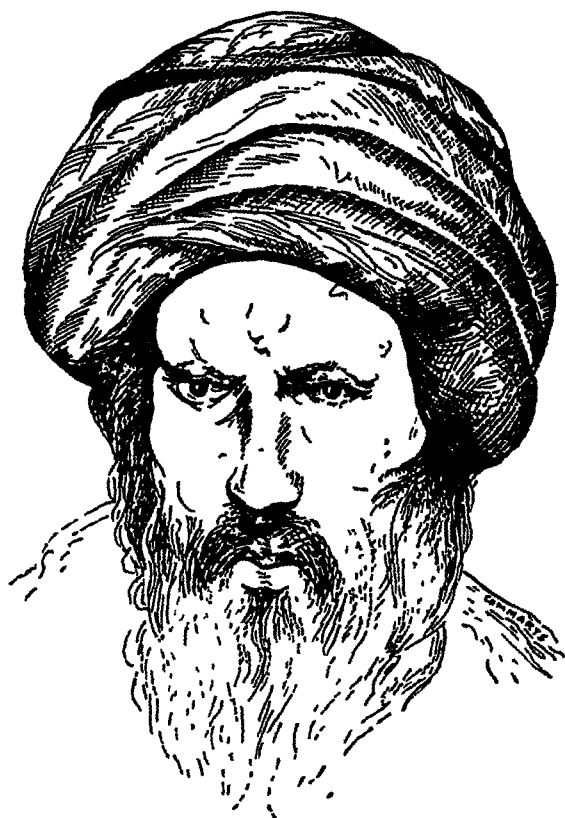
इब्ने खलदून का चित्र

(एक अन्य मिस्री कलाकार द्वारा)

किताबुल इब्र

प्रथम भाग

सभ्यता की विशेषताएँ, बदवी और स्थिर जीवन-क्रम, एक-
दूसरे का पारस्परिक प्रभुत्व, जीविकोपार्जन के
साधन, कला-कौशल, ज्ञान-विज्ञान तथा
सभ्यता को प्रभावित करनेवाली
अन्य बातें एवं उनके कारण

प्रस्तावना

इतिहास एवं सत्य

इतिहास वास्तव मे ऐसी सूचना है जिससे उस मानवीय सगठन का, जिसे हम ससार की सभ्यता कहते हैं, ज्ञान प्राप्त होता है। सभ्यता की विभिन्न दशाओ के स्वाभाविक परिवर्तन का भडार भी इतिहास ही है। पारस्परिक विरोध, मित्रता, पक्षपात, सगठन तथा विभिन्न मनुष्यो का एक-दूसरे पर प्रभुत्व एव उसके स्वाभाविक प्रभाव के नाना प्रकार के रूप, राज्यों तथा सल्तनतो की स्थापना, उनकी विभिन्न श्रेणियाँ, उद्योग धधे, व्यवसाय, ज्ञान-विज्ञान एव कला-कौशल अथवा वे बाते जो ससार की सभ्यता से स्वभावत· उत्पन्न होती हैं तथा जिन पर मनुष्य अपने दैनिक जीवन में आचरण करने का प्रयत्न किया करता है, इतिहास द्वारा ही ज्ञात होती है। जब इतिहास सूचनाओ का नाम है, तो सूचनाएँ झूठ एव असत्य भी हो सकती और होती हैं अत· इतिहास में भी झूठ एव त्रुटियाँ प्रविष्ट हुई और होती रहती हैं। इसके कई कारण हैं——

(१) विचारो एव विश्वासो का वैभिन्य तथा पक्षपात की भावना। मनुष्य की यह स्वाभाविक विशेषता है कि वह अपने सरल स्वभाव के कारण जो समाचार सुनता है उसे आलोचनात्मक दृष्टि से जाँचता और परखता है। यहाँ तक कि सत्य को वह झूठ से पृथक् कर लेता है। परन्तु जब वह किसी विचार अथवा विश्वास का पहले से ही अनुयायी होता है तो अपने विचार एव विश्वास के प्रति पक्षपात के कारण तदनुकूल सूचनाओ को तत्काल स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार इन विचारो एव पक्षपातो के कारण वह शोध एव आलोचना से वचित रह जाता है। वह झूठ को स्वीकार कर लेने एव उसे दूसरो के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए विवश होता है।

(२) अधिकांश लोग सूचनाओ एव समाचारो का विवरण देनेवालो को विश्वस्त समझ लेते है, हालाँ कि उनपर विश्वास करने के लिए उनके विषय में खोज एव छानवीन परमावश्यक होती है।[1]

१. अल जिरह् वत्तादील द्वारा सूचना देनेवालो एवं रवायत बयान करनेवालो के विषय में छानवीन की जाती है।

(३) अधिकांश सूचना तथा समाचार देनेवाले अपनी देखी-भाली अथवा सुनी-सुनाई बातो का वास्तविक उद्देश्य समझने में असावधानी बरतते है और केवल अपनी व्यक्तिगत कल्पनाओ के आधार पर समाचारो का विवरण दे देते है और इस प्रकार भूलें कर जाते हैं।

(४) कभी-कभी सत्यता का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। यह भ्रम कई प्रकार से उत्पन्न होता है। अधिकतर तो इस प्रकार कि समाचारो का विवरण देनेवालो को विश्वस्त समझ लिया जाता है। कभी इस प्रकार की वर्णित घटनाओ की प्रत्यक्ष रूप में घटनेवाली घटनाओं से तुलना नही की जाती, ताकि असत्य एव काल्पनिक तत्त्वो से मुक्ति प्राप्त हो सके।

(५) अधिकाश लोग प्रभावशाली एव सम्मानित लोगो की प्रशसा करके अथवा उनकी यशोगाथा गाकर उनके विश्वासपात्र बनने का प्रयत्न करते है। इस प्रशसा या यशोगाथा के आधार पर बहुत से समाचार जनश्रुति के रूप में प्रसिद्ध हो जाते हैं। कारण यह है कि मनुष्य स्वभावत चाटुकारी पसन्द करता है और लोग उच्च श्रेणी एव सम्मानित पद प्राप्त करने की आकाक्षा किया करते है तथा वास्तविक गुण एव श्रेष्ठता की खोज नही करते।

(६) सबसे बडा कारण तो यह है कि लोग घटनाओ एव विभिन्न परिस्थितियो से स्वाभाविक रूप में परिचित नही होते। ससार में जितनी घटनाएँ घटती है उनका अपनी विशेष परिस्थितियो एवं वातावरण के कारण एक पृथक् स्थान हुआ करता है। यदि श्रोता ससार में घटनेवाली घटनाओ की उस परिस्थिति तथा वातावरण से परिचित है तो उसका यह ज्ञान समाचारो की सत्यता की छान-बीन में उसका सहायक होगा। समाचारो की परीक्षा के लिए यह नियम बडा लाभदायक है। कभी-कभी श्रोता कुछ असम्भाव्य घटनाओ को सत्य मानकर उनका प्रचार करने लगते है और फिर अन्य लोग भी उनका अनुसरण प्रारम्भ कर देते हैं।

इसी प्रकार के प्रचार से प्रभावित होकर मसऊदी ने सिकन्दर के विषय में लिखा है कि जब समुद्री जानवरो ने उसे इसकन्दरिया[1] के निर्माण से रोका तो उसने शीशे का एक बक्स बनवाया और उसमें बैठकर समुद्र के धरातल में पहुँच गया। वहाँ उसने उन शैतानो[2] के, जो उसे मिले, चित्र बना लिये। तदुपरान्त उसने चित्रो के

१ अलेक्जेंड्रिया।
२. भूत-प्रेत से तात्पर्य है।

अनुसार मूर्त्तियाँ वनवाकर उन्हें नगर की नीव के समक्ष स्थापित करा दिया। जव शैतान निकले तो वे उन मूर्त्तियो को देखकर भाग गये और सिकन्दर ने नगर का पूर्ण रूप से निर्माण करा दिया।

उसने जो वहुत-सी झूठी-सच्ची कहानियाँ लिखी है उनमें यह कहानी बड़ी लम्वी-चौड़ी है। इस घटना का होना अनेक कारणो से असम्भव है। सर्वप्रथम शीशें का वक्स वनना और उसका लहरो की थपेडो से सुरक्षित रह जाना किस प्रकार सम्भव है? दूसरी वात यह है कि वादशाह लोग अपने आपको ऐसे खतरो में नही डाला करते। इस प्रकार खतरे में पडना अपने आपको खुल्लम-खुल्ला मौत के मुँह में डालना है और अपने राज्य को अन्य लोगो के हाथो में चले जाने की अनुमति दे देना है। तीसरे जिन्नातो[1] का कोई रूप नही होता। वे अपने इच्छानुसार जिस रूप में चाहें प्रकट हो सकते है। यह वात प्रसिद्ध है कि उनके कई सिर होते है तो इसका अर्थ यह है कि वे वडे भयानक होते है। इसका यह अर्थ नही कि उनके वास्तव में अनेक सिर होते ही है। ये सव वातें इस कहानी को असम्भव, असत्य एव निराधार बना देती है। वुद्धिगम्य न होनेवाली सबसे महत्त्वपूर्ण वात तो यह है कि जब एक व्यक्ति वक्स में वन्द होकर जल में प्रविष्ट होगा तो उसके लिए साँस लेना कठिन हो जायगा और उसकी वही मृत्यु हो जायगी......।[2]

इसी प्रकार की वहुत सी झूठी कहानियाँ इतिहास में मिलती है जिनकी परीक्षा सभ्यता की स्वाभाविक एवं प्राकृतिक दशा के ज्ञान से हो सकती है। इनकी सत्यता की छान-वीन भी इसी आधार पर की जा सकती है, अपितु हमारी दृष्टि से समाज के स्वभाव की जानकारी से घटनाओ के विवरण देनेवालो के झूठ-सच का पता भली-भाँति लगाया जा सकता है। कारण कि विवरण देने वालो की सत्यता का पता तो उसी समय चल सकता है जब कि सर्वप्रथम समाचार के तथ्य का पता लग जाय कि उसका घटना सम्भव भी है अथवा नही। यदि उसका घटना ही सम्भव न हो तो विवरण देनेवालो के विषय में छानवीन करना आवश्यक नही।

शोध में रुचि रखनेवालो के लिए यह उचित नही कि घटनाओ के विवरण के शब्दो को वदलकर उनकी ऐसी व्याख्या की जाय जो वुद्धि-सगत न हो। इस प्रकार की

१ एक प्राणी जिसकी उत्पत्ति अग्नि से मानी जाती है और वह दिखाई नहीं देता।

२. इसके वाद इसी प्रकार की कुछ अन्य असम्भव एवं निरर्थक कहानियों को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत करके उनकी आलोचना की गयी है।

व्याख्या एवं वाद-विवाद शरा[1] सम्बन्धी सूचनाओ के विषय में उचित भी हो सकता है, कारण कि शरा सम्बन्धी सूचनाएँ अधिकाशत धार्मिक आदेशो एव आवश्यकताओ के सम्बन्ध में होती है और शरा के निर्माता[2] ने उन पर आचरण करना परमावश्यक बताया है। इस प्रकार की व्याख्याओ द्वारा उन आदेशो की सत्यता के विषय में पुष्टि हो जाती है। किन्तु जो समाचार साधारण घटनाओ के विषय में हो उनके लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी प्रकृत दशा में हो। जब उनका स्वाभाविक दशा में होना स्वीकार कर लिया जाय तब इस बात का पता लगाना चाहिए कि विवरण देनेवाला सच्चा है या झूठा। दोनो[3] में यह भी अन्तर है कि आदेश के पालन का लाभ आदेश द्वारा ही प्राप्त हो जाता है, किन्तु समाचारो से केवल उनके समाचारत्व के कारण ही कोई लाभ तब तक नही उठाया जा सकता जब तक वे अपने स्वाभाविक रूप में प्रस्तुत न हो।

जब सच एव झूठ तथा खरे और खोटे की परीक्षा के लिए यह कसौटी बन गयी तो प्राप्त सूचनाओ की जाँच करते समय तत्कालीन मानवसमाज की दशा को गहराई से देखना अनिवार्य हो जाता है। हमें इस बात का पता लगाना चाहिए कि समाज की विभिन्न स्थितियाँ कौन-कौन सी होती है और वे क्या सामाजिक भावनाओ के अनुकूल भी है अथवा नही। कौन-सी ऐसी स्थिति है जो उन परिस्थितियो में उत्पन्न ही नही हो सकती। हमें उन परिस्थितियो का पता लगाना चाहिए जो सभ्यता की सारभूत है और जो उसकी स्वाभाविक दशा के लिए परमावश्यक है। हमें उन बातो का भी ज्ञान होना चाहिए जिनका सभ्यता से कोई विशेष सम्बन्ध नही और जो अकस्मात् ही उससे सम्बद्ध हो गयी-सी प्रतीत होती है। यदि हम ऐसा करते है तो समाचारो के सत्य अथवा असत्य, झूठा या सच्चा होने के सम्बन्ध में हमें एक कसौटी प्राप्त हो जायगी, जिस पर कसकर तर्क-वितर्क करके समाचारो के तथ्य की पुष्टि की जा सकेगी और सदेह का कोई स्थान न रहेगा। तदुपरान्त जब हम सभ्यता सबधी किसी घटना के विषय में सुनेंगे तो उक्त सिद्धान्त एव नियम के आधार पर हम यह निर्णय कर सकेंगे कि वह समाचार स्वीकार करने योग्य है अथवा रद्द करने योग्य। या यो कहना चाहिए कि इतिहासकारो को यह एक ऐसा निश्चित मापदण्ड प्राप्त हो जायगा जिसके

१ शरीअत अथवा इस्लाम के धार्मिक नियम।

२ हजरत मुहम्मद।

३. साधारण घटनाओ तथा शरा के आदेशो में।

द्वारा वे उन समाचारो तथा घटनाओ के, जो उन्हें प्राप्त होगी, तथ्य का पता लगा सकेंगे। सत्य तो यह है कि इस ग्रथ के इस भाग की रचना का वास्तविक उद्देश्य यही है। यह एक पृथक् ज्ञान के समान है। इसका विषय सभ्यता एव मानवसमाज और तत्सबधी अनेक समस्याएँ है।

यह बात भली-भाँति स्पष्ट होनी चाहिए कि घटनाओ का इस प्रकार का तर्क-वितर्कपूर्ण विवेचन एक विचित्र एव नवीन बात है, जिससे नाना प्रकार के लाभ होते है और इसका ज्ञान बडी कठिनाई, मनन एव सोच विचार के उपरान्त उत्पन्न होता है। इसको न तो व्याख्या-विषयक ज्ञान कह सकते हैं और न राजनीति-विषयक। क्योकि व्याख्या का उद्देश्य लोगो को सतुष्ट करना होता है। इसकी सहायता से लोगो को किसी मत को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने के लिए तैयार किया जाता है। चरित्र एव बुद्धिमत्ता पर आधारित शासन प्रबध के ज्ञान को राजनीति कहते है, उस पर आचरण करके सर्वसाधारण ऐसे सन्मार्ग पर चलने लगते है जिससे मानव की रक्षा एव वैयक्तिक जीवन की स्थिरता की व्यवस्था हो जाती है।

ऐतिहासिक ज्ञान की विषयवस्तु उपर्युक्त दोनो ज्ञानो से पृथक् है। सक्षेप में यह एक मौलिक ज्ञान है और मुझे जहाँ तक ज्ञात है, किसी ने इस विषय पर इस प्रकार अभी तक कुछ नही लिखा है। मै यह नही कह सकता कि इस उपेक्षा का क्या कारण है? सम्भव है कि इस विषय पर किसी ग्रन्थ की रचना की गयी हो और उसमें उचित रूप से इसकी व्याख्या भी हो, किन्तु वह हमें प्राप्य नही। कारण कि ज्ञातव्य विषयो की सख्या बेहद बढ गयी है और मानवजाति में बहुत बडे-बडे दार्शनिक हो चुके है। जो ज्ञान हमें प्राप्त हो चुका है, वह उस ज्ञान की अपेक्षा, जो हमें अभी तक नही प्राप्त हुआ, बहुत कम है। उदाहरणार्थ फारस की उन विभिन्न विद्याओ का पता नही जिन्हें हजरत उमर ने ईरान की विजय के उपरान्त नष्ट कर दिया। इसी प्रकार कल्दानियो[1], बिबलोनिया एव सुरयानियो[2] की वे विद्याएँ एव अवशेष जिन्हें काल-चक्र ने नष्ट कर दिया है, अब उपलब्ध नही है। आज किब्तियो[3] एव उनसे पहले के लोगो के ज्ञान के विषय में कौन जानता है? हमें केवल यूनान वालो के ज्ञान का पता चल सका है और वह भी मामून

१. कल्डियन्स।
२. शाम वालो।
३. काप्टस्।

के कारण, जिसे इन विषयो के ग्रन्थो के अरवी भाषातर तैयार कराने में वड़ी रुचि थी। उसने वहुत वडी सख्या में अनुवाद करनेवाले एकत्र किये थे और अपार धन इस काम पर व्यय किया था। अन्य विपयो के ज्ञान का हमें पता ही क्या हो सकता है।

क्योंकि प्रत्येक ज्ञान की वास्तविकता का आधार कोई विशिष्ट प्रकृत वस्तु होती है, अत इस विपय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसी विशिष्ट प्रकृत वस्तु की स्थिति के विपय में तर्क-वितर्क किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक विपय एव तथ्य से सम्वन्धित एक विशेप ज्ञान सकलित हो सकता है, और यह वात असम्भव नही कि दार्शनिको ने इस विपय पर रचनाएँ की हो और शोव कार्य किये हो। किन्तु हमारे विपय का क्षेत्र केवल ऐतिहासिक घटनाओ की सत्यता की खोज तक सीमित है। यह विपय यद्यपि वडा ही महत्त्वपूर्ण है, किन्तु केवल ऐतिहासिक घटनाओं एव सूचनाओ से, जिनको अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता, सम्वद्ध होने के कारण सम्भव है इसकी उपेक्षा की गयी हो और इसे महत्त्व न दिया गया हो। वास्तविक वात का ज्ञान तो केवल ईश्वर को ही है। "और तुम्हें वहुत कम ज्ञान प्रदान हुआ है।"[1]

इसी ज्ञान की, जो इस समय विवादास्पद है, अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिनका प्रयोग विद्वान् लोग अपने तर्क में किया करते हैं और वे इस योग्य है कि उन्हें इस ज्ञान के उद्देश्यो एव विषयो में सम्मिलित किया जाय। उदाहरणार्थ दार्शनिक एव विद्वान् लोग नवियो की आवश्यकता को प्रमाणित करने के लिए कहते है कि क्योंकि स्वाभाविक रूप से मनुष्य का जीवन एक-दूसरे की सहायता पर निर्भर है, अत. उसके सफल सचालन के लिए एक न्यायकारी शासक का होना परमावश्यक है। फिकह[2] के सिद्धान्तो में भापा की आवश्यकताओ को प्रमाणित करने के लिए कहा जाता है कि क्योंकि मनुष्य एक-दूसरे की सहायता पर निर्भर रहता है और चूंकि वह स्वभावत सामाजिक जीवन व्यतीत करने का आदी है, अत उसे अपनी हार्दिक इच्छाओ को व्यक्त करने के लिए ऐसी भापा की आवश्यकता होती है जो सुगमतापूर्वक उसकी इच्छाओ एव उद्देश्यो को दूसरो तक पहुँचा सके।[3] फकीह[4] लोग यह सिद्ध करने के लिए कि शरा के आदेशो के विशेप

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।
२. इस्लाम का धर्म-विधान।
३. अल-आमिदी ने, "अल एहकाम फी उसूल अल एहकाम" (काहेरा से १९१४ में प्रकाशित) में भापा-संवंधी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं।
४. फिकह-वेत्ता।

उद्देश्य होते है, इस बात का उल्लेख करते है कि व्यभिचार एक ऐसा कुकर्म है जिससे लोगो के वश सकरित हो जाते हैं और उसके कारण मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। इसी प्रकार वे यह भी कहते हैं कि हत्या करना भी मानव के लिए हानिकारक है। अत्याचार आबादियो को उजाडकर नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इसी प्रकार वे उन सब विभिन्न शरा-सम्बन्धी आदेशो का उल्लेख करते हैं जिनका कोई-न-कोई विशेष उद्देश्य होता है। सभी का अन्तिम लक्ष्य यह होता है कि सभ्यता की रक्षा हो और मनुष्य शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। इस प्रकार अन्य ज्ञानो में भी समाजशास्त्र के विभिन्न अगो पर तर्क-वितर्क किया गया है।

इसी प्रकार इसकी कुछ समस्याएँ हमको किन्ही-किन्ही विद्वानो के विभिन्न कथनो में भी मिल जाती हैं, किन्तु वे किसी एक स्थान पर पूर्ण रूप से सकलित नही। उदाहरणार्थ मसऊदी उल्लू की कहानियों में मोबेज़[1] बहराम बिन बहराम के कथन की नकल करते हुए लिखता है कि "हे बादशाह ! राज्य के गौरव को शरीअत के आदेशो के प्रचार, ईश्वर की आज्ञाकारिता और उसके आदेशो के पालन द्वारा उन्नति प्राप्त होती है। बिना राज्य एव देश के शरीअत का कोई अस्तित्व नही रह सकता। देश का सम्मान वहाँ के निवासियो के हाथ में है और लोगो का अस्तित्व एमारह[2] के कारण है। धन-सम्पत्ति एमारह से प्राप्त होती है। एमारह न्याय पर आधारित है। न्याय एक तराज़ू है जिसे ईश्वर ने अपने प्राणियो के बीच स्थापित किया है। इसका अस्तित्व एवं स्थायित्व बादशाह के हाथो में हैं।"

नौशीरवाँ[3] के कथन भी इसी से मिलते-जुलते है। वह कहता है कि "राज्य सेना के कारण स्थापित रहता है और सेना धन से, धन कर से तथा कर एमारह से और एमारह न्याय से और न्याय उचित पदाधिकारियो से। पदाधिकारियो की योग्यता वज़ीरो के उचित व्यवहार पर निर्भर होती है। इन सबसे बढ़कर तो यह है कि बादशाह अपनी प्रजा की देख-रेख करे और उसमें उसके पालन-पोषण

१. ज़रदुश्ती पुजारी।

२. "आबादी में कृषि आदि द्वारा वृद्धि करना।" अल-मुबश्शिर बिन फ़ातिक की "मुख़्तारुल हिकम" में है, "यदि कोई बादशाह यह सोचे कि वह अन्याय द्वारा धन-सम्पत्ति का भंडार भर सकता है तो वह भूल करता है, कारण कि धन-सम्पत्ति कृषि द्वारा ही एकत्र हो सकती है।" (एमारत-अल अर्ज़)

३. प्रसिद्ध सामानी बादशाह ख़ुसरो प्रथम, ५३१—५७९ ई०।

एव उसे सन्मार्ग पर स्थिर रखने की पूरी क्षमता हो, ताकि वह अपनी प्रजा पर पूर्ण प्रभुत्व रख सके, न कि उसकी प्रजा उस पर अधिकार प्राप्त कर ले।"

अरस्तू के एक प्रचलित राजनीति सम्बन्धी ग्रन्थ में भी इसी विषय पर प्रकाश डाला गया है, किन्तु उसने इस विषय में अन्य बातें मिलाकर इसे अधूरा छोड दिया है। उसका तर्क भी अपूर्ण है। इस ग्रन्थ में उसने उन्ही कथनो की चर्चा की है जिनका उल्लेख हम मोबेज़ो एव नौशीरवाँ के सम्बन्ध में कर चुके हैं। इसमें ध्यान देने योग्य यह विवरण है कि "ससार एक उद्यान है जिसकी सिंचाई राज्य से होती है। राज्य एक शक्ति है जिस पर धर्म का जीवन-मरण आधारित है। धर्म एक राजनीति है जिसकी बागडोर बादशाह के हाथ में है और बादशाह उस व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है जो सेना की सहायता पर निर्भर है। सेना उन सहायको के समूह का नाम है जिनका पालन-पोषण धन द्वारा होता है। धन वह कर है जो प्रजा से एकत्र किया जाता है। प्रजा उन लोगों के समूह को कहते हैं जो न्याय के आधार पर जीवित रहता है। न्याय वह उत्तम वस्तु है जो ससार के अस्तित्व का कारण है।" फिर वह उसी बात का उल्लेख करने लगता है जिसकी उसने प्रारम्भ में चर्चा की थी। मानो दर्शन एव राजनीति सम्बन्धी आठो वाक्य एक दूसरे के साथ जुडे हुए हो और प्रत्येक का अन्तिम भाग, दूसरे के प्रारम्भिक भाग से सम्बद्ध है। इस प्रकार उन्होंने एक ऐसे वृत्त का रूप धारण कर लिया है जिसका छोर निश्चित नही। अरस्तू को अपने इस वाक्य पर बडा गर्व है। वह कहता है कि यह वाक्य लाभो से परिपूर्ण है।

पाठकगण जब हमारे ग्रन्थ में राज्य एव देश सम्बन्धी अध्याय का आलोचनात्मक अवलोकन करेंगे और जो कुछ हमने अपने विचार एव खोज के आधार पर लिखा है, उसका वे ध्यानपूर्वक अध्ययन करेंगे तो इसमें उन्हें उपर्युक्त विवरण की व्याख्या एव

१. अरस्तू का कथित राजनीति सम्बंधी ग्रंथ, जिसकी इब्ने खलदून ने चर्चा की है, "सिर्रुल असरार" है। कहा जाता है कि यह्या बिन अल बितरीक ने इसका यूनानी भाषा से अरबी में अनुवाद किया। यह ग्रन्थ अब्दुर्रहमान बदावी ने काहेरा से १९५४ ई० में प्रकाशित कर दिया है। इसके अंग्रेजी एवं फ़्रांसीसी भाषांतर भी तैयार हो गये हैं। अनेक अरबी भाषा के विद्वानों ने उपर्युक्त वाक्य को अपने ग्रंथों में उद्धृत किया है।

इस सक्षिप्त वर्णन का सविस्तर उल्लेख मिलेगा। तब उन्हे प्रत्येक का तर्क-पूर्ण प्रमाण मिलता जायगा। यह ज्ञान हमें ईश्वर ने अरस्तू की शिक्षा एव मोवेजो के विवरण के अध्ययन के विना ही प्रदान किया है।

इसी प्रकार राजनीति के सम्वन्ध में जिन विषयो का हमारी पुस्तक में उल्लेख किया गया है, वे इब्ने मुकफ्फा[1] के दर्शनशास्त्र सवधी ग्रथो एव उसकी कुछ अन्य पुस्तको में भी पाये जाते हैं। किन्तु वे सव तर्क पर आधारित न होने के कारण कहानियो एव काव्यमय प्रवन्धो के समान है। काजी अबू बक्र तुरतूशी[2] ने भी यद्यपि इस प्रकार के विषयो का अपने "सिराजुल मुलूक" नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है और उसके अध्यायो एव विषयो का विभाजन तथा क्रम भी हमारे ग्रन्थ की तरह ही है। किन्तु न तो उसका वर्णन ही ठीक है न क्रम और न विषय ही पर्याप्त है और न उसने स्पष्ट तर्क एव प्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। उसने प्रत्येक समस्या का उल्लेख अलग-अलग अध्यायो में किया है और प्रत्येक अध्याय में बहुत-सी कहानियाँ लिखी है और कही-कही फारस के विभिन्न दार्शनिको, वुजुर्चमेहर[3] एव मोवेजो के कुछ दार्शनिक कथन लिख दिये है या भारतवर्ष के दार्शनिको, दानियाल[4] एव हुरमुज[5] के कथन उद्धृत कर दिये है। समस्याओ के सम्बन्ध में उसने सतोषजनक छानवीन नही की है, न उचित तर्क के आधार पर उनके समाधान ही प्रस्तुत किये है। अपितु उसके ग्रन्थ में विभिन्न कहानियाँ एव घटनाएँ भरी पडी है और उसे किसी शिक्षा एव प्रवचन

१. अब्दुल्लाह इब्ने अल-मुकफ्फा (मृत्यु १४२ हि०। ७५९-६० ई०)।
२. मुहम्मद विन अल-वलीद तुरतूशी का जन्म लगभग ४५१ हि० १०५९ ई० तथा मृत्यु ५२० अथवा ५२५ हि० (११२६ अथवा ११३१ ई०) में हुई।
३. खुसरो प्रथम नौशीरवाँ का वजीर। उसे ईरान के दर्शन एवं बुद्धि का कोश समझा जाता है। वह काफी वृद्ध हो जाने के उपरान्त ५८० तथा ५९० ई० के मध्य मृत्यु को प्राप्त हुआ।
४. डैनियल, एक पैगम्बर जिनके विषय में मुसलमानों का विश्वास कि स्वप्नों की व्याख्या करने में दक्ष थे। क़ुरान शरीफ में इनका उल्लेख नही किन्तु "किस्सुल अम्बिया" (नबियों की कहानियों) में इन्हें बख्ते नस्र अथवा नेबुशावनिजार का समकालीन बताया गया है।
५. सम्भवतः सासानी वादशाह हुरमुज प्रथम जो अपने पिता शाहपुर प्रथम के बाद २७२ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसकी मृत्यु २७३ ई० में हुई।

सम्बन्धी ग्रन्थ से अधिक महत्त्व नही दिया जा सकता। ऐसा ज्ञात होता है कि लेखक के हृदय में तो ग्रन्थ का उद्देश्य पूर्ण रूप से स्पष्ट था, किन्तु वह न तो उसे शब्दो द्वारा व्यक्त ही कर सका, न वह उसकी सब समस्याओ को भली-भाँति समझ ही सका। किन्तु मेरा तो ईश्वर ने ही परोक्ष रूप से पथ-प्रदर्शन किया और ऐसा ज्ञान प्रदान कर दिया कि मै इस ग्रन्थ के प्रत्येक अग को स्पष्ट कर सका। यदि मेरे प्रयत्न से ये समस्याएँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हो सकी और मेरे द्वारा दिये गये उदाहरणो एव तर्कों द्वारा उनकी पूरी व्याख्या हो सकी, तो इसे ईश्वर की देन ही समझना चाहिए। यदि इन विषयो की व्याख्या में मुझसे भी भूल हो गयी हो और समस्याएँ परस्पर एक-दूसरे में मिलजुल गयी हों, तो शोधकार्य में रुचि रखनेवाले पाठक इनमें सशोधन कर लेंगे। मेरे लिए यही सम्मान पर्याप्त है कि मैंने एक निर्धारित मार्ग पर चलकर उनका पथ-प्रदर्शन कर दिया। "ईश्वर अपने प्रकाश से जिसका पथ-प्रदर्शन करना चाहता है, करता है।"[1]

अब हम अपने इस ग्रन्थ में सभ्यता की उन समस्याओ की व्याख्या करेंगे जिन्हें मनुष्य को राज्य-व्यवसाय, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल एव सामाजिक जीवन में सामना करना पडता है। यह वर्णन इस प्रकार तर्कपूर्ण होगा कि सर्वसाधारण एव विशेष व्यक्तियो के ज्ञान के अनुसार जो अनुसधान होगा वह सामने आ जायगा और भ्रम एवं शकाओ का निराकरण हो जायगा।

हमारा मत है कि मनुष्य कुछ विशेषताओ के कारण अन्य पशुओ से पृथक् है।

(१) ज्ञान-विज्ञान एव कला-कौशल के, जो उसे अपनी तर्क-शक्ति द्वारा प्राप्त होते है, कारण वह अन्य पशुओ से पृथक् तथा समस्त प्राणियो में श्रेष्ठ हो जाता है।

(२) उसे एक न्यायकारी शासक एव प्रभुताशाली बादशाह की आवश्यकता रहती है, कारण कि उसके बिना मनुष्य का अस्तित्व सम्भव नही होता। यद्यपि कुछ जानवरो के विषय में भी कहा जाता है कि वे भी बादशाही प्रभुत्व के अधीन जीवन व्यतीत करते है, उदाहरणार्थ मधु-मक्खियाँ अथवा टिड्डियाँ, किन्तु उनका पथ-प्रदर्शन दैवी प्रेरणा से होता है,जब कि मनुष्यो का पथ-प्रदर्शन उनकी चेतना एव बुद्धि करती है।

(३) मनुष्य जीविकोपार्जन के लिए प्रयत्न करता है और उसके साधन जुटाता है, कारण कि ईश्वर ने उसमें भोजन खोजने की वृत्ति एव आवश्यकता की नैसर्गिक प्रवृत्ति उत्पन्न की है। इसके द्वारा वह अपना जीवन निर्वाह करता है। भोजन की

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

इच्छा एव खोज के मार्ग भी मनुष्य को ईश्वर ने ही दिये हैं। "उसने[1] समस्त वस्तुओ को प्राकृतिक रूप दिया, तदुपरान्त उनका पथ-प्रदर्शन किया[2]।"

(४) सभ्यता—मनुष्य नगर अथवा किसी स्थान पर बस जाने का आदी है। वह अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति के कारण एक-दूसरे की सहायता पर निर्भर रहता है। वह अपने साथियो से प्रेम करता है और भोजन की खोज में एक-दूसरे की सहायता करता रहता है। इसका सविस्तर उल्लेख हम बाद में करेंगे। सभ्यता के दो रूप होते हैं। जो सभ्यता घाटियों, पर्वतों, रेगिस्तानो, चटियल मैदानो एवं अन्य हरे-भरे स्थानो में पायी जाती है वह बदवी कहलाती है। जो आबादियाँ नगरो, कस्बो, ग्रामों एव किलो में होती हैं और जिनकी रक्षा दीवारो द्वारा की जा सकती है वे हजरी[3] कहलाती हैं। इन दोनो स्थितियो में मनुष्यो को सामाजिक सगठन की दृष्टि से कुछ समस्याओ का सामना करना पड़ता है। अत हमने इस विषय को छ अध्यायो में विभाजित किया है—

(१) मनुष्यो की सभ्यता का साधारण उल्लेख एव उसके विभाजन, उन क्षेत्रो का जो सभ्य हैं वर्णन।

(२) बदवी सभ्यता, कबीले एव वहशी कौमें।

(३) सल्तनत एव खिलाफत तथा सुल्तानो के विभिन्न अधिकारों का उल्लेख।

(४) हज़री सभ्यता, देश तथा नगर।

(५) कला-कौशल, जीविकोपार्जन के साधन, व्यवसाय, उनके साधन इत्यादि।

(६) ज्ञान-विज्ञान तथा उनका अध्ययन एव प्राप्ति।

हमने बदवी सभ्यता का सर्वप्रथम उल्लेख इस कारण किया है कि उसे अस्तित्व में भी प्राथमिकता प्राप्त है। राज्य के अधिकारो को इसी कारण कस्बों एवं नगरो पर प्राथमिकता प्रदान की गयी है। व्यवसाय का उल्लेख ज्ञान-विज्ञान के पूर्व इस कारण किया है कि व्यवसाय नैसर्गिक आवश्यकता है और ज्ञान उन्नति एव सुगमता का साधन है। कला-कौशल का वर्णन हमने व्यवसाय के साथ इस कारण किया है कि कला-कौशल कुछ कारणो से तथा सभ्यता के दृष्टिकोण से व्यवसाय के अधीन ही है।

१. ईश्वर ने।
२. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।
३. अचल, एक स्थान पर स्थायी रूप से रहनेवाली, नगरों की सभ्यता एवं संस्कृति "हज़री" सभ्यता तथा संस्कृति कहलाती है।

अध्याय १

मानव-सभ्यता

पहली प्रस्तावना

मानव-सभ्यता का संक्षिप्त उल्लेख

मानवो का सामाजिक सगठन परमावश्यक एव अनिवार्य है। दार्शनिक अपने शब्दो में इस सिद्धान्त को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि "मनुष्य सामाजिक प्राणी है" अर्थात् मनुष्य के लिए अपने साथियों से मिल-जुलकर रहने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही। दार्शनिक लोग इसे मदीना[1] और हम इमरान कहते हैं।

इस तथ्य की व्याख्या इस प्रकार है कि ईश्वर ने मनुष्य को स्वाभाविक रूप से ऐसा बनाया है कि उसका जीवन एव अस्तित्व भोजन के बिना सम्भव नही। उसने उसे ऐसी नैसर्गिक शक्ति प्रदान की है जिससे वह अपने भोजन की खोज कर सके तथा उसकी प्राप्ति के साधन जुटा सके। किसी अकेले मनुष्य के लिए अपने भोजन की समस्त आवश्यकताओ का जुटाना असम्भव है। उदाहरणार्थ उसके एक दिन के भोजन की समस्या को ही ले लिया जाय तो वह भी बहुत से पूर्व कार्यों के बिना उसके पेट तक नही पहुँच सकता। गेहूँ उपलब्ध होने पर भी पीसे, माँडे तथा पकाये बिना वह गेहूँ उसके भोजन के योग्य नही हो सकता। इन तीनों कार्यों में से प्रत्येक के लिए अनेक यत्रो की आवश्यकता होती है जो बहुत-सी कलाओ पर निर्भर है। लोहार, बढई एवं कुम्हार के कार्यों की सहायता की उसे आवश्यकता पड़ेगी। यदि इसे भी स्वीकार कर लिया जाय कि मनुष्य इन झगडो में पडे बिना केवल दाना चबाकर जीवन-निर्वाह कर सकता है, तब भी इन दानों को एकत्र करने के लिए अनेक कार्यों की आवश्यकता होगी। बोना, काटना, माँडना—इन कार्यों के सपादन हेतु, उसे पहले से भी अधिक यंत्रो एव व्यवसायों की आवश्यकता होगी। अब यह स्पष्ट है कि ये सब अथवा इनमें से कुछ कार्य एक मप्नुय द्वारा कदापि पूरे नही हो सकते, अत. यह परमावश्यक है कि बहुत से मनुष्य एक स्थान पर एकत्र हो ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कार्य द्वारा सभी की जीविका के साधन जुटा सके। इस प्रकार पारस्परिक सहयोग एवं

१ Polis, नगर।

प्रयत्न से कभी-कभी ये जीविका के साधन मनुष्यो की आवश्यकताओ से अधिक भी उपलब्ध हो जाते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी रक्षा हेतु अपने साथियो की सहायता पर निर्भर रहता है। ईश्वर ने जब मनुष्य को विशेष गुण एव स्वभाव प्रदान किये और प्रत्येक के भाग्य को अलग-अलग निश्चित किया तो अधिकाश पशुओ को मनुष्य से अधिक बल प्रदान किया। उदाहरणार्थ घोडे में मनुष्य से कही अधिक बल है। इसी प्रकार गधे एव बैल में भी उससे अधिक शक्ति है। सिंह एव हाथी में तो मनुष्य से कई गुना अधिक शक्ति है। क्योंकि पशु स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे के शत्रु होते हैं, अत ईश्वर ने प्रत्येक को एक विशेष शारीरिक अग प्रदान किया, जिसके द्वारा वह अपने शत्रुओ से अपनी रक्षा कर सके। मनुष्य को इसके स्थान पर बुद्धि प्रदान की और हाथ दिये गये। हाथ का यह कर्तव्य हुआ कि वह बुद्धि के बल पर कला-कौशल में भाग ले और मनुष्य के लिए ऐसे यत्र तैयार करे जो पशुओ के समस्त रक्षा हेतु प्राप्त अगो का मुकाबला कर सकें। भाले सीगो का काम देते हैं, तलवारो का प्रयोग फाडनेवाले पजो के स्थान पर होता है, ढालें कडी खालो के समान प्रतिरक्षा के काम आती हैं। इसी प्रकार अन्य अस्त्र-शस्त्र पशुओ की रक्षा हेतु प्राप्त अगो के स्थान पर प्रयोग में आते हैं। जालीनूस[1] ने "मुनाफे-उल-आजा" नामक ग्रथ में इस विषय पर प्रकाश डाला है। अत. मनुष्य अस्त्र-शस्त्र के बिना केवल अपने बल से पशुओ का मुकाबला नही कर सकता और वन्य पशुओ से तो वह मुकाबला कर ही नही सकता। अब जिस प्रकार मनुष्य पशुओ का मुकाबला करने में असमर्थ है उसी प्रकार उसके लिए प्रति-रक्षा के समस्त अस्त्र-शस्त्रो का अकेले तैयार करना असम्भव है, अत यह आवश्यक है, कि वह अस्त्र-शस्त्र के बनाने में अपने साथियो से सहायता ले।

सक्षेप में पारस्परिक सहयोग के बिना न तो मनुष्य को जीविका के साधन ही उपलब्ध हो सकते हैं और न वह अपना जीवन निर्वाह ही कर सकता है। ईश्वर ने उसके सर्जन में ही भोजन को अनिवार्य कर दिया है। इसके अतिरिक्त अस्त्र-शस्त्र के बिना वह अपनी रक्षा नही कर सकता। इनके अभाव में वह वन-पशुओ का भोजन बन जायगा और मानवसमाज का अन्त हो जायगा। जब उसे अपने साथियो का सहयोग न प्राप्त होगा तो वह भोजन भी न प्राप्त कर सकेगा और प्रतिरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र भी न उपलब्ध हो सकेंगे और न मानव शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेगा।

१. गैलेन।

अत मानव के लिए सामाजिक सगठन अनिवार्य है। इसके बिना न तो मनुष्य का अस्तित्व पूर्ण हो सकेगा और न ससार की आवादी, तथा मनुष्य को अपना खलीफा नियुक्त करने के सम्बन्ध में न ईश्वर की इच्छा ही पूरी हो सकेगी[१]। इसी सगठन का नाम हम समाज रखते हैं। ऊपर हमने सामाजिक सगठन-विषयक शास्त्र के विभिन्न विपयो का उल्लेख किया है। हमारे विवरण द्वारा इस शास्त्र की व्याख्या स्वत हो जाती है। यद्यपि तर्क-शास्त्र में यह बात निश्चित हो चुकी है कि विद्वान् के लिए यह आवश्यक नही कि वह अपने ज्ञान से सम्वन्धित विषयो को प्रमाणित करने का प्रयत्न करे, किन्तु इसका निषेध भी नही है। "ईश्वर ही अपनी कृपा से सफलता प्रदान करता है।"

जब सब लोग उपर्युक्त सिद्धात के अनुसार सामाजिक जीवन व्यतीत करने लगे और पृथ्वी मनुष्यो से बस गयी तो इस बात की आवश्यकता हुई कि उनमें कोई न्यायकारी शासक भी हो, जो किसी पर अत्याचार एव अन्याय न होने दे। कारण कि अत्याचार एव अन्याय मनुष्य में स्वाभाविक रूप से पाये जाते है। जिन शस्त्रो से वह अन्य पशुओ से अपनी रक्षा करता है, उनका प्रयोग वह अपने साथियो से अपनी रक्षा करने में नही कर सकता, कारण कि वे तो सभी के पास है। अत एक ऐसे व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता होती है जो एक मनुष्य की दूसरे मनुष्य से रक्षा कर सके। मनुष्य के लिए इस प्रकार का न्यायकारी शासक मनुष्य के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? पशुओ में न तो मनुष्यो के समान वुद्धि होती है और न तर्कशक्ति। अत कोई ऐसा मनुष्य ही होना चाहिए जिससे हर प्रकार से अन्य मनुष्यो पर प्रभुत्व प्राप्त हो और सभी उसकी आज्ञाओ का पालन करें, ताकि कोई किसी पर अत्याचार न कर सके। अत मानव-समाज में इस प्रकार का जो व्यक्ति होगा वही वादशाह अथवा सुल्तान कहलायेगा। इस तर्क से यह स्पष्ट हो जाता है कि वादशाह की उपस्थिति मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, जिससे उसे कदापि कोई हानि नही हो सकती। यद्यपि कुछ जानवरो में भी वादशाह होते हैं, जैसा कि दार्शनिको ने मधुमक्खी तथा टिड्डी के विषय में वताया है, कारण कि वे सव

१. कुरान शरीफ के अनुसार ईश्वर ने जब हजरत आदम को पैदा करना चाहा तो फिरिश्तों से कहा कि मै पृथ्वी पर अपना खलीफा बनाना चाहता हूँ। फिरिश्तों ने इसका विरोध करते हुए निवेदन किया कि हम तो उपासना करते ही हैं। ईश्वर ने उनकी बात यह कहकर रद्द कर दी कि "जो कुछ मै जानता हूँ तुम नहीं जानते।" (सूरा २, आयत नं० ३०)

अपने नेता की आज्ञाकारी रहती है जो उनसे शरीर, वल एवं रूप-रंग में श्रेठ होता है। किन्तु जानवरों में यह वात केवल नैसर्गिक है और मनुष्यो की वादशाह सम्वन्धी आवश्यकता वुद्धि एव तर्क के आधार पर होती है।

दार्शनिक लोग नवियों[1] की आवश्यकता को तर्क द्वारा प्रमाणित करते हुए कहते हैं कि उनकी आवश्यकता मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। वे उपर्युक्त तर्क में इतना और भी मिलाकर कहते है कि मनुष्य के लिए ऐसे न्यायकारी शासक का होना, जो दैवी नियमों का प्रचार कर सके, परमावश्यक है। अर्थात् एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो उस शरीअत को, जो ईश्वर की ओर से प्राप्त हुई है, मनुष्यो को सिखाए और उनसे उस पर आचरण कराए। इस प्रकार के व्यक्ति के लिए मनुष्य होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि वह व्यक्ति दैवी गुणो द्वारा शोभित हो, ताकि प्रत्येक व्यक्ति उसकी वातो को सहर्ष स्वीकार कर ले और विना किसी वहाने अथवा तर्क-वितर्क के शरीअत के नियम मनुष्यों पर लागू हो जायँ। किन्तु दार्शनिको का यह कथन तर्क द्वारा प्रमाणित नही हो सकता, कारण कि मनुष्यो का अस्तित्व एव जीवन उन नियमो द्वारा भी सुरक्षित रह सकता है जिनका आविष्कार वे अपनी ओर से करते हैं अथवा "असवियत[2]" के वल पर वे अपने विशेष ढग से लोगो को अपने वश में तथा अपना आज्ञाकारी वना लेते हैं। इसमें कोई सन्देह नही कि किताव वालो[3] एव नवियो के अनुयायियो की सख्या उन मजूसियों[4] से, जिनके पास कोई दैवी पुस्तक नही, कही कम है और ससार में विना किताव वालों[5] की सख्या ही अधिक है। वे केवल जीवित ही नही अपितु वड़े वडे राज्यो का शासन-प्रवन्व कर रहे है। उत्तरी एव दक्षिणी देशो में उनके राज्य स्थापित है, यद्यपि उनका कोई नवी नही जिसका वे अनुसरण

१. पैग़म्वरों, ईश्वर के दूतों।
२. क़वीलों का पारस्परिक प्रेम अथवा संगठन।
३. यहूदी तथा ईसाई, जिन्हें ईश्वर की ओर से उसी प्रकार नवियों द्वारा दैवी आदेश प्राप्त होते रहते थे जिस प्रकार मुसलमानों को। इनके धर्म-ग्रंथों के नाम क्रमशः ज़ुवूर, तौरैत एवं इंजील हैं।
४. मैगियन्स अथवा जरदुश्ती (ज़ोरोएस्ट्रियन्स)।
५. ऐसे धर्म जिनके पथप्रदर्शन हेतु ज़ुवूर, तौरैत एवं इंजील अथवा क़ुरान के समान कोई दैवी पुस्तक नहीं।

कर सकें। अत. यह बात प्रमाणित हो गयी कि दार्शनिको ने नबियो के विषय में तर्क करने में भूल की है। उपर्युक्त वर्णन से पता चल गया होगा कि नबी की आवश्यकता तर्क द्वारा सिद्ध नही हो सकती अपितु इसका आधार शरीअत एव उम्मत[1] के बुजुर्गों के पदानुगमन पर निर्भर है।

दूसरी प्रस्तावना

आबाद भूमि का विभाजन, समुद्रों, नदियों तथा इक़लीमों[2] का वर्णन[3]

तीसरी प्रस्तावना

समशीतोष्ण तथा असमशीतोष्ण इक़लीमें, वहाँ के मनुष्यों तथा उनके रंग-रूप पर जलवायु का प्रभाव[4]

चौथी प्रस्तावना

जलवायु का मनुष्य के चरित्र पर प्रभाव[5]

१. अनुयायी, यहाँ तात्पर्य मुहम्मद साहब के अनुयायियों से हैं।

२. जलवायु के प्रदेश। मध्यकालीन भूगोलवेत्ताओं के अनुसार संसार सात इकलीमों में विभाजित था।

३. इब्ने खलदून ने इस स्थान पर जो भौगोलिक वर्णन किया है वह साधारणतः सभी मध्यकालीन भूगोल के ग्रन्थों में मिल जाता है। उसने विशेष रूप से मुहम्मद बिन मुहम्मद अल इदरीसी (जन्म १०९९ अथवा ११०० ई०, मृत्यु ११६२ ई०) के "नुजहतुल मुश्ताक" नामक ग्रंथ पर अपना लेख आधारित किया है। यद्यपि इदरीसी का पूरा ग्रंथ अब कहीं नहीं मिलता, किन्तु इसके विभिन्न अंशों पर यूरोप की भाषाओं में अनेक ग्रथ लिखे जा चुके हैं। इस प्रकरण का अधिक महत्त्व न होने के कारण इसका अनुवाद नही किया गया।

४. इस प्रकरण में भी वही साधारण भौगोलिक वर्णन किया गया है जो अन्य मध्यकालीन भूगोल के ग्रंथों में मिलता है, अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।

५. इस प्रकरण में भी साधारण भौगोलिक वर्णन किया गया है जो अन्य भूगोल की पुस्तकों में मिलता है। अतः इसका भी अनुवाद नहीं किया गया।

पाँचवीं प्रस्तावना

अकाल एवं अल्पमूल्यता से देश मे क्या परिवर्तन होते है और इनका प्रभाव मनुष्यो के शरीर एवं चरित्र पर किस प्रकार पड़ता है

यह बात जाननी चाहिए कि न तो सब-की-सब समशीतोष्ण इकलीमें हरी-भरी एव उपजाऊ होती है और न वहाँ के सभी निवासी सुखसम्पन्नता का जीवन व्यतीत करते है। इन इकलीमो में से कुछ तो ऐसे स्थान है जहाँ के निवासी अनाज, मेवा और खाद्य सामग्री की बहुतायत के कारण सुख-शान्ति से एव धन-धान्यसम्पन्न होकर जीवन व्यतीत करते है, कारण कि वहाँ की भूमि कृषि के लिए बडी उपयुक्त एव उत्कृष्ट होती है। इसी प्रकार वहाँ की आबादी भी घनी होती है। पर इन्ही इकलीमो में कुछ ऐसे स्थान भी है जिनकी भूमि गरमी के कारण बजर होती है, न वहाँ कृषि ही होती है और न घास। वहाँ के निवासी बडी कठिनाई से जीवन व्यतीत करते है। उदाहरणार्थ हिजाज, दक्षिणी यमन के निवासी, नकाबपोश सिहाजा जो मगरिब के उजाड स्थानो तथा बरबर एव मगरिबी सूडान के मध्य रेगिस्तानो में निवास करते है, अनाज एव खाद्य सामग्री के लिए तरसते रहते है। इनका अधिकाश भोजन मास एव दूध है।

अरब के बदवियो की, जो रेगिस्तानो में चक्कर लगाया करते है, गणना भी इन्ही लोगो में होती है। यद्यपि अनाज एव खाद्य सामग्री उन्हें पहाडियो से प्राप्त हो जाती है, किन्तु प्राय नही और वह भी उन्हें उनके किसी सहायक एव मित्र की कृपा एव उदारता के कारण। फिर जो कुछ प्राप्त होता है वह बडी थोडी मात्रा में ही प्राप्त होता है, वह उनकी आवश्यकताओ के लिए पर्याप्त नही होता अत वे समृद्ध नही रह सकते। कभी-कभी तो उन्हें केवल दूध पर ही जीवन-निर्वाह करना पडता है और दूध को ही अनाज का स्थान देना पडता है। किन्तु ये उजाड स्थानो के निवासी तथा आवास-रहित जातियाँ जिन्हें खाद्य सामग्री उपलब्ध नही होती, शरीर एव चरित्र में उन लोगो से कही श्रेष्ठ होती है जो हरे-भरे एव उपजाऊ स्थानो में निवास करते है और भोग-विलास में ग्रस्त रहते है। इनके रग निखरे हुए, शरीर सुडौल, रूप सुन्दर एव आकर्षक तथा इनका चरित्र एव स्वभाव पवित्र होता है। इनकी बुद्धि, ज्ञान के विषय में बडी तीव्र होती है। अनुभव से पता चलता है कि ये सब गुण इनको प्राप्त है।

इसी विशेषता के कारण अरब, बरबर, नकाबपोश एव पहाड़ियो तथा उपजाऊ स्थान के निवासियो में बडा अन्तर है। इसका पता परीक्षा एव अनुभव द्वारा ही चल सकता है। इसका कारण सम्भवत यह है कि भोजन की अधिकता के कारण

उसका रस शरीर में अपकारक अनावश्यक पदार्थ पैदा कर देता है, जिससे असगत रूप से शरीर बढ जाता है और बहुत से बदबूदार तथा दूषित त्रि-दोष शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। इससे रग भी मैला हो जाता है और मास की अधिकता से शरीर एव रूप भी बिगड जाता है। जब आर्द्रता एव उससे उत्पन्न होनेवाली वाष्प मस्तिष्क की ओर चढती है तो वे बुद्धि एव विवेक को दूषित कर देती हैं। फलत मूर्खता, असावधानी एव असयम का जन्म हो जाता है। यदि जगलो एव उजाड स्थानो मे रहनेवाले पशुओ, उदाहरणार्थ मृग, शुतुरमुर्ग, जराफा, गोरखर तथा नील गाय की तुलना हरे-भरे एव उपजाऊ स्थानो में पाये जानेवाले जानवरो से की जाय तो बडा अन्तर मिलेगा। जगली जानवरो का रग भी स्वच्छ एव शुद्ध मिलेगा और रूप भी। शरीर के अग भी सुडौल मिलेंगे और उनकी समझ भी तीव्र होगी। यद्यपि मृग एव बकरा, गोरखर एव गधा, नील गाय एव बैल एक ही वर्ग के जानवर है, किन्तु एक-दूसरे से विभिन्न तथा पृथक् हैं। इसका कारण यह है कि हरे-भरे एव उपजाऊ स्थानो के पालतू पशुओ में अधिक भोजन से उनके शरीर में अपकारक अनावश्यक पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं और उपर्युक्त प्रभाव का कारण बन जाते हैं। इससे उनका रूप-रग भी भद्दा हो जाता है और उनकी चुस्ती व चालाकी भी जाती रहती है। इसके विपरीत कम खाने के कारण वन-पशुओ का शरीर सुडौल तथा यथोचित एव रूप-रग भी सुन्दर एव आकर्षक होता है।

यही दशा आदमियो की भी है कि उन हरी-भरी इकलीमो के, जहाँ कृषि भी खूब होती है, निवासी खाद्य सामग्री एव मेवो इत्यादि की बहुतायत के कारण अधिकाश मूर्ख और बेडौल होते हैं। इसी प्रकार उन बरबरो की तुलना, जो खाद्य सामग्री की ओर से निश्चिन्त हैं, मसमूदह के बरबरो तथा गुमारा और सूस के निवासियो से की जाय जो केवल जौ एव ज्वार पर जीवन निर्वाह करते है, तब भी यही अन्तर मिलेगा। यही अन्तर मगरिब एव उन्दुलुस (स्पेन) के निवासियो में है। मगरिब के प्रदेशो के निवासियो के पास साधारणत. भोजन सामग्री की बहुतायत होती और उन्दुलुस के निवासी घी-दूध के लिए तरसते हैं। जौ एव ज्वार उनका भोजन है, किन्तु फिर भी उन्दुलुस निवासियो की बुद्धि तीव्र, शरीर हलके फुलके और ज्ञान-विज्ञान में वे सबसे श्रेष्ठ होते हैं।

यही दशा मगरिब के उन लोगो की है जो उजाड स्थानो में निवास करते है। जब उनकी तुलना नगर-निवासियो से की जाती है तो पता चलता है कि यद्यपि नगर-निवासी "मास-रस" इत्यादि का प्रयोग करते एव उत्तम भोजन करते हैं, किन्तु भोजन तैयार करने में वे उसमें कुछ ऐसी वस्तुएँ मिला लेते हैं जिनसे भोजन का गुण हलका हो जाता है। फलत. भोजन की गुरुता समाप्त हो जाती है। वे अधिकाशत बकरो तथा

पक्षियों का मांस खाते है, पर घी उन्हें स्वादिष्ठ नही लगता अत वे उसका प्रयोग वहुत कम करते है। इस कारण उनके भोजन में आर्द्रता की कमी होती है और वह शरीर में वहुत कम अपकारक अनावश्यक पदार्थ उत्पन्न करता है। इसी कारण हम देखते हैं कि इन नगर-निवासियों का शरीर मोटा-झोटा भोजन करनेवाले जगल-निवासियो के शरीर की अपेक्षा वडा कोमल एव नाजुक होता है। इसी प्रकार जो ग्रामीण भूखे रहने के आदी होते है उनके शरीर में भी अधिक अनावश्यक पदार्थ नही होते।

समृद्धि एव अल्पमूल्यता का प्रभाव केवल शरीर पर ही नही पड़ता अपितु ईश्वर की उपासना एव धर्म पर भी पड़ता है। इससे वहुत कुछ निष्कर्ष निकलते है। जो वदवी एव ग्रामीण लोग भूख के कष्ट भोगते रहते है और भोग-विलास एव स्वादिष्ठ भोजन से अपरिचित होते है, वे अधिकांश धर्मनिष्ठ होते है और ईश्वर की उपासना में तल्लीन रहते है। नगरो में धर्मनिष्ठ लोगो की सख्या वहुत ही कम होती है। समृद्धि एवं सुखसम्पन्नता के कारण उनमें उपेक्षा एव निष्ठुरता उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण ईश्वर की उपासना करनेवाले एव धर्मनिष्ठ लोग, भूखे ग्रामीणो से ही मिलते-जुलते है। इसी प्रकार समृद्धि एवं सुखसम्पन्नता में पले हुए कोमल नगरनिवासियो एव ग्रामो के कष्ट भोगनेवाले ग्रामीणो में एक अन्तर यह भी होता है कि जव कभी इन पर अकाल का प्रकोप होता है अथवा इनके यहाँ महँगाई आ जाती है और भुखमरी फैल जाती है,तो नगरनिवासियो पर इस कष्ट का अधिक प्रभाव होता है। उदाहरणार्थ मगरिव के वरवर तथा मिस्र[1] एवं फेज़ के निवासी वहुत वड़ी संख्या में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, जव कि जगलो एव रेगिस्तानो के अरव, जो केवल खजूर से पेट पालते हैं, वे इफरीकिया-निवासी जिनका भोजन जौ एवं जैतून है और था, वे उन्दुलुस-निवासी जिनका जीवन-निर्वाह जौ, ज्वार एव जैतून से होता हैं, उससे वचे रहते है। अकाल एव भुखमरी उन्हें इतनी अधिक हानि नही पहुँचाती जितनी कि कोमल एव समृद्ध नगर-निवासियो को। इसका कारण यह है कि समृद्धि का जीवन व्यतीत करनेवालो तथा चिकनाई का प्रयोग करनेवालो की आँतें स्वाभाविक रूप से जितनी चिकनाई की आवश्यकता होती है, उससे अधिक चिकनाई प्राप्त कर लेती है। जव भोजन में कमी हो जाती है और चिकना भोजन प्राप्त नहीं होता तथा स्वभाव के विरुद्ध उन्हें रूखा-सूखा भोजन करना पडता है, तो शीघ्र ही उनकी आँतें सूखने एवं सिकुड़ने लगती है। आंतो के कोमल होने के कारण वे शीघ्र ही किसी-न-किसी रोग में ग्रस्त होकर

१. काहेरा (केअरो)

मृत्यु को प्राप्त हो जाते है। अत. भुखमरी के समय मृत्यु का कारण पहले से अधिक भोजन करने का आदी होना होता है न कि मृत्यु के समय में भोजन की कमी। जो लोग भोजन में अधिक चिकनाई खाने के आदी नहीं होते उनके शरीर का तरल पदार्थ एव चिकनाई अपनी मूल सीमा पर बिना किसी अधिकता के ठहरी रहती है और वह समस्त प्राकृतिक भोजनो को स्वीकार कर लेता है, अत. भोजन में परिवर्तन के कारण उनकी आँतो में आवश्यकता से अधिक खुश्की नही पैदा होती और वे प्राय. चिकना भोजन करनेवालो के समान मरते नही। यह तथ्य भी इस सिद्धात पर आधारित है कि भोजन की ओर से घृणा अथवा आकर्षण स्वभाव पर निर्भर है। जब कोई व्यक्ति किसी विशेष भोजन का आदी हो जाता है तब यदि वह भोजन विषैला नही है तो उसके त्याग देने अथवा उसमें परिवर्तन करने से वह व्यक्ति रोगी हो जाता है। कोई भी खाद्य पदार्थ, भले ही वह दैनिक खाद्यपदार्थ के प्राकृतिक गुणो से भिन्न क्यो न हो, आदत पड़ जाने पर प्रिय भोजन बन जाता है। उदाहरणार्थ यदि कोई गेहूँ के स्थान पर दूध तथा हरी तरकारियो का ही प्रयोग करने लगे तो आदत पड जाने से वे ही उसके लिए भोजन बन जाती है और गेहूँ इत्यादि की उसे फिर आवश्यकता नही रहती।

इसी प्रकार जो अपने आपको भूखा रखने एवं न खाने का आदी बना लेता है वह बहुत दिनो तक जीवित रह सकता है, जैसा कि तपस्वी फ़क़ीरो के विषय में प्रचलित उन आश्चर्यजनक कहानियो में मिलता है, जिन्हें बुद्धि स्वीकार नही कर सकती। वास्तव में इसका कारण आदत है। जब किसी की एषणा किसी वस्तु की आदी एव उसके अनुकूल हो जाती है तो वह वस्तु उसके स्वभाव में प्रविष्ट हो जाती है। इसका कारण यह है कि एषणा अनियमित होती है। जब शनै. शनैः तपस्या के कारण भूखा रहने की आदत पड़ जाती है तो यही उसका स्वभाव बन जाता है। चिकित्सको को जो यह भ्रम है कि भूख मनुष्य की मृत्यु का कारण बन जाती है, तो इसमें उस अवसर के लिए तो कोई तथ्य पाया जाता है जब अचानक किसी पर भूख की विपत्ति आ जाय और अचानक उसका भोजन बन्द कर दिया जाय। कारण कि ऐसे अवसरो पर अंतड़ियाँ सूख जाती है और उनको वे रोग हो जाते है जो मृत्यु के निकट पहुँचा देते है। किन्तु जब तपस्या करते-करते शनै -शनैः और थोडा-थोड़ा भोजन कम किया जाय, जिस प्रकार सूफी[1]

१. मुसलमान सन्त।

लोग करते हैं, तो इसमें प्राण का कोई भय नही होता। इसी प्रकार भोजन त्यागने के उपरान्त भोजन की आदत डालते समय भी धीरे-धीरे भोजन की मात्रा बढाना परमावश्यक है। क्योकि यदि भूखा रहने का आदी वनकर पूर्व की भाँति ही भोजन प्रारम्भ कर दिया जाय तो यह भी मृत्यु का कारण वन जाता है।........[१]

इस तथ्य को कोई भी अस्वीकार नही कर सकता कि भूखा रहना, यदि कोई उसे सह सके, मनुष्य के शरीर के लिए अधिक भोजन करने की अपेक्षा अधिक लाभदायक है। भोजन के त्याग तथा कम भोजन करने से शरीर एव विवेक की शुद्धता पर वडा प्रभाव पडता है। इसका प्रमाण विभिन्न भोजनो के शरीर पर पडनेवाले प्रभाव से चलता है। हमने देखा है कि जो लोग वडे और मजवूत जानवरो का मास खाते है, उनकी नसलें भी वलवान् एव शक्तिशाली होती है। यह अन्तर ग्रामीणो एव नगरनिवासियो में पूर्णत. स्पष्ट रहता है। उदाहरणार्थ जो लोग ऊँट का मास खाने अथवा उसका दूध पीने के आदी होते है उनमें ऊँटो के समान धैर्य एव सहनशीलता उत्पन्न हो जाती है। उनकी अँतडियाँ भी ऊँटो के समान कठोर और ताकतवर हो जाती है। न उनकी आँतें कमजोर हो पाती है और न उनमें वह रोग लगता है जो दूसरो को लगता हैं। वे अपने आमाशय को ठीक रखने के लिए रेचक औपधियो का रस पी जाते है और विना पकाये ही उन्हें खा जाते हैं। उनकी आँतो पर इसका कोई कुप्रभाव नही होता। यदि कही हलका भोजन करनेवाले नरम आँतोवाले लोग उन चीजो को खा जायें तो तत्काल उनकी मृत्यु हो जाय, कारण कि उनमें विपैले पदार्थ होते है। सक्षेप में भोजन का शरीर पर पडनेवाला प्रभाव एक प्रामाणिक तथ्य है।

लोगो ने इस वात की परीक्षा की है कि जव मुर्गी को ऊँट की मेंगनी में उवले हुए दाने दिये जाते है और उसके अडे लेकर वच्चे निकाले जाते हैं, तो इन अडो से निकलनेवाले वच्चे साधारण वच्चों से शरीर में वडे होते हैं। यदि इस प्रकार का भोजन उन्हें न दिया जाय अपितु उन अडो के नीचे, जिनसे वच्चे निकाले जा रहे हो, ऊँट की मेंगनियाँ विछा दी जायें तो भी उनसे निकलनेवाले वच्चो का शरीर वडा होता है। इस प्रकार के उदाहरण वहुत से मिलते है। जव शरीर पर भोजन के इस प्रभाव का पता चल गया तो इसमें सदेह नही किया जा सकता कि भूख का भी शरीर पर प्रभाव पडेगा, कारण कि विरोवाभासी चीजें प्रभाव की उपस्थिति एव अनुपस्थिति में एक ही सम्बन्ध रखती हैं। अत यह स्वीकार करना पडेगा कि भूख शरीर को अपकारक अनावश्यक

१. एक उदाहरण जिसका अनुवाद नहीं किया गया।

पदार्थों से, जो शरीर एव वुद्धि दोनो के लिए हानिप्रद है उसी प्रकार बचाये रखती है जिस प्रकार भोजन शरीर को प्रभावित करता है।

छठी प्रस्तावना

मनुष्यो की विभिन्न किस्मे, जिन्हें प्रकृति अथवा अभ्यास से परोक्ष की बातों का ज्ञान हो जाता है और इस विषय की प्रस्तावना के रूप मे वही[१] एव स्वप्न का उल्लेख।

(१) नबूअत[२] का अर्थ।

(२) कहानत[३]।

(३) स्वप्न।

(४) अन्य प्रकार से परोक्ष का ज्ञान[४]।

१. वह आदेश जो पग़म्बर अथवा नबी को ईश्वर की ओर से प्राप्त होता है। मुहम्मद साहब को ये आदेश जिब्रील फिरिश्ते द्वारा प्राप्त होते थे।

२. नबी अथवा पैगम्बर होना।

३. काहन (शकुन विचारनेवाला) होना।

४. इस खंड में मुसलमानों के साधारण विश्वासों से सम्बन्धित बातो का उल्लेख किया गया है, अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।

अध्याय २

बद्वी सभ्यता, वह्शी क़ौमों एवं क़बीलों का रहन-सहन, उनकी दशा एवं उनसे संबंधित अन्य बातें

(१) बदवी एव हजरी प्राकृतिक समूह हैं

मानवीय कबीलो की विभिन्नता का बहुत बड़ा कारण उनके जीविकोपार्जन के साधनो की भिन्नता है। कोई सामाजिक समूह अपने जीवन-निर्वाह के लिए एक काम करता है और दूसरा समूह कोई अन्य। इसी कारण उनकी दशाएँ एक-दूसरे से अत्यधिक भिन्न हो जाती है और उनके अलग-अलग सामाजिक समूह बन जाते है। कारण कि मनुष्य इसी उद्देश्य से मिल-जुलकर एक स्थान पर रहते है कि वे एक-दूसरे की सहायता करें और अपनी आवश्यकता की सामग्री एकत्र करें। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए सबसे परमावश्यक काम को ही सर्वप्रथम करने को विवश होते है। उस कार्य के उपरान्त वे अनावश्यक कार्य तथा अन्य ऐसे कार्यों में हाथ डालते है जिनके फलस्वरूप उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त होती है। अत प्रारम्भ में कोई कृषि करता है तो कोई भेड-बकरियाँ, ऊँट एव बैल चराता है, मधुमक्खियाँ पालता है और उनसे प्राप्त दूध, मास, ऊन, खाल तथा मधु से अपनी आवश्यकता पूरी करता है। ऐसी दशा में चरवाहे एव कृषक ग्रामो के-ऐसे खुले हुए स्थानो मे निवास करने पर विवश होते है जहाँ खेती बाड़ी का कार्य सुगमता पूर्वक हो सके, और पशु पालन में आसानी हो। नगरो की घनी आबादियो में ये लोग निवास नही कर सकते। अत ये दोनो समूह अर्थात् कृषक एव चरवाहे ग्रामो में निवास करने लगते है और यह निवास इनके लिए बडा आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त बदवी एव ग्रामीण अपने सामाजिक जीवन हेतु तथा अपने जीवन से सम्बन्धित आवश्यक वस्तुओ के सग्रह के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहते है। उदाहरणार्थ अपनी भोजन एव वस्त्र सम्बन्धी वस्तुओ के लिए वे एक-दूसरे का हाथ न बटायें तो उनका जीवन-निर्वाह कठिन हो जाय। यद्यपि उनकी आवश्यकताएँ बहुत ही कम होती है और वे केवल इतनी ही चीजें चाहते है जिनसे जीवित रह सकें, यानी सिर्फ खाने को भोजन एव पहनने को वस्त्र। इससे अधिक उन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नही होती।

फिर जब उनकी दशा में परिवर्तन हो जाता है और वे समृद्ध हो जाते है तब उनकी धन-सम्पत्ति में वृद्धि होने लगती है और सुख-सम्पन्नता के साधन भी उपलब्ध होने लगते है। वे एक-दूसरे की सहायता करते है, खूब खाते पीते है, सुन्दर वस्त्र धारण करते है

और प्रत्येक वस्तु को सुन्दर वनाने का प्रयत्न करने लगते है, भव्य भवनो का निर्माण कराते है, नगरो एव वडे-वड़े कसवो की नीव डालते है। सक्षेप में उनका भोग-विलास का जीवन नित्यप्रति उन्नति करने लगता है और वे विलासिता एव सुख-शान्ति की चरम सीमा पर पहुँच जाते है। जव भोजन सम्वन्धी उनकी रुचि उन्नत होती है तो वे नाना प्रकार के भोजनो का आविष्कार करते है और स्वादिष्ठ भोजनो की इच्छा उन्हें आ घेरती है। जव उन्हें उत्तम वस्त्र धारण करने की इच्छा होती है तो वे रेशम तथा ज़रवफ्त के वस्त्र धारण करते है और नाना प्रकार के वस्त्र तैयार करके पहनते है। निवास हेतु गगन-चुम्वी भवनो एव भव्य राज-प्रासादो का निर्माण कराते है। उन्हें सजाकर स्वर्ग के समान कर लेते है। सक्षेप में कहा जा सकता है कि कला-कौशल की उत्पत्ति सार्वजनिक कल्याण की इच्छा से ही होती है। फिर भवनो एव राज-प्रासादो को सजाने एव सुन्दर वनाने के उद्देश्य से उनमें नहरें निकाली जाती है, ताकि उन्हें स्वर्ग के उद्यान के समान कर दिया जाय। उनमें नाना प्रकार के वेल-वूटे वनाये जाते है और पच्चीकारी की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति भोजन, वस्त्र, फ़र्श एव अन्य वस्तुओ म नाना प्रकार के आविष्कार करता है। यही लोग नगरनिवासी अथवा हज़री कहलाते है। ये लोग नगरो में रहते और विभिन्न व्यवसाय करते है। कोई कला-कौशल की ओर आकृष्ट होता है तो कोई व्यापार को अपना व्यवसाय वनाता है। सक्षेप में इन नगरनिवासियो के जीविका एंवं आय के साधन वदवियो की अपेक्षा उत्तम एव सुख-दायक होते है। उनको प्रत्येक वस्तु आवश्यकता से अधिक मिलती है, फिर जिस प्रकार अधिक मात्रा में उन्हें चीज़ें मिलती है उतनी ही अधिक मात्रा में वे व्यय करते है।

सक्षेप में मानवीय कवीलो का वदवियो एव नगरनिवासियो में वँट जाना एक स्वाभाविक और आवश्यक वात है, इसके अतिरिक्त और कुछ हो भी नही सकता।

(२) संसार में अरव[1] प्राकृतिक समूह है

पिछले खड में हम यह वात स्पष्ट कर चुके है कि रेगिस्तान-निवासियो एव वदवियो की जीविका के साधन कृपि एव पशु पालन है। वे भोजन, वस्त्र एव अन्य समस्त वातो के लिए वस्तुओ की केवल आवश्यक मात्रा का ही प्रयोग करते है। अनावश्यक वस्तुओ एव चीजो की इच्छा वे नही करते अपितु उनकी उपेक्षा ही करते रहते है। ऊनी

१. इब्ने खलदून ने खानावदोश वद्दुओं के लिए हर स्थान पर अरव शब्द का ही प्रयोग किया है।

कम्वलो के खेमो में, अथवा लकड़ी की झोपड़ी को घास-फूस से ढाँककर उसमें निवास करते है अथवा मिट्टी और विना तराशे हुए पत्थरो से साधारण-सा घर बनाकर उसमें जीवन-निर्वाह करते हैं। उनका उद्देश्य केवल अपने शरीर को गरमी एव ठडक से सुरक्षित रखना होता है। कभी वे गुफाओ में निवास करने लगते है और भोजन भी कच्चा पक्का जैसा भी उपलब्ध हो गया खा लेते हैं।

उन उजाड़ स्थानो के निवासियो के लिए, जिनका व्यवसाय कृषि है, एक स्थान पर ठहरना यदि इधर-उधर फिरते रहने से अधिक उचित होता है तो वे एक ही स्थान पर पड़ाव डाल देते है। हरी-भरी भूमि एव पर्वतीय घाटियो में ये लोग अपना स्थायी निवासस्थान बना लेते है। यही ग्रामीण कहलाते है। बरबरी एव अजम[1] क़ौमें इसी श्रेणी में आती है।

जो लोग अपना जीवन-निर्वाह जानवर चराकर करते है वे अधिकतर अपने जानवरो के लिए चरागाहो एव जल की खोज में इधर-उधर घूमते रहने पर विवश होते है। वे "शावीया" कहलाते है अर्थात् ऐसे लोग जिनका जीवन-निर्वाह बकरियाँ एव गाय-बैल पालने से होता है। वे सूखे रेगिस्तानो की ओर इसी कारण नही जाते कि वहाँ उनके जानवरो के लिए चरागाहें नही मिल सकते। बरबर, तुर्क, तुर्कमान तथा सकालिवा[2] नामक कौमें यही व्यवसाय करती है।

जो लोग अपने जीवन-निर्वाह के लिए ऊँटो पर निर्भर है वे नित्य यात्रा में ही रहते है और सूखे रेगिस्तानो में निकल जाते है। कारण कि हरे-भरे स्थानो के घास-पात, उपज एव पैदावार उनके ऊँटो के जीवन के लिए इतनी उपयुक्त नही जितनी कि रेगिस्तानो की झाड़ियाँ और वहाँ का खारा जल। फिर हरे-भरे स्थानों की ठडक भी ऊँटो को कष्ट पहुँचाती है। वे रेगिस्तानो के गरम वातावरण में प्रसन्न रहते है। इसके अतिरिक्त रेगिस्तानो के रेतीले स्थानो में ऊँटनियो के वच्चो का जन्म सुगमतापूर्वक हो जाता है। इन्ही कारणो से वे रेगिस्तानो में चक्कर काटा करते है। आज यहाँ है तो कल वहाँ। कभी ऐसा भी होता है कि आवाद भूमि के स्वामी उन्हें निकाल देते है और इस प्रकार वे रेगिस्तानो में शरण लेते है। निरतर उजाड स्थानो में निवास करने के कारण उनके स्वभाव में जगलीपन उत्पन्न हो जाता है और सभ्य नगरनिवासियो के मुकाबले में वे वहशी जानवरो एव वन-पशुओ के समान समझे जाते है। अरव वद्दू

१. जो अरब न हो।
२. सलैव जाति।

भी ऐसे ही आवासरहित होते है। मगरिब में बरबर, जनाता एव पूर्व में कुर्द, तुर्क तथा तुर्कमान इसी प्रकार की कौमें है। दोनो में अन्तर इतना ही है कि अरब हरे-भरे स्थानों से दूर रहते है और रेगिस्तान के जीवन के अधिक आदी होते है, कारण कि वे केवल ऊँटो पर निर्भर होते है और अन्य लोग ऊँटो के साथ बकरियाँ तथा गाय-बैल भी पालते है।

सक्षेप में अरबो का खानाबदोश (आवासरहित होना) अनुपेक्षणीय एव स्वाभाविक है और इस प्रकार की बदवियत एवं जगलीपन का ससार की आबादी में कही-न-कही पाया जाना परमावश्यक है। "ईश्वर ही सर्जन करता है और सब कुछ जानता है।"[1]

(३) बदवियत को हजरियत पर प्राथमिकता प्राप्त है और बड़े रेगिस्तान ही सभ्यताओं एव नगरो के स्रोत है

यह उल्लेख हो चुका है कि बद्दू लोगो के जीवन निर्वाह की आवश्यकताएँ बहुत कम होती है, आवश्यकता से अधिक वस्तु की उन्हें कभी चिन्ता नही रहती और न उस तक उनकी पहुँच होती है। इसके विपरीत नगरनिवासी अपव्ययी एव विलास-प्रिय होते है। इसमें सन्देह नही कि आवश्यक एव अनुपेक्ष्य वस्तु को अनावश्यक एव पूर्ण निर्दोप वस्तुओ पर प्राथमिकता प्राप्त होती है, कारण कि आवश्यक मूल है और परिपूर्णता उसकी शाखा है। या यह समझना चाहिए कि मनुष्य सर्वप्रथम उतनी आवश्यक वस्तु की, जो उसके जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त हो, खोज करता है। जब उसको यह वस्तु प्राप्त हो जाती है तो फिर वह आवश्यकता से अधिक भोग-विलास सम्बन्धी एव पूर्ण वस्तुओ की खोज करता है, अत बदवियत का अक्खडपन तथा अशिष्टता का जन्म नगरनिवासियो की नम्रता एव शिष्टता के पूर्व ही होता है। इस प्रकार नगर की सभ्यता एव सस्कृति बदवियो के जीवन की सर्वोच्च एव उन्नत श्रेणी की अवस्था है। वे अपने प्रयत्न से सभ्यता एव सस्कृति की उन्नति करते है। जब वे लोग एक बार भोग-विलास का जीवन प्रारम्भ करते और उसके आदी हो जाते है तो वे आगे की ओर ही बढते जाते है, यहाँ तक कि उनमें नगरनिवासियो की सी विशेषताएँ अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार कबीले बदवियत से निकलकर सभ्यता की

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

चरम सीमा पर पहुँच जाते है। इसके विपरीत नगरनिवासी[1] रेगिस्तानो तथा वहाँ के जीवन की ओर कदापि आकृष्ट नही होते। वे केवल कुछ प्रतिकूल दशाओ[2] में तथा विवश होकर एव नगर-निवास की आवश्यकताओ की पूर्ति में असमर्थ होने पर ही रेगिस्तानो की ओर प्रस्थान करते है।

इस बात का कि नगरीय जीवन का प्रादुर्भाव बदवी जीवन के पूर्व हुआ, एक अन्य प्रमाण यह है कि यदि हम नगर-निवासियो के विषय में छान-बीन करें तो पता चलेगा कि उनके पूर्वज किसी समय बदवी थे। फिर वे ग्रामो से निकलकर नगरो मे बस गये अर्थात् ग्राम एव कसबो में निवास करते-करते जब वे धनी हो गये तो वे नगरो में पहुँच गये और भोगविलास में ग्रस्त रहने लगे। इससे यह बात पूर्णत स्पष्ट हो जाती है कि बदवियत नगरीय जीवन की प्रथम श्रेणी है। इसके अतिरिक्त नगरनिवासियो तथा बदवियो में अन्य भेद-भाव भी पाये जाते है। कुछ लोग छोटे कसबो के निवासी होते है और कुछ लोग बडे कसबो के, कोई कम आबाद नगर के और कोई अधिक आबाद नगर के। सक्षेप में बदवी जीवन को नगर के जीवन पर प्राथमिकता प्राप्त है और नगर के भोग-विलास के जीवन का जन्म बदवियो के साधारण जीवन के बाद हुआ।

(४) नगरनिवासियो[3] की अपेक्षा बदवी अधिक सदाचारी होते है

इसका कारण यह है कि जब तक आत्मा अपनी शुद्ध प्राकृतिक दशा में रहती है और बाहरी कुप्रभावो से मुक्त होती है, तब तक उसमें शुद्ध एव अशुद्ध बातो से प्रभावित होने की योग्यता होती है। हज़रत मुहम्मद ने कहा है, प्रत्येक बालक प्राकृतिक दशा में उत्पन्न होता है, उसके माता-पिता उसे यहूदी, ईसाई अथवा मजूसी बना लेते है।"[4] सर्वप्रथम जो गुण अथवा अवगुण उस पर अधिकार प्राप्त कर लेते है तो उन पर दूसरी बातो का प्रभाव बडी कठिनाई से हो पाता है। उदाहरणार्थ यदि एक व्यक्ति भलाई करने का आदी हो जाता है और नैतिकता उसके हृदय में प्रविष्ट हो जाती है तो वह दुराचार से घृणा करने लगता है। इसी प्रकार यदि कोई दुराचार का आदी बन जाता है तो फिर नैतिकता उसमें उत्पन्न ही कैसे हो सकती है। यदि विस्तृत क्षेत्र में यह बात देखी जाय तो भी यही सिद्धान्त प्रचलित मिलेगा।

१. हज़री।

२. नगर से निर्वासित कर दिये जाने अथवा इसी प्रकार की अन्य दशाओं में।

३. हज़रियों।

४. सहीह बुख़ारी।

नगर-निवासी नाना प्रकार के भोग-विलास में पलकर सांसारिक एव स्वार्थी हो जाते है। उनकी आत्मा अशुद्ध हो जाती है और दुराचार उनके हृदय में घर कर लेता है। फलत. वे नैतिकता के मार्ग से दूर एवं सदाचार से पृथक् हो जाते है। उनमें मर्यादा नाम मात्र को नही रहती। सभाओ में वे अपने वड़ो और छोटो के समक्ष ऐसी-ऐसी अनुचित वातें करते है कि ईश्वर ही उनसे वचाये। शैतान को भी उनके समक्ष लज्जा आ जाय। इसका कारण यह है कि दुराचार एव दुष्टता से ग्रस्त रहने के कारण उनमें भले-वुरे का कोई भेद-भाव नही रहता और अश्लील वातें करने में भी उन्हें कोई सकोच नही होता। इसके विपरीत वदवियो को भी सासारिक आवश्यकताएँ होती हैं, किन्तु वड़ी ही सीमित। आवश्यकता से अधिक उड़ाने-खाने एवं भोग-विलास की इन्हें कोई इच्छा नही होती, अतः इसी अनुपात से उनके आचरण भी साधारण एवं दोपशून्य होते हैं। नगर के दुप्टो की अपेक्षा उनमें दुष्टता एव दुराचार वहुत ही कम होते हैं। वे लोग प्राकृतिक दशा के निकटतम होवे है और अनुचित वातो एव दुराचार से दूर रहते है। इसी कारण नगरनिवासियो की अपेक्षा इनका सुधार अधिक शीघ्र एव सुगमता-पूर्वक हो जाता है। इस वात को इस प्रकार समझना चाहिए कि नागरिक जीवन मानवीय आवादी की वह उच्चतम श्रेणी है जिसके उपरान्त विनाश का प्रादुर्भाव होता है। नगरनिवासियों में दुष्टता चरम सीमा पर पहुँच जाती है और सदाचार एव नैतिकता से वे वहुत दूर हो जाते है। वास्तव में पवित्र जीवन व्यतीत करनेवाले ही ईश्वर को प्रिय होते है। ....[1]

(५) वदवी नगर-निवासियों से अधिक वीर एवं योद्धा होते हैं

इसका कारण यह है कि नगर-निवासियों का पालन-पोपण, भोग-विलास के वातावरण में होता है। समृद्धि एव सम्पन्नता में उनका जन्म तथा मृत्यु होती है। वे अपनी धन-सम्पत्ति तथा प्राणो की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने उन शासको एव अमीरो के कधो पर जो उनपर शासन करते है रखते है। उन्ही पर उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व होता है। वे नगरो के चारो ओर दृढ चहारदीवारियाँ एवं कोट का निर्माण करवा कर चितारहित जीवन व्यतीत करते है। न तो कोई भय होता है और न कष्ट, अपितु वे शान्ति पर आश्रित होकर प्रतिरक्षा सम्वन्धी अस्त्र-शस्त्र पृथक् कर देते हैं। शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत करने के कारण वीरता एव पौरुप के भावो का उनमें इतना अभाव

१. इस्लामी इतिहास के कुछ उदाहरण। इनका अनुवाद नहीं किया गया।

हो जाता है कि वे स्त्रियों एवं बालकों के समान कायर हो जाते है और यह कायरता उनके चरित्र का विशेष अग बन जाती है।

इसके विपरीत बदवी इधर-उधर फैले रहते है। उनमें न तो उनकी रक्षा के लिए कोई उत्तरदायी शासक होता है, जिसके भरोसे वे जीवन व्यतीत कर सकें, और न उनके लिए चहारदीवारियाँ एव कोट होते है कि जिनके भरोसे पर वे शान्तिपूर्वक जीवित रह सकें, अपितु उनकी प्रतिरक्षा का भार स्वय उन्ही पर होता है। वे अपने प्राणो के लिए अपने ही पर निर्भर होते है अत. वे सर्वदा सशस्त्र रहते है, मार्गों की रक्षा करते रहते हैं। सभाओ तथा घरो में हो अथवा वाहन की पीठ पर,वे खतरो एव आक्रमणो से चौकन्ने रहते है। खतरे के समय वे नि सकोच एव बिना किसी भय के निर्जन जंगलो में प्रविष्ट हो जाते है। युद्ध उनके स्वभाव में समा जाता है। वीरता उनकी आदत बन जाती है। किसी के उकसाने अथवा भड़काने से उनकी वीरता एवं पौरुष का यह स्वभाव उनके लिए सहायक बन जाता है।

इस प्रकार नगर-निवासियो को जब कभी इन बदवियो के साथ मिल-जुलकर रहने का अवसर आ पडता है अथवा यात्रा में ये उनके साथ हो जाते है तो वे अपना समस्त कार्य बदवियो को सौंप देते है, वे उनकी सहायता के बिना कुछ नही कर सकते। यह बात अक्सर देखने में आयी है। ग्रामो, नदी के घाटो अथवा बड़े-बड़े मार्गों की जानकारी के विषय में वे उन्ही पर भरोसा करते है। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपनी आदत का दास होता है, न कि स्वभाव एव प्रवृत्ति का। जब कोई मनुष्य किसी बात का इतना आदी हो जाय कि वह बात ही उसका स्वभाव एव उसकी प्रवृत्ति बन जाय तो फिर यह आदत केवल आदत नही रहती, अपितु स्वाभाविक प्रवृत्ति बन जाती है। मनुष्य-जीवन के गहन अध्ययन से यह बात पूर्णत. प्रमाणित हो जायगी। "ईश्वर की जो इच्छा होती है, उसी का वह सर्जन करता है।"[1]

(६) क़ानून पर भरोसा करने के कारण नगर-निवासियों की वीरता समाप्त हो जाती है और वे प्रतिरोध नही कर पाते

इसका कारण यह है कि मनुष्य स्वेच्छा से कोई कार्य नही कर सकता। ऐसे हाकिमो की, जो दूसरो को अपने अधीन किये रहते है, संख्या बहुत कम होती है। अत यह स्वीकार करना पडेगा कि मनुष्य साधारणत. अन्य लोगो के अधीन रहता है।

१. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।

यदि शासन में सहानुभूति एवं न्याय पाया जाता है और किसी पर अनुचित अत्याचार और अन्याय नही होता तो लोग अपनी प्राकृतिक भावनाओ का,चाहे वे वीरता से सबंधित हों अथवा कायरता से, पालन करते है। यदि वे अपनी स्वतत्रता में शासक को बाधक नहीं पाते और उसकी रक्षा की चिन्ता से मुक्त होते है, तो उनकी मर्यादा को कोई हानि नही पहुँचती। इसके विपरीत यदि राज्य में अत्याचार एव अन्याय होता है तो ऐसे शासन के अधीन रहनेवाले लोगो की वीरता एव साहस का अन्त हो जाता है और उनकी प्रतिरक्षा की भावनाएँ समाप्त हो जाती है। कारण कि जब लोगो को आवश्यकता से अधिक दबा दिया जाता है तो उनके शरीर शिथिल एव साहस, जैसा कि हम आगे उल्लेख करेंगे, मंद हो जाता है।

जब कादसिया[1] के युद्ध में जुहरा बिन हवीया ने जालीनूस का पीछा करके उसकी हत्या कर दी और उसके अस्त्र-शस्त्र, जिनका मूल्य ७५,००० अशरफियाँ थी, छीन लिये तो साद[2] ने जुहरा से अस्त्र-शस्त्र लेकर अपने अधिकार में कर लिये और कहा कि "तुमने मेरी आज्ञा बिना जुहरा का पीछा क्यो किया ?" और यह घटना हजरत उमर को लिख भेजी। हज़रत उमर ने साद को लिखा कि "जुहरा ने यदि पीछा किया तो क्या बुरा किया ? युद्ध में यदि शिथिलता हुई तो तुम्हारी ओर से हुई और उस पर भी तुम अत्याचार एव अन्याय प्रदर्शित करते हो और जुहरा का दिल तोडते हो।" अत उन्होंने आदेश दिया कि छीने हुए अस्त्र-शस्त्र जुहरा को लौटा दिये जायँ।[3]

यदि शासन द्वारा कठोर दड के आधार पर कानूनो का पालन कराया जाता है तो शासन की इस कठोरता से लोगो के हृदय की वीरता, पौरुप एव साहस आदि गुणो का अन्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि दड सहन करते-करते और अपनी मर्यादा की रक्षा का अभाव देखते-देखते लोग अपमान के आदी बन जाते है, जिससे वीरता एव पौरुप की भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। यदि शासन के आदेश शिक्षा एव अनुशासन की दृष्टि से दिये जायँ, जैसा कि प्राय बाल्यावस्था में दिये जाते है,तो इसका प्रभाव भी आज्ञाकारी समूह पर पडेगा और आतक एव आज्ञाकारिता हृदय में आरूढ हो जायगी तथा पौरुप एव वीरता की भावनाएँ हृदय से लुप्त हो जायँगी। यही कारण हैं कि अरब उन लोगो की अपेक्षा, जो शासन द्वारा प्रश्रय पाते है, अधिक साहसी एव निर्भीक

१. यह युद्ध ३१ मई अथवा १ जून ६३७ ई० को हुआ।
२. साद बिन अबी वक्कास, अरब सेना का सेनापति।
३. तबरी ने भी अपने इतिहास में इस घटना का उल्लेख किया है।

होते है। यही दशा उन लोगो की है जो शिक्षा प्राप्त करने और कला-कौशल सीखने में दड भोगते है। इस प्रकार उनका भी साहस समाप्त हो जाता है और अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखने की भावना को वे खो देते है। यही दशा उन विद्यार्थियों की है जो सूफियो एव आलिमो की सम्मानित गोष्ठियो में बैठकर शिक्षा प्राप्त करते है और उनके सामने अपनी मर्यादा को नष्ट-भ्रष्ट कर देते है। उनके साहस एवं पौरुष का भी अन्त हो जाता है।

अब यहाँ सम्मानित सहावियो[1] के उदाहरण को सामने रखकर सन्देह न किया जाय, कारण कि वे बडी नम्रता एव दीनतापूर्वक दीन[2] तथा शरीअत की शिक्षा ग्रहण करते थे। किन्तु इसके वावजूद उनकी वीरता एव उनके पौरुष में कोई कमी न होती थी, अपितु उनकी गणना शूरवीरो में होती थी। इसका कारण यह है कि मुसलमानो ने धर्म की शिक्षा ऐसे सम्मानित व्यक्तियो से प्राप्त की जो सहावियो में से थे और जो समझा-बुझाकर तथा प्रोत्साहन द्वारा शिक्षा दिया करते थे। वह शिक्षा आधुनिक कला-कौशल एव साहित्य की शिक्षा के समान न थी, अपितु उसमें धर्म के आदेश एव शिक्षाएँ वतायी जाती थी। इनके द्वारा मुसलमानो का धार्मिक विश्वास दृढ हो जाता था और वे केवल ईश्वर से भयभीत रहते तथा अन्य सभी शक्तियो की उपेक्षा करने लगते थे। यही कारण है कि सम्मानित सहावियो की शक्ति एव उनके पौरुष में किसी प्रकार की कमी न हुई और वे उसी प्रकार दृढ रहे। इस्लामी शिक्षा से उन्हें कोई हानि न हुई। हज़रत उमर का कथन है कि "जिसका उपकार शरीअत द्वारा न हो, उसका उपकार सम्भव ही नही।" इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति खुद अपना सुधारक बनकर शरा के नियमो का पालन करके अपनी आत्मा को पूर्ण रूप से शुद्ध कर सकता है। उसे विश्वास होता है कि शरा से वढकर लोगो का शुभचिन्तक कोई अन्य नही। सक्षेप में इस्लामी शिक्षा बहुत समय तक इसी ढग पर चलती रही। जव धर्म में दोष उत्पन्न होने लगे और हाकिमों के आदेश चलने लगे तो शरीअत साधारण ज्ञान एव कला की शिक्षा के समान ताडन द्वारा सिखायी जाने लगी। लोग नगर के जीवन की ओर आकृष्ट हुए और दासो के समान आदेशो का पालन होने लगा। मनुष्य की वीरता एव पौरुष का अन्त होने लगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐसे शासन एव ऐसी शिक्षा से प्रजा एव विद्यार्थियों की

१. हज़रत मुहम्मद के सहायक, मित्र।
२. इस्लाम धर्म।

वीरत्व भावनाओ को अत्यधिक हानि पहुँचती है, कारण कि दोनो के ही आदेश देने का काम प्राय अन्य लोगो के हाथ में होता है। इस प्रकार नगरनिवासी बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक राज्य एव शिक्षको की आज्ञाओ का पालन करते करते कमज़ोर एव साहसहीन हो जाते हैं। परन्तु वदवियो की दशा इसके विपरीत है, कारण कि वे न तो किसी वादशाह के आज्ञानुवर्ती होते हैं और न किसी शिक्षक के।

अवू मुहम्मद विन अवी ज़ैद[1] ने अपने ग्रथ[2] में शिक्षको एव शिक्षार्थियो के सम्वन्ध में विचार करते हुए लिखा है कि "शिक्षक को वालको को तीन वेंत से अधिक कदापि न मारने चाहिए।" दड की यह सीमा उसने काज़ी शुरैह[3] के आधार पर निश्चित की है। कुछ विद्वानो ने इस सीमा का यह कारण वताया है कि वही[4] के प्रारम्भ मे हज़रत मुहम्मद के शरीर को तीन वार दवाया गया था, किन्तु यह वात अधिक वुद्धिग्राह्य नही। हज़रत मुहम्मद को तीन वार दवाये जाने से दड की सीमा पर कोई प्रकाश नही पड़ता, कारण कि दैवी शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा में किसी प्रकार का कोई सम्वन्ध नही। "ईश्वर ही वुद्धिमान् है और सव कुछ जानता है।"

(७) असवियत वाले ही वदवी रेगिस्तान में जीवन निर्वाह कर सकते हैं

यह वात जाननी चाहिए कि ईश्वर ने मनुष्य के स्वभाव में गुण तथा दोष दोनों ही का समावेश किया है। कुरान में दैवी आदेश है कि हमने मनुष्य को सन्मार्ग एव कुमार्ग दोनो ही दिखा दिये हैं। किन्तु यदि मनुष्य अपने स्वभाव की देख-भाल की ओर से लेश मात्र भी असावधान हो जाय और धर्म का पालन करते हुए अपना सुधार न करे, तो पापो एव दोषो के फंदे में शीघ्र फँस जाता है। साधारण मनुष्यो के लिए भी यही वात सत्य है, किन्तु ईश्वर के विशिष्ट दास गुणो के अत्यन्त निकट एव दोषो से वहुत दूर होते हैं। चूँकि अत्याचार एव अन्याय की भावनाएँ मनुष्य में जन्म से ही वर्तमान

१. अब्दुल्लाह (उवैदुल्लाह) विन अवी ज़ैद (जन्म ३१६ हि०/९२८ ई०—मृत्यु ३८६ हि०/९९६ ई०), इब्ने खलदून ने कई स्थानों पर उसकी रचनाओं के हवाले दिये हैं।
२. "अहकामुल मुअल्लेमीन वल मुतअल्लेमीन"।
३. सम्भवतः सातवीं शताब्दी ईसवी का प्रसिद्ध क़ाज़ी, जिसे हज़रत उमर ने कूफे का काज़ी नियुक्त कर दिया था।
४. वह आदेश जो हज़रत मुहम्मद को जिब्रील फ़िरिश्ते द्वारा प्राप्त होता था।

होती है, अतः जब किसी की दृष्टि किसी की धन-सम्पत्ति पर पड़ती है तो उसका हृदय यही चाहता है कि वह उस धन-सम्पत्ति का अपहरण कर ले। यदि उसे शासक का भय न हो तो वह ऐसा कर भी डाले।

शेर— अन्याय मनुष्य की आदत है, यदि तुम देखो,
यदि सदाचारी अन्याय नही करते तो इसका कुछ-न-कुछ कारण होगा।

नगरों में एक-दूसरे पर अत्याचार को रोकने का उत्तरदायित्व शासक एवं समकालीन शासन पर है। वे अपनी अधीनस्थ प्रजा को अपने अधिकार में रखते है और उस पर अत्याचार नही होने देते। लोग शासन के भय से अत्याचार नही करते। यदि समकालीन शासक ही अत्याचार करने लगे तो फिर इसका कोई उपाय नही। यदि कोई बाहरी खतरा उठ खड़ा हो अर्थात् कोई शत्रु दिन अथवा रात्रि में आक्रमण कर दे, तो नगर की दीवारें एव कोट नगरवालो को बाहरी शक्ति के अत्याचार से सुरक्षित रखते है, या फिर देश के वीर अपने प्राणों को हथेली पर रखकर बाहरी सत्ता के अत्याचार को रोक देते है।

यह तो नगरवासियो के विषय में लिखा गया। अब बदवी कबीलो के विषय में सुनिए। उनके ग्रामों में न तो शासक होते है और न सुल्तान, न चहारदीवारी होती है और न कोट और न सेना तथा लश्कर। वहाँ के शेख अथवा नेता उस आदर तथा सम्मान के कारण, जो लोगो के हृदय में उनके प्रति स्थिर होता है, एक-दूसरे को अत्याचार से बचाते है। जब किसी कबीले के किसी घर पर कोई अत्याचार होता है तो उस कबीले के वीर एव शेख अथवा उसके अन्य सम्बन्धी कबीलेवाले की सहायता एव रक्षा करते है और अत्याचार को रोकते है। यह बात उसी समय सम्भव है जब कि उस कबीले में "असबियत"[1] हो, सभी एक ही कुल के हों और क़बीला विशेष गौरव एव ऐश्वर्य का स्वामी हो। अन्य लोगो को ऐसी हालत में उनसे झगड़ा मोल लेने में भय लगता रहता है, क्योंकि जब क़बीले का प्रत्येक व्यक्ति अपने वश एव अपने ही लोगो पर प्राण न्योछावर करता है, तब उसकी शक्ति अजेय होती है। ईश्वर ने मानव मात्र के स्वभाव में यह बात उत्पन्न कर दी है कि वे अपने सम्बन्धियों एव निकटवर्तियों के लिए ही बलिदान करते है और एक कबीले एव वश के समस्त

१. प्रस्तावना में इस विषय पर विस्तार से उल्लेख हुआ है।

व्यक्ति एक-दूसरे की सहायता करके ही जीवित रहते है तथा शत्रुओ से अपने-आप को बचाते है।

कुरान शरीफ में इसी "असवियत" की ओर हज़रत यूसुफ[1] के किस्से में इस प्रकार सकेत किया गया है। उनके भाइयो ने अपने पिता से कहा कि "यदि हम सब के होते हुए यूसुफ को भेड़िया खा जाय तो यह बडे गजब की बात होगी और हमारे लिए यह बडे अपमान का विषय होगा।" इसका तात्पर्य यह है कि यदि किसी समूह के प्राणियो में "असवियत" एंव मर्यादा हो तो फिर किसी पर किसी प्रकार का अत्याचार नही हो सकता।

इस सम्बन्ध में वंश एव कुल के एक होने तथा एक-दूसरे से सम्बन्धित होने को भी बडा महत्त्व प्राप्त है, क्योकि ऐसी दशा में यदि युद्ध प्रारम्भ हो जाय तो पूरे वंश के सम्मान को खतरा हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपमान एव अनादर से बचने के लिए तलवार लेकर निकल पडता है। वह अपनी मर्यादा की रक्षा हेतु प्राणो की भी बलि देने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। यदि ऐसी "असवियत" बदवियो में न हो तो वे रेगिस्तानो में निवास ही किस प्रकार कर सकते है। वे दूसरी कौमो के किसी न किसी समय अवश्य शिकार हो जायँगे और अन्य लोग क्षण भर में उन्हें हड़प कर डालेंगे।

किसी स्थान पर निवास करने एव बसने में खानदानी एव कबीला सम्बन्धी "असवियत" तथा मर्यादा जितनी आवश्यक होती है, उतनी ही अन्य कार्यों में भी उसकी आवश्यकता एव उसके महत्त्व का अनुभव होता है। उदाहरणार्थ नुबूव्वत[2] का प्रचार एव नबी को सफल बनाने में, किसी राज्य की नींव डालने तथा उसके सम्मान को दृढ रखने में, किसी दावत[3] के प्रचार एव उसे प्रसिद्धि प्रदान करने में "असवियत" अत्यन्त आवश्यक होती है, कारण कि इन सबमें युद्ध तथा रक्तपात के बिना सफलता सम्भव नही होती। जब मनुष्य के स्वभाव में उद्दडता एव यथेच्छाचार नैसर्गिक रूप से वर्त्तमान है तो मनुष्य से शक्ति एव बल द्वारा किस प्रकार कोई सिद्धान्त स्वीकार कराया जा सकता है? युद्ध एव रक्तपात और बल तथा शक्ति के प्रयोग

१. जोज़ेफ।
२. नबी होना, ईश्वर का दूत होना।
३. धार्मिक प्रोपेगेंडा, जैसे बनी उमय्या के विरुद्ध अबू मुस्लिम खुरासानी द्वारा अब्बासियो की दावत।

हेतु "असबियत" एवं मर्यादा की बडी आवश्यकता होती है। जैसा कि सिद्ध किया जा चुका है कि विना "असबियत" एवं मर्यादा के भावो के कोई किस प्रकार अपना रक्त वहा एव युद्ध कर सकता है ? अत इसे एक अटल नियम तथा सिद्धान्त समझना चाहिए, जिसे याद रखना वाद में लाभदायक होगा।

(८) असबियत की उत्पत्ति एक कुल एवं निकटवर्ती सम्बन्ध के कारण ही होती है

वहुत कम ऐसे लोग होगे जिनमें खून की मुहब्बत, रक्तीय बन्धन नैसर्गिक रूप से न पाया जाता हो। इस नैसर्गिक गुण के कारण यदि कोई मनुष्य अपने किसी निकटतम सम्वधी पर अत्याचार होते देखता है अथवा उसे खतरे में फँसा हुआ पाता है तो उसका रक्त खौलने लगता है। वह इस वात को सहन नही कर सकता कि उसका कोई सम्वन्धी कष्ट में हो अथवा शत्रुओ के अत्याचार से पीडित हो। वह उसे चुपचाप वठा नही देख सकता। अपने सम्वन्धी से पहले ही वह उस खतरे में कूद पडना चाहेगा। यह बात नैसर्गिक है। यदि सम्वन्ध निकटतम है और खून का मेल वड़ा गहरा है तो वलिदान एव शुभ चिन्ता का भाव उतना ही दृढ होगा। यदि सम्वन्ध दूर का है और निकटतम सम्वन्ध लगभग भुलाये जा चुके है और केवल स्मृति ही शेष है, तो ऐसी अवस्था में भी सम्वन्धियो की सहायता हेतु मर्यादा को ठेस लगेगी, चाहे उसमें उतना उत्साह न हो जितना एक निकटतम सम्वन्धी के कष्टग्रस्त होने के समय होता है।

पारस्परिक स्नेह एव प्रेम द्वारा भी सहानुभूति एव निष्ठा के ऐसे ही भाव उत्पन्न हो जाते है, कारण कि स्नेह एव प्रेम के सम्वन्ध भी रिश्तेदारी के सम्वन्ध के समान होते है और उनके कारण लोग अपने पडोसी एव स्नेह-पात्र के लिए प्राणो की वलि देने पर विवश हो जाते है। वे उसके प्रति किसी प्रकार के अत्याचार एव अन्याय को सहन नही कर सकते। हजरत मुहम्मद का कथन है कि "अपने कुल का ज्ञान उसी सीमा तक प्राप्त करो जिस सीमा तक वह खून के रिश्तो को समझने के लिए आवश्यक हो।" इससे यह लाभ होता है कि उसके द्वारा रिश्तेदारी के वधन उत्पन्न होते है जो एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति दर्शाने के लिए विवश करते है और दोनो ओर से वलिदान एव कुरवानी को उत्साहित करते है। रक्त-सम्वन्ध एव कुल का इससे अधिक अन्य कोई मूल्य नही है, कारण कि अन्य सव वातें काल्पनिक है, उनमें कोई तथ्य नही। उनसे केवल पारस्परिक सहानुभूति एव कृपा की प्राप्ति का ही लाभ होता है।

जव कुल का सम्वन्ध गहरा और रिश्तेदारी निकटतम हो तो इसका प्रभाव वहुत स्पष्ट एव तीव्र होता है। लोग वहुत साधारण अवस्था में भी अपने सम्वधी की सहायता हेतु उद्यत हो जाते हैं। जव सम्वन्ध सावारण एव निकटतम न हो और केवल काल्पनिक हो तो उपर्युक्त भावनाएँ भी मद पड़ जाती है। इससे कुछ अधिक लाभ नही होता, अत. इस प्रकार के सम्वन्धो की खोज एवं छानवीन से भी कोई लाभ नही होता और यह प्रसिद्ध कथन भी इसी वात को सिद्ध करता है, अर्थात् "जव कुल स्पष्टता की सीमा से निकलकर साधारण ज्ञान की सीमा पर पहुंच जाय तो फिर उसका ज्ञान मनुष्य पर कोई प्रभाव नही डालता एव मर्यादा तथा प्रतिष्ठा के भावो को नही उभारता, अत ऐसे कुल एव उसके ज्ञान से कोई लाभ नही।"

(९) कुल की शुद्धता वास्तव में वहशी अरवों अथवा उन्ही के समान क़ौमों में पायी जाती है

इसका कारण यह है कि अरवो का जीवन कठिन, उनकी स्थितियाँ प्रतिकूल एव निवासस्थान दोपपूर्ण होते हैं। इन्ही परिस्थितियो से विवश होकर वे विभिन्न कवीलो एव वशो में विभाजित होकर जीवन व्यतीत करते है। कष्ट एव विपत्ति के समय प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने लोगो के हेतु ही प्राण त्यागने को उद्यत रहता है और उनकी मर्यादा एव प्रतिष्ठा की रक्षा करता है। यह ज्ञात हो चुका है कि उनके जीवन निर्वाह का साधन उनके ऊँट एव ऊँटो के वच्चे होते है। ऊँट उन्हें रेगिस्तानो में जीवन व्यतीत करने पर विवश करते हैं, कारण कि ऊँटो का प्रिय भोजन भी वही मिलता है और उनके वच्चे भी वहाँ के रेतीले मैदानो में सुगमतापूर्वक पैदा हो सकते है। रेगिस्तान कष्टो एव विपत्तियो के केन्द्र होने के कारण, वहाँ के निवासी भी स्वाभाविक रूप से परिश्रमी एव कठिनाई सहन करने के आदी होते है। वे उन्ही परिस्थितियो में रहकर उन्नति करते रहते है। यहाँ तक कि एक ही प्रकार के स्वभाव एव आदत वाले मनुष्यो का एक समूह अथवा एक कवीला वन जाता है। ये लोग अपने स्वभाव एव आवेग में अन्य कौमवालो से इतने भिन्न होते है कि दूसरी क़ौम का कोई भी व्यक्ति उनमें घुल-मिल नही सकता और न उनमें से कोई व्यक्ति किसी अन्य कौम का अग वन सकता है। यदि कोई सयोगवश उनमें से पृथक् होकर किसी अन्य कवीले में पहुँच भी जाता है तो वह अपनी भावनाओ एवं हार्दिक आकर्पण के कारण अपने पुराने सम्वन्धियो को नही छोड़ता और वह हृदय से उन्ही के विपय में सोचा करता है। जव यह दशा हो तो पूरे विश्वास के

साथ कहा जा सकता है कि रेगिस्तान के उन निवासियो का कुल शुद्ध एवं सुरक्षित है और एक-दूसरे से मिल जुल नही गया है। इसके प्रमाण में मुजर, कुरैश, किनान, सकीफ, वनू असद एवं हुजैल सरीखे कवीलो को देख लिया जाय अथवा उनके पडोसी खुजा का अवलोकन कर लिया जाय कि वे किस प्रकार कष्टो के आदी होते है और ऐसे स्थानो पर निवास करते है जहाँ न कोई कृषि होती है और न दूध देने-वाले पशुओ की वहुतायत। वे शाम तथा इराक सरीखे हरे-भरे एव उपजाऊ स्थानो से वहुत दूर निवास करते है, अत उनके कुल शुद्ध और सुरक्षित है। विना किसी दोष एव मिश्रण के वे कुल चले आ रहे है।

इनके विपरीत ऐसे अरवी कवीले, जो उपजाऊ एव हरे-भरे चरागाहों वाले स्थानो में निवास करते है जैसे हमीर[1], कहलान, लखम, जुजाम, गस्सान, तै, कुजाअह एव इयाद इत्यादि, इनके वश विभिन्न मिश्रणो एव शाखाओ के कारण अशुद्ध हो गये है। इस प्रकार प्रत्येक घर में जो कुछ विगाड़ हुआ, उसका सभी को ज्ञान है। इसका कारण यह है कि इन कवीलो ने वहुत से अजम[2] लोगो के साथ अपना मेल-जोल रखा और कुल की शुद्धता की अधिक चिन्ता नही की। वास्तव में कुल-शुद्धता की इतनी अधिक रक्षा अरववालो की ही विशेपता है। हजरत उमर का कथन है कि "वशावलियो का अध्ययन करो और नब्तियो के समान मत हो जाओ। उनमें से जव किसी से उसके मूल वश के विषय में पूछा जाता है तो वह किसी न किसी गाँव का नाम ले लेता है।" आगे चलकर जव अरवो को हरे-भरे स्थानो की इच्छा, जो स्वाभाविक ही थी, हो गयी तव उसके कारण उनके वशो में मिश्रण एव गड़बड़ी उत्पन्न हो गयी।

इस्लाम के प्रारम्भ में जव अरब के सम्मानित व्यक्ति स्वदेश से निकलकर इधर उधर फैल गये तो वे केवल पहचान के लिए अपने निवास-स्थान से सम्वोधित किये जाते थे। उदाहरणार्थ वे लोग, किन्नसरीन के, या दमिश्क के, अथवा अवासिम के (पूर्वनिवासी) कहे जाते थे। उन्दुलुस वालो के प्रभुत्वकाल में भी यही प्रथा रही। इसका यह कारण नही कि अरव वाले अपने कुल को ही भूल गये। कुल के अतिरिक्त निवास-स्थान का सम्वन्ध भी उनकी पहचान का एक साधन वन गया, जिसके कारण अधिकारी-वर्ग उनको पहचान लेता था। जव ईरानी नगरवासियो

(१) हिमयर।
(२) जो अरव न हो।

का अरबो से सम्पर्क हुआ तो वश तथा कुल विकृत हो गये और कुल के अशुद्ध हो जाने से "असवियत" द्वारा जो लाभ होता था, वह भी समाप्त हो गया। कबीलो की पृथक् विशेषताएँ छिन्न-भिन्न हो गयी और इससे "असवियत" भी नष्ट हो गयी। बदवियो में नि.सन्देह अब तक कुल शुद्धता की रक्षा का ध्यान पाया जाता है।

(१०) कुल किस प्रकार परस्पर मिल-जुल जाते है

कभी-कभी ऐसा होता है कि एक कौम तथा कबीले का मनुष्य रिश्तेदारी के सम्बंध अथवा किसी की सहायता एव मदद के कारण, अथवा किसी अपराध एव पाप की वजह से अपने कबीले को त्याग कर किसी अन्य कबीले में मिल जाता है और फिर अपनी गणना उस नये कुल में करने लगता है। इस कुल-सम्बधी "असवियत" के चिह्न भी उसमें दृष्टिगत होने लगते है। वह कबीले के कष्ट एव दु:ख को अपना कष्ट तथा दु ख समझने लगता है। वह उसी का शुभचिन्तक एव हितैपी हो जाता है। कुल सम्बधी इन लक्षणो के उसमें प्रकट होने के कारण हम वास्तव में कह सकते है कि उसका कुल अमुक कौम तथा कबीले से सम्बधित है, कारण कि जब हम यह कहते है कि अमुक व्यक्ति अमुक कौम व्यक्ति के कुल के अन्तर्गत है, तो इससे तात्पर्य यही होता है कि यह व्यक्ति अमुक कौम से गहरी सहानुभूति एवं हार्दिक सम्बध रखता है और हर प्रकार से उसका सहायक है। समय व्यतीत हो जाने पर लोग उसके पूर्व कुल को भूल जाते है। जो लोग उससे परिचित होते है उनका भी अन्त हो जाता है। इस प्रकार बहुत-से लोगो को इस बात का ज्ञान भी नही होता कि वे इससे पूर्व किस कुल से सम्बधित थे। सक्षेप में इसी प्रकार इस्लाम के पूर्व एव इस्लाम के बाद अरब और ईरान की कौमो में परस्पर तथा कौमो की शाखाओ में परिवर्तन होता रहा। यदि मुनज़िर[1] इत्यादि की सतानो के सम्बध में जो मतभेद है उसके कारणो का अध्ययन किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी।

अरफजा बिन हरसमा तथा बजीलह कुल की कथा भी इसी का खुला हुआ प्रमाण है। जब हज़रत उमर ने अरफजा को बजीलह कबीले वालो का हाकिम नियुक्त करना चाहा तो उन लोगो ने उसकी अधीनता स्वीकार न करने के लिए क्षमा माँगते हुए हज़रत उमर से कहा कि "वह हम लोगो से भिन्न कुल का व्यक्ति है। यदि

१ फ़ुरात पर स्थित हीरह के लखमीद।

आप जरीर को हमारे ऊपर अधिकारी नियुक्त कर दें तो अच्छा हो।" हज़रत उमर ने अरफजा से इस विषय की पूछताछ की तो अरफजा ने कहा कि "हे अमीरुल मोमिनीन![1] लोग ठीक कहते हैं। मैं अज़्द कबीले से हूँ। अपने कबीले में एक ख़ून करके यहाँ भाग आया था।"

यह देखना चाहिए कि अरफजा, बजीलह् कबीले वालो में कैसा घुल मिल गया कि उनके कुल में उन्ही के वेष में प्रकट होने लगा, यहाँ तक कि उसे उस कबीले का शासक बनाने का निश्चय कर लिया गया। यदि इस तथ्य से कुछ लोग परिचित न होते और उसकी उपेक्षा करते रहते तो कुछ समय उपरान्त लोग इसे पूर्णत भूल जाते और हर प्रकार से बजीलह् कबीले में उसकी गणना होने लगती। अब भी इस प्रकार की घटनाएँ घटती रहती है और इससे पूर्व भी घटती रहती थी।

(११) क़बीले में जिस वंश अथवा घराने मे अत्यधिक "असबियत" पायी जाती है वही राज्य का स्वामी होता है

यद्यपि प्रत्येक कबीले एव शाखा के एक होने के कारण सामान्य रूप से सभी में "असबियत" पायी जाती है, किन्तु विशेष कुलो के आधार पर अन्य "असबियतो" का भी अभ्युदय होता है। उदाहरणार्थ एक वश अथवा एक घरवालो अथवा एक पिता की सतानो में जो पारस्परिक स्नेह एव निष्ठा होगी वह निकट के सम्बधियो एव चाचा की सतान में नही हो सकती। इस प्रकार "असबियत" दो तरह की हुई—एक साधारण दूसरी विशेष। विशेष "असबियत" की दृष्टि से वे परस्पर एक-दूसरे की हृदय से सहायता करते हैं। साधारण "असबियत" के कारण वे पूरी कौम एव कबीले वालो से सम्बधित होते हैं। इसी प्रकार की निष्ठा एव सहानुभूति की, दोनो प्रकार की "असबियतो" से आशा की जाती है। किन्तु विशेष कुल के कारण जो "असबियत" उत्पन्न होती है वह रिश्ते के निकटतम होने के कारण अधिक प्रभावशाली होती है। इसके अतिरिक्त यह खुली हुई बात है कि नेतृत्व एवं सरदारी कबीले की प्रत्येक शाखा पर विभाजित नही होती अपितु इसका श्रेय किसी एक ही शाखा को प्राप्त होता है और वह उसी शाखा को अधिक प्राप्त होता है जिसमें "असबियत" अधिक पायी जाती हो, इस कारण उसी को अधिक प्रभुत्व प्राप्त होता है। शासन के लिए प्रभुत्व एव ऐश्वर्य की अधिक आवश्यकता होती है अत

१. धर्मनिष्ठ मुसलमानों के हाकिम, खलीफा।

ऐसे प्रभुत्वप्राप्त वश के हाथ में शासन आ जाने के पश्चात् वह उसके हाथ में से आसानी से नही निकल पाता। कारण कि यदि शासन ऐसी शाखाओ के हाथ में चला जाय जो ऐश्वर्य एव वैभव में कम हो तो शासन का चलना असम्भव हो जाता है। इस प्रकार शासन प्रभावशाली एव श्रेष्ठ शाखाओ और वशो में चक्कर लगाता रहता है और एक वश से निकलकर दूसरे प्रभावशाली वश में पहुँच जाता है। जिस वश को अधिक प्रभुत्व प्राप्त होता है वही शासन प्राप्त कर लेता है। इस तथ्य का रहस्य यह है कि सगठन एव "असवियत" में वही सम्बध होता है जो प्रकृति तथा किसी अन्य वस्तु में हुआ करता है। स्वभाव समस्त तत्त्वो के एक-समान रहने की दशा में ठीक नही रहता। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी तत्त्व को प्रभुत्व प्राप्त हो। यही बात "असवियत" के सम्बध में कही जा सकती है। उसके लिए भी प्रभुत्व आवश्यक है, और शासन एव नेतृत्व भी उसी का साथ देगा जो सब से अधिक शक्तिशाली एव प्रभुत्व वाला होगा।

(१२) "असवियत" वाली कौम पर अन्य कौम का आदमी शासन नही कर सकता

यह प्रमाणित हो गया है कि राज्य प्रभुत्व द्वारा प्राप्त होता है और प्रभुत्व "असवियत" द्वारा। फलत कौम पर प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आज्ञाकारी "असवियतो" से शासक की "असवियत" अधिक प्रभावशाली हो, कारण कि जब शासक की "असवियत" सभी को प्रभावशाली एव महान् प्रतीत होगी तो सभी की गरदनें उसके समक्ष अवश्य ही झुक जायँगी और आज्ञापालन में उनका सिर उसके सामने नीचे झुक जायगा। किन्तु एक कौम में यदि दूसरी कौम का आदमी आ जाय और वह उन पर शासन करना चाहे तो यह सम्भव नही, कारण कि इस प्रकार कुल से सम्बधित "असवियत" उसे प्राप्त न हो सकेगी। उसे केवल आगन्तुक का वर्ग प्राप्त होगा या सहायक का। नये कुल के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के कारण उसे उस कुल के लोगो का स्नेह प्राप्त हो सकता है, किन्तु कोई अपरिचित व्यक्ति किसी कौम पर इस प्रकार प्रभुत्व प्राप्त नही कर सकेगा।

यदि हम यह मान लें कि अन्य कुल का कोई व्यक्ति किसी कौम में घुल-मिल जाय और लोग उसके पहले कुल को भूलकर उसे उसी कौम का व्यक्ति समझने लगें और उसे उसी कुल का बताने लगें, तो इस मेल से पूर्व उसे अथवा उसके पूर्ववर्ती लोगों को राज्य किस प्रकार प्राप्त हुआ ? इस समस्या का समाधान तो सम्भव

नही। शासन तो उसी एक वर्ग अथवा व्यक्ति को प्राप्त होता है जिसे "असवियत" में प्राथमिकता प्राप्त हो। अत इस अपरिचित व्यक्ति को, जिसका अन्य कुल से होना सभी को भली-भाँति ज्ञात है, राज्य में प्रभुत्व किस प्रकार मिल सकता है? राज्य के पैतृक होने के कारण राज्य के वास्तविक अधिकारी से ईर्ष्या करना परमावश्यक है और इसके लिए "असवियत" की आवश्यकता है।

बहुत-से कवीलो के सरदार कभी-कभी किसी विशेष कुल अथवा वशवालो की वीरता एव दान-पुण्य से ऐसे प्रभावित हो जाते है कि अपने-आप को भी उसी वश का वताने लगते है और उसकी किसी शाखा से सम्वधित होने का दावा करने लगते है। इस आचरण द्वारा वे अपनी सरदारी को जिस प्रकार कलकित करते है और अपने सम्मान में जो वट्टा लगा देते है उसका उन्हें पता नही होता।

आजकल प्राय ऐसा होता रहता है, उदाहरणार्थ सवके सव जनाता यही दावा करते है कि मूल रूप से वे अरव है। अवलाद रवाव, जो हिजाजी प्रसिद्ध और वनू आमिर से सम्वधित है और जुगावा की शाखा है, वे वनू सुलैम, विशेष रूप से उनकी शरीद नामक शाखा से पैदा होने का दावा करते है और कहते है कि हमारा दादा दुर्भाग्यवश वनू आमिर में पहुँचकर वढई का काम करने लगा और उन्ही मे सम्मिलित हो गया। उसकी गणना उन्ही के कुल में होने लगी, यहाँ तक कि उसे प्रभुत्व प्राप्त हो गया और वह हिजाज़ी कहलाने लगा। इसी प्रकार तूजीन के वनू अव्दुल कवी विन अव्वास का दावा है कि वे हजरत अव्वास विन अव्दुल मुत्तलिव[1] की सतान में से है। उन्हें केवल इस सम्मानित वश से सम्वधित होने के सम्मान का लोभ हो गया। वास्तव में उन्हें अव्वास विन अतीया, अव्दुल कवी के पिता के नाम से भ्रम हो गया। वे यह न समझ सके कि इतिहास में इस वात का कोई प्रमाण नही कि कोई अव्वासी मगरिव मे आया था। कारण कि अव्वास विन अतीया अव्वासियो के शत्रु इदरीसियो एवं उवैदीईन[2] के अलवियो[3] के प्रभुत्व के प्रारम्भिक काल में हुआ। ऐसी दशा मे वह किसी अलवी समूह से किस प्रकार सम्वधित हो सकता था।... . ..[4]

१ मुहम्मद साहव के चाचा (मृत्यु २१ फरवरी ६५३ ई०)।
२ फातेमी।
३. हजरत अली के सहायक।
४. मुसलमानों के इतिहास से कुछ अन्य उदाहरण। इन उदाहरणों का अनुवाद नहीं किया गया।

(१३) वश एव पद की प्रतिष्ठा वास्तव मे "असबियत" वालो को प्राप्त है, दूसरो के लिए यह प्रतिष्ठा मिथ्या एवं निराधार है

यह ममझ लेना चाहिए कि प्रतिष्ठा एवं योग्यता व्यक्तिगत गुणो पर आधारित है। "वश" का अर्थ यह है कि लोग उसकी प्रतिष्ठा से लाभ उठायें। लोगो का मम्मानित वश से सम्बद्ध होना कौम की दृष्टि में सम्मान का कारण होता है, कारण कि कौम के हृदय पर उनके पूर्वजो की प्रतिष्ठा एवं सौजन्य का सिक्का बैठा होता है। लोग वास्तव में अपने जन्म एवं नस्ल के सम्बध में खनिज पदार्थ के समान हैं। मुहम्मद साहब का कथन है कि "लोग सोने तथा चाँदी की खानो के अनुरूप हैं, जो जाहिलियत[1] में अच्छे थे, वे इस्लाम में भी अच्छे है, यदि वे इस कथन का महत्त्व ममझें।" इस प्रकार योग्यता एव नैतिकता का आधार कुल है।

हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि कुल का लाभ "असबियत" में निहित है, जो पारस्परिक सहायता एव स्नेह के लिए विवश करती है। अत "असबियत" जितनी ही दृढ़ एव महान् होगी और घराना प्रतिष्ठित एव सम्मानित होगा, उतना ही कुल का लाभ अधिक स्पष्ट तथा प्रभावशाली होगा। पूर्वजो की प्रतिष्ठा एव उनका सौजन्य सोने पर सुहागे का काम करेगा, अत ऐसे घरानो में वशवृक्ष के अधिक स्पष्ट होने के कारण योग्यता एव प्रतिष्ठा भी वास्तविक एव तथ्य पर आधारित होगी। विभिन्न घरानो में "असबियत" की भिन्नता के साथ साथ प्रतिष्ठा एव सम्मान में भी अन्तर रहेगा। अब जो लोग अपने कबीलो से पृथक् होकर अलग-अलग नगरो में जाकर बस जाते है और उनमें "असबियत" एव पारस्परिक स्नेह नाम मात्र को रह जाता है, वहाँ उनको वशवाला कहने का कोई महत्त्व नही है। यदि वे इसका दावा भी करें तो यह केवल उनकी भूल है।

यदि नागरिक जीवन की सहृदयता देखी जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि शरीफ नगरवासी अपने पूर्वजो के कारण चरित्रवान् कहे जाते है और इनकी सतान में किसी प्रकार का मिश्रण नही हुआ है। किन्तु जब "असबियत" शेप नही तो फिर ऐसे लोगो को कुल एव पूर्वजो की नैतिकता तथा सहृदयता से कोई लाभ नही हो सकता, अत उनका शरीफ़ एव उच्च वश का होना केवल नाम मात्र का ही है, और वह भी इस कारण कि उनके पूर्वज एक निश्चित नैतिकता के मार्ग के पथिक रह चुके है, अन्यथा वास्तविक प्रतिष्ठा एव सौजन्य उनमें कहाँ? यदि यह कहा जाय कि उनमें नाम के अर्थानुसार सौजन्य भी वास्तविक है, तो यह अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि उनका पूर्ण सौजन्य

१ इस्लाम के पूर्व का अरब युग।

संदिग्ध है। यह बात नगरवासियो की अपेक्षा उजाड़ स्थान के निवासी कबीलो के लिए अधिक सत्य है।

कभी कभी किसी वश को उसके चरित्रबल, नैतिकता एव "असबियत" के कारण पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, किन्तु जैसे ही वह नागरिक जीवन में प्रविष्ट होता है उसकी प्रतिष्ठा में कमी होने लगती है और कुल मिलजुल जाते है। फिर मस्तिष्क में प्रतिष्ठा नाम मात्र को ही रह जाती है जिसके फलस्वरूप वे अपनी गणना शरीफो में करने लगते है, हालाँ कि सौजन्य से उनका कोई भी सम्बन्ध नही होता, क्योकि वे "असबियत" से वचित होते है। इस प्रकार अधिकाश नगरवासी अरब एव अजम[1] अपने प्रारम्भिक नागर जीवन में इसी झूठी प्रतिष्ठा एव मिथ्या आग्रह से ग्रस्त रहते है।

बनी इसराईल भी इसी भ्रम में पड़े रहे। सर्वप्रथम उनका वश समस्त ससार में प्रतिष्ठा एव सौजन्य के लिए प्रसिद्ध था, कारण कि हजरत इबराहीम[2] से हज़रत मूसा[3] तक उनमें शरीअत[4] वाले होते रहे और नबियो एव पैगम्बरो के जन्म का उनमे क्रम बँधा रहा। इसके अतिरिक्त उनमें "असबियत" थी और वे राज्य के स्वामी थे, किन्तु बाद में उनके इन गुणो का अन्त हो गया और वे अपमानित एव तिरस्कृत हो गये। उनके भाग्य में देश से निर्वासन लिख दिया गया और सहस्रो वर्षो तक वे काफिरो के दास बने रहे। किन्तु फिर भी वे प्रतिष्ठा के भ्रम में पडे रहे। अब भी उनमें से कोई हारूनी[5] कहलाता है, कोई यूशा की संतान होने का गर्व करता है तो कोई अपनी वशावली कलेब से मिलाता है, कोई अपने आप को यहुजा से सम्बन्धित बताता है, यद्यपि दीर्घ काल से वे "असबियत" से अपरिचित तथा अपमानित है। केवल यही नही, अधिकाश नगरवासी इसी प्रतिष्ठा के पागलपन से ग्रस्त है, हालाँ कि वे "असबियत" का नाम तक नही जानते।

अबुल वलीद बिन रुशद[6] ने इस सम्बन्ध में यह लिखने में भूल की है कि "किताबुल

१. जो अरब न हों।

२. अबराहम।

३ मोज़ेज़।

४. धार्मिक विधान।

५ ऐरोनाइट।

६. अबुल वलीद मुहम्मद इब्ने अहमद, जिसे यूरोप वाले Averroes कहते है, बड़ा प्रसिद्ध दार्शनिक हुआ है। ११४९ ई० में उसका कार्डोवा (स्पेन) में जन्म

ख़ितावत" में, जो अरस्तू के एक ग्रथ का सक्षिप्त रूपातर है, इस विषय में केवल इतना ही लिखा है कि "प्रतिष्ठा का लक्षण है मनुष्यो का ऐसा आभिजात्य जो प्राचीन काल में किसी समय नगर में आकर बसनेवाले पूर्वजो से प्राप्त हुआ हो।" वह उस शोध तक नही पहुँच सका जो हमने की है। काश, वह यह समझता कि किसी कौम के प्राचीन काल में किसी नगर में बस जाने से मनुष्य को क्या लाभ पहुँच सकता है, जब कि कौम में "असबियत" का अन्त हो चुका हो, जो भय एव आतक के लिए भी आवश्यक है और शासन एव राज्य के लिए भी। सम्भवत उसने पूर्वजो की महत्ता को ही अपनी प्रतिष्ठा समझ लिया है। वार्तालाप द्वारा प्रतिष्ठित लोगो को प्रभावित और अपनी ओर आकृष्ट किया जा सकता है और बातचीत में दक्ष लोग ही बडे-बडे अधिकारो के स्वामी होते है। जिनमें यह शक्ति नही होती उनकी ओर न तो कोई अन्य व्यक्ति ध्यान देता है और न वे किसी अन्य को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। नगरवासी साधारणत. इसी प्रकार के लोग होते है। उनकी बात की कोई भी परवाह नही करता। चूंकि इब्ने रुशुद का पालन-पोषण नगर में हुआ और "असबियत" से उसका कोई सम्बन्ध न था और न "असबियत" सम्बन्धी लाभो से उसे कोई मतलब था, अत प्रतिष्ठा एव वश के विषय में जो बातें साधारणत प्रसिद्ध थी, वह उन्ही से प्रभावित हो गया अर्थात् (उसने यही समझा कि) प्रतिष्ठा केवल पूर्वजो के उल्लेख को कहते है। वह इस विषय में तथ्य तक न पहुँच सका।

(१४) दासो एवं पाले हुए लोगो के वंश की प्रतिष्ठा एवं सम्मान उनके स्वामियों तथा आश्रयदाताओं के कारण होता है, न कि कुल की प्राचीनता द्वारा

यह इस प्रकार है कि पूर्व में हम उल्लेख कर चुके है कि प्रतिष्ठा वास्तव में "असबियत" वालो द्वारा ही सम्भव है। अत. जब "असबियत" के स्वामी किसी अन्य कुल वाले को पाल लें अथवा उसे दास बना लें और वह कुल के बन्धनो एव सम्बन्धो में भी बध जाय तो ऐसे दास तथा पाले हुए लोग अपने स्वामियो एव आश्रयदाताओ के कुल की प्रशसा करने लगते हैं और उन्ही के रग में रग जाते है, मानो दासो एव स्वामियो की "असबियत" एक ही हो। "असबियत" के बधन में बँध जाने के कारण कुल की

हुआ। उसने कई ग्रंथों का, जो अरस्तू के बताये जाते है, अनुवाद किया। कहा जाता है कि ११९९ ई० में मोराको में उसकी मृत्यु हुई।

एकता का संबध भी होने लगता है। हज़रत मुहम्मद ने कहा है,—"कौम के दासो की गणना कौम में ही होती है। चाहे वह दास हो या पाला हुआ।"

दास इत्यादि का वह कुल जिसमें उसका जन्म हुआ, उसकी नयी "असवियत" में लाभदायक नही हो सकता,कारण कि उसका मौलिक कुल उस कुल से, जिसमें वह आकर सम्मिलित हुआ है, पूर्णत भिन्न होता है। उसके अन्य कुल में सम्मिलित हो जाने से उसका मौलिक कुल भुला दिया जाता है, कारण कि वह अपनी 'असबियत " वालो से पृथक् हो चुकता है। अत दास एवं किसी अन्य पाले हुए व्यक्ति की गणना उस नवीन कौम में होती है और वह उसी में से एक समझा जाने लगता है। जब स्वामी तथा आश्रयदाता दास अथवा पाले हुए व्यक्ति की कौम से भिन्न होते है तो दास अथवा पाले हुए व्यक्ति के वश की प्रतिष्ठा उन्ही के संबध से होगी और वह उनकी प्रतिष्ठा से नही वढ सकती, अपितु कम ही रहेगी। इस प्रकार राज्यो एव सल्तनतो के दास सेवा एव दासता प्रदर्शित करने में जितनी अधिक निष्ठा प्रदर्शित करते है उतना ही अधिक उनका सम्मान वढ जाता है।

देखना चाहिए कि अब्बासी खलीफाओ के युग मे बनी वरमक[1], तुर्क दासो एव वनू नववख्त ने राज्य की दासता के वावजूद वहुत अधिक प्रतिष्ठा एव सम्मान प्राप्त कर लिया और उन्होने नये-नये शासनो की स्थापना की। जाफर बिन यहया[2] बिन खालिद, हारूनुर्रशीद एव उसकी कौम का दास होने के कारण वडे घराने वाला एव प्रतिष्ठित समझा जाता था, न कि इस कारण कि उसका फारस वालो के वश से सम्वन्ध था। प्रत्येक राज्य में ऐसा ही होता है कि सेवा में एव दासता में प्रतिष्ठा एव सम्मान पाने के कारण दासो तथा परिजनो का सम्मान एवं प्रभाव घटता वढता रहता है। अन्य कुल के अधिक प्रभाव के कारण उनका अपना कुल भुला दिया जाता है और उनमें कोई तथ्य नही रह जाता। उन्हें उसी कुल के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त होती है

१. अब्बासी खलीफ़ा मंसूर (७५४–७७५ ई०) ने अपना प्रधान मंत्री खालिद इब्ने बरमक को बनाया। बरमक बलख के एक बौद्ध विहार का मुख्य पुजारी था। खालिद के वंशज बहुत समय तक अब्बासियो के प्रधान मंत्री रहे।

२. जाफर यहया का पुत्र तथा खालिद का पौत्र था। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त वह अब्बासी खलीफा हारूनुर्रशीद का प्रधान मंत्री हुआ। वह खलीफा का बड़ा विश्वास-पात्र था किन्तु बाद में खलीफा ने उससे रुष्ट होकर २९ जनवरी ८०३ ई० को उसकी हत्या करा दी।

जिसमें उनका पालन-पोषण होता है और "असवियत" में भी वे उन्ही के साथ संबन्धित होते हैं। सक्षेप में दासो की प्रतिष्ठा स्वामियो की ही प्रतिष्ठा एव दासो का "आदि" स्वामियों का ही "आदि" होता है। इस प्रकार उन्हें अपने कुल से कोई लाभ नही होता, कारण कि सम्मान एव प्रतिष्ठा का आधार दासता अथवा पालन-पोषण का सम्बन्ध होता है। कभी ऐसा होता है कि पहले कुल में "असवियत" एवं राज्य होते है किन्तु उनके नष्ट हो जाने के बाद ऐसे लोग अन्यो की दासता एव पालन-पोषण के अन्तर्गत आ जाते हैं। ऐसी दशा में प्रथम कुल एव "असवियत" से उन्हें कोई लाभ नही पहुँचता। उनके लिए समस्त लाभो के द्वार अन्य किसी दूसरे कुल में खुलते है। बनी बरमक की प्रतिष्ठा में यह बात पूर्णत सिद्ध हो जाती है कि फारस में वे मोबद[1] घराने से सम्बन्धित थे, किन्तु अब्बासियो की दासता में पहुंचकर उनके पिछले कुल का कोई मूल्य न रहा। अब्बासियो की दासता एव आश्रय द्वारा ही उन्हें सम्मान एव प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त उनके सम्मान के किसी अन्य स्रोत की खोज का कोई महत्त्व नही। "तुम लोगो में से ईश्वर की दृष्टि में वही सबसे अधिक सम्मानित है जो उसका सबसे अधिक भय करता है।"[2]

(१५) किसी घराने की प्रतिष्ठा चार पीढ़ियों तक चलती है

यह बात पूर्णत स्पष्ट है कि ससार की प्रत्येक वस्तु एव उसकी स्थिति नश्वर है। खनिज पदार्थ, वनस्पति, पशु एव मनुष्य सभी नष्ट हो जाते हैं। अब मनुष्यो का उदाहरण ले लिया जाय। ज्ञान-विज्ञानो की एक समय चर्चा होती है और वे फिर नष्ट हो जाते हैं। कला-कौशलो का अभ्युदय होता है और वे बाद में विनष्ट हो जाते हैं। कुल एव वश से सम्बन्धित प्रतिष्ठा आज किसी वश तथा कबीले को मिलती है और कल कोई उनका नाम तक नही जानता। कोई भी ऐसा मनुष्य नही मिल सकता जिसके पूर्वज आदम से लेकर इस समय तक प्रतिष्ठा के स्वामी रहते चले आये हो। यह सम्मान केवल मुहम्मद साहब को प्राप्त है। आपके पूर्वज नि सन्देह आदम से लेकर आपके समय तक प्रतिष्ठित एव सम्मानित रहे। यह केवल आपकी विशेषता एव सम्मान है। जिस प्रकार अन्त में वश की प्रतिष्ठा शून्य को प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार उसको प्रारम्भिक अस्तित्व का शून्य होना भी परमावश्यक है, जैसा कि ससार की प्रत्येक नश्वर वस्तु का गुण है कि वह शून्य से निकलती है और शून्य में ही मिल जाती है।

१. अग्नि-पूजकों के पुजारी।
२ कुरान शरीफ से उद्धृत।

हमने जो यह बात कही कि कुल की प्रतिष्ठा चार पीढियो से अधिक नही चलती, उसका कारण यह है कि वश की प्रतिष्ठा का सस्थापक भली-भाँति जानता है कि उसको आदर-सम्मान किस प्रकार प्राप्त हुआ है, अत वह उन गुणो की रक्षा में, जो उसके सम्मान एव प्रतिष्ठा का कारण हुए, अपनी जान लड़ा देता है। वह अपने ठाट-बाट को स्थायी रखने का प्रयत्न करता रहता है। जब पुत्र का समय आता है तो वह अपने पिता द्वारा सुनी सुनाई बातो के आधार पर पिता के पद-चिह्नो पर चलता है, किन्तु पिता तथा पुत्र के प्रयत्नो में वह अन्तर होता है जो किसी घटना के पात्र तथा उस घटना के श्रोता में होता है। किन्तु जब तीसरे व्यक्ति अर्थात् पोते की बारी आती है तो वह अपने पिता का अनुसरण करता है। किन्तु उसमें तथा उसके पिता मे वही अन्तर होता है जो एक अनुकरण करनेवाले तथा आविष्कार करनेवाले मे होता है।

जब चौथे अर्थात् प्रपौत्र का समय आता है तो वह सब पुरातन रूढियों से पृथक् हो चुकता है और उन आदतो एव भावनाओ का पूर्णत. त्याग कर चुका होता है जो कभी खानदानी प्रतिष्ठा का आधार थी। वह उन्हें अब घृणा की दृष्टि से देखता है। उसके हृदय में यह भ्रम बैठ जाता है कि उसके वश की प्रतिष्ठा बलिदानों एव कष्टो पर आधारित नही है, अपितु वह उसकी वशागत परिपाटी है जिसका वह एव उसका वंश पात्र है। न तो उस प्रतिष्ठा का आधार "असबियत" ही है न चरित्र एव नैतिकता का बल। इस पीढी के लोगों की दृष्टि केवल अपनी वर्त्तमान खानदानी प्रतिष्ठा एव सम्मान पर केन्द्रित रहती है। उन्हें प्राचीन वैभव एवं ऐश्वर्य के मूल कारण का कोई ज्ञान नही होता। वे अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा को अपने कुल का एक गुण समझते है जो स्वत. "असबियत" वालो में पाया जाता है। उनको इस बात का पूर्ण विश्वास होता है कि उनकी प्रतिष्ठा इसी प्रकार चलती रहेगी, कारण कि वे सर्वदा अन्य लोगो को अपने समक्ष झुकता देखते है। उनको इस बात का ज्ञान नही होता कि किन गुणो के आधार पर सब लोग उनके समक्ष झुक रहे हैं और हृदय से उनका साथ दे रहे हैं। जब उनमें यह यथेच्छाचार उत्पन्न हो जाता है तो कौम उनसे जलने लगती है और उन्हें अपमान की दृष्टि से देखने लगती है। फिर वह पिछली "असबियत" के आधार पर इस पीढ़ी के अतिरिक्त किसी अन्य पीढ़ी में से किसी व्यक्ति को चुनकर उसे प्रतिष्ठा एव सम्मान प्रदान करने लगती है। फलत नये कुल एवं नयी पीढी को सम्मान प्राप्त हो जाता है और पहले की पीढ़ी, जिसे अपने विषय में अभिमान हो गया था, भुला दी जाती है। इसी प्रकार के परिवर्तन बादशाहो, सुल्तानो, अमीरो, प्रतिष्ठित लोगो एव "असबियत" वालो में चलते रहते है। नगरो में जब कोई वश अथवा घराना मैदान से

हट जाता है तो दूसरा वश उसका स्थान ले लेता है। "यदि वह[1] नष्ट करना चाहता है तो वह ऐसा करा देता है और नया सर्जन कर देता है। ईश्वर के लिए यह कठिन नहीं।"

हमने प्रतिष्ठा एव सम्मान के जीवन की अवधि जो चार पीढियो तक निर्धारित की है तो यह कोई अटल सिद्धान्त नही है, अपितु अनेको परिस्थितियो के अध्ययन के आधार पर यह सीमा रखी गयी है, कारण कि कभी-कभी चार पीढियो की समाप्ति के पूर्व ही प्रतिष्ठा एव सम्मान का अन्त हो जाता है। कभी प्रतिष्ठा एव सम्मान चार पीढियो से आगे बढकर पाँचवी तथा छठी पीढी तक पहुँच जाते है। किन्तु पतन अवश्य प्रारम्भ हो जाता है और वे विनाश की ओर बढने लगते है। हमने चार पीढियो की सीमा इस कारण निर्धारित की है कि इनमें से पहली पीढी प्रतिष्ठा की सस्थापक होती है, दूसरी बनी हुई बात को निभानेवाली, तीसरी केवल अनुकरण करनेवाली और चौथी किये कराये पर पानी फेरनेवाली ।[2]

(१६) वहशी क़ौमें दूसरी कौमों की अपेक्षा प्रभुत्व शीघ्र प्राप्त कर लेती है

इससे पूर्व तीसरी प्रस्तावना में उल्लेख हो चुका है कि बदवी जीवन वीरता का कारण होता है। इसी तथ्य के आधार पर वहशी कौमें वीरता एव पौरुष में अद्वितीय होती है। उनमें प्रभुत्व प्राप्त करने की शक्ति बहुत अधिक होती है जिसके फलस्वरूप वे अपनी इच्छानुसार अन्य कौमो से प्रभुत्व छीन लेती है। इस तरह कालचक्र के कारण परिवर्तन होते रहते है। जब कभी ये कौमें हरे-भरे स्थानो में बस जाती है और भोग-विलास में अपना समय व्यतीत करने लगती है तो इस स्थानान्तरण के कारण उनकी वहशत में जितनी कमी होने लगती है, उतनी ही उनकी वीरता एव बदवियत[3] भी कम होती जाती है। मूक पशुओं में से उदाहरणार्थ बकरा, मृग, बारहसिगा, गधा एव गोर-खर यद्यपि एक ही प्रकार के पशु है, किन्तु पालतू जानवरो का जगलीपन मनुष्यो के साथ रहने के कारण नष्ट हो जाता है और वे आराम के आदी हो जाते है। उनके उठने-

१. ईश्वर।
२. इस्लामी इतिहास से कुछ उदाहरण।
३. बदवी अथवा बद्दुओं का जीवन।

वैठने, तेजी, चाल-ढाल, रग-रूप, सभी में परिवर्तन हो जाता है। यही दशा वहशी मनुष्यो की भी है, कारण कि वहशत की समाप्ति के उपरान्त ये भी अपने स्वभाव के जीर्ण वस्त्र उतार फेंकते है। इस तथ्य का कारण यह है कि मनुष्य की आदतें एव स्वभाव अपने चारो ओर के वातावरण से अत्यधिक प्रभावित होते है।

चूँकि कौमो को प्रभुत्व एव श्रेष्ठता वीरता, पौरुष, साहस एव मनचलेपन के गुणो के कारण प्राप्त होती है, अत. जिस कौम में बदवियत एव वहशत अधिक होगी वही दूसरी कौमो की अपेक्षा शीघ्र प्रभुत्व प्राप्त कर लेगी, चाहे दोनो पक्ष वाले सख्या एव "असबियत" की शक्ति में बराबर के ही क्यो न हो। इस प्रकार मुज़र नामक कबीले पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि उन्होने वदवियत एव वहशत पर दृढ रहने के कारण हमीर एव कहलान सरीखे भोग-विलासग्रस्त कवीलो पर अधिकार प्राप्त कर लिया। रबीआ, जो इराक के हरे-भरे स्थानो में निवास करते एव भोग-विलास में ग्रस्त रहते थ, पराजित हो गये। रेगिस्तान के जीवन ने वनु मुजर को प्रभुत्व प्राप्त करने के योग्य वना दिया। अन्य समूहो के अधिकार में जो कुछ था, उसे उन्होने छीन लिया।

इसके उपरान्त बनू तै, बनू आमिर विन सासेया तथा बनू सुलैम विन मसूर ने मुजर कवीले के साथ वही व्यवहार किया जो मुजर कवीला हमीर तथा कहलान के साथ कर चुका था। इसका कारण यह था कि प्रभुत्वशाली मुजर के पश्चात् भी वे उसी प्रकार वहशी एव बद्दू बने रहे और उनकी "असवियत" एव उनके वैभव में कोई अन्तर न पड़ा। वे समृद्धि एव भोग-विलास से दूर रहे, यहाँ तक कि मुजर पर भी उन्होने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। यही दशा अरब के समस्त कबीलो की रही कि वे जितना ही समृद्धि एव भोग विलास के निकट होते गये, उतना ही दूसरो से पराजित होते गये। सक्षेप में वदवी कबीले सख्या एव शक्ति में समान होने के वावजूद अपने प्रतिस्पर्धी पर सर्वदा प्रभुत्व प्राप्त करते रहे।

(१७) "असबियत" राज्य-प्राप्ति के लक्ष्य की ओर ले जाती है

हम इससे पूर्व यह उल्लेख कर चुके है कि "असवियत" के ही आधार पर पक्षपात, शक्ति, प्रतिरक्षा एव अधिकार की माँग की भावनाएँ उत्पन्न होती है और इस बात का भी उल्लेख हो चुका है कि मनुष्य को अपने सामाजिक जीवन में स्वाभाविक रूप से किसी शासक एव न्यायकारी की आवश्यकता होती रहती है, ताकि वह एक को

दूसरे के अन्याय से बचाये। उस हाकिम के लिए यह आवश्यक है कि वह "असबियत" के बल पर अधीनस्थ व्यक्तियो पर अधिकार स्थापित रखे, ताकि उसके समस्त आदेश भली भाँति प्रचलित हो सकें। इसी प्रभुत्व को राज्य अथवा सल्तनत कहा जाता है। यह राज्य एव सल्तनत मानो शासन के अतिरिक्त एक वस्तु है। कारण कि शासन केवल एक प्रकार का नेतृत्व होता है, जिसमें शासक सबका नेता एव सबमें अधिक प्रभुत्वशाली होता है। उसकी बात को सभी पसन्द करते है और हृदय से उसको स्वीकार करते हैं, किन्तु उसको किसी पर अत्याचार एव अन्याय का अधिकार नही होता। इसके विपरीत शाहशाहियत एव सल्तनत को बल एव शक्ति आतक एव प्रभुत्व के कारण प्राप्त होती है।

"असबियत" का स्वामी जब इस उच्च श्रेणी को प्राप्त हो जाता है तो वह ऊपर की ही श्रेणी पर दृष्टि डालता है। जब वह अधिकार एव सर्वसाधारण पर आज्ञा-कारिता प्राप्त कर लेता है और आतक एव शक्ति के प्रदर्शन का जरा-सा भी अवसर मिलने पर वह उसे हाथ से नही जाने देता। कारण कि मनुष्यो को यह आतक स्वाभाविक रूप से पसन्द है और यह प्रभुत्व एव शक्ति उसे "असबियत" के बिना नही प्राप्त हो सकती। इसका यह निष्कर्ष निकला कि राजनीतिक प्रभुत्व "असबियत" का अन्तिम एव एक मात्र उद्देश्य है और हम यही सिद्ध करना चाहते थे।

यदि एक कबीले में विभिन्न घराने अपनी अपनी पृथक् "असबियत" रखते हो तो उनमें एक "असबियत" का होना आवश्यक है, जो समस्त "असबियतो" से शक्तिशाली एव प्रभुत्व-सम्पन्न हो और सबको अपने में मिला ले, मानो उसकी गणना एक बड़ी "असबियत" में हो जिसे हम देश अथवा राज्य की "असबियत" कह सकते है। यदि ऐसी दशा न होगी तो कबीलो एव वशो का सगठन छिन्न-भिन्न हो जायगा और लोग विरोध एव झगड़े में पडकर नष्ट हो जायँगे, जैसा कि ईश्वर ने कहा है,—"यदि ईश्वर मानव को अलग-अलग न रखे तो पृथ्वी नष्ट हो जायगी।"[1] जब यह राजनीतिक "असबियत" विशेष कबीलों की "असबियतो" पर छा जाती है तो स्वाभाविक रूप से दूर की अन्य "असबियतो" पर प्रभुत्व ढूँढती है। यदि वे "असबियतें" उसके बराबर की टक्कर की है और मुकाबले में डट जाती है तो सघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और किसी को प्रभुत्व नही प्राप्त होता, अपितु प्रत्येक "असबियत" अपने-अपने स्थान

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

पर स्थापित रहती है। अर्थात् प्रत्येक का प्रभुत्व अपनी ही कौम एवं अपने ही कबीले पर रहता है। जिस प्रकार ससार के विभिन्न कबीले एव कौमें अलग-अलग बसती रहती है और पारस्परिक सघर्ष के कारण एक को दूसरे कबीले और दूसरे शासन एव "असबियत" पर प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है, तब विजयी शासन एव "असबियत" दूसरी शक्ति को हडपकर वीर बन जाती है और उसके प्रभुत्व एव शासन की भावनाएँ और भी जागृत हो जाती है। इसी प्रकार एक शासन अपने प्रभुत्व का क्षेत्र बढाता रहता है और अन्य शक्तियो को हडपता रहता है। इसी वेग में ऐसे शासनों से भी सघर्ष हो जाता है जो एक वृद्ध की भाँति अपने जीवन की घडियाँ गिनते रहते और "असबियत" वाले एव राज्य के अधिकारी उनका साथ छोड चुकते है। उन पर इस नयी सत्ता को अधिकार प्राप्त हो जाता है और वह राज्य प्राप्त कर लेती है और समस्त देश उसी के अधीन हो जाता है। यदि प्रतिस्पर्धी सत्ता शक्तिहीन हो जाय किन्तु उसमें अभी प्राण शेष हो और "असबियत" वालो की सहायता चाहती हो तो राज्य उसके पदाधिकारियो में सुरक्षित रह जाता है, जो कि कठिनाई के समय उसकी रक्षा करके उसे बचा लेते है और उस नये राज्य का ज़ोर रुक जाता है। तुर्कों को अब्बासियो के साथ, सिनहाजा एव ज़नाता को कुतामा के साथ और बनी हमदान को अलवियो एव अब्बासी सुल्तानो के साथ इसी प्रकार की घटनाओ का सामना करना पडा।

इस तर्क-वितर्क से यह स्पष्ट हो गया कि राज्य "असबियत" का लक्ष्य है और जब "असबियत" चरम सीमा को पहुँच जाती है तो कबीले को प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है, चाहे वह अत्याचार एव अधिकार द्वारा हो, चाहे प्रतिरक्षा के कारण। सक्षेप में समय के अनुसार जो उचित होता है वही होता है। यदि "असबियत" चरम सीमा को न पहुँच जाय अपितु उसमें बाधाएँ पड़ती रहें तो वह आगे बढ़ते-बढ़ते रुक जाती है और दैवी निर्णय की प्रतीक्षा किया करती है।

(१८) भोग-विलास एवं समृद्धि का आदी हो जाना कबीलों को राज्य प्राप्त करने से वचित रखता है

इसका कारण यह है कि जब कोई कबीला "असबियत" के आधार पर एक प्रकार का प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है तो प्रभुत्व के ही अनुपात से वह समृद्धि एव सासारिक सुखो से लाभ उठाता है और विलासप्रिय लोगो की सूची में सम्मिलित हो जाता है।

सक्षेप में अपनी शक्ति एव प्रभुत्व के अनुसार तथा अपने आश्रयदाता राज्य की सहायता एव उस के महत्त्वानुसार वह आनन्द-मगल मनाने लगता है। यदि वह राज्य, जिसका यह कबीला महायक है, इतना शक्तिशाली है कि कोई अन्य सत्ता उस राज्य को छीनने अथवा राज्य में साझीदार बनने में असमर्थ है, तो यह कबीला उसके राज्य पर आश्रित होकर प्राप्य समृद्धि एव भोग-विलास पर सतुष्ट रहता है और जो कुछ आय होती है उसी को पर्याप्त ममझकर बैठा रहता है। उसे कभी किसी राज्य के अपहरण करने अथवा अपहरण के साधन जुटाने की इच्छा नही होती। उसका उद्देश्य केवल धन-सम्पत्ति द्वारा आराम उठाना, कला-कौशल सीखना एव भोग-विलास का जीवन व्यतीत करना होता है। वह राज्य की छत्रछाया में आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है। उस कबीलेवाले अपने साधनो के अनुसार सुन्दर भवनो का निर्माण कराते हैं, तथा उत्तम वस्त्र धारण करते हैं। सक्षेप में उनका विलासमय जीवन इसी प्रकार बढता जाता है और वे अपने ऐश व आराम के समस्त साधन एकत्र करते जाते है। फलत बदवियत की कठोरता, "असबियत" एव वीरता की भावनाएँ उसमें से निकलती जाती है और वे लोग समृद्धि की गोद में पलने लगते है। तदुपरान्त उनकी सन्तान एव आनेवाली पीढियो का जन्म भी इसी वातावरण में होता है। वे अपना कार्य स्वय करना नही जानती, अपितु अन्य लोगो से सेवा कराना जानती है। वे उन बातो से पूर्णत अपरिचित होती है जो "असबियत" हेतु आवश्यक होती है। यह बात उनके स्वभाव में प्रविष्ट हो जाती है। इसी प्रकार आनेवाली सन्तानें भी "असबियत" एव वीरता से दूर होती जाती है और "असबियत" भी उनसे पृथक् हो जाती है, यहाँ तक कि इसके कारण पूरे कबीले का विनाश हो जाता है। उनके द्वारा अपनी शक्ति एव प्रभुत्व को स्थापित रखने का कोई प्रश्न ही नही उठता, कारण कि यह अनेक बार स्पष्ट किया जा चुका है कि भोग-विलास का जीवन एव आराम "असबियत" का, जो प्रभुत्व का विशेष स्रोत है, अन्त कर देते है। कबीले की "असबियत" के अन्त के कारण उसमें प्रतिरक्षा एव बचाव की भावनाएँ भी नही रहती और वे अन्य लोगो द्वारा अपना प्रभुत्व स्वीकार नही करा सकती। अन्य कौमें उसे सुगमतापूर्वक हडप कर डालती है। इससे यह सिद्ध हो गया कि भोग-विलास एव आराम देश एव राज्य के शत्रु है। "ईश्वर जिसे चाहता है उसी को राज्य प्रदान करता है।"[1]

१. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।

(१९) अपमान एवं तिरस्कार सहने की आदत तथा अन्य लोगों की आज्ञाकारिता भी कबीले के लिए राज्य एवं सल्तनत की प्राप्ति मे बाधक होती है

इसका कारण यह है कि अपमान एव तिरस्कार सहन करने का आदी होना तथा अन्य लोगो की आज्ञाकारिता द्वारा "असबियत" का विनाश हो जाता है एव उसका ज़ोर तथा तेजी समाप्त हो जाती है। कारण कि अधीनता एव अपमान सहन करना इस बात का खुला प्रमाण है कि "असबियत" का अन्त हो चुका है और न अब प्रतिरक्षा की भावनाएँ शेष हैं, मानो प्रतिरक्षा एव आगे बढने की भावनाएँ पूर्णत. समाप्त हो चुकी हैं। उदाहरणस्वरूप जब हज़रत मूसा ने बनी इसराईल को शाम देश की ओर ले जाना चाहा और यह सुखद समाचार सुनाया कि शाम देश का राज्य ईश्वर ने तुम्हारे भाग्य में लिख दिया है, तो वे हतोत्साहित हो गये और खुले शब्दो में अपनी अस्वीकृति इस प्रकार प्रकट की—"उसमें तो एक आतकवादी कौम रहती है, जब तक वे वहाँ से न निकलें हम कदापि वहाँ न जायँगे।"[१] अर्थात् ईश्वर अपनी शक्ति से उन्हें वहाँ से निकाल दे, किन्तु हम "असबियत" के सहारे से उनसे युद्ध न करेंगे और प्राणो को खतरे में न डालेंगे और यदि ऐसा हो गया तो हे हज़रत मूसा! हम इसे आपका चमत्कार समझेंगे। उस पर भी जब मूसा ने उन्हें अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया तो वे हठधर्मी और ज़िद्द करने लगे और अवज्ञा से परिपूर्ण वाक्य कहने लगे, "तुम तथा तुम्हारा रब दोनो मिलकर उनसे युद्ध करें।"[२]

इसका कारण यह था कि मुकाबले एव अपने अधिकार की माँग उनके हृदय से मिट चुकी थी और एक महान् अविश्वास व्यापक हो गया था। वे साहसहीन हो चुके थे। कई पीढियो से किब्तियों[३] के अत्याचार सहते-सहते उनके हृदय में आज्ञाकारिता तथा अपमान की भावनाएँ आरूढ हो चुकी थी और "असबियत" का अन्त हो गया था। इसके अतिरिक्त उन्हें हज़रत मूसा के इस सदेश पर पूर्ण विश्वास भी न होता था कि शाम का राज्य उनके भाग्य में लिखा जा चुका है और वे ईश्वर के आदेश से शाम के अमालेका को पराजित भी कर सकते हैं। इस कारण वे झिझक गये

१. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।
२. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।
३. मिस्र के काप्टस्।

और उन्होंने राज्य की माँग न की। चरित्र में अपमान की भावनाओ के उत्पन्न हो जाने के कारण वे नबी के सच्चे सदेश में वाद-विवाद करने लगे और निन्दा एवं कटु आलोचनाएँ प्रारम्भ कर दी। इस कारण ईश्वर ने उन्हें शाम एव मिस्र के मध्यवर्ती रेगिस्तान में बन्दी बना दिया और वे उसमें ४० वर्ष तक भटकते रहे। इस दीर्घ-काल में न तो वे किसी सभ्यता का मुँह देख सके और न वे किसी नगर का पता लगा सके और न किसी मनुष्य के दर्शन कर पाये। कुरान शरीफ में इस घटना का उल्लेख हुआ है।

कुरान की आयत[1] द्वारा ज्ञात होता है कि रेगिस्तान के निवास के दड में एक विशेष रहस्य यह था कि किब्ती, जो आतकवादी एव कठोर शासन में पलकर सर्वदा के लिए अपमानित एव "असबियत" से वचित हो चुके हैं, रेगिस्तान में नष्ट हो जायें और उनके स्थान पर एक अन्य आत्मसम्मानवाली कौम पैदा हो, जिसने किसी के आतंक एव किसी की कठोरता को सहन न किया हो और अपमान एव तिरस्कार से उसका पाला न पड़ा हो, ताकि नवजात "असबियत" के बल पर वे अपने अधिकार की माँग हेतु दृढ हो जायें और शत्रु पर छा जायें। यही से इस रहस्य का भी पता चलता है कि चालीस वर्ष की अवधि वह कम से कम अवधि है जिसमें एक पीढी मर-खपकर विनाश के गर्त में पहुँच जाती है और दूसरी पीढी उसके स्थान पर उत्पन्न हो जाती है। सक्षेप में यह घटना "असबियत" के प्रभाव को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करती है कि प्रतिरक्षा, मुकावले, पक्षपात एव अपने अधिकार की माँग सबकी सब "असबियत" पर आधारित हैं। जो इससे वचित हुआ, वह इन सब भावनाओ एव योग्यताओं को खो देता है।

कौम में अपमान एव तिरस्कार को सहन करने की भावनाएँ उत्पन्न करने के लिए कर, जुर्माने एव लगान इत्यादि का भी बडा हाथ है। जुर्माना तथा कर वही कौम अथवा वही कबीला अदा करेगा जो अपमान एव तिरस्कार को सहन करे। कारण कि इनमें खुला हुआ अपमान एव तिरस्कार है जिसे आत्म-सम्मान वाले किसी प्रकार उस समय तक नहीं सहन कर सकते जब तक उन्हें हत्या एव विनाश से भय न दिलाया जाय, अथवा उनमें "असबियत" की भावनाएँ इतनी कमजोर हो गयी हों कि उनको प्रतिरक्षा एव मुकावले के लिए प्रेरित न करें। जिसमें "असबियत" की भावनाएँ इतनी कमजोर हो कि वह अपमान एव तिरस्कार को न टाल सके तो वह मुकाबले

१. वाक्य।

एव अपने अधिकारो की माँग के लिए किस प्रकार तैयार होगा, अपितु वह तो अपमान एव तिरस्कार स्वीकार करके तत्काल झुक जायगा। इस प्रकार मुहम्मद साहव का यह कथन भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है कि जब मुहम्मद साहब ने कुछ असार[1] के घरो में कृषि के यत्र देखे तो कहा कि ये वस्तुएँ जिस किसी के घर में प्रविष्ट हुई उसके घर में अपमान एव तिरस्कार भी प्रविष्ट हो जाता है। इससे इस वात की ओर स्पष्ट सकेत है कि कृषि में लगान एवं जुर्माना अदा करना पडता है, जिसके अदा करने के उपरान्त मनुष्य अपमान से नही वच सकता, अपितु अपमान के साथ-साथ छल एव धूर्तता जैसे दुर्गुण भी हृदय में प्रविष्ट हो जाते है। अत. जिस कौम अथवा कवीले को यदि कोई कर अदा करने का अपमान सहन करते देखें तो समझ ले कि राज्य प्राप्त करने की उसमें कोई योग्यता नही। यही से यह भ्रम भी स्पष्ट हो जाता है कि मगरिब में ज़नाता बदवी चरवाहो का व्यवसाय करते थे और समकालीन बादशाहो को कर अदा किया करते थे। यदि यह घटना सच होती तो राज्य उन्हें किस प्रकार प्राप्त होता और वे किस प्रकार शासन कर पाते।

इस प्रसग में दरबन्द के बादशाह शहर बराज़ के शब्दो पर गौर किया जा सकता है। जब अब्दुर्रहमान बिन रबीआ ने शहर बराज़ को घेरकर उसे परेशान कर दिया तो उसने शान्ति की प्रार्थना करते हुए निवेदन किया कि "आज से मैं तुम्हारी अधीनता स्वीकार करता हूँ। अब मेरा आदर सम्मान एव अपमान तुम्हारे हाथ में है। आओ राज्य पर अधिकार जमा लो। ईश्वर तुम्हें और हमें शान्ति प्रदान करे। जो जिज़या हम तुम्हें अदा करेंगे उससे तुम हमारी सहायता एव अन्य कार्य करोगे। किन्तु हमसे जिज़या लेकर हमें अपमानित मत करो। इससे तुम हमें इतना कमज़ोर कर दोगे कि हम तुम्हारे शत्रुओ के शिकार हो जायँगे। इस कहानी से हमारे उपर्युक्त कथन की पूर्ण रूप से पुष्टि होती है।

(२०) नैतिकता में दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न क़ौम मे राज्य प्राप्त करने का चिह्न है और यदि इसके विरुद्ध हो तो यह राज्य से वंचित होने का द्योतक है

यह ज्ञात हो चुका कि राज्य एव सल्तनत की स्थापना मनुष्य की स्वाभाविक आवश्यकता है और मानवीय सगठन के लिए है। यह भी सत्य है कि मनुष्य अपने

१. मुहम्मद साहब के मदीने के सहायक।

वास्तविक स्वभाव एव बुद्धि द्वारा निर्णय की शक्ति के कारण पाप के स्थान पर सदाचार एव नैतिकता के निकट रहता है, कारण कि उसमें पाप उन पाशविक वृत्तियो के कारण आता है जो उसमें वर्त्तमान है। मानवता के नाते मनुष्य नैतिकता एव उपकार की ओर ही आकृष्ट होता है और राज्य एव राजनीति भी मनुष्य के लिए मानवता के कारण आवश्यक होती है। फिर इस बात का भी उल्लेख हो चुका है कि यश एव प्रतिष्ठा का, जो राज्य हेतु आवश्यक है, आधार "असबयित" एव एक-दूसरे की सहायता है।

यश उन बातो पर आधारित है जो उसके अस्तित्व को पूर्ण बनाती है, वे बातें मनुष्य के व्यक्तिगत गुण है। राज्य के अधिकार "असबियत" का परिणाम है। इसी प्रकार "असबियत" मनुष्य के व्यक्तिगत गुणो को पूर्ण बनाती है। राज्य के अधिकारो का अस्तित्व पूर्ण बनानेवाली बातो के बिना उस व्यक्ति के जीवन के समान है जिसके अग कट चुके है अथवा ऐसा है कि मानो कोई वस्त्र पहने बिना लोगो के सामने नगा खड़ा हो।

बिना प्रशसनीय गुणो के "असबियत" सम्मानित वशवालो का एक बहुत बड़ा अवगुण है। राज्य का अधिकार रखनेवालो में यदि यह अवगुण हो तो फिर यह और भी बडा दोष है, कारण कि राज्य के साथ जितना अधिक से अधिक प्रताप अथवा यश सम्भव है, वह उससे सम्बन्धित होता है। इसके अतिरिक्त राज्य एव शासन के अधिकार ईश्वर की मानव के प्रति ज़मानत के रूप में है। शासक दैवी नियमो की रक्षा करता है और जहाँ तक दैवी नियमो का सम्बन्ध है, वह मनुष्यो के मध्य में ईश्वर के अनुरूप है। दैवी नियम मानव के उपकार के लिए ही होते है। धार्मिक नियमो से इस तथ्य की पुष्टि होती है। बुरे कानून या तो मूर्खता और या शैतान की ओर से होते है और वे भाग्य एव ईश्वर की शक्ति के विरुद्ध होते है। वह सदाचार एव दुराचार दोनो का सर्जन करता है, कारण कि सर्जन की शक्ति उसके अतिरिक्त किसी अन्य में नही।

अब जिसमें पूरी "असबियत" वर्त्तमान हो और साथ ही साथ वह सदाचरण के ऐसे गुणो से, जो दैवी आदेशो को चलाने के लिए आवश्यक है, सुशोभित हो तो वह प्राणियो में ईश्वर का राज्य स्थापित करने और प्राणियो की रक्षा करने के योग्य होगा। यह दलील पिछली दलील से अधिक मज़बूत और विश्वास के योग्य है।

इस वाद-विवाद का साराश यह निकला कि "असबियत" वाली कौमो में सदाचार एव नैतिकता उनके द्वारा राज्य विजय करने के चिह्न है। इस प्रकार हम

जिन कौमो के लोगों को "असवियत" वाले पाते है और आस-पास की कौमो को उनके प्रभुत्व के अधीन पाते है तो वे सदाचार एव नैतिकता में दूसरो से आगे बढने का प्रयत्न करते है और इसकी इच्छा प्रदर्शित करते है, दया एव क्षमा भाव अपने स्वभाव में प्रविष्ट कर लेते है। वे दरिद्रो की वातो को सहन करते है, आतिथ्य की भावना अपने-आप में उत्पन्न करते है। परिश्रम, प्रयत्न एव चेष्टा से कभी जी नही चुराते। कठिनाइयो को सहन करते है। जो वचन देते है उसका पालन करते है। आदर-सम्मान की रक्षा हेतु धन व्यय करने में कोई कसर नही उठा रखते। शरीअत का सम्मान करते है और शरीअत के आलिमो का आदर करते है। जब आलिम लोग शरीअत के अनुसार उनके लिए किसी कार्य को करने अथवा न करने का आदेश देते है तो वे उन आदेशो का सम्मान करते है। सक्षेप में वे उनके प्रति सद्भावना रखते है। धर्मवालो के प्रति ऐसी निष्ठा रखते है कि उनसे उन्हें आशीर्वाद की आशा होती है और उनसे वे अपने लिए शुभकामनाएँ कराते है। बुजुर्गों एव सूफी सन्तो के प्रति आदर-सम्मान का व्यवहार करते है। जब उन्हें कोई सत्य की ओर आकृष्ट करता है तो वे तत्काल आकृष्ट हो जाते है। शक्तिहीनो के साथ न्याय करते है और उनके उपकार हेतु धन व्यय करने में भी सकोच नही करते। सत्य की किसी प्रकार उपेक्षा नही करते। दरिद्रो के प्रति नम्रतापूर्वक व्यवहार करते है। न्याय चाहनेवालो की शिकायतें सुनते है। शरई आदेशो एव एवादतो पर दृढ़ रहते है। ऐसे अवगुणो से, जो छल, धूर्तता, धोखे एव वचन का पालन न करने से सम्बधित है, बचते रहते है। सक्षेप में इन्ही स्वभावो के कारण सदाचारी एव चरित्रवान् मनुष्य राज्य एव राजनीति के उचित पात्र बने और साधारण प्राणियो पर राज्य करने लगे। नि सन्देह ईश्वर ने नैतिकतापूर्ण यह ऐसे गुण प्रदान किये है जो उनकी "असबियत" एव प्रभुत्व के पूर्णरूप से उपयुक्त है और राज्य एव सल्तनत उनकी "असवियत" के लिए उचित है।

इससे हमने इस वात का पता चला लिया कि जब ईश्वर किसी कौम तथा वश को राज्य एव सल्तनत द्वारा सम्मानित करता है तो सर्वप्रथम उसके चरित्र को ठीक करता है। तदुपरान्त उसे इस देन द्वारा सुशोभित करता है। इसी प्रकार यदि वह कौमो से राज्य छीनना चाहता है तो सर्वप्रथम उनको दुराचार की ओर प्रेरित करता है। उन्हें चरित्रहीन बना देता है और कुमार्ग पर चलाता है। फलत उनमें शासन की योग्यता नही रहती और वे प्रभुत्व से गिरने लगते है, यहाँ तक कि एक दिन वे राज्य से पूर्णत हाथ धो बैठते है। उनके स्थान पर अन्य लोगो को प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है।

इसका कारण यह है कि ससारवाले यह समझ लें कि ईश्वर ने उन्हें अपनी देन एव राज्य से उनके ही दुराचार के कारण वचित कर दिया। ईश्वर ने स्वय कहा है, "यदि तुम पिछली उम्मतो का इतिहास उठाकर देखोगे और हालात की छानबीन करोगे तो ज्ञात हो जायगा कि राज्यो एव सल्तनतो के तख्ते इसी प्रकार उलटते रहे है।"

यह बात स्पष्ट रहे कि वे अद्वितीय गुण जो "असबियत" वाली कौमो में पाये जाते है और जो उनके प्रताप का प्रत्यक्ष प्रमाण है, इस प्रकार है—वे कौमें आलिमो, पवित्र व्यक्तियो, प्रतिष्ठित लोगो, उच्च वश एव कुलवालो, व्यापारियो तथा यात्रियो के प्रति आदर-सम्मान एव उदारतापूर्वक व्यवहार करती है और प्रत्येक के साथ उसकी श्रेणी के अनुसार पेश आती है। इसका कारण यह है कि यह बात स्वाभाविक है कि "असबियत" एव मर्यादा वाली कौमें उन लोगो का आदर-सम्मान करती है जो उनके कौमी एव "असबी"[1] गौरव को उन्नत करती है और प्रतिष्ठा एव सम्मान में उनके समान तथा उनके तुल्य होती है। इस आदर-सम्मान का कारण कभी यह होता है कि वे कौमें इस आचरण द्वारा स्वय अपने सम्मान को स्थायी रखना चाहती है और कभी भय एव आतक के कारण ऐसा करती है। कभी यह उद्देश्य होता है कि इस उत्तम व्यवहार के कारण कौम को स्वय आदर-सम्मान प्राप्त हो जाय, किन्तु उन लोगो का आदर-सम्मान, जिनमें न "असबियत" हो जिसके कारण भय किया जाय और न उनसे उच्च श्रेणी प्राप्त करने की आशा हो, इस कारण किया जाता है कि इसके द्वारा उच्चकोटि की नैतिकता एव चरित्र का प्रदर्शन किया जाता है और राजनीति को उचित रूप से चलाया जाता है। अपने समकक्ष कबीले के शरीफो[2] का आदर-सम्मान राजनीति के लिए विशेष रूप से आवश्यक होता है और साधारण योग्यता के व्यक्तियो एवं शरीफो का सम्मान साधारण राजनीति के कारण होता है। पवित्र लोगो का आदर-सम्मान धर्म के कारण होता है और आलिमो का आदर-सम्मान शरई आदेशो की स्थापना की दृष्टि से किया जाता है। व्यापारियो के साथ उत्तम व्यवहार उनका साहस बढाने के लिए किया जाता है ताकि व्यापार की उन्नति हो। यात्रियो के साथ उत्तम व्यवहार नैतिकता के प्रदर्शन हेतु किया जाता है, कारण कि प्रत्येक व्यक्ति से उसकी श्रेणी के अनुसार व्यवहार करना न्याय को प्रमाणित करता है। अत. जिस कौम में यह हृदयग्राही गुण पाये जायें तो यह समझ लेना चाहिए कि

१. असबियत सम्बन्धी।
२. नेताओ।

वह शीघ्र ही शासन का कार्यभार सँभालेगी और राज्य के सम्मान द्वारा सम्मानित होगी, कारण कि ईश्वर ने राज्य-विजय करने के यही चिह्न निश्चित किये है। इसी कारण ईश्वर जिस कौम से राज्य एव सल्तनत छीनना चाहता है तो सर्वप्रथम यह चिह्न उसमें प्रकट होता है कि वह कौम शरीफो एव देश के सम्मानित व्यक्तियो का आदर-सम्मान त्याग देती है। जब किसी कौम में इन गुणो का अभाव पाया जाय तो समझ लेना चाहिए कि उसकी प्रतिष्ठा पतनशील है और अब राज्य भी हाथ से निकलनेवाला है। "यदि ईश्वर किसी का पतन चाहता है तो फिर उसे कोई नही रोक सकता।"[1]

(२१) वहशी कौमों का राज्य बड़ा विस्तृत होता है

इसका कारण यह है कि वहशी कौमें अधिक प्रभुत्ववाली एव शक्तिशाली होती है। क्योकि वे कौमो से युद्ध करने में अत्यधिक निर्भीक एव निडर होती है अत. वे दूसरी कौमों को अपना दास एव आज्ञाकारी बना लेती है। मानो वे मनुष्यो में खूंख्वार वनपशुओ के समान होती है और सभी लोग उनसे आतकित रहते है। उदाहरणार्थ अरब, जनाता, कुर्द, तुर्क और सिनहाजा के कुछ कबीले, जिनकी गणना वहशी कौमो में होती है। इन वहशी कौमो का कोई देश नही होता जिसके प्रेम के बधनो में वे बँधी रहें और न कोई उनका विशेप घर होता है जिसमें वे घिरी रहने की आदी हो। स्वदेश-विदेश, नगर-यात्रा सभी उनके लिए समान होते है। इसी कारण वे अपने ही राज्य के क्षेत्र अथवा उसके समीप रहकर जीवन नही व्यतीत करती अपितु दूर-दूर के देशो में पहुँचकर वहाँ बसनेवाली कौमो पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है। इस सम्बन्ध में यह घटना उल्लेखनीय है। जब हज़रत उमर से बैअत[2] की गयी और वे लोगो को इराक के युद्ध हेतु प्रेरित करने के लिए खडे हुए तो कहा, "हे लोगो! हिजाज तुम्हारा कोई घर नही जो तुमको यह बाहर न निकलने दे। यह तुम्हें केवल जल एव घास की सुगमता उपलब्ध करता है और जीविका सम्बन्धी अन्य आवश्यकताएँ आसानी से एकत्र कराता है, किन्तु इसका यह उद्देश्य नही कि तुम इन आवश्यकताओ के दास बन जाओ और हिजाज़ का त्यागना तुम्हारे लिए कठिन हो जाय। हे मुहा-जेरीन[3]! क्या तुम ईश्वर के आश्वासन को भूल गये जो कहता है कि, "जाओ और

१. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।
२. अधीनता की शपथ।
३. वे लोग जो हज़रत मुहम्मद के साथ मक्का छोड़कर मदीना चले गये थे।

उस भूमि पर फैल जाओ जिसका ईश्वर ने तुम्हें स्वामी बनाने का वचन दिया है।"[1] अरब की प्राचीन कौमो की यही दशा रही है। उदाहरणार्थ तुब्बा एव हमीर, जो कहा जाता है कि कभी यमन से मगरिब तक पहुँच गये और कभी इराक तथा हिन्द तक। अरब के अतिरिक्त अन्य कौमें नि सन्देह ऐसी न थी। यही दशा मगरिब के नकाबपोशो (सिनहाजा) की थी कि जब उन्होने राज्य की बागडोर सँभाली तो प्रथम इकलीम में स्थित सूडान के पास से उठकर चौथी एव पाँचवी इकलीम में उन्दुलुस तक पहुँच गये। इतिहास से पता चलता है कि वहशी कौमो की यही दशा रही है और इसी लिए उनके राज्य का क्षेत्र बडा विस्तृत होता है और उनके स्वदेश के आगे बडी दूर तक उनके राज्य का क्षेत्र फैला रहता है। "ईश्वर ही रात-दिन निश्चित करता है।"[1]

(२२) किसी सल्तनत एव "असबियत" की स्वामी क़ौम से सल्तनत नही निकलती, यदि एक वश से निकल जाती है तो दूसरे वंश मे पहुँच जाती है

जब किसी कौम को प्रभुत्व प्राप्त होता है और अन्य कौमें उसके प्रभुत्व का लोहा मानकर उसकी आज्ञाकारिता स्वीकार कर लेती है तो राज्य चलाने एव राजसिहासन की रक्षा हेतु उन्ही में से लोग छाँटे जाते है और उसी कौम के वश में से उनका चुनाव होता है, किन्तु सब वशो में से नही, अपितु केवल उसी वश से जो सबमें शक्तिशाली एव प्रभावशाली होता है। उसके सामने किसी की वीरता को सफलता नहीं प्राप्त होती। जब उस वश के व्यक्ति राज्य एव शासनप्रबन्ध हेतु चुने जाते है और कार्य के क्षेत्र में प्रविष्ट होते है तो भोग-विलास एव समृद्धि की इच्छा करने लगते है। वे अपने ही कबीले तथा वश के लोगो को राजसिहासन पर आरूढ करते है और जिन वशो को शासनप्रबन्ध से कोई सम्बन्ध नही, वे दूर ही पड़े रहते है। जिस शासन में उनको वश के अनुसार सम्मिलित होने का अधिकार होता है, उसमें उनकी कोई चिन्ता नही करता। किन्तु इस प्रकार भोग-विलास के जीवन से पृथक् रहकर वे शक्ति-हीनता से भी बचे रहते है।

फलत भोग-विलास में ग्रस्त रहनेवाले एव शासक वर्ग जब काल-चक्र का शिकार होते है और उनकी कमजोरी उनकी समृद्धि का अन्त कर देती है तो राज्य

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

भी उनकी ओर से आँखें फेर लेता है, काल-चक्र उन्हें हड़प कर डालता है, समृद्धि उनकी तेजी एव कठोरता का अन्त कर देती है, भोग-विलास उनके गौरव को नष्ट कर देता है और वे मानवी सस्कृति तथा राजनीति में जो कुछ कर सकते है उसका अन्त हो जाता है।

शेर— रेशम के कीड़े की भाँति जो कातता है और फिर बाद में,
उसी काते हुए सूत के कारण उसका अन्त हो जाता है।

ऐसी अवस्था में उनके मुकाबले में अन्य वश उपस्थित होते है जिनकी "असबियत" उसी प्रकार दृढ, जिनका उत्साह पूर्णरूप से सुरक्षित और जिनके भय एव आतंक का सिक्का सबके हृदय पर आरूढ होता है। अत. राज्य प्राप्त करने की इच्छा उनका हाथ पकडकर उठाती है। जिस राज्य से आतकवादी शक्ति उन्हें दूर रखती थी वह उन्ही की कौम से थी। वे उसकी प्राप्ति हेतु कटिबद्ध होकर युद्ध प्रारम्भ करते है और वीरता के गुण प्रदर्शित करते है, अत. अन्त में राज्य की बागडोर सँभाल लेते है और देश पर अधिकार जमा लेते हैं। फिर कौम के वह वश तथा कबीले जो नये राज्य के प्रारम्भिक काल में शासनप्रबन्ध से पृथक् रखे जाते थे, कुछ समय व्यतीत होने पर उस शासकवर्ग के साथ वही व्यवहार करते है जो वह अपने पूर्व के वश के साथ कर चुका है। सक्षेप में कौम के वशों में इसी प्रकार व्यवहार होता रहता है, यहाँ तक कि पूरी कौम का "असबी" उत्साह ठडा पड जाता है और समस्त वश नष्ट हो जाते है। "तुम्हारे ईश्वर के अनुसार परलोक उन्ही का है जो ईश्वर का भय करते है।"

देखना चाहिए कि अरब में आद नामक कौम का राज्य नष्ट हो जाने के कारण उनके भाई समूद ने राज्य सँभाल लिया। तदुपरान्त उनसे उनके भाई अमालका ने राज्य प्राप्त किया। तत्पश्चात् उनके भाई हमीर सिंहासनारूढ हुए। उनके उपरान्त तबाबेआ का राज्य प्रारम्भ हुआ। फिर अजवा को प्रभुत्व मिला। उनके भी बाद मुजर का शासन प्रारम्भ हुआ। यही हाल ईरानी राज्यो का हुआ। जब कयानी राज्य नष्ट हो गया तो सासानियो को प्रभुत्व प्राप्त हो गया। तदुपरान्त मुसलमानो द्वारा उनका विनाश हो गया। इसी प्रकार यूनान वालो का राज्य उनके हाथ से निकलकर रोमवालो को प्राप्त हो गया। इसी तरह मगरिब में बरबर कबीलो में से कुतामा तथा मगरावह के विनाश के उपरान्त सिनहाजा तथा मसमूदह को प्रभुत्व प्राप्त हुआ। तदुपरान्त ज़नाता की कुछ शाखाओ ने अपना राज्य प्रारम्भ किया। सक्षेप में प्रभुत्व के इस पूरे परिवर्तन काल में "असबियत" एवं वशीय मर्यादा का

हाथ रहा। जिसमें "असवियत" अधिक होती है, वही सर्वोच्च प्रभुत्व का स्वामी बन जाता है। भोग-विलास, ऐश व आराम एव समृद्धि शासन एव सल्तनत की जडे खोखली कर डालती है।

जब एक वश तथा क़बीले का राज्य समाप्त होता है तो प्रभुत्व उसी वश को प्राप्त होता है जो शासकवश की "असवियत" में साझीदार हो और जिसके अधीन सभी "असवियतें" रह चुकी हो और उसके शासन से परिचित हो। यह दशा निकटतम वशीय सम्बन्ध की स्थिति में है कि शासन एक कौम के विभिन्न वंशो में चक्कर लगाता रहता है, कारण कि "असवियत" का अन्तर वश के निकट तथा दूर के सम्बन्ध पर निर्भर है। नि सन्देह जब ससार में कोई बडी क्रान्ति हो, उदाहरणार्थ राज्य के धर्म में परिवर्तन हो जाय, अथवा ससार की आबादी बडे पैमाने पर घट जाय अथवा कोई अन्य क्रान्ति हो, तो फिर राज्य प्रथम शासकवर्ग से पूर्णत. निकल जाता है और एक दूसरी कौम जिसको ईश्वर उसके स्थान पर लाना चाहे, राज्य प्राप्त कर लेती है। इस तथ्य के प्रमाण-स्वरूप तारीखे मुज़र का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है जो कई पीढियो तथा नस्लो से बदवियत में डूबे हुए तथा सभ्यता एव सस्कृति से अपरिचित थे किन्तु इस्लाम स्वीकार करते ही उन्होने राज्यो एव सल्तनतो के तख़्ते पलट दिये और उनके हाथ से प्रभुत्व छीन लिया।

(२३) पराजित क़ौमे विजयी कौमो के आचार-व्यवहार, वेप-भूपा, धर्म-विश्वास, चरित्र, स्वभाव एव अन्य बातों का बड़ी रुचि से अनुकरण करती है

इसका कारण यह है कि यह मनुष्य की प्रकृति है कि जो कोई उस पर प्रभुत्व प्राप्त करता है वह उसकी योग्यता से प्रभावित हो जाता है। या तो अत्यधिक श्रद्धा के कारण विजयी का कोई न कोई गुण उसे प्रभावित कर लेता है और या उसको यह भ्रम होने लगता है कि विजयी का उस पर प्रभुत्व अकस्मात् नही अपितु उसकी अपार योग्यता के कारण है। जैसे ही यह विचार एव विश्वास हृदय में आरूढ़ हो जाते हैं तो पराजित विजयी को हर रग में रँगने लगता है और अपने आचरण से उसका चित्र खीचने का प्रयत्न करता है। इसी आचरण एव व्यवहार को हम प्रभुत्व कहते हैं। कभी-कभी पराजित इस भ्रम में रहता है कि विजयी के प्रभुत्व का कारण न "असवियत" है और न आतक एव शक्ति, अपितु वही स्वभाव एव आदतें, धर्म तथा विश्वास इस प्रभुत्व का कारण हैं जिन्होने उसे आकृष्ट कर लिया है। इसका साराश भी प्रथम

कारण से मिलता-जुलता है, कारण कि इस दशा में भी प्रभुत्व के रहस्य का पता लगाने में उसे भ्रम होता है। इसी भ्रम के कारण पराजित, विजयी का हर प्रकार से अनुकरण करता जाता है। वेष-भूषा, घोड़ो, अस्त्र-शस्त्र तथा जीवन की अन्य समस्याओ मे वह विजयी का अनुकरण करता है। उसकी सन्तान भी इसी प्रथा पर आचरण करती है। इसका कारण यह है कि सतान की दृष्टि में उसके पूर्वज योग्यता एव निपुणता का केन्द्र होते है।

इसी प्रकार प्रत्येक राज्य के इतिहास को अपने समक्ष रखकर यह देखना चाहिए कि किसी के अधीन प्राणी किस प्रकार अपने समकालीन शासक की वेष-भूषा एव आचार-व्यवहार का अनुकरण करते है। यहाँ तक कि शाही सेना की वर्दी की भी नकल करने लगते है। यह वात केवल प्रभुत्व एव शक्ति के कारण होती है। सदृश बनने की इच्छा का यहाँ तक प्रभाव पडता है कि जव एक कौम दूसरी कौम के समीप निवास करने लगे और उससे प्रभावित हो जाय तो वह अपनी पडोसी कौम का अनुकरण करने लगती है।

आज हमारे युग में उन्दुलुसवाले इसी कारण वेष-भूषा, चाल-ढाल, आचार-विचार, स्वभाव एव अन्य वातो में जलालका[1] के अत्यधिक सदृश है। यहाँ तक कि दीवारो, कारखानो तथा घरो में चित्रो एव बेलबूटो के बनवाने में भी उन्ही का अनुकरण करते है। गहरी दृष्टि से देखनेवालो को यह वात स्पष्ट हो जाती है कि यह सव कुछ जलालका के प्रभुत्व एव उनकी शक्ति का प्रभाव है। यही से इस कथन के तथ्य का पता लगता है कि साधारण लोग समकालीन वादशाह के धर्म का अनुकरण करते है।

इससे भी जिस तथ्य का हमने वर्णन किया, उसका पता चल जाता है कि वादशाह को क्योकि अपनी अधीनस्थ प्रजा पर प्रभुत्व प्राप्त होता है, अत. प्रजा भी उसी का अनुकरण करती है। प्रजा को इस वात पर विश्वास होता है कि उसका वादशाह पूरी योग्यता एव प्रतिष्ठा का स्वामी है, जिस प्रकार सतान को अपने पिता एव शिष्य को गुरु की योग्यता का पूर्ण विश्वास होता है।

(२४) जब कोई कौम पराजित होकर दूसरी कौम के चंगुल मे फँसती है तो शीघ्र ही नष्ट हो जाती है

इसका कारण यह है कि जब किसी कौम के अधिकार की वागडोर किसी दूसरे के हाथ में चली जाती है और वह दास वनकर दूसरो के हाथ का खिलौना एव उन

१. गेलिकियन।

पर निर्भर हो जाती है तो उसमें शिथिलता एव आलस्य उत्पन्न हो जाते है। कौम के लोग साहसहीन हो जाते है और उनकी आशाएँ मंद पड जाती है। सतान शक्ति-हीन हो जाती है और उनकी कमी होने लगती है। आवादी नित्य-प्रति घटने लगती है, कारण कि आवादी की वहुतायत, उच्च साहस एव नयी उमगो का स्रोत होती है। इससे नैसर्गिक शक्तियो में उत्तेजना उत्पन्न होती है। जव आलस्य के कारण आशाएँ ठडी पड़ जाती है और उल्लास, उत्तेजना एव सस्कृति के अन्य साधन नष्ट हो जाते है और "असवियत" अन्य लोगो का प्रभुत्व स्वीकार करने के कारण पूर्व से ही समाप्त हो जाती है तो ऐसी दशा में आवादी अनिवार्य रूप से घटने लगती है। लोगो में परिश्रम एव कर्तव्यपरायणता की भावना ठडी पड जाती है और प्रयत्न एव सघर्ष की योग्यता नही रहती। प्रतिरक्षा की उनमें शक्ति नही रह जाती और अन्य कौमो का प्रभुत्व उनके ऐश्वर्य एव वैभव को नष्ट कर देता है। वे प्रत्येक शक्तिशाली कौम से दव जाते है और प्रत्येक ताकतवर उन्हें हडप कर डालता है, चाहे वह राज्य उन्नति की चरम सीमा पर क्यो न पहुँच गया हो।

इसका एक कारण और भी है। वह इस प्रकार कि मनुष्य भूमि पर दैवी राज्य स्थापित करने के लिए उत्पन्न हुआ है और वह नैसर्गिक रूप से अधिकार सम्पन्न है। अधिकार-सम्पन्न जव अपना अधिकार खो दे और आदर-सम्मान से हाथ धो ले तो वह स्वाभाविक रूप से आलसी एव शिथिल हो जाता है। न उसे खाने की इच्छा होती है और न पीने की। मनुष्य के विपय में तो यह सत्य है ही, वन-पशुओ के स्वभाव के विपय में भी यही देखा गया है कि जव तक वे मनुष्यो की कैद में रहते है, वच्चे देना वन्द कर देते है। यही हाल पराजित कौमो का है कि सर्वप्रथम दूसरो की दासता में पहुँचकर उनकी जनसख्या में कमी होने लगती है और वे कमज़ोर पड जाती है और तत्पश्चात् नष्ट हो जाती है।

फारस की कौम पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि पहले एक समय ऐसा था जव ससार उनसे भरा पडा था। फिर जव अरवो का शासन-काल आया और उनकी "असवियत" एव उनके गौरव में कमी हुई तव भी वे थोडी-वहुत सख्या में वच गये। कहा जाता है कि जव हज़रत साद[1] ने मदाएन के उस ओर के इलाके की जन-गणना करायी तो वहाँ के निवासियो की संख्या १,३७,००० निकली। इनमें से ३७,००० घराने

१. साद विन अवी वक्क़ास।

थे, किन्तु जब वे लोग अरवो-के अधीन हुए और अरवो का प्रभुत्व उन पर जमा तो थोडे ही लोग शेष रह गये। फिर वे इस प्रकार नष्ट हो गये कि मानो थे ही नही।

यहाँ यह विचार पैदा न हो कि उनके मिटने एव नष्ट होने में अत्याचार का हाथ था, कारण कि इस्लामी राज्य तो न्याय पर आधारित थे, अपितु यह वात मनुष्य के लिए स्वाभाविक है कि कोई कौम जैसे ही अन्य लोगो के अधीन हुई और उसने दूसरो के हाथ में खेलना प्रारम्भ किया तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। हवशी कौमो पर दृष्टि डाली जाय तो पता चलेगा कि वे दासता हेतु शीघ्र तैयार हो जाती है, कारण कि उनमें मानवीय गुणों का अभाव होता है। उनका स्वभाव पशुओ से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वे लोग अपने गले में दासता की जजीर अपनी इच्छा से डलवा लेते है। वे सम्मान, धन-सम्पत्ति एव पद के लोभी होते है।

पूर्व में तुर्कों, उन्दुलुस में जलालका अथवा फिरगियो को दासता स्वीकार करने में कोई भय नही होता और आदर-सम्मान के लोभ में वे इसके लिए तैयार हो जाते है।

(२५) अरब का प्रभुत्व एवं अधिकार प्रायः खुले एवं बेरोक देशों पर होता है

अरव अपने स्वभाव के अनुसार वहशी होने के कारण प्राय लूट-मार के आदी होते है। युद्ध एव लडाई-भिडाई के खतरो में अपने प्राणो को डाले विना जब कभी भी वे किसी वस्तु पर अधिकार प्राप्त कर पाते है, लूटकर चलते बनते है और रेगिस्तान के चरागाहो में शरण लेते है। जब तक प्रतिरक्षा का अवसर न आये, ये लोग युद्ध में नही फँसते। ये लोग ऐसे स्थानो की ओर रुख नही करते है जिनकी विजय अधिक वलिदान चाहती है, अपितु ऐसे स्थानो पर अधिक छापे मारते है जो सुगमतापूर्वक उनकी लूट-मार का शिकार हो जाते है। इसी प्रकार वे कवीले तथा कौमें भी, जो पर्वतो की घाटियो में निवास करती है, उनके उत्पात से बच जाती है, कारण कि अरव उनकी विजय हेतु कठिनाइयो एव खतरो का सामना करने के लिए तैयार नही होते। किन्तु जब किसी कौम को खुले मैदानो में निवास करते देखते है अथवा किसी राज्य को शक्तिहीन पाते है तो लूट-मार कर उसको नष्ट कर डालते है। इसका कारण यह है कि उनको अधिक कठिनाइयो का सामना नही करना पडता। सक्षेप में खुले मैदानो के निवासी जब तक पूर्णरूप से उनके प्रभुत्व के अधीन न हो जायँ उस समय तक वे इसी प्रकार लुटते रहते है। फिर विभिन्न कवीलो के वशं वारी-वारी उन पर शासन तथा राज्य करते है, यहाँ तक कि उनका शासन-काल स्वय समाप्त हो जाता है।

(२६) अरब जिस राज्य पर अधिकार प्राप्त करते है, वह शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है

वास्तव में अरब एक वहशी कौम है, जिसमें वहशियो के स्वभाव इस प्रकार आरूढ हो जाते है कि वे उनकी स्वाभाविक आदत समझे जाने लगते है। यह वहशत अरबो को इस कारण अधिक पसन्द है कि इसके द्वारा उनको दूसरो की आज्ञाकारिता से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और किसी के राज्य के समक्ष वे अपना सिर नही झुकाते। उनकी यह प्रवृत्ति सभ्यता तथा सस्कृति की कट्टर विरोधी है। इसके अतिरिक्त वे इधर-उधर चलने-फिरने एव लूटमार के आदी होते है और यह आदत उन्हें शान्ति से नही बैठने देती और वे किसी स्थान को स्थायी रूप से बसाने में असमर्थ होते है। उदाहरणार्थ पत्थर की उन्हें इसी कारण आवश्यकता होती है कि वे उससे अपने चूल्हे बनायें, अत. पत्थर के लिए वे भवनो को तोड़-फोड़कर उनसे पत्थर प्राप्त कर लेते है। लकडी की आवश्यकता उन्हें इस कारण होती है कि उससे बने हुए खूंटो से अपने खेमे खडे करते है। इसी उद्देश्य से वे अच्छे-अच्छे घरो की छतें तोड़ डालते है और उनसे लकडियाँ निकाल ले जाते है। इस प्रकार उन लोगो का अस्तित्व भवनो एवं घरो के लिए जो सभ्यता एव सस्कृति हेतु परमावश्यक है, हानिकारक होता है। यह तो उनकी साधारण दशा है किन्तु वैसे भी लोगो के धन का अपहरण उनके लिए स्वाभाविक है। उन्हें अपनी जीविका बर्छो की छाया में प्राप्त होती है। फिर वे लोग धन के अपहरण के समय किसी उद्देश्य एव सीमा से सन्तुष्ट नही रहते, अपितु जिस वस्तु पर भी उनकी दृष्टि पड जाती है, वह चाहे धन-सम्पत्ति हो और चाहे अन्य प्रयोग की वस्तु, वे उन्हें लूट ले जाते है। जब उनको सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है तो लोगो के धन की रक्षा का कोई उपाय नही रह जाता। सभ्यता नष्ट होने लगती है।

इसके अतिरिक्त वे लोग कला-कौशल को कोई महत्त्व नही प्रदान करते। वे अत्यधिक परिश्रम द्वारा जो कुछ तैयार करते है उसका कोई मूल्य नही समझते। हम इस तथ्य को आगे के पृष्ठो में स्पष्ट करेंगे कि व्यवसाय एव पेशो का मूल आधार कला-कौशल है। जब कला-कौशल का अनादर होने लगता है और देश में उसका कोई मूल्य नही समझा जाता तो लोगो के हृदय में कला-कौशल का उत्साह मद पड जाता है, अपितु नष्ट हो जाता है और हाथ काम से रुक जाते है। देशवाले आतंकित हो जाते है। सभ्यता को हानि होने लगती है।

अरबो के अधीनस्थ राज्यो के विनाश का एक यह भी कारण होता है कि वे देश के शासन-प्रबन्ध की ओर कोई विशेष ध्यान नही देते। न तो वे झगडे फसाद की रोक-थाम करते है और न एक दूसरे को कष्ट पहुँचाने से रोकते है। वे इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया करते है कि किसी प्रकार लोगो की धन-सम्पत्ति का अपहरण कर लिया जाय। जब वे अपना उद्देश्य पूरा कर लेते है तो राज्यवालो की उपेक्षा करने लगते है। न उनके उद्देश्यो की देखभाल करते है और न उनको अपराध करने से रोकते है। अनेक बार वे लोगो पर जुर्माने लगाते है। इससे उन्हें केवल धन-सबधी लाभ प्राप्त करने की इच्छा रहती है और यह उनकी आय का एक साधन होता है। वे इस प्रकार अत्यधिक धन-सम्पत्ति एकत्र करना चाहते है। उनके इस व्यवहार से अत्याचार एव उत्पात तो कम नही होता अपितु फसाद की अग्नि और भी भडकती है, कारण कि इस तरह भारी-भारी जुर्मानो के कारण शासन के धन एकत्र करने की इच्छा और भी प्रबल हो जाती है। प्रजा मनमाना काम करने लगती है। यह भावना मानवीय सगठन हेतु अत्यन्त हानिकारक तथा सभ्यता के लिए विनाशक होती है। कारण कि इस बात का उल्लेख हो चुका है कि बादशाह का अस्तित्व मनुष्य की प्रकृति को देखते हुए परमावश्यक है। उसके बिना मनुष्य का अस्तित्व असम्भव है और न इससे मनुष्य के सामाजिक जीवन की ही कोई रूपरेखा बनती है।

राज्य के विनाश का एक अन्य कारण यह भी है कि उनमें अत्यन्त यथेच्छाचार पाया जाता है। वे दूसरे के राज्य को सहन नही कर सकते, यद्यपि वह पिता, भ्राता अथवा कबीले का नेता ही क्यो न हो। हाँ, कभी लज्जा एव सकोचवश दब जाते है। इसी कारण उनमें हाकिमो की सख्या अधिक होती है जो एक-एक करके आते रहते है। उनमें से प्रत्येक प्रजा को खूब निचोडता है और उन पर शासन की आकाक्षाएँ पूरी करता है। सभ्यता भी विनाश का लक्ष्य बनती है और घटने लगती है।

कहा जाता है कि एक अरब हिजाज़ से अब्दुल मलिक के पास आया। अब्दुल मलिक[1] ने अरब से हज्जाज[2] के विषय में प्रश्न किया। वह चाहता था कि अरब

१. अब्दुल मलिक बिन मरवान उमय्या वंश का पाँचवाँ खलीफा। वह ६८५ ई० से ७०५ ई० तक खलीफा रहा।

२. हज्जाज बिन यूसुफ अल-सकफी जिसे अब्दुल मलिक ने अरब तथा अरबी इराक़ का हाकिम बना दिया था। उसका आतंक एवं निष्ठुरता प्रसिद्ध है। उसकी मृत्यु ७१४ ई० में हुई।

हज्जाज की राजनीति एव उनके सुशासन की प्रशंसा करे, किन्तु उसने कहा कि "मैं उसे अकेला अत्याचार करता हुआ छोडकर आया हूँ", मानो अरव में केवल शासक ही अत्याचार करता हो तो यह उसके सुशासन का द्योतक है।

संक्षेप में जिस राज्य पर उन्होंने शासन किया तथा अधिकार प्राप्त किया तो उसकी सभ्यता की हानि हुई, देश वीरान हुआ और भूमि की दशा कुछ से कुछ हो गयी। उदाहरणार्थ जव वे यमन में पहुँचे तो यमन विनाश के घाट उतर गया। केवल थोड़े से नगरो को छोडकर इराक की भी यही दशा हुई, कारण कि पारसियो के राज्य-काल में वह वडा ही हरा-भरा था और अव उजड चुका है। इधर शाम भी वीरान है। पाँचवी शताब्दी[1] के प्रारम्भ में वनू हिलाल तथा वनू सुलैम मगरिव एव इफरीकिया की ओर पहुँचे तो ३५० वर्ष तक राज्य के लिए संघर्ष करते रहे। उन्होंने उस भूभाग को अपना वना लिया और मगरिव के खुले मैदान नष्ट हो गये, हालाँ कि इससे पूर्व सूडान एव भूमध्य सागर के मध्य का पूरा भू-भाग आवादी से भरा हुआ था। नगरो एव कसवो में जो सभ्यता नष्ट हो चुकी है उसके अवशेष एवं उजड़े हुए घरो के खंडहर अव भी भूत-काल की सभ्यता का पता दे रहे है। "ईश्वर ही भूमि तथा उस पर जो कुछ है उसका वारिस है। वही सर्वोत्कृष्ट वारिस है।"[2]

(२७) अरवो को राजनीतिक प्रभुत्व नवूअत,[3] विलायत[4] अथवा अन्य किसी वहुत वड़े धार्मिक प्रभाव के अधीन ही प्राप्त हुआ है

इसका कारण यह है कि अरव स्वाभाविक रूप से वहशी होते है। कठोरता, आत्म-सम्मान, उच्च साहस और शासन की उनमें वडी प्रवल इच्छा होती है, अत. वे लोग किसी के अधीन रहना वडी कठिनाई से पसन्द करते है। वे अपनी इच्छाओं के लिए किसी विन्दु पर वड़ी कठिनाई से रुकते है। जव नवूअत अथवा विलायत का प्रचार उनमें होता है तो इस कारण कि प्रचार करनेवाला उन्ही में से होता है, उनका अभि-मान नष्ट हो जाता है और वे सुगमतापूर्वक आज्ञाकारी वनकर संगठित हो जाते है।

१. पांचवी शताब्दी हिजरी (११ वीं शताब्दी ईसवी)।
२. कुरान शरीफ से उद्धृत।
३ नवी (ईश्वर के दूत) होने के कार्य।
४ वली (सूफी-सन्त) होने के कार्य।

धर्म स्वय उनकी कठोरता, अभिमान, ईर्ष्या एव यथेच्छाचार की भावनाओ का खडन करता है। उन लोगो में नवी अथवा वली उनको दैवी आदेशो पर दृढ रखने तथा उनके अनुचित स्वभाव एव दुराचार को मिटाकर उत्तम गुण एव चरित्र पैदा करने का अनथक प्रयत्न करते है और सत्य पर दृढ रहने के लिए उन सवको दिल से तैयार करते है। जव वे एकता एव सगठन की एक ही लडी में गुँथ जाते है तो राज्यो को विजय कर लेते है और राज्यो के शासन की वागडोर अपने हाथ में सभाल लेते है। अरब यद्यपि वडे कठोर स्वभाव के होते है किन्तु अन्य कौमो की अपेक्षा शीघ्र सत्य एव धार्मिक पथ-प्रदर्शन को स्वीकार कर लेते है। इसका कारण यह है कि उनमें दुराचार एवं व्यभिचार नही पाया जाता। स्वाभाविक रूप से वहशी, होने के कारण वे प्रकृति से निकटतम होते है और भलाई को स्वीकार करने की उनमें बड़ी योग्यता होती है। बुरी तथा अनुचित आदतें एवं अनुपयुक्त भावनाओ को स्वीकार करने से वे वडी दूर एव वहुत बड़ी सीमा तक सुरक्षित रहते है।

(२८) राजनीति के विषय में अरब समस्त कौमों से दूर एवं अपरिचित होते है

इसका कारण यह है कि समस्त कौमो की अपेक्षा अरबों में बहुत अधिक बदवियत पायी जाती है। वे सबसे अधिक दूर रेगिस्तानो में निवास करते है। हरे-भरे स्थानो के जीवन की आवश्यकताओ की उन्हें कोई चिन्ता नही होती। वे उससे दूर एव कठिन जीवन व्यतीत करने के आदी होते है। उनमें से कोई भी किसी अन्य की आज्ञाकारिता स्वीकार नही करता, कारण कि उनके स्वभाव में जो वहशत है,वह उन्हें इसी ओर प्रेरित करती है। उनका जो नाम मात्र को शेख होता है वह अधिकांश उन्ही के ऊपर निर्भर होता है, ताकि वह उनकी सहायता एव "असवियत" से अपने आपमें प्रतिरक्षा की भावना उत्पन्न करे। इसी कारण से वह उन्हें प्रोत्साहन देने एव उनके साथ कृपा एवं दया-भाव प्रदर्शित करने पर विवश होता है। वह उनको किसी प्रकार रुष्ट नही कर सकता, कारण कि उनके विरुद्ध कार्य करने से "असवियत" छिन्न-भिन्न हो जायगी और न तो वह अपनी रक्षा और न अन्य लोगो की रक्षा कर पायेगा, यद्यपि राजनीति के लिए यह आवश्यक है कि शासक कठोरता, हिंसा एवं आतक द्वारा राज्य के अधि-नियमो को देश में चलाये, क्योंकि कृपा एव नरमी से राजनीति को चलाना असम्भव है।

इसका एक अन्य कारण यह भी है कि अरब लोग, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, लोगों की धन-सम्पत्ति के अपहरण की ओर आकृष्ट होते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य एवं शासन के कर्त्तव्यो से, उदाहरणार्थ राज्य के अधिनियमो का प्रचलित कराना, लोगों की एक दूसरे के अत्याचार से रक्षा करना, वे इनसे अपरिचित होते हैं। जब वे किसी कौम पर अधिकार प्राप्त करते है तो धन की प्राप्ति ही उनका उद्देश्य होता है। वे राज्य के समस्त अधिनियमो की उपेक्षा करने लगते हैं। कभी-कभी प्रजा पर भारी आर्थिक दड लगाकर आय के साधन तैयार कर लेते है और अधिक से अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करते है। राजनीति के गुणो की उन्हें कोई चिन्ता नही होती, अपितु वे ऐसी अभिलाषाओ के वश में होते है जो राज्य को उपद्रव एव विनाश की ओर ले जाती है। अशान्ति नित्य-प्रति बढने और देश की सभ्यता विनाश की ओर अग्रसर होने लगती है। इस परिस्थिति में उनकी अधीन कौम का प्रत्येक प्राणी ऐसा उद्दड एव निर्भीक हो जाता है कि वह दूसरो पर अत्याचार प्रारम्भ कर देता है और वे एक दूसरे से झगडा किया करते हैं। ऐसी दशा में सभ्यता की किसी प्रकार कल्पना ही नही की जा सकती। वे वन-पशुओं के समान एक दूसरे को खाकर नष्ट हो जाते हैं। इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि अरब कौम का राजनीति से कोई सबध नही।

दीन एव धर्म के प्रकाश से जब अरबो के स्वभाव में क्रान्ति आती है तो उनमें राजनीति की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। धर्म उनके अत्याचार एव अन्याय को समाप्त करके प्रेम एव स्नेह उत्पन्न करता है। इस प्रकार जब अरब कौम में राज्य एव सल्तनत की नीव पड़ी और धर्म ने शरा सबधी अधिनियमो के रूप में राजनीति की समस्याओ को दृढतापूर्वक देश में प्रचलित किया और उन आदेशो को चलाया जो सभ्यता की बाह्य एव आतरिक आवश्यकताओ के लिए परमावश्यक थे. और इसी सिद्धान्त पर खिलाफतों[1] का क्रम प्रारम्भ हुआ, तो फिर अरबो के राज्य ने ज़ोर पकडा और उनके राज्य में एक गौरव उत्पन्न हो गया। इस प्रकार जब रुस्तम[2] मुसलमानो की सेना को नमाज़ हेतु पक्तियाँ जमाये देखता था तो कहता था कि "उमर मेरा कलेजा चबा रहा है, वह अरब के कुत्तो को कैसा अनुशासन सिखा रहा है।"

जब मुसलमान कबीलो ने धर्म की उपेक्षा करना प्रारम्भ कर दिया तो राज्य भी उनके हाथ से निकल गया और उन्होंने राजनीति भी भुला दी। वे पुन अपने रेगिस्तानो

१. ख़लीफाओं के राज्य।

२ क़ादिसिया के युद्ध में फारस वालो का सेनापति।

की ओर चल दिये तथा अपनी "असवियत" का समस्त गौरव भूल गये। उनमें वहशत पुन आ गयी और वे आज्ञाकारिता एव अनुशासन की भावनाओ से शून्य हो गये। अब उनमें राज्य का कोई चिह्न नही। केवल वे खलीफाओ की सतान से सबधित है। उनकी कौम वाले खिलाफत के अन्त एव राज्य तथा शासन के हाथ से निकल जाने एवं अजम[१] द्वारा परास्त हो जाने के कारण पुन रेगिस्तानो की ओर चल दिये। अब न वे राज्य के तथ्य को जानते हैं और न राजनीति के अर्थ से परिचित है, अपितु उनमें से बहुत से लोगो को यह भी ज्ञात नही कि कभी किसी समय उनका राज्य भी था, वे उस गौरव तथा वैभव के स्वामी रह चुके है जो कभी किसी कौम को विरले ही प्राप्त हुआ हो। आद, सुमूद, अमालका, हमीर, तबाबेआ, मुजर, बनी उमय्या तथा बनी अब्बाह के राज्य इस बात के प्रमाण है। किन्तु जब उन लोगो ने धर्म को भुला दिया तो वे पुन. अपनी बदवियत की ओर पलट आये, पर अब भी कभी-कभी अरब शक्तिहीन राज्यो का अपहरणकर लेते है। जैसा कि वे आजकल मगरिब पर अधिकार जमाये हैं, किन्तु इसका भी परिणाम वही दृष्टिगत होता है कि सभ्यता विनाश का शिकार हो जायगी, कारण कि जब वे राजनीति से पूर्णत अपरिचित एव शासनप्रबध के अयोग्य है तो सभ्यता किस प्रकार रह सकती है।

(२९) नगर-वासी रेगिस्तानी क़बीलों तथा समूहों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेते है

हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि रेगिस्तानो की सभ्यता, नगरो की सभ्यता को देखते हुए दोषपूर्ण एव अधूरी होती है, कारण कि सभ्यता के लिए जिन बातो की आवश्यकता होती है, वे सबकी सब उन्हें प्राप्त नही होती। उनके यहाँ तो केवल खेती का व्यवसाय होता है। कृषि के यन्त्र भी वहाँ प्राप्त नही होते, कारण कि उन्हें अधिकाश नगर के कला-कौशल में दक्ष लोग बनाते है। न उनके यहाँ बढ़ई होते है, न दरजी और न लोहार, जिनसे उनकी आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो सके। इसी प्रकार उन लोगो के पास (सिक्को के रूप में) धन भी नही होता। वे केवल सामान एव पैदावार अपने हाथ में रखते है, उदाहरणार्थ कृषि हेतु अनाज, पशु तथा उनसे प्राप्त वस्तुएँ दूध, ऊन, खाल इत्यादि, जिन्हें वे नगरवासियो के हाथ बेचकर जीवन निर्वाह करते हैं। नगरो के प्रति उनकी आवश्यकता, अनुपेक्ष्य वस्तुओ के कारण होती है और बदवियो के

१. जो अरब न हो।

प्रति नगरवासियों की आवश्यकता अनावश्यक एव सौदर्य की वस्तुओ की जरूरत के कारण होती है। जब तक बदवियो को नगरवासियो पर प्रभुत्व प्राप्त न हुआ हो, वे नगरवालो पर ही निर्भर रहते है और नगरवासी अपनी आवश्यकताओ तथा सेवाओ में उनसे कार्य लेते है। यदि नगर में कोई प्रभुत्वशाली शासक है तो वे सर्वदा उसी के आतक के नीचे दबे रहते है और उनकी आज्ञाकारिता के क्षेत्र से नही निकलते। यदि ऐसा नही तो कम से कम नगर में किसी न किसी को तो शेष नगरवालो पर प्रभुत्व प्राप्त होगा, अन्यथा सभ्यता का सगठन समाप्त हो जायगा। फिर यही शासक बदवियो को अपने अधीन रखता है और अपनी आवश्यकताओ में उनसे काम लेता है। कभी वह उनकी अनुमति तथा स्वीकृति से, तो कभी धन व्यय करके उन्हें प्रसन्न करके काम लेता है। वे धन के लोभ में उसकी सेवा में तल्लीन रहते है। फिर वे उसी धन से नगर से अपने जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करते है। कभी कभी शासक, यदि उसे बदवियो पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है, तो वह उन्हें विवश करके कार्य लेता है। कभी वह उन्हें उनके सम्बन्धियो इत्यादि से पृथक् कर देता है। जब कुछ ग्रामीण उसके अधिकार में आ जाते है तो शेप भी उसकी आज्ञाकारिता स्वीकार कर लेते है। यदि वे ऐसा न करें तो उन्हें अपने विनाश का भय होता है। यह बात उनसे सम्भव नही कि वे एक स्थान छोडकर अन्य स्थान पर बस जायँ और शासक के अत्याचार से मुक्त हो जायँ, कारण कि आसपास के समस्त स्थान बदवियो के दृढ अधिकार में रहते है। वे किसी को अपने पास नही फटकने देते, अत नि सहाय बदवियो को नगरवासियो के प्रभुत्व के अधीन रहने के अतिरिक्त कोई अन्य चारा नही होता। वे उन्ही के प्रभुत्व के अधीन अपने जीवन के दिन काटते रहते है।

अध्याय ३

वहशी वंश, शाही अधिकार, ख़िलाफ़त, शाहीपद और तत्सम्बन्धी अन्य समस्याएँ आधारभूत एवं गौण सिद्धान्त

(१) शाही अधिकार और बड़े-बड़े शाही वशों का ऐश्वर्य "असबियत" द्वारा प्राप्त होता है

हम पहले लिख चुके है कि प्रभुत्व एव अधिकार, प्रतिरक्षा तथा मुकावला "असवियत" से ही पैदा होते है। "असवियत" ही कौमो में स्नेह उत्पन्न करती है और एक दूसरे पर मर मिटना सिखाती है। यह भी सत्य ही है कि शाही अधिकार ऐसी अत्यन्त सम्मानित एव मनोरजक वस्तु है जिसमें समस्त ससार के उपकार, शारीरिक एव वैषयिक इच्छाएँ तथा इद्रिय-लोलुपता आदि समाविष्ट है। इसी कारण इन अधिकारो की प्राप्ति का मूल पारस्परिक ईर्ष्या एव द्वेष तथा एक दूसरे से होड़ आदि की भावनाएँ है। वडी कठिनाई से ही कोई इस उच्च पद को छोडने को खुशी से तैयार होगा। जव तक पूर्णरूप से विवश न हो जाय तव तक कोई भी उसे किसी प्रकार हाथ से नही जाने देना चाहता। इसमें झगड़ा फसाद होता है और प्राय युद्ध एव रक्तपात तक हो जाता है, तव जाकर कही राज्य एव प्रभुत्व प्राप्त होता है। प्रभुत्व का एक मात्र आधार "असवियत" है। "असवियत" का यह कारनामा साधारण लोगो की दृष्टि से ओझल रहता है। वे ऐसे सभी आधार भुला देते है जिनके वल पर सल्तनत एव राज्य की नीव पड़ती है। नागरिक जीवन में ही उनकी आँखें खुलती है और लगातार कई पीढ़ियो तक एक के वाद दूसरे वादशाह को राज्य प्राप्त करते हुए वे देखा करते है, अत वे उन परिस्थितियो से पूर्णत अपरिचित होते है जो राज्य के प्रारम्भिक अस्तित्व का कारण हुई थी। उन्होने केवल उन्ही शासको को देखा होता है जो अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुके होते है और सव लोग जिनके आज्ञाकारी वन चुके होते है। आदेशो के पालन मे उन्हें "असवियत" की कोई आवश्यकता नही होती। उन्हें इस वात का ज्ञान नही कि राज्य किस प्रकार प्रारम्भ हुआ और पिछले सुल्तानो ने किन कठिनाइयो को सहन करके शासन की नीव डाली। इस विषय मे उन्दुलुस वालो का उदाहरण विशेष रूप से विचारणीय है कि उन्होने "असवियत" की इस अपार महिमा को भुला दिया, कारण कि उनके राज्य की स्थापना हुए दीर्घकाल व्यतीत हो चुका था और उन्हें "असवियत" की चिन्ता तक न रह गयी थी।

(२) जब किसी शाही वंश की जड़े दृढ हो जाती है तो उसे "असबियत" की चिन्ता नही रहती

उपर्युक्त तथ्य इस वात पर आधारित है कि प्रारम्भ में अपार शक्ति के बल पर ही लोग नये राज्य के समक्ष सिर झुकाते है। क्योकि लोगो को उसका अनुभव नही होता अत. उसकी आज्ञाकारिता नयी एव विचित्र ज्ञात होती है। फिर जब एक विशेष वश में सल्तनत जम जाती है और उसमें विभिन्न सुल्तानो के सिंहासनारोहण का एक क्रम बँध जाता है, तो लोग सल्तनत का प्रारम्भिक इतिहास भूल जाते है और शासक वश का सिक्का सब पर बैठ जाता है। लोग उसकी अधीनता एव वशवदता को धार्मिक महत्त्व का स्थान दे देते है। उस वश के हित के लिए ऐसा जी-तोड युद्ध करते है मानो कोई धार्मिक जेहाद कर रहे हो। ऐसी अवस्था में उस प्रभुताशाली वश को "असबियत" की क्या आवश्यकता रह जाती है, विशेषत. जब उसकी अधीनता एव आज्ञाकारिता अल्लाह की "किताब" की एक ऐसी आज्ञा समझी जाने लगी हो, जिसमें न तो कोई परिवर्तन हो सकता है और न जिसे त्यागा जा सकता है। उसे धार्मिक विश्वास की एक कड़ी समझा जाने लगता है।

ऐसी दशा में उस प्रभुत्वशाली वश के राज्य एव शासन की रक्षा या तो उन दासो और अन्य आश्रितो के बल-बूते पर निर्भर होती है, जो सल्तनत की "असबियत" की छाया में पलते है और उसी के आश्रय में आँख खोलते है, अथवा उन लोगो की सहायता पर, जो कुल के सम्बन्ध से तो पृथक् है किन्तु जिन्हें राज्य का सम्बन्ध प्राप्त है। बनी अब्बास के युग में यही दशा रही, कारण कि अरबी "असबियत" तो मोतसिम[1] और उसके पुत्र वासिक बिल्लाह[2] के समय तक समाप्त हो चुकी थी। तदुपरान्त उन्होंने अपना राज्य अजम, तुर्क, देलम, सलजूक सरीखी अपनी आश्रित कौमो द्वारा स्थापित रखा। अन्त में अजम ही राज्य पर छा गये और राज्य अपने केन्द्र की ओर सिमटने लगा यहाँ तक कि बगदाद का क्षेत्र भी उनके उत्पात से सुरक्षित न रह सका। देलम ने उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया और समस्त इलाको को अपने अधीन कर

१. अल-मोतसिम बिल्लाह, हारूनुर्रशीद का पुत्र, जो मामून की मृत्यु के उपरान्त ८३३ ई० से ८४२ ई० तक खलीफा रहा।

२. अब्बासी खलीफा अल वासिक बिल्लाह, जो ८४२ ई० से ८४७ ई० तक खलीफा रहा।

लिया। खलीफा लोग उन्ही के अधिकार में थे। फिर भी जव देलम का प्रभुत्व समाप्त हुआ तो सलजूक राज्य में अधिकारसम्पन्न बन गये और खलीफा लोग उन्ही के अधीन रहने लगे। तदुपरान्त वे भी मैदान से हट गये और तातारियो ने राज्य पर चढाई कर दी, खलीफा की हत्या करके उसके वश को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

मगरिब में सिनहाजा की भी यही दशा हुई। लगभग पाँचवी शताब्दी[1] (हि०) में अथवा इससे कुछ पूर्व उनकी "असबियत" में दोष उत्पन्न हो गया और उनका राज्य घटने लगा। उनके क्षेत्र महदिया, बजाया, कलआ तथा इफरीकिया के सीमात के नगरो तक रह गये, अपितु इस सीमित राज्य पर भी शत्रुओ की ओर से कड़े आक्रमण होने लगे। किन्तु उनका सम्मान एव प्रभुत्व एक सीमा तक चलता रहा, यहाँ तक कि उनका भी ईश्वर के आदेश से अन्त हो गया और वे भी चल बसे। इसके उपरान्त मोहाद लोगो को मसमूदह में उनकी "असबियत" के कारण प्रभुत्व प्राप्त हुआ और सिनहाजा वश का नाम व निशान भी मिट गया।

यही दशा बनी उमय्या के उन्दुलुस के राज्य की हुई। जब उनकी अरबी "असबियत" समाप्त और अव्यवस्था व्यापक हो गयी तो प्रत्येक शासक अपने अपने स्थान पर स्वतत्र हो गया और समस्त राज्य को आपस में बाँट लिया। जो जिस भाग पर शासन कर रहा था, वह उसी का स्वामी बन गया। सक्षेप मे इनकी भी वही दशा हुई जो अजम द्वारा अब्बासियों की हुई थी। प्रत्येक ने शाही उपाधियाँ एवं ऐश्वर्य तथा वैभव का सग्रह कर लिया। चूँकि उन्दुलुस वालो में "असबियत" की तथा कौमी मर्यादा और सहानुभूति की भावनाएँ समाप्त हो चुकी थी, अत किसी ने उनके आचरण पर कान तक न हिलाये और किसी का भी लेश मात्र विरोध करने अथवा उनके कार्यों में परिवर्त्तन करने का साहस न हुआ। वे उसी वैभव से अपना राज्य चलाते रहे, जैसा कि इब्ने शरफ[2] कहता है।

शेर—उन्दुलुस के भूभाग में मोतसिम एव मोतजिद के नाम मुझे
ऐसी बात कहने पर उद्यत करते हैं जो मुझे न कहनी चाहिए।

१. ११वीं शताब्दी ईसवी।
२. मुहम्मद बिन मुहम्मद, मृत्यु ४६० हि० (१०६७–६८ ई०), किन्तु ये शेर उसके समकालीन इब्ने रशीक के हैं जिन्हें उसने इब्ने शरफ के समक्ष पढ़ा था।

अयोग्य लोगो ने शाही उपाधियाँ धारण कर ली हैं। उनका उदाहरण
ऐसा है जिससे प्रतीत होता है कि विल्ली फूलकर सिंह वनना चाहती है।

उन लोगो ने वरवर तथा जनाता कवीलो में से दासो एव ऐसे लोगो की सहायता से, जो (अफ्रीका) के समुद्रीय तट पर से उन्दुलुस पहुँच गये थे, उन पर अपना सिक्का जमाये रखने का प्रयत्न किया। इस तरह उन्होंने वनी उमय्या का उदाहरण अपने सामने रखा। उन लोगो की अरवी "असवियत" जव कमजोर हो गयी तो इब्ने आमिर[1] ने उस वश पर अधिकार जमा लिया। उनमें से प्रत्येक उन्दुलुस के किसी न किसी भाग पर शासन करता रहा। यहाँ तक कि लम्तूना के मरावेतीन अपनी अत्यन्त वल-शालिनी "असवियत" के जोर पर समुद्र पार करके पहुँचे और उनका राज्य नष्ट कर दिया। उन्होंने उस राज्य का समूलोन्मूलन कर दिया। उनके प्रतिपक्षियो में नाम मात्र को भी "असवियत" न थी अत वे उनका मुकावला न कर सके।

इस वर्णन से यही निष्कर्ष निकला कि क़ौम में राज्य की नीव "असवियत" पर ही पड़ती है। और आगे चलकर वही उसकी रक्षा करती है। अल्लामा तरतूशी ने "सिराजुल मुलूक" नामक अपने ग्रथ में लिखा है कि राज्य एवं सल्तनत की प्रतिरक्षा का भार वेतन एव वृत्ति पानेवाली सेना पर होता है। यह वात साधारण राज्यो की उस अवस्था के विषय में सत्य नही जिनकी नीव रखी जा रही हो। इस कथन का महत्त्व उसी समय के लिए है जव राज्य दृढ होकर अपनी अन्तिम अवस्था को प्राप्त हो चुका हो और देश वालो ने तत्कालीन राज्य के समक्ष सिर झुका दिया हो। ऐसे अवसर पर वेतन पानेवाली सेना के वल पर नि सन्देह राज्य चल सकता है। अल्लामा यह लिखने पर सम्भवत इस कारण विवश हुए कि उन्होंने स्वय राज्य को ऐसी शक्तिहीन दशा में देखा जव वह यौवन पार करके वार्धक्य में प्रविष्ट हो रहा था। राज्य का अस्तित्व दासों एव आश्रितो पर निर्भर था, या उन वेतन पानेवाले सैनिको पर जो राज्य की प्रतिरक्षा हेतु तैयार किये जाते थे। तरतूशी के युग में राज्य की वडी अव्यवस्थित दशा हो गयी थी और वनी उमय्या के राज्य में घुन लग गया था। वह अपनी अरवी "असवियत" खो चुका था और प्रत्येक अमीर अपने अपने स्थान पर एक स्वतत्र शासक वन चुका था। इब्ने हूद तथा उसके पुत्र मुज़फ़्फ़र सराकूसी की सहायता से राज्य

१. इब्ने अवी आमिर तथा इब्ने अव्वाद अरव कवीले थे जिन्होने स्पेन के उमय्या वंश की रक्षा की और उमय्या "असवियत" को कुछ समय तक नष्ट होने से वचाये रखा।

चल रहा था। क्योकि अरवी लोग भोग-विलास एव आराम के कुप्रभाव में आ चुके थे और ३०० वर्ष से वे समृद्धि की गोद में पल रहे थे, अत उनकी "असबियत" की भावना भी समाप्त हो चुकी थी। तरतूशी ने एक स्वतत्र शासक के राज्य-काल में आँख खोली और उसके राज्य को चारो ओर इस दृढता से फैला दिया कि उसके विरुद्ध कोई सिर न उठा सकता था। राज्य की प्रतिरक्षा का कार्य वेतन तथा वृत्ति पानेवाली सेना ही करती थी, अत उसने स्वय देखे हुए वातावरण के अनुसार उपर्युक्त सिद्धान्त वना लिया कि राज्य की रक्षा सेना से होती है। उसने राज्य की प्रारम्भिक दशा पर दृष्टि नही डाली और यह समझने का प्रयत्न नही किया कि राज्य की नीव "असबियत" पर ही पडती है। "ईश्वर जिसे देना चाहता है उसे अपना राज्य देता है।"[1]

(३) कुछ शासक वंश "असबियत" की उपेक्षा करके भी राज्य स्थापित करते है

यह इस प्रकार होता है कि एक वश अथवा कौम की "असबियत" का लोहा दूर-दूर की कौमें तथा कवीले मान लेते है और दूर-दूर के राज्यो के शासक भी उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत रहते है और उसके ऐश्वर्य तथा गौरव पर भरोसा रखते है। अव यदि उक्त "असबियत" वाला कोई प्रभावशाली व्यक्ति अपने राज्य से निकलकर उनके पास पहुँच जाता है तो उन राज्यो के शासक उसका सहर्ष स्वागत करते है और उसकी सहायता हेतु कटिबद्ध रहते है तथा उसके राज्य को दृढ़ बनाने का हृदय से प्रयत्न करते है कि किसी प्रकार वह प्रभुत्व नये सुल्तान के हाथ में आ जाय। इस सहायता के फलस्वरूप उनको नये वादशाह से वड़े-वडे पद प्राप्त होते है, वजीर एव अन्य उच्च पदाधिकारी वनने की उन्हें अभिलाषा होती है। उन्हें इस बात की आशा एवं आकाक्षा कदापि नही होती कि वे नये राज्य में हिस्सा बटायेगे और वरावर के साझेदार वनेगे। उस वादशाह की "असवियत" उन्हें हृदय से स्वीकार होती है और उसकी शक्ति का उन्हें विश्वास होता है। उसकी कौम के प्रभुत्व एवं आतक की ससार में इतनी अधिक धूम होती है कि लोग उसकी अधीनता एवं वशवदता को धार्मिक विश्वास की वस्तु समझते है और उसके विरुद्ध कोई कार्य करना वहुत बड़ा पाप समझते है। उनके मस्तिष्क मे यह वात वैठ जाती है कि इधर इन्होने उसकी आज्ञाओ का उल्लघन किया तो उधर दैवी प्रकोप उन पर टूट पड़ेगा।

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

बनू इदरीस को मग़रिबे अकसा[1] तथा उबैदीईन को इफरीकिया एव मिस्र में इसी स्थिति का सामना करना पडा। यह युग वह था जब कि अबू तालिब[2] के वशज पूर्व से भागकर मगरिब के भू-भाग में पहुंचे थे और बनी अब्बास के मुकाबले में उन्होने खिलाफत का दावा किया था। क्योकि बनी अब्द मनाफ[3] में बनी उमय्या के बाद खिलाफत एव सल्तनत साधारण रूप से बनी हाशिम[4] का अधिकार समझी जाती थी, अत इन लोगो ने अब्बासी खलीफाओ के मुकाबले में खलीफा होने का दावा किया। ये लोग अब्बासियों की राजधानी के आसपास के स्थानो को छोडकर मगरिबे अकसा की ओर जा पहुँचे और स्वतत्र राज्य का दावा करने लगे। बरबरो ने कई बार उनकी सहायता करके उनका राज्य एव शासन स्थापित कराया। अवरबा तथा मुग़ीला कबीलो ने बनू इदरीस की सहायता की। कुतामा, सिन्हाजा तथा हव्वारा उबैदीईन[5] की सहायता पर कटिबद्ध हो गये। अन्त में "असबियतो" के ज़ोर से बरबर कबीलो ने इदरीसियो तथा उबैदीईन के राज्य स्थापित करा दिये। उन्होने सर्वप्रथम अब्बासियो के अधिकार से पूरा मगरिब छीन लिया और तत्पश्चात् इफरीकिया। इसके बाद अब्बासियो का राज्य कम होने लगा और वे परेशान होने लगे। उबैदीईन का राज्य उनके विपरीत फैलने तथा बढने लगा, यहाँ तक कि मिस्र, शाम तथा हिजाज़ सब उबैदीईन के अधीन हो गये और उन्होने अब्बासियो से इस्लामी राज्य में आधा-आधा हिस्सा बाँट लिया। बरबरियो ने, जिन्होने अपने प्रयत्न से उबैदीईन का राज्य स्थापित कराया था, अपने मामले उन्ही के समक्ष प्रस्तुत करना शुरू कर दिया और उन्ही की बशवदता स्वीकार कर ली। वे वास्तव में उनके अधीन उच्च पदो की आशाएँ किया करते थे और इसी पर गर्व करते थे, कारण कि उनके हृदय एव मस्तिष्क पर बनी हाशिम के राज्य सम्बंधी अधिकार का बडा प्रभाव था और वे किसी प्रकार उनका विरोध नही कर सकते थे। यह घटना उसी प्रकार की थी जिस प्रकार इससे पूर्व मुज़र तथा

१. मोराको।

२ अबू तालिब बिन अब्दुल मुत्तलिब, मुहम्मद साहब के चाचा। हज़रत अली इन्हीं के पुत्र थे।

३. अब्द मनाफ।

४ बनी हाशिम। अरब का एक प्राचीन कबीला जो हाशिम बिन अब्द मनाफ के नाम पर चला। मुहम्मद साहब के इसी कबीले से सम्बन्धित थे।

५. फातेमी।

कुरैश का प्रभुत्व वहुत-सी कौमो ने स्वीकार कर लिया था। इस कारण उनका प्रभुत्व कई पीढियो तक चला, यहाँ तक कि अरबो का राज्य पूर्णत. समाप्त हो गया। "ईश्वर ही निर्णय करता है और कोई भी उसके निर्णय मे कोई परिवर्तन नही कर सकता।"[1]

(४) बड़े बड़े राज्यो तथा शाही अधिकारो का अभ्युदय किसी धर्म अथवा धार्मिक प्रचार (दावत) के आधार पर होता है

इसका कारण यह है कि राज्य प्रभुत्व द्वारा प्राप्त होता है और प्रभुत्व "असवियत" से उत्पन्न होता है। विभिन्न इच्छाओ का एक ही माँग पर केंद्रित हो जाना और सव लोगो का एक-सा दृष्टिकोण होना, एक ही केन्द्रीय विश्वास-बिन्दु पर उनका सगठित हो जाना दैवी सहायता के विना असम्भव है। यह दैवी सहायता सत्य-आधारित धर्म की स्थापना के सम्वध में प्राप्त होती है। ईश्वर का आदेश है—"यदि तुम पृथ्वी का पूरा खजाना भी व्यय कर डालते, तो तुम उन लोगो को सगठित न कर सकते थे।"[2]

इसका कारण यह है कि जव हृदय वासनाओ के उपभोग तथा लौकिक बातो की ओर आकृष्ट होने लगता है तो लोगो में एक दूसरे से आगे वढने की भावना उत्पन्न हो जाती है और पारस्परिक मत-भेद प्रारम्भ हो जाता है। जव ससार एवं उसकी मिथ्या वासनाओ को त्याग कर लोगो की आत्मा सत्य की ओर आकृष्ट होती है और ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने की ओर प्रवृत्त होती है, तो इन सबका उद्देश्य एक होता है। न पारस्परिक सघर्ष समाप्त हो जाते है और विरोध एव झगडो का अन्त हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की सहायता की इच्छा करने लगता है। इस प्रकार जव सव लोग सगठित हो जाते हैं तो उनका एक भव्य राज्य स्थापित हो जाता है। इसका उल्लेख आगे किया जायगा।

(५) धार्मिक प्रचार (दावत) "असबियत" की शक्ति वढा देता है

हम इस वात का उल्लेख कर चुके हैं कि धार्मिक भावनाएँ ईर्ष्या एव द्वेष की जडें काटकर लोगो को पूर्ण रूप से सत्य की ओर प्रेरित कर देती है। धर्मानुयायी अपनी किसी भी समस्या पर एक ही दृष्टि-कोण से विचार किया करते है, क्योकि सवकी इच्छाएँ एक ही प्रकार की होती हैं और सवका उद्देश्य भी एक ही होता है। उस पर वे

१. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।
२. कुरान शरीफ़ से उद्धृत।

दृढ रहते हैं। राज्य के इच्छुक, धर्मनिष्ठ लोगो से सख्या में चाहे जितने अधिक हो, उनके उद्देश्य भिन्न तथा मिथ्या बातो से पूर्ण होते हैं। वे मृत्यु के भय से एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। वे धर्मनिष्ठ लोगो का ही चाहे उनकी सख्या अधिक क्यो न हो, मुकाबला नही कर सकते। वे उनसे पीछे रह जाते हैं। इस्लाम के प्रारम्भ में अरबो की यही दशा थी, कारण कि कादिसिया एव यरमूक[1] के युद्ध मे इस्लामी सेनाओ की सख्या ३०,००० से कुछ ही अधिक थी। इसके विपरीत फारस की सेना कादिसिया के युद्ध में १, २०, ००० से कम न थी और हुरकुल की सेना वाकदी के अनुसार चार लाख थी। ये सामारिक लोग इतनी अधिक सख्या के बावजूद अरबो के आक्रमण को न रोक सके, अपितु अरबो ने उन्हें पराजित कर दिया और उनकी धन-सम्पत्ति लूट ली।

यही दशा लमतूना एवं मुवह्हेदीन के मुकाबले में मगरिब के कबीलो की थी। उनमें "असबियत" भी अधिक पायी जाती थी और वे सख्या में भी अधिक थे, किन्तु लमतूना एव मुवह्हेदीन कबीलो के धार्मिक सगठन ने उनकी कौमी "असबियत" की बडी उन्नति की थी और वे सब सत्य के लिए प्राण तक देने को उद्यत रहते थे। इसी कारण मगरिबी "असबियत" उनका मुकाबला न कर सकी और उनके आक्रमण को सहन न कर सकी। इसी तथ्य के अन्तर्गत यह भी देखना चाहिए कि जब उनका धार्मिक उत्साह एव जोश ठडा पड गया तो उनके राज्य का पतन हो गया। आजकल प्रभुत्व का आधार कौमी "असबियत" है, न कि किसी धर्म के अनुयायियो की सख्या। इस प्रकार समान "असबियत" वाले राज्य अथवा कुछ कम या अधिक "असबियत" वाली सल्तनते उन राज्यो पर अधिकार प्राप्त कर लेती हैं, जो किसी समय धार्मिक उत्साह के कारण उन पर प्रभुत्व प्राप्त किये हुए थी, भले ही वे "असबियत" में भी अधिक थी और "बदवियत" में भी।

यही दशा उस समय थी जब कि मुवह्हेदीन ज़नाता के मुकाबले में दृढ थे। ज़नाता, मसामेदा की तुलना में यद्यपि "बदवियत" में भी अधिक थे और वहशत-पसन्दी में भी, किन्तु मसामेदा के महदी के अधीनस्थ लोगो के धार्मिक उत्साह एव मज़हबी जोश

१. जोरडन की पूर्वी शाखा। यहाँ अरब सेनापति खालिद का अगस्त ६३६ ई० में शाम (सीरिया) के बादशाह हेरेकलियस अथवा हुरकुल की बहुत भारी सेना से भी भीषण युद्ध हुआ, जिसमें शाम वाले पराजित हो गये। इब्ने खलदून ने शाम एवं ईरान की जो संख्या बतायी है उसका उल्लेख तबरी एवं मसऊदी ने नहीं किया है।

से भरे होने के कारण उनकी कौमी "असवियत" वडी शक्तिशाली और ज़ोरदार हो गयी थी। इसी कारण प्रारम्भ में जब उनका "जनाता" से सघर्ष हुआ तो उन्होने उन लोगो पर अपना अधिकार जमा लिया, किन्तु जब इन्ही लोगो का धार्मिक उत्साह ठंडा हो गया और मज़हवी जोश कम हुआ तो ज़नाता ने इन्हें हड़प कर लिया। जनाता चारो ओर से उन पर टूट पड़े और राज्य उनके हाथो से छीन लिया। "ईश्वर में अपने आदेशो का पालन करा लेने की शक्ति है।"[1]

(६) धार्मिक प्रचार "असबियत" के बिना पूर्ण नही होता

इस बात का उल्लेख हो चुका है कि साधारण प्राणियो को किसी दृष्टिकोण एव उद्देश्य पर एकमत करने के लिए उभारना हो तो उसके लिए "असबियत" परमावश्यक है। हदीस में लिखा है—"ईश्वर ने कोई ऐसा पैगम्बर नही भेजा जिसे अपने अनुयायियो की सहायता न प्राप्त हो।" जब नबियो का ही, जो लोगो की आदतें वदलने में सबसे अधिक योग्यता रखते है, "असवियत" के बिना काम नही चल सकता, तो अन्य लोगो का जिक्र ही क्या ? आदतो के परिवर्त्तन के लिए उन्हें तो "असबियत" की और भी अधिक आवश्यकता है, कारण कि "असवी" सहायता के बिना वे किसी को सत्य-धर्म की ओर प्रेरित ही नही कर सकते। "इब्ने कसी[2] शेखुस् सूफिया खल उन-नालैन" नामक तसव्वुफ के ग्रथ के लेखक जब सत्यनिष्ठ प्रेरणा का प्रचार करके उन्दुलुस में महदी के प्रचार से पूर्व अपने सहायक मुरावेतून को साथ लेकर उठे तो कुछ समय तक उनका बडा ज़ोर रहा, कारण कि एक ओर तो लम्तूना मुवह् हेदीन के साथ भिड़े हुए थे और उनका पूरा ध्यान उन्ही की ओर था। दूसरे, उन्दुलस में उस समय कोई "असवियत" वाले कवीले भी न थे कि वे उनके वेग को रोकते, अत. उनका कदम जमा। किन्तु जैसे ही मुवह् हेदीन मगरिव पर छाये तो इब्नुल कसी भी अपने साथियो के साथ मुवह् हेदीन के समक्ष झुक गये और उनके प्रचार में उनके सहायक वन गये। अरकश के किले तथा उसकी सीमाओ से मुवह् हेदीन को आगे वढने का उन्होने अवसर दे दिया। इस प्रकार उन्दुलुस में मुवह् हेदीन के प्रचारक सर्वप्रथम यही मुरावेतून थे और इन्ही के विद्रोह को मुरावेतून का विद्रोह कहा जाता है।

१. कुरान शरीफ़ से उद्धृत।

२. अहमद बिन क़सी (मृत्यु ५४६ हि०/११५१ ई०)। उन्होने अपना विद्रोह ११४१ ई० के लगभग प्रारम्भ किया।

संक्षेप में जब इसी प्रकार सर्वसाधारण में दुराचार प्रचलित हो जाता है तो इबादत करनेवाले धर्मनिष्ठ, फ़क़ीह तथा आलिम, अत्याचारी अमीरों के सुधार एवं पथ-प्रदर्शन के लिए उठ खड़े होते हैं और दुष्टता एवं निंद्य कर्म को मिटाकर सदाचरण फैलाते हैं। इन प्रचारकों का केवल यही उद्देश्य होता है कि वे ईश्वर की ओर से पुण्य के पात्र बनें। उन्हें देखकर उनके बहुत से अनुयायी उठ खड़े होते हैं और प्राण हथेली पर रखकर उनके साथ हो लेते हैं। भीषण खतरों का सामना करते हैं। कुछ लोग तो मृत्यु के भी शिकार हो जाते हैं, किन्तु 'असबियत' के बिना इतने महान् कार्य का बीड़ा उठाने के कारण उन्हें उससे कोई लाभ नहीं होता, वे व्यर्थ में ही प्राण त्याग देते हैं। ईश्वर ने ऐसे खतरों में अपने प्राण डालने का आदेश नहीं दिया है, अपितु शक्ति अथवा क्षमता का बंधन निश्चित किया है। मुहम्मद साहब ने आदेश दिया है कि "यदि तुम दुराचार होते देखो तो अपने हाथ से उसको बदलने का प्रयत्न करो। यदि तुममें इतनी शक्ति न हो तो ज़बान से समझाओ। यदि यह भी न कर सको तो केवल हृदय से उसे बुरा समझो।"

बादशाहों के आचार-व्यवहार, सल्तनतों के सिद्धान्त एवं नियम ऐसी गहरी जड़ें पकड़े होते हैं कि वे उस समय तक, जब तक कोई प्रभावशाली प्रचारक न हो, हिल नहीं सकते। इस प्रचार के पीछे भी क़बीले एवं वंश की "असबियत" का होना आवश्यक है। इसी प्रकार नबियों की सत्य संबंधी पुकार में भी "असबियत" मौजूद होती है, यद्यपि उनको सत्य का विशेष समर्थन प्राप्त होता है और ईश्वर की पूरी सहायता उनके साथ होती है, किन्तु इस कारण कि ईश्वर ने संसार में प्रत्येक वस्तु का आधार आदत एवं कारण को बनाया है, अतः नबियों को भी "असबियत" से काम लेने की आवश्यकता पड़ जाती है। अब वह व्यक्ति जो "असबियत" के बिना ऐसे महान् कार्य करना चाहे तो यद्यपि वह सत्य पर ही दृढ़ क्यों न हो, विनाश के गर्त में गिर जायगा। वह व्यक्ति जो गुप्त रूप से राज्य एवं शासन का आकांक्षी हो और बाह्य रूप से धर्म तथा मज़हब का दावा करे, तो वास्तव में वह इसी योग्य है कि बाधाएँ उसे रोक लें और विनाश उसके मार्ग में रोड़ा बन जाय। कारण कि शरई राज्य एवं धार्मिक इमामत[1] दैवी आदेश एवं सहायता, सत्यता तथा मुसलमानों के प्रति निष्ठा के बिना स्थिर नहीं रह सकतीं। यह ऐसा तथ्य है जिस पर किसी बुद्धिमान् मुसलमान को कोई सन्देह हो ही नहीं सकता।

सर्वप्रथम ऐसा असंतोष एवं ऐसी हलचल बग़दाद में ख़ालिद दरयूश नामक एक

१. नेतृत्व, साधारण प्रयोग में नमाज़ पढ़ाना।

व्यक्ति ने मचायी। ताहिर ने विद्रोह कर दिया था। खलीफा की हत्या हो चुकी थी। मामून को ख़ुरासान से इराक पहुँचने में विलम्ब हुआ और उसने अली बिन मूसीरिजा को जो इमाम हुसेन के वशज थे, अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। समस्त बनी अब्बास मामून के विरोधी होकर बैअत[1] समाप्त करने पर उद्यत हो गये। उन्होने इबराहीम बिन अल महदी के हाथ पर बैअत कर ली। इस प्रकार यह ऐसे असतोष एव हलचल का युग था कि समस्त बगदाद नगर शासन के कानूनों की उपेक्षा करने लगा था। शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाली प्रजा पर नगर के गुडो, बदमाशो तथा सैनिको ने अत्याचार प्रारम्भ कर दिया। वे मार्गो में लूटमार करके धन-सम्पत्ति बाज़ारो में लाकर खुल्लमखुल्ला बेचने लगे। नगर-वासी न्याय हेतु अधिकारियो के पास जाते किन्तु वे उनकी बात भी न सुनते। ऐसी अव्यवस्थित दशा मे धर्म-निष्ठ एव सुधारक लोग अत्याचारियो की रोक टोक एव हिंसा के विनाश हेतु मैदान में निकल आये। इसी समय ख़ालिद दरयूश नामक एक सुधारक बगदाद में उठ खड़ा हुआ, जिसने परोपकार एवं सदाचार के प्रचार एव दुष्टता तथा दुराचार के विनाश का व्रत लिया। एक बहुत बड़ा समूह उसकी पताका के नीचे आकर एकत्र हो गया। उपर्युक्त सुधारक ने उपद्रवकारियो से घोर युद्ध किया और उन पर अधिकार जमाकर उन्हें बुरी तरह कुचल दिया।

ख़ालिद के उपरान्त एक अन्य व्यक्ति अबू हातिम सहल बिन सलामह असारी बगदाद के सामान्य लोगो में से उठ खडा हुआ। वह गले में कुरान लटकाकर सत्य का नारा लगाता हुआ पहुँचता था। इस प्रकार उसने लोगो को सदाचार एव उपकार की ओर प्रेरित किया और दुष्टता एव दुराचार से उन्हें बाज़ रखा। अल्लाह की पुस्तक एव मुहम्मद साहब की सुन्नत पर आचरण करने के लिए उसने उन्हें विवश किया। बनी हाशिम के तथा सम्मानित एव निम्न वर्ग के सभी लोग उसके सहायक बन गये। वह बगदाद पहुँचकर ताहिर के महल में उतरा। खज़ाने पर अधिकार जमाया और नगर मे चक्कर लगाकर उसने दुराचारियो एव बदमाशो को धमकाया। लोगो को समझाया कि वे नगर के उचक्को को अपनी रक्षा हेतु[2] कुछ न दें। ख़ालिद दरयूश ने उससे कहा कि

१ अधीनता की शपथ।

२. ख़फारा, तबरी ने इस शब्द की बड़ी स्पष्ट व्याख्या की है। वह लिखता है—ख़फ़र का यह अर्थ है कि कोई किसी उद्यान के स्वामी के पास पहुँचे और

"मै समझता हूँ, शासन का इसमें कोई दोष नही।" सहल ने उत्तर दिया,—"जो कोई भी अल्लाह की पुस्तक एव मुहम्मद साहव की सुन्नत का विरोव करेगा, मै उससे युद्ध करूँगा।" इवराहीम विन अल-महदी ने जव सहल की यह वढती हुई शक्ति देखी तो सेना को सुव्यवस्थित करके उसे दड देने हेतु भेजा। सेना ने उस पर अधिकार प्राप्त करके उसे वन्दी वना लिया। इस प्रकार उसकी पूरी शान मिट्टी में मिल गयी और वह वडी कठिनाई से भाग सका। यह घटना २०१ हि० (८१७ ई०) में घटी।

इसी प्रकार उसके उपरान्त भी वहुत से वनावटी सत्य का दावा करनेवाले उठे। उन्होंने यह न समझा कि सत्य को दृढ करने के लिए "असवियत" कितनी आवश्यक है। वे अपने दुराचार के दुष्परिणाम के विषय मे भी न सोच सके। उनके विषय में यही उचित था कि यदि वे पागल हो तो उनका उपचार किया जाय। यदि वे राज्य में विघ्न डालते हो तो उनकी मार-पीट की जाय, अथवा उन्हे मृत्युदड दिया जाय, अथवा उन्हें मसखरा समझकर उनकी ओर से उपेक्षा की जाय।

इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो फातेमी इमाम महदी आखिरुज् जमाँ के, जिनकी वे प्रतीक्षा किया करते हैं, अपने आपको प्रतिनिधि घोषित करते हुए उनके प्रचारक वन जाते हैं। कोई स्वय महदी वन वैठता है और कोई उनका प्रचारक एवं सहायक होने का दावा करता है। ये धूर्त न तो फातेमियो के तथ्य को समझते हैं न उस इमाम के विषय में, जिसकी प्रतीक्षा हो रही है। अधिकाश खवती, पागल तथा छली एव धूर्त होते हैं जो इन कुकर्मो एव इसी प्रकार के प्रचार से राज्य एव शासन, जिसकी उन्हें महत्त्वाकाक्षा होती है, प्राप्त करना चाहते है। परिस्थिति के अनुकूल न होने के कारण वे अपने उद्देश्य तक पहुँचने में असमर्थ रहते है। इसी कारण वे समस्त सम्बधो को त्याग-कर धर्म का ढोग रचते है और समझते है कि धार्मिक आवरण में वे अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेंगे। जो हानि भविष्य में होनेवाली होती है, उस तक उनकी वुद्धि नही पहुँच पाती। इसी उत्पात के कारण वे शीघ्र ही मौत के घाट उतर जाते है और अपने कुकर्मो का दड भोग लेते है।

इसी आठवी शताब्दी हि० (१४वी शताब्दी ई०) के प्रारम्भ में सूस में तुवैज़िरी नामक एक व्यक्ति सूफियो के वेष में उठा और उसने भूमध्यसागर के तट पर स्थित

उससे कहे कि "तुम्हारा उद्यान हमारी रक्षा (ख़फर) में है। मै किसी वदमाश को इसे हानि न पहुँचाने दूंगा। तुमको इतना धन प्रति मास देना होगा।"

मास्सा नामक मस्जिद में जाकर दावा किया कि "मैं फातेमी इमाम महदी हूँ जिनकी लोग प्रतीक्षा कर रहे है।" साधारण लोग भ्रम में पड़ गये। वास्तव में उस युग में लोग दुर्घटनाओ एवं कष्टो के कारण उकता तथा घवड़ा गये थे और इमाम महदी की प्रतीक्षा कर रहे थे, वे यह भी जानते थे कि इमाम महदी अपना प्रचार उसी मस्जिद से प्रारम्भ करेंगे। फलतः समस्त वरवरी कवीले उसकी सहायतार्थ एकत्र हो गये। सरदारो एव अमीरो ने जव यह दशा देखी तो खटक गये और भयभीत हो गये कि विलम्व के कारण विद्रोह हो जायगा और राज्य हाथ से निकल जायगा। उमर अस् सकसीवी, मुसमूदा के एक सरदार ने गुप्त रूप से एक आदमी को तैयार करके उस झूठे की बिछौने पर ही हत्या करा दी।

गुमारा में भी इसी आठवी शताव्दी के प्रारम्भ में अव्बास नामक एक व्यक्ति ने महदी होने का दावा किया। बहुत से कवीलो के मूर्ख लोग उसके वहकावे मे आकर उसके सहायक वन गये। उसने साहस कर वादिस नामक नगर पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। किन्तु उसके प्रचार को प्रारम्भ हुए चालीस दिन ही हुए थे कि वह भी कत्ल होकर अन्य धूर्तो के पास पहुँच गया।

संक्षेप में इतिहास द्वारा इस प्रकार के अनेक उदाहरणो का पता चलता है। वास्तव में "असवियत" के प्रभाव की उपेक्षा के कारण इसी प्रकार के कष्टो का सामना करना पडता है। वास्तव मे जो ढोग रचे एव धोखे का जाल विछाये, वह इसी योग्य है कि शीघ्र ही दंड का पात्र हो, कारण कि "पापियो के लिए यही दंड है।"[1]

(७) प्रत्येक राज्य अपने विशेष क्षेत्र मे सीमित रहता है, उसके बाहर नही बढ़ सकता

जो कौम किसी सल्तनत की नीव रखती है और उसके स्थायित्व के साधन एकत्र करती है उसको अनिवार्य रूप से विभिन्न प्रान्तो एव सीमाओ में विभाजित हो जाना पडता है, ताकि शत्रु से रक्षा के साधन और सल्तनत के आदेश उपलव्ध हो सकें। उदाहरणार्थ खराज की वसूली एव फसाद का खडन इत्यादि भली-भाँति हो सकें। जव कौम इस प्रकार विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित हो जाती है और सीमाएँ निश्चित हो जाती हैं, तो किसी-न-किसी सीमा पर पहुँचकर उस राज्य के मनुष्यो की आवादी का अन्त आ जाता है। इसी सीमा को राज्य की अंतिम सीमा तथा सल्तनत के वृत्त का राज्य

१ कुरान शरीफ से उद्धृत।

के केन्द्र से दूरतम विन्दु समझना चाहिए। अव यदि राज्य अपनी इस अन्तिम सीमा को पार करके आगे वढना चाहता है तो वह कौमी सहायको से वचित रह जाता है और पड़ोसी शत्रुओ को अपनी इच्छाओ की पूर्ति का सुअवसर मिल जाता है। सल्तनत कठिनाई में पड जाती है, कारण कि इधर शत्रु की धृष्टता में वृद्धि हो जाती है और उधर स्वय सल्तनत का आतंक एव उसका सम्मान घट जाता है।

जव कौम की संख्या इतनी अधिक हो कि विभिन्न दिशाओ एव सीमातो में विभाजित हो जाने के उपरान्त भी लोग वच रहें तो सल्तनत में इतनी शक्ति शेप रहती है कि वह अपने राज्य की सीमा को आगे वढाती चली जाय, यहाँ तक कि अपनी कौमी शक्ति के अनुपात से वह एक ऐसी सीमा पर आकर ठहर जाय जिसके आगे वह शक्ति उपलब्ध न हो। इसकी स्वाभाविक वजह यह है कि एक विशेष सीमात पर पहुँचकर राज्य का विस्तार सम्भव नही होता। "असवी" शक्ति ही राज्य मे पूर्ण रूप से विद्यमान रहती है। यह वात विशेष रूप से "असवियत" तक ही सीमित नही अपितु प्रत्येक कार्य सम्वधी शक्ति की यह विशेषता है। इस प्रकार सल्तनत अपने केन्द्रीय स्थान पर तो पूर्ण वल एव शक्ति के साथ स्थापित होती है और जैसे-जैसे वह अपने चारो ओर फैलती है उसमें कमज़ोरी आती जाती है, यहाँ तक कि अन्तिम सीमा पर पहुँचकर उसका ज़ोर पूर्णत घट जाता है। अव वह सीमान्त के उस पार नही वढ सकती। इसे एक प्रज्वलित वस्तु के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। ऐसी वस्तु की किरणें जितनी ही अपने केन्द्र से दूर होती जायँगी, मद्धिम पड़ती जायँगी, यहाँ तक कि एक सीमा पर पहुँचकर वे पूर्णत समाप्त हो जायँगी और फिर अधकार ही अधकार रहेगा। यही कारण है कि जव सल्तनत शक्तिहीन होने लगती है तो सीमात के आस-पास उसका ज़ोर घटने लगता है, यद्यपि तव तक केन्द्र सुरक्षित होता है। अन्त में वह स्वय ही शक्तिहीन होकर समाप्त हो जाता है। अथवा यो कहा जा सकता है कि राज्य का केन्द्र हृदय के समान है जो शरीर में प्राण फैलाता है। हृदय पर अधिकार प्राप्त कर लेने के उपरान्त शरीर के अग स्वय शक्तिहीन हो जाते हैं। उदाहरण-स्वरूप फारस की सल्तनत का केंद्रीय स्थान मदायन[1] था। जव मुसलमानो ने उस पर अधिकार प्राप्त कर लिया तो फारस का सम्पूर्ण राज्य स्वत नष्ट हो गया। मदायन की विजय के उपरान्त राज्य के जो भाग यज़्दजर्द के अधिकार में रह गये, वे राज्य को विनाश से न वचा सके।

१. Ctesiphon.

इसके विपरीत शाम की रूमी[1] सल्तनत के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो पता चलेगा कि जब मुसलमानो ने रूमियो से शाम छीन लिया तो वे लोग अपने राज्य के केन्द्र कुस्तुन्तुनिया में पहुँच गये और शाम के अधिकार से निकल जाने के कारण उनको अधिक हानि नही हुई। उनका राज्य चलता ही रहा, यहाँ तक कि फिर ईश्वर ने उन्हें पूर्णत नष्ट कर डाला।

यदि अरबो का ही उदाहरण सामने रखा जाय तो पता चलेगा कि इस्लाम के प्रारम्भिक काल मे वे अपनी सख्या अधिक होने के कारण अपने पड़ोसी राज्यो, शाम, इराक तथा मिस्र पर विजयी हो गये। फिर वहाँ से भी आगे बढ़कर सिन्ध, हब्श,[2] इफरीकिया तथा मगरिब को उन्होने अपने अधिकार में कर लिया। तदुपरान्त उन्दुलुस भी विजय कर लिया। इसके बाद जब उनका राज्य विभिन्न भागो में विभाजित हुआ और उन भागो की सीमाएँ निर्धारित हुईं तथा विविध राज्यवासी राज्यरक्षा की समस्या में फँसे तो विभाजन के कारण उनकी सख्या भी कम हो गयी और इससे उनकी विजयो का क्रम टूट गया। इस्लाम के आतक में अन्तर पडने लगा और उसमें अपने सीमान्त से आगे बढने की शक्ति न रही। इस प्रकार अरबो का राज्य घटते-घटते समाप्त हो गया। यही दशा बाद के आनेवाले राज्यो की हुई। सल्तनतो का स्थायित्व उनके समर्थको की अधिकता एव न्यूनता पर निर्भर हो गया। जब विभाजन के कारण कौम की जनसख्या घटी तो विजय का क्रम बन्द हो गया और प्रभुत्व भी समाप्त हो गया। ईश्वर इसी प्रकार प्राणियो से व्यवहार करता है।

(८) सल्तनत का गौरव, उसके राज्यविस्तार तथा स्थायित्व पर एव जीवन, उसके सहायकों की संख्या की अधिकता एव न्यूनता पर निर्भर होता है

इसका कारण यह है कि राज्य के स्थायित्व का आधार "असबियत" है और "असबियत" वाले ही उसके रक्षक होते है। वही राज्य की विभिन्न दिशाओ में फैलते है और उसकी जडो को दृढ बनाते है। जब सल्तनत के सहायक एवं रक्षक तथा "असबियत" वाले अधिक सख्या में होगे तो राज्य की शक्ति एवं ज़ोर अधिक होगा और उस राज्य का क्षेत्र विस्तृत हो जायगा।

१. बैज़न्टाइन।
२. अबीसीनिया।

इस्लामी सल्तनत को ही उदाहरणस्वरूप सामने रख लिया जाय। जब अरबों को ईश्वर ने इस्लाम के कारण संगठित कर दिया तो तबूक के युद्ध तक, जो मुहम्मद साहब के पवित्र जीवन-काल का अन्तिम युद्ध समझा जाता है, मुसलमान अश्वारोहियो तथा पदातियो की सख्या, जिनमें मुज़र तथा कहतान कबीले भी सम्मिलित थे, एक लाख दस हजार[1] तक पहुँच गयी थी। इसके बाद मुहम्मद साहब की मृत्यु तक जिन लोगो ने इस्लाम स्वीकार किया उन्होने इस सख्या में और भी वृद्धि कर दी। ये लोग राज्यो की विजय हेतु उठे तो कोई शक्ति इन्हें रोक न सकी और कोई बात इनके मार्ग में बाधक न हो सकी। उस युग की दो सबसे बड़ी सत्ताएँ, अर्थात् फारस एव रूम के राज्य भी उनके चरणो मे गिर पडे। तुर्को को पूर्व में, फिरग एवं बरबर को पश्चिम में तथा कूत[2] को उन्दुलुस में उन्होने विजय कर लिया। हिजाज़ के भूभाग से निकलकर वे सुदूर पश्चिम में सूसे अकसा तक पहुँच गये और यमन से बढकर सुदूर उत्तर में तुर्को को विजय कर लिया। इस प्रकार सातो इकलीमो को उन्होने अपने अधीन कर लिया। फिर सिनहाजा एव मुवह्हेदीन के इतिहास का अध्ययन कीजिए, जो उबैदीईन[3] के मुकाबले में डटे हुए थे। कुतामा जो उबैदीईन के सहायक थे, सख्या में सिनहाजा एव मसमूदा से कही अधिक थे। इसी कारण उनके राज्य को बहुत अधिक ऐश्वर्य एव गौरव प्राप्त हुआ। इफरीकिया, मगरिब, शाम, मिस्र तथा हिजाज़ उनके अधीन हो गये। फिर ज़नाता का उदाहरण सामने रखा जाय। वे सख्या में मसमूदा से भी कम थे, अत. उनका राज्य मुवह्हेदीन से भी छोटा रहा। इसी प्रकार समकालीन दो राज्यों, ज़नाता बिन मरीन तथा बनी अब्दुल वाद को यदि उदाहरणार्थ देखा जाय तो सख्याबाहुल्य तथा जनसत्ता की अधिकता का यही नियम मिलेगा कि बनी मरीन अपनी सख्या की अधिकता के कारण शक्तिशाली राज्य के स्वामी थे और उनके राज्य का क्षेत्र भी विस्तृत था और उन लोगो ने कई बार बनी अब्दुल वाद पर प्रभुत्व प्राप्त किया। कहा जाता है कि राज्य के प्रारम्भ में बनी मरीन की जनसख्या ३,००० थी और बनी अब्दुल वाद की सख्या केवल १,००० थी, किन्तु अब्दुल वाद की समृद्धि एव सहायको की सख्या ने उनकी सख्या शीघ्र बढ़ा दी।

१. अन्य सूत्रो में इससे भी कम संख्या, अर्थात् ३०,००० से १०,००० तक दी गयी है।
२. गोथ।
३. फ़ातेमियो।

प्रभुत्वशाली कौम की अपने राज्य के प्रारम्भ में जो जनसंख्या होती है, उसी के अनुसार उसकी सल्तनत वढती एव दृढ होती है और उसका जीवन-काल भी तदनुपाती होता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक वर्त्तमान वस्तु की आयु उसकी प्राकृत शक्ति पर निर्भर होती है और सल्तनत की प्रकृति "असबियत" पर निर्भर होती है। जव सल्तनत की "असबियत" शक्तिशाली होती है तो प्रकृति भी उसी प्रकार शक्तिशाली होती है और राज्य की आयु भी लम्वी होती है। अत. "असबियत" का आधार तदनुसार जन-सख्या की अधिकता एव कमी ही है।

तव इस समग्र तथ्य का रहस्य यो हुआ कि राज्य मे विघ्न सीमातो से ही उत्पन्न होता है। राज्य जितना ही अधिक विस्तृत होगा उसके सीमांत दूर-दूर पर स्थित होगे। वहाँ की अशान्ति एवं परेशानी का प्रभाव केन्द्र पर बडी देर मे पडेगा। राज्य के अधीनस्थ क्षेत्र विभिन्न एव बहु-सख्यक होते है और विभिन्न कालो में उनमें अशान्ति उत्पन्न होती रहती है। उनके दूर होने के कारण केन्द्र पर उस अशान्ति का प्रभाव देर में तथा कम पडता है। इस प्रकार राज्य की आयु वढ जाती है। उदाहरणार्थ इस्लामी राज्यो में बगदाद में बनी अव्वास तथा उन्दुलुस में बनी उमय्या का राज्य दीर्घकाल तक चलता रहा और अशान्ति एव उथल-पुथल से मुक्त रहा। चौथी शताब्दी हिजरी (१०वी शताब्दी ईसवी) के उपरान्त उनके गौरव तथा सम्मान में नि सन्देह अन्तर पडा। उवैदीईन का राज्य लगभग २८० वर्ष तथा सिनहाजा का राज्य इससे भी कम समय तक रहा। उनका राज्य मअद्द-अल-मुइज्ज़ के राज्य के ३५८ हि० (९६९ ई०) से लेकर मुवह्हेदीन के कलअह एव वोगी पर अधिकार जमा लेने (५५७ हि०/११६२ ई०) के समय तक चलता रहा। समकालीन मुवह्हेदीन का राज्य लगभग २७० वर्ष तक रहा।

सक्षेप में राज्यो की आयु उनके सहायको (की सख्या) के कारण घटती वढ़ती है। "ईश्वर ने अपने सेवको से इसी प्रकार व्यवहार किया।"[1]

(९) जिस राज्य में क़बीलो की संख्या अधिक तथा "असबियत" वालों की बहुतायत होती है, वहाँ राज्य बड़ी कठिनाई से बन पाता है

इस कथन का आधार यह है कि यत. राज्य में विभिन्न मत एव नाना प्रकार की महत्त्वाकांक्षाएँ रहती हैं और प्रत्येक मत एव महत्त्वाकांक्षा के पीछे शक्तिशाली "अस-

१. कुरान शरीफ़ से उद्धृत।

वियत" का हाथ होता है जो अन्य आकाक्षाओ की सफलता में वाधक होता है, अत. राज्य के विरुद्ध हर समय विद्रोहो का क्रम चलता रहता है। यद्यपि राज्य में भी पृथक् रूप से "असवियत" होती है, किन्तु उसके अधीनस्थ "असवियत" वाले कवीले अपने में वह शक्ति एव गौरव पाते हैं जिसके भरोसे वे नित्य प्रति राज्य से टकराते रहते हैं।

इस्लाम के अभ्युदय से लेकर अव तक मगरिव एवं इफरीकिया के देश इस तथ्य को भली-भाँति स्पष्ट कर रहे है, कारण कि वहाँ "असवियत" वाले वरवरो के कवीले आवाद हैं। इस प्रकार प्रारम्भ में इब्ने सरह[1] ने उनपर तथा फिरगियो ने मगरिव पर विजय प्राप्त कर ली, किन्तु इससे उन्हें कोई लाभ न हुआ। वे निरन्तर विद्रोह करते रहे तथा मुर्तद[2] भी होते रहे। मुसलमान लगातार उनका सहार करते रहे, किन्तु दीन (इस्लाम) का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के उपरान्त भी उन्होने विद्रोह करना एव मुर्तद होना न त्यागा। इब्ने अवी ज़ैद[3] का कथन है कि मगरिव में वरवर १२ वार मुर्तद हुए और इस्लाम मूसा विन नुसैर के राज्य के पूर्व तक दृढतापूर्वक एव स्थायी रूप से न फैल सका। इसी कारण हज़रत उमर का कथन है कि "इफरीकिया वहाँ के निवासियो के हृदय में फूट डालता है।" इस कथन का तात्पर्य यह है कि वहाँ ऐसे "असबियत" वाले कवीले आवाद है जो कभी शासन एव प्रभुत्व के समक्ष नही झुकते और आज्ञाकारिता नही स्वीकार करते। इराक एव शाम की दशा नि सन्देह ऐसी न थी क्योकि वे फारस एव रूम के अधीन थे और उनमे साधारण नगरनिवासी तथा समृद्धि के वातावरण में पले हुए ऐसे लोग वसे थे जो युद्ध से जान चुराते थे। जव मुसलमानो ने रूम एव फारस पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और राज्य उनके हाथ से छीन लिया तो राज्य सचालन में न कोई वाधा रह गयी और न कठिनाई।

अव रहा मगरिब, तो वहाँ असख्य वरवर कवीले वसे हुए थे और सव वदवी, "असबियत" वाले एवं कौमी मर्यादा के स्वामी होते थे। उनमे जव एक कवीला नष्ट हो जाता तो दूसरा उसका स्थान ले लेता और उद्दडता एव मुर्तद होने में उसी के समान उद्यत रहता था। इन्ही सघर्षो के कारण मुसलमानो को इफरीकिया एव मगरिव में अपना राज्य स्थापित करने में समय लग गया।

१. हज़रत मुहम्मद के वाद तीसरे खलीफा द्वारा नियुक्त मिस्र का हाकिम, जिसने ६४७ ई० के थोड़े दिनो वाद त्रिपोलितनिया को विजय करने का प्रयत्न किया।
२. जो इस्लाम स्वीकार करने के उपरान्त उसे त्याग दे।
३. अब्दुल्लाह विन अवी जैद (जन्म ३१६ हि०।९२८ ई०, मृत्यु ३८६ हि०।९९६ ई०), इब्ने खलदून ने उसके ग्रंथो के हवाले अनेक स्थानों पर दिये है।

इससे पूर्व वनी इसराईल के युग में शाम की भी यही दशा थी। उसमें फलस्तीन तथा कनआन के कवीले, वनी इस्व, वनी मिदयान, बनी लूत, आरमीनी[१] अमालका, गिर्गशाई तथा नवत इत्यादि जजीरे एव मूसल तक भरे पडे थे और सब पृथक् वैभव एव "असवियत" के स्वामी थे। इस कारण वनी इसराईल को वहाँ अपना राज्य स्थापित करने में अत्यधिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा। कभी उनके पाँव डगमगाते और कभी जम जाते थे। यहाँ तक कि उनमें आपस में विरोध एव मतभेद उत्पन्न हो गया था। उन्होने अपने वादशाहो का विरोध करके उन पर चढाई की। सक्षेप में वे अपने पूरे राज्यकाल में कभी भी शान्ति से राज्य न कर सके। अन्त में फारस ने उन पर अधिकार जमा लिया, तदुपरान्त यूनान एवं रूम ने। अन्त में वे वैतुल मुकद्दस से निर्वासित कर दिये गये।

इसके विपरीत वह स्थान जहाँ "असवियत" पायी ही न जाती हो, वहाँ राज्य शीघ्र स्थापित हो जाता है और अशान्ति एवं गडवडी की कमी के कारण राज्य के नियमो का सुगमतापूर्वक पालन होने लगता है। इसी कारण समकालीन राज्य को भी अधिक "असवियत" की आवश्यकता नही पडती, जैसा कि मिस्र एव शाम की इस समय दशा है कि वे "असवियत" वाले कवीलो से पूर्णतः शून्य हैं। मिस्र देश विद्रोह एवं उपद्रव के अभाव के कारण वड़ी शान्ति एव आराम से जीवन व्यतीत कर रहा है। "असबियत" वाले ही शासक हैं और वही प्रजा। वहाँ तुर्को की सल्तनत है और तुर्की कवीले ही समय-समय पर राज्य सँभालते रहते हैं। वगदाद के अब्वासी खलीफाओ का नाम-मात्र को खुत्वा पढा जाता है।

उन्दुलुस की भी इस समय ऐसी ही दशा है। इब्नुल अहमर[१] का उस पर राज्य है। प्रारम्भ से ही उनके राज्य में न कोई वल था और न कोई वैभव। केवल अमय्या राज्य का वचा हुआ एक "असवियत" वाला वश रह गया था, जिसको उन्दुलुस पर प्रभुत्व प्राप्त हुआ। इस प्रकार जव उन्दुलुस में अरवी राज्य ने दम तोडा तथा वरवर में से लम्तूना एवं मुवहहेदीन उन्दुलुस के शासक हुए तो कुछ ही दिनो में उनका राज्य डगमगाने लगा और सल्तनत का सँभलना कठिन हो गया। लोग उनके घोर शत्रु हो गये। अन्त में मुवहहेदीन ने अपने राज्यकाल के अन्त में मराकश नगर की रक्षा हेतु अनेक किले विद्रोहियो को सौप दिये। शासन की यह दशा देखकर कुछ कवीले, जो नगर के जीवन एव सभ्यता से वहुत वड़ी सीमा तक शून्य थे और "असवियत" की

१ ग़रनाता का नासिरी वंश।

भावनाएँ जिनमें मौजूद थी, शासन के विरुद्ध उठ खड़े हुए और उन्होने विद्रोह की आवाज़ वुलन्द कर दी। उदाहरणार्थ इब्ने हूद[1], इब्नुल अहमर[2], इब्ने मर्दनीश[3] तथ उन सरीखे अन्य लोग राज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। इब्ने हूद ने पूर्व में अब्बासी ख़िलाफत का आंदोलन चलाया और लोगो को मुवह्हेदीन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उभारा। इस प्रकार समस्त देश में क्राति फैल गयी और उसने मुवह्हेदीन को निकाल दिया। इस प्रकार इब्ने हूद उन्दुलस के राज्य का विधिपूर्वक शासक वन गया।

तदुपरान्त इब्ने अहमर ने प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न किया और इब्ने हूद के प्रचार के विरुद्ध विद्रोह की पताका ऊँची की। मुवह्हेदीन में से इफरीकिया के इब्ने अवी हफ़स ने अपने नाम पर प्रचार प्रारम्भ कर दिया। अन्त में उन्होने अपने सम्ब-धियो के एक छोटे से समूह की सहायता से, जिनको "रऊना" (नेता) कहा करते थे, उन्दुलुस के राज्य पर अधिकार जमा लिया। उन्दुलुस वालो में "असवियत" की भाव-नाएँ ठडी पड जाने के कारण, इब्ने अहमर को प्रभुत्व की प्राप्ति में अधिक सहायता एवं "असवियत" की आवश्यकता न पडी। तदुपरान्त उसने ज़नाता के उन लोगो की सहायता से, जो समुद्र के मार्ग से उन्दुलुस में, वस गये थे, विद्रोहियो का भली-भाँति दमन किया और ये लोग भी उसके पक्षपाती वनकर प्रसन्नतापूर्वक युद्ध हेतु तैयार हो गये।

इसके उपरान्त ज़नाता के शासको में से मगरिव के हाकिम के हृदय में उन्दुलुस पर अधिकार जमाने की इच्छा हुई। उस समय भी यही ज़नाता के कवीले इब्ने अहमर के लिए ढाल वने, यहाँ तक कि इब्ने अहमर के राज्य की नीव दृढ हो गयी। लोग उनके शासन के आदी हो गये और राज्य पर अधिकार जमाने का किसी ने साहस न किया। इसी प्रकार इब्ने अहमर का राज्य एक पीढी से दूसरी पीढी होता हुआ अव तक चला आ रहा है। इससे निष्कर्ष यही निकला कि इब्ने अहमर का प्रभुत्व "असवियत" के विना स्थापित न रह सका। प्रारम्भ में उसे "असवियत" एव सहायता कम प्राप्त थी किन्तु उन्दुलुस पर अधिकार जमाने के लिए उतनी ही पर्याप्त थी, कारण कि उन्दुलुस स्वय "असवियत" वाले कवीलो से शून्य था, फिर उस पर अधिकार जमाने के लिए

१. सरगोसा के।
२. गरनाता के।
३ वलेनशिया एवं मुराशिया के।

अधिक "असवियत" की आवश्यकता ही क्या थी। "ईश्वर को ससारो की आवश्यकता नही।"[1]

(१०) बादशाह स्वाभाविक रूप से अपने आप को श्रेष्ठता का एक मात्र स्रोत समझता है

हम इस बात का उल्लेख कर चुके है कि राज्य "असवियत" के कारण स्थापित होता है और वह "असवियत" कुछ "असवियतो" से मिलकर पैदा होता है, जिनमें एक सबसे अधिक शक्तिशाली एव ज़ोरदार होती है और उसे सभी पर प्रभुत्व प्राप्त रहता है, यहाँ तक कि समस्त "असवियतें" उस एक "असबियत" में लुप्त हो जाती हैं। फिर इसी "असवियत" द्वारा ससार की कौमो को अपने अधीन किया जाता है और सामाजिक सस्थाओ और मनुष्यो एवं वशो के मुकाबले में श्रेष्ठता की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। इस तथ्य का रहस्य यह है कि साधारण "असवियत" कबीले के लिए ऐसी ही है जैसी कि किसी वस्तु के लिए उसकी प्रकृति। प्रकृति का स्थायित्व तत्त्वो से है। यह सिद्धान्त निर्विवाद है कि तत्त्व के एक निर्धारित मात्रा में मिश्रण से प्रकृति को स्थायित्व नही प्राप्त हो सकता। उसके लिए यह आवश्यक है कि एक तत्त्व को सभी तत्त्वो पर प्रभुत्व प्राप्त हो और उसी से सबका मिश्रण हो। उसी प्रकार समस्त "असबियतो" में एक ही "असवियत" के प्रभुत्व से राज्य को अस्तित्व प्राप्त होता है। यह प्रभुत्वशाली "असवियत" किसी सम्मानित एव श्रेष्ठ वश को प्राप्त होती है। इस घराने में भी एक नेता एव सरदार का होना परमावश्यक है जो अपनी "असवियत" के अन्य लोगो पर ही प्रभुत्व न रखता हो, बल्कि अन्य "असवियतो" पर भी उसका उतना ही प्रभुत्व हो, कारण कि उसके वश एव घराने को समस्त घरानो पर श्रेष्ठता प्राप्त होती है। इसी प्रकार जब उस नेता को सर्वसाधारण पर प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है तो वह पाशविक स्वभाव के कारण अपने समान किसी अन्य के न होने का नारा लगाता है। अपने आदेश एव मत को वह किसी अन्य के आदेश या मत के समान नही समझता, अपितु अपने आपको अनुपम समझता है। यह भावना मनुष्य में स्वाभाविक रूप से पायी जाती है और ससार की राजनीति के लिए यह आवश्यक भी है, कारण कि यदि इसी प्रकृति के कुछ शासक एक हो जायँ तो ससार की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाय, राजनीति में विघ्न पड़ जाय और विद्रोह एव अशान्ति फैल जाय। ईश्वर ने कहा है—"यदि (एक)

१ कुरान शरीफ से उद्धृत।

ईश्वर के अतिरिक्त भूमि अथवा आकाश में अन्य ईश्वर होते तो वे छिन्न-भिन्न हो जाते।"

ऐसी दशा में समस्त "असबियतों" का गौरव समाप्त हो जाता। किसी में इतनी शक्ति न रहती कि राज्य एव शासन में शासक तथा बादशाह की बराबरी का दावा कर सकता,मानो समस्त असबियतो का प्रभाव समाप्त हो गया हो। इन परिस्थितियो में सब लोग समकालीन बादशाह का ही गुण-गान करने लगते हैं। समस्त गौरव, श्रेष्ठता एवं वैभव का वही पात्र होता है। अन्य लोग इससे वचित दिखाई पड़ने लगते हैं। अद्वितीय होने का यह सम्मान पूर्ण रूप से सुल्तानो को ही प्राप्त होता है। अन्य लोगो को तो अपनी अपनी श्रेणी के अनुसार ही हासिल होता है। सक्षेप में सल्तनतो पर उपर्युक्त कथन पूर्ण रूप से लागू होता है। "ईश्वर इसी प्रकार मनुष्यो से व्यवहार करता है।"

(११) जब किसी कौम के हाथ राज्य आ जाता है तो उसके साथ साथ भोग-विलास का आविर्भाव भी स्वाभाविक होता है

इस कथन का तात्पर्य यह है कि कोई कौम किसी राज्य पर जब प्रभुत्व प्राप्त करती है तो उस देश वालो की धन-सम्पत्ति भी उसके अधिकार में आ जाती है तथा इस धन-सम्पत्ति की प्राप्ति से विजयी कौम के भोग-विलास के जीवन में वृद्धि हो जाती है। उसका ऐश व आराम बहुत बढ जाता है। पग-पग पर नाज़ व नखरो का प्रदर्शन होने लगता है। स्वभाव कुछ के कुछ हो जाते हैं। सक्षेप में जीवन की आवश्यक वस्तुओ के अतिरिक्त भोग-विलास एव ऐश व आराम सम्बधी चीज़ो की इच्छा होने लगती है। वे अपने पिछले लोगो के पद-चिह्नो पर चलने लगते हैं। अपने स्वभाव तथा दैनिक जीवन में वे लोग भोग-विलास के इतने आदी हो जाते हैं कि वे उन वस्तुओ को अपने दैनिक जीवन हेतु परमावश्यक समझने लगते हैं। उन चीज़ो के बिना उनका काम ही नही चलता। भोजन-वस्त्र, फर्श, बर्तन इत्यादि के प्रयोग में लोग एक-दूसरे के प्रति-स्पर्धी बनने का प्रयत्न करने लगते है। वे इन चीज़ो के प्रयोग के सम्बन्ध में अन्य कौम वालो से अपनी तुलना करके गर्व अनुभव करते है। उत्तम भोजन, वस्त्र तथा सवारियो के प्रयोग में वे अपने आपको सबसे ऊँचा समझते हैं। उनके बाद में आनेवाले तो उन्ही के पद-चिह्नों पर चलते हैं और अपने-अपने सम्मान एवं स्थिति को देखते हुए भोग-विलास में अग्रसर होते जाते हैं और जब तक उनके राज्य का अन्त नही होता तब तक यही दशा रहती है। इस प्रकार जब राज्य अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो भोग-विलास भी उच्च श्रेणी का ही होता है और आदतो में भी अत्यधिक अहकार उत्पन्न हो जाता है।

(१२) युद्ध विजय के उपरान्त आराम-चैन, शान्ति तथा समृद्धि के युग मे प्रवेश करना राज्यों के लिए एक स्वाभाविक बात है

इसका कारण यह है कि कौमें अपनी इच्छा के आधार पर ही राज्य प्राप्त करती है और इस इच्छा का अन्तिम उद्देश्य प्रभुत्व होता है। जब कौम को प्रभुत्व प्राप्त होता है तो उसके प्रयत्न के कदम रुक जाते हैं। वह साँस लेती है। किसी कवि ने कहा है—

शेर—मैंने काल के सघर्ष पर, जो मेरे तथा उसके मध्य में हो रहा है,
आश्चर्य किया। जब हमारे मध्य में कुछ शान्ति हुई तो युग भी ठहर गया।

कौम को जब राज्य प्राप्त हो जाता है तो वह उस उद्योग, सघर्ष एव परिश्रम को त्याग देती है जो राज्य की प्राप्ति के लिए किया करती थी। अब वह सुख-शान्ति एव आराम और चैन की अभिलाषी हो जाती है। वह उन वस्तुओ के सकलन में व्यस्त हो जाती है जो राज्य का वास्तविक फल है, अर्थात् भवन, निवास-स्थान इत्यादि। तब लोग भव्य राज-प्रासादो एव महलो का, निर्माण कराने लगते हैं। सुन्दर नहरें निकालते हैं, रमणीक उद्यान लगवाते है। सक्षेप में सासारिक आनन्दो का वे जी भरकर मज़ा लेते हैं। आराम को कष्ट की तुलना मे अधिक पसन्द करते हैं। वस्त्र, भोजन, बरतन, फर्श इत्यादि में अमीराना चोचले करते हैं और इसी के आदी हो जाते है। फिर उनके बाद में आनेवाले इन्ही बातो को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझकर हृदय से इन्हें पसन्द करते हैं। इस प्रकार यह भोग-विलास तथा आराम और चैन कौमो में कई कई पीढियो तक चलता रहता है, यहाँ तक कि एक दिन राज्य के समाप्त होने पर कौम का यह सब ठाट-बाट भी समाप्त हो जाता है।

(१३) जब सल्तनत श्रेष्ठता, भोग-विलास, चैन और आराम की चरम सीमा तक पहुँच जाती है तो वह पतन की ओर बढने लगती है और उसकी युवावस्था समाप्त होकर वृद्धावस्था के चिह्न दृष्टिगत होने लगते हैं

इसके कई प्रमाण हैं।

पहली बात यह कि सल्तनत की कमज़ोरी एवं शक्तिहीनता का कारण व्यक्तिगत राज्य होता है, कारण कि जब श्रेष्ठता "असबियत" वाली कौमो के प्राणियो में समान

रूप से होती है तो लोग मिल-जुलकर राज्य की उन्नति एवं उसके स्थायित्व के लिए प्रयत्न करते हैं। सब एक-जी और एक-जान होकर दूसरो पर प्रभुत्व प्राप्त करते हैं और राज्य पर आनेवाले खतरो को टालते रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने राज्य के विस्तार एव प्रभुत्व को अपने सम्मान, समृद्धि एवं शक्ति का साधन समझता है। सक्षेप में पूरी कौम अपने राज्य के स्थायित्व हेतु जान पर खेलने को उद्यत हो जाती है और अपने विनाश को राज्य के पतन पर प्राथमिकता प्रदान करती है। इसके विपरीत यदि गौरव एव श्रेष्ठता का केंद्र केवल एक ही व्यक्ति हो तो वह सब की "असवियत" को कुचलकर उनको स्वतत्रता से वचित कर देता है, दान-पुण्य, परोपकार द्वारा अन्य लोगो को सम्मानित करता है और कौम शिथिल होकर युद्ध त्याग देती है। उसका उत्साह ठडा पड जाता है और अपमान, निरादर एवं दासता की उसमें आदतें प्रविष्ट हो जाती हैं। फिर वह सतान जो उन्ही की गोद में पलती है, वह शाही इनामो को देश की रक्षा एव सहायता का बदला अथवा पारिश्रमिक समझती है। इसके अतिरिक्त उसके मस्तिष्क में कोई बात नही आती। कौम का कोई व्यक्ति राज्य की रक्षा हेतु प्राणो के बलिदान के लिए तैयार नही होता। इस दशा में राज्य में कमजोरी आ जाती है। उसका गौरव घटने लगता है। देश वालो की वीरता की भावनाओ के समाप्त हो जाने के कारण "असवियत" में भी विघ्न आ जाता है और राज्य नित्य-प्रति पतन की ओर बढने लगता है।

राज्य के कमजोर हो जाने का दूसरा कारण यह है कि किसी देश पर अधिकार प्राप्त कर लेने के उपरान्त, जैसा कि हम अभी उल्लेख कर चुके हैं, स्वाभाविक रूप से देशवासियो की आदतें बिगड़ जाती है। उनके व्यय में वृद्धि हो जाती है। उनकी आय, व्यय के लिए पर्याप्त नही होती। फकीर एव दरिद्र लोग नष्ट हो जाते हैं। समृद्ध एव विलासी लोग अपनी आय से अधिक अपव्यय करने लगते हैं। बाद में आनेवाली सतानें भी उन्ही का अनुकरण करती हैं। वे अपनी आय से भोग-विलास का जीवन नही व्यतीत कर सकती। साथ ही अपनी बिगड़ी हुई आदतो को निभा भी नही पाती। उनकी आवश्यकताएँ सर्वदा उन्हें कष्ट दिया करती हैं। उधर सुल्तान एवं मलिक वेतन एव इनामो को युद्ध की सेवाओ पर व्यय करने की माँग करते हैं। उनके पास इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता। वे कठोर एव भारी जुर्माने करके लोगो के हाथ से धन छीनते हैं और उसे अपनी वैयक्तिक इच्छाओ पर व्यय करते हैं अथवा अपने राज्य के उच्च पदाधिकारियो तथा अपनी सतान को इनाम के रूप में बाँट देते हैं। इस प्रकार प्रजा दरिद्र तथा कंगाल हो जाती है। उसमें अपनी दशा सँभालने

की शक्ति नही रहती। जब प्रजा की आर्थिक दशा कमज़ोर पड जाती है तो बादशाह की भी आर्थिक दशा डाँवाडोल हो जाती है।

इसके अतिरिक्त जब राज्य में भोग-विलास का जोर हो जाता है और लोगो की आवश्यकताएँ उनके वेतन एव उनकी वृत्तियो से पूरी नही हो पाती और उनके खर्च नही चल पाते, तो समकालीन बादशाह को विवश होकर उनके वेतन में वृद्धि करनी पडती है, ताकि वे अपनी आय एवं व्यय के अन्तर को दूर कर सकें और आय की न्यूनता का निराकरण कर सकें। उधर खराज[1] एव राज्य की आय सीमित एव निर्धारित होती है। उसके घटने-बढने का कोई उपाय नही हो पाता। यदि कर इत्यादि लगाकर राज्य की आय में कुछ वृद्धि कर ली जाय, फिर भी तो वह सीमित ही रहेगी। जब राज्य की आय को वेतन में बाँटा जाने लगे और प्रत्येक व्यक्ति के विलासमय जीवन को दृष्टि में रखते हुए उसके बढते हुए व्यय के अनुसार उसके वेतन एव इनाम मे वृद्धि की जाय तो फिर सेना की सख्या अनिवार्य रूप से इस आशय से घटानी पडेगी कि राज्य की आय वेतनो के लिए पूरी हो सके। इसके साथ-साथ यह भी सच है कि भोग-विलास किसी विशेप सीमा पर आकर नही रुक जाता। जब भोग-विलास बढेगा तो वेतन मे और अधिक वृद्धि का प्रश्न उठेगा। जब वृद्धि का प्रश्न आयेगा तो सेना के कम करने का प्रश्न भी सामने आयेगा। इस प्रकार सेना को बार-बार कम करना पडेगा। राज्य की शक्ति नष्ट हो जायगी। पडोस के राज्य उसको हडप कर लेने का साहस करने लगेगे तथा अधीनस्थ कबीले एव "असबियतें" भी राज्य पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करने लगेगी, यहाँ तक कि वह राज्य, यदि ईश्वर का ऐसा ही आदेश हुआ तो नष्ट हो जायगा।

इसके अतिरिक्त विलासप्रियता मनुष्य का चरित्र नष्ट कर डालती है, क्योकि उसके कारण मनुष्य में नाना प्रकार के दोष, त्रुटियाँ एव अनुचित आदते उत्पन्न हो जाती हैं। इसका सविस्तर उल्लेख हम शहरी सस्कृति के अध्याय में करेंगे। जब बदवियो की दशा उन्नत होती है तो उपकार एव परोपकार, जिनके कारण राज्य प्राप्त होता है और स्थायी बनता है, देश से नष्ट हो जाते हैं। लोगो में दुष्टता एव उद्दंडता की भावनाएँ ज़ोर पकड लेती हैं। यही देश के विनाश का सबसे बड़ा चिह्न है। उस दशा में सल्तनत विनाश के मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। उसके कार्य में बाधाएँ आने लगती

१. राजस्व, विशेष रूप से भूमिकर।

है और वह युवावस्था से निकलकर वृद्धावस्था में प्रविष्ट हो जाती है, यहाँ तक कि एक निश्चित समय पर वह पूर्णत समाप्त भी हो जाती है।

तीसरा प्रमाण यह है कि राज्य एव सल्तनत की प्राप्ति स्वाभाविक रूप से जनता में आलस्य को जन्म देती है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि जव शासक क़ौम आलस्य, आरामतलवी एव सुख-शान्ति की इच्छुक और अभ्यस्त हो जाती है तो ये सव वातें अन्य आदतो के समान उसके स्वभाव का अग वन जाती है और उस राज्य के लोग उन्ही के दास हो जाते हैं। अव भावी सतानें उसी आराम, चैन, आलस्य में तथा भोग-विलास में पल और वढकर उन वहशी आदतो एवं वदवी स्वभावो को एकदम भुला देती हैं जिनके कारण कभी उनके पूर्वजो ने राज्य एवं मुकुट प्राप्त किया था। अर्थात् वीरता, पौरुप, खूँख्वारी, कठोरता, जगलो में मारे मारे फिरने का स्वभाव तथा इसी प्रकार के अन्य गुण उनमें से पूर्णत. निकल जाते हैं, यानी शासकवर्ग एव सावारण नगरवासी में आज्ञापालन तथा कौमी पोशाक के अतिरिक्त अन्य कोई अन्तर शेप नही रहता। इस प्रकार उनकी कौमी सहानुभूति कमजोर पड़ जाती है। उनके पौरुप का दवदवा फीका पड़ जाता है। उनका गौरव कम होने लगता है। अव इन सवका परिणाम राज्य को स्वय भोगना पड़ता है। वह एक वृद्ध के समान जीवन यापन करने लायक भर रह जाता है। सक्षेप में, विजयी कौम के लोग इसी प्रकार भोग-विलास तथा सुख-शान्ति के जीवन के विभिन्न रूपो में ग्रस्त रहते और इसी वातावरण में डूवकर परिश्रम, वदवी तत्परता एव कठोरता से दूर हटते जाते हैं। वीरता की उन भावनाओ को पूर्णत. भुला देते हैं जिनसे प्रतिरक्षा एव एक-दूसरे की सहायता की भावना का जन्म होता है। वे अन्य "असवियत" एवं अन्य भावनाओ में पलने लगते हैं। यदि ससार के इतिहास का अध्ययन किया जाय तो इस प्रकार के उदाहरण अनेक राज्यो के इतिहास में मिलेंगे और यह तथ्य नि सन्देह तर्कपूर्ण प्रमाणित होगा।

कभी-कभी जव प्रभुत्व वाली क़ौमें आलस्य एवं आराम में पड़कर स्वय प्रतिरक्षा एव वचाव करने में विवश हो जाती हैं तो वे अपने अतिरिक्त किसी अन्य कौम को, जो परिश्रम एव कठिन कार्य करने की अभ्यस्त होती है, अपना सहायक एव सहानुभवी वना लेती हैं। उस कौम वालो की एक सेना वनती है। वे सैनिक युद्ध-प्रिय होते हैं और भूख-प्यास एव अन्य कठिनाइयो के झेलने में पक्के होते हैं। यह उपाय राज्य की शक्तिहीनता दूर करने का एक साधन होता है और उसे उस समय तक नष्ट होने से वचाये रखता है जो ईश्वर ने उस राज्य के विनाश हेतु निश्चित किया है। उदाहरणार्थ पूर्व के देशो में तुर्क सुल्तानो ने देश में आनेवाले दासो को सेना में भर्ती किया, अश्वारोही

भी रखे तथा पदाति भी, क्योकि ये लोग नि सकोच युद्ध किया करते थे और प्राचीन ममलूको[1] की सतानो से अधिक कठोर एव सहनशील होते थे। वे ममलूक भोग-विलास एव शाही आश्रय में पले होते थे। इफरीकिया में मुवह्हेदीन सुल्तानो ने भी इसी नियम का पालन किया। उनके बादशाह अपनी सेना में प्राय. ज़नाता एव अरब कौमो के लोगो को भर्ती करते थे और सेना में उन्ही की सख्या बढ़ाते थे। वे अपने उन देश-वासियो को, जो भोग-विलास में पलते थे और आलस्यमय जीवन के आदी हो चुके थे, सैनिक सेवाओ से पूर्णत. दूर रखते थे। इसी कारण उनके राज्य शक्तिहीनता एव कमजोरी से दूर रहकर नयी स्फूर्ति एवं रौनक प्राप्त करते रहते थे। उनकी आबादियो में नित्यप्रति उन्नति होती रहती थी।

(१७) मनुष्यों के समान राज्यों की भी स्वाभाविक अवस्थाएँ होती हैं

चिकित्सको एव ज्योतिषियो के मतानुसार मनुष्यो की स्वाभाविक आयु चान्द्र गणनानुसार १२० वर्ष की है। एक ही पीढी में विभिन्न परिस्थितियो में यह अबाध गति से घटती बढती रहती है। कुछ जातियो में वह पूरे १०० वर्ष की होती है और कुछ में ५०–६० अथवा ७० वर्ष तक, यानी करनो[2] के अनुसार जो भी आयु निर्धारित हो। मुहम्मद साहब के अनुयायियो की आयु ६०–७० वर्ष के मध्य मानी गयी है। हदीस में यही बात स्पष्ट की गयी है। अब बहुत कम और विरले ही लोगो की आयु किसी विशेष नक्षत्र के प्रभाव के कारण १०० या १२० वर्ष तक पहुँचती है। उदाहरणार्थ हज़रत नूह की अथवा आद एव समूद कौमो के कुछ अन्य व्यक्तियो की आयु पेश की जा सकती है।

सल्तनतो की अवस्थाएँ यद्यपि क़रनो के अनुसार ही घटती बढ़ती रहती है, किन्तु अधिकाश सल्तनतो का स्थायित्व तीन करनो से अधिक नही होता। एक क़रन एक मनुष्य की औसत अवस्था के बराबर होता है, जो ४० वर्ष की होती है। वहाँ पहुँचकर मनुष्य का बढना बन्द हो जाता है। ईश्वर ने कहा है—"जब तक वह वयस्क नही हो जाता अथवा ४० वर्ष की अवस्था को नही प्राप्त होता......।"[3] इसी तथ्य के आधार पर हमने एक पीढ़ी अथवा एक करन को ४० वर्ष के बराबर बताया है और इसी सिद्धान्त

१. श्वेत दासों।
२. १०–२०–३० अथवा ४० वर्ष की कोई अवधि।
३. कुरान शरीफ से उद्धृत।

की दृष्टि में वनी इसराईल के ४०,वर्प तक रेगिस्तान में भटकते फिरने के रहस्य का भी पता चल जाता है। वह रहस्य यह था कि ४० वर्ष की अवधि में जितने भी वनी इसराईल जीवित हो, वे मर-खपकर समाप्त हो जायँ और उनके, स्थान पर दूसरी नयी सतान का जन्म हो, जो अपमान एव निरादर की भावनाओ तथा दासता एव आज्ञाकारिता के विचारो से पूर्णत' अपरिचित हो।

इसका निष्कर्प यही निकला कि एक पीढी अथवा एक करन की आयु-अवधि ४० वर्ष होती है। हमने जो यह कहा कि सल्तनतो का जीवन तीन करनो से अविक नही वढने पाता, इसका कारण यह है कि पहली पीढी में लोग वदवी आदतो, वहशत एव परिश्रम पर कटिवद्ध रहते है। जीवन की कटुता एव कठोरता को सहन करते है। स्वभाव में कठोर एवं खूँख्वार हो जाते है। गौरव एव श्रेष्ठता में परस्पर एक-दूसरे के साझीदार होते है। इसी कारण उनमें "असवियत" असली रूप में वर्त्तमान रहती है। उनकी धाक सव पर वैठी रहती है, उनसे सव काँपते और दवे रहते है। इसके विपरीत दूसरी पीढी के लोग सल्तनत एव विलासप्रियता के कारण "वदवियत" से निकलकर नागरिक जीवन में प्रवेश करते है और परिश्रम त्यागकर आरामतलवी एव आलस्य ग्रहण करते है। श्रेष्ठ भावनाएँ सर्व-साधारण से निकलकर किसी एक व्यक्ति में केन्द्रित हो जाती है। शेप लोग प्रयत्न एव क्रियाशीलता की भावनाओ को खो देते हैं। वे आगे वढ़ने की प्रवृत्ति से वचित होकर पीछे हटने के अपमान के आदी हो जाते हैं। इस प्रकार "असवियत" के प्रति उत्साह समाप्त हो जाता है और लोग अपमान एव विवशता के आदी हो जाते है। किन्तु इस दूसरी पीढ़ी अथवा करन में ऐसे लोग फिर भी शेप रहते है जो अपने जीवनकाल में प्रथम करन को देख चुके होते है। वे उनसे परिचित होते है। गौरव एव श्रेष्ठता की प्राप्ति के सम्वध में उनके प्रयत्नो से तथा प्रतिरक्षा एव सगठन-विषयक उनके साहस एव हौसले से खूव परिचित होते है। इस प्रकार दूसरे करन के ऐसे लोग इन सव आदतो को नही त्यागते, यद्यपि कुछ वातो की उनमें भी कमी आ जाती है। वे इसी आशा पर जीवित रहते है कि सम्भवत. प्रथम करन की अवस्था में पुन पहुँच जायँ। कभी उन्हें यह भ्रम होता है कि वह स्थिति अव भी वर्त्तमान है। तीसरे करन में लोग "वदवी" परिश्रम को पूर्णत भूल जाते है और शासन के आतक से दवकर सम्मान एव "असवियत" से हाथ धो वैठते है। समृद्धि एव भोग-विलास के वातावरण में पलने के कारण वे अमीरी ठाट-वाट को उन्नति के शिखर पर पहुँचाते है। स्त्रियो एव वालको की भाँति प्रतिरक्षा के लिए सल्तनत का मुँह देखते रहते है। "असवियत" के नष्ट हो जाने के

कारण सहायता, प्रतिरक्षा एव अपनी माँगो को भूल जाते है। यद्यपि युद्ध, वेष-भूषा, शहसवारी एव सैनिक करतब में वे कुछ अकड दिखाकर लोगो को धोखा देते है, किन्तु अधिकाश में स्त्रियो से भी अधिक कायर होते है, समय पड़ने पर प्रतिरक्षा नही कर पाते। उन्हें इसी कारण बादशाह की आवश्यकता का अनुभव होता रहता है, ताकि राज्य की प्रतिरक्षा हेतु अपरिचित क़ौम से सहायता ली जाय, जो अपने आप में वीरता की भावानाएं रखती हो, और दासो को अधिक सख्या में सेना में भर्ती किया जाय, ताकि देश एक प्रकार से शान्ति की साँस ले सकें और अपने निश्चित समय पर समाप्त हो।

इस प्रकार तीन ही क़रनो में सल्तनत अपने ज़ोर-शोर को त्यागकर शक्तिहीन हो जाती है। वश एव कुल की मर्यादा भी, जैसा कि उल्लेख हो चुका और सिद्ध किया जा चुका है, चार पीढ़ियो तक चलती है। इस प्रकार ४० वर्ष का एक करन मान लेने पर तीन करनो में १२० वर्ष होते है। साधारणत सल्तनत का स्थायित्व इतनी ही अवधि तक रहता है। यदि कोई अन्य कारण हो, उदाहरणार्थ राज्य तो अन्तिम साँसें ले रहा हो किन्तु मैदान में कोई दावेदार न खडा हो जो उस पर अधिकार जमाये, तो इस प्रकार सल्तनत की आयु मनुष्य की आयु के समान बढती है। सर्वप्रथम वह बढ़ती जाती है, तदुपरान्त उसमें अपरिवर्तनशीलता आ जाती है और फिर समाप्त हो जाती है। इसी कारण प्रसिद्ध है कि एक सल्तनत की आयु १२० वर्ष की होती है।

इस वर्णन से एक सिद्धान्त बनाया जा सकता है और उससे पैतृक पीढ़ियो की गणना हो सकती है। यह इस प्रकार कि जब किसी विशेष व्यक्ति से लेकर अपने समय तक किसी को ज्ञान प्राप्त हो, किन्तु पीढ़ियो की गणना में कुछ सन्देह हो कि वे कितनी हो चुकी है, तो उस दशा में यही किया जाय कि प्रत्येक शताब्दी के लिए तीन पीढियो को ध्यान में रखा जाय। यदि ज्ञात काल, पीढियो की सदिग्ध सख्या पर पूरा पूरा बँट जाय तो समझ लेना चाहिए कि ज्ञात सख्या ठीक है और इतनी ही पीढ़ियाँ इस समय तक बीत चुकी है। यदि एक करन की कमी रह जाय तो समझ लेना चाहिए कि सख्या में भूल हुई है और एक पीढी अधिक मान ली गयी है। यदि काल की सख्या एक करन से अधिक हो तो एक पीढी कम हो गयी होगी। इसी प्रकार पूर्वजो की ठीक सख्या ज्ञात होने पर किसी विशेष पीढी का काल उलटा हिसाब लगाकर लगभग ठीक ज्ञात किया जा सकता है। "ईश्वर ही रात और दिन निश्चित करता है।"[1]

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

(१५) राज्य शनैः शनैः बदवियत से निकलकर नागरिक जीवन तक पहुँचता है

समझ लेना चाहिए कि बदवियत एव नागरिक जीवन सल्तनत की प्राकृतिक दशाएँ हैं। वह प्रभुत्व, जिससे राज्य प्राप्त होता है, "असबियत" एव तत्सम्बन्धी वीरता तथा पौरुष से प्राप्त होता है। साधारणत यह सब बातें "बदवियत" में ही विशेष रूप से पायी जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि राज्य का प्रारम्भ "बदवियत" से होता है। फिर जब राज्य की बागडोर हाथ में आती है तो सुख-सम्पन्नता के द्वार खुल जाते है, समृद्धि उत्पन्न हो जाती है। नगर का जीवन वास्तव में सुख-सम्पन्नता की विभिन्न स्थितियो और कला-कौशल को, जिनसे भोजन, वस्त्र, गृह, निवास-स्थान, फर्श, इमारतो, मज़िलो इत्यादि के विभिन्न रूपो का आविष्कार किया जाता है, कहते है। इनमें से प्रत्येक के लिए सज्जा, बारीकियो एव सौन्दर्य के नये-नये मार्ग निकाले जाते है जो विशेष रूप से उन्ही के साथ सम्बन्धित होते हैं। इस सम्बन्ध में एक के बाद दूसरी कला उत्पन्न होती रहती है। जैसे-जैसे लोगो की इच्छाओ, उनके स्वभाव, उनके भोग-विलास की स्थिति में परिवर्तन होता जाता है, वैसे ही वैसे देश में नये कला-कौशल प्रचलित होते जाते हैं। इस प्रकार "बदवियत" पर शहरियत का रग अवश्य चढता है, कारण कि राज्य की प्राप्ति के उपरान्त विलासप्रियता का आ जाना स्वाभाविक है और सल्तनत वाले सर्वदा शहरियत एव सस्कृति में अपने पिछले लोगो के पद-चिह्नो पर चलते है। उन्ही की स्थिति को अपने जीवन का मापदड बनाते है और बहुत कुछ उनसे प्राप्त करते है।

अरबो ने जब अन्य देशो को विजय करना प्रारम्भ किया तथा फारस एवं रूम को अपने अधिकार में ले लिया और उनके बालको तथा बालिकाओ से वे सेवा कराने लगे तो उनकी यही दशा रही कि उन्होने नगर के जीवन की विशेषताएँ अपने अधीन राज्यो से सीखी, अन्यथा विजय के पूर्व वे उनके नाम से भी परिचित न थे। कहा जाता है कि जब उन्हें तकिये दिये गये तो वे समझे कि यह गूदडे की गठरी है।[1] जब उन्होने किसरा के राजकोष में काफूर देखा तो उसे नमक समझकर आटे

१. इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार भी हो सकता है—"कहा जाता है कि जब भोजन हेतु उनके पास चपातियाँ लायी गयीं तो वे उनके विषय में कुछ न समझ पाये।"

में नमक के स्थान पर प्रयोग करने लगे। संक्षेप में, इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते है। जव अरवो ने रूम एव फारस को दास बनाया और वे उनसे सेवा कराने लगे, घर-वार के धधे उनको सौपे और अन्य कार्यो के लिए उनमें से माहिर चुने, तो उन्होने अरवो को प्रत्येक वस्तु के सम्वन्ध में सुधार, सशोधन एव अच्छाई के मार्ग दर्शाये। भोग-विलास, समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता के नाना प्रकार के उपाय उन्हें समझाये। फिर क्या था, अरवो ने भी रग वदला और अपने आपको नगर के जीवन एव सस्कृति के शिखर पर पहुँचा दिया। गृह, अस्त्र-शस्त्र, फर्श, वर्तन, अपितु गर्व की वातो; उदाहरणार्थ वरात एव दावतो की महफिलो में, बनावट एव नज़ाकत में सीमा से आगे वढ गये।

उन घटनाओ पर ध्यान दीजिए जो मसऊदी एव तवरी ने मामून के विवाह के सम्वन्ध में, जो हसन विन सहल[2] की पुत्री वूरान से हुआ, लिखे है। वर एव वधू की ओर से नि सकोच धन व्यय किया गया। सक्षेप में ऐसी धूम-धाम से विवाह का आयोजन हुआ कि उसे सुनकर मनुष्य चकित रह जाता है। उदाहरणार्थ मामून के परिजनो को वधू के पिता हसन विन सहल ने जो धन प्रदान किया एव दान-पुण्य का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत किया, उसका सविस्तर उल्लेख इस प्रकार है—उपस्थित गणो में जो प्रथम वर्ग के लोग थे उन पर कस्तूरी एव अम्बर की गोलियाँ न्योछावर की गयी। गोलियो पर जो कागज़ लपेटा हुआ था, उस पर विभिन्न आय की जागीरो के आदेश लिखे हुए थे। जिसको जो कागज़ मिल गया, उसने उस पर लिखी हुई भूमि पर अधिकार जमा लिया। दूसरी श्रेणी के लोगो में अशर्फियो की थैलियाँ बाँटी गयी, जिनमें से प्रत्येक थैली में १०-१० हज़ार दीनार थे। तीसरी श्रेणी के लोगो में १०-१० हज़ार दिरहम से भरी थैलियाँ बाँटी गयी। हसन ने मामून के आगमन के पूर्व जो व्यय किया था, वह उससे कई गुना अधिक था। मामून की ओर से वूरान को महर में पहली रात्रि में १,००० वहुमूल्य याकूत दिये गये और अम्वरी मोमवत्तियाँ जलवायी गयी, जिनमें से प्रत्येक मोमवत्ती लगभग डेढ-डेढ मन

१. तवरी की तारीख़-उल-रुसुल वल मुलूक, मसऊदी की मुरूजुज्ज़हव। अन्य इतिहासकारों ने भी इस घटना का सविस्तर विवरण दिया है।

२. हसन विन सहल, ख़लीफा मामून का वहुत वड़ा विश्वासपात्र था। वूरान से मामून का विवाह ८२५–२६ ई० में हुआ। हसन की मृत्यु जून ८५० ई० में हुई।

की थी। इसके लिए शाही राजप्रासाद में ऐसा फर्श विछवाया गया जिसकी चटाई भी सोने के तारो एव मोती तथा याकूत से जड़ी हुई थी। मामून ने जव यह देखा तो कहा कि अवू नुवास[1] को धन्य हो। उसने इसी दृश्य को सामने रखकर सभवत मदिरा की प्रशसा में यह शेर लिखा था—

शेर—मदिरा पर उसके छोटे वडे वुलवुले ऐसे ज्ञात होते है
मानो सुनहरी भूमि पर मोती विखरे हुए हो।

वलीमा[2] की रात्रि का भोजन पकाने के लिए एक वर्ष पूर्व से १४० खच्चरो पर लकडियाँ लदवाकर पूरे साल दिन में तीन-तीन वार रसोई में पहुँचायी जाती रही, किन्तु लकडी का यह वोझ भी उसी रात में समाप्त हो गया। तदुपरान्त तेल डालकर डालियाँ जलायी जाने लगी। नाविको को नौकाएँ उपस्थित करने का आदेश हुआ था, ताकि विशेष अतिथि दजला के मार्ग से मामून के नगर में लाकर शाही महलो में उतारे जायँ और वे वलीमा की दावत में सम्मिलित हो। इन नौकाओ की सख्या ३०,००० थी। इनमें वैठकर लोगो ने नदी के भ्रमण में दिन का पिछला भाग व्यतीत किया।

अपव्ययता का यही एक उदाहरण नही, अपितु इस प्रकार के अनेक उदाहरण इतिहास में मिलते है। इसी प्रकार का अपव्यय मामून विन जिन्नून[3] के विवाह में, जो तलीतला (टोलेडो) में हुआ, किया गया। इसका सविस्तर उल्लेख इब्ने वस्साम[4] ने किताबुज् ज़खीरा में और इब्ने हय्यान[5] ने अपने इतिहास में किया है, हालाँ कि यह

१ अवूनुवास प्रसिद्ध अरव कवि, जिसका जन्म अहवज़ में ७४७ ई० में हुआ। उसकी मृत्यु ८०६ से ८१४ ई० के वीच में वतायी जाती है।
२ विवाह के उपरान्त दुलहे की ओर से दी जानेवाली दावत।
३ वरवर मामून ने कारडोवा के राज्य के अन्त के उपरान्त टोलेडो में एक नये राज्य की स्थापना की। उसका समस्त जीवन अपनी शक्ति को वढ़ाने में व्यतीत हुआ। उसकी मृत्यु १०४६ ई० में हुई।
४ अली विन वस्साम की मृत्यु ५४२ हि० (११४७–४८ ई०) में हुई।
५ इब्ने हय्यान विन खलफ को स्पेन के मुसलमान इतिहासकारो में वड़ी श्रेष्ठता प्राप्त है। उसका जन्म ९८७–८८ ई० तथा मृत्यु १०७६ ई० में हुई।

वही अरब थे जो बदवियत के युग में अपनी सादगी तथा सीधे-सादे और सरल जीवन के कारण इन आडम्बरो से लेश मात्र भी परिचित न थे।

कहा जाता है कि हज्जाज ने अपने किसी पुत्र का खतना कराया। फारस का एक जमीदार भी उस समारोह में उपस्थित हुआ। हज्जाज ने उससे फारस की दावतो के विषय में पूछा और कहा कि "तुमने जो बडी से बड़ी दावत का समारोह देखा हो, उसके विषय में मुझे बताओ।" उसने कहा—"मै एक बार नौशीरवाँ के एक अमीर के किसी समारोह में उपस्थित था। दावत के समय हम सबके समक्ष चाँदी के थालो मे भोजन लगकर आया। प्रत्येक थाल में सोने के चार प्याले रखे थे। एक थाल को चार-चार दासियाँ उठाकर लाती थी और चार आदमी एक थाल पर बैठ जाते थे। भोजन के उपरान्त वही चार आदमी थाल, प्यालो एव दासियो को अपने घर लेते गये। हज्जाज ने यह कहानी सुनकर दास को आदेश दिया कि "जाओ, ऊँट जिबह करो और लोगो को भोजन कराओ।" जमीदार ताड़ गया कि हज्जाज इस सम्बन्ध में कुछ न करेगा और वास्तव मे यही हुआ।

यही दशा बनी उमय्या के दान-पुण्य की थी। वे लोग प्राय. ऊँट इनाम में दिया करते थे और अरब में प्राचीन काल से यही प्रथा चली आ रही थी। तदुपरान्त अब्बासियो और इसी प्रकार उबैदीईन[1] के राज्यकाल मे धन, वस्त्रो के थान, जीन सहित घोड़े आदि वस्तुएँ पुरस्कार में प्रदान की जाती थी।

यही दशा कुतामा की अगालबा के साथ इफरीकिया में और बनू तुगश (इख़शी-दियो) की मिस्र में रही। यही व्यवहार लम्तूना का उन्दुलुस के मुलूकुत्तवाएफ के साथ और जनाता का मुवह्हेदीन के साथ रहा। इस प्रकार नगर का जीवन पिछले राज्यो से अगले राज्यों में अविरत गति से चलता रहा। फारस के नगरो के जीवन ने बनी उमय्या एव बनी अब्बास पर अपना रंग चढ़ाया। फिर उन्दुलुस में बनी उमय्या के नागरिक जीवन ने उस युग के जनाता एव मुवह्हेदीन के बादशाहो को प्रभावित किया। इस प्रकार बनी अब्बास की सभ्यता एवं सस्कृति दैलम की ओर चली गयी। फिर तुर्क और सलजूको की ओर आयी। इसके उपरान्त मिस्र में तुर्क दास एव इराक के तातारी नागरिक जीवन एवं सस्कृति के स्वामी बने। फिर सल्तनत जितनी शक्तिशाली होती गयी, नागर-जीवन भी उतना ही अधिक सम्मानित होता गया, कारण कि नगर का जीवन भोग-विलास एव आडम्बरो से परिपूर्ण था और उसका सब ठाट-बाट

१. फातेमियों।

धन-सम्पत्ति पर निर्भर था। धन-सम्पत्ति की प्राप्ति राज्य के विस्तार एव सुल्तानो की शक्ति पर अवलम्बित होती है। फलत नगर का जीवन सल्तनत के सम्बन्ध से बदलता रहता है, अत इसे इस प्रकार भली भाँति सोच और समझ लेने की ज़रूरत होती है। यह सिद्धान्त नगर के जीवन के विषय में पूर्णत सत्य सिद्ध होता है। "जो कुछ इस भूमि पर है उसका वारिस ईश्वर ही है।"

(१६) प्रारम्भ में भोग-विलास से सल्तनत की शक्ति की उन्नति होती है

इसका कारण यह है कि जब देश में भोग-विलास बहुत फैल जाताहै तो सतति भी अधिक बढने लगती है। कौमियत एव "असबियत" की भावनाएँ भी तीव्र हो जाती है। तदुपरान्त दासो एव पाले हुए लोगो की सख्या भी अधिक हो जाती है और वे सब उसी भोग-विलास में पीढियो तक पलते-बढते रहते हैं। इन दासो के बढ़ने से देश की जनसख्या भी बढती है और उनकी शक्ति में भी वृद्धि होती है। फलत स्पष्ट है कि जनसख्या की वृद्धि के साथ साथ "असबियतें" भी बढ़ती है। प्रथम एव द्वितीय करन समाप्त करके सल्तनत जब शक्तिहीन होने लगती है तो दास एव पोषित लोग स्वय स्थायी राज्य की नीव नये सिरे से नही रख सकते, क्योकि उनका शासन से कोई सम्बन्ध नही होता। वे तो शासन पर अवलम्बित एव निर्भर होते है। मूल के समाप्त हो जाने के उपरान्त शाखाएँ किस प्रकार बच सकती है? ऐसी अवस्था में शाखाएँ भी नष्ट हो जाती है और सल्तनत शक्तिहीन हो जाती है।

इस तथ्य को इस्लामी इतिहास के उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। मुहम्मद साहब एव उनके उत्तराधिकारी खलीफाओ के शासनकाल में मुज़र एव कहतान के कबीलो को मिलाकर अरबो की सख्या एक लाख पचास हज़ार अथवा उसके लगभग थी। फिर जब भोग-विलास बढा और जनसख्या में वृद्धि हुई तथा धन-सम्पत्ति का बाहुल्य हुआ तो दासो एव पाले हुए लोगो की अधिकता के कारण यह सख्या लगभग दुगुनी हो गयी। कहा जाता है कि जब मोतसिम[1] ने युद्ध के उपरान्त अमूरिया[2] विजय किया तो उसकी सेना की सख्या ९ लाख थी

१. अल-मोतसिम बिल्लाह, हारूनुर्रशीद का चौथा बेटा, जो ८३३ ई० से ८४२ ई० तक खलीफा रहा।

२ अमोरियम।

और यह संख्या कल्पना से कुछ अधिक भी ज्ञात नही होती। यदि अब्बासी खलीफाओ के सहायको एव मददगारो की संख्या पर, जो पूर्व-पश्चिम तथा दूर एवं निकट सब ओर लाखो की तादाद में फैले पड़े थे, ध्यान दिया जाय तो मोतसिम की सेना की सख्या पर आश्चर्य न होगा।

मसऊदी लिखता है कि जब मामून के राज्यकाल में अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब[1] के वंश वालो की जनगणना, उनके लिए वृत्ति निश्चित करने के उद्देश्य से की गयी तो उनकी स्त्रियो एव उनके पुरुषो की सख्या ३०,००० निकली। इस प्रकार केवल २०० वर्ष में उनकी जनसख्या किस सीमा तक ऊँची पहुँच गयी, इसका कारण केवल यही था कि सल्तनत सुख-सम्पन्नता एव समृद्धि की ओर अग्रसर हुई और कई पीढियो तक उनका भोग-विलास में पालन-पोषण हुआ। अन्यथा विजयो के प्रारम्भ में अरबो की सख्या इसके बराबर तो क्या इसके निकट भी न पहुंच सकी थी। "ईश्वर ही सर्जन करता है और वही सब कुछ जानता है।"[2]

(१७) सल्तनत की विभिन्न परिस्थितियाँ और विभिन्न प्रकार के बदवी जीवन

सल्तनत को अपने जीवनकाल में विभिन्न परिस्थितियो एवं नयी-नयी घटनाओ का सामना करना पडता है और देशवासी भी उन्ही परिस्थितियो के कारण अपने चरित्र एव अपनी आदतो में परिवर्तन करते जाते हैं। कारण कि चरित्र एवं आदते वास्तव में एक विशेष परिस्थिति से ही उत्पन्न होती हैं। सल्तनत की परिस्थितियाँ प्राय. पाँच विभिन्न अवस्थाओ में ही सीमित रहती है।

पहली अवस्था विजय एव सफलता की है। इसमें कौम प्रतिरक्षा सम्बन्धी समस्याओ में पूर्णत शक्तिशाली होती है। वह राज्यो को विजित कर लेती है और शासन दूसरों के हाथ से छीन लेती है। इस रूप में पूरी कौम सम्मान एवं श्रेष्ठता के रग में रँगी रहती है और धन-सम्पत्ति एकत्र करने में तल्लीन हो जाती है। प्रतिरक्षा एवं बचाव के उपाय सोचती रहती है। तत्कालीन सुल्तान किसी गुण का अकेला ठेकेदार नहीं बनता, कारण कि कौम को जो प्रभुत्व प्राप्त होता है वह "असबियत" के ही कारण

१. अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब, मुहम्मद साहब के चाचा, जिनका निधन ६५३ ई० में हुआ। अब्बासी राज्य का संस्थापक अस्सफ्फाह उन्हीं के वंश से था।
२ कुरान शरीफ से उद्धृत।

उसे प्राप्त होता है। यह "असवियत" भी मौलिक रूप में तव मौजूद होती है। अपनी गौरव-गरिमा में वह सभी को साझीदार वनाती रहती है।

सल्तनत की दूसरी अवस्था में सुल्तान वैयक्तिक प्रभुत्व एव गौरव का अभिलापी होता है और देश का एक मात्र स्वामी वन जाता है। वह अपने शासन-प्रवन्ध में न तो किसी को साझीदार वनाता है और न किसी का हस्तक्षेप सहन कर सकता है। इस रूप में वादशाह अपने आश्रितो एव दासो की ओर विशेप ध्यान देता है और उनकी सख्या इस आशय से वढाता है कि वह उनकी सहायता से उन "असवियत" वालो एव कौम के प्रेमियो के उत्साह एव दल-वल को तोड दे, जिनकी ओर से यह भय हो सकता है कि वे राज्य में हिस्सा वटाने का प्रयत्न करेंगे, अथवा शासनप्रवन्ध में सम्मिलित होने की इच्छा करेंगे। ऐसे लोगो को वह शासनप्रवन्ध सम्वन्धी कार्यो से पृथक् करता जाता है और ऐसे अवसरो से, जिनमें वे शासनप्रवन्ध में हस्तक्षेप कर सकें, दूर रखता है। इसका उद्देश्य केवल यह होता है कि किसी न किसी प्रकार राज्य एव शासन उसी के अधिकार में रहे और उसकी मृत्यु के उपरान्त राज्य विना किसी हस्तक्षेप के उसके वश में चलता रहे। इस सम्वन्ध में वादशाह को अपनी प्रतिरक्षा एव अपने प्रभुत्व हेतु जिन युक्तियो से कार्य करना पडता है उनमें वह अपने पूर्वजो की भाँति, जिन्होंने राज्य की नीव रखी थी, कठिन परिश्रम करता है। कभी-कभी उसे उनसे भी अधिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है, कारण कि उसके पूर्वजो ने तो अपने सभी "असवियत" वालो की सहायता से अपने राज्य की अपरिचित लोगो से रक्षा की थी और अव उसको केवल अपने ही सम्वन्वियो के विरुद्ध प्रतिरक्षा का आयोजन करना पड़ता है, और वह भी कुछ अपरिचित लोगो की सहायता से। इसी कारण उसे इस सम्वन्ध में अपने पूर्वजो से अविक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

तीसरी अवस्था में समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता अधिक व्यापक हो जाती है। राज्य एव शासनप्रवन्ध के ये वही फल हैं जिनकी ओर मनुष्य आकृष्ट होता है। धन एकत्र करने की वड़ी-वडी योजनाएँ वनायी जाती हैं। सल्तनत की प्रसिद्धि का डका दूर-दूर तक वजता है। समकालीन वादशाह का ध्यान खराज इत्यादि की प्राप्ति की ओर पूर्णरूप से आकृष्ट होता है। आय-व्यय को सुव्यवस्थित किया जाता है। व्यय का अनुमान लगाकर सयम से काम लिया जाता है। भव्य भवनो का निर्माण किया जाता है। वडे-वडे कारखाने खुलते हैं। वडे-वड़े नगर वसाये जाते है। भव्य पूजा-गृहो एव मस्जिदो की नीव डाली जाती है। सम्मानित एव प्रतिष्ठित कौमो

तथा कबीलों की ओर से राजदूत आने लगते है। शाही वश का अभ्युदय होने लगता है। बादशाह के न्याय एव दान-पुण्य की उन्नति होने लगती है। उसके सहचर एव मित्र उन्नति करने लगते हैं। उनकी आर्थिक दशा सुधरने लगती है और उनके आदर-सम्मान में वृद्धि होने लगती है। सेना सुव्यवस्थित होती है। उसके वेतन एव वृत्तियाँ निश्चित की जाती हैं। दान-पुण्य करने मे न्याय एवं सतुलन पर ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक मास नियमित रूप से वेतन का भुगतान होता है। इसी सुव्यवस्था के कारण जब विशेष अवसरो पर सेना सज-धजकर सामने आती है तो उसकी प्रत्येक बात में रौनक दृष्टिगत होती है। सेना के वस्त्र, वर्दियाँ, अस्त्र-शस्त्र सभी अच्छे होते हैं। इसी सुव्यवस्था के कारण मित्र राज्यो में उसका सिर ऊँचा रहता है और शत्रु राज्य उससे काँपते रहते हैं। यह श्रेणी राज्यवालो के प्रभुत्व की अन्तिम सीमा होती है, कारण कि उस समय वे स्वतत्र होते है, सम्मान एव गौरव के स्रोत होते है और अपने बाद आनेवालो के लिए कर्म एव उन्नति के मार्ग खोलते हैं।

चौथी अवस्था सतोष एव शान्ति की है। इस श्रेणी को प्राप्त हो जाने के उपरान्त बादशाह अपने पूर्वजो के आचरण पर निर्भर रहने लगता है। अपने बराबर वाले राज्यो से सन्धि बनाये रखता है। शत्रुओ तक के साथ सयम-पूर्वक व्यवहार करता है। प्रत्येक बात में अपने पूर्वजो का अनुसरण करता है। उन्ही के पद-चिह्नो पर चलता है। वे जो कर गये है, वही वह भी करता है, मानो वह अपने पूर्वजो का पूर्णरूप से भक्त एव उनका अनुयायी हो। उसे यह ज्ञात होता है कि यदि वह अपने पूर्वजो के अनुकरण से पीछे हटा तो उसके कार्य अस्त-व्यस्त हो जायंगे। वह भली भाँति समझता है कि उसके पूर्वज गौरव एव श्रेष्ठता के सस्थापक थे, अतः वे ही उन कार्यो के मूलाधार हैं।

पाँचवी अवस्था अपव्यय की है। इस युग का बादशाह अपने पूर्वजो द्वारा सचित धन-सम्पत्ति को कभी अपनी अभिलाषाओ की पूर्ति एव भोग-विलास पर और कभी अपने मित्रो एव दरबारियो को दान देने में निसकोच व्यय करता है। संसार के दुराचारियो एव व्यभिचारियो का उसकी छत्रछाया में पालन-पोषण होता है। ससार के महान् कार्य, जिन्हें वे कदापि नही चला सकते, उनके सिपुर्द होते हैं। इन लोगो की समझ मे यह नही आता कि वे क्या करें अथवा क्या न करें। वे कौम के सम्मानित लोगो की कीर्तियो को नष्ट एव अपने पूर्वजों के कार्यो को बरबाद करने लगते हैं। जब यह स्थिति हो जाती है तो लोग बादशाह से जलने लगते हैं। उसकी सहायता से हाथ खीचने लगते हैं। बादशाह क्योकि सैनिक व्यय एव खज़ाने का धन

भोग-विलास में व्यय करने लगता है, अत. सेना की दशा भी शोचनीय हो जाती है। सेना की देखभाल एव उसके विपय में पूछ-ताछ करने की ओर से उपेक्षा होने लगती है। इस प्रकार वह अपने पूर्वजो की कीर्ति पर पानी फेर देता है और उनकी वनायी हुई व्यवस्था का समूलोच्छेदन कर देता है। जव राज्य इस शोचनीय दशा को प्राप्त हो जाता है तो वह युवावस्था से निकलकर वृद्धावस्था में प्रविष्ट हो जाता है। वह एक ऐसे प्राचीन एव स्थायी रोग से ग्रस्त हो जाता है कि उससे उसकी मुक्ति कठिन ही होती है। उसके स्वस्थ होने का कोई उपाय दृष्टिगत नही होता और उसकी मृत्यु ही शेप रह जाती है। इसकी अधिक व्याख्या हम वाद में करेंगे। "ईश्वर ही सर्वोत्कृष्ट वारिस है।"[1]

(१८) राज्य के अवशेष उसकी मूल शक्ति के अनुसार होते हैं

यह सत्य है कि किसी सत्ता के अवशेप उसकी शक्ति के द्योतक होते है और वे इस वात की घोपणा करते रहते हैं कि वह सत्ता कितनी शक्तिशाली थी। यही वात उन भव्य भवनो एव मस्जिदो तथा पूजा-गृहो के विपय में कही जा सकती है, जो विगत राज्यों के अवशेप के रूप में अव भी वर्त्तमान हैं। उनसे राज्य के सस्थापकों के ऐश्वर्य एव गौरव का पता चलता है। इसका कारण यह है कि ऐसे भवनों का निर्माण उसी दशा में हो सकता था जव वहुत वड़ी सख्या में भवन-निर्माण करनेवाले तथा शिल्पकार एकत्र किये जाते थे और वे मिल-जुलकर उस निर्माण-कार्य को सम्पन्न करते थे।

जव राज्य दूर-दूर तक फैला होता है और प्रजा वहुत वडी संख्या में वसी होती है, तव भवन-निर्माण करनेवाले भी सुगमतापूर्वक वडी सख्या में प्राप्त हो जाते हैं और राज्य की विभिन्न दिशाओ से एकत्र कर लिये जाते हैं। इस प्रकार भवन-निर्माण कार्य वडे पैमाने पर पूरा कर लिया जाता है। उदाहरणार्थ आद एव समूद नामक कौमों के अवशेपो को देखिए। इनका उल्लेख कुरान शरीफ में भी हो चुका हैं। इनके अतिरिक्त किसरा के राजप्रासादो के दरवार-कक्षो की ओर दृष्टिपात कीजिए, जिनसे फारस के राज्य की शक्ति प्रकट होती है। उनकी दृढ़ता इस सीमा को पहुँच गयी थी कि जव हारूनुर्रशीद ने उनको तुड़वाना चाहा और खुदाई का कार्य प्रारम्भ कराया, तो तोडनेवाले तोड़ने में असमर्थ हो गये। वे किसी प्रकार न टूट सके।

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

इस सम्बन्ध में हारूनुर्रशीद का यहया बिन खालिद बरमकी[1] से परामर्श करना और उसका सुल्तान को इस सकल्प से रोकना बड़ा प्रसिद्ध है। ध्यानपूर्वक देखिए कि एक राज्य तो उनका निर्माण कराये और एक उन्हें तोड भी न सके, यद्यपि विध्वस एवं निर्माण कार्य में सुगमता की दृष्टि से बड़ा अन्तर है। इसी से दोनों राज्यों के पारस्परिक अन्तर का पता चलता है।

इसी प्रकार दमिश्क में वलीद[2] द्वारा निर्माण कराये हुए राजप्रासादो, करतबा[3] में बनी उमय्या की बनवायी हुई जामा मस्जिद और नदी का पुल, करताजना[4] की ऊँची भूमि पर नहरो में जल लाने के हेतु बनी उमय्या के निर्माणकार्य, मग़रिब में शरशाल के अवशेष एव मिस्र में एहराम[5] इत्यादि के निर्माणो के अवशेषो से उन राज्यो की निर्माणशक्ति का पता चलता है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि भूतकाल में इन आश्चर्यजनक भवनो का निर्माण इजीनियरो एव भवन निर्माण करनेवालों तथा शिल्पकारो के पारस्परिक सहयोग से सम्भव हो सका था। इसी कारण वे अत्यन्त दृढ बन सके थे। इसका कारण, जैसा जन-साधारण कहते हैं, यह नही है कि उस युग के लोगो का डीलडौल हमसे बहुत बड़ा था, अत वे इतने भव्य भवनो का निर्माण करा सके। तब के और अब के मनुष्यों के डीलडौल में इतना अधिक अन्तर नही है जितना इन भवनो को देखने से ज्ञात होता है। वास्तव में किस्सा-कहानी गढ़नेवालो की अतिशयोक्ति एवं झूठ के कारण उपर्युक्त भ्रम उत्पन्न हो गया है। उदाहरणार्थ आद, समूद एवं अमालका नामक कौमो के विषय में बिना सिर-पैर की झूठी कहानियाँ प्रसिद्ध हो गयी हैं। इनमें अधिक आश्चर्यजनक औज[6] बिन अनाक[7] की कहानी है कि वह अमालका नामक कौम का एक व्यक्ति था जिससे बनी इसराईल ने शाम में युद्ध किया। उसके डील-

१. यहया बिन खालिद, हारूनुर्रशीद का प्रसिद्ध बरमकी वज़ीर, जिसकी मृत्यु ८०५ ई० में हुई।
२. सम्भवतः वलीद (७०५–७१५ ई०) की मस्जिद की ओर संकेत है।
३. कारडोवा।
४. कारथेज।
५. पीरामिड।
६. ओग, Og.
७. अनक, Anak.

डील के विषय में कहा जाता है कि वह समुद्र से मछलियाँ पकड लेता था और उन्हें सूर्यताप में भून-भूनकर खाता था। इस निराधार कहानी से जहाँ कहानी कहने-वालो की मानव-जीवन की अनभिज्ञता ज्ञात होती है, वहाँ नक्षत्रो के विषय में उनके अज्ञान का भी आभास होता है, कारण कि उन्हें यह भ्रम है कि सूर्य में गरमी होती है और जितना ही कोई उसके निकट जाय गरमी बढ जायगी । वे इस तथ्य से परिचित नही कि गरमी प्रकाश पर निर्भर होती है। किरणो का प्रकाश, भूमि के धरातल से प्रतिबिम्बित होने के कारण तीव्र हो जाता है, अत भूमि के निकट गरमी भी ज्यादा हो जाती है। जब प्रतिबिम्बित किरणें अपने मूल स्थान से दूर हटती हैं अथवा ऊँचाई की ओर जाती है तो वहाँ गरमी नही होती, अपितु ठडक हो जाती है। ऊँचाई के इस स्थान पर बादल उडते रहते है । सूर्य स्वय न तो गरम होता है और न ठडा । वह तो एक ललित एव प्रकाशपूर्ण पदार्थ है। इसी प्रकार किस्सा कहनेवाले कहते है कि औज बिन अनाक अमालका कौम का एक व्यक्ति था अथवा कनआनियो में से था, जो उस समय, जब बनी इसराईल ने शाम विजय किया, नष्ट हो गये। उस युग के बनी इसराईलवालो का डीलडौल आजकल के लोगो के समान था। इसका प्रमाण बैतुल मुकद्दस[1] के द्वारो से मिलता है, यद्यपि वे इस बीच में नष्ट हो गये और पुन. बनवाये गये, किन्तु उनकी शकल एव द्वारो की लम्बाई-चौडाई में कोई भी परिवर्तन नही किया गया । तब यह किस प्रकार सम्भव है कि औज बिन अनाक के डीलडौल और इस युग के लोगो के डीलडौल में इतना अधिक अन्तर हो ।

वास्तव में इस भूल का कारण यह है कि इन कहानी सुनानेवालो ने ये भव्य अवशेष तो देखे, किन्तु उस युग की सामूहिक शक्ति का कोई अनुमान नही लगाया । न वे उन यन्त्रो को समझ सके जिनके द्वारा इन आश्चर्यजनक भवनो का निर्माण कराया गया था। इस कारण उन्होने इन अवशेषो की विशालता का सम्बन्ध उनके निर्माताओ के डीलडौल से जोड दिया और कह दिया कि चूँकि वे बड़े लम्बे डीलडौल वाले थे, अत ऐसे भव्य भवनो का निर्माण वे ही कर गये, यद्यपि यह विचार पूर्णत मिथ्या है।[2]

इसी प्रकार सल्तनत के दान-पुण्य सल्तनत के ऐसे अवशेष है जिनसे उसकी शक्ति का पता लगाया जा सकता है। सल्तनत भले ही पतन एव शक्तिहीनता की ओर बढ

१. येरोशलम।

२. इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण यहाँ लेखक ने दिये है, जिनका अनुवाद नहीं किया गया ।

रही हो, किन्तु सुल्तानो की दान-पुण्य एवं इनाम-इकराम की रुचि अवश्य अपना प्रभाव दिखाती है, कारण कि उनके साहस तथा हौसले उनके शासन के प्रभुत्व एव उनकी शक्ति के अनुसार होते हैं। अन्त तक दान-पुण्य एव साहस की भावना उनमें मौजूद रहती है। इस प्रकार इब्ने ज़ीयज़ान के उन पुरस्कारो द्वारा इस तथ्य का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है, जो उसने कुरेशी शिष्ट मडल को प्रदान किये। उसने लोगो को १०-१० सेर सोना-चाँदी तथा १०-१० दास एव दासियाँ और एक-एक अम्बर की टिकिया प्रदान की। तदुपरान्त अब्दुल मुत्तलिब को अन्य लोगो की अपेक्षा दुगुनी चीज़ें प्रदान की। यद्यपि उस समय उसका राज्य फारस के अधीन यमन तक सीमित था, किन्तु उसे उदारता एव साहस अपनी तबाबेआ नामक कौम से, जिसने इराक, मगरिब एव हिन्द तक की कौमो पर राज्य किया था, परम्परागत रूप में प्राप्त हुआ था, अत. उसने इनाम एव दान-पुण्य में इतनी उदारता प्रदर्शित की।

इसी प्रकार इफरीकिया में सिनहाजा सुल्तानो के दरबार में जब जनाता अमीरो के शिष्ट-मडल आते थे तो वे भी उनको अत्यधिक धन-सम्पत्ति, वस्त्रो के थान एव घोडे प्रदान किया करते थे। इब्ने रफीक ने उनके इस इतिहास का वर्णन किया है।

वरामेका के शाह भी इसी प्रकार दान-पुण्य किया करते थे। इनके इनाम एव व्यय भी अपार एव असीमित होते थे। जब वे किसी दरिद्र की सहायता करते तो उसे वे इतनी धन-सम्पत्ति प्रदान कर देते थे कि वह सर्वदा के लिए धन-धान्यसम्पन्न हो जाता था। यह दान ऐसा नही होता था कि प्राप्त धन एक-आध दिन में ही समाप्त हो जाय और प्राप्तकर्ता दरिद्र का दरिद्र ही बना रहे। यह सब कहानियाँ इतिहासो में लिखी हुई है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि सुल्तानो के दान-पुण्य उनके राज्यो की शक्ति के अनुसार होते है। देख लीजिए कि उबैदीईन का सेनापति, जौहर अल-कातिब सकलवी जब मिस्र की विजय के उद्देश्य से कीरवान से चला तो नकद धन का १,००० गधो का बोझ उसके साथ था। आज किसी भी राज्य का खज़ाना इतना न होगा।

इस सम्बन्ध में अहमद बिन मुहम्मद बिन अब्दुल हमीद के हाथ के कुछ लेख प्राप्त हुए हैं, जिनमे मामून के खिलाफत काल की वह आय लिखी है, जो अधीनस्थ प्रदेशो एव राज्यो से वसूल होकर शाही खज़ाने मे आया करती थी। हम उसे "जिराबुद्दौला" नामक ग्रथ से उद्धृत करते है।[1]

१. यह सूची विभिन्न ग्रंथो में दी हुई है, A. Von Kremer ने *Kultur-geschichte des Orients* (Vienna, 1875) में इस पर विस्तार से प्रकाश

प्रदेश	कर द्वारा आय
सवाद (दक्षिणी मेसोपोटामिया)	२७,७८०,००० दिरहम फसलों द्वारा, १४,-८००,००० दिरहम अन्य साधनों से, नजरानी कवायें २००, मुहर लगाने की मिट्टी २४० रतल[1]।
कस्कर	११,६००,००० दिरहम ।
दजला के प्रदेश	२०,८००,००० दिरहम ।
हुलवान	४,८००,००० दिरहम ।
अहवाज़	२५,००० दिरहम तथा ३० हज़ार रतल शकर ।
फारस	२७,०००,००० दिरहम, गुलावजल की ३० हज़ार बोतलें मुनक्के २० हज़ार रतल ।
किरमान	४,२००,००० दिरहम, यमन के ५०० रेशमी थान, खजूर २० हजार रतल और एक प्रकार का जीरा १,००० रतल ।
मुकरान	४००,००० दिरहम ।
सिंघ एव उससे सवधित स्थान	११,५००,००० दिरहम, ऊदे हिन्दी १५० रतल ।
सिजिस्तान	४,०००,००० दिरहम, विशेष प्रकार के वस्त्रो के ३०० थान, मिसरी २० हज़ार रतल ।
खुरासान	२८,०००,००० दिरहम, १,००० चाँदी की ईंटें, ४,००० लद्दू जानवर, १,००० दास, २७,००० थान, ३०,००० रतल आमलक ।
जुरजान	१२,०००,००० दिरहम, रेशम के १००० लच्छे ।
कूमिस	१,५००,००० दिरहम, १००० चाँदी की ईंटें ।
रैं	१२,०००,००० दिरहम, मधु २०,००० रतल ।
तवरिस्तान, अर्खयान तथा निहावद	६,३००,००० दिरहम, तवरिस्तानी कालीन ६०० । लवादे २००, पारचा ५०० थान, मुन्देल ३००, जामात ३०० ।

डाला है। उसका विचार है कि इसमें ८६ हि० (७८५ ई०) की स्थिति का उल्लेख है।

१. एक रतल लगभग एक पौंड के वरावर होता था।

हमदान	११,८००,००० दिरहम, अनार तथा नीबू इत्यादि का मुरब्बा १००० रतल, मधु १२,००० रतल।
बसरे एवं कूफे के मध्य के स्थान	१०,७००,००० दिरहम ।
मासवज़ान एव अरँयान	४,०००,००० दिरहम ।
शहर जूर	६,०००,००० दिरहम ।
मूसल एव उससे सबधित स्थान	२४,०००,००० दिरहम, सफेद मधु २०,००० रतल।
आजरबाईजान	४,०००,००० दिरहम ।
जज़ीरा एव फुरात के आस-पास के स्थान	३४,०००,००० दिरहम।
जीलान	५,०००,००० दिरहम, १,००० दास, मधु १२,००० मशक, बाज १०, खिलअतें २०।
अरमीनिया	१३,०००,००० दिरहम, ज़रबफ़्त के फर्श २०, विभिन्न रग के वस्त्र ५३० रतल, नमक में लगी हुई सूरमाही (एक प्रकार की छोटी मछली) १०,००० रतल, खच्चर २००, बाज ३०।
किन्नसरीन	४००,००० दीनार, मुनक्के १००० ऊँट का बोझ।
दमिश्क	४२०,००० दीनार।
जार्डन	९७,००० दीनार।
फिलस्तीन	३१०,००० दीनार, मुनक्के ३००,००० रतल ।
मिस्र	९२०,००० दीनार।
बरका	१,०००,००० दिरहम।
इफरीकिया	१३,०००,००० दिरहम, फर्श १२०।
यमन	३७०,००० दीनार, वस्त्रो को छोडकर।
हिजाज़	३००,००० दीनार।

इसी प्रकार उन्दुलुस की धन-सम्पत्ति के विषय में विश्वस्त सूत्रो से ज्ञात होता है कि अब्दुर्रहमान नासिर[1] ने अपनी मृत्यु के समय बैतुल माल[2] में ५,०००,०००

१. अब्दुर्रहमान नासिर उन्दुलुस (स्पेन) का ८वाँ उमय्या खलीफ़ा, कहा जाता है कि उसी ने सर्वप्रथम खलीफा की उपाधि धारण की।

२. मुसलमानो का खज़ाना।

दीनार छोडे थे, जिनका वज़न ५०० किन्तार[1] था। मैने कुछ इतिहासो में रशीद[2] के विषय में पढ़ा है कि उसके राज्यकाल में बैतुल माल की आय ७,५०० किन्तार वार्षिक थी।

मैने उवैदीईन वश के विषय में इब्ने खलेकान[3] के इतिहास में सेनापति अल-अफज़ल विन वद्र अल जमाली के विषय में, जो मिस्र के उवैदीईन खलीफाओ पर नियत्रण रखता था, पढा है कि जव अल-अफज़ल की मृत्यु हो गयी तो ६००,००० दीनार एव २५० इरदव[4] दिरहम उसके खज़ाने में मिले। इसी प्रकार अँगूठियो के लिए वहुमूल्य पत्थर, मोती, वस्त्र, घर के सामान, सवारी के जानवर तथा माल लादनेवाले जानवर प्राप्त हुए।

जहाँ तक हमारे समय की सल्तनतो का सम्वन्ध है, उनमें सवसे वडी मिस्र के तुर्कों की सल्तनत है। इस तुर्क सुल्तान अन्नासिर मुहम्मद विन कलाऊन के समय में इस राज्य को वहुत अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया था। उसके शासन-काल के प्रारम्भ में उसके दो अमीरो, वैवर तथा सल्लार का वड़ा ज़ोर वंध गया था। वैवर ने सल्लार से मिलकर राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया। अल्प समय पश्चात् ही अन्नासिर ने राज्य पर अधिकार कर लिया और उसने वैवर के सहायक सल्लार को वन्दी वनाकर उसका खज़ाना साफ करवाया[5]। मैने उस खज़ाने की धन-सम्पत्ति की सूची देखी है और उसे प्रस्तुत करता हूँ।

पीले रत्न एव लाल	४½ रतल।
पन्ना	१९ रतल।
हीरे तथा अँगूठियो के लिए एक प्रकार के रत्न	३०० वड़े टुकड़े।
विभिन्न प्रकार के अँगूठियो के पत्थर	२ रतल।
गोल मोती १ मिस्काल[6] से १ दिरहम तक	१, १५०।

१. एक किन्तार लगभग एक हण्डरेडवेट के वरावर होता था।
२. हारूनुर्रशीद।
३. शम्सुद्दीन अवुल अव्वास अहमद इब्ने मुहम्मद इब्ने अवू वक्र, इब्ने खलेकान (मृत्यु १२८२ ई०) का "वफायतुल अयान" नामक ग्रन्थ, जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी हो चुका है, वड़ा प्रसिद्ध है।
४. इनके विषय में कोई निश्चित पता न चल सका।
५. यह घटना १३०९–१० ई० में घटी।
६. १½ दिरहम।

सोने के सिक्के	१,४००,००० दिरहम ।
खालिस सोने का भडार,	दो दीवारो के मध्य में सोने के थैले जिनके मूल्य का कोई अनुमान नही लगाया जा सका।
दिरहम	२,०७१,००० ।
जवाहरात	४ किन्तार।

इसी अनुपात से वस्त्रो के बहुत से थान, घरेलू सामान, सवारी के जानवर, लद्दू जानवर, (अनाज की) फसलें, मवेशी तथा दास और दासियाँ एव जागीरो का भी हवाला दिया गया है।

इसके बाद मोराको में मरीनी वश हुआ। उनके खजाने की, मरीनी वित्त-मत्री हस्सून बिन अल वव्वाक के हाथ की लिखी हुई एक सूची मुझे मिली है, जिसके अनुसार सुल्तान अबू सईद ने अपने खजाने में जो धन-सम्पत्ति छोडी वह ७०० किन्तार सोने के दीनारो से अधिक थी। उसके पास इसी अनुपात से अत्यधिक अतिरिक्त धन-सम्पत्ति भी थी। उसके पुत्र एव उत्तराधिकारी अबुल हसन के पास इससे भी अधिक धन-सम्पत्ति थी। जब उसने तलेमसान पर विजय प्राप्त की[1], तो उसे ३०० किन्तार से अधिक सोने के सिक्के, जवाहरात और उसी अनुपात से अपार धन-सम्पत्ति वहाँ के सुल्तान अब्दुल वादिद अबू ताशफीन के खजाने से प्राप्त हुई।

इफरीकिया में मेरा समकालीन, मुवह्हिद वश का ९वाँ बादशाह अबू बक्र[2] था। उसने अपने सेनापति मुहम्मद बिन अल हकीम को बन्दी बनवाकर उसका सफाया करा दिया। उसे ४० किन्तार सोने के दीनार और अँगूठियो के अत्यधिक बहुमूल्य पत्थर एव मोती मिले।

मैं मिस्र में मलिक अज़् ज़ाहिर अबू सईद बरकूक के समय में था, जिसने कलाऊन के उत्तराधिकारियो से राज्य छीन लिया था। जब उसने अमीर महमूद नामक उसके वज़ीर को बन्दी बनवा लिया[3] तो वज़ीर के ख़ज़ाने में १,६००,००० दीनारो का पता चला। इसके अतिरिक्त इसी अनुपात से अत्यधिक वस्त्र, सवारी

१. १३३७ ई०।
२. इब्ने ख़लदून का अबू बक्र (१३१८–४६ ई०) के राज्यकाल में जन्म हुआ था।
३. ७९८ हि० (१३९५–९६ ई०) में, अमीर महमूद की मृत्यु ७९९ हि० (१३९७ ई०) में हुई।

के जानवर, लद्दू जानवर मवेशी एव (अनाज की) फसलें मिली थी। इस प्रकार जव दो अथवा अधिक राज्यों की तुलना की जाय तो उनकी समृद्धि एव धन-सम्पत्ति तथा शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान लगाने के लिए सल्तनतो के कार-वार एव ऐतिहासिक अवशेपो का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कारण कि उनकी पृष्ठभूमि में राज्यविषयक वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। अपनी देखी-भाली एव अपने काल की चीज़ो की नाप-तौल तथा सख्या को सूचना की सत्यता का मापदड निर्धारित न करना चाहिए और जो वात ज्ञात हो उसे असम्भव न समझना चाहिए। साधारण लोगो की तो चर्चा की ही नही जा सकती, विशेप लोग भी जव भूतकाल के राज्यो के विपय में सुनते है तो उनसे सम्वन्धित बातो पर विश्वास नही करते, यद्यपि ऐसा कदापि न करना चाहिए, कारण कि संसार तथा तत्सम्वन्वी सभ्यता एक समान नही रहती, अपितु उनमें अन्तर होता रहता है। जिसने घटिया अथवा मध्य स्तर का युग ही देखा हो वह उच्च स्तर के युग का ठीक-ठीक अनुमान किस प्रकार लगा सकता है, उदाहरणार्थ वनी अब्वास, वनी उमय्या तथा उवैदीईन की ठीक-ठीक एव अस्वीकार न किये जाने योग्य घटनाएँ जव हम तक पहुँचती है और उन घटनाओ की तुलना हम अपने राज्य की वास्तविक घटनाओ से, जो भूतपूर्व राज्यो की अपेक्षा कही अधिक कमजोर है, करते है तो उनमें वडा अन्तर पाते हैं। इसका कारण केवल यह है कि राज्य की शक्ति एव जनसख्या में परस्पर वड़ा अन्तर होता है। निष्कर्प यही निकलता है कि पिछले राज्यो के अवशेप अपने-अपने राज्यो से गहरा सम्वन्ध रखते है, जिसे अस्वीकार करना असम्भव है। इन राज्यो की उन घटनाओ के अनेको प्रमाण है और उनके अवशेप एव उनके वर्त्तमान भवन उनके इतिहास की पुष्टि करते है। अत. उन राज्यो की शक्ति का अनुमान उन ऐतिहासिक घटनाओ द्वारा, जिनके विवरण दिये जाते है, उन पर तथा अवशेपो के आधार पर करना चाहिए।

इस सम्वन्ध में शिक्षा ग्रहण करने योग्य एक अन्य कहानी का उल्लेख किया जाता है। वह इस प्रकार है कि इब्ने वत्तूता[1] जो तनजा[2] का निवासी था, पूरे २० वर्ष पूर्व के देशो में पर्यटन करता रहा। उसने इराक, यमन तथा हिन्दुस्तान

१. शेख फ़कीह, अवू अब्दुल्लाह मुहम्मद इब्ने अब्दुल्लाह इब्ने मुहम्मद इब्ने इब्रा-हीम जो इब्ने वत्तूता के नाम से प्रसिद्ध था, तानजीर-निवासी था (७०३–७७९ हि० । १३०४–१३७७ ई०)।

२. तानजीर।

की खूब सैर की। वह देहली[1] में भी पहुँचा, जो हिन्दुस्तान के बादशाह सुल्तान मुहम्मद[2] शाह की राजधानी थी। बादशाह उसका अत्यधिक आदर-सम्मान किया करता था। वह मालकी मजहब का काजी नियुक्त कर दिया गया। वहाँ से वह मगरिब की ओर रवाना हुआ और वहाँ पहुँचकर सुल्तान अबू इनान के दरबारियो में सम्मिलित हो गया। वह कभी-कभी अपने पर्यटन की चर्चा किया करता था और ससार के विभिन्न भागो में उसने जो आश्चर्यजनक बातें देखी थी उनका उल्लेख किया करता था। हिन्दुस्तान के बादशाह की तो वह प्राय ही चर्चा करता रहता था, जिसको सुनकर श्रोता आश्चर्यचकित रह जाते थे। उदाहरणार्थ यह कि हिन्द का सुल्तान जब यात्रा हेतु निकलता तो स्त्री-पुरुष एवं बालको की जन-गणना कराकर उन सबके लिए छ मास का व्यय शाही राजकोश से अदा करने का आदेश दे जाता था। जब वह यात्रा से वापस आता तो समस्त नगर-निवासी सुल्तान का भव्य स्वागत करते थे। सब लोग बाहर निकलकर उसके चारो ओर चक्कर लगाते, फिर उसी समूह के मध्य दिरहम एव दीनार लोगो पर न्योछावर किये जाते। सुल्तान के राजप्रासाद में प्रविष्ट होने के समय तक धन-सम्पत्ति इसी प्रकार लुटायी जाया करती थी। वह इसी तरह की कहानियो का उल्लेख करता था जिनका लोग खडन किया करते थे। उन्ही दिनो की बात है कि मेरी भेंट राज्य के वजीर फारिस बिन वदरार से हुई और हम लोग इब्ने बत्तूता की कहानियो पर विचार-विनिमय करने लगे। साधारण लोगो के विचार के समान मैं उनको स्वीकार करने को तैयार न था। इस पर वजीर ने कहा कि क्या तुम भूतकाल की सल्तनतो की इन घटनाओ का केवल इस कारण खडन करते हो कि तुमने उन्हें स्वय अपनी आँखो से नही देखा है। यदि यह बात है तो तुम वज़ीर के उस पुत्र के समान हो जिसका पालन-पोषण बन्दीगृह में हुआ था।

यह कहानी इस प्रकार है कि जब एक वजीर पर राज्य की ओर से क्रोध प्रदर्शित किया गया तो उसे बन्दीगृह में डाल दिया गया। वजीर बहुत समय तक बन्दी रहा। उसके एक पुत्र पैदा हुआ। उसका भी पालन-पोषण वही हुआ। जब वह बड़ा हुआ

१. उसकी यात्रा के हिन्दी अनुवाद के लिए देखिए, सै० अ० अ० रिज़वी—"तुगलुक-कालीन भारत" भाग १ (अलीगढ़ १९५६ ई०) पृ० १५७—३०६।
२. सुल्तान मुहम्मद बिन तुगलुक १३२५—१३५१ ई०।

तो एक दिन वह अपने पिता से पूछने लगा कि "जो मास हम खा रहे है, वह किस चीज़ का है ?" पिता ने उत्तर दिया कि "वकरे का ।" पुत्र ने पूछा कि "वकरा कैसा होता है?" पिता ने वकरे का पूरा विवरण उसे वता दिया। पुत्र ने पूछा "पिता जी ! क्या वह चूहे के समान होता है ?" पिता ने कहा "वाह ! कहाँ वकरा, कहाँ चूहा ।" इसी प्रकार गौ एव ऊँट के मास के विषय में वार्त्ता हुई। इसका कारण यह था कि वज़ीर के पुत्र ने वन्दीगृह में जीवन व्यतीत करने के कारण चूहे के अतिरिक्त कोई अन्य जानवर देखा ही न था। अत वह हर जानवर को चूहे की सतान समझता था। इसी प्रकार यह सावारण वात है कि जिस वस्तु को लोगो ने न देखा हो, उससे सम्वन्वित समाचार का वह खडन कर देते हैं। यह उसी प्रकार होता है जिस प्रकार लोग आश्चर्यजनक वातो की रुचि के कारण, असम्भव वात को स्वीकार कर लेते है। अत. मनुष्य के लिए यह उचित है कि वह प्रत्येक सूचना की परीक्षा सिद्धान्त की कसौटी पर करे और निष्पक्ष भाव से विवेकशक्ति द्वारा सम्भव एव असम्भव वात की जाँच करे। जिस वात का घटना सम्भव हो, उसे स्वीकार करे और जिस वात का घटना असम्भव हो, उसे स्वीकार न करे। यहाँ पर सम्भावना का तात्पर्य बुद्धि-आवारित सम्भावना से नही है जिसका क्षेत्र वडा ही विस्तृत है, क्योकि घटनाओ की कोई सीमा निर्धारित नही की जा सकती । इसका तात्पर्य भौतिक सम्भावना से है, अर्थात् जव हम किसी वस्तु के तथ्य, गुण, शक्ति एव वैभव का पता लगा लें तो फिर उसी के अनुसार उसके विषय में निर्णय करे। जो वातें उपर्युक्त सिद्धान्तो से पृथक् हो उन्हें असम्भव समझें। "कहो, ईश्वर हमें अधिक ज्ञान प्रदान करता है।"[1]

(१९) सुल्तान अपनी कौम तथा अपनी "असवियत" वालो के विरुद्ध दासो एव आश्रितो से सहायता लेता है

यह तो ज्ञात ही है कि सुल्तान के राज्य-सम्वन्धी समस्त कार्य उसी की कौम द्वारा सम्पन्न होते हैं। उसकी कौमवाले उसकी "असवियत" वाले होते है और कठिन समय में उसके सहायक होते है। उन्ही की सहायता से वह विद्रोहियो का दमन करता है और उन्ही के भरोसे पर वह राज्य के समस्त कार्य करता है। उदाहरणार्थ विज़ारत के पदो पर भी वही आरूढ होते हैं और खराज एव करो की वसूली भी उन्ही के सिपुर्द

१. कुरान शरीफ से उद्धृत ।

होती है। कौम के यही व्यक्ति राज्य की प्राप्ति में उसका दायाँ हाथ होते है और राज्य एव शासन में उसके सहायक एवं साझीदार होते है। सक्षेप में समस्त कार्यों में उसका हाथ वँटाते है। इस प्रकार राज्य के प्रारम्भिक काल में कौम का सुल्तान के साथ यही सम्वन्ध रहता है। जव राज्य दूसरे काल-चक्र में प्रविष्ट होता है तो वादशाह स्वेच्छाचार एव मन-माना कार्य करने का आदी हो जाता है और वह अपने आपको गौरव एव श्रेष्ठता का अकेला ठेकेदार समझता है। अपनी कौम को शासन में हस्तक्षेप करने से रोकता है। जव यह स्थिति हो जाती है तो उसकी कौम के लोग उसके शत्रु हो जाते हैं। उनको रोकने के लिए तथा राज्य में हस्तक्षेप करने से बाज़ रखने के लिए सुल्तान अन्य कौमो से सहायता लेता है। इन्ही अपरिचित लोगो की सहायता से वादशाह अपनी कौम पर प्रभुत्व स्थापित रखता है और राज्य का सचालन भी इन्ही के हाथ में दे देता है, अत. उस युग में सुल्तान के सवसे बड़े विश्वास-पात्र वही होते है। सुल्तान के विशेष लोगो में उनकी गणना होती है। वे सम्मान एव श्रेष्ठता प्राप्त कर लेते है, कारण कि वही अपरिचित लोग सुल्तान की कौम को उसके उचित अधिकारो से वचित रखते है और उसे उस गौरव एव श्रेणी से हटाते है जिसकी वह पूर्व से आदी होती है। इसी मार्ग में वे प्राणो की वाज़ी भी लगा देते है और मौत की चिन्ता नही करते। जव अपरिचित लोगो के इस प्रकार के वलिदान वादशाह की सेवा मे प्रस्तुत किये जाते है तो वादशाह उन्हें विशेष रूप से सम्मानित करता है। उन पर सव कुछ न्योछावर करता है और उन्हें वह सव कुछ प्रदान करता है जो कभी अपनी कौम को दिया करता था। राज्य के महत्त्वपूर्ण कार्य, वडे-वडे पद, उदाहरणार्थ विजारत, सिपहसालारी एव दीवानी के विभाग उन्हें सौप देता है। उनको ऐसी-ऐसी उपाधियाँ प्रदान की जाती है जो उसकी कौमवालो को भी न प्राप्त थी, कारण कि बलिदानो की वजह से वे लोग वादशाह के वहुत वडे निष्ठावान्, हितैषी एव मित्र हो जाते है, किन्तु सल्तनत की यह शोचनीय दशा उसके अन्त एव विनाश की द्योतक होती है। यह घातक रोग उस "असवियत" को विनाश के घाट उतार देता है जो कभी प्रभुत्व प्राप्त करने का साधन थी। इधर राज्यवाले जब वादशाह को अपनी ओर से उपेक्षा करते हुए देखते है और पता लगा लेते है कि वादशाह के हृदय में उनका कोई स्थान नही, तो वे भी वादशाह के प्रति ईर्ष्या एव द्वेष रखने लगते है और उस पर कोई न कोई विपत्ति पड़ने की अभिलाषा अपने हृदय में छिपाये रखते है। इसका कुप्रभाव राज्य को भी भोगना पड़ता है, कारण कि वे सल्तनत के लिए ऐसा रोग वन जाते है जिसका उपचार सम्भव नही। आगामी सतानो में भी

यह रोग अपना विप फैलाये विना नही रहता, यहाँ तक कि राज्य के चिह्न भी मिट जाते हैं।

इस तथ्य के प्रमाण में वनी उमय्या के इतिहास का अध्ययन करना चाहिए कि वे किस प्रकार अपने युद्धो में और किस प्रकार राज्य के कार्यो में भी अरववालो से ही सहायता लिया करते थे। उदाहरणार्थ अमर इब्ने साद इब्ने अवी वक्कास, उवैदुल्लाह इब्ने जियाद इब्ने अवी सुफयान[1], हज्जाज बिन यूसुफ, मुहल्लव विन अवी सुफरा[2], खालिद[3] विन अब्दुल्लाह अल कसरी, इब्ने हुवैरा[4], मूसा बिन नुसैर[5], बिलाल विन अवी वुरदा इब्ने अवी मूसा अशअरी और नसर विन सैयार[6] इत्यादि। वनी अव्वास

१ उवैदुल्लाह इब्ने जियाद, उमय्या वंश का विश्वास-पात्र, अपनी कठोरता के लिए सुप्रसिद्ध था। वह २५ वर्ष की अवस्था में ६७३–७४ ई० में खुरासान का हाकिम नियुक्त हुआ। उमय्या खलीफाओ की ओर से उसने अनेक युद्धों में भाग लिया। वह ६८६ ई० में एक युद्ध में मारा गया।

२ मुहल्लव विन अबू सुफ़रा बड़ा प्रसिद्ध अरब सेनापति हुआ है। ६६३–६५ ई० में उसने कावुल तथा मुल्तान तक धावे किये। खुरासान तथा समरकन्द के हाकिमों के साथ भी वह कई अभियानों पर गया। उसकी मृत्यु ७०२ अथवा ७०३ ई० में हुई।

३. खालिद विन अब्दुल्लाह को ७०७–८ ई० अथवा ७०९–१० ई० में खलीफा वलीद ने मक्के का हाकिम (गवर्नर) नियुक्त किया। ७२४ ई० में वह खलीफा हिशाम द्वारा पूरे इराक का हाकिम नियुक्त कर दिया गया। वह कठोरता में हज्जाज से कम न था। उसको अन्त में पदच्युत कर दिया गया और अक्तूबर-नवम्बर ७४३ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

४ अवुल मुसन्ना उमर विन हुवैरा ने उमय्या खलीफा सुलेमान के समय में वैजण्टाइन वालो से घोर युद्ध किये। खलीफा यजीद द्वितीय ने उसे इराक़ तथा खुरासान का हाकिम नियुक्त कर दिया था। मार्च ७२४ ई० में खलीफा हिशाम ने उसके स्थान पर खालिद को हाकिम नियुक्त कर दिया।

५ मूसा विन नुसैर ने मग़रिव के पश्चिमी भाग तथा स्पेन को विजय किया था, उसकी मृत्यु ७१६–१७ ई० में हुई।

६. नसर विन सैयार, खुरासान का प्रसिद्ध हाकिम था। उसने मध्य एशिया के कई युद्धों में वड़ा महत्त्वपूर्ण भाग लिया। उसकी मृत्यु नवम्बर ७४८ ई० में हुई।

के राज्यकाल के प्रारम्भ में भी अरव के ही कन्धो पर राज्य का बोझ रहा, किन्तु जव राज्य ने अपना रग पलटा और समस्त गौरव एवं श्रेष्ठता केवल एक व्यक्ति-विशेष में सीमित हो गयी तो अरबो को राज्य में हस्तक्षेप करने से रोका जाने लगा। विजारत अजम के हिस्से में आयी और राज्य के कार्यों का सचालन अजम (वाले) करने लगे। वनी वरामेका, वनी सहल, वनी नववख्त और वाद में बनी वोया, तुर्क दासो मे वुगा, वसीफ उतामिश, वाकियाक इब्ने तूलून इत्यादि वारी-वारी से खिलाफत एव सल्तनत पर अधिकार प्राप्त करने लगे, तव अरब सस्थापको के हाथ से राज्य निकलने लगा और वे सम्मान एवं श्रेष्ठता से वचित होने लगे।

(२०) सल्तनतो में दासों एवं आश्रितों का हाल

सल्तनत द्वारा आश्रय प्राप्त कौमे एव कबीले शासक कौम से सम्बन्ध रखने मे विभिन्न रूप ग्रहण करते रहते हैं। कभी उनके सम्बन्ध प्राचीन एव पुराने होते हैं और कभी नये। वास्तव में "असबियत" के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति वश की प्रतिरक्षा एवं वश के प्रभुत्व द्वारा होती है, अर्थात् अपने सहायको को अन्य लोगो से वचाना एवं अन्य लोगो पर प्रभुत्व प्राप्त करना ही "असवियत" का वास्तविक उद्देश्य है। सम्वन्धियो, रिश्तेदारो एव नातेदारो का एक-दूसरे के लिए बलिदान करना एवं अन्य लोगों तथा अपरिचित लोगो में प्रत्येक का दूसरे के प्रति उपेक्षा करना स्वभाविक है। वह मित्रता एव मेल-जोल जो दासता के कारण उत्पन्न होते हैं, वे भी सहायता एव प्रतिरक्षा के सम्वन्ध मे नस्ल का स्थान ले लेते हैं, अपितु उससे अधिक गहरा प्रभाव रखते हैं। कारण कि नस्ल यद्यपि प्राकृतिक एव स्वभाविक है, किन्तु काल्पनिक भी है। वास्तविक सम्बन्ध वह है जो एक साथ रहने, एक-दूसरे की रक्षा की भावना रखने, प्राचीन मेल-जोल, एक ही स्थान पर पालन-पोषण एवं शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने एवं दु ख-सुख में एक साथ जीवन व्यतीत करने से उत्पन्न हो। जब इन साधनो से प्रेम एव निष्ठा उत्पन्न हो जाती है तो एक व्यक्ति दूसरे पर प्राण न्योछावर करने लगता है और कठिनाई के समय सहायता हेतु उद्यत रहता है। यह कोई काल्पनिक बात नही, अपितु रात-दिन की देखी-भाली बात है कि लोगो के पारस्परिक सम्वन्ध इसी प्रकार स्थापित होते हैं और यही अपना प्रभाव दिखाते हैं।

यही सिद्धान्त उपकार करने तथा उपकृत होने पर लागू होता है, कारण कि आश्रयदाता एव उपकारक और आश्रित तथा उपकृत में उपकार के कारण एक विशेष सम्वन्ध एव रिश्ता स्थापित हो जाता है, जो कुल के सम्वन्ध अथवा अन्य प्रकार के

सम्बन्धों के समान प्रभाव रखता है और दोनो पक्षो को मित्रता के वघन में वाँध देता है। उपकार के इस सम्वन्ध को हम यद्यपि कुल का सम्वन्ध नही कह सकते, किन्तु उसके फल एव लाभ सबके-सब उसमें वर्त्तमान है। फिर यदि कवीलो एव प्रभुत्व-वाली कौमो में ये सम्वन्ध राज्य की प्राप्ति के पूर्व ही स्थापित हो गये है और अब तक चले आ रहे है तो इस ऐक्य की जड़े वडी दृढ होगी। उचित भावनाओ पर इनका आधार होगा और प्रभाव एव लाभ में यह कुछ कम न होगा। दो कारणो से राज्य की प्राप्ति के पूर्व इस सम्वन्ध के स्थापित हो जाने के कारण कुल एव मित्रता के सवध मे कोई भेद-भाव न रहेगा। राज्य प्राप्त होने पर उनमें ऐसे गहरे एव निकटतम सम्वन्ध होगे कि वहुत कम लोग ही समझ सकेंगे। दोनो पक्षो में कुल के नही अपितु मैत्री के सम्वन्ध होगे। इस कारण शासक वश एव अधीनस्थ कवीले परस्पर निकटतम सवधी दृष्टिगत होगे। यदि उपकार एवं आश्रय का सम्वन्ध दोनो पक्षो मे राज्य की प्राप्ति के उपरान्त स्थापित होता है, तो राज्य उनमे पारस्परिक भेद-भाव को कायम रखता है। स्वामी अन्य होता है तथा दास अन्य। सम्बन्धी पृथक् होते है और मित्र एव दोस्त पृथक्। राज्य को इसी की आवश्यकता होती है। शासन समस्त सम्मानो एव श्रेणियों को परखकर अलग-अलग रखता है। अत देश वाले एव शासकवर्ग एक-दूसरे से विभिन्न होगे और सर्वदा अपरिचित समझे जायँगे। इनमें पारस्परिक प्रेम कम एव एक-दूसरे की सहायता की भावनाएँ कमजोर होगी और यह सवध, राज्य की प्राप्ति के पूर्व सहायता एव उपकार द्वारा जो प्रेम का सवध स्थापित हो जाता है, उसकी अपेक्षा घटिया एव दोपपूर्ण होगा।

दूसरा कारण यह है कि जब उपकार एवं आश्रय का सवध राज्य की प्राप्ति के पूर्व दीर्घकाल से स्थापित होता है, तो इस सम्वन्ध की वास्तविकता के विपय में कुछ ज्ञात नही होता और उसके रूप का पता नही चलता, अपितु अधिकाश दोनो ओर से घनिष्ठता के कारण कुल के सम्वन्ध का धोखा होने लगता, है। इस प्रकार "असबियत" भी ज़ोर पकड़े रहती है, किन्तु राज्य की प्राप्ति के उपरान्त उत्पन्न होनेवाला सम्वन्ध क्योकि निकटतम काल का होता है और अधिकाश लोग जानते है कि दोनो के मध्य में कुल का सम्वन्ध नही, अपितु उपकार एव आश्रय का सवध है, अत ऐसी अवस्था में "असबियत" भी कमज़ोर रहती है और वे स्वय पूर्व के सम्वन्ध से (जो राज्य की प्राप्ति के पूर्व स्थापित होता है) कमज़ोर होते है।

साधारण सल्तनतो एव राज्यो के लिए भी यही वात सत्य है कि यदि शासक ने राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के पूर्व ही किसी पर दया एव कृपा की है और वह

उसका आश्रित है, तो राज्य की प्राप्ति के उपरान्त यह सबध और भी दृढ हो जायगा और उपकृत के विषय मे इस तथ्य का पता न चल सकेगा, अपितु वह निकटतम सम्बन्धी, पुत्र अथवा भाई ज्ञात होगा। इसके विपरीत यदि यह सबध प्रभुत्व प्राप्त करने के उपरान्त स्थापित हुआ है तो इसको निकटतम रिश्तेदारी का सम्मान नही प्राप्त हो सकता। इसमें पहले सम्वन्धवाली वात नही उत्पन्न हो सकती। यह कोई काल्पनिक बात नही है, अपितु रात-दिन की देखी एव अनुभव की हुई वात है। राज्य अपने जीवनकाल के अन्तिम दिनो में ऐसा ही करते हैं। वे अपरिचित लोगो का उपकार करके उन्हें अपना वना लेते हैं, किन्तु इन अपरिचित लोगो को वह गौरव एव सम्मान नही प्राप्त होता जो उन लोगो को प्राप्त होता है जो राज्य के पूर्व से ही उपकृत होते है, कारण कि उनके साथ उपकार का सम्बन्ध स्थापित हुए अधिक दिन व्यतीत नही होते, दूसरे, राज्य स्वय दम तोडता होता है और समाप्त होनेवाला रहता है। उसकी छाया में किसी को अधिक लाभ नही हो सकता, अत उन लोगो का सम्मान गिरा ही रहता है।

यह भी स्पष्ट रहे कि सुल्तान अपने प्राचीन मित्रो एव उपकृतो को छोडकर नये अपरिचित लोगो को इस कारण मुँह लगाता है और उन्हें उपकार के भार से लाद देता है कि पिछले लोगो के हृदय में स्वय बादशाह के मुकावले की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और वे उसकी आज्ञाओ का उल्लघन करने लगते है। वे उसे उसी दृष्टि से देखने लगते है जिससे उसकी अपनी कौम अथवा कुलवाले देखते हैं। उन लोगों को इस वात का अभिमान होता है कि वे दीर्घकाल से बादशाह के आश्रित रह चुके है और उनके पूर्वज, वादशाह के पूर्वजों एव कौम वालो के सहचर थे अत. उनमें अह भाव एव अपनी मर्यादा की रक्षा की अत्यधिक भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। तब वादशाह को भी उनके प्रति घृणा उत्पन्न हो जाती है और वह उनकी उपेक्षा करके अन्य लोगो को अपना मित्र वनाने लगता है। क्योकि इन नये लोगो को वर्त्तमान काल में ही आश्रय प्रदान होता है, अत ये लोग उस श्रेष्ठता एव गौरव तक नही पहुँच पाते, अपितु अपनी प्राचीन अवस्था मे ही पडे रहते है। ऐसी स्थिति राज्य के अन्तिम काल में दृष्टिगत होती है और राज्य के सहायक दो वर्गो मे बँट जाते हैं, एक प्राचीन सहायको का वर्ग और दूसरे नये सहायको का वर्ग। किन्तु वास्तव मे पिछले सहायको को ही राज्य का सहायक कहा जा सकता है और नये लोग तो केवल सेवक ही होते हैं, न कि राज्य के सहायक। "ईश्वर धर्मनिष्ठ मुसलमान का मित्र है।"[1]

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

(२१) (अन्य लोगो द्वारा) सल्तनतो मे बादशाह पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है तथा उसे वश मे रखा जा सकता है

किसी कौम अथवा कबीले के किसी विशेष वंश अथवा घराने में जब राज्य स्थापित होता है और वह वश पूरी विजयी कौम में अकेला राज्य का स्वामी होकर अन्य वशो को पीछे ढकेल देता है और राज्य वशागत एक नस्ल में चलने लगता है, तब अधिकाश सल्तनत के वज़ीरो एवं बादशाह के सहचरो की ओर से बादशाह के विरुद्ध षड्यन्त्र होने लगते हैं और राज्य उस वश के हाथ से छीन लिया जाता है। इसका कारण प्राय यह होता है कि वश का कोई अयोग्य व्यक्ति अथवा बालक अपने पिता के जीवनकाल में ही राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया जाता है अथवा बादशाह की मृत्यु के उपरान्त उसके सम्बन्धियो एव निकटवर्त्तियों के प्रयत्न के फलस्वरूप सिंहासनारूढ हो जाता है। जब यह अनुभव किया जाने लगता है कि राज्य का नया उत्तराधिकारी अपनी अयोग्यता के कारण शासनप्रबंध चलाने में असमर्थ है, तो उसका कोई सहायक राज्य की बागडोर सँभालता है, चाहे वह उसके पिता का वज़ीर हो चाहे सहचर या कबीले का कोई अन्य व्यक्ति। वह राज्य का पूर्ण प्रबंध अपने हाथ में लेकर बादशाही करने लगता है, बालक को शासनप्रबंध से पृथक् रखकर भोग-विलास में ग्रस्त रखता है और राज्यव्यवस्था की ओर उसे दृष्टिपात करने भी नही देता, यहाँ तक कि राज्य का स्वामी वही हो जाता है। जब शहशाहियत की उसे चाट पड़ जाती है तो फिर वह सोचने लगता है कि शहशाहियत कभी-कभी केवल राजसिंहासन पर आसीन होकर लोगो को इनाम एव उपाधियाँ प्रदान करने तथा स्त्रियो के साथ घर की चहारदीवारी में जीवन व्यतीत करने का नाम है, और राज्यव्यवस्था एवं शासन प्रबध, हुकूमत की समस्याओ का समाधान, आदेशो एवं देश की दशा की देखभाल और छानबीन, देश की सैनिक अथवा आर्थिक दशा की देखरेख एव सीमान्तो की व्यवस्था वज़ीर के कार्य हैं। इस कारण वह इन समस्याओ को वज़ीर पर ही छोड़ देता है। इस तरह बादशाह का एक निरकुश राज्य स्थापित हो जाता है और वह तदुपरान्त उसकी सतान में चलता रहता है। इतिहास से पता चलता है कि बनी बोया[1], तुर्कों, काफूर अल-

१ बुवहहिद्स।

इख़शीदी[1] इत्यादि को पूर्व में तथा मंसूर[2] इब्ने अबी आमिर को उन्दुलस में इसी प्रकार प्रभुत्व प्राप्त हुआ।

कभी ऐसा होता है कि अधिकारहीन बादशाह असावधानी की निद्रा से जागकर अपनी स्थिति की परीक्षा करता है और फिर प्रयत्न एव परिश्रम के फलस्वरूप खोया हुआ अधिकार एवं प्रभुत्व पुन: अपने हाथ में ले लेता है और अधिकार प्राप्त करने के उपरान्त विद्रोहियो एव उन लोगों को, जिन्होने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था, खूब कुचलता है। कभी उनकी हत्या कराता है और कभी उन्हे पदच्युत कराता है, किन्तु राज्य पर इस प्रकार विरले को ही अधिकार प्राप्त होता है। क्योकि जब राज्य की शक्ति इतनी गिर जाती है कि वज़ीर एव उच्च पदाधिकारी स्वतत्र एव स्वेच्छाचारी हो जाते है, तो फिर स्थिति का सुधरना कठिन हो जाता है और राज्य वजीरो एव उच्च पदाधिकारियो के हाथ का खिलौना बना रहता है। कारण कि प्राय राज्य की यह दशा ऐसे अवसरो पर हो जाती है जब राज्य भोग-विलास का केन्द्र वन जाय, राज्य वाले समृद्धि एवं विलासिता में डूबे हुए हों, वीरता एवं पौरुष की भावनाएँ उनमें से निकल चुकी हो, लोग ऐश व इश्रत के आदी हो चुके हो और उनका पालन-पोषण इसी वातावरण में हुआ हो। ऐसी अवस्था में वे राज्य व्यवस्था के कष्टो की किस कारण चिन्ता करेंगे और स्वाधीनता एव पराधीनता में क्या भेद-भाव कर सकेंगे। वे सल्तनत का सबसे वडा उद्देश्य यह समझते हैं कि खूब रगरलियाँ मनायी जायँ और भोग-विलास में जीवन व्यतीत किया जाय। फिर राज्य के उच्च पदाधिकारियो एव स्तम्भो की ओर से इस प्रकार का अपहरण ऐसे अवसर पर होता है, जब कि शाही वश अपनी समस्त कौम को राज्य एवं शासन से निकालकर निरकुश राज्य प्रारम्भ कर देता है और सबको विना किसी अधिकार के और अपने आपको अधिकार वाला समझने लगता है।

१. क़ाफ़ूर, जो इख़शीदियों के राज्यकाल के अन्तिम वर्षों में अधिकार का स्वामी था। उसने मिस्र तथा शाम में प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था। उसकी मृत्यु ९६८ ई० में हुई।
२. अल मंसूर इब्ने अबी आमिर को उसके समय में कारडोवा में अत्यधिक प्रभुत्व प्राप्त हो गया था। उसने मलिक करीम (सम्मानित बादशाह) की उपाधि धारण कर ली थी, किन्तु स्पेन के उमय्या खलीफाओं को उसने हटाने का कभी प्रयत्न न किया। उसकी मृत्यु अगस्त १००२ ई० में हुई।

सक्षेप में ये दोनो रोग, अर्थात् वादशाह का अधिकार से वचित हो जाना और वज़ीरो एव आश्रितो का ज़ोर पकड लेना, ऐसे है जो सल्तनत में उत्पन्न होकर रहते हैं और फिर अधिकतर उनका कोई उपचार नही हो सकता। "ईश्वर जिसे चाहता है उसे अपना राज्य प्रदान करता है।"

(२२) जो लोग सल्तनत एव सुल्तान पर प्रभुत्व प्राप्त करते है वे शाही उपाधि में उसके साझीदार नही वनते

हम इस वात का उल्लेख कर चुके है कि सल्तनत एवं राज्य का आधार कौमी "असवियत" है और अन्य "असवियतें" उसकी सहायता होती है। जव प्रभुत्व वाले वश का आतक एव दवदवा सव पर छा जाता है तो फिर सल्तनत उसी वश का हक हो जाती है और वह स्वतत्र रूप से शासन करने लगता है। यही "असवियत" कौमी सल्तनत की रक्षा एव स्थायित्व की भी उत्तरदायी होती है। फिर यदि कोई महत्त्वाकांक्षी समय की चिन्ता न करके राज्य का समस्त शासन अपने अधीन कर लेता है और वह "असवियत" वाला भी है, किन्तु उसकी "असवियत" देशवालो की "असवियत" में लीन है और राज्य उसे वशागत नही प्राप्त हुआ है, तो ऐसी दशा में वह स्वाधीन वनने का प्रयत्न नही करता, अपितु सल्तनत के लाभो द्वारा लाभान्वित होता है, उदाहरणार्थ समस्त शासनप्रवध वह अपने हाथ में ले लेता है, राज्य के समस्त प्रवध को सँभालता है, देश के सियाह-सफेद का स्वामी वनता है, किन्तु वाह्यरूप में उसके शहंशाहियत के दिखावे से पृथक् होने के कारण लोग इसी भ्रम में रहते हैं कि वह वादशाह का कर्मचारी एव आज्ञाकारी है। किन्तु परदे के पीछे उसी के आदेश मुल्क में प्रचलित होते हैं,अत. वह कभी शाही उपाधि ग्रहण नही करता और ऐसी स्थिति से, जिसमें यह पता चले कि वह राज्य प्राप्त करने का इच्छुक एव स्वतत्र होना चाहता है—यद्यपि परदे के पीछे उसे पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है, वचता रहता है। उसके अधिकारो पर स्वय वादशाह की ओर से आवरण पडता है, कारण कि वह प्रारम्भ से ही राज्य के कार्यो से पृथक् होकर भोग-विलास में ग्रस्त होते हुए राज्य का समस्त भार उसके कधो पर रख देता है। लोगों को भ्रम होता है कि वह अव भी वादशाह का सहायक है और उसी के द्वारा नियुक्त है। वास्तव में अपहरणकर्त्ता इतना शक्तिहीन होता है कि लोग उसके प्रभुत्व को स्वीकार करने पर किसी प्रकार तैयार नही होते और यदि वह भूलकर भी खुल्लम-खुल्ला राज्य की वागडोर सँभालने का इरादा कर वैठे तो वादशाह की "असवियत" वाले उस पर टूट पड़ेंगे और उसका विनाश कर देंगे। इन कारणो से वह स्वय शहशाहियत की ओर

रुख नही करता और उसे अपने लिए खतरनाक समझता है। इस प्रकार अब्दुर्रहमान बिन मसूर बिन अबी आमिर[1] को इसी स्थिति का सामना करना पड़ा, जब कि उसने शाही उपाधि ग्रहण करने का प्रयत्न किया और हिशाम[2] एव उसके कुटुम्ब वालों की बराबरी का प्रयत्न करने लगा। वह अपने पिता एव भाई की भाँति केवल राज्य पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त करने से संतुष्ट न हुआ और हिशाम से इस बात की माँग कर बैठा कि उसे खिलाफत का वली अहद बना दिया जाय। तब बनूमरवान एव समस्त कुरैश उसके विरोधी हो गये और हिशाम के चाचा के पुत्र मुहम्मद बिन (हिशाम बिन) अब्दुल जब्बार बिन नासिर से बैअत कर ली और आमिर के सहायकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फलत उसका राज्य नष्ट हो गया और उसका विनाश हो गया। उसका खलीफा मुअय्यद मारा गया और उसके स्थान पर खलीफा के वश में से किसी अन्य को सिंहासनारूढ कर दिया गया। सक्षेप में राज्य की दशा अस्त-व्यस्त हो गयी। "ईश्वर ही सर्वोत्कृष्ट वारिस है।"

(२३) सल्तनत के वास्तविक गुण एवं उसकी किस्में

देश एव राज्य की आवश्यकता मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। इसका प्रमाण हम दे चुके हैं, कारण कि मनुष्य का जीवन एवं अस्तित्व मानवजाति से मिल-जुलकर रहने तथा एक-दूसरे की सहायता से जीविकोपार्जन एव जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने के अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से सम्भव नही। जब मनुष्य सामूहिक जीवन व्यतीत करने पर विवश हुआ, तो मनुष्य के पारस्परिक व्यवहार, लेन-देन एवं एक-दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति के द्वार भी खुले। क्योकि मनुष्य में स्वभाविक रूप से अत्याचार एव शोषण की भावनाएँ भी पायी जाती हैं, अत. कोई न कोई एक-दूसरे को उसके अधिकार से वचित करने की चेष्टा किया करता है। उसके मुकाबले में पीडित अपने अधिकारो की प्रतिरक्षा का प्रयत्न एव सघर्ष करता है, कारण कि क्रोध

१. वह अन्नासिर के नाम से प्रसिद्ध था। उसकी मृत्यु ३९९ हि० (१००९ ई०) में हुई। अल-मंसूर का एक अन्य प्रिय पुत्र अब्दुल मलिक अल्-मुजफ्फर नामक था।

२. हिशाम द्वितीय कारडोवा (करतेबा) का १०वाँ उमय्या शासक था जिसन ९७६–१००९ ई० तथा १०१०–१०१३ ई० तक भली-भाँति राज्य किया।

एवं आतक की भावनाएं सभी में पायी जाती है । फलत. सघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और आपस में मारकाट होने लगती है । देश नष्ट हो जाता है । रक्त की नदियाँ वहती हैं । असख्य प्राण नष्ट हो जाते है । इस प्रकार मानव-सतान के नष्ट हो जाने की शंका उत्पन्न होने लगती है, यद्यपि ईश्वर ने उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व लिया है। निष्कर्प यह निकला कि मनुष्यो का विना किसी शासक अथवा वादशाह के स्वतत्र रूप से जीवित रहना असम्भव है, अपितु ऐसे किसी शासक या प्रभुत्व वाले व्यक्ति का होना आवश्यक है जो एक को दूसरे पर अत्याचार करने से रोके और अपने प्रभुत्व एव आतक से सवको अपने वश में रखे और किसी को आज्ञा के क्षेत्र से वाहर निकलने न दे । उसको यह प्रभुत्व एवं आतक "असवियत" द्वारा प्राप्त होता है, कारण कि हम उल्लेख कर चुके है कि माँगें एव प्रतिरक्षा सम्वन्धी वातें "असवियत" के विना कदापि पूर्ण नही होती । क्योकि सल्तनत को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त है और इसके समान कोई अन्य सम्मान नही अत प्रत्येक के हृदय में उसकी प्राप्ति की इच्छा होती है और जिन्हें यह पद प्राप्त होता है उनको उसकी रक्षा में अपने वचाव के लिए नाना प्रकार के उपाय सोचने पड़ते है और ये दोनो उद्देश्य, माँगे एव प्रतिरक्षा "असवियतो" के विना प्राप्त नही हो सकती । इसके अतिरिक्त "असवियतें" भी नाना प्रकार की होती है । प्रत्येक का अधिकार एव प्रभुत्व अपनी ही कौम तथा कवीले पर होता है, किन्तु प्रत्येक कवीले एव कौम में एक वादशाह नही होता । वादशाह वास्तव में वह है जो समस्त प्रजा को अपने सामने झुका ले । राजस्व एव खराज वसूल कर सके । अपने राज्य की सभी दिशाओ में सेना नियुक्त कर सके । सीमातो का उचित प्रवध कर सके। उस पर किसी अन्य का अधिकार न हो । ऐसा ही व्यक्ति वादशाह कहलाता है। यदि उसकी "असवियत" एव प्रभुत्व उपर्युक्त समस्याओ में से किसी के समाधान में असमर्थ है, उदाहरणार्थ वह सीमातो का उचित प्रवध नही कर सकता, अथवा राजस्व एव खराज वसूल नही कर सकता, अथवा उचित स्थान एव अवसर पर सेना की नियुक्ति नही कर सकता, तो वह उतना ही असफल वादशाह है और उसकी शहशाहियत में उतनी ही कमी है ।

कीरवानी अगालेवा के राज्यकाल में वरवर मुलूक और अब्वासी खिलाफत के प्रारम्भ में अधिकाश अजम मलिक इसी प्रकार के थे । इस तरह यदि वादशाह की "असवियत" अन्य "असवियतो" को अपने वश में न कर सके और उन पर प्रभुत्व न प्राप्त कर सके, अपितु वह स्वय किसी शक्ति के अधीन हो तो ऐसा वादशाह भी अपनी सल्तनत एव अपने प्रभुत्व में खोटा एव अधूरा रहता है । इसी प्रकार के अमीर एव शासक राज्य की विभिन्न दिशाओ में होते हैं, जो सव मिलकर किसी एक

विस्तृत राज्य के अधीन रहते हैं। जब किसी सल्तनत का प्रभावक्षेत्र बहुत फैल जाता है तो उसके दूरस्थ स्थानो के छोटे-छोटे शासक एव हाकिम अपने केंद्रीय शासन के अधीन अपना राज्य चलाते हैं। उदाहरणार्थ सिनहाजा, उबैदीईन के विस्तृत राज्य के अधीन और जनाता कभी बनी उमय्या के अधीन और कभी उबैदीईन के अधीन रहते थे। यही दशा अजम के मलिको की थी जो अब्बासियो के राज्य की छत्र-छाया मे हुकूमत करते थे। फारस के विभिन्न वशो के शासक सिकन्दर एव यूनानियो के अधीन राज्य करते थे। इतिहास मे इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं। "ईश्वर अपने दासो पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित रखता है।"

(२४) शासन-प्रबंध में बादशाह का संयम से आगे बढ़ जाना राज्य के लिए प्राय हानिकारक होता है और उससे राज्य का विनाश हो जाता है

यह समझ लेना चाहिए कि प्रजा की उन्नति एवं उपकार सुल्तान के व्यक्तित्व, उसके शरीर, उसके रूप-रग एव सुन्दरता, उसके स्वास्थ्य, विद्वत्ता एव विवेक तथा बुद्धि पर निर्भर नही, अपितु प्रजा की उन्नति, उसका उपकार एवं हित उस संबध मे निहित हैं जो बादशाह को प्रजा द्वारा प्राप्त है। कारण कि सल्तनत एवं राज्य विशेष सम्बन्ध को कहते हैं और यह सम्बन्ध दोनो पक्षो मे पूर्ण रूप से निश्चित होता है। अतः इस प्रकार सुल्तान वास्तव में वह हुआ जो प्रजा का स्वामी हो और उसके कार्यो को सँभालता हो। अर्थात् सुल्तान वह है जिसकी कोई प्रजा हो और प्रजा वह है जिसका कोई सुल्तान एव बादशाह हो। अत जिस प्रकार का सबध सुल्तान प्रजा के साथ रखता है उसी के अनुसार हम सल्तनत एव शासन का नाम रख देते हैं। अब यह सल्तनत एवं शासन यदि न्याय एव उचित सिद्धान्तो पर आधारित है और भली-भाँति चल रहा है तो बादशाह के व्यक्तित्व से प्रजा पूरा-पूरा लाभ उठायेगी और उसकी आवश्यकताओ का प्रबध उचित रूप से हो सकेगा। यदि इसके विपरीत राज्य दुराचार एवं बुराई पर आधारित है और राज्य-व्यवस्था अत्याचार के सिद्धान्तो पर हो रही है, तो यह राज्य प्रजा के लिए हानिकारक होगा और नष्ट हो जायगा। दूसरे शब्दो में इसे इस प्रकार कहना चाहिए कि राज्य के गुण मृदुलता एव नरमी मे निहित है, कारण कि यदि बादशाह अत्याचारी, कठोर एव क्रूर है, प्रजा को अधिकतर दंड देता रहता, अपनी प्रजा के अवगुणो एवं दोषो की खोज में तल्लीन रहता है, तो ऐसी दशा में लोग आतकित एवं अपमानित हो जायँगे और वे झूठ, छल, धूर्तता एव जाल द्वारा बादशाह से अपने प्राणों

की रक्षा किया करेंगे। फिर एक समय तक यही कार्य करने से ये दोष उनके स्वभाव में प्रविष्ट हो जायँगे। उनके अनुभव में भी दोष उत्पन्न हो जायँगे। उनके चरित्र नष्ट हो जायँगे। कभी ऐसा होगा कि युद्ध एव प्रतिरक्षा के अवसर पर प्रजा वादशाह का साथ छोड देगी और किसी सकट के समय विश्वासघात कर देगी। ऐसी दशा में सहायता एव प्रतिरक्षा का कोई उपाय न हो सकेगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्रजा वादशाह की हत्या पर उद्यत हो जाती है और राज्य नष्ट हो जाता है तथा समस्त व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। यदि प्रजा की ओर से इस प्रकार की कोई वात प्रस्तुत न भी हो और वादशाह कुछ समय तक अपनी प्रजा पर अत्याचार करता रहे तो कम से कम "असवियत" तो नष्ट हो ही जायगी और सहायता से वचित होने के कारण राज्य की नीव खोखली पड जायगी।

यदि वादशाह कठोर नही, अपितु प्रजा के साथ नरमी का व्यवहार करता है, उसकी भूलो को क्षमा करता है, तो प्रजा भी उससे स्नेह करने लगती है। कष्टो में उसकी प्रतीक्षा किया करती है। उससे हृदय से प्रेम करने लगती है। यदि वादशाह का किसी शत्रु से युद्ध हो जाय तो प्रजा उसकी रक्षा में प्राण की वाज़ी लगा देती है, अत इस दशा में राज्य के समस्त अग ठीक रहते हैं। अव रहे राज्य से लाभ, तो वे इस प्रकार हैं कि वादशाह प्रजा के साथ दया एवं कृपापूर्वक व्यवहार करे, उसकी रक्षा में प्रयत्नशील रहे। कभी-कभी प्रतिरक्षा सवधी उत्तरदायित्व को पूरा करने से राज्य की वास्तविकता पूरी हो जाती है और उसका कर्त्तव्य पूर्ण हो जाता है। अव प्रजा के प्रति वादशाह की अधिक दया एव उपकार, उसके नरमी के व्यवहार में सम्मिलित हैं, जो वह अपनी प्रजा के प्रति प्रदर्शित करता है। प्रजा की आर्थिक दशा को ठीक करना भी नरमी के व्यवहार से सवधित है। यह उसका कर्त्तव्य नही। सक्षेप में प्रजा के प्रति दया एव कृपापूर्वक व्यवहार करने से वादशाह अपनी प्रजा के हृदय को आकृष्ट कर लेता है और उसकी प्रजा उस पर हृदय से अपने प्राण न्योछावर करने को तैयार रहती है।

फिर इस तथ्य को भी समझ लेना चाहिए कि कुशाग्र वुद्धि एव विवेकवाले वाद-शाहो में मृदुलता एव नरमी की भावनाएँ वडी कम होती हैं। भोले-भाले एव सीधे-सादे लोगो में ही यह नरमी की भावनाएँ अधिक पायी जाती हैं। विवेक एवं तीक्ष्ण वुद्धि और सूझ-वूझ वाले वादशाहो में मृदुलता इस कारण कम पायी जाती है कि वह अपनी कुशाग्र वुद्धि एव सूझवूझ के कारण कार्यो के परिणाम को पूर्व से ही समझ लेता है और वहाँ तक प्रजा की वुद्धि पहुँचने में पूर्णत असमर्थ होती है। इन्ही परिणामो को प्राप्त करने के उद्देश्य से वह प्रजा पर उसकी सामर्थ्य से अधिक भार डाल देता है

और प्रजा बेचारी नष्ट हो जाती है। इसी बात को दृष्टि मे रखकर मुहम्मद साहब ने कहा है—"तुममे जो लोग सबसे कमजोर हो उनके पीछे-पीछे चलो।"

इसी कथन को ध्यान मे रखकर शरीअत के आदेशानुसार शासक को अत्यधिक बुद्धिमान् न बनना चाहिए। इसका प्रमाण जियाद बिन अबी सुफयान[1] की कहानी से, जब कि हज़रत उमर फारूक ने उसे इराक के राज्य से पदच्युत किया, मिलता है। जियाद ने पूछा—"हे अमीरुल मोमिनीन! क्या आपने मुझे इस कारण पदच्युत किया है कि मैं शासनप्रबंध करने मे असमर्थ हूँ, अथवा मैंने कोई अपहरण किया है।" उत्तर मिला कि "इन दोनो कारणो में से किसी कारण से मैंने तुमको पदच्युत नही किया। मुझे तुम्हारी असाधारण तीक्ष्ण बुद्धि से खटका पैदा हो गया कि कही तुम अपनी प्रजा के लिए कष्ट का कारण न बन जाओ।" इस प्रकार फिकह्-वेत्ताओ ने शासक के लिए यह शर्त लगा दी है कि वह जियाद इब्ने अबी सुफयान तथा अमर बिन आस के समान अत्यधिक बुद्धिमान् एव राजनीतिज्ञ न हो, कारण कि ऐसी दशा में शासक द्वारा अत्याचार एव जुल्म तथा प्रजा पर सामर्थ्य से अधिक भार पड जाने की आशका बनी रहती है। इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजनीतिज्ञ के लिए अत्यधिक बुद्धिमान् एव समझदार होना बहुत बड़ा दोष है, न कि गुण।

स्पष्ट सिद्धान्त है कि मानव के गुणो में से किसी एक का भी सीमा से अधिक बढ जाना दोप का कारण बन जाता है। उत्तम केवल मध्य का मार्ग ही है। दान-पुण्य मध्य के मार्ग पर होने के कारण उत्कृष्ट हैं और उनके दोनो सिरो पर अपव्ययता एव कृपणता हैं जो दोनो ही अवगुण हैं। वीरता भी मध्य वर्ग की होने पर प्रशसनीय है। यही बात अन्य गुणो के विषय में भी कही जा सकती है। यही कारण है कि जिस व्यक्ति मे उच्च कोटि का विवेक होता है उसको शैतानी गुणो से सम्पन्न बताया जाता है और कहा जाता है कि वह तो बना-बनाया शैतान अथवा अत्यत धूर्त है। "ईश्वर जिसे चाहता है, उसे पैदा करता है।"[2]

१ जियाद बिन अबीही को मुआविया ने इराक का हाकिम नियुक्त किया। वह प्रथम हि० में पैदा हुआ और ५३ हि० (६७३ ई०) में मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह हज़रत उमर के जीवनकाल के अन्तिम वर्षों में बसरे का हाकिम नियुक्त हो गया था। इतिहासकारों ने उसकी तथा हज़रत उमर की कई वार्त्ताओं का उल्लेख किया है। वह मुआविया का सौतेला भाई बताया जाता है।

२. कुरान शरीफ़ से उद्धृत।

राजनीति में "शरा" के बनानेवाले का ठीक ठीक उत्तराधिकारी एव जानशीन होना है। इस तथ्य को भली-भाँति समझ लेना चाहिए, कारण कि इससे अन्य विवरणो के समझने में सहायता मिलेगी। "ईश्वर ही बुद्धिमान् है और सब कुछ जानता है।"

(२६) खिलाफत एव उसकी शर्तो के सम्बन्ध मे मुसलमानो का मतभेद

अभी इस बात का उल्लेख हो चुका है कि "खिलाफत" वास्तव मे धर्म की रक्षा एव देख-भाल और सासारिक राजनीति में शरा के बनानेवाले का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करने और उसका उत्तराधिकारी बनने का नाम है। इसे "खिलाफत" भी कहते है और "इमामत" भी। उत्तराधिकारी एव नायब को खलीफा भी कहते है और इमाम भी। इमाम शब्द नमाज़ के इमाम के समान है। जिस प्रकार नमाज़ के इमाम का अनुसरण किया जाता है, उसी प्रकार समकालीन इमाम का भी अनुसरण करना चाहिए। इसी कारण इसे "इमामते कुबरा[1]" भी कहते है। "खलीफा" को खलीफा इस कारण कहा जाता है कि वह नबी के अनुयायियो में नबी का उत्तराधिकारी एव नायब होता है। कभी उसे केवल खलीफा कहा जाता है और कभी ईश्वर के रसूल का खलीफा। ईश्वर का खलीफा कहकर सम्बोधित करने में मतभेद है, किन्तु कुछ आलिम लोगो ने इसकी भी अनुमति दे दी है। इसका कारण यह है कि सभी मनुष्यो को भूमि पर ईश्वर का खलीफा होने का सम्मान प्राप्त है, अत. बादशाह को यह सम्मान सबसे बढकर हासिल है, जैसा कि ईश्वर ने कहा है—"मैं पृथ्वी पर अपना खलीफा बनाना चाहता हूँ।" और "उसने पृथ्वी पर तुम्हें अपना खलीफा बनाया।"[2] किन्तु अधिकाश आलिम प्रत्येक व्यक्ति को अल्लाह का खलीफा कहकर सम्बोधित करने में सहमत नही, क्योकि उनकी राय मे उपर्युक्त आयतो[3] में इस खिलाफत की चर्चा नही है। इसके अतिरिक्त यह भी कारण है कि एक बार हज़रत अबू बक्र को अल्लाह का खलीफा कहकर सम्बोधित किया गया तो आपने इसका खडन किया और कहा—"मैं अल्लाह का खलीफा नही अपितु रसूलल्लाह का खलीफा हूँ।" दूसरा प्रमाण यह है कि खिलाफत ऐसे व्यक्ति की की जाती है जो उपस्थित न हो। अल्लाह प्रत्येक समय उपस्थित है अत उसकी खिलाफत एव उसके नायब होने का कोई अर्थ नही।

१ बडी इमामत।
२ कुरान शरीफ से उद्धृत।
३ कुरान शरीफ के वाक्यो।

खलीफा तथा इमाम की नियुक्ति परमावश्यक है। उसकी आवश्यकता सहाबा[1] एव तावेईन के कथनो द्वारा भी प्रमाणित होती है। जव मुहम्मद साहब की मृत्यु हुई तो सहाबा ने तुरन्त हज़रत अबू बक्र के प्रति बैअत[2] की और अपने राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य उन्ही को सौंप दिये। मुहम्मद साहव की मृत्यु के उपरान्त भी खलीफा एव इमाम के चुनाव को वडा महत्त्व प्राप्त रहा और प्रत्येक काल मे इसी सिद्धात पर आचरण होता रहा। मनुष्य को कभी भी विना किसी नियत्रण के नही रखा गया। इस प्रकार खलीफा एव इमाम की नियुक्ति पर मुहम्मद साहव के सभी अनुयायियो का सहमत होना सिद्ध हो जाता है। कुछ लोगो का मत है कि इमामत की स्थापना इजमा[3] के अनुसार नही, अपितु बुद्धि के अनुसार आवश्यक है। उम्मत ने सर्वसम्मति से वुद्धि की आवश्यकता को प्रचलित किया है। वुद्धयनुसार इमामत इसी लिए आवश्यक है कि मनुष्य का सामाजिक जीवन इमाम के विना सम्भव नही, क्योकि जव मनुष्य मिल-जुलकर रहेंगे तो उनके उद्देश्यो मे परस्पर संघर्ष होने के कारण वे विना युद्ध किये नही रह सकते। अत जब तक कोई न्यायकारी शासक न होगा, ससार रणक्षेत्र वन जायगा और अन्त में सभी नष्ट हो जायँगे,हालाँ कि मानव-जीवन की रक्षा "शरीअत" का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है।

दार्शनिको ने मनुष्यो मे "नवूअत" की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए इसी तथ्य को अपने समक्ष रखा है। इस तर्क में जो दोष है उसे भी हम स्पष्ट कर चुके हैं। उनके तर्क की एक प्रस्तावना तो यह है कि न्यायकारी हाकिम अल्लाह की शरीअत लेकर आता है, जिसे सभी मनुष्य अपना धार्मिक विश्वास समझकर हृदय से उसे स्वीकार कर लेते हैं। यह सिद्धान्त इस कारण स्वीकार नही किया जा सकता कि कभी-कभी कोई हाकिम आतक एव निरकुशता द्वारा भी सब पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है, "शरीअत" का उसमें कोई हाथ नही होता। उदाहरणार्थ मजूसी कौम अथवा ऐसी कौमों के, जो "अहले किताव" नही और दीन का प्रचार जिन तक पहुँचा ही नही, राज्य भी राज्य ही कहलाते हैं जो "शरीअत" के अधीन नही, अपितु निरकुशता एव आतक पर आधारित हैं। फिर दार्शनिको के कथनो के खडन में हम यह भी कह सकते है कि लड़ाई-झगड़े को शान्त करने के लिए क्या यह उचित नही कि वुद्धि के प्रकाश में प्रत्येक व्यक्ति को

१. मुहम्मद साहव के सहायक, मित्र।
२. अधीनता की शपथ।
३. विचारों में मतैक्य।

अत्याचार एव निरकुशता के दोप समझाये जायँ और इस प्रकार मार-काट की रोक-थाम की जाय। क्या यह आवश्यक है, जैसा कि विद्वानो का मत है कि झगडो का निपटारा केवल "शरीअत" के अनुसार एव इमाम की नियुक्ति द्वारा हो ? जिस प्रकार इमाम की नियुक्ति द्वारा झगडे समाप्त किये जा सकते हैं, उसी प्रकार प्रभावशाली बादशाह की नियुक्ति द्वारा भी उनको मिटाया जा सकता है, अथवा लोग स्वय समझ-बूझकर जुल्म एव अत्याचार को त्याग सकते हैं। अत दार्शनिको का तर्क जो इस प्रस्तावना का आधार है, अधिक वजन नही रखता और यह स्वीकार करना पड़ता है कि "खिलाफत" एव "इमामत" की आवश्यकता केवल हज़रत मुहम्मद के अनुयायियो की सर्वसम्मति के सिद्धान्त पर आधारित है।

कुछ लोगो का मत पूर्णत इससे भिन्न है। उनके मतानुसार इमाम की नियुक्ति न तर्कानुमोदित है और न शरा द्वारा। मोतजेला में से असम[1] इसी मत का अनुयायी है और कुछ खारजी भी इसी मत पर निर्भर है। उनके लिए तो इतना ही आवश्यक है कि "शरीअत" के आदेश पर ससार चलने लगे। यदि सब लोग मिल-जुलकर न्यायपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगें और दैवी आदेशो के प्रचलित कराने में सगठित रूप से कार्य करने लगें तो फिर इमाम की नियुक्ति की आवश्यकता ही नही रह जाती। किन्तु मुसलमानो की सर्वसम्मति इसके विरुद्ध है अत यह मत ठीक नही। लोगो के इमामत को आवश्यक न समझने और इस प्रकार का मत स्वीकार कर लेने का यह कारण है कि राज्य प्राय अत्याचार, जुल्म, लोगो की धन-सम्पत्ति के अपहरण एव सासारिक आनन्दो द्वारा लाभान्वित होने का साधन है। सुल्तान ऐसा व्यक्ति होता है जो इन सब कुकृतियो में तल्लीन रहे, यद्यपि "शरीअत" इन कुकर्मो की निन्दा से भरी पडी है। इन कर्मो को वह बहुत ही बुरा बताती है। इनके परित्याग पर बडा ज़ोर देती है। ऐसी दशा में इमाम अथवा हाकिम की आवश्यकता का किस कारण अनुभव किया जाय और उसे क्यो उचित समझा जाय। किन्तु इनको यहाँ धोखा हुआ है, कारण कि "शरीअत" ने केवल सल्तनत की ही निंदा नही की और उसके स्थायित्व को ही बुरा नही बताया, अपितु उन दोषो एव बुराइयो को भी स्पष्ट किया है जो निरकुशता

१. प्रारम्भिक मोतज़ेला में अल-असम को बड़ा महत्त्व प्राप्त है। वह ८०० ई० के लगभग जीवित था। मावरदी ने भी खिलाफत सम्बन्धी उसके विचारो पर "अल-अहकामु-स्सुल्तानिया" नामक अपने ग्रंथ में वाद-विवाद किया है।

एव अत्याचार अथवा सासारिक भोग-विलास के लोभ से उत्पन्न होती हैं। इनकी वुराई में तो कोई सन्देह नही, किन्तु "शरीअत" ने जहाँ उन दोषो को स्पष्ट किया है वहाँ ससार में न्याय की स्थापना, धार्मिक आदेशो के प्रचार, उनकी रक्षा इत्यादि सभी की प्रशसा की है और इन कार्यो के कारण लोगो को पुण्य एव परलोक के लाभ की आशा दिलायी है। इस प्रकार इमामत के अच्छे एव वुरे दो रूप हैं। वुरे रूप की "शरीअत" ने निंदा की है और अच्छे रूप की प्रशसा, इमामत एव सल्तनत के मौलिक रूप की वुराई नही की है और न उसके परित्याग का आदेश दिया है। इसका उदाहरण इस प्रकार है कि "शरीअत" ने वासना एव क्रोध की निन्दा की है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि ये दोनो भावनाएँ होनी ही न चाहिए, कारण कि वहुत-से स्थानो पर इनकी भी आवश्यता होती है। इनकी वुराई का उद्देश्य यह है कि अनुचित मार्गो मे और "शरीअत" के आदेशो के विरुद्ध इन शक्तियो से काम न लिया जाय। यो तो हजरत दाऊद[1] एव सुलेमान[2] जैसे लोग महान् राज्यो के स्वामी हुए हैं जिनके समकक्ष कोई नही मिलता, यद्यपि दोनो ही वड़े सम्मानित नवी थे, और ईश्वर के निकट प्राणियो मे, सर्वश्रेष्ठ एव सम्मानित। ऐसी दशा में इमामत एवं सल्तनत मूल रूप से किस कारण दोपपूर्ण कही जा सकती है ?

इसके अतिरिक्त हम यह भी कहते हैं कि इमामत को अनिवार्य न समझकर उसकी उपेक्षा करने से "मोतजेला" को कोई लाभ नही पहुँचा, कारण कि इसे तो वे भी स्वीकार करते हैं कि "शरई" आदेशो का प्रचार अनिवार्य एवं परमावश्यक है। यह "असबियत" एव प्रभुत्व द्वारा सम्भव है और "असवियत" की यह स्वाभाविक माँग है कि कोई वादशाह एव शासक होना चाहिए, अत शासक एव वादशाह का होना आवश्यक हो गया, चाहे दिखाने को इमाम न नियुक्त किया जाय। इस प्रकार वे जिस वात से वचे थे, वही उनके सामने आयी।

जव यह सिद्ध हो गया कि इमाम की नियुक्ति इजमा के अनुसार आवश्यक है, तो उसका रूप "फर्जे किफाया"[3] के समान है और यह देश के प्रभावशाली व्यक्तियो का

१. डैविड।
२. सालोमन।
३. फर्ज (कर्त्तव्य) की दो किस्में हैं, "फर्जे आम", प्रत्येक मनुष्य का अलग अलग कर्त्तव्य, जैसे नमाज पढ़ना, रोजा रखना इत्यादि, और दूसरी किस्म "फ़र्जे किफाया", पूरी उम्मत अथवा हजरत मुहम्मद के अनुयायियों के समाज का कर्त्तव्य।

कर्त्तव्य है कि वे किसी व्यक्ति को इमाम चुनकर नियुक्त करें और समस्त प्राणियो के लिए यह अनिवार्य है कि उसकी आज्ञाकारिता से मुंह न मोडें। कारण कि ईश्वर ने कहा है—"ईश्वर के आदेशो, उसके रसूल के आदेशो तथा तुममें जो लोग अधिकार के स्वामी हो, उनके आदेशो का पालन करो।"[1]

एक ही समय में दो इमामो का नियुक्त करना सम्भव नही। आलिम लोग कुछ हदीसो के आधार पर इस बात से सहमत है। ये हदीसें मुस्लिम[2] की सहीह नामक पुस्तक के "इमारह" नामक अध्याय में मौजूद है। वे इस सिद्धान्त की स्पष्ट रूप से द्योतक हैं।

अन्य लोगो का मत है कि दो इमामो के सिद्धान्त का यह अर्थ है कि एक ही स्थान पर अथवा पास-पास दो इमाम न हो। जब दूरी अधिक हो और इमाम दूर के भू-भाग का भली-भाँति शासनप्रबध न कर सके तो वहाँ लोकहित की दृष्टि से दूसरा इमाम नियुक्त किया जा सकता है। जो विद्वान् इस मत को मानते है उनमें सर्वोत्कृष्ट अबू इसहाक अल-इसफरायिनी हैं।[3] इमामुल हरमैन[4] ने भी "किताबुल इरशाद" नामक ग्रथ में इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है। उन्दुलुस या मगरिब के विद्वान् भी इसी मत का अनुमोदन करते है। उन्दुलुस के आलिमो की बहुत बडी सख्या ने उमय्या खलीफा अब्दुर्रहमान अन्नासिर एव उसके वश वालो की बैअत कर ली थी और उन्हें "अमीरुल मोमिनीन" कहते थे। "अमीरुल मोमिनीन" की उपाधि, जैसा कि हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे, केवल खलीफाओ को ही दी जाती है। कुछ समय उपरान्त मगरिब में मुवह्हेदीन ने भी यही किया।

कुछ आलिम इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नही कि जहाँ तक इजमा

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।
२. मुस्लिम बिन हज्जाज नीशापुरी अथवा कशमिरी सहीह मुस्लिम के, जो मुहम्मद साहब की हदीसो का संग्रह है, संकलनकर्त्ता थे। उनकी मृत्यु ८७५ ई० में हुई। "सहीह मुस्लिम" को सहीह बुखारी के समान सुन्नी लोग बड़ा विश्वस्त ग्रन्थ मानते हैं और दोनों ग्रंथ सहीहैन के नाम से प्रसिद्ध हैं।
३. इबराहीम बिन मुहम्मद अल इसफरायिनी की मृत्यु ४१८ हि० (१०२७ ई०) में हुई।
४. अबुल मआली अब्दुल मलिक बिन अब्दुल्लाह अल जुवैनी (४१९–४७८ हि०। १०२८–१०८५ ई०)।

का प्रश्न है, दो इमाम हो सकते हैं। यह कोई प्रमाण नही, कारण कि यदि इस प्रश्न पर कोई इजमा होता तो अबू इसहाक तथा इमामुल हरमैन इसका अवश्य विरोध करते। उन्हें इजमा के महत्त्व का अन्य लोगो की अपेक्षा अधिक ज्ञान था। इमाम अल मजारी[1] तथा अन्नवाई[2] के मत का उपर्युक्त हदीस[3] के आधार पर खडन हो चुका है।

कुछ हाल के आलिमो ने केवल एक ही इमाम की नियुक्ति के औचित्य पर वाद-विवाद किया है, किन्तु उनके मत परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध हैं। वे इस आयत का सहारा लेते हैं—"यदि अल्लाह के अतिरिक्त (जमीन तथा आसमान पर) अन्य ईश्वर होते तो (जमीन और आसमान) नष्ट हो चुके होते।" इस आयत के आधार पर कोई स्पष्ट सिद्धान्त नही बनाया जा सकता, कारण कि इसका सारा जोर तर्क पर आधारित है। ईश्वर ने इस आयत में केवल यह बात ही स्पष्ट की है कि हम ईश्वर के एक होने का तर्कपूर्ण प्रमाण पा जायँ और उसकी एक मात्र सत्ता के दृढ विश्वासी हो जायँ। जहाँ तक इमामत का सम्बन्ध है, हमें यह जानने की आवश्यकता है कि दो इमामो की नियुक्ति का निषेध किस कारण किया गया, और यह कि इस बात का सम्बन्ध शरीअत एव दीन (इस्लाम) की आवश्यकताओ से है, अत. कुरान की उपर्युक्त आयत से, उस समय तक कोई निष्कर्ष नही निकाला जा सकता, जब तक कि हम इसे शरा से सम्बद्ध मानकर यह न कहें कि अधिक ईश्वरो के कारण भ्रष्टाचार फैलता है, और उन चीजो से जिनके कारण भ्रष्टाचार फैलता है हमें बचते रहना चाहिए। तभी इस आयत का प्रयोग शरीअत के सदर्भ में उचित रूप से किया जा सकता है।

यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात होनी चाहिए कि इमामत की चार शर्तें हैं—(१) ज्ञान, (२) न्याय, (३) योग्यता, (४) पच ज्ञानेन्द्रियो तथा शारीरिक भुजाओ का सुरक्षित होना, जो विचार एव आचरण हेतु परमावश्यक है। पाँचवी शर्त अर्थात् इमाम के कुरैशी वश से सबधित होने के विषय में मतभेद है।

(१) ज्ञान की शर्त इस कारण लगायी गयी कि इमाम यदि ज्ञान-सम्पन्न और शरई आदेशो से परिचित न होगा तो वह शरा को अपने राज्य में किस प्रकार

१. मालिकी इमाम मुहम्मद बिन अली, जन्म लगभग ४५३ हि० (१०६१ ई०), मृत्यु ५३६ हि० (११४१ ई०)।
२. मुहीउद्दीन यहया बिन शरफ, ६३१–६७६ हि० (१२३३ ई०–१२७७ ई०)।
३. इमाम मुस्लिम की "सहीह"।

प्रचलित कर पायेगा। इसके अतिरिक्त इमाम का ज्ञान इजतेहादी[1] श्रेणी का हो न कि तकलीदी[2], कारण कि तकलीद एक प्रकार का दोष है और इमामत के लिए गुणो एव प्रत्युत्पन्नमतित्व की आवश्यकता होती है। इसका दोष से क्या सम्वन्ध ?

(२) न्याय की शर्त इस कारण लगायी गयी कि इमामत एक ऐसा धार्मिक पद है जो उन समस्त पदो की रक्षा करता है जिनमें न्याय परमावश्यक है। अत इमामत के पद में तो वहुत वडी सीमा तक न्याय का गुण होना चाहिए। इस वात पर कोई मत-भेद नही कि यदि इमाम शरा के विरुद्ध कार्य करने लगे तो उसका न्याय समाप्त हो जायगा, किन्तु इस वात पर मतभेद है कि यदि वह विदअत[3] सम्वन्धी विश्वास रखने लगे तो न्याय समाप्त होगा अथवा नही।

(३) योग्यता की शर्त का यह तात्पर्य है कि इमाम शरई आदेशो के पालन कराने एवं युद्ध तथा जेहाद में सम्मिलित होने मे निर्भीक एव वीर हो और लोगो को समझने मे उसकी वुद्धि कुशाग्र हो। पूर्ण उत्तरदायित्व से शरई आदेशो के पालन कराने एव जेहाद में सम्मिलित होने के लिए वह लोगो को उद्यत कर सके। "असवियत" एव राज-नीति से भली-भाँति परिचित हो ताकि धर्म की रक्षा, शत्रुओ से जेहाद, धार्मिक आदेशो का चलाना एव राज्य के हित सवधी जो उत्तरदायित्व इमाम के ऊपर है, उन्हें वह भली-भाँति सम्पन्न कर सके।

(४) पच ज्ञानेन्द्रियो तथा शारीरिक भुजाओ के ठीक होने का उद्देश्य यह है कि उनमें कोई दोप न हो और वे अनुपयोगी न हो। उदाहरणार्थ इमाम पागल न हो, अन्धा न हो, वहरा न हो और गूंगा न हो। जो भुजाएँ कार्य हेतु आवश्यक है वे सुरक्षित हो, उदाहरणार्थ हाथ, पाँव एव अण्डकोप सुरक्षित हो। इन भुजाओ के सुरक्षित होने की शर्त इस कारण लगायी गयी कि ये सव इमाम के उन समस्त कर्त्तव्यो एव कार्यों के सम्पन्न कराने में परमावश्यक है जो उसके सिपुर्द किये गये है। यदि इमाम के वाह्य रूप-रग में कोई दोप उत्पन्न हो गया हो, उदाहरणार्थ उपर्युक्त भुजाओ में से कोई भुजा हो ही नही तो फिर इसमें कोई अधिक आपत्ति नही। इस प्रकार भुजाओ के ठीक होने का तात्पर्य भुजाओ एव ज्ञानेन्द्रियो की निपुणता है।

यदि कोई ऐसी स्थिति प्रस्तुत हो जाय जिससे इमाम को राज्य-व्यवस्था के सचा-

१. नयी परिस्थिति में शरीअत के सिद्धान्तों के आधार पर तदनुकूल निर्णय कर सकना।
२. अनुकरण, जिसमें कोई नया मार्ग खोज निकालने की सामर्थ्य न हो।
३ इस्लाम में नयी राहें निकालना।

लन में कठिनाई हो तो फिर उसकी इमामत पर विश्वास न हो सकेगा। इसके दो रूप है। प्रथम रूप सुरक्षा की शर्त के निकटतम पहुँचने से सबधित है। उसे आवश्यक शर्त समझना चाहिए। इसका रूप इस प्रकार है कि इमाम को बन्दी बनाकर ऐसा विवश कर दिया जाय कि वह राज्य-व्यवस्था में पूर्णत असमर्थ हो जाय। दूसरा रूप यह है कि उसके कुछ सहचर एव सहायक उसे इस प्रकार से अधिकार में कर लें कि वह राज्यव्यवस्था में हस्तक्षेप करने से असमर्थ हो जाय, किन्तु कोई विद्रोह न कर सके। ऐसी दशा में अधिकार प्राप्त कर लेनेवाले की दशा देखी जाती है। यदि उसका आचरण धर्म के अनुसार है, वह न्यायप्रिय एव उचित रूप से राजनीति का ज्ञान रखता है, तो ऐसी दशा में उसकी इमामत स्वीकार की जा सकती है और यदि उसकी दशा इसके विरुद्ध है, तो मुसलमानो के लिए पिछले इमाम की सहायता करना अनिवार्य है, ताकि अपहरणकर्त्ता से उसे मुक्ति प्राप्त हो जाय और वह स्वाधीन होकर आज़ादी की साँस ले सके।

(५) अब जहाँ तक कुरैशी वश का सबध है, तो सकीफा[1] मे सहाबा[2] इस पर सहमत हो चुके है। इस प्रकार असार[3] ने जब साद इब्ने उबादह[4] से बैअत करने की इच्छा प्रकट की और कहने लगे कि "एक अमीर हममें से हो और एक तुममें से", तो कुरैश ने मुहम्मद साहब के इस कथन पर अपना तर्क आधारित किया कि "इमाम कुरैश से होगे" और यह भी कहा कि मुहम्मद साहब ने हमको यह भी आदेश दिया है कि "हम तुम लोगो में से ऐसो का उपकार करें जो सदाचारी है एव अन्य लोगो का उपकार करते है और हम तुम लोगो की भूलो को क्षमा करें।" यदि इमामत तुम्हारा हक होता तो मुहम्मद साहब हमको तुम्हारे विषय में यह आदेश क्यो देते। इस वार्त्ता से असार सतुष्ट हो गये और उन्होने पुनः यह न कहा कि "एक अमीर हममे से हो और एक तुममें से" तथा साद बिन उबादा से बैअत करने का विचार भी छोड दिया। सहीह बुखारी मे भी लिखा है कि "यह वस्तु[5] कुरैश कबीले में ही रहेगी।"

१. बनू साइदह का बड़ा कक्ष, जहाँ हज़रत अबू बक्र को खलीफा चुना गया।
२ मुहम्मद साहब के सहचर, मित्र।
३ मुहम्मद साहब के मदीने के सहायक।
४ साद बिन उबादह, मुहम्मद साहब के प्रतिष्ठित सहाबी थे। कहा जाता है कि उस समय अरबों में कोई भी उनसे अच्छा लिख-पढ़ न सकता था। उनकी मृत्यु १५ हि० (६३६–३७ ई०) में हुई।
५ खिलाफत।

सक्षेप में इसी प्रकार के अन्य वहुत से प्रमाण है, किन्तु जव कुरैश का ज़ोर घटा तो उनकी "असवियत" में भी अन्तर पड़ गया, कारण कि वे भोग-विलास में ग्रस्त हो गये और चारो ओर फैल गये तथा खिलाफत का वोझ सहन न कर सके, जिससे अजम ने उन पर अधिकार जमा लिया। वही समस्त अधिकारो के स्वामी वन वैठे। इस परिवर्तन के कारण अधिकाश विद्वानो को भ्रम हो गया और उन्होने क़ुरैशी की शर्त का निषेध कर दिया। कुछ लोग मुहम्मद साहव के ज़ाहिरी शव्दो से अपने विचारो का समर्थन करने लगे, उदाहरणार्थ मुहम्मद साहव ने कहा है–"सुनो तथा आज्ञाकारी रहो, यद्यपि तुम पर एक अगूर सरीखा छोटे सिर वाला हवशी दास अमीर वना दिया जाय।" हालाँ कि मुहम्मद साहव के इस कथन द्वारा कोई तर्क नही किया जा सकता, कारण कि उन्होने जो कुछ कहा है वह उदाहरणस्वरूप और इस उद्देश्य से कि अमीर की आज्ञाकारिता का अत्यधिक प्रयत्न करते रहना चाहिए। कभी यह लोग हज़रत उमर के इस कथन[1] को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करते है—"यदि अवू हुज़ैफा का दास सालिम[2] जीवित होता तो मै उसे नियुक्त कर देता", अथवा ".. मै उसके प्रति कोई आपत्ति न प्रकट करता।"

यह कथन भी उनके उद्देश्य के लिए लाभदायक नही, कारण कि सहावी का कथन हमारे लिए प्रमाण नही। इसके अतिरिक्त कौम का दास भी तो कौम में ही सम्मिलित होता है और सालिम की "असवियत" भी तो कुरैश की ही "असवियत" थी। ऐसी अवस्थाओ में "असवियत" को ही महत्त्व प्राप्त है। हज़रत उमर के कथन का आधार यह ज्ञात होता है कि जव आपने खिलाफ़त के विषय को अत्यधिक महत्त्व दे दिया और उसकी शर्तें अपने मतानुसार उपस्थित लोगो में से किसी में न पायी, अपितु सालिम के व्यक्तित्व में ही पायी, तो आपने सालिम को प्राथमिकता प्रदान कर दी, कारण कि खिलाफ़त की योग्यता के अतिरिक्त कुरैश कवीले की "असवियत" भी उसे प्राप्त थी। इस प्रकार हज़रत उमर का विचार साधारण मुसलमानो के उपकार एवं उन्नति से सम्वन्धित था। वे खिलाफत का कार्य ऐसे व्यक्ति को सौंपना चाहते थे जिसमें कोई दोष न हो।

काज़ी अवू वक्र वाकिल्लानी भी इमाम के लिए कुरैशी वश का होना आवश्यक न समझता था, कारण कि उसने भी अपने युग में यह देखा था कि कुरैशी "असवियत"

१. तवरी के अनुसार हज़रत उमर ने मरते समय यह शव्द कहे थे।
२. कहा जाता है कि सालिम मुसलमानो के प्रारम्भिक काल में मदीने में इमाम रहा करता था।

का अन्त हो चुका है और ईरानी मलिको ने खलीफाओ पर अधिकार जमा लिया है। अत. उन्होने कुरैशी होने की शर्त हटा दी और खारजियो के साथ सहमत होने की ओर ध्यान न दिया। इसका यह कारण है कि उनके युग के खलीफाओ की समस्त दशा उनकी दृष्टि में थी, किन्तु अधिकाश आलिम लोग इसी मत पर दृढ़ रहे कि "इमामत" के लिए कुरैशी होना आवश्यक है, चाहे इमाम मुसलमानो का शासनप्रबध चलाने मे असमर्थ ही क्यो न हो। इस बात पर यह आलोचना की गयी कि ऐसी दशा मे तो 'योग्यता' की भी शर्त नही पूरी होती, कारण कि "असबियत" के समाप्त होने के साथ साथ शक्ति एवं प्रभुत्व का भी अन्त हो जाता है और 'योग्यता' की शर्त भी समाप्त हो जाती है। जब योग्यता का पतन हुआ तो ज्ञान एव धर्म किस प्रकार सुरक्षित रह सकते हैं। इस प्रकार इमामत की समस्त शर्तें एक साथ समाप्त हो जाती हैं, हालाँ कि यह इजमा के विरुद्ध है। अब हम यहाँ इस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं कि वश की शर्त का क्या रहस्य है, ताकि उपर्युक्त धर्मो में से सच्चे धर्म का पता लगाया जा सके।

यह सच है कि समस्त शरई आदेश विशेष उद्देश्यो पर, जिनके कारण वे मानव-जाति में प्रचलित किये जाते हैं, आधारित होते हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार जब हम कुरैशी वश के सम्बन्ध में जो आदेश दिया गया है, उसके रहस्य का पता लगाने बैठते हैं, तो उसका रहस्य केवल यह नही पाते कि इस शर्त मे मुहम्मद साहब से सम्बन्ध को सामने रखा गया है और इस सम्बन्ध द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करने का विचार है, जैसा कि साधारण लोग समझते हैं। यद्यपि इसका निषेध नही किया जा सकता कि कुरैशी होने में इस सम्बन्ध को सामने रखा गया है, किन्तु केवल आशीर्वाद शरीअत का उद्देश्य नही, अत इस शर्त का कोई अन्य रहस्य भी होना चाहिए जो वास्तविक उद्देश्य हो। जब बात को और अधिक गहराई से देखा जाय तो "असबियत" पर ही दृष्टि जमती है कि यहाँ इसी को महत्त्व दिया गया है, कारण कि इसी से सहायता एव मदद की आशा की जाती है और इसी के कारण इमाम के विषय में झगड़ा एवं मतभेद समाप्त हो जाता है और समस्त उम्मत उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेती है तथा पारस्परिक प्रेम एव स्नेह मे कोई अन्तर नही पड़ता, कारण कि कुरैश का एक ऐसा वश था जिसे समस्त मुजर कबीलो पर प्रभुत्व प्राप्त था। "असबियत" एवं शराफत का उसे विशेष सम्मान प्राप्त था और सारा अरब उसकी इस शराफत एवं सम्मान से प्रभा-वित था। इसी के प्रभुत्व को स्वीकार करता था। यदि मुहम्मद साहब कुरैश के अतिरिक्त किसी अन्य के लिए इमाम होने का प्रस्ताव रखते तो कुछ दूर न था कि उम्मत में फूट पड़ जाती। अरब कुरैशी के अतिरिक्त किसी अन्य के समक्ष कदापि

सिर न झुकाते और उसके विरोव पर तुल जाते। मुज़र के कवीलो में से कोई भी उनकी रक्षा न कर सकता था और न लोगो को जेहाद के लिए उभार सकता था। फलत लोगो में विरोव की खतरनाक अग्नि भडक पड़ती और लोग वहुत वड़े विरोव का शिकार हो जाते। मुहम्मद साहव को इसी कलह का वडा भय था। वे सगठन पैदा करने के लिए अत्यधिक प्रयत्न करते रहते थे। पारस्परिक फूट एव विरोव दूर करने के उपाय सोचते रहते थे, ताकि आपस में गहरा सगठन स्थापित हो जाय। "असवियत" की भावनाएँ जोर पकडें और एक दूसरे की सहायता एव सहयोग से भली-भाँति कार्य कर सकें। कुरैश में इमामत का पद स्थापित हो जाने से ये समस्त सघर्प एक साथ समाप्त हो जाते थे, कारण कि वे अपने प्रभुत्व की लाठी से जिस दिशा में चाहते लोगो को घेर ले जाते। किसी के विपय में यह सोचा नही जा सकता था कि वह उनसे वदल जायगा अयवा विरोवी हो जायगा, कारण कि विरोव एव झगडा रोकने पर उन्हें पूरा-पूरा अविकार प्राप्त था, अत इसी तथ्य एव कुरैश की अत्यधिक "असवियत" के अवीन इमाम के कुरैशी वश का होने की शर्त लगी, ताकि समस्त मुसलमान सगठन एवं मेल के सूत्र में वँधे रहें और समस्त प्रवध भली-भाँति सम्पन्न हो सकें। जव शासन एवं इमामत कुरैश के हाथ में आ गयी तो मुज़र नामक कवीले ने उनका साथ दिया। जव मुज़र साथ हुए तो फिर समस्त अरव, कुरैश के समक्ष झुक पडा और सभी कौमें उनकी आज्ञाकारी वन गयी। तदुपरान्त इस्लामी सेनाओ ने दूरस्थ स्थानो को पद-दलित कर दिया। इस प्रकार विजयो के युग में यही दशा रही और वनी उमय्या एव वनी अव्वास के काल में इमामत का यह वढता हुआ गौरव शेप रहा, यहाँ तक कि खिलाफत शक्तिहीन हो गयी। अरवी "असवियत" छिन्न-भिन्न हो गयी। जो भी व्यक्ति अरव के इतिहास से भली-भाँति परिचित है और उसके विपय में गहरा अध्ययन किये हुए है, उसे अच्छी तरह ज्ञात है कि कुरैश को मुज़र पर कितना प्रभुत्व एव कितनी श्रेष्ठता प्राप्त थी। इब्ने इसहाक ने भी "कितावुस् सियर" में इन समस्त वातो का सविस्तर उल्लेख किया है।

जव यह वात सिद्ध हो गयी कि इमाम के लिए कुरैशी की शर्त इस कारण लगायी गयी कि वह अपनी "असवियत" एव प्रभुत्व से लोगो के विरोव एव झगडो को मिटा डाले, साथ ही साथ हमें यह भी ज्ञात है कि शरा सवधी आदेश किसी विशेप काल, युग अथवा कौम तक सीमित नही होते, अत. स्वीकार करना पड़ेगा कि इसी से "योग्यता" की शर्त भी लगायी गयी। "असवियत" दोनो शर्तों के साथ आवश्यक है। इसी कारण हमने मुसलमानो के इमाम के लिए यह शर्त लगा दी कि वह ऐसी क़ौम का व्यक्ति हो

जिसकी "असवियत" उस युग की समस्त "असबियतो" पर भारी हो, ताकि सभी उसके अधीन हो जायें और फिर सब एक-जान एव एक-दिल होकर उसकी सहायता करे। इस तथ्य का विरोध नही किया जा सकता कि जो "असवियत" कुरैश रखते थे, उसका इस युग में कोई उदाहरण नही मिल सकता। कारण कि इस्लामी प्रचार का स्रोत वही थें और अरव की समस्त "असवियतें" उनका साथ दे रही थी, अतः उन्होने समस्त कौमो पर अधिकार जमा लिया, किन्तु अव कुरैशी "असबियत" समाप्त हो चुकी है। अव इसके अतिरिक्त क्या उपाय है कि हर देश में उसी व्यक्ति को अमीर तथा इमाम वनाया अथवा स्वीकार किया जाय जिसकी "असवियत" उस देश में शक्तिशाली एव प्रभुत्व रखती हो।

यदि खिलाफते इलाही के रहस्य को समझ लिया जाय तो हमारा कथन असत्य न ज्ञात होगा, कारण कि ईश्वर ने खलीफा को इस कारण नियुवत किया है कि वह प्राणियो के हित की देख-भाल कर सके और उनकी कोई हानि न होने दे। इस विषय मे ईश्वर ने उसे अपना प्रतिनिधि वनाया है, उसको इमामत का उत्तरदायित्व सौपा है। किसी को कोई उत्तरदायित्व उसी समय सौंपा जाता है जब उसमे उसे पूरा करने की शक्ति हो। इस प्रकार इब्नुल खतीव[1] ने स्त्रियो के विषय मे लिखा है कि स्त्रियाँ वहुत से शरई आदेशो में पुरुषों के अधीन की गयी है। उन्हें सीधे सम्वोधित नही किया गया है अपितु किसी निष्कर्ष के आधार पर भी उन्हें उन आदेशो मे सम्मिलित नही किया गया। इसका कारण यह है कि स्त्रियाँ स्वाधीन नही अपितु उनके अधिकार की वाग पुरुषो के हाथ में है। इवादतों मे नि सन्देह स्त्रियो को सीधे सम्बोधित किया गया है, कारण कि इवादतो का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति अलग रखता है। इस खिलाफत की समस्या पर दृष्टि न भी डाली जाय तव भी सासारिक घटनाओ से पता चलता है कि किसी कौम तथा कवीले पर वही व्यक्ति शासन करता है जिसे उन सब पर प्रभुत्व प्राप्त हो। क्योकि शरई आदेश साधारणत अनुभव एव अन्य घटनाओ के विरुद्ध नही होते, अत स्वीकार करना पडेगा कि इमाम गौरव तथा "असवियत" वाला ही हो सकता है। "परमेश्वर ही सव कुछ जानता है।"

(२७) इमामत के विषय मे शीओ के विभिन्न मत

शव्दार्थ के अनुसार शीआ अनुयायियो एव सहायको को कहते है। फिकह एव

1. मुहम्मद बिन उमर ११४८–४९ अथवा ११४९–५० ई० से १२०९–१० ई० तक। वे फ़ख्रुद्दीन राज़ी के नाम से प्रसिद्ध थे।

कलाम-वेत्ताओ के अनुसार हज़रत अली तथा उनकी संतान के अनुयायियो को शीआ कहा जाता है। समस्त शीआ इस बात पर सहमत है कि इमामत सर्वसाधारण के हित सबधी उन कार्यों में नही है जिनका सचालन एव व्यवस्था आम लोगों की राय पर रखी जा सके, उदाहरणार्थ वे जिसे चाहें चुन लें और इमाम बना लें, अपितु इमामत धर्म के स्तम्भो में एक बहुत बड़ा स्तम्भ है और इस्लाम का वास्तविक आधार है। नबी के लिए यह कदापि उचित नहीं कि वह उसकी उपेक्षा करे और उसे उम्मत की राय पर छोड़ दे कि जिसे वह चाहे इमाम बनाये, अपितु नबी पर इस बात का पूर्ण उत्तरदायित्व है कि इमाम को वह स्वयं नियुक्त करे। फिर इमाम के लिए यह भी आवश्यक है कि वह छोटे और बडे हर प्रकार के पापो से मुक्त हो।

शीओ का विश्वास है कि हज़रत मुहम्मद, हज़रत अली को इमाम मनोनीत कर चुके थे और इसका प्रमाण वे कुछ उन हदीसो से देते हैं जिनके सूत्र वे ही हैं और जिनकी व्याख्या वे अपने ही धर्म के अनुसार करते हैं। साधारण सुन्नी इन रवायतो के तथ्य से पूर्णत अपरिचित एवं अनभिज्ञ हैं, अपितु अधिकाश रवायतें, जिनका शीआ लोग उल्लेख करते हैं, जाली तथा बनावटी हैं। उनके रवायत के ढंग में दोष है अथवा वे अपने धर्मानुसार उनका अर्थ समझाते एव व्याख्या करते है।

इसके अतिरिक्त शीआ लोग इस विषय में जिन हदीसो की चर्चा करते हैं, वे उनके मतानुसार दो प्रकार की हैं—एक स्पष्ट दूसरी गर्भित। स्पष्ट का उदाहरण मुहम्मद साहब का यह आदेश है कि "मैं जिसका मौला हूँ, अली भी उसके मौला हैं।" शीओ का कथन है कि इस प्रकार की किसी हदीस का किसी अन्य सहाबी के विषय में पता नहीं। यह विशेषता हज़रत अली को ही प्राप्त है। इस आधार पर हज़रत उमर ने हज़रत अली को सम्बोधित करते हुए कहा कि "आप प्रत्येक मोमिन स्त्री एवं पुरुष के मौला हो गये।"

इसके अतिरिक्त मुहम्मद साहब ने कहा—"तुममें सबसे बड़े न्यायकर्त्ता हज़रत अली है। इमामत का उद्देश्य ईश्वर के आदेशों के अनुसार न्याय करना है।" ईश्वर के इन वाक्यो "ईश्वर, उसके रसूल और उसके आदेशों का पालन करो जो तुम्हारा हाकिम हो" का तात्पर्य आपके ही व्यक्तित्व से है, जिनकी आज्ञाकारिता अनिवार्य बतायी गयी है, कारण कि आयत में आज्ञाकारिता का तात्पर्य दैवी आदेशो की आज्ञाकारिता से है। इसी आधार पर सकीफे[1] के दिन जब इमाम की नियुक्ति की समस्या पर विचार-विनिमय होने लगा तो आपके अतिरिक्त कोई अन्य पंच न हो सका।

१ याकूबी के अनुसार हज़रत अली ने स्वयं अपने सहायको को सकीफा में रोक दिया।

इसी प्रकार का एक मुहम्मद साहव का अन्य कथन बताया जाता है—"जो अपनी जान की बाजी लगाकर मुझसे बैअत करेगा, मैं उसी के लिए वसीयत करूँगा और वही मेरे बाद मेरे अधिकार का वारिस होगा।" केवल हज़रत अली ने ही इस प्रकार बैअत की।

यह रवायतें स्पष्ट थी। अब जो रवायतें गर्भित है उनका उदाहरण यह है कि जब बराअह नामक[2] सूरा ईश्वर की ओर से आया तो मुहम्मद साहब ने हज के समय उसके पाठ एव प्रचार हेतु हज़रत अली को नियुक्त किया। सर्वप्रथम मुहम्मद साहब ने हजरत अबू बक्र को इस उद्देश्य हेतु रवाना किया था, किन्तु आपके पास दैवी आदेश आया कि "आप अपने किसी निकट-सबधी अथवा कौम के किसी सम्मानित व्यक्ति को भेजें", तब आपने हजरत अली को रवाना किया कि वे उस सूरे का पाठ एव प्रचार करें। शीओ का मत है कि इस कथन से हज़रत अली की अन्य सहाबियो पर श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।

इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि ऐसा कोई उदाहरण नही कि मुहम्मद साहब ने हज़रत अली पर किसी सहाबी को प्राथमिकता दी हो। हज़रत अबू बक्र एव हज़रत उमर पर अन्य लोगो को दो बार प्राथमिकता दी गयी, एक बार हज़रत उसामा[3] बिन ज़ैद को और दूसरी बार अमर आस को। शीओ का मत है कि यह सब घटनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि हज़रत अली खिलाफत के लिए चुन लिये गये थे।

उपर्युक्त रवायतो के अतिरिक्त वे अन्य रवायतो का भी उल्लेख करते है, जो पूर्णत. अप्रसिद्ध एव अपरिचित हैं और उन रवायतो तथा व्याख्याओ में दूर का भी सबध नही। जो समूह शीओं की उपर्युक्त हदीसो के आधार पर हज़रत अली के इमाम होने पर विश्वास रखता है और उनके उपरान्त उनकी सन्तान के इमाम होने पर, उसे "इमामिया" कहते है। वे शेखैन[4] से इस आधार पर अपना कोई सम्बन्ध नही रखते कि उन्होने इन रवायतो के अनुसार न तो हज़रत अली से बैअत की और न उनको इमाम तथा

२. कुरान शरीफ का ९वाँ सूरा।

३ मुहम्मद साहब ने अपने निधन के पूर्व शाम के विरुद्ध एक सेना तैयार करायी। इस सेना की सरदारी के लिये हजरत अबू बक्र तथा हजरत उमर के अतिरिक्त अन्य मुसलमान सरदारों ने भी इच्छा प्रकट की, किन्तु हजरत मुहम्मद ने उसामह को इस कार्य हेतु चुना।

४. हजरत अबू बक्र तथा हजरत उमर।

ख़लीफा नियुक्त किया। वे शेख़ैन की खिलाफत एव इमामत को स्वीकार नही करते। ऐसे कट्टर शीआ जो शेख़ैन में त्रुटियाँ निकालते है, उनका कथन हमारे निकट भी और अन्य शीओ के निकट भी असत्य एव अविश्वसनीय है।

कुछ शीआ ऐसे है जो यह कहते हैं कि उपर्युक्त हदीसें हज़रत अली को गुणो के अनुसार नियुक्त करती है न कि व्यक्तित्व के अनुसार। अर्थात् उनसे केवल गुणों का पता चलता है जो केवल हज़रत अली में पाये जाते हैं, विशेष व्यक्ति की ओर वे सकेत नही करतीं। लोगो ने केवल यह भूल की कि वे उन गुणो को उस व्यक्ति से संबधित न कर सके जिसमें वास्तव में वे वर्त्तमान थे और अन्य व्यक्ति में उन गुणो के अस्तित्व की कल्पना कर ली। ज़ैदिया फिर्केवाले इसी मत के अनुयायी है। ये शेख़ैन से अपने संबध पृथक् नही समझते और न उनकी इमामत में दोष निकालते है, किन्तु हज़रत अली को शेख़ैन से श्रेष्ठ अवश्य मानते है। उनके मतानुसार क्योकि श्रेष्ठ के होते हुए भी उससे कम की इमामत स्वीकृत है, अत हज़रत अली की उपस्थिति में वे शेख़ैन की इमामत को ठीक समझते है।

हज़रत अली के उपरान्त ख़लीफाओ का जो क्रम चला उसके विपय में भी शीओ में मतभेद है। कुछ लोग हज़रत फातेमा[1] की सतान में रवायतो के आधार पर खिलाफत का क्रम चलाते हैं। ये इमामिया कहलाते है, कारण कि इनके निकट इमाम की पहचान एव उसकी नियुक्ति धार्मिक विश्वास का एक अग है और इसे ये मूल सिद्धान्त स्वीकार करते है। कुछ लोग ऐसे हैं जो हज़रत फातेमा की सतान में ही खिलाफत का क्रम चलाते है किन्तु रवायतो को इसमें कोई स्थान नही देते, अपितु चुनाव का आधार शीओ की सूझ-बूझ पर रखते हैं। ये शर्त लगाते है कि इमाम विद्वान् हो, ज़ाहिद[2] हो, दानी हो, वीर हो और साथ-साथ अपने सिद्धान्तो का प्रचार भी करे। यह फिर्का ज़ैदिया कहलाता है। इस प्रकार ये लोग अपने धर्म का सम्बन्ध ज़ैद[3] बिन अली बिन

१. हज़रत मुहम्मद की पुत्री, हज़रत अली की पत्नी एवं इमाम हसन, हुसेन की माता।
२. तपस्वी
३. ज़ैद बिन अली ज़ैनुल आबेदीन (इमाम) ज़ैदिया फिरके के संस्थापक। इन्होंने उमय्या राज्य के विनाश के लिए घोर प्रयत्न किये और ७४० ई० के लगभग कई गुप्त योजनाएँ चलायीं।

हुसेन शहीद की ओर बताते है। ये जैद अपने भाई मुहम्मद बाकिर[1] से इस बात पर वाद-विवाद किया करते थे कि इमाम के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी इमामत की घोषणा करे। इमाम मुहम्मद बाकिर उत्तर देते कि इस दलील से तो स्वय हमारे तथा तुम्हारे सम्मानित पिता जैनुल आबेदीन[2] भी इमाम नही रहते, कारण कि न तो उन्होने अपनी इमामत का प्रचार किया और न प्रचार का विचार भी कभी उनके हृदय में आया। वे उन्हें मोतजेला ने ता वासिल बिन अता[3] का अनुयायी बताते थे। इधर इमामिया ने जब यह देखा कि जैद शेखैन की इमामत को स्वीकार करते है और उनसे पृथक् नही होते, तो वे उनसे पृथक् हो गये और उनकी गणना इमामो में न करते थे। इसी कारण उनको राफिज़ा[4] कहा जाता है।

कुछ शीओ का यह मत है कि खिलाफत का अधिकार हजरत अली, हसन तथा हुसेन से होता हुआ मुहम्मद बिन अल हनफिया[5] तक पहुँचा और फिर उनसे उनकी सतान की ओर। यह फिर्का केसानिया कहलाता है। इस प्रकार वे मुहम्मद बिन अल हनफिया के दास केसान[6] से अपना सम्बन्ध जोडते है। फिर इन उपर्युक्त फिर्को में थोडा-बहुत मतभेद है, जिसे हम इस वर्णन के अधिक बढ जाने के भय से छोड देते है।

१. इमाम मुहम्मद बाकिर, इमाम जैनुल आबेदीन के पुत्र तथा इमामियों के ५वें इमाम थे। इनका निधन ७३१ ई० में तथा जन्म ६७६ ई० में हुआ था।
२. इमाम हुसेन के पुत्र तथा शीओं के चौथे इमाम। कहा जाता है कि इनकी माता शहर बानू ईरान के बादशाह यज्द जिर्द तृतीय की पुत्री थी। उनका जन्म ६५७ ई० तथा मृत्यु ७१३ ई० में हुई।
३. वासिल बिन अता अबू हुजैफा अल ग़ज्ज़ाली, मोतजेला का मुख्य नेता (जन्म मदीना ६९९–७०० ई०, मृत्यु ७४८–४९ ई०)।
४. पृथक् होनेवाले।
५. हजरत अली के पुत्र, जिनकी माता बनू हनीफा के क़बीले की थीं। इमाम हुसेन की हत्या का बदला लेने के लिए इन्होने मुख़्तार को प्रोत्साहन दिया। इनकी मृत्यु ७००–७०१ ई० में हुई।
६. अबू अमरा कैसान बजीला-निवासी एवं शीओं का बहुत बड़ा समर्थक था। उसकी मृत्यु सम्भवतः ६८६ ई० में मजार के युद्ध में हुई।

इन शीओ में एक फिर्का "गुलात"[1] का है जो वुद्धि एव धार्मिक (इस्लाम के) विश्वास के क्षेत्र से वाहर हो गया है और इमामो में उलूहियत[2] को मानता है। इनमें भी मतभेद है। एक समूह कहता है कि इमाम लोग स्वय तो मनुष्य हैं किन्तु उनमें दैवी गुण भी पाय जाते हैं। कुछ लोगो का मत है कि ईश्वर इन इमामो के व्यक्तित्व में प्रविष्ट हो गया है। उनका यह धार्मिक विश्वास ईसाइयो के उस धार्मिक विश्वास से मिलता-जुलता है जो वे हजरत ईसा के विषय में रखते है। हजरत अली को जब ऐसे मार्गभ्रष्टो का पता चला तो आपने उनको आग में जलवा दिया। इसी प्रकार मुहम्मद विन हनफिया को जव यह ज्ञात हुआ कि मुख़्तार विन उवैद[3] इसी प्रकार के "उलूहियत" के विचार रखता है, तो आपने उस पर लानत की और उससे अपना कोई सम्वन्ध न होने की घोषणा की। इसी प्रकार एक रवायत हजरत जाफरे सादिक[4] के विषय में भी वतायी जाती है कि आपने जब ऐसे मार्गभ्रष्टो के समाचार सुने तो उन पर लानत की और उनसे कोई मतलव न रखने की घोषणा की।

इनमें एक फिर्के का धार्मिक विश्वास है कि इमाम की निपुणता किसी अन्य व्यक्ति को, जो इमाम नही है, नही प्राप्त होती। उनके मतानुसार जव किसी इमाम की मृत्यु हो जाती है तो उसकी आत्मा किसी दूसरे इमाम में प्रविष्ट हो जाती है, ताकि उसमें भी वही निपुणता उत्पन्न हो जो पहले इमाम में थी। यह फिर्का मानो आवागमन पर विश्वास रखता है।

गुलात में से एक फिर्का वाकिफया के नाम से प्रसिद्ध है। यह इमामत के अधिकार को एक ही व्यक्ति में सीमित समझता है और उसके अतिरिक्त किसी अन्य को इमाम नही मानता। अब इनमें से भी कुछ लोगो का यह विश्वास है कि इमाम जीवित है

१. अतिशयवादी।
२. दैवी गुणों।
३. मुख़्तार विन अवी उवैद अल सकफी, जिसने इमाम हुसेन के हत्यारों से बदला लेने के लिए ६६ हि० (६८५–८६ ई०) में कूफे पर अधिकार जमा लिया। उसकी मृत्यु १४ रमजान ६७ हि० (३ अप्रैल ६८७ ई०) को हुई।
४. इमाम जाफरे सादिक, इमाम मुहम्मद वाकिर के पुत्र, इमाम हुसेन के पौत्र तथा इमामियों के छठे इमाम थे। इनका जन्म लगभग ७०२ ई० में मदीने में हुआ और ७६५ ई० में मृत्यु हुई।

किन्तु दृष्टि से ओझल है, और हज़रत ख़िज़्र[1] की कहानी को दलील के रूप में प्रस्तुत करते है। कुछ लोग यही विचार हज़रत अली के विषय मे भी रखते है कि वे अब तक जीवित है और वादल में मौजूद है। गरज आपकी ध्वनि और विद्युत् आपका कोडा है। वे मुहम्मद बिन अल हनफिया के विषय में भी इसी प्रकार के विचार रखते हैं कि वे हिजाज के भूभाग में जबले रिज़वा में जीवित है।.. .[2]

इमामिया फिर्के में से जो लोग गुलात है, विशेष रूप से असना अशरी[3], तो वे भी वारहवे इमाम मुहम्मद विन हसन असकरी के, जिनकी उपाधि महदी है, सम्वन्ध में यही विचार एव विश्वास रखते है कि वे हिल्ला (इराक) में अपने घर के तहख़ाने में अपनी माता सहित अदृश्य हो गये और ससार के अन्तिम काल में प्रकट होकर ससार को न्याय एव इसाफ से भर देंगे। वे अपने मत की पुष्टि में तिरमिज़ी की वह हदीस प्रस्तुत करते है जो इमाम महदी के विषय में है। अभी तक उनको उन महदी के प्रकट होने का इतजार है, यहाँ तक कि उन्होने उनका नाम भी मुतज़िर रखा है। ये लोग प्रत्येक रात्रि में एशा[4] की नमाज़ के उपरान्त घोडा लेकर तहख़ाने के द्वार पर खड़े हो जाते है और उनका नाम लेकर उन्हें पुकारते है और प्रकट होने के विषय मे आग्रह करते है। जव अधेरा हो जाता है और तारे निकल आते है तो इस विषय को आगामी रात्रि के लिए स्थगित करके घरो को लौट जाते है। अव तक उनका यही दैनिक कार्य-क्रम है।

वाकिफया फिर्के में कुछ ऐसे लोग है जिनका कथन है कि जिन इमामो की मृत्यु हो चुकी है, वे पुन. जीवित होगे। इसके उदाहरण में वे असहावे कहफ[5] की कहानी (उस व्यक्ति की कहानी जो एक ग्राम में पहुंचा तथा वनी इसराईल के उस व्यक्ति की, जिसकी हत्या हो चुकी है, कहानी) प्रस्तुत करते है, जिस पर दैवी आदेश से ज़िवह किये हुए वैल की हड्डी मारी गयी थी और जिसका उल्लेख कुरान शरीफ में हो चुका है। वे इसी प्रकार की अस्वाभाविक घटनाएँ प्रस्तुत करते हैं जो चमत्कार के रूप में किसी समय घटी थी और उन्हें प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत करना अनुचित है।......[6]

१. एक पैगम्बर जिनके विषय में धार्मिक विश्वास है कि वे सर्वदा जीवित रहेंगे।
२. इस स्थान पर कुछ अशआर दिये गये है जिनका अनुवाद नहीं किया गया।
३. हजरत अली की संतान से १२ इमामों के अनुयायी।
४. रात्रि की अन्तिम अनिवार्य नमाज़।
५. सात सोनेवाले, इनकी कहानी का क़ुरान शरीफ में उल्लेख है।
६. कुछ अशआर, जिनका अनुवाद नहीं किया गया।

वडे-वडे शीआ लोग स्वय इन गाली शीओ से सहमत नही अपितु इनके विचारों का खडन करते हैं। इस प्रकार शीओ ने मानो हमको गाली शीओ के विचारो के खडन से मुक्त कर दिया और इसका भार स्वय ही अपने कधो पर ले लिया। केसानी, मुहम्मद विन हनफिया के उपरान्त उनके पुत्र अवू हाशिम की इमामत से सहमत हैं और इसी कारण वे हाशिमिया के नाम से प्रसिद्ध है। अवू हाशिम के उपरान्त इमामत में फिर इनका मतभेद है। कुछ लोगो का कथन है कि इनके उपरान्त इमामत इनके भाई अली को प्राप्त हुई, फिर उनके पुत्र हसन विन अली को। दूसरे कहते हैं कि अवी हाशिम की जव शरह[1] के भू-भाग में मृत्यु हो गयी तो उन्होने मुहम्मद विन अली विन अव्दुल्लाह विन अव्वास के लिए इमामत की वसीयत की, और मुहम्मद ने अपने पुत्र इवराहीम के लिए, जो इमाम के नाम से प्रसिद्ध है, और इवराहीम ने अपने भाई अव्दुल्लाह विन अल हारिसिया के लिए, जिनकी उपाधि सफ्फाह थी, और उन्होंने अपने भाई अवू जाफर अव्दुल्लाह के लिए, जिनकी उपाधि मसूर थी, वसीयत की। फिर इसी प्रकार उनकी सतान में से एक के वाद दूसरा इमाम होता रहा। यह धार्मिक विश्वास उन हाशिमियो का है जो अव्वासियो के राज्य के समर्थक थे। अवू मुस्लिम, सुलेमान इब्ने कसीर, अवू सलेमा खल्लाल तथा प्रारम्भिक अव्वासी शीओ की भी इन्ही में गणना होती है। किसी समय वे अपने विचारो की इस प्रकार पुष्टि करते हैं कि इमामत का अधिकार उनको हज़रत अव्वास द्वारा पहुचता है, जो मुहम्मद साहव की मृत्यु के समय जीवित थे और चाचा होने के कारण खिलाफ़त के सवसे अधिक पात्र थे।

जैदिया का धार्मिक विश्वास यह है कि इमामत का निर्णय प्रभावशाली व्यक्तियो की सूझ-वूझ पर निर्भर है। नस्स[2] का इससे कोई सवध नही। ये लोग सर्वप्रथम हजरत अली की इमामत को स्वीकार करते है, फिर उनके पुत्र इमाम हसन की, फिर इमाम हसन के भाई हज़रत हुसेन को इमाम मानते है, फिर कहते हैं कि इमामत उनसे इमाम जैनुल आवेदीन तक पहुँची और उनसे उनके पुत्र ज़ैद विन अली को, जो ज़ैदिया फिर्के के सस्थापक थे, पहुँची। उन्होने कूफे में पहुँचकर इमाम होने का दावा किया किन्तु उन्हें कनासा में शूली दे दी गयी। उनकी मृत्यु के उपरान्त जैदिया ने उनके पुत्र यहया को इमाम स्वीकार कर लिया जो खुरासान चले गये और जूजजान में उनकी

१. सम्भवत. शाम के वेलका के भू-भाग में।
२. शरा के वे आदेश जो पूर्ण रूप से स्पष्ट हो और उनमें किसी प्रकार का मतभेद न हो।

हत्या कर दी गयी। उन्होने मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह बिन हसन बिन हसन मुहम्मद साहब के नाती को, जो नफसे जकिया[1] के नाम से प्रसिद्ध है, इमाम नियुक्त किया। वे हिजाज पहुँच गये और महदी की उपाधि धारण कर ली। फिर उन्हें मसूर की सेना ने वन्दी बना लिया और उनकी हत्या कर दी गयी। वे अपने भाई इबराहीम को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर गये। वे बसरा में प्रकट हुए और ईसा बिन जैद बिन अली ने उनकी सहायता की। मसूर ने उनके मुकाबले के लिए भी सेनाएँ भेजी। फलत. इबराहीम तथा ईसा दोनो की हत्या कर दी गयी। हज़रत जाफर सादिक ने इन घटनाओ की पूर्व से ही भविष्यवाणी कर दी थी, जिसे उनका चमत्कार समझा जाता है।

कुछ (ज़ैदियो) का मत है कि मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह नफसे जकिया के बाद इमामत मुहम्मद बिन अल-कासिम बिन अली बिन उमर को प्राप्त हुई। ये उमर, जैद बिन अली के भाई थे। मुहम्मद बिन अल-कासिम तालिकान पहुँच गये, किन्तु वन्दी बनाकर उन्हें मोतसिम के पास पहुँचा दिया गया। मोतसिम ने उन्हें वन्दी बना दिया और वन्दीगृह में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

कुछ ज़ैदियो का यह मत है कि यहया बिन जैद के उपरान्त इमामत उनके भाई ईसा को प्राप्त हुई जिन्होने इबराहीम बिन अब्दुल्लाह के साथ होकर मसूर से युद्ध किया था। इन शीओ के मतानुसार, इमामत उन्ही के वश में चलती रही और जगियो[2] ने भी, जैसा कि हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे, उनकी इमामत का प्रचार किया।

कुछ जैदियो का मत है कि मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह के बाद इमाम इदरीस[3] हुए जो मगरिब की ओर चल दिये और वही उनकी मृत्यु हो गयी। तदुपरान्त उनके पुत्र इदरीस असगर उनके उत्तराधिकारी हुए। उन्होने फास[4] नगर बसाया। फिर उन्ही की सतान मगरिब में सिहासनारूढ हुई। यहाँ तक कि एक दिन उनका भी विनाश हो गया। इसका उल्लेख हम उनके इतिहास में करेंगे। इसके उपरान्त जैदिया फिर्के वाले छिन्न-भिन्न हो गये।

१. पवित्र आत्मा।
२. हबशियों।
३. इदरीस प्रथम बिन अब्दुल्लाह, मग़रिब के हज़रत अली के समर्थकों के राज्य के संस्थापक। इनकी मृत्यु जुलाई ७९३ ई० में हुई।
४. फ़ेज़।

इसके उपरान्त ज़ैदियो में से हसन विन ज़ैद विन मुहम्मद विन इस्माईल विन हसन विन ज़ैद विन हसन (मुहम्मद साहव के नाती) तथा उनके भाई मुहम्मद विन ज़ैद दाई[1] वनकर उठे और तवरिस्तान के स्वामी वन गये। फिर दैलम में नासिर तरूश ने इस दावत को ज़िदा किया और समस्त दैलम उनका अनुयायी हो गया। नासिर का नाम वास्तव में हसन विन अली विन हसन विन अली विन उमर था और वे ज़ैद विन अली के भाई थे। नासिर के उपरान्त तवरिस्तान में उनकी सतान में राज्य चलता रहा और दैलम को उन्ही के कारण राज्य प्राप्त हुआ। तदुपरान्त उन्होने वगदाद के खलीफाओ पर भी, जैसा कि हम उनके इतिहास में उल्लेख करेंगे, प्रभुत्व प्राप्त कर लिया।

अव इमामिया के विपय में सुनिए। वे इमामत का क्रम इस प्रकार मानते है—हज़रत अली के उपरान्त उनकी वसीअत द्वारा उनके पुत्र हसन, फिर उनके भाई हुसेन, फिर उनके पुत्र ज़ैनुल आवेदीन, फिर उनके पुत्र मुहम्मद वाकिर, फिर उनके पुत्र जाफरे सादिक। यहाँ से मतभेद के कारण वे दो समूहो में विभाजित हो गये हैं। एक फिर्का हज़रत जाफर के उपरान्त उनके पुत्र इस्माईल को इमाम मानता है। इसी फिर्के को इस्माईलिया कहते है। दूसरा फिर्का हजरत जाफर के पुत्र मूसा काजिम को इमाम स्वीकार करता है। यह फिर्का असना अशरिया[2] के नाम से प्रसिद्ध है, कारण कि ये लोग इमामत के क्रम को १२ इमामो पर समाप्त कर देते हैं और कहते है कि १२वें इमाम ससार के अन्त तक लोगो की दृष्टि से ओझल रहेंगे।

इस्माईलिया का कथन है कि इस्माईल[3] अपने पिता जाफर की प्रामाणिक "नस्स" द्वारा इमाम नियुक्त हुएथे। इस्माईल की मृत्यु यद्यपि अपने पिता के पूर्व हो चुकी थी, किन्तु इन लोगो का मत है कि "नस्स" का उद्देश्य यह था कि इमामत का क्रम उन्ही की सतान में चले, जैसा कि मूसा नवी एव हारून नवी की कहानियो द्वारा ज्ञात होता है। कहा जाता है कि इस्माईल के उपरान्त उनके पुत्र मुहम्मद अल मकतूम[4] में इमामत पहुँची, जो गुप्त रहनेवाले इमामो में सवसे पहले इमाम थे। उनका मत है कि यदि

१. वुलानेवाला, विशेप रूप से इस्लाम के विभिन्न फिर्कों का प्रचारक।
२ १२ इमामों का अनुयायी।
३ इमाम जाफरे सादिक़ के ज्येष्ठ पुत्र, जिनकी मृत्यु उनके पिता की मृत्यु के ५ वर्ष पूर्व मदीने में ७६०–६१ ई० में हुई।
४. छिपे हुए।

इमाम शक्तिशाली न हो तो वह गुप्त ही रहता है और उसके अनुयायी उसका प्रचार करते है और अन्य लोगो को उसका अनुयायी बनाते है। इमाम जब शक्तिशाली होता है तो खुले आम अपना प्रचार करता है। इस्माईलिया के अनुसार मुहम्मद अल मकतूम के पश्चात् उनके पुत्र जाफर अल मुसद्दिक इमाम हुए। उनके बाद उनके पुत्र मुहम्मद अल हबीब और वे गुप्त इमामो में अन्तिम इमाम है। उनके उपरान्त उनके पुत्र उबैदुल्लाह अल-महदी इमाम हुए। अबू अब्दुल्लाह शीई ने कुतामा में खुल्लमखुल्ला प्रचार किया और लोगो ने उसका साथ देना प्रारम्भ कर दिया और उसके प्रचार का समर्थन किया। वे महदी को सिजिलमासह की कैद से निकाल लाये और कुछ ही दिनो में कैरवान एव मगरिब का राज्य भी महदी को प्राप्त हो गया। फिर महदी की सतान मिस्र पर शासन करती रही।

इस्माईल की इमामत को स्वीकार करने के कारण उन्हें इस्माईलिया कहा जाता है। क्योंकि वे लोग इमामे बातिन[1] के सिद्धान्त को भी मानते है, अत. उन्हें बातिनिया भी कहते है। उन्हें मलाहेदा की उपाधि इस कारण दी गयी कि उनके धार्मिक विश्वास एव मत मलाहेदा[2] तथा ज़िन्दीको से मिलते है। इनके विश्वास कुछ प्राचीन है और कुछ नवीन। पाँचवी शताब्दी हि०[3] के अन्त मे हसन बिन मुहम्मद अस् सब्बाह ने इस धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया और शाम तथा इराक के कुछ किलो पर भी अधिकार जमा लिया और फिर उसका प्रचार इसी प्रकार चलता रहा, यहाँ तक कि मिस्र में तुर्कों ने और इराक में तातारियो ने उनका अन्त कर दिया। इस सब्बाह के प्रचार का सविस्तर उल्लेख शहरस्तानी की "मिलल वन् नहल" में दिया हुआ है।

इनमे से असना अशरी फिर्के को बाद के लोग इमामिया के नाम से पुकारते है। उनका कथन है कि इस्माईल के अपने पिता जाफरे सादिक के जीवनकाल मे ही मृत्यु को प्राप्त हो जाने के कारण उनके भाई मूसा काजिम अपने पिता की प्रामाणिक "नस्स" के अनुसार इमाम नियुक्त हुए। फिर उनके पुत्र अली रिज़ा इमाम माने गये, जिनको मामून ने अपना उत्तराधिकारी बनाया था, किन्तु इनकी मामून के राज्यकाल ही में मृत्यु हो गयी, अत इन्हें राज्य करने का अवसर न मिल सका। फिर मुहम्मद तकी

१. गुप्त।
२. इस्लाम के विरोधी, अधर्मी।
३. ११वीं शताब्दी ईसवी।

उनके पुत्र इमाम स्वीकार किये गये। उनके बाद उनके पुत्र अली हादी, फिर उनके पुत्र मुहम्मद हसन असकरी, फिर उनके पुत्र मुहम्मद महदी मुतजिर इमाम नियुक्त हुए।

शीओ के यही धार्मिक विश्वास अधिक प्रसिद्ध हैं, यद्यपि इनमें भी कही कही अधिक मतभेद हैं, किन्तु उनके प्रसिद्ध न होने के कारण उनका उल्लेख नही किया गया। यदि किसी को इससे भी अधिक इनका सविस्तर उल्लेख आवश्यक हो तो वह इब्ने हजम की "कितावुल मिलल वन् नहल" एव शहरस्तानी तथा अन्य लोगो के ग्रन्थो का अध्ययन करे। इनमें उसे सतोपजनक हाल मिलेगा।

"ईश्वर जिसे मार्गभ्रष्ट करना चाहता है उसे मार्गभ्रष्ट करता है और जिसका पथ-प्रदर्शन करना चाहता है, उसका पथ-प्रदर्शन करता है।"[1]

(२८) खिलाफत ने किस प्रकार सल्तनत का रूप धारण किया

समझ लेना चाहिए कि राज्य एव सल्तनत "असवियत" का स्वाभाविक परिणाम हैं, जिसमें किसी की इच्छा का कोई स्थान नही। "असवियत" के अस्तित्व से ही उसकी आवश्यकता का प्रमाण मिलता है। यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि शरा एव धर्म सबधी आदोलन अथवा अन्य साधारण आन्दोलन "असवियत" के विना नही चल पाते, कारण कि समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति "असवियत" के विना नही होती। इस प्रकार "असवियत" कौम के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। इसी से ईश्वर के आदेशो का ससार में पालन होता है। इसी तथ्य के आधार पर "सहीह" नामक हदीस में यह चर्चा की गयी है—"ईश्वर ने कोई ऐसा नवी नही भेजा जिसे उसकी कौम वालो का समर्थन न प्राप्त हो।" एक ओर तो यह वात, दूसरी ओर शरा में "असवियत" की निंदा की गयी है और उस पर ध्यान न देने की सलाह दी गयी है। उदाहरणार्थ कहा गया है कि "अल्लाह ताला ने तुम्हारी जाहिलियत की उद्दडता एव कुल के अभिमान को मिटा दिया। तुम सव आदम की सतान हो और आदम मिट्टी से पैदा हुए हैं।"[1] इसी प्रकार अल्लाह ने कहा है कि "तुममें अल्लाह की दृष्टि में विश्वस्त वही है जो अधिक धर्मनिष्ठ हो।"[1] साथ ही साथ सल्तनत एव सल्तनत वालो की निन्दा भी की गयी है और उनके द्वारा जो अनुचित परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसके फलस्वरूप लोग अधिकाश अपव्यय एव दुराचार में पड़ जाते हैं, उसकी बुराई भी की गयी है। धार्मिक प्रेम एव स्नेह स्थापित रखने पर जोर दिया गया है

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

और विरोध एव शत्रुता को वड़ी कठोरता से रोका गया है। फिर यह भी स्पष्ट रहना चाहिए कि यह लोक-परलोक तक पहुँचने की सवारी है। जिसकी सवारी खो जाय वह अपने निर्धारित लक्ष्य तक किस प्रकार पहुँच सकता है। अब जिन सासारिक वातो एव कार्यों की निंदा की गयी है अथवा उनके आचरण का शरीअत द्वारा निषेध हुआ है, तो इसका यह अर्थ नही कि उन वातो एव कार्यो को पूर्णत त्याग दिया जाय और उनका आचरण ही न किया जाय, जिन शारीरिक अगो द्वारा ये कार्य सम्पन्न होते है उनको वेकार डाल दिया जाय, अपितु इसका उद्देश्य यह है कि सासारिक कार्यो का मुख यथा-शक्ति एव यथासम्भव उचित एव ठीक उद्देश्यो की ओर फेर दिया जाय, ताकि समस्त कार्य भली-भाँति सम्पन्न हो सकें और एक ही उद्देश्य के अधीन वे ससार मे प्रकट हो, जैसा कि मुहम्मद साहव ने कहा है—"जिसने अल्लाह तथा उसके रसूल के लिए हिजरत की उसकी हिजरत नि सन्देह अल्लाह एव उसके रसूल के लिए है और जिसने ससार की प्राप्ति अथवा किसी स्त्री के लिए हिजरत की, उसकी हिजरत इन्ही वस्तुओ के लिए है न कि अल्लाह एव रसूल के लिए।" उदाहरणार्थ यदि शरा में क्रोध की निंदा की गयी है तो इसका उद्देश्य यह नही कि क्रोध की शक्ति का ही अन्त कर दिया जाय, कारण कि यदि मनुष्य के क्रोध की शक्ति पूर्णत समाप्त हो जाय तो फिर वह सत्य की सहायता कैसे कर सकेगा, जिहाद किस प्रकार करेगा, अल्लाह के कलमे[1] का प्रचार किस प्रकार होगा। केवल उस क्रोध की निंदा की गयी है जो शैतानी भावनाओ के अधीन हो और जिससे शैतानी उद्देश्यो की पूर्ति हो। अत क्रोध यदि शैतानी मार्ग में हो तो बुरा है और यदि अल्लाह के लिए है तथा सत्य के कारण एव सत्य की सहायतार्थ, तो उचित एव प्रशसनीय है। मुहम्मद साहव के स्वभाव में भी क्रोध पाया जाता था।

यही वात वासनाओ के विषय में कही जा सकती है। यदि शरीअत मे वासनाओ की निंदा की गयी है तो इसका यह उद्देश्य कदापि नही कि वासनाओ का समूल उच्छेद कर दिया जाय, कारण कि यदि यह शक्ति पूर्णत समाप्त हो जाय तो मनुष्य के अधि-कारो की रक्षा में दोष आ जायगा, अपितु इसकी निंदा का उद्देश्य यह है कि वासनाओ से शिष्टजन-स्वीकृत एव प्रशसनीय मार्गो में काम लिया जाय। ताकि मनुष्य अपने आपको ऐसा आज्ञाकारी दास सिद्ध करे जिसके समस्त कार्य एव कर्त्तव्य दैवी आदेशो के क्षेत्र में हो।

इसी प्रकार यदि "असबियत" की निंदा इन शव्दो में की गयी है कि "तुम्हारे

१. इस्लामी कलमा—"ला इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलल्लाह।"

सबधी, निकटवर्ती एव सतान कदापि तुम्हें कोई लाभ न पहुँचायेंगी", तो इससे उस "असवियत" की निंदा की गयी है जो असत्य एव अस्वीकृत मार्गो तथा दुराचार में प्रयोग की जाय। जैसा कि जाहिलियत के युग में प्रथा थी कि "असवियत" के अभिमान में वे एक-दूसरे पर अनुचित गर्व करते थे अथवा किसी पर व्यर्थ में अपना हक जताते थे, कारण कि यह व्यर्थ वात है जिससे परलोक में कोई लाभ सम्भव नही। जो "अस वियत" सत्य के मार्ग में काम आये और उसके वल पर दैवी आदेश ससार में प्रचलित हो तो वह नि सन्देह प्रशसनीय है। यदि यही "असवियत" मिट जाय तो शरीअतें भी मिट जायँ, कारण कि शरीअतो का अस्तित्व एवं उनकी वास्तविकता "अस वियत" से ही पूर्ण होती है।

यही दशा सल्तनत की भी है कि शारे[१] ने जहाँ-जहाँ इसकी निंदा की है तो वह इस कारण कदापि नही कि सल्तनत के जोर से ससार में सत्य का प्रचार न हो। सवको दीन एव धर्म की ओर आकृष्ट किया जाय और अन्य धार्मिक वातो का भी ध्यान रखा जाय, कारण कि इस दृष्टि से सल्तनत पूर्ण रूप से आशीर्वाद एव लाभ का भडार है, ईश्वर की छाया है, वह वुरी किस कारण हो सकती है। हाँ यदि वह वुरी है तो इसी कारण कि सल्तनत की आड में असत्य का ज़ोर वढे, मनुष्यो को अपने व्यक्तिगत उद्देश्यो एव अभिलाषाओं के आधार पर तग किया जाय। इसके विपरीत यदि शासनप्रवध का यह उद्देश्य हो कि ससार में सच्ची "खिलाफते इलाही" की व्यवस्था की जाय, लोगो को ईश्वर की इवादत तथा अल्लाह के लिए जिहाद के वास्ते तैयार किया जाय, तो इस प्रकार के राज्य की किसी तरह निन्दा नही की जा सकती। हज़रत सुलेमान ने राज्य की जो इच्छा की और ईश्वर से यह प्रार्थना की कि "हे ईश्वर! मुझे ऐसा राज्य दे जो मेरे वाद किसी को न प्राप्त हो सके।"[२] तो यही पवित्र उद्देश्य उनके समक्ष था और वे असत्य एव झूठ से मुक्त थे।

इसी प्रसग में यह ऐतिहासिक घटना भी ध्यान देने योग्य है कि हजरत उमर जव शाम के दौरे पर पहुँचे और हजरत मुआविया उनके सम्मुख शाहाना ऐश्वर्य एव वैभव तथा वस्त्र धारण करके उपस्थित हुए, तो हजरत उमर को हजरत मुआविया की यह सजधज अच्छी न लगी और कहा—"मुआविया! क्या यह किसरा की प्रथा है?"

१. मुहम्मद साहव से तात्पर्य है।
२. कुरान शरीफ से उद्धृत।

उन्होने उत्तर दिया कि "अमीरुल मोमिनीन ! मै ऐसे सीमान्त पर नियुक्त हूँ जहाँ शत्रु मेरे अत्यधिक निकट है। युद्ध जिहाद, तथा ऐश्वर्य एव वैभव द्वारा उन्हें आतकित करने की आवश्यकता है।" यह उत्तर सुनकर हजरत उमर मौन हो गये। क्योकि मुआविया ने अपने कार्य को सत्य एव धर्म के उद्देश्यो पर आधारित किया, अत हज़रत उमर ने उनकी बात का विरोध नही किया। अब यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सल्तनत यदि पूर्णत त्याग देने योग्य एव घृणित होती तो हज़रत उमर मुआविया के इस उत्तर को स्वीकार न करते जो उन्होने अपनी शहशाहियत के गौरव के स्पष्टीकरण मे प्रस्तुत किया, अपितु उसको त्याग देने का आदेश दे देते। उधर हजरत उमर ने जो यह कहा कि "मुआविया ! क्या यह किसरा की प्रथा है ?" इससे फारस वालो की झूठ की पूजा, अत्याचार, निष्ठुरता, विद्रोह, मार्ग-भ्रष्ट होने, ईश्वर की उपेक्षा की बुरी आदत की ओर सकेत था, जिन पर वे अपने राज्यकाल में आचरण करते थे। इसी बात का उत्तर मुआविया ने दिया कि "इस जाहिरी ऐश्वर्य तथा वैभव से मेरा उद्देश्य फारस वालो के समान झूठ की पूजा एव भोग-विलास नही, अपितु धार्मिक उद्देश्य है और उसी पर इस आचरण का आधार है।" यह उत्तर सुनकर हज़रत उमर चुप हो गये।

सम्मानित सहाबा का भी यही हाल था कि वे राज्य एव शासन से बचा करते थे और उसके दुष्परिणामो को सामने रखकर उनसे दूर रहने का प्रयत्न करते रहते थे कि कही झूठ की पूजा एव भोग-विलास का अपराध उन पर न लग जाय। इस प्रकार जब मुहम्मद साहब की मृत्यु का समय निकट आया तो आपने नमाज़ की इमामत के लिए हजरत अबू बक्र को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया, कारण कि धार्मिक बातो में वही सबसे अधिक अग्रणी थे। फिर इस घटना को दृष्टि में रखकर लोगो ने आपको खलीफा चुन लिया, किन्तु खिलाफत का उत्तरदायित्व केवल यही तक सीमित था कि लोगो को शरई आदेशो का पाबद किया जाय। जिस प्रकार का राज्य उस युग के असत्यवादियो में प्रचलित था, उसकी किसी को कल्पना तक न थी। उन राज्यो से झूठो की उन्नति के भय से हज़रत अबू बक्र ने खिलाफत का उत्तरदायित्व सँभाला और मुहम्मद साहब के आदेशो का भली-भाँति पालन किया। मुर्तिदों[1] से जिहाद किया, यहाँ तक कि समस्त अरब इस्लामी सूत्र में बँध गया।

तदुपरान्त आपने खिलाफत का भार हज़रत उमर के कधो पर रखा और हजरत

१. उन लोगो से, जिन्होंने इस्लाम स्वीकार करने के उपरान्त उसे त्याग दिया था।

उमर भी आपके ही पदचिह्नो पर चले। ससार की कौमो से युद्ध करके आपने उ
पराजित किया। फिर अरब ने आपके नेतृत्व में अन्य देशवालो की धन-सम्प
छीन ली। फिर खिलाफत का उत्तरदायित्व हज़रत उमर से हज़रत उस्मान
प्राप्त हुआ और आपसे हज़रत अली को। ये सब सम्मानित खलीफा लोग प्रचलि
सल्तनत से दूर का भी सम्बन्ध न रखते थे। सल्तनत से इतनी दूर रहने का कार
उनकी धर्मनिष्ठा थी जो सरल जीवन का पाठ पढाती थी। दूसरा कारण उन
अरबी बदवीपन, जिसके कारण वे भोग-विलास से दूर रहे। अरब वाले उस सम
सासारिक बातो एव भोग-विलास से कोई सबध न रखते थे। उनका धर्म भी उ
इसकी अनुमति न देता था, कारण कि धर्म उनको सासारिक आनन्दों एव भोग-विला
से दूर रखता था, उनकी "बदवियत" एव उनकी वासभूमि भी इसके लिए अनुपयु
थी। वे प्रारम्भ से ही एक सरल जीवन के आदी हो गये थे और उसी को वे पहचान
थे। भोग-विलास से उनका क्या सम्बन्ध? इसी कारण कहा जाता है कि कोई
कौम मुज़र के समान कठिन और गरीबी का जीवन व्यतीत करने की आदी न थ
कारण कि वे हिजाज के बिना चारे और जल वाले भू-भाग में पैदा हुए थे और हरे-भ
स्थानों की समृद्धि एव भोग-विलास से अनभिज्ञ थे। ऐसे स्थान उनसे अत्यधिक दूरी प
स्थित थे। उन पर रबीआ एव यमन के कबीले अधिकार जमाये थे। इसी लिए
उनकी नकल नही कर सकते थे। वे गोबरैला तथा बिच्छू खाया करते थे। ऊँट क
ऊन रक्त मे पकाकर खाते और इस पर गर्व करते थे। कुरैश की खाने-पीने एव रहन
सहन की भी दशा यही थी। यहाँ तक कि जब अल्लाह ताला ने उनको हज़रत मुहम्म
के पवित्र व्यक्तित्व द्वारा सगठित किया और कुरैश में ही आपको भेजकर उन्हें सम्मा
नित किया तो पूरे अरब की "असबियत" धर्म की सेवा के लिए सिमट आयी और फि
वे एक-जान एव एक-दिल होकर फारस एव रूम की कौमो पर टूट पडे और अल्ला
ताला ने अपने सच्चे वचन से उनके भाग्य में जो राज्य एव सांसारिक धन-सम्पत्ति
लिख दी थी, वह उन्हें प्राप्त हो गयी। फिर तो समृद्धि ने अरबो का घर देख लिया औ
धन-सम्पत्ति इस सीमा तक आने लगी कि किन्ही-किन्ही युद्धो में एक-एक अश्वारोह
के हिस्से में ३०–३० हज़ार अशरफियाँ अथवा इसके लगभग आ जाती थी। सक्षेप
उन्होंने इतनी धन-सम्पत्ति एकत्र की जिसकी कोई सीमा नही, किन्तु शिक्षा ग्रहण कर
योग्य तो यह बात है कि इस पर भी उन्होंने अपना सरल एव नीरस जीवन नह
त्यागा। इसी लिए कहा जाता है कि हज़रत उमर अपने वस्त्रो में चमडे का पैवद लग
लेते थे और हज़रत अली कहा करते—"हे सोने-चाँदी! मेरे अतिरिक्त किसी अन्य क

जाकर वहकाओ।" अवू मूसा[1] मुर्ग का मास नही खाया करते थे, कारण कि अरव में मुर्गो के कम मिलने के कारण वे उसके आदी न थे। आटा चालने के लिए चलनी की तो प्रथा ही न थी और वे विना छना आटा खाया करते थे।

उनका जीवन जहाँ एक ओर इतना सरल था वहाँ दूसरी ओर उनकी आय एव धन-सपत्ति इतनी अधिक थी कि वे ससार के अन्य धनी लोगो से मुकाबला करते थे। इस प्रकार मसऊदी हज़रत उसमान के राज्यकाल के विषय में लिखता है कि उस समय सहावा वड़ी-वडी जागीरो एव धन-सम्पत्ति के स्वामी वन गये थे और हजरत उस्मान के शहीद हो जाने के पश्चात् उनके खजाने में १½ लाख दीनार तथा १० लाख दिरहम वर्त्तमान थे। कुरा एव हुनैन की घाटियो में जो आपकी जागीर थी, वह भी २ लाख दीनार से कम न थी। इनके अतिरिक्त आपने अत्यधिक ऊँट-घोड़े छोड़े थे। जुवैर[2] की मृत्यु के उपरान्त उनके तरके का मूल्य ५० हजार दीनार था। इसके अतिरिक्त १००० घोडे तथा १००० दासियाँ और भी थी। तलहा के समय इराक की दैनिक आय १००० दीनार थी और अश् शहरह के भू-भाग की आय इससे भी अधिक वतायी गयी है। अव्दु-र्रहमान विन औफ के अस्तवल में १००० घोड़े, १००० ऊँट तथा १०,००० भेडें मौजूद थी और मृत्यु के उपरान्त उनकी छोड़ी हुई सम्पत्ति ८४ हज़ार दीनार मूल्य की ज्ञात हुई। ज़ैद विन सावित ने १ लाख दीनार की जागीर तथा बहुत कुछ नकद छोड़ा। चाँदी-सोने की ईंटें इसके अतिरिक्त थी। जुवेर ने वसरा, मिस्र, कूफा तथा इस्कन्द-रिया में वड़े-वडे भवनो का निर्माण कराया। इसी प्रकार तलहा ने भी कूफे में अपने लिए भवन वनवाये और मदीने में चूने एव ईंटो से अपने लिए एक नया घर वनवाया। साद विन अवी वक़्क़ास ने (मदीने के समीप) में अपने लिए एक भव्य भवन का अकीक निर्माण कराया। इसका प्रांगण वड़ा लम्बा-चौड़ा और उसकी ऊपरी मजिल

१. अवू मूसा अशअरी, इस्लाम के प्रारम्भिक काल के वड़े प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हुए हैं। जुलाई ६५७ ई० में सिफ्फीन का युद्ध रुक जाने के बाद उन्हें हज़रत अली एवं मुआविया का निर्णय कराने के लिए पंच नियुक्त किया गया था। उनकी मृत्यु कूफे में ४२ हि० (६६३–६२ ई०) अथवा ५२ हि० (६७२ ई०) में हुई।
२. जुवैर विन अल अव्वास उन लोगों में थे जो मुहम्मद साहव के इस्लाम के प्रचार के प्रारम्भ होते ही मुसलमान हो गये थे। उनकी मृत्यु जमल के युद्ध (दिसम्वर, ६५६ ई०) में हुई।

में झरोखे रखवाये। मिकदाद[1] ने मदीने में अपने लिए भवन का निर्माण कराया, जिसके भीतर और वाहर चूने का पलस्तर भी था। याला विन मुनयह[2] ने ५० हज़ार दीनार नकद तथा जागीर छोडी। उसकी धन-सम्पत्ति का मूल्य ३ लाख लगाया गया।

इन समस्त तथ्यो को सामने रखकर इसका ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है कि मुसलमानो की धन-सम्पत्ति उस समय किस सीमा तक पहुँच चुकी थी, किन्तु यह भी स्मरण रहे कि यह सम्पत्ति दीन (इस्लाम) खोकर नही प्राप्त की गयी थी और न दीन के आदेशो के विरुद्ध। यह सव कुछ उन्हें युद्ध की लूट में प्राप्त हुआ था। उन्होंने इसमें कोई अपव्यय नही किया, अपितु सयम को सर्वदा ध्यान में रखा, अत. यह अपार धन-सम्पत्ति सम्मानित सहावा के उत्कृष्ट व्यक्तित्व में कोई दोप उत्पन्न न कर सकी। अव सासारिक धन-सम्पत्ति की वहुतायत की जो निंदा की जाती है इसका कारण यह है कि उसका अपव्यय किया जाता है और उसके कारण लोगों में असंयम का सूत्रपात होता है। किंतु यदि धन-सम्पत्ति की अधिकता के वावजूद सयम न त्यागा जाय और व्यय उचित रूप से धर्म के मार्ग में ही हो, तो धन की अधिकता धर्म के मार्ग पर चलने में सहायता देती है और परलोक के लाभ का साधन वनती है। अत. जव अरव की "वद-वियत" एव दरिद्रता अपनी चरम सीमा को प्राप्त हो गयी और "असवियत" के कारण उन्हें राज्य प्राप्त हो गया एव ऐश्वर्य तथा गौरव हासिल हुआ, तो सल्तनत के समान, समृद्धि एव अधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त कर लेने के कारण उन्होंने दुराचार की ओर कदम नही वढाया और सत्य एवं न्याय के मार्ग को नही त्यागा। इस प्रकार जव हज़रत अली एव मुआविया में "असवियत" के आधार पर विरोध की अग्नि भड़क उठी तो उन्होंने अपने युद्धो[3] में कभी भी सासारिक लोभ, झूठ एव द्वेष को, जैसा कि कुछ लोगो को भ्रम हो जाता है, अपने सामने न रखा। वास्तव में यह एक "इजतेहादी विरोध"[4] था और प्रत्येक अपने इजतेहाद के प्रकाश में दूसरे को गलती पर वताता था, इसी कारण दोनो

१. मिकदाद विन् अल-असवद की मृत्यु ३३ हि० (६५३-५४ ई०) में हुई।
२. मुनयह याला की माता अथवा दासी थी। याला उमय्या का पुत्र था।
३. सिफफीन का युद्ध के वाद भी हजरत अली तथा मुआविया का संघर्ष, हजरत अली के खिलाफत के काल के अन्त तक चलता रहा।
४. प्रस्तुत परिस्थिति को अपनी-अपनी वुद्धि के अनुसार समझकर शरा की पृष्ठ-भूमि में निर्णय।

पक्ष आपस में टकरा गये। यह बात स्वीकार की जा सकती है कि हजरत अली सत्य के मार्ग पर थे, किन्तु मुआविया भी किसी झूठे उद्देश्य से उनके मुकाबले में नही आये। उनकी दृष्टि के समक्ष भी सत्य की खोज थी यद्यपि उन्होने सत्य की प्राप्ति में भूल की। इसी प्रकार सभी मुसलमान अपने-अपने दृष्टिकोण से सत्य पर आरूढ थे। किसी में भी असत्य की ज़िद न थी।

जब इस अशान्ति के समाप्त होने के उपरान्त गौरव एव श्रेष्ठता सुल्तान के अकेले व्यक्तित्व में केन्द्रित हो गयी और सियाह-सफेद का अधिकार एक व्यक्ति के हाथ में चला गया तो मुआविया अपने एव अपनी कौम के पद-गौरव एव सम्मान को न त्याग सके। यह एक स्वाभाविक बात थी, जिसका कारण "असबियत" थी। उधर बनी उमय्या तथा उनके सहायको ने, जो सत्य के पालन के कारण मुआविया का साथ न दे रहे थे, इस बात को समझ लिया तो उन्होने मुआविया की सहायता मे कोई कसर उठा न रखी और जान तक की बाज़ी लगा दी। यदि मुआविया अपने आचरण कोब दलते और सल्तनत की आवश्यकताओ की उपेक्षा करके लोगो का विरोध करते तो जो सगठन उन्होने पैदा किया था, वह समाप्त हो जाता। हालाँ कि सल्तनत की आवश्यकताएँ एवं सगठन तथा मेल उन घटनाओ की अपेक्षा, जो पेश आयी, कही अधिक महत्त्वपूर्ण थे, उनके कारण किसी बड़े विरोध का भय न रहा। इस प्रकार उमर इब्न अब्दुल अज़ीज़,[1] कासिम बिन मुहम्मद बिन अबू बक्र[2] को देखकर कहा करते थे कि यदि मेरा बस चलता तो मैं इनको खिलाफत देता। यदि वे कासिम को उत्तराधिकारी नियुक्त करना चाहते तो कर भी सकते थे, किन्तु जो बनी उमय्या अधिकारसम्पन्न हो गये थे, उनसे वे डरते थे कि बनी उमय्या के हाथ से राज्य निकल जाने पर कही उनमें विरोध एव मतभेद न हो जाय। ये सब सल्तनत के खेल है जिनका आधार "असबियत" है।

इस पूरे वर्णन का निष्कर्ष यह निकला कि जब सल्तनत प्राप्त होती है और एक ही व्यक्ति राज्य के पूरे सगठन का अकेला स्वामी एव सियाह-सफेद का मालिक हो जाता है और सत्य एव सिद्धान्त को अपनी सल्तनत में से नही त्यागता, तो ऐसी सल्तनत की कोई भी निंदा नही करता। इस प्रकार हजरत सुलेमान एव उनके पिता हज़रत दाऊद बनी इसराईल के स्वतत्र शासक थे, हालाँ कि दोनो ही ईश्वर के सम्मानित नबी एव सत्य तथा

१. उमय्या वंश का ९वाँ खलीफा, जो ७१७ ई० से ७२० ई० तक खलीफा रहा। वह अपने पवित्र जीवन के लिए बड़ा प्रसिद्ध था।
२, खलीफा अबू बक्र का पोता, जिसकी मृत्यु ७२० तथा ७३० ई० के मध्य में हुई।

सिद्धान्त के सच्चे अनुयायी थे। इसी प्रकार मुआविया ने यजीद को अपना उत्तराधिकारी बनाया। यदि ऐसा न करते तो अशाति उत्पन्न हो जाती, कारण कि बनी उमय्या अपने वश से सल्तनत का किसी अन्य वश में जाना किसी मूल्य पर सहन न कर सकते थे। यदि मुआविया किसी अन्य को अपना उत्तराधिकारी बनाते तो बनी उमय्या स्वय उन पर टूट पड़ते, चाहे उनके साथ इसके पूर्व उनके कितने ही अच्छे सम्बन्ध क्यो न थे। उनके गुणो में किसी को सन्देह न था। इसके विरुद्ध मुआविया के विषय में कुछ सोचना इनसाफ का खून करना है, कारण कि वे यजीद के व्यभिचार एव दुराचार को जानते हुए उसको अपना उत्तराधिकारी कभी न नियुक्त करते।

इसी प्रकार मरवान बिन अल हकम[1] तथा उसके पुत्र यद्यपि बादशाह थे, किन्तु बादशाहत से उनका उद्देश्य झूठ की पूजा, विद्रोह एवं उपद्रव को उन्नति देना कदापि न था, अपितु वे यही प्रयत्न करते रहे कि राज्य में सत्य एव न्याय का प्रचार हो, सदाचरण एव परोपकार की उन्नति हो। किन्तु विशेष परिस्थितियो में उनके द्वारा ऐसे कार्य सम्पन्न हो गये जो इसके विरुद्ध दृष्टिगत होते है, किन्तु उन्हें इसका भय था कि कही ऐसा न करने से कौम का सगठन भग न हो जाय। सगठन एवं मेल उनके निकट समस्त बातो पर सर्वोपरि था। हमने जो इस ऐतिहासिक तथ्य की चर्चा की उसका प्रमाण उनके द्वारा सुन्नत एवं दीन के पालन के उदाहरणो से मिल जायगा, जिनका विवरण बुजुर्गो के प्रामाणिक तथा प्रचलित इतिहास से प्राप्त होता रहा है। उदाहरणार्थ अब्दुल मलिक[2] के आचरण को ध्यान में रखकर इमाम मालिक सरीखे महान् व्यक्ति ने अपने "मोता" नामक ग्रथ में तर्क के आधार पर समर्थन करते हुए उसे प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया। मरवान को ताबेईन[3] की प्रथम श्रेणी में माना गया है, उसका न्याय बडा प्रसिद्ध है। फिर अब्दुल मलिक की संतान में राज्य चलता रहा और वे भी धर्म के सम्बन्ध में अपने पूर्वजो की श्रेणी के समझे जाते थे। उन्ही के हाथ में उमर बिन अब्दुल अजीज़ का राज्य आया। वे प्रथम चारो खलीफाओ के समान खिलाफत

१. उमय्या वंश का चौथा खलीफा, जो ६८४ ई० से ६८५ ई० तक लगभग २९८ दिन खलीफा रहा।
२. अब्दुल मलिक बिन मरवान, उमय्या वंश का ५वाँ खलीफा। वह ६८५ ई० से ७०५ ई० तक खलीफ़ा रहा। उसका राज्य विभिन्न विजयो के लिए प्रसिद्ध है।
३. वे लोग जो मुहम्मद साहब के बाद की दूसरी पीढी में थे।

चलाने का प्रयत्न करते रहे और सहाबा का अनुसरण करने में बाल बराबर भी पीछे नही हटे।

उनके उपरान्त ऐसे लोगो को प्रभुत्व प्राप्त हुआ जिन्होने सल्तनत से अपनी व्यक्तिगत इच्छाओ एव सासारिक उद्देश्यो में लाभ उठाना चाहा। उन्होने अपने पूर्वजो के सयम एव सतुलन को त्याग दिया। उनके समान उन्होने हर बात में सत्य की खोज की चिंता त्याग दी। जब उनके स्वभाव में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया तो लोग भी उनके कार्यो एव आचरण से घृणा करने लगे। तदुपरान्त अब्बासियो के राज्य के प्रचार की पताका उन्नत हुई और राज्य बनी अब्बास के अधीन हो गया। ये लोग भी प्रारम्भ में न्याय के उच्च स्तर पर दृढ रहे और सल्तनत का पूरा जोर सत्य एव धर्म की उन्नति में लगाया और इसमें कोई कसर उठा न रखी। यहाँ तक कि जब रशीद की सतान का राज्यकाल आया तो उनमें से कुछ सदाचारी थे और कुछ दुराचारी। फिर जब उस सतान की सतान को राज्य प्राप्त हुआ तो उनके भोग-विलास की कोई सीमा न रही और वे सांसारिक आनन्द एव दुराचार में डूब गये तथा धर्म को पीछे डाल दिया। ऐसी अवस्था में अल्लाह ने भी उन्हें विनाश के घाट उतार दिया और सभी अरबो से हुकूमत की बागडोर छीन ली और अन्य लोगो को प्रभुत्व प्रदान कर दिया। अब जो इतिहास का अध्ययन करते समय भूतकाल के खलीफाओं एव बादशाहो का हाल तथा उनका परस्पर भेद पढेगा कि कोई सत्य पर मिटता है और कोई झूठ पर प्राण त्यागता है, तो वह हमारे विवरण के तथ्य को स्वीकार किये विना नही रह सकता।

मसऊदी[1] ने बनी उमय्या के विषय में अबू जाफर अल मसूर के कथन के आधार पर उल्लेख किया है कि अल मसूर के दरबार में उसके चाचाओ ने बनी उमय्या की चर्चा की तो अबू जाफर भरे दरबार में बोल उठा कि "अब्दुल मलिक एक निरकुश व्यक्ति था। जो चाहता कर डालता। सुलेमान इन्द्रिय-लोलुपता के वश में था और उमर 'अधो में काना राजा' था। इनमें यदि कोई व्यक्ति था तो हिशाम था उसने फिर यह भी कहा कि बनी उमय्या ने जब तक अल्लाह के दिये हुए राज्यप्रबध को कुशलतापूर्वक थामे रखा और उन्नति की ओर अग्रसर होते हुए वे अनुचित बातो को त्यागते रहे, उस समय तक उनकी दशा अच्छी रही, किन्तु जब उनकी विलास-प्रिय सतान का युग आया तो उनकी दृष्टि एव उनके विचार इन्द्रिय-लोलुपता की ओर आकृष्ट हो गये और वे नाना प्रकार के पापो मे ग्रस्त हो गये और यह न समझे कि अल्लाह ने उनकी

१. मुरूजुज़ जहब।

रस्सी ढीली छोड रखी है, इसी लिए वे अल्लाह की उपेक्षा करने की ओर ध्यान न देकर असावधान हो गये। खिलाफत की रक्षा का ध्यान त्याग दिया। राज्य के उत्तरदायित्व को साधारण बात समझने लगे और राजनीति के क्षेत्र में बड़ी अयोग्यता का परिचय देने लगे। जब यह दशा हो गयी तो अल्लाह ने भी उनसे सम्मान को छीनकर अपमान के वस्त्र उनको पहना दिये और अपनी देन से उन्हें वंचित कर दिया।

फिर अब्दुल्लाह बिन मरवान को दरबार में उपस्थित किया गया। उसने एक घटना का उल्लेख किया जो नोबा के बादशाह तथा उससे सबधित थी। उसने बताया कि जब मै भागकर नोबा पहुँचा और कुछ समय तक वहाँ ठहरा रहा तो एक दिन नोबा का बादशाह मेरे पास आया। मैंने यद्यपि उसके लिए बहुमूल्य एव उत्तम फर्श बिछवाया था, किन्तु वह आकर भूमि पर ही बैठ गया। मैंने पूछा कि "आप मेरे बिछाये हुए फर्श पर किस कारण नही बैठते ?" तो उसने उत्तर दिया कि "मै बादशाह हूँ और प्रत्येक बादशाह का कर्त्तव्य है कि यत ईश्वर ने उसको उच्च श्रेणी प्रदान की है अत वह अल्लाह के गौरव को प्रकट करे और स्वयं दीनता एव नम्रता ज़ाहिर करे।" फिर उसने मुझसे पूछा कि "तुम लोग मदिरा-पान क्यो करते हो, जब कि अल्लाह ताला ने तुम्हारे धार्मिक ग्रथों में इसका निषेध किया है ?" मैंने कहा कि "यह पाप हमारे दास, सेवक इत्यादि अज्ञान के कारण करते है।" उसने फिर पूछा कि "तुम कृषि को घोडे की टापो से क्यो रौंदते हो, हालाँ कि उपद्रव फैलाने का तुम्हारी शरीअत में निषेध किया गया है।" मैंने उत्तर दिया कि "यह पाप भी हमारे दासो एवं सेवको ने अज्ञान में किया।" उसने कहा—"अच्छा तुम रेशमी वस्त्र किस कारण धारण करते हो और सोने-चाँदी के आभूषणो का क्यो प्रयोग करते हो,हालाँ कि यह सब चीजें तुम्हारे धर्म में निषिद्ध हैं।" मैंने कहा कि "जब राज्य हमारे हाथ से निकलने लगा तो हमने अजम से, जो हमारे धर्म में आ चुके थे, सहायता ली। वे इन वस्तुओ का हमारी इच्छा के विरुद्ध प्रयोग करते हैं।" मेरे उत्तर सुनकर वह हाथ से भूमि कुरेदने लगा और कहने लगा कि "क्या खूब ! जो कुछ किया वह तुम्हारे दासो, सेवको एव उन अजमियो ने किया जो तुम्हारे धर्म मे प्रविष्ट हो गये थे।" फिर उसने सिर उठाकर कहा—"जो कुछ तुमने बताया वह सत्य के विरुद्ध है। सत्य तो यह है कि तुमने अल्लाह की हराम की हुई वस्तुओ को हलाल कर लिया और जिन बातो का उसने निषेध कर दिया है, उन्हें पसन्द कर प्रयोग करते हो। अपने राज्य में तुमने अत्याचार को प्रश्रय दिया, फलत अल्लाह ने तुम्हें जो सम्मान प्रदान किया था, वह तुमसे छीन लिया और अपमान के वस्त्र तुमको पहनाये। अब भी दैवी प्रकोप अपनी चरम सीमा को नही पहुँचा

है। मुझे भय है कि कही ईश्वर का कोप तुम्हारे ऊपर इसी समय न टूट पड़े, जब कि तुम हमारे नगर में ठहरे हुए हो तो कही हम भी तुम्हारे साथ न पिस जायँ और पाप मे ग्रस्त हो जायँ। आतिथ्य केवल तीन दिन तक होता है। मार्ग-व्यय मुझसे ले लो और मेरे राज्य से चले जाओ।" इस पर मसूर ने वड़ा आश्चर्य प्रकट किया तथा सोच में पड गया।

अब तुमने देख लिया कि खिलाफत सल्तनत में कैसे परिवर्तित हुई और यह भी जान लिया कि प्रारम्भ में केवल खिलाफत थी और प्रत्येक व्यक्ति पर उसके धर्म का राज्य था। ससार की प्रत्येक वस्तु के मुकाबले में वे धर्म का पालन करते थे चाहे इससे वे नष्ट ही क्यो न हो जाते। हजरत उस्मान का उदाहरण प्रस्तुत है कि जव आप अपने घर में घिर गये, तो हज़रत हसन, हजरत हुसेन, अब्दुल्लाह विन उमर, इब्ने जाफर तथा अन्य लोग प्रतिरक्षा हेतु आपके पास पहुँचे, किन्तु हज़रत उस्मान ने मुसलमानो के विरुद्ध तलवार निकालने से रोक दिया। उन्हे केवल यही भय था कि कही मुसलमानो में सघर्ष न हो जाय और उस प्रेम एव स्नेह का अन्त न हो जाय जिससे मुसलमानो ने धर्म की रक्षा की थी, यद्यपि युद्ध से रोक देना स्वय उनकी हत्या का कारण वन गया, किन्तु उन्होंने इसकी कोई चिन्ता न की।

दूसरा उदाहरण हमारे सामने हज़रत अली का मौजूद है कि जव प्रारम्भ मे आपकी खिलाफत पर वैअत की गयी तो मुगीरह[1] ने आपको परामर्श दिया कि जुबैर, मुआविया एव तलहा को अपने-अपने स्थान पर नियुक्त रहने दिया जाय, यहाँ तक कि सव लोग आपकी वैअत से सहमत और समस्त मुसलमान सगठित हो जायँ। इसके उपरान्त आपकी जो इच्छा हो करें। वास्तव में राजनीति की दृष्टि से यह उचित था, किन्तु हजरत अली ने इस परामर्श के अनुसार आचरण करना स्वीकार न किया, कारण कि छल एव धूर्तता को इस्लाम मे स्वीकृति नही दी गयी है। दूसरे दिन जव मुगीरह आये तो कहने लगे कि "मैने कल जो आपको परामर्श दिया था उस पर जव मैंने पुन. गौर किया तो ज्ञात हुआ कि वह उचित न था और आपका मत ही ठीक था।" इस पर हजरत अली ने उत्तर दिया कि "नही, मुझे भली-भाँति ज्ञात है कि तुम्हारा कल का परामर्श उचित था और आज की वात मिलावट से शून्य नही, किन्तु मैं क्या करूँ। तुम्हारे परामर्श पर आचरण करने से मुझे सत्य रोकता है।" इन वुज़ुर्गों की वास्तव में यही दशा थी कि धर्म के सुधार के लिए वे सासारिक हानि सहन कर लेते

१. मुग़ीरह विन शोवा (मृत्यु ६६८–६७१ ई० के मध्य में), हज़रत उमर की खिलाफत के काल में कुछ समय तक वसरे का हाकिम रहा।

थे। एक हम हैं कि जो अपना धर्म नष्ट करके सासारिक लाभ की चिन्ता करते हैं। फिर न धर्म ही वाकी रहता है और न ससार ही प्राप्त होता है।

इन ऐतिहासिक घटनाओ से यह अनुमान लगा लिया गया होगा कि खिलाफत किस प्रकार राज्य में परिवर्तित हो गयी और खिलाफत का केवल यह अर्थ रह गया कि "वह धर्म की रक्षा और सत्य के मार्गों के पालन का नाम है।" किन्तु उस समय तक यही परिवर्तन हुआ था कि दीन एव शरीअत के राज्य के स्थान पर राजनीतिक शासन स्थापित हुआ था। आगे चलकर तो "असवियत" एव तलवार ने समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिये। प्रथम दशा वनी उमय्या में मुआविया एव मरवान से अब्दुल मलिक तक और वनी अब्वास में सफ्फाह से रशीद तथा उसकी किसी सदाचारी सतान तक चलती रही। फिर खिलाफत कर्त्तव्य छोडकर केवल नाम मात्र की ही रह गयी और सल्तनत प्रचलित हो गयी। प्रभुत्व एवं शक्ति अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी। इसका प्रयोग क्रोध एव आतक को शान्त करने एव सासारिक इच्छाओ तथा इन्द्रिय-लोलुपता की पूर्ति के लिए होने लगा। राज्य का यही रूप अब्दुल मलिक की सतान एव रशीद के अब्वासी उत्तराधिकारियो में प्रचलित हुआ। अरव की "असवियत" के वाकी रहने के कारण खिलाफत का नाम चलता रहा। तथ्य कुछ न था। खिलाफत एव सल्तनत इन युगो में समान रूप धारण किये हुए थी, किन्तु जव अरवी "असवियत" का अन्त हुआ तो कौमवालो की योग्यता भी समाप्त हो गयी। स्थिति के परिवर्तन के कारण खिलाफत का नाम भी मिट गया और अव केवल सल्तनत एव राज्य रह गये।

पूर्व में ईरानी वादशाहो की जो शान थी वह यहाँ भी प्रकट हुई। वे केवल आशीर्वाद हेतु खलीफा के आज्ञाकारी थे और हर प्रकार से राज्य दूसरो के अधिकार में था। खलीफा का इससे कोई सम्वन्ध न था। जनाता सुल्तानो ने मगरिव में यही किया सिनहाजा का उवैदीईन से यही सम्वन्ध था। मगरावा तथा वनू यफरान के उन्दुलुस के उमय्या खलीफाओ एव कैरवान के उवैदीईन से यही सवध थे।

इस विवरण का निष्कर्ष यह निकला कि सर्वप्रथम खिलाफत रही। सल्तनत एव शासन की उसमें झलक तक न थी। फिर आगे चलकर दोनो परस्पर मिल-जुल गये और मिश्रित हो गये। फिर और आगे वढकर केवल सल्तनत रह गयी। यह उस समय हुआ जव कि देश की "असवियत" एव खिलाफत की "असवियत" पृथक् हो गयी। "ईश्वर ही रात और दिन निकालता है।"[1]

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

(२९) बैअत

ज्ञात होना चाहिए कि बैअत, आज्ञाकारिता हेतु प्रतिज्ञा करने का नाम इस प्रकार वैअत करनेवाला अपने अमीर[1] से प्रतिज्ञा करता है कि वह अपने व्यक्तिगत एव मुसलमानों के समस्त कार्यों में अमीर के अधिकारो को स्वीकार करेगा वह उसका किसी विषय में विरोध न करेगा और अमीर की ओर से उसे जो आ प्राप्त होगा, चाहे वह उसकी इच्छा के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल, वह उसका पूर्ण से पालन करेगा। फिर यह प्रथा चली आ रही है कि जब अमीर से वैअत करते वचनवद्ध होते है तो हाथ में हाथ देते है, ताकि वचन और भी दृढ हो जाय। यह मानो वेचनेवाले एव क्रय करनेवाले के समान है, अत. इसका नाम बैअत रखा जो "वाअह" धातु से बना है, अत. वैअत का अर्थ हाथ मिलाना हुआ। शब्द एव शरा के अनुसार वैअत का तथ्य यही है।

हदीस में जो लैलतुल अकबा व शजरा[2] की वैअत का उल्लेख है, तो उसका यही वैअत है, अथवा जहाँ कही वैअत शब्द आता है वहाँ इसके अर्थ यही होते है। तुल खुलफा[3] एव ऐमानुल वैअह[4] भी इसी प्रकार की चीज़ है। खलीफाओ की अ थी कि वैअत में प्रतिज्ञा कराते और फिर शपथ द्वारा उसकी पुष्टि कराते थे। इसी ऐमानुल वैअह कहा जाता था और इसी के लिए अधिकाश लोगो से आग्रह किया ज था। इसी कारण जब इमाम मालिक से इस शपथ के विषय में फतवा[5] लिया गय आपने फतवा दिया कि इसको वैअत से पृथक् कर देना चाहिए, किन्तु विभिन्न रा के शासको ने इसे स्वीकार न किया। फिर इमाम साहब को भी इस फतवे के क बड़ी कठिनाइयो का सामना करना पडा।

हमारे युग मे जो प्रथा प्रचलित है वह ईरानी शाहाना अभिवादन से मि

१ हाकिम।
२. अकबा की रात्रि में तथा वृक्ष पर, अकबा वह स्थान है जहाँ मुहम्मद साह मक्के से मदीने की हिजरत के पूर्व भेंट की थी और मदीने वालों ने वृ नीचे बैअत की थी।
३. खलीफाओ से वैअत।
४. वैअत के सम्बन्ध में निष्ठा की घोषणा।
५ किसी कर्म के उचित अथवा अनुचित होने के सम्बन्ध में मुफ्ती या आलिम शरा के अनुसार दी गयी व्यवस्था।

जुलती है, उदाहरणार्थ लोग भूमि, हाथ, पाँव अथवा दामन का चुम्बन करते है और इसी आचरण को बैअत कहा जाता है। यह वास्तव में एक प्रकार की आज्ञाकारिता की प्रतिज्ञा है, कारण कि अभिवादन भी आज्ञाकारिता के प्रदर्शन का एक साधन है। प्रयोग होते होते यही बैअत का ढग वास्तविक बैअत में परिणत हो गया। फिर इसमें हाथ मिलाने की आवश्यकता भी, जो बैअत की वास्तविक द्योतक है, ज़रूरी न समझी जाने लगी। कारण कि प्रत्येक साधारण एव विशेष व्यक्ति से हाथ मिलाना राजकीय गौरव एव सम्मान के प्रतिकूल समझा जाने लगा, जिसकी रक्षा बादशाह के लिए परमावश्यक थी। हाँ, कभी ऐसा होता है कि बादशाह सम्मानित करने की दृष्टि से अपने विशेष व्यक्तियो एव धार्मिक आलिमो से हाथ मिलाते हैं। अत हमारे शब्दो में बैअत का अर्थ, जिसका ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है, स्पष्ट हो गया होगा, कारण कि सुल्तान एव इमाम की बैअत तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

(३०) वली अहदी

इस बात का हम उल्लेख कर चुके है कि इमामत में शरा सम्बन्धी तथ्य होता है और इसमें बड़े रहस्य निहित हैं। इसमें तथ्य केवल इतना है कि उम्मत के धार्मिक एव सासारिक हितो पर गौर करके उनका उचित प्रबंध किया जाय। इस अर्थ के अधीन इमाम उम्मत का वली हुआ और उसका रक्षक, जो अपने समस्त जीवन-काल में अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखता है, जो कुछ उसकी मृत्यु के उपरान्त घटने की सम्भावना है उसका प्रबन्ध भी वह यथासम्भव एव यथाशक्ति अपने जीवनकाल ही में कर देता है। उदाहरणार्थ उम्मत की देख-भाल के लिए वह अपना एक ऐसा उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाता है, जिस पर उम्मत को ऐसा ही विश्वास होता है जिस प्रकार उस पर था। शरीअत में उम्मत की "इजमा" द्वारा इस आचरण (वली अहद नियुक्त करने) का उचित होना सिद्ध हो जाता है। कारण कि हज़रत अबू बक्र ने सम्मानित सहाबा के मजमे में हज़रत उमर को अपना उत्तराधिकारी एवं वली अहद नियुक्त किया। इसको समस्त सहाबा ने उचित समझा और हज़रत उमर की आज्ञाकारिता अपने लिए आवश्यक समझी। इसी प्रकार हज़रत उमर ने अपने निधन के पूर्व वली अहद की नियुक्ति की, समस्या अशरये मुबश्शेरा[1] में से शेष छ सहाबियो पर छोड़ी कि जैसा वे उचित समझें करें और

१. मुहम्मद साहब के १० सहाबी, जिनके विषय में कहा जाता है कि वे अवश्य ही स्वर्ग में जायँगे।

मुसलमानो के लिए कोई भी इमाम छाँट लें। अन्त में चुनाव का अधिकार अब्दुर्रहमान विन औफ[1] को दिया गया। उन्होने सोच विचार के उपरान्त मुसलमानो की हार्दिक इच्छा ज्ञात की तो सबका हृदय हज़रत उस्मान एव हज़रत अली की ओर आकृष्ट पाया। इस कारण उन्होने हज़रत उस्मान से बैअत कर ली, कारण कि अब्दुर्रहमान विन औफ के समान हजरत उस्मान भी इस वात पर सहमत थे कि शेखैन का अनुसरण किया जाय और स्वय कोई निर्णय न किया जाय। अतः हजरत उस्मान की खिलाफत सबने स्वीकार कर ली और वे खलीफा मान लिये गये और उनकी आज्ञाकारिता आवश्यक समझी गयी। जिस मजमे में इस चुनाव की घोषणा की गयी उसमे वे सब सहावा उपस्थित थे जो शेखैन की वैअत कर चुके थे। किसी ने वली अहदी एव उत्तराधिकार की इस समस्या पर कोई आपत्ति प्रकट न की, अपितु मौन रहे। इससे यह स्पष्ट है कि वे जानशीनी के इस नियम से सहमत थे और इसे शरा के अनुकूल समझते थे। यह बात ज्ञात हो ही गयी है कि "इजमा" को शरई समस्याओ के लिए प्रमाण माना गया है।

अव यदि इमाम अपने पिता अथवा पुत्र को अपना वली अहद नियुक्त कर दे तो हम इस पर कोई शका नही कर सकते, कारण कि जब उसे उसके जीवन-काल की समस्त समस्याओ एव मामलो में विश्वास के योग्य माना गया है, तो वह अपने जीवनकाल के बाद की समस्याओ के विषय में भी जो निर्णय दे, उस पर हमको कोई शका न करनी चाहिए और इमाम की कोई आलोचना न करनी चाहिए। यह बात उन लोगो के धार्मिक विश्वास के विरुद्ध है जो कहते है कि इमाम का अपने पिता अथवा पुत्र को वली अहद नियुक्त करना अपराध है, अथवा जो लोग केवल पुत्र को वली अहद नियुक्त करना पाप समझते है और पिता को नही। वास्तव में यह कार्य शका एव भ्रम से बहुत दूर है, विशेष कर जब कोई खास हित भी इसके साथ हो अथवा किसी विशेष उपद्रव या अशान्ति से बचने का विचार हो। ऐसी अवस्था मे तो शका का कोई स्थान रह ही नही सकता, जैसा किमु आविया ने जब अपने पुत्र यजीद को अपना उत्तराधिकारी वनाया तो इसके लिए वनी उमय्या के अधिकार-

१. अब्दुर्रहमान बिन औफ, अरब के कुरैशी कबीले के थे और मुहम्मद साहब द्वारा इस्लाम का प्रचार प्रारम्भ होते ही मुसलमान हो गये थे। वे उन दस लोगों में बताये जाते है जिनके विषय में मुहम्मद साहब का कथन है कि वे अवश्य स्वर्ग में जायेंगे। उनकी मृत्यु ६५२ ई० में हुई।

सम्पन्न एव सम्मानित व्यक्तियो की सहमति पर्याप्त समझी। इसी सहमति एव सगठन की दृष्टि से उन्होने अन्य लोगो को छोडकर यजीद को अपना उत्तराधिकारी चुना। वास्तव में वनी उमय्या उस समय यजीद के अतिरिक्त किसी अन्य को वली अहद वनाने के लिए सहमत न हो सकते थे। कुरैश तथा समस्त मुसलमानो की "असवियत" उनकी सहायतार्थ उनके साथ थी। वे स्वय प्रभावशाली थे और प्रतिभा-सम्पन्न भी, अत इन्ही कारणो से मुआविया ने अन्य अच्छे लोगो को छोडकर यजीद को चुना और योग्य एव श्रेष्ठ को त्यागकर अयोग्य एव निम्न को केवल इस लोभ से सिंहासनारूढ किया कि लोगो का सगठन एव ऐकमत्य भग न हो, जिसको शारे[1] ने अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया था। इस वात के अतिरिक्त मुआविया के विषय में और कहा ही क्या जा सकता है, कारण कि उनके जाने-माने न्याय तथा मुहम्मद साहव के सहचरो की दृष्टि में उनके विषय में कोई शका प्रकट करना सम्भव नही। इसके अतिरिक्त सम्मानित सहावा की उपस्थिति एव उनका इस विषय में मौन रहना इस वात की खुली दलील है कि मुआविया के प्रति कोई शका नही की जा सकती और न उन पर कोई दोप लगाया जा सकता है। उस युग में न तो मुआविया का ही स्वभाव ऐसा था कि वे राज्य के सम्मान एवं गौरव हेतु सत्य पर आचरण करने से वाज़ रहते और न सहावा ही सत्य का प्रचार करने से वाज़ रह सकते थे। इन वुजुर्गो की न्यायप्रियता इस प्रकार के दुराचार को कदापि स्वीकार न कर सकती थी।

अव रही यह समस्या कि यदि यह उत्तराधिकार उचित था तो अव्दुल्लाह विन उमर[2] क्यो इस मौके से टल गये और वचकर चल दिये, तो इसका कारण वास्तव में यह था कि वे अपनी पवित्रता एव धर्मनिष्ठा के कारण प्रत्येक अनुचित वात से वचना चाहते थे और ऐसी किसी वात में किसी प्रकार का भाग नही लेना चाहते थे। उनकी यह सावधानी वड़ी प्रसिद्ध है। यजीद के वली अहद नियुक्त किये जाने के सम्वन्ध में इब्ने जुवैर के अतिरिक्त सभी सहमत थे किन्तु यदि किसी समस्या के विषय में सभी सहमत हो तो किसी एक का विरोध कोई महत्त्व नही रखता। फिर मुआविया के उपरान्त जो लोग खलीफा हुए, वे सत्य की खोज एव उस पर आचरण करते रहे। उदाहरणार्थ, अव्दुल मलिक तथा सुलेमान वनी उमय्या में से और सफ्फाह, मसूर,

१ हज़रत मुहम्मद से तात्पर्य है।
२ अव्दुल्लाह विन उमर, खलीफा हज़रत उमर के ज्येष्ठ पुत्र। वे अपनी धर्म-निष्ठता के लिए वड़े प्रसिद्ध थे। उनकी मृत्यु ७३ हि० (६९३ ई०) में हुई।

महदी एव रशीद बनी अब्बास मे से, अथवा उन सरीखे अन्य लोग जिनकी निर्णय-शक्ति एव न्यायप्रियता सर्वमान्य थी। वे मुसलमानो के हित के विषय में ईमानदारी से सोच-विचार करते थे और ऐसा कार्य न करते थे जिससे उनकी कटु आलोचना हो सकती। उन्होने अपने पुत्रो एव भाइयो को अपना उत्तराधिकारी बनाया, किन्तु किसी ने उन पर अँगुली न उठायी।

यह कहना उचित नही कि उनका यह आचरण प्रथम चारो खलीफाओ के आचरण के विरुद्ध था तो उनकी दशा एव उनकी परिस्थितियो की तुलना प्रथम चारो खलीफाओ की स्थिति से क्यो की जाय। ये खलीफा ऐसे युग में हुए थे जब खिलाफत पर सल्तनत की लेश मात्र भी छाप न पड़ी थी। खलीफा केवल धार्मिक एव दीनी मनुष्य होता था और दीन की ही पृष्ठ-भूमि में अपने प्रत्येक कार्य को सम्पन्न करता था। इसी कारण खलीफा लोग अपना उत्तराधिकारी केवल उसी को नियुक्त करते थे जो धर्म एव दीन के मामले में श्रेष्ठ होता था। उनके उपरान्त मुआविया के युग में स्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया था। सल्तनत का गौरव बढ चुका था। धर्म की शान घट चुकी थी। अब ऐसे शासक की आवश्यकता का अनुभव हुआ जो सल्तनत एवं "असबियत" में अद्वितीय हो। अत. यदि मुआविया "असबियत" की आवश्यकताओ के विरुद्ध किसी अन्य को सिंहासनारूढ़ करते तो उनकी इमामत कौन स्वीकार करता, देखते-देखते वह समाप्त हो जाती और इस दशा मे कौम को जिस विरोध का सामना करना पड़ता, वह स्पष्ट है।

एक बार एक आदमी ने हज़रत अली से पूछा कि "हज़रत! इसका क्या कारण है कि मुसलमानो ने आपकी खिलाफत का तो बड़ा विरोध किया, किन्तु हज़रत अबू बक्र तथा हजरत उमर की खिलाफत का किसी ने विरोध नही किया?" आपने उत्तर दिया—"इसका कारण यह है कि इनमें से दोनों बुजुर्ग मुझ-जैसे लोगो के शासक थे और अब मै तुम-जैसे लोगो का।" इसका अर्थ यही है कि अब राज्य धार्मिक भावनाओ से शून्य है, अत. यह परिवर्तन हो गया।

मामून ने जब अली बिन मूसा बिन जाफर अस् सादिक को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उनका नाम रिज़ा रखा तो, अब्बासियो को यह बड़ा बुरा लगा। उन्होने मामून की बैअत तोडकर उसके चाचा इबराहीम बिन अल महदी से बैअत कर ली और फिर राज्य में इतनी अशान्ति फैल गयी कि डाके तक पड़ने लगे और राज्य छिन्न-भिन्न होनेवाला ही था कि मामून खुरासान से बगदाद की ओर लपका और पुन. बैअत ली गयी तथा अशान्ति का अन्त हो गया।

सक्षेप में वली अहद के चुनाव में सर्वसाधारण की मनोवृत्ति को वहुत वडा स्थान प्राप्त है। युग के रग-ढग की उस पर अत्यधिक छाप पड़ती है। जैसे-जैसे युग रग पलटता है, स्थिति में परिवर्तन हो जाता है। कवीले एवं "असवियतें" अपनी गति-विधि वदलती हैं। देश की आवश्यकताएँ और लोगो की चित्त-वृत्ति कुछ की कुछ होती जाती है और नयी-नयी मसलेहतें उत्पन्न होती हैं। फिर प्रत्येक का आदेश पृथक् होता है और प्रत्येक की वात अलग। यदि वलीअहदी का उद्देश्य केवल यह हो कि वाप-दादा की मीरास वेटे-पोतो में सुरक्षित रहे तो धार्मिक दृष्टिकोण से यह उद्देश्य वड़ा ही हीन है, कारण कि खिलाफत तथा सल्तनत अल्लाह का प्रदान किया हुआ सम्मान है। वह जिसे चाहे, उसे उसके द्वारा सम्मानित करे। अतः इसके चुनाव में यथासम्भव ईमानदारी से काम लेना चाहिए, ताकि यह धार्मिक पद एवं खिलाफते इलाही नप्ट न हो जाय।

अव वली अहदी के चुनाव में कुछ वातें उल्लेखनीय हैं, ताकि इनके द्वारा सत्य एवं असत्य तथा उचित एव अनुचित का भेद किया जा सके।

१—यह कि मुआविया यजीद को खलीफा नियुक्त करते समय उसके दुराचार एवं व्यभिचार के विषय में अच्छी तरह जानता था। यजीद ने अपने खिलाफत-काल में इन अवगुणो का प्रदर्शन किया। वास्तव में मुआविया अपनी श्रेष्ठता एव अपनी न्याय-प्रियता के कारण इस प्रकार की शका से मुक्त थे, अपितु वे तो अपने जीवन-काल में यज़ीद को सगीत सुनने से कठोरतापूर्वक रोका करते थे, हालाँ कि यह पाप उन पापो की अपेक्षा, जो यजीद ने किये, वहुत निम्न श्रेणी का है। फिर समा[1] के विपय में सहावा का स्वय एक मत नही।

जव यज़ीद खुल्लमखुल्ला व्यभिचार में ग्रस्त रहने लगा तो इस विपय में भी लोगो का मतभेद हो गया। कुछ लोगो ने उससे विद्रोह करने एव वैअत को तोडने का विचार कर लिया, उदाहरणार्थ हजरत इमाम हुसेन, अव्दुल्लाह विन जुवैर अथवा उनका अनुसरण करने वाले अन्यलोग। कुछ लोगो ने यज़ीद का विरोध करना इस कारण उचित न समझा कि कही विद्रोह एव अशान्ति की अग्नि न भडक उठे और हत्याकाड न प्रारम्भ हो जाय। साथ ही साथ यह भी विचार था कि यदि यजीद के विरुद्ध कदम उठाया गया तो उसे निभा न सकेंगे, कारण कि यजीद के सहायतार्थ वनी उमय्या की "असवियत" थी और कुरैश के उच्च पदाधिकारी भी उसके सहाय-

१ सूफियो के संगीत की गोष्ठियाँ।

तार्थ उपस्थित थे, अपितु मुज़ार की "असवियत" भी उसके संहायतार्थ उद्यत थी। उसका मुकावला कोई भी न कर सकता था, अतः वे यज़ीद से पृथक् ही रहते थे और उसके पथप्रदर्शन हेतु ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। अधिकाश मुसलमान इसी विचार के अनुयायी थे। ये दोनो वर्ग इजतेहाद[1] कर सकते थे और अपना स्वतत्र मत रखते थे जिसका कोई खडन नही कर सकता था, कारण कि उनकी सच्चरित्रता, पवित्रता एव सत्य के प्रति प्रेम सर्वमान्य और प्रसिद्ध है। इनका खडन कोई किस प्रकार करे। अल्लाह हमको भी उन्ही पवित्र बुजुर्गो के पदानुसरण का सौभाग्य प्रदान करे।

२—फिर समस्या यह है कि मुहम्मद साहब ने अपना उत्तराधिकारी किसे नियुक्त किया? शीओ का दावा कि मुहम्मद साहब ने हज़रत अली के विषय में खिलाफत के लिए वसीअत की थी, प्रामाणिक रूप से सिद्ध नही होता। रवायतो का उल्लेख करनेवालो ने इस प्रकार की चर्चा नही की। प्रामाणिक रवायतो मे इतना अवश्य है कि मुहम्मद साहब ने अपनी मृत्यु के समय वसीअत लिखने के लिए दवात-कलम माँगी और हजरत उमर ने मना कर दिया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तराधिकारी की नियुक्ति की समस्या का समाधान न हो सका। इसी प्रकार हज़रत उमर से जब वली अहद नियुक्त करने के लिए कहा गया तो आपने उत्तर दिया कि "यदि मैं अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करूँ तो यह कोई नयी बात न होगी, कारण कि मुझ से अच्छे अर्थात् हज़रत अबू बक्र यह कर चुके है और यदि न नियुक्त करूँ तो इसका भी उदाहरण उपलब्ध है, कारण कि मुहम्मद साहब ने भी अपना कोई उत्तराधिकारी नही नियुक्त किया।" यही प्रमाण हज़रत अली के शब्दो से भी मिलता है, जिनसे आपने हजरत अब्बास[2] को सम्बोधित किया। यह उस समय की घटना है जब हजरत अब्बास ने हज़रत अली को अपने साथ लेकर और मुहम्मद साहब की सेवा में उपस्थित होकर उत्तराधिकारी की समस्या का समाधान करने के विषय मे कहा। हजरत अली ने इस उद्देश्य के लिए जाना स्वीकार न किया और कहा कि "यदि मुहम्मद साहब ने मना कर दिया तो फिर कभी भी हम इसकी इच्छा न कर सकेंगे।" अत हज़रत अली का यह कथन इस बात का स्पष्ट प्रमाण है

१. स्वतंत्र रूप से निर्णय करना।

२. मुहम्मद साहब के चाचा।

कि मुहम्मद साहव ने अपने उत्तराधिकारी के विषय में कोई वसीअत न की थी और न किसी को उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

वास्तव में इमामिया को अपने इस अशुद्ध विचार से भ्रम हुआ कि इमामत की समस्या धर्म के स्तम्भो में से है अत. इसका निर्णय शारे'[1] द्वारा होना चाहिए, हालाँ कि इस कल्पना का कोई आधार नही। वास्तव में वलीअहदी का मामला सर्वसाधारण के हित से सम्वधित है जो उनके उचित निर्णय पर निर्भर है। यह वात स्पष्ट है कि वलीअहदी की समस्या यदि धर्म के स्तम्भों में होती तो उसको नमाज़ की श्रेणी प्राप्त होती, अर्थात् मुहम्मद साहव अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त करते, जिस प्रकार आपने हजरत अवू वक्र को नमाज़ में अपने स्थान पर नियुक्त किया। जिस तरह नमाज़ के सम्वन्ध में प्रसिद्धि हुई उसी प्रकार इसकी भी प्रसिद्धि होती। फिर सवसे वडी दलील वह थी जो हज़रत अवू वक्र को खलीफा चुनने के लिए सम्मानित सहावा ने प्रस्तुत की, अर्थात् "जव मुहम्मद साहव ने हज़रत अवू वक्र को हमारे धार्मिक कार्यों में अपना उत्तराधिकारी वनाया तो हम उन्हें अपने सासारिक मामलो में प्रसन्नतापूर्वक खलीफा क्यो न स्वीकार कर लें?" इससे यह वात पूर्णत. स्पष्ट हो गयी कि समस्त सहावा के निकट उत्तराधिकारी के विषय में मुहम्मद साहव द्वारा किसी वसीअत का कोई प्रमाण नही मिलता। यही से यह वात भी ज्ञात हो गयी कि मुहम्मद साहव की मृत्यु के समय इमामत एव उत्तराधिकारी की समस्या को इतना महत्त्व न प्राप्त था जितना आज है। वह "असवियत" जिसे सगठन एव विघटन करने मे इतना महत्त्व प्राप्त है, उस समय इतनी महत्त्वपूर्ण न थी, कारण कि उस समय इस्लाम चमत्कारो के आधार पर चल रहा था। इन्ही चमत्कारो के वल पर सव मुसलमान सगठित थे और इस्लाम के लिए प्राण त्यागने पर उद्यत थे। उदाहरणार्थ मुसलमानो की आँखो के समक्ष फिरिश्ते उनकी सहायतार्थ पहुँचते रहते थे, आकाश से समाचार निरन्तर आते रहते थे, विभिन्न घटनाओ के समय ईश्वर की वातें उनके समक्ष पढ़ी जाती थी, तो फिर ऐसी दशा में "असवियत" की क्या आवश्यकता थी? सव लोगो ने इस्लाम के समक्ष सिर झुका दिया था। उसकी सत्यता पर सवको विश्वास था। निरन्तर चमत्कार होते रहते, दैवी आदेश आते रहते, एव फिरिश्तो के वार-वार के आगमन ने लोगो को चकित कर दिया था। कोई दम न मार सकता था। खिलाफत लीजिए अथवा राज्य एव सल्तनत, उत्तराधिकारी की समस्या को

१ हज़रत मुहम्मद द्वारा।

देखिए अथवा "असबियत" या प्रभुत्व को, ये सब बातें उस युग की विचित्र शासन-व्यवस्था मे पायी जाती थी। जब चमत्कारो का युग समाप्त हुआ, दैवी सहायता का क्रम टूटा, वह लोग भी समाप्त हो गये जिन्होने इन चमत्कारो को अपनी आँखो से देखा था, तथा प्रकृति ने पूर्व की भाँति चमत्कारो का स्थान लिया, तो "असबियत" प्रारम्भ हो गयी। प्रकृति का पुन. आगमन हुआ और उससे हित एवं अहित प्रकट होने लगे तो इस नवीन वातावरण में राज्य, खिलाफत एव जानशीनी सरीखी समस्याएँ, जिनका इसके पूर्व कोई मूल्य न था, बडी महत्त्वपूर्ण समझी जाने लगी।

यह बात देखनी चाहिए कि मुहम्मद साहब के शुभ काल में खिलाफत अधिक महत्त्व की चीज न थी। इसी कारण उन्होनें उत्तराधिकार की समस्या का कोई समाधान नही किया। खिलाफते राशिदा[1] के समय इसे कुछ महत्त्व प्राप्त हुआ, कारण कि धर्म की सहायता, जिहाद, मुर्तिद होने के उपद्रव की रोक-थाम एव राज्यो के विजय हेतु खिलाफत की आवश्यकता हुई, ताकि उसके नेतृत्व में ये सब कार्य सम्पन्न हो। इस प्रकार उत्तराधिकारी की समस्या खलीफा के अधिकार की बात हो गयी। चाहे वह कोई निर्णय करे और चाहे उसकी उपेक्षा, जैसा कि अभी हजरत उमर के कथन द्वारा ज्ञात हुआ। फिर आज तो उत्तराधिकारी को बडा ही महत्त्व प्राप्त हो गया है, कारण कि लोगो की सहायता एव हितो की रक्षा इसी पर निर्भर है। अब "असबियत" की बडी चिंता की जाने लगी, कारण कि वही सब को सगठित रखकर परस्पर विरोध एव पृथक् होने से बचाती है और शरा के उद्देश्यों तथा दैवी आदेशो के स्थायित्व का भी उत्तरदायित्व उसी पर है।

३—जो युद्ध इस्लाम के प्रारम्भिक युग में सहाबा अथवा ताबेईन[2] मे हुए उनका क्या उद्देश्य था? इसका उत्तर इस प्रकार समझना चाहिए कि उन बुजुर्गो के विरोध अधिकाश धार्मिक मामलो के सम्बन्ध मे थे, न कि सासारिक मामलो मे। यह मतभेद प्रामाणिक दलीलो में इजतेहाद के कारण उत्पन्न हुआ। मुजतहिदो मे जब इजतेहादी मतभेद उत्पन्न हो जाय तो इजतेहाद सम्बधी समस्याओ में सत्य एक ही ओर होगा। अब जिस मुजतहिद[3] का मत सत्य से मिल जाय उसे पुण्य

१ हजरत मुहम्मद के बाद के चार प्रथम खलीफा।
२. मुहम्मद साहब के बाद की दूसरी पीढ़ी के लोग।
३ जिन्हें इजतेहाद अर्थात् धार्मिक समस्याओं में स्वतंत्र रूप से निर्णय करने का अधिकार हो।

होगा और जिसका न मिले वह भूल पर रहा होगा, कारण कि सत्य की सीमाएँ निश्चित नही, अत सत्य की शका प्रत्येक मुजतहिद के विपय में होगी। किसी मुजतहिद को विश्वासपूर्वक भूल करता हुआ नही कहा जा सकता और कोई मुजतहिद भी पापी एव दडनीय न होगा। उम्मत का इजमा इसी पर है। यदि हम यह कहें कि इजतेहादी विरोव के समय सव मुजतहिद सत्य का पालन करते है और प्रत्येक मुजतहिद ठीक मार्ग पर होता है, तो भूल का अपराध किसी पर नही लगाया जा सकता। सहावा एव तावेईन का मतभेद इजतेहादी मतभेद था और धार्मिक समस्याओ पर अपने-अपने मतानुसार उनमें पारस्परिक विरोव था। उपर्युक्त सिद्धांत के अनुसार किसी को पापी नही कहा जा सकता।

इस प्रकार के इजतेहादी मतभेद पर इस्लाम में जो युद्ध हुए, वे निम्नाकित है। हज़रत अली तथा मुआविया, जुवैर व आएशा एव तलहा का युद्ध, इमाम हुसेन तथा यज़ीद का युद्ध और इब्नुज् ज़ुवैर तथा अब्दुल मलिक का युद्ध। हज़रत अली को जिन घटनाओ का सामना करना पडा, वे इस प्रकार है।

(१) जिस समय हजरत उस्मान शहीद हुए तो अधिकाश सहावी नगरो में फैले हुए थे। वे हज़रत अली की वैअत के लिए नही आये। मदीने में उपस्थित सहावी भी दो समूहो में विभाजित हो गये। एक समूह ने तुरन्त वैअत कर ली और दूसरे ने टालमटोल की और इस वात की प्रतीक्षा करने लगा कि सव लोग किसी इमाम पर सहमत होकर उससे वैअत कर लें। इस समूह में साद[1], सईद[2], इब्ने उमर, उसामा विन ज़ैद, मुगीरा विन शोवा, अब्दुल्लाह विन सल्लाम, कुदामह विन मजऊन, अवू सईद खुज़री, काव विन अज़रा, काव विन मालिक, नोमान विन वशीर, हस्सान विन सावित, मुसेलमा विन मखलद, फुज़ालह विन उवैद इत्यादि। जो सहावा नगरो में छिन्न-भिन्न थे, उन्होंने भी वैअत से इस कारण हाथ खीचा कि सर्वप्रथम हज़रत उस्मान की हत्या का वदला ले लिया जाय और फिर वैअत की समस्या सामने आये। इस प्रकार इन लोगो ने हज़रत उस्मान की हत्या के वदले के समय तक मुसलमानो को विना खलीफा तथा अमीर के रखना उचित समझा। उनका यह भी मत था कि हज़रत अली, हज़रत उस्मान के हत्यारो से वदला लेने में मौन है, न यह कि

१ साद विन अवी वक़्कास, प्रसिद्ध अरव सेनापति (मृत्यु ६७०–७१ ई० अथवा ६७४–७५ ई०)।

२. सईद विन ज़ैद, मृत्यु ५० अथवा ५१ हि० (६७०–६७१ ई०)।

(ईश्वर क्षमा करे) आपके द्वारा हजरत उस्मान की हत्या हुई है। इस प्रकार जव मुआविया ने हज़रत अली पर खुल्लमखुल्ला दोषारोपण किया तो केवल यह कहा कि "आप हजरत उस्मान के हत्यारो से बदला लेने के विषय मे उपेक्षा करते है," न यह कि उनकी हत्या में आपका हाथ है। उधर हजरत अली अपने इस दृष्टिकोण पर दृढ रहे कि मुझसे वैअत करना सवका कर्त्तव्य है, कारण कि जव मदीना-निवासी वैअत के विषय मे सहमत हो गये तो उन लोगो के लिए भी वैअत अनिवार्य हो गयी जो मदीने के वाहर थे, कारण कि मदीना मुहम्मद साहव का निवास-स्थान था। हज़रत अली का विचार था कि जव लोग सगठित हो जायँ और कुछ शान्ति हो जाय तव इतमीनान से हजरत उस्मान के हत्यारों से वदला लिया जायगा। उस समय यह सव कुछ सम्भव हो सकेगा। अन्य सहावियों का यह मत था कि प्रतिभाशाली एव उच्च श्रेणी के सहावा विभिन्न स्थानो पर फैले हुए है और वहुत कम सहावी उपस्थित है, अत वैअत उचित रूप से प्रामाणिक नही हुई, कारण कि वैअत में उच्च श्रेणी वालो एव प्रतिभाशालियो की भी सहमति आवश्यक है। यदि कुछ थोड़े से लोग मिलकर खलीफा नियुक्त कर लें और उससे वैअत कर लें तो इससे कुछ नहीं होता। उनका विचार था कि इस समय मुसलमानों का कोई अमीर अथवा खलीफा नही है, अत. सवको चाहिए कि सर्वप्रथम उस्मान के हत्यारो की माँग की जाय और इस कार्य से मुक्त होकर सर्वसम्मति से किसी को इमाम चुना जाय। मुआविया, अमर बिन आस, उम्मुल मोमिनीन[1] आएशा, जुवैर, इब्नुज्ज जुवैर; अब्दुल्लाह, तलहा और उनके पुत्र मुहम्मद, साद, सईद, नोमान बिन बशीर, मुआविया बिन हुदैज इत्यादि का यही मत था। मदीने मे रहकर उन्होंने वैअत की ओर से उपेक्षा की। यह प्रथम पीढ़ी वालो का मतभेद था, किन्तु द्वितीय पीढी वालो में सव लोग इस वात पर सहमत हो गये कि हजरत अली की वैअत अपने स्थान पर पूर्णत. ठीक थी और वह समस्त मुसलमानो के लिए अनिवार्य थी। इसके विपरीत मुआविया एवं उनके अनुयायियो ने भूल की, विशेप कर तलहा एव जुवैर ने, जिन्होने वैअत करके तोड डाली। इस युग में उपर्युक्त मतभेद के वावजूद इस वात पर सभी सहमत थे, क्योकि दोनों पक्ष वालो को इजतेहाद का अधिकार प्राप्त है, अत. दोनो ही भूल एव पाप से मुक्त है।

१. मोमिनों की माता, मुहम्मद साहव की पत्नियाँ उम्मुल मोमिनीन कहलाती थीं। हजरत आएशा मुहम्मद साहव की एक प्रिय पत्नी एवं हजरत अबू वक्र की प्रिय पुत्री थीं।

एक वार हज़रत अली से पूछा गया कि "जमल[1] एव सिफ्फीन[2] के युद्धो में जो लोग मारे गये उनके विषय में आपका क्या मत है? वे मुक्ति प्राप्त करने योग्य है अयवा दडनीय।" आपने उत्तर दिया कि "ईश्वर की शपथ लेकर कहता हूँ कि इन युद्धो में जो भी मारा गया, यदि उसका हृदय पाक है तो वह स्वर्ग का पात्र है।" इस प्रकार आपका यह निर्णय दोनो पक्षो की ओर से जिनकी हत्या हुई, उनके विषय में था। तवरी एव अन्य इतिहासकारो ने इस घटना का उल्लेख इन्ही शब्दों मे किया है। सक्षेप में ये लोग ऐसे बुज़ुर्ग थे जिनकी न्यायप्रियता के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नही किया जा सकता और जिनकी निन्दा किसी तरह सम्भव नही। यही वे लोग है जिनके वचन एव कर्म शरीअत के अनुसार प्रामाणिक है। सुन्नी मुसलमान उनकी न्याय-प्रियता पर एकमत है। केवल थोड़े से मोतज़ेला उनकी आलोचना करते है। न्याय-प्रिय लोग उनकी वातो को कोई महत्त्व नही देते। यदि न्याय की दृष्टि से उनके विषय में अध्ययन किया जाय तो उनके और हज़रत उस्मान के विषय में तथा उनके वाद अन्य मामलों में मतभेद रखनेवाले समस्त सहावियो को निरपवाद समझा जायगा और किसी पर कोई दोष न लगाया जा सकेगा तथा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर वाध्य होगे कि यह सव झगड़ा-फसाद अल्लाह की ओर से एक ऐसी परीक्षा थी जिसके द्वारा उसने उम्मत को जाँचा तथा परखा था। यह समय वह था कि ईश्वर ने मुसलमानो के हाथो उनके शत्रुओ का जोर तोड़ डाला था और उनकी भूमि एव राज्य पर अधिकार जमा लिया था। वसरा, कूफा, शाम तथा मिस्र में मुसलमान प्रतिरक्षा की दृष्टि से फैले हुए थे।

यह भी सत्य है कि केंद्र से दूर वसे हुए अरव वड़े असभ्य थे। उन्हें मुहम्मद साहव के साथ रहने का अवसर न मिला था। उनसे अपने चरित्र को सुधारने तथा मुहम्मद साहव के चरित्र के गुण सीखने की आशा न की जा सकती थी। इसके साथ साथ जाहिलियत की भावनाएँ उनमें पूर्णतः वर्त्तमान थी, उदाहरणार्थ, वे निष्ठुर "असवियत" की पूजा करनेवाले एव अभिमानी थे। धार्मिक विश्वास के कारण जो सौभाग्य

१. यह युद्ध हजरत अली एवं हजरत मुहम्मद साहब की पत्नी हजरत आएशा में ४ दिसम्बर ६५६ ई० को वसरे के समीप हुआ। हजरत आएशा ऊँट पर सवार थीं अतः यह युद्ध जमल अथवा ऊँट का युद्ध कहलाता है।
२. सिफ्फीन का युद्ध हजरत अली एवं मुआविया में फ़ुरात नदी के उस पार रक्क़ा के समीप जून से अगस्त ६५७ ई० तक ११० दिन चलता रहा।

उन्हें प्राप्त हुआ था, उससे वे सन्तुष्ट न थे। जव इस्लामी सल्तनत को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो वे अरव उन महाजिरो एव असार के अधीन हो गये जो कुरैश, किनाना, सकीफ, हुज़ैल, हिजाज़ एव यसरिव[1] के कबीलो में सबसे पहले मुसलमान हुए। उनको उन महाजिरो एव असार की अधीनता खटकी और वे इस बात पर कुढने लगे, कारण कि वे अपने कुल को भी सबसे ऊँचा समझते थे और उन्हे अपनी सख्या पर भी गर्व था। उन्हें इस वात का अभिमान था कि वे फ़ारस तथा रूम सरीखी बहुत बडी-बडी शक्तियो से टक्कर ले चुके है। उदाहरणार्थ, बक्र बिन वाइल, अव्द-अल-कैस विन रबीअह, किन्दह तथा यमन के अज्द, मुजर के तमीम तथा कैस सब इसी भ्रम में पडे हुए थे। ये लोग कुरैश के प्रभुत्व से जलते और उसे बुरा मानते थे। उनकी आज्ञाकारिता की उपेक्षा करते और उनसे बचने के लिए बहाने ढूँढा करते थे। कभी कहते कि हम पर अत्याचार हो रहा है और अपने अधिकारो के नष्ट होने की चर्चा करने लगते। कुरैश न्याय करने में कमज़ोर है। इसी प्रकार की बातें राज्य में फैलने लगी। शनै-शनै. ये समाचार मदीने तक पहुँच गये और अतिशयोक्ति के साथ हज़रत उस्मान के कानो तक पहुँचाये जाने लगे। आपने, इब्ने उमर, मुहम्मद विन मसलमा, उसामा विन ज़ैद इत्यादि को जाँच हेतु नगरो में भेजा। इन लोगो ने जाँच-पडताल की तो इन्हें कुरैश अधिकारियो की किसी अनुचित बात का पता न लगा। उन्होने लौटकर जो कुछ देखा था वह वता दिया। उधर नगर के दुष्ट लोगो ने अपनी दुष्टता को जारी रखा। उनके दुराचार में वृद्धि होती गयी, यहाँ तक कि कूफे के हाकिम वलीद विन उकवा पर मदिरा-पान का आरोप लगाया गया और एक समूह ने इस विषय मे गवाही दे दी। हज़रत उस्मान ने उसे इस्लामी दड-विधानानुसार दंड देकर पदच्युत कर दिया। फिर विभिन्न नगरो के लोग अपने-अपने हाकिमो की शिकायतें लाने लगे और उनको पदच्युत करने की माँग करने लगे। यही शिकायतें हज़रत अली, आएशा, ज़ुबैर एव तलहा से भी की गयी। इन्ही शिकायतो पर हज़रत उस्मान ने कुछ हाकिमो को पदच्युत भी किया, किन्तु लोग कटु आलोचनाएँ एव निंदा करते ही गये। फिर कूफा के हाकिम सईद विन आस को शिष्ट-मडल के साथ भेजा गया, किन्तु मार्ग में ही उसे रोककर पदच्युत करके लौटा दिया गया। फिर मदीने मे हज़रत उस्मान एव अन्य सहाबियो में मतभेद हो गया। समस्त सहाबियो ने हाकिमो को पदच्युत करने

१. मदीने।

की माँग की। हज़रत उस्मान ने कहा, कि "उनके अपराध का प्रमाण न मिलने तक ऐसा नही हो सकता।" फिर सहावियो ने हज़रत उस्मान के अन्य कार्यो एव आचरण की आलोचना की, किन्तु हजरत उस्मान भी इजतेहाद पर दृढ थे तथा अन्य सहावा भी। तदुपरान्त उपद्रवकारियो एव विद्रोहियो के एक वहुत वडे समूह ने मदीने पर आक्रमण कर दिया। वाह्य रूप से वे यह कहते थे कि हम हजरत उस्मान से न्याय माँगने आये है, हालाँ कि वास्तव में वे हज़रत उस्मान की हत्या का पड्यन्त्र रच कर आये थे। ये समूह वसरा, कूफा एव मिस्र से आये थे। हजरत अली, आएशा, जुवैर तलहा इत्यादि भी इन लोगो का समर्थन करने लगे। उनका कथन था कि न्याय होना चाहिए और जिस प्रकार सम्भव हो विद्रोह को शान्त करना चाहिए। अन्त में उन लोगो ने हज़रत उस्मान को भी सहमत कर लिया। उनके आदेशानुसार मिस्र का हाकिम पदच्युत कर दिया गया। विद्रोही मदीने से वापस हो गये और फिर लौट आये। इस वार वे हज़रत उस्मान का एक जाली पत्र लाये और यह दावा किया कि इसे हमने हज़रत उस्मान के राजदूत से, जिसे वह मिस्र के हाकिम के पास ले जा रहा था, छीना है। उसमें लिखा था कि इन विद्रोहियो की हत्या कर दो। हज़रत उस्मान ने शपथ लेकर इस पत्र से अज्ञानता प्रकट की। विद्रोहियो ने माँग की कि अपने कातिव[1] मरवान को हमारे सुपुर्द कर दें। मरवान ने भी शपथ लेकर अपनी अज्ञानता प्रकट की। हजरत उस्मान ने कहा कि "इससे वढकर और सफाई क्या हो सकती है?" फिर तो खुल्लमखुल्ला विद्रोहियो ने हज़रत उस्मान के घर का अवरोध कर लिया और अवसर पाकर घर में घुस गये और आप को शहीद कर दिया। इस प्रकार उपद्रव एव अशान्ति के द्वार खुल गये। अव इन मामलो में विरोध करनेवाले सहावियो में से प्रत्येक गुट के पास पर्याप्त वहाने थे। प्रत्येक गुट धर्म को पूरा-पूरा महत्त्व देता था और धर्म की किसी वात को किसी मूल्य पर नष्ट करने के लिए तैयार न था। उनके आचरण का आधार इजतेहाद पर था और अपने इजतेहाद के ही प्रकाश में वे सव कुछ करते थे। इसके अतिरिक्त उनकी हार्दिक इच्छाओ से ईश्वर ही परिचित है। हम उनके विपय में कोई शका प्रकट करने में असमर्थ है, कारण कि इन सम्मानित वुजुर्गो की कृतियाँ एव उनकी वाणी हमें उनके विपय मे सद्भावनाएँ रखने पर विवश करती है।

(२) हज़रत हुसेन की घटना इस प्रकार है। जव यज़ीद के दुराचार एव

१. सचिव।

व्यभिचार से सब लोग परिचित हो गये तो शीओ के समर्थको ने हजरत हुसेन को कूफे में आमन्त्रित करते हुए लिखा कि "आप पधारें, हम आपकी सहायता करेंगे।" हजरत इमाम ने सोचा कि 'यज़ीद के दुराचार का विरोध तो करना ही है' फिर इसमें विलम्ब क्यो किया जाय, जब कि उन्होने स्वयं अपने को इसके लिए समर्थ और शक्तिमान् भी पाया। योग्यता तो उनमें और भी अधिक थी, किन्तु शक्ति के सम्बन्ध मे वे उचित निर्णय न कर सके। कारण कि मुज़र की "असबियत" कुरैश में पायी जाती थी, कुरैश की अब्दे मनाफ में, और अब्दे मनाफ की वनी उमय्या में। कुरैश एवं सभी लोग इस तथ्य को भली-भाँति जानते थे और कोई इसे अस्वीकार नही कर सकता था। इस्लाम के प्रारम्भ मे लोग चमत्कारो, वहियों[1] के अवतरण एव मुसलमानों की सहायतार्थ फिरिश्तो के आगमन को देखकर अपनी "असबियत" एव शक्ति को भूल गये थे। जाहिलियत की "असबियत" का अन्त हो चुका था और अब केवल वह स्वाभाविक "असबियत" शेष रह गयी थी, जिससे लोग अपनी प्रतिरक्षा कर सकते, धर्म को उन्नति दे सकते और जिहाद में उससे काम ले सकते थे। इस प्रकार धर्म तो अपनी नीव पर दृढ था और आदतो का प्रभाव समाप्त हो चुका था।

जब नवी का युग समाप्त हुआ और आश्चर्य चकित करनेवाले चमत्कार वन्द हो गये तो प्राचीन आदतें पुन अपना रग दिखाने लगी। मुजर, वनी उमय्या के सबसे बडे आज्ञाकारी वन गये। इस वात से यह पता चलता है कि हज़रत इमाम हुसेन से स्थिति समझने में कुछ भूल हो गयी, किन्तु यह सासारिक वार्ता-विषयक भूल थी, अत. इससे उनके सम्मान मे कोई अन्तर नही पड़ता। अव जहाँ तक शरई आदेश का सम्वध है, उसके समझने में उन्होने कदापि भूल नही की, कारण कि उसका आधार उनकी निर्णय-शक्ति थी और उनका विचार यही था कि उनमें विरोध की शक्ति वर्त्तमान है।

जब हज़रत इमाम मदीने से कूफे को प्रस्थान करने लगे तो हज़रत इब्ने अब्बास, इब्नुज् जुबैर, इब्ने उमर तथा हजरत हुसेन के भाई इब्ने हनाफिया एव अन्य लोगो ने उन्हें जाने से रोका। उनका विचार था कि हज़रत भूल कर रहे है। किन्तु भाग्य में इसी प्रकार लिखा जा चुका था, अत. इमाम हुसेन ने अपने सकल्प को न त्यागा

१ वही।

और रवाना हो गये। हज़रत इमाम हुसेन के अतिरिक्त जो अन्य सहावी लोग हिजाज़ में थे तथा जो शाम एवं इराक में यज़ीद के साथ थे, वे यज़ीद पर आक्रमण उचित न समझते थे, हालाँ कि वह व्यभिचारी था,कारण कि इसमें अशान्ति एव रक्त-पात का भय था। इसी कारण वे इससे वचे रहे और उन्होने हज़रत इमाम का साथ न दिया। किन्तु उन्होंने हजरत इमाम को न बुरा वताया और न दोपी,कारण कि वे भी तो मुजतहिद थे और मुजतहिदो की यह विशेपता है कि उनके मत-भेद को पाप का कारण नहीं वताया जाता। इसी प्रकार उन सहावियो को भी पापी समझना वहुत वडी भूल है, जिन्होंने हजरत इमाम हुसेन की सहायता की ओर से उपेक्षा की और यज़ीद के साथ थे और यज़ीद के विरुद्ध विद्रोह उचित न समझते थे। कारण कि इमाम हुसेन ने स्वय अपने सम्मान एवं अधिकार की पुष्टि में जाविर विन अव्दुल्लाह, अवी सईद खुज़री, अनस विन मालिक, सहल विन साद तथा ज़ैद विन अरकम सरीखे सहावियो के नाम प्रमाण में प्रस्तुत किये, किन्तु इनमें से किसी पर भी यह दोष नही लगाया कि उसने मेरी सहायता की ओर से उपेक्षा की, क्योकि वे जानते थे कि सहावा भी इजतेहाद के अनुसार आचरण कर रहे हैं। वे स्वय भी इजतेहाद के अनुसार कार्य कर रहे थे, फिर किसी पर क्या दोष लगाया जा सकता था। प्रत्येक का इजतेहाद पृथक् है। इसका उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है कि कोई शाफई तथा मालिकी काज़ी किसी हनफी को नवीज़[1] पीने के कारण इस्लाम के अनुसार स्वीकृत दड नही दे सकता, क्योकि नवीज़ पीने का हनफियो में निपेध नहीं।

फिर यह भी न समझना चाहिए कि जिस प्रकार अन्य सहावा ने इजतेहादी मत-भेद के कारण हज़रत इमाम का साथ छोड़ा, उसी प्रकार हज़रत इमाम उन्ही के इजतेहाद से शहीद भी हुए होगे। ईश्वर क्षमा करे। इस घोर पाप का उत्तर-दायित्व तो केवल यज़ीद और उसके साथियो पर है। फिर यह भी न कहना चाहिए कि जव सम्मानित सहावा ने यज़ीद के व्यभिचारी होने पर भी उस पर आक्रमण की स्वीकृति नही दी तो उसका आचरण भी उनके निकट ठीक ही होगा। यह कदापि सम्भव नही। व्यभिचारी के वही आचरण ठीक एव स्वीकृत वताये जा सकते हैं जो शरीअत के क्षेत्र में हो। इस स्थान पर युद्ध की तो सहावा के निकट कोई कल्पना ही नही थी, जो वे इसे उचित समझते, क्योकि विद्रोहियो से युद्ध करने के लिए

१ एक प्रकार की खजूर की मदिरा।

उनके निकट इमामे आदिल[1] का नेतृत्व अनिवार्य है, जिसका यहाँ अभाव था, कारण कि यज़ीद इमामे आदिल नही था, जिसके नेतृत्व में युद्ध किया जा सके।

इस विवरण का निष्कर्ष यह निकला कि सहाबा के निकट न तो इमाम हुसेन का यजीद के साथ युद्ध उचित था, न यजीद का युद्ध हज़रत इमाम के साथ। यजीद ने जो अनुचित कार्य किये उनसे उसकी दुष्टता में वृद्धि होती है और उसकी कुकृतियो का ही प्रमाण मिल जाता है। हजरत इमाम शहीद है और पुण्य के पात्र। वे अपने इजतेहाद पर और सत्य के मार्ग पर आरूढ ही माने गये है। जो सहाबा यज़ीद के साथ थे, वे भी अपने इजतेहाद पर दृढ होने के कारण सत्य के ही अनुयायी माने जायँगे। इस समस्या पर काज़ी अबू बक्र बिन अरबी मालिकी[2] ने "अल-कवासिम वल अवासिम" नामक ग्रथ मे जो मत प्रकट किया है वह सत्य एवं न्याय पर आधारित नही। उसने कहा है कि "हजरत इमाम की हत्या अपने नाना[3] की शरीअत के अनुसार हुई। इस भूल का यह कारण है कि काज़ी अबू बक्र ने इमामे आदिल की शर्त की ओर से उपेक्षा की है।"

(३) जहाँ तक इब्नुज़् ज़ुबैर का सम्बंध है उन्होंने भी इमाम हुसेन की भाँति स्थिति का भली-भाँति अनुमान लगाने में भूल की और धोखा खाया। कारण कि बनू असद न तो जाहिलियत ही में और न इस्लाम के बाद बनी उमय्या के टक्कर के थे। यह सिद्ध हो चुका कि हजरत अली तथा मुआविया के झगडे में मुआविया की भूल नही बतायी जा सकती, कारण कि इजतेहाद उन्होने भी किया था और इजमा के आधार पर इजतेहाद में भूल भी हो सकती है और वह ठीक भी हो सकता है। इसी प्रकार इब्नुज़् ज़ुबैर एव अब्दुल मलिक[4] के झगड़े में भी अब्दुल मलिक को दोषी नही ठहरा सकते। रहा यज़ीद का मामला, तो वहाँ यजीद के व्यभिचार ने उसे पापी बना दिया था। फिर अब्दुल मलिक की न्याय सम्बधी शक्ति बड़ी ही उत्कृष्ट थी। उनके न्याय के सम्बध में यह प्रमाण पर्याप्त है कि इमाम मालिक उनके आचरण से अपने तर्क की पुष्टि करते थे।[5] इसके अतिरिक्त इब्ने अब्बास तथा इब्ने उमर

१. न्यायकारी इमाम।

२ मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह, ४६९–५४३ हि० (१०७६–७७ से ११४८ ई०)।

३. मुहम्मद साहब।

४. अब्दुल मलिक बिन मरवान, उमय्या वंश का ५वाँ ख़लीफा (६८५–७०५ ई०)

५. इससे पूर्व भी इब्ने ख़लदून में यही दलील दी गयी है।

ने इब्नुज् जुबैर की बैअत को छोडकर अब्दुल मलिक से बैअत की, यद्यपि इब्नुज़् जुबैर की बैअत के समय दोनो बुजुर्ग हिजाज में ही थे। अधिकाश सहावा का यही मत था कि इब्नुज् जुबैर की बैअत वास्तव में प्रामाणिक नहीं, कारण कि बैअत के समय सम्मानित एव श्रेष्ठ व्यक्ति उपस्थित न थे, जिस प्रकार मरवान[1] की बैअत के समय ये लोग अनुपस्थित थे। इसके साथ-साथ दूसरी ओर इब्नुज् जुबैर का मत इसके विरुद्ध था। क्योकि प्रत्येक दशा में दोनो ओर मुजतहिद थे, अत वाह्य रूप से सत्य की सम्भावना दोनो ही ओर थी, किन्तु निश्चित रूप से सत्य के विषय में कुछ कहना कठिन था। जो रक्तपात एव हत्याकाड बाद में हुआ वह फिकह के नियमो एव सिद्धात के अनुसार हुआ, किन्तु इब्नुज़् जुबैर हर प्रकार से शहीद ठहरे और पुण्य के पात्र भी, कारण कि उनके उद्देश्य एव सकल्प शुभ थे। वे जीवन पर्यन्त सत्य की खोज, इच्छा एव सहायता करते रहे।

यही दृष्टिकोण हमें भूतकाल के सभी पवित्र सहावा एव तावेईन के विषय में रखना चाहिए। यही बुजुर्ग उम्मत के चुने हुए एव सम्मानित व्यक्ति समझे जाते है। यदि हम इन्ही की आलोचना करने लगें तो फिर उम्मत में सत्यता किसमें मिलेगी? मुहम्मद साहब का आदेश है—"मेरे समय के लोग उम्मत में सर्वोत्कृष्ट है। उनके वाद वे लोग होगे जो इनका अनुसरण करेंगे।" अन्तिम वाक्य को दो-तीन वार दुहराकर उन्होने कहा कि "इनके वाद तो झूठ प्रचलित हो जायगा।" इस कथन में मुहम्मद साहब ने सत्यता को प्रथम पीढ़ी और उसके वाद की पीढी तक ही सीमित किया है।

जब वास्तविकता यह है तो फिर बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। हृदय एव जिह्वा को अपने अधिकार मे रखना चाहिए। ऐसा न हो कि इन बुजुर्गो के कार्यो के विषय में कोई शका अथवा सन्देह हृदय में आ जाय, अथवा उनकी शान के विरुद्ध कोई शब्द ज़बान से निकल जाय, अपितु यथासम्भव इन लोगो के कार्यों की व्याख्या अच्छी ही करनी चाहिए, कारण कि इन्होने जो कुछ भी मतभेद प्रकट किया वह तर्क एव दलील से किया, इनका पारस्परिक युद्ध जिहाद के रूप में था और केवल सत्य के सहायतार्थ। यह भी भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि इन बुजुर्गो

१ अब्दुल मलिक का पिता, मरवान बिन हकम, जो उमय्या वंश का चौथा खलीफा था और जो ६८४ से ६८५ ई० तक लगभग २९८ दिन तक खलीफा रहा।

का विरोध बाद मे आनेवाली उम्मत के लिए उपकार का साधन है। जो जिसका चाहे उसका अनुकरण करे और अपना इमाम तथा मार्गदर्शक बनाये।

(३१) धार्मिक ख़िलाफत के पद एवं सेवाएँ

इससे पूर्व यह स्पष्ट किया जा चुका है कि ख़िलाफत वास्तव में शारे[1] का उत्तराधिकारी एव जानशीन होना है। इसका उद्देश्य यह है कि इसके द्वारा धर्म की भी रक्षा हो और ससार का भी शासन-प्रबध चले। शारे धार्मिक एव सासारिक दोनो ही समस्याओ का समाधान करता है। धार्मिक समस्याओ का समाधान उन शरई आवश्यकताओ की पूर्ति द्वारा, जिनके प्रचार हेतु वे नियुक्त किये गये है और जिनके पालन कराने का उत्तरदायित्व उन पर है, किया जाता है। सासारिक राजनीति में वे उन आवश्यकताओ के कारण हस्तक्षेप करते है जो मानव-समाज के लिए जरूरी है। यह बात भी मान्य हो चुकी कि समाज एवं सस्कृति मनुष्य के लिए आवश्यक है, अत. तत्सम्बधी समस्याओ की देख-भाल भी उन्हें करना जरूरी है, कारण कि इन समस्याओ के समाधान की उपेक्षा के कारण मनुष्यो की सब आबादी नष्ट हो जायगी। हम इस बात का भी उल्लेख कर चुके है कि बादशाह तथा उसका गौरव सासारिक आवश्यकताओ की रक्षा हेतु पर्याप्त है। यदि शासन शरा के आदेशो के अनुसार होने लगे तो वह पूर्ण समझा जायगा, कारण कि शारे मनुष्यो की आवश्यकताओ को सबसे अधिक अच्छा समझता है। इस तथ्य के अनुसार यदि शासन इस्लामी व्यवस्था के अनुसार है तो वह ख़िलाफत कहलायेगी और उसी से सम्बधित समझी जायगी। यदि सल्तनत एव शासन का धर्म से कोई सम्बध न हो तो वह केवल सल्तनत होगी।

प्रत्येक दशा में हर सल्तनत के अधीन कुछ पद एव विभाग होते है, जिनमें सल्तनत का कार्य विभाजित होकर लोगो में बँट जाता है। प्रत्येक पदाधिकारी अपने कर्त्तव्य का, जिसके लिए वह बादशाह के आदेशानुसार नियुक्त होता है, उत्तरदायी होता है। सर्वोच्च प्रभुत्व बादशाह को प्राप्त होता है। इस प्रकार सल्तनत का कार्य भली-भाँति सम्पन्न होता रहता है। ख़िलाफत के अधीन भी शासन-प्रबन्ध होता है और ख़िलाफत का धार्मिक उत्तरदायित्व भी विभिन्न पदो में विभाजित होता है, जिनकी व्यवस्था इस्लामी खलीफाओ के हाथ मे होती है। अत हम अब उस धार्मिक

१ मुहम्मद साहब से तात्पर्य है।

उत्तरदायित्व एव उन पदो का उल्लेख करते है जिनका सम्वध विशेष कर खिलाफत से है। तदुपरान्त हम सल्तनत एव राज्य के पदो एव सेवाओ का उल्लेख करेगे।

यह वात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि धार्मिक अथवा शरा सम्वधी उत्तर-दायित्व अथवा पद, उदाहरणार्थ नमाज, फतवा, कजा, जिहाद एव एहतिसाव इत्यादि इमामते कुवरा[1] अथवा खिलाफत के अधीन है, कारण कि खिलाफत ही इन समस्त उत्तरदायित्वो का मूल सूत्र है और ये सव उसी से निकली है और उसी में समाविष्ट है। जाहिर है कि खिलाफत इस सामान्य दृष्टिकोण पर आधारित होती है कि इसके द्वारा कौम एव मिल्लत की सासारिक एव धार्मिक आवश्यकताओ में उचित परिवर्तन किये जायें और सव लोगो पर शरई आदेश जारी किये जायें। इस कारण ये सव पद खिलाफत से सम्वधित हैं और वास्तव में ये उसी की शाखाएँ है।

नमाज़ के इमाम

इनमें नमाज की इमामत का पद सव से ऊँचा है, अपितु राज्य एव सल्तनत से भी श्रेष्ठ है, कारण कि वे तो खिलाफत के ही अधीन है। खिलाफत का यह एक सर्वोच्च पद है। इस दावे का प्रमाण हमे उस दलील से मिलता है जो सम्मानित सहावा ने हज़रत अवू वक्र सिद्दीक को खिलाफत के लिए चुनते समय दी थी और ये शब्द कहे थे कि "जव मुहम्मद साहव ने धार्मिक मामले में आपका हमारे नेतृत्व के लिए चुनाव किया तो हम आपको अपने सासारिक मामले में सरदार एव खलीफा क्यो न वना लें।[2]" यदि नमाज़ को राजनीति की अपेक्षा अधिक सम्मान न प्राप्त होता तो सहावा का यह निष्कर्ष ठीक न होता।

जव यह वात सिद्ध हो गयी तो यह भी समझ लेना चाहिए कि मदीने में मस्जिदें दो प्रकार की थी। एक वडी मस्जिदें, जहाँ लोग अधिक सख्या में एकत्र होकर नमाज पढते थे, दूसरी प्रत्येक मुहल्ले की छोटी-छोटी मस्जिदें, जो मुहल्ले वालो के लिए सीमित थी। वे ही वहाँ नमाज़ पढते थे। इनमें वडी मस्जिदो की व्यवस्था या तो खलीफा के हाथ में होती थी अथवा वादशाह, वज़ीर एव काजी के हाथ में, जिनको खलीफा की ओर से अधिकार प्राप्त होता था। इन मस्जिदो में इमाम नियुक्त किये जाते थे जो पाँचो समय की नमाज जुमे एव दोनो ईदो की नमाज़, चन्द्र तथा सूर्य-

१. सर्वोत्कृष्ट इमामत।

२. इब्ने खलदून ने इस दलील का इससे पूर्व भी उल्लेख किया है।

ग्रहण के समय की नमाज़ तथा वर्षा की प्रार्थना हेतु नमाज पढाते थे। इमाम की नियुक्ति उत्कृष्ट एव सर्वोपरि कार्य है ताकि सर्वसाधारण के हित की रक्षा मे कोई विघ्न न पडे। जो आलिम जुमे की (सामूहिक) नमाज को अनिवार्य समझते है वे इमाम की नियुक्ति को भी अनिवार्य मानते है।

जो मस्जिदें विशेष मुहल्लो तथा कौमो की है उनके अधिकार आस-पास के निवासियो के हाथ में रहते है। खलीफ़ा अथवा सुल्तान का उनसे कोई सम्बध नही रहता। अब रहे इमामत के अन्य आदेश और उसकी शर्तें, तो वह फिकह् के ग्रथो में विस्तार से लिखी है या "एहकामे सुल्तानिया[1]" के ग्रथो में, उदाहरणार्थ मावर्दी इत्यादि के ग्रथो में इनका उल्लेख किया गया है। अत हम इस विवरण को अधिक बढाना नही चाहते। नमाज़ की इमामत के विषय में भूत काल के खलीफाओ का यह आचरण रहा है कि वे इसको किसी अन्य पर नही टालते थे, अपितु इस उत्तरदायित्व को स्वय पूरा करते थे और इस कार्य हेतु किसी को अपनी ओर से नियुक्त न करते थे। कई खलीफा खास मस्जिद में अजान अथवा नमाज की प्रतीक्षा करते हुए आहत हुए। इससे यह सिद्ध होता है कि खलीफा लोग स्वयं नमाज़ पढाते थे और इस कार्य को किसी अन्य पर न छोड़ते थे। उमय्या वश के खलीफाओ के समय में भी यही प्रथा रही। वे इस सम्मान को इतना उत्कृष्ट समझते थे कि वे स्वय यह उत्तरदायित्व निभाते थे। अब्दुल मलिक के विषय में प्रसिद्ध है कि उसने अपने हाजिब को आदेश दे दिया था कि "तुमको तीन व्यक्तियो के अतिरिक्त प्रत्येक को रोक लेनें का अधिकार प्राप्त है। एक भोजन लानेवाले को, कारण कि विलम्ब की वजह से भोजन नष्ट हो जाता है, दूसरे अज़ान देनेवाले को, कारण कि वह अल्लाह के आदेश को पूरा करने के लिए लोगो को बुलाता है, उसका रोकना किसी प्रकार उचित नही, तीसरे डाक लानेवाले को, कारण कि डाक के रुक जाने अथवा उसमें देर लगने से राज्य का शासन अस्त-व्यस्त हो जाता है।" जब खिलाफत पर सल्तनत की छाप पडी और शाहाना शान एव गौरव की उन्नति हुई तो खलीफाओ ने सर्वसाधारण से अपने आपको पृथक् रखना एवं ऊँचा समझना प्रारम्भ कर दिया। खलीफाओ ने इमामत के लिए अपना नायब नियुक्त करने की प्रथा चलायी। कभी-कभी वे स्वयं इमाम बन जाते और कभी ईद अथवा जुमे की नमाज पढ़ाते। इस प्रकार अब्बासी एव उबैदीईन खलीफाओ के समय में यही प्रथा रही।

१. राज्य के शासन-प्रबंध संबंधी ग्रंथ।

मुफ्ती

इमाम के वाद मुफ्ती का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए खलीफ़ा के वास्ते यह आवश्यक है कि आलिमो एव शिक्षको में से किसी योग्य व्यक्ति को छाँटकर फतवे का कार्य सुपुर्द करे और उसके कार्य को सुगम वनाये। जो फतवा देने के योग्य न हों उनको फतवा लिखने से पूर्णत रोक दे, कारण कि फतवा लिखने का कार्य मुसलमानो के धार्मिक हित से अत्यधिक सम्वधित है। इस लिए इसकी व्यवस्था खलीफा के ही जिम्मे है और इसका भार उसी के कन्धो पर है। यदि कोई अयोग्य व्यक्ति इस पद पर नियुक्त हो जायगा तो लोगो को मार्गभ्रष्ट कर डालेगा। खलीफा का यह भी कर्त्तव्य है कि शिक्षा एव ज्ञान-विज्ञान के प्रचार हेतु मस्जिदो में शिक्षको एवं मुदर्रिसो को नियुक्त करे। यदि मस्जिदें वडी है जो सीधे सुल्तान की देख-रेख में है, तो इस प्रकार की धार्मिक सस्थाओ के लिए सुल्तान की अनुमति आवश्यक है। यदि सावारण मस्जिदें है तो सुल्तान की आज्ञा आवश्यक नही। सक्षेप में मुफ्तियो एव शिक्षको पर कड़ी दृष्टि रखी जाय। जो जिस उत्तरदायित्व का पात्र न हो उसे वह उत्तरदायित्व कदापि न दिया जाय, अन्यथा नेतृत्व के इच्छुक मार्गभ्रष्ट हो जायँगे और भलाई चाहनेवाले भटक जायँगे। इसी लिए हदीस में उल्लेख हुआ है—"तुममें से जो कोई नि सकोच फतवा दे देता है, वह मानो नरक का भोजन वनने के लिए अधिक तैयार होता है।" इसी महत्त्व के कारण सुल्तानो का यह कर्त्तव्य हो गया कि वे जैसा उचित समझें, लोगो को फतवे एव शिक्षा-दीक्षा की अनुमति दें। जो इस कार्य के योग्य न हो उसे पूर्णत रोक दें।

क़ाजी

अव रहा काजी का पद, तो यह भी खिलाफत के उत्तरदायित्व में सम्मिलित है। खिलाफत का सवसे वडा कर्त्तव्य यह है कि लोगो के पारस्परिक झगडो का इस प्रकार निर्णय करे कि वे सर्वदा के लिए समाप्त हो जायें, किन्तु निर्णय के लिए यह आवश्यक है कि वह कुरान शरीफ एव सुन्नत के आदेशो के अनुसार हो। खिलाफत से कज़ा[1] के इसी गहरे सम्वध के कारण इसको खिलाफत का उत्तरदायित्व माना गया है। इस्लाम के प्रारम्भिक काल में खलीफा लोग इस पद को स्वय सँभालते थे और अपने अतिरिक्त किसी को यह पद न प्रदान करते थे। हज़रत उमर पहले

१. क़ाजी का पद।

खलीफा थे जिन्होने कज़ा के पद पर अन्य लोगो को नियुक्त किया। मदीने मे वे स्वय तथा अबू दरदा कज़ा के कार्य को सँभालते थे। बसरे में आपने शुरैह को तथा कूफे में अबू मूसा अशअ्री को काजी का पद प्रदान कर दिया था। इस सम्बध में अबू मूसा को नियुक्त करते समय हज़रत ने एक पत्र लिखा जो कजा के आदेशो एव निर्णय के विषय में एक पूर्ण विधान है। इसी महत्व के कारण हम उसे यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

"कज़ा निःसन्देह एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व एवं ऐसी सुन्नत है जिसका पालन करना आवश्यक है। इस कारण सोच-समझकर इस उत्तरदायित्व को पूरा करो और उन बातों का ध्यान रखो जिनसे न्याय की उपेक्षा न हो सके। अपने वचन का पालन करो। अपने सामने तथा अपने न्यायालय में न्याय की उपेक्षा मत करो, ताकि शक्तिशाली शरीफ लोग तुमसे अनुचित पक्षपात की आशा न करें और शक्तिहीन लोग तुम्हारे न्याय की ओर से निराश न हो जायँ। वादी से साक्षी माँगो और अपराध अस्वीकार करनेवाले से शपथ लो। मुसलमानो में आपस में समझौता करा देना बड़ा अच्छा है, किन्तु ऐसा समझौता न हो जिससे कोई हराम चीज हलाल अथवा हलाल चीज हराम हो जाय। यदि कल तुम कोई निर्णय कर चुके हो तो उस पर ठंडे दिल से सोचो। यदि न्याय तुम्हें किसी अन्य ओर ज्ञात हो तो न्याय का पालन करने में तुम किसी प्रकार का संकोच एवं लज्जा मत करो, कारण कि न्याय ही सर्वोत्कृष्ट है। सत्य की ओर लौट आना, असत्य पर दृढ़ रहने से कहीं अच्छा है। जो बात तुम अल्लाह की किताब एवं रसूल की सुन्नत में न पाओ और तुम्हें उसके निर्णय में कोई झिझक हो तो उस निर्णय के उदाहरण एवं नज़ीरें सामने लाओ और उनके अनुसार निर्णय करो। जो व्यक्ति किसी ऐसी वस्तु के विषय में दावा करे जिसका कोई प्रमाण न हो, अथवा किसी ऐसे साक्षी का हवाला दे जो उपस्थित न हो, तो निर्णय को गवाही की प्राप्ति तक टाल दो और स्थगित रखो। यदि वह गवाह पेश कर दे तो उसके विषय में निर्णय दो, अन्यथा नही। सन्देह दूर करने का केवल यही उपाय हो सकता है और अज्ञानता केवल इसी प्रकार दूर हो सकती है। एक मुसलमान की गवाही दूसरे मुसलमान के विषय में स्वीकार की जा सकती है। केवल उस व्यक्ति की गवाही स्वीकार नहीं की जा सकती जिसको किसी अपराध के दंड में कोड़े लग चुके हो,अथवा

उसकी गवाही झूठी सिद्ध हो चुकी हो, अथवा यह प्रमाण मिल जाय कि वह दास की श्रेणी में है। कारण कि अल्लाह शपथ के कारण क्षमा कर देता है। अभियोगी को कभी मत डाँटो फटकारो, क्योंकि न्याय की माँग करनेवालो को न्याय प्रदान करने में बड़ा पुण्य है। इसी से संसार में प्रसिद्धि होती है।"

भूत काल के खलीफाओ ने यद्यपि कजा का उत्तरदायित्व दूसरो के ज़िम्मे रखा था, किन्तु जो समस्याएँ सर्वसाधारण की राजनीति से सम्बधित थी, उनका समाधान करना खलीफाओ का ही विशेष उत्तरदायित्व होता था। उदाहरणार्थ जिहाद का प्रबध, राजधानी की रक्षा का प्रबन्ध तथा सीमातो की प्रतिरक्षा इत्यादि कार्य वे स्वय ही करते थे। उन्हें वे किसी अन्य पर न छोडते थे, कारण कि वे बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य थे। अन्य लोगो को केवल अभियोगो के निर्णय का उत्तरदायित्व दिया जाता था। खलीफा लोग अपना कार्य कुछ हलका करने के लिए उनको इस कार्य हेतु अपना उत्तराधिकारी बनाते थे। फिर कज़ा का उत्तरदायित्व उसी को सौंपते थे जो वश अथवा कुल में उनकी "असबियत" में ही सम्मिलित होता था। किसी अपरिचित को यह पद न दिया जाता। कज़ा के सम्बध में आदेश तथा शर्तें फिकह अथवा "एहकामे सुल्तानिया" के ग्रन्थो में मिल जायँगी। खलीफाओ के शासनकाल में काज़ी को केवल अभियोगो के निर्णय का अधिकार था, किन्तु शनै.-शनै काज़ियो के जिस प्रकार अधिकार बढते चले गये, अन्य अधिकार भी उन्ही को सौंपे जाने लगे। आगे चलकर अभियोगो के निर्णय के अतिरिक्त सर्व साधारण के हित की रक्षा भी उन्ही के सुपुर्द हुई। उदाहरणार्थ, पागलो, अनाथो, दरिद्रो एव मूर्खों की धन-सम्पत्ति की देख-भाल, वसीअतो का पालन, वक्फो का प्रबन्ध, विधवाओ का, यदि उनकी देख-रेख करनेवाला कोई न हो तो, विवाह, मार्गो एव घरो की देख-भाल, दस्तावेज़ो की जाँच-पडताल, साक्षियो की छान-बीन, अमीनो एव नायबो की देख-रेख और इस विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करना कि कौन सच्चा है और कौन विश्वास के अयोग्य।

खलीफा लोग पहले काज़ी को मजालिम[1] के निर्णय का भी अधिकार दिया करते थे। इस प्रकार फौजदारी विभाग का भी उसे हाकिम बनाते थे, हालाँ कि वह एक ऐसा पद है जो एक प्रकार से बादशाह के अधिकारो में सम्मिलित है और

१. ऐसे अभियोग, जिनका शरा में उल्लेख नहीं।

दूसरे प्रकार से काज़ी के उत्तरदायित्व में भी। इसके लिए अपार शक्ति की आवश्यकता है ताकि वह अत्याचारी को डाँट-डपट कर, तथा दड देकर उसकी उद्दडता को सर्वदा के लिए समाप्त कर सके। सुल्तान के अतिरिक्त केवल काजी तथा किसी अन्य में इतनी शक्ति कहाँ। काजी का कर्त्तव्य यही समाप्त हो जाता है कि वह गवाही सुने, दोनो पक्षो का इज़हार ले, प्रत्येक वस्तु की छान-बीन में सूझ-बूझ से कार्य करे और यदि सत्य बात का पता न चल सके तो उसे किसी अन्य तिथि पर टाल दे। दोनो पक्षवालो को सधि पर राज़ी करे, गवाहो से हलफ ले, काज़ी के अधिक से अधिक ये ही अधिकार है।

भूतकाल के ख़लीफा लोग कजा के उत्तरदायित्व को स्वयं सभालते थे। मुहतदी अब्बासी[1] तक यही प्रथा चली आयी। कभी-कभी इस कार्य को वे काज़ियो को भी सौप दिया करते थे। उदाहरणार्थ, हज़रत उमर[2] ने अबू इदरीस खालानी[3] को काजी का पद प्रदान कर दिया था। मामून ने यहया बिन अकसम को काज़ी नियुक्त किया था और मोतसिम ने इब्ने अबी दाऊद[4] को। कभी-कभी सैनिक दस्ते भी जिहाद हेतु काजी के नेतृत्व में भेजे जाते थे, मामून के राज्यकाल में यहया बिन अकसम ने सेनाएँ लेकर रूम[5] के भू-भाग में कई बार जाकर जिहाद किये। इसी प्रकार काजी मुनजर बिन सईद अब्दुर्रहमान नासिर उमवी उन्दुलस से कई बार मुजाहिदो को लेकर जिहाद के लिए गया। काज़ी को सेनापति के पद पर नियुक्त करना ख़लीफाओ, अधिकार-सम्पन्न वज़ीरो अथवा प्रतापी सुल्तानों के सुपुर्द होता था।

शुर्ता[6]

अब्बासी एवं उन्दुलुस में उमय्या सल्तनत में एवं उबैदीईन के राज्यकाल में मिस्र तथा मगरिब में अपराधो की देख-भाल एव छान-बीन तथा दंड देना साहेबुश् शुर्ता[7] के सुपुर्द होता था। इस प्रकार यह दूसरा धार्मिक पद था जो इन सल्तनतो में

१. अल-मुहतदी बिल्लाह १४वाँ अब्बासी ख़लीफा (८६९–८७० ई०)।
२. कुछ पोथियाँ के अनुसार हज़रत अली।
३. सम्भवतः उसका पूरा नाम अइज़ल्लाह बिन अब्दुल्लाह था।
४. अहमद बिन अबी दाऊद की मृत्यु २४० हि० (८५४ ई०) में हुई।
५. बैज़न्टाइन।
६. पुलिस।
७ मुख्य पुलिस अधिकारी।

शरा का उत्तरदायित्व समझा जाता था। साहेबुश शुर्ता के अधिकार काजी से कुछ अधिक होते थे। जिन लोगों पर अपराध का सन्देह होता था, उन्हें वह न्यायालय में पेश करता था। अपरावो के पूर्व अपराव की रोक-थाम के लिए वह दड भी देता था। शरई कानूनो के आधार पर वह लोगो को दड दिला सकता था। जब दड का आदेश हो जाता तो वह उनको पूरा कराता। कसास[1] के खून के अपराधियो के हेतु प्रयत्न करता। निरतर अपराध करने वालो को दड देना भी उसी के जिम्मे होता था, किन्तु जब खिलाफत का महत्व भुला दिया गया तो कज़ा एव साहेबुश् शुर्ता दोनो के पद भी समाप्त कर दिये गये। मज़ालिम की देख भाल का उत्तरदायित्व सुल्तानो ने स्वय सँभाला, चाहे खलीफा की अनुमति से अथवा बिना उसकी अनुमति के। साहेबुश् शुर्ता के कर्त्तव्य दो पदों में विभाजित हो गये। एक पद के अधीन अपरावो की छान-बीन, दड दिलवाना, अपराधियो के शरीर के अग कटवाना एव कसास के मामले आये। इस पद पर एक पूर्णत. पृथक् हाकिम बिठाया गया जो केवल राजनीति की दृष्टि से, न कि शरा की दृष्टि से आदेश जारी करता था। उसको कभी वाली कहते और कभी शुर्ता। दूसरे पद के अधीन उन अपराधो का दड था, जिनका शरा में उल्लेख नही। कुछ ऐसे भी अपराव इसके अधीन थे जिनका शरा में उल्लेख है। इस पद की जिम्मेदारी भी काज़ी की अन्य जिम्मेदारियो में सम्मिलित कर दी गयी थी। इस प्रकार हमारे समय तक पदो के विभाजन की यही प्रथा चली आ रही है।

अब कज़ा का पद सल्तनत की "असबियत" से पृथक् हो गया है कारण कि जब तक खिलाफत धार्मिक रही तो कज़ा की गणना भी धार्मिक कार्यो में होती रही तथा "असबियत" वाले अरब ही कज़ा के पद को सँभालते अथवा उन लोगो को प्रदान करते थे जो खलीफाओ के सहायक, दास अथवा, आश्रित होने के कारण उन्ही की "असबियत" में सम्मिलित होते थे। खलीफा को उनका विश्वास होता था कि वे अपने उत्तरदायित्व को भली-भाँति निभा सकेंगे, किन्तु जब आगे चलकर खिलाफ़त का गौरव समाप्त हुआ और राज्य एव सल्तनत की उसपर छाप पड़ी तो इस प्रकार के धार्मिक पद खिलाफत से पृथक् हो गये, कारण कि ये उपाधियाँ बादशाह को शोभा न देती थी और न उसके अनुकूल थीं। फिर युग बीतने पर सल्तनत अरबो के हाथ से पूर्णत. निकल गयी और अरबो के अतिरिक्त अन्य लोग सिंहासन के अधिकारी बन गये। उदाहरणार्थ—तुर्क, बरबर इत्यादि। तब तो खिलाफत के ये पद खिलाफत

१. खून का बदला खून।

,की "असवियत" से पूर्ण रूप से पृथक् हो गये। यह कार्य इस प्रकार सम्भव हु
कि अरब शरीअत को अपना धर्म समझते थे और जानते थे कि मुहम्मद साहब उन
में पैदा हुए थे और उनके लाये हुए शरीअत के आदेश दूसरी कौमो में प्रचलित
किन्तु जो लोग अरब न थे उनके विचार ऐसे न थे। वे तो इन पदो को केवल इ
लिए महत्त्व देते थे कि वे मुसलमान थे। वे उन पदो को उन लोगो को प्रदान करते
जिन्हें पिछले खलीफ़ाओ के युग में इसका अनुभव हो जाता था।

इस प्रकार के काजी समृद्धि मे पले हुए तथा भोग-विलास के आदी हो चुकते
वदवियत एव सरल जीवन को पूर्णत भुला चुकते और शहरी जीवन के पूरे आ
हो चुकते थे। उनकी आदतें अमीराना, रग-ढग शाहाना एव वासनाओ से बचने
योग्यता समाप्त हो चुकती थी। सक्षेप में खिलाफत का युग समाप्त होने के उ
रान्त जब सल्तनत का युग प्रारम्भ हुआ तो कजा इत्यादि के पद उपर्युक्त दुर्दशा
प्राप्त नगर वालो के हिस्से में आये, कारण कि वे अपने कुल के महत्त्व को भु
चुके थे और नगर के जीवन की आदतें भी उनमें बहुत बडी सीमा तक आ गयी थ
अत इन लोगो का सम्मान समाप्त हो गया। उन नगर वासियो के समान
भोग-विलास एव समृद्धि के आनन्द में डूबे रहते थे और सल्तनत की "असवियत
से दूरका भी सम्बन्ध न रखते थे, अपितु सल्तनत पर निर्भर होते थे, काज़ी तथा शरीअ
के आलिम भी अपमानित हो गये। सल्तनत में उनका सम्मान केवल इस कार
होता कि शरा सम्बन्धी आदेश उनके द्वारा प्राप्त होते थे और ये लोग शरा
आदेशो के रक्षक समझे जाते थे, अन्यथा उनको कोई आदर-सम्मान न प्राप्त हो
था। शरा सम्बन्धी पदो का कुछ आदर सम्मान शेष था, अत. सुल्तानो की सभा
में इनका कुछ आदर-सम्मान हो जाता था, किन्तु शासन-प्रबंध एव राज्य-व्यवस्था
इन्हें कोई अधिकार प्राप्त न था। प्रथानुसार वे भी दरबारो में उपस्थित हो जाते
किन्तु वास्तव में उन्हें कोई महत्त्व हासिल न था। अधिकार सम्पन्न एव प्रतिभाशा
तो वही होते हैं जिनके हाथ में शक्ति हो। जो लोग शक्ति एव अधिकार से शून्य
उनको शासन प्रबध से क्या मतलब। केवल शरा सम्बन्धी आदेशो की उनसे पूछ-ता
की जाती थी, फतवे माँगे जाते और बस! उनका उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता था

कुछ लोगों का यह मत है कि वास्तविक बात कुछ और है। वह इस प्रकार
काजियो एव धार्मिक आलिमो का सम्मान इस कारण नही घटा कि वे सल्तनत
"असवियत" से सम्बन्ध नही रखते थे,अपितु बादशाहो ने स्वयं इन बुजुर्गो को पराम
गोष्ठियों से पृथक् कर दिया जो वास्तव में बड़ा ही अनुचित कार्य था, कारण कि प

मर्श-गोष्ठियों में सम्मिलित होने का उनसे अधिक पात्र कौन हो सकता था जब कि उनके विषय में मुहम्मद साहब का महत्त्वपूर्ण आदेश वर्त्तमान है "आलिम लोग नवियो के उत्तराधिकारी नियुक्त किये गये है ।" तो यह समझ लीजिए कि लोगो का यह विचार निराधार है इस कारण कि वादशाहों एव सुल्तानो का शासन प्रवध सभ्य सिद्धातो पर आधारित होता है । यदि ऐसा न हो तो वे शासन हाथ से खो वैठें । इस प्रकार सभ्यता के नियमो के आधार पर यह परमावश्यक है कि फाकीहो एव काज़ियों को शासन-प्रवध एव राज्य-व्यवस्था से पृथक् रखा जाय और उनमें हस्तक्षेप का अधिकार उनको न दिया जाय । ज़ाहिर है कि परामर्श अथवा राज्य-व्यवस्था की अन्य समस्याओ में "असवियत" वाले ही अपने महत्त्व को प्रदर्शित कर सकते है। वे पूर्ण रूप से अधिकार-सम्पन्न होते है और किसी कार्य को करने अथवा न करने का उन्हें पूर्ण अधिकार होता है, किन्तु जिसमें "असवियत" नही होती उसे न अपने ऊपर अधिकार होता है और न वह वासनाओ का दमन कर सकता है । जो अन्य लोगो पर भार हो और अन्य लोगो के भरोसे पर जीवित हो, वह परामर्श-गोष्ठी में वैठकर क्या कर सकेगा और उसका क्या महत्त्व होगा । शरा सम्वन्वी आदेशो पर विचार विनिमय होने लगे और काज़ी से फतवा माँगा जाय तो इस क्षेत्र में वह नि सन्देह महत्त्वपूर्ण योगदान करेगा, किन्तु राजनीति एव शासन-प्रवन्ध से उस वेचारे का क्या सम्वन्व ? क्यो कि उसमें "असवियत"ही नही और न उसे"असवियत" की आवश्यकताओ एव आदेशो से कोई मतलव होता है । वादशाह एव अमीर उनकी अपने प्रति सद्भावना एवं धर्म के प्रति निष्ठा के कारण उनका आदर सम्मान करते हैं। उनके हृदय में प्रत्येक उस व्यक्ति का आदर सम्मान होता है जो किसी प्रकार धर्म से अपना सम्वन्व रखता है।

रहा मुहम्मद साहव का कथन कि 'आलिम लोग नवियो के उत्तराधिकारी नियुक्त हुए' है तो यह वास्तव में आजकल के उन अधिकाश फकीहो के अनुकूल नही जो शरीअत के आदेशो को कठस्थ कर लेते है। उदाहरणार्थ, एवादत किस प्रकार होनी चाहिए, अभियोगो का निर्णय किस प्रकार होना चाहिये इत्यादि वातें जिनका उनसे सम्बन्ध होता है, वे भली-भाँति वता सकते है । आजकल के फ़कीहो एव काजियो की योग्यता की अतिम सीमा यही है। उनमें से वहुत कम ऐसे है जो अपने वताये हुए धार्मिक-सिद्धातो का उदाहरण अपनी कृतियो से दे सकते है । भूतकाल के पवित्र लोग धर्म-निष्ठ थे और पवित्र जीवन व्यतीत करते थे । शरा सम्वन्वी समस्त वातो पर शोध की दृष्टि डाल सकते थे । उनमें स्वय शरा में वर्णित गुण पाये जाते थे । जिन फकीहो में यह योग्यता हो कि वे वचन एव कर्म दोनो से शरा की व्यवस्था कर सकें, वे नि सन्देह

नवी के उत्तराधिकारी है। उदाहरणार्थ, अलकुशैरी के रिसाले के लेखक को प्रस्तुत किया जा सकता है। सक्षेप में जिनमें वचन एव कर्म दोनो ही के उत्तम गुण पाये जाते हो, वे वास्तव में आलिम भी है और नवी के उचित उत्तराधिकारी भी। उदाहरणार्थ, तावेइन, फकीह लोग, भूतकाल के पवित्र लोग या चारों मुजतहिद इमाम अथवा जो भी उन वुजुर्गों के पदचिह्नो पर चले वह नवी का वास्तविक उत्तराधिकारी है। मेरा तो यह दृष्टिकोण है कि जो लोग केवल उपासक है वे उस फकीह से जो उपासक नही नवी का उत्तराधिकारी बनने के अधिक योग्य है, कारण कि उपासक कम से कम एक गुण में तो उनका उत्तराधिकारी है ही, किन्तु फकीह किसी चीज में भी नवी का वारिस नही। वह तो केवल ज़वान का धनी है। कर्म से उसका कोई सम्वध नही। आजकल के अधिकाश फकीहो के विषय में यह वात सच है।

अदालत

यह भी एक धार्मिक पद है जो कजा के अधीन स्थापित होता है और काजी के अधीन ही रहता है। उस पद का अधिकारी काज़ी के समक्ष लोगो के अधिकारो के विषय में प्रमाण प्रस्तुत करता है। जब अदालत एव कज़ा-विभाग में गवाही का मामला पेश होता है और मत-भेद हो जाता है तो उसका प्रमाण अटल समझा जाता है। जिसके हक की वह पुष्टि करे यह ठीक है और जिसकी न करे उसे कोई अधिकार प्राप्त नही होता। वह एक पजिका भी रखता है जिसमें लोगो की धन-सम्पत्ति, उनकी इमलाक, उनके ऋण तथा उनके सभी मामलो का सविस्तार विवरण लिखा होता है, किन्तु यह पद उसी के सुपुर्द होता है जो स्वय शरा के अनुसार सच्चा मान लिया गया हो और जिस पर कभी किसी प्रकार का दोष अथवा आरोप न लगा हो। लेन-देन के सभी मामले, दस्तावेज की भाषा एवं तत्सम्बन्धी अन्य बातो की देख-भाल, शरा सम्बन्धी आदेशो की पृष्ठ-भूमि में उनकी जाँच, दस्तावेजों का जारी करना, उसी के हाथ में होता है। क्योकि ये सब उत्तरदायित्व फिकह की पृष्ठ-भूमि में सम्पन्न होते है, अत उसका फिकह के ज्ञान से परिचित होना भी आवश्यक होता है। इन्ही प्रतिवन्धों अथवा शर्तों की दृष्टि में, अथवा इस पद के उत्तरदायित्व को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने के लिए यह कार्य कुछ विशेप लोगो तक सीमित रह गया है और यह समझा जाने लगा है कि वे लोग सच्चाई के ठेकेदार है तथा वे ही इस कार्य के विशेष रूप से उपयुक्त है। हालाँ कि तथ्य ऐसा नही है। सच्चाई की शर्त तो उनके साथ केवल यह पद सँभालने के लिए लगा दी गयी।

काज़ी का कर्त्तव्य है कि वह उनकी छान-वीन करता रहे और उनके स्वभाव एव उनकी आदतो का निरीक्षण करता रहे ताकि सच्चाई की शर्त किसी समय भी ओझल न हो और उसकी उपेक्षा न की जाने लगे, कारण कि लोगो के हको की रक्षा करना काज़ी के ही ज़िम्मे है और उसी के कधो पर उसका भार है। वही वास्तव में इन सव खोजो एव छान-वीन का उत्तरदायी है।

इस पद के वन जाने से काज़ियो को अभियोगो का निर्णय करने में वडी सुगमता होती है कारण कि नगर दूर-दूर तक फैले होते है और जव वहाँ से काज़ी के समक्ष अभियोग आते है और साक्षियो की सत्यता के विषय में काज़ी को कुछ पता नही चल पाता तो काज़ी उन्ही अविकारियों पर भरोसा करने पर विवश होता है और उन्ही के द्वारा छान-वीन करके निर्णय करता है। नगरो में इन अविकारियो के वैठने के स्थान निश्चित होते है जहाँ वे विधिपूर्वक वैठते हैं और मामलेवाले अपने लेन-देन उनसे निर्गत कराते हैं। वे उसे अपनी पजिका में लिख लेते हैं।

अदालत शव्द का प्रयोग एक तो उसी पद के लिए होता है जिसका सविस्तर उल्लेख ऊपर किया गया है। दूसरी अदालत वह है जो शरा के अनुसार झूठ के मुकावले में वोली जाती है। कभी इन दोनो का प्रयोग एक ही अर्थ में होता है और कभी पृथक्-पृथक्।

हिस्वा

एहतेसाव-विभाग दीनी तथा धार्मिक पद समझा जाता था। एक प्रकार से वह धार्मिक प्रचार का एक विभाग था। इस पद के लिए उचित व्यक्ति की नियुक्ति करने का उत्तरदायित्व मुसलमानो के खलीफा पर होता था। वह जिसको चाहता था, इस कार्य के लिए नियुक्त करता था। फिर वह अपने सहायक नियुक्त कर लेता था और लोगो की कुकृतियो एव दुराचार की खोज में लगा रहता और पता लगाता रहता था। पता लगाने पर उचित दड प्रदान करता था और प्रत्येक वात में लोगो पर प्रतिवन्ध लगाता था कि वे कोई ऐसे कार्य न करें जिनसे सर्व साधारण के हित में कोई वाधा पडे। उदाहरणार्थ, मार्गो पर भीड़ न लगायें, पशुओ एव नौकाओ पर अनुचित भार न लादें, जिन घरो के गिरने का भय हो उनको घरो के स्वामी स्वय गिरवा दें ताकि वे अचानक गिर जाने से यात्रियो को हानि न पहुँचा सकें। पाठशालाओ के गुरु, वालको एव विद्यार्थियों की आवश्यकता से अधिक मार-पीट न करने पायें। सक्षेप में इसी प्रकार के दायित्व मुहतसिव के कर्त्तव्यों में सम्मिलित थे। मुहतसिव इस

वात की प्रतीक्षा न करता था कि ये सब झगड़े अभियोग के रूप में ही उसके समक्ष प्रस्तुत किये जायें और तव वह उनपर विचार करे। वह स्वय उन कार्यो की देख-भाल और सव हालात पर कडी दृष्टि रखता था और जो कुछ उसे ज्ञात होता उसके अनुसार वह उचित कार्यवाही करता था। सभी अभियोगो का निर्णय उसके ज़िम्मे न था, अपितु केवल उन्ही का जो आर्थिक लेन-देन एव कारोवार में अनुचित व्यवहार से सम्बन्धित होते थे। उदाहरणार्थ, तोल एव वजन में जो बेईमानी तथा धूर्तता होती उसकी रोक-थाम उसी के ज़िम्मे थी। ऋण न अदा करने वालो से ऋण अदा करवाना भी मुहतसिब के ही ज़िम्मे होता था। सक्षेप में ऐसे समस्त मामले जिनमें न गवाही की आवश्यकता होती है और न कोई विशेष निर्णय करने की, वे सब उसी के सिपुर्द होते थे। इस प्रकार मुहतसिब के हाथ में ऐसे मामले दिये जाते है, जो प्राय पेश आते रहते थे और जिनका निर्णय आसान होता था। काज़ी को उन अभियोगो से पृथक् रखा जाता था। इस प्रकार मुहतसिब, काजी का सहायक होता था और अन्य कार्यों में उसका हाथ वँटाता था।

इसी कारण वहुत-सी इस्लामी सल्तनतो में, उदाहरणार्थ—उवैदीईन के राज्य में, मिस्र तथा मगरिव में और उन्दुलुस में उमय्या शासकों के राज्यकाल में मुहतसिब की नियुक्ति काजी की इच्छानुसार होती थी। फिर जब सल्तनत ने खिलाफत का स्थान ले लिया और राजनीति सम्बन्धी सभी समस्याए सीधे सुल्तान की देख-रेख में सुलझायी जाने लगी तो एहतिसाव भी उसी के अधीन हो गया। वह जिसे चाहता, मुहतसिव नियुक्त करता था।

सिक्के तथा टकसाल

टकसाल का अधीक्षक प्रचलित सिक्कों की देख-भाल रखता था और उसे प्रत्येक खोट एव हानि से वचाता था। प्रचलित सिक्के के सम्वन्ध में प्रत्येक प्रकार की शिकायत को दूर करना उसी के जिम्मे था, फिर वह इस वात की भी देख-रेख रखता था कि सिक्के पर वादशाह का चिह्न अथवा नाम इत्यादि शाही ठप्पे से खोदा जा रहा है या नही। इसके लिए एक लोहे का ठप्पा होता था जिसपर विशेष चिन्ह खुदे होते थे। दिरहम अथवा दीनार की तोल को ठीक करके ठप्पा उसपर रखा जाता था और हथौडे से उसपर चोट मारी जाती थी और ठप्पे के पूरे चिन्ह दिरहम अथवा दीनार पर उभर आते थे। ये चिह्न इस वात के द्योतक होते थे कि सिक्का खरा है और लेन-देन में प्रयोग के योग्य है। सिक्के के खरे होने का माप-

दड पृथक् स्थापित होता था जिसके अनुसार खरे-खोटे सिक्को का निर्णय किया जाता था। जब किसी देश अथवा राज्य में सिक्के के खरे होने का कोई नियत माप दड निर्धारित हो जाता तो वह माप दड एक कसौटी हो जाता था। जो सिक्का उसके अनुसार होता वह खरा और जो कम अथवा बदला होता वह खोटा समझा जाता था और चलने योग्य न रहता था।

इन सब बातो की देख भाल टकसाल के अधीक्षक के सिपुर्द होती थी। क्यो कि यह उत्तरदायित्व आम मुसलमानो के अधिकारो से सम्बन्धित था। अत यह एक प्रकार से धार्मिक उत्तरदायित्व बन गया था। इसकी गणना खिलाफत के उत्तर-दायित्व में हो गयी थी। इसी आधार पर एक समय काज़ी इसकी भी देख भाल करता था, किन्तु आजकल हमारे युग में जिस प्रकार एहतेसाब-विभाग सुल्तान के हाथ में आया उसी प्रकार टकसाल भी सुल्तान की देख-रेख में आ गया। यह खिलाफत के उत्तरदायित्व की अन्तिम कड़ी थी, जिसका उल्लेख हुआ।

खिलाफत के कुछ उत्तरदायित्व एव कर्त्तव्यो का इस कारण उल्लेख नही किया गया कि वे अब समाप्त हो चुके हैं। कुछ ऐसे कार्य हैं जो सुल्तान के उत्तरदायित्व में सम्मिलित हैं। उदाहरणार्थ, विजारत तथा इमारत, युद्ध एव खराज से सम्बन्धित पद तो इनका उल्लेख जिहाद के विवरण के बाद आयेगा। जिहाद से सम्बन्धित पद भी लग भग समाप्त हो गये हैं और खिलाफत के साथ इनका भी अन्त हो चुका है, किन्तु किन्ही-किन्ही सल्तनतो में अब भी इनकी कुछ प्रथाएँ शेष हैं, किन्तु इनके समस्त अधिकार सुल्तानो के हाथ में हैं। इसी प्रकार वशो की जाँच का विभाग भी खिलाफत के साथ समाप्त हो गया। इस विभाग से खिलाफत एव बैतुल माल में हको को प्रमाणित करने के लिए काम लिया जाता था। सक्षेप में आज-कल की समस्त सल्तनतो में वर्तमान राजनीतिक तौर-तरीको ने खिलाफत के उत्तर-दायित्व का पूरा-पूरा स्थान ले लिया है।

(३२) अमीरुल मोमिनीन की उपाधि खिलाफत के युग की एक प्राचीन यादगार है और इस उपाधि का खिलाफत के युग में ही सर्वप्रथम प्रयोग हुआ

हज़रत अबू बक्र से बैअत होने के उपरान्त समस्त मुसलमान आपको अल्लाह के रसूल के खलीफा के नाम से पुकारते थे। जब तक आप जीवित रहे यह नाम इसी प्रकार चलता रहा। आप के पश्चात् जब हज़रत उमर खलीफा हुए तो प्रारम्भ

में आपको मुसलमान रसूलल्लाह् के ख़लीफा का खलीफा कहने लगे, किन्तु यह उपाधि कुछ लम्बी होने के कारण जबान पर बोझ मालूम होने लगी क्योकि इसका अधिक प्रयोग होता रहता था, अत इसका उच्चारण कठिन हो गया। यह भी सोचा गया कि ख़िलाफतो के परिवर्तन से यदि इसी प्रकार नाम जोड़े जाने लगे तो इस उपाधि का कोई अर्थ न रहेगा और इससे कुछ भी पता न चल सकेगा। अत मुसलमान लोग इस उपाधि के स्थान पर अन्य उचित उपाधियो का हजरत उमर के लिए प्रयोग करने लगे। जाहिलियत के युग मे अरब लोग मुहम्मद साहब को 'अमीर मक्का' अथवा 'अमीर हिजाज' कहा करते थे। सम्मानित सहाबा साद बिन अबी बक्कास को "अमीरुल मोमिनीन[1]" कहते थे, कारण कि कादिसया के युद्ध में आप मोमिनो के सेनापति नियुक्त हुए थे और यही सहाबा उस समय मुसलमानो में अधिकारवाले समझे जाते थे।

फिर कभी-कभी कुछ सहाबा ने हज़रत उमर को अमीरुल मोमिनीन की उपाधि से सम्बोधित किया तो समस्त श्रोताओ ने इस उपाधि को पसन्द किया। कुछ लोगो का मत है कि अब्दुल्लाह् बिन जहश[2] ने इस उपाधि का आविष्कार किया, कुछ का मत है कि उमर बिन आस तथा मुगीरा बिन शोबा ने इस उपाधि का प्रयोग प्रारम्भ किया। यह भी कहा जाता है कि एक दूत किसी इस्लामी दस्ते की विजय के सुखद समाचार लाया और मदीना पहुँचा तो हज़रत उमर को पूछने लगा और कहने लगा कि अमीरुल मोमिनीन कहाँ है? धर्मनिष्ठ मुसलमानो ने इस उपाधि को सुना तो बहुत पसन्द किया और इस आविष्कार की प्रशसा करते हुए कहा कि वास्तव मे उसने बड़ी उत्तम उपाधि दी है, हज़रत उमर, मोमिनीन के अमीर ही तो हैं।" तब से सब लोग उन्हें इसी उपाधि द्वारा सम्बोधित करने लगे और इसकी ऐसी प्रसिद्धि हुई कि यह उपाधि एक खिलाफत के उपरान्त दूसरी खिलाफत में विरासत की भाँति चलती रही। बनी उमय्या के युग में भी यही उपाधि प्रचलित रही और खलीफाओ को इस उपाधि के अतिरिक्त किसी अन्य उपाधि से सम्बोधित न किया जाता था।

शीआ लोग हज़रत अली को इमाम के नाम से पुकारते थे। इस इमामत को उन्होने खिलाफत के समानान्तर कर दिया और इससे अपने उस धार्मिक विश्वास की ओर

१. धर्मनिष्ठ मुसलमानों का हाकिम।

२ इब्ने जहश की उहुद के युद्ध में ६२५ ई० में मृत्यु हो गयी थी। अतः उनके विषय में यह कहना कि इस उपाधि का आविष्कार उन्होंने किया, ठीक नहीं।

सकेत किया कि हजरत अबू बक्र के मुकाबले में हजरत अली ही नमाज़ के इमाम बनने के अधिक पात्र थे। हज़रत अली को विशेष रूप से इस उपाधि से सम्बोधित करना इन शीओ का आविष्कार है। फिर उनके बाद के उत्तराधिकारियो को वे लोग इमाम के नाम से ही सम्बोधित करते रहे, किन्तु जब इन्होने शासन की बागडोर सँभाली तो इमाम की उपाधि के स्थान पर 'अमीरुल मोमिनीन' की उपाधि का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार शीआ बनी अब्बास का यही आचरण रहा कि इबराहीम[1] तक वे अपने इमामो को इमाम के नाम से सम्बोधित करते थे, किन्तु जब उनका प्रचार खुल्लम-खुल्ला प्रारम्भ हुआ और बनी उमय्या से युद्ध हेतु पताकाएँ एवं झडे सुव्यवस्थित किये जाने लगे और इबराहीम मारे गये तो उनके भाई सफ्फाह को शीओ ने "अमीरुल मोमिनीन" की उपाधि दे दी। इफ़रीकिया के राफज़ियों[2] ने भी ऐसा ही किया कि वे इस्माईल की सतान में सबको इमाम ही कहते रहे। यहाँ तक कि उबैदुल्लाह अल महदी और उसके उपरान्त उसके पुत्र अबुल कासिम को भी वे इमाम ही कहते रहे, किन्तु जब उनकी सल्तनत की जड़ें दृढ हो गयी तो उन्होने अपने इमामो को "अमीरुल मोमिनीन" कहना प्रारम्भ कर दिया। मगरिब में इदरीसियो ने भी इसी प्रथा का अनुसरण किया। वे इदरीस को इमाम कहते रहे और इसी प्रकार उनके पुत्र छोटे इदरीस को भी।

इसके बाद अमीरुल मोमिनीन की उपाधि खलीफाओ में प्रचलित हुई और यह उपाधि विशेष रूप से उन शासको के लिए प्रचलित होने लगी जो हिजाज़, शाम तथा इराक पर शासन कर रहे थे। ये स्थान अरबो के घर अथवा अरबो के क्षेत्र कहलाते हैं और वास्तव में इस्लामी राज्य के केन्द्र है; और वही से इस्लामी विजयो का क्रम प्रारम्भ हुआ। जब सल्तनत की उन्नति हुई तो खलीफाओने पारस्परिक भेद-भाव के लिए अन्य उपाधियो का भी प्रयोग प्रारम्भ कर दिया, कारण कि अमीरुल मोमिनीन की उपाधि का प्रयोग तो सभी के लिए होता था, अत. इससे किसी प्रकार का कोई भेद-भाव न हो सकता था। उदाहरणार्थ, बनी अब्बास ने सफ्फाह, मनसूर, महदी, हादी तथा रशीद सरीखी उपाधियाँ गढी जिनका एक उद्देश्य यह भी था कि ये उपा-

१ इबराहीम, बिन मुहम्मद, बिन अली, बिन अब्दुल्लाह, बिन अब्बास, प्रथम दो अब्बासी खलीफाओ के बड़े भाई थे। अन्तिम उमय्या खलीफा मरवान द्वितीय अथवा हिमार ने अक्तूबर ७४९ ई० में उनकी हत्या करा दी।

२ शीओ से तात्पर्य है।

धियाँ उनके नामो के लिए आवरण बन जायँ और सर्व-साधारण एव विशेष व्यक्ति उनके नामो का उच्चारण करके उनका अपमान न करें। इस प्रकार इन्ही विभिन्न उपाधियो की प्रथा इस वश में चलती रही। यहाँ तक कि मिस्र एव इफरीकिया में उवैदीईन ने भी इसी प्रथा का पालन किया, हालाँ कि इसके पहले पूर्व में बनू उमय्या ने ऐसी उपाधियो को ग्रहण नही किया, कारण कि उनमें उस समय "बदवियत" एव सरलता पूर्ण रूप से वर्त्तमान थी। अरवी बू-वास एव स्वभाव उनमें बदवियों की तरह ही वर्त्तमान थे। सक्षेप में उन्होने उस समय तक बदवियत को नही त्यागा था, न नगर जीवन के किसी प्रकार आदी हुए थे।

उन्दुलुस में बनी उमय्या ने अपने पूर्वी पूर्वजो के अनुसार उपाधियाँ ग्रहण नही की। वे इस बात को स्वीकार करते थे कि उनके पूर्वजो के समान उन्हें वह सम्मान प्राप्त नही है, कारण कि वे मूल अरब केन्द्र, मिल्लत एव उसकी राजधानी हिजाज़ देश से जो अरब "असबियत" का स्रोत था, दूर पडे थे, किन्तु यह दूरी उनके लिए शुभ ही रही, कारण कि वे उन खतरो एव ध्वस के शिकार न बने जिसने बनी अब्बास को हडप लिया। जब चौथी शताब्दी[1] हि० के प्रारम्भ में अब्दुर्रहमान तृतीय अर्थात् अन्नासिर बिन मुहम्मद बिन अल अमीर अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान द्वितीय का राज्यकाल प्रारम्भ हुआ और अब्बासी खलीफाओ की बडी दुर्दशा हुई तथा यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि अजमवालो को उन लोगो पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया है और खलीफाओ में अदल-बदल भी हुई और हत्याकाड एव लूट-मार भी प्रारम्भ हो गयी तो अब्दुर्रहमान तृतीय ने भी पूर्व के खलीफाओ की भाँति 'अमीरुल मोमिनीन नासिर ले दीनिल्लाह' की उपाधि धारण कर ली। अब्दुर्रहमान के बाद फिर यह प्रथा चल पडी कि खलीफा लोग अमीरुल मोमिनीन के साथ अन्य विशेष उपाधियों का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार यह प्रथा उन्ही से चली। उनके पूर्वजो ने उसका प्र ोग कभी नही किया।

सक्षेप में अब्दुर्रहमान के उपरान्त उपाधियों का यह क्रम चल निकला। यहाँ तक कि अरबी "असबियत" समाप्त हो गयी और खिलाफत का नाम मिट गया। इधर अजम के दास बनी अब्बास पर, उवैदीईन के आश्रित काहिरा में उवैदीईन पर, सिन-हाजा इफरीकिया पर जनाता मगरिब पर और विभिन्न समूह उन्दुलुस में बनी उमय्या पर छा गये और राज्यो को परस्पर बाँट लिया। इस्लामी खिलाफत के छिन्न-

१. १० वीं शताब्दी ईसवी।

भिन्न हो जाने के कारण पश्चिम एव पूर्व में वादशाहों ने उपाधियो के सम्वन्ध में प्रचलित प्रथा को वदल दिया। सुल्तान के नाम से तो सभी प्रसिद्ध थे, किन्तु पूर्व में अजमी वादशाहो को कुछ विशेप उपाधियाँ अव्वासी खलीफाओ की ओर से प्रदान की जाने लगी जिनसे पता चलता है कि अजम के वादशाह खलीफाओ के वशवद एव आज्ञाकारी थे। उनकी सल्तनत खलीफाओ की दृष्टि में प्रशसनीय थी। उदाहरणार्थ, शरफूद्दौला, अज़दुद्दौला, रुक्नुद्दौला, मुईज्जुद्दौला, नसीरुद्दौला, निजामुल मुल्क, वहाउद्दौला, जखीरतुल मुल्क इत्यादि। यही हाल उवैदीईन का था कि वे भी सिनहाजा के अमीरो को विशेप उपाधियाँ प्रदान करते थे। फिर जव सिनहाजा ने खिलाफत पर पूर्ण अधिकार जमा लिया तो वे उन्ही उपाधियो से सन्तुप्ट हो गये और खिलाफत की उपाधियो से कोई सम्वन्ध न रखा। इस प्रकार उन्होने खिलाफत के प्रति सम्मान का व्यवहार प्रदर्शित किया और यह वता दिया कि खिलाफत की उपाधियाँ खिलाफत के साथ ही सीमित रहेंगी। इसमें किसी अन्य को साझीदार वनने का कोई अधिकार नही। हम यह पहले वता चुके है कि अपहरणकर्त्ताओ एव राज्यो पर ज़वरदस्ती अधिकार जमा लेनेवालो की यही प्रथा होती है।

पूर्व में अजमवालो ने जव स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिया और उनकी सल्तनत के कदम जम गये और दूसरी खिलाफत की "असवियत" का अन्त हो गया तो उन्होने विशेप उपाधियाँ धारण कर ली। उदाहरणार्थ, नासिर एव मसूर इत्यादि। पिछली उपाधियो में सावारण-सा परिवर्तन करके वे यह प्रकट करने लगे कि मानो उनकी गर्दनें खलीफाओ की वशवदता से पूरी तरह मुक्त हो चुकी है। उदाहरणार्थ, दौलत के स्थान पर दीन शब्द का प्रयोग करके, वे इस प्रकार प्रसिद्ध हुए, सलाहुद्दीन, असदुद्दीन, नूरुद्दीन इत्यादि। इधर उन्दुलुस में मुलूकुत्तवाएफ ने खिलाफत की उपाधियो को आपस में वाँट लिया, कारण कि उनका प्रभुत्व वहुत अधिक था और वे खिलाफत के श से सम्वन्धित थे। उन्होने नासिर, मसूर, मोतमिद, मुज़फ्फर इत्यादि उपाधियाँ धारण की। इब्ने शरफ ने उनकी निन्दा करते हुए लिखा है—

पद्य

उन्दुलुस के भू-भाग में मोतसिम एवं मोतजिद के नाम से मुझे लज्जित होने के लिए विवश होना पडता है।
अयोग्य लोगो ने शाही उपाधियाँ धारण कर ली है। उनका उदाहरण इस प्रकार है जैसे विल्ली फूल कर सिंह का रूप धारण करना चाहती हो।

सिनहाजा के अमीर उन्ही उपाधियों पर सतुष्ट रहे जो उन्हें उवैदीईन खलीफाओं की ओर से मिला करती थी। उदाहरणार्थ, नसीरुद्दौला, सैफुद्दौला मुईज्जुद्दौला इत्यादि। ये उपाधियाँ उन्हें उस समय दी गयी थी जब उन्होने अब्बासियो के प्रचार के मुकाबले में उवैदीईन का प्रचार प्रारम्भ किया। फिर वे खिलाफत से बड़ी दूर हो गये और उस युग को भूल गये तो इन उपाधियों के शब्द भी उनके मस्तिष्क से निकल गये और सुल्तान शब्द ही उनके नाम को शोभा देने लगा। यही हाल मगरिब में मगरावह सुल्तानो का हुआ कि उन्होने समस्त उपाधियाँ छोड़ कर सुल्तान की ही उपाधि को पसन्द किया, कारण कि उनकी "बदवियत" एवं सरलता यही चाहती थी।

जब मगरिब में खिलाफत के चिह्न मिट गये तो लमतूना हाकिम यूसुफ बिन ताशफीन मगरिब के वरबर कवीले में प्रकट हुआ और उसने समुद्र के दोनो ओर अधिकार जमा लिया। वह सदाचारी भी था और रूढिवादी भी। धर्म की आवश्यकताओ को पूरा करते हुए वह खलीफाओ की आज्ञाकारिता स्वीकार करना चाहता था। इस उद्देश्य की दृष्टि से उसने अब्दुल्लाह बिन अरबी और उसके पुत्र काजी अबू बक्र को जो अशवीलिया के मशायख मे से थे, एक शिष्ट-मडल के साथ मुसतजहिर बिल्लाह अब्बासी के पास बैअत की प्रथा की पूर्ति के लिए भेजा[1] और यह प्रार्थना करायी कि बगदाद का खलीफा उसको मगरिब का वाली नियुक्त कर दे। उक्त शिष्ट-मडल यह सुखद समाचार ले कर लौटा कि यूसुफ खिलाफत की ओर से मगरिब का नायब नियुक्त हो गया है और उसको अधिकार मिला है कि वह खिलाफत के विशेष चिह्न इत्यादि का प्रयोग करे। खलीफा की ओर से जो फरमान भेजा गया उसमें उसे अमीरुल मोमिनीन की उपाधि प्रदान की गयी। अत उसने अपनी यही उपाधि रख ली। यह भी कहा जाता है कि यूसुफ बिन ताशफीन को इस घटना के पूर्व भी 'मरावेतीन[2] अमीरुल मोमिनीन' ही कहा करते थे, किन्तु इसके बावजूद अब्बासी खलीफाओ

१. अबू बक्र तथा उसके पिता अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद ४८५ हि० (१०९२ ई०) में हज के लिए रवाना हुए और दो बार बगदाद गये। एक बार हज के पूर्व और एक बार हज के बाद। उन्होंने ४८९ हि० (१०९६ ई०) में हज किया। सम्भवतः इब्ने ताशफीन ने १०९७–९८ ई० में खलीफा अल मुसतजहिर १०९४–१११८ ई०) के पास राजदूत भेजे होंगे। यात्रा से लौटने के उपरान्त ४९३ हि० (१०९९ ई०) में अब्दुल्लाह की मृत्यु हो गयी।

२ अलमोराविद्स।

का वह पूरा आदर सम्मान अपने हृदय में रखते थे, कारण कि यूसुफ स्वय और उसकी क़ौमवाले अर्थात मरावेतीन भी अत्यन्त धर्मनिष्ठ थे, तथा सुन्नत का पालन करते थे।

इसके उपरान्त महदी[1] ने सत्य के प्रचार की पताका वुलन्द की और अशअरिया का समर्थक हो गया। उसने मगरिववालो को इस वात के लिए प्रेरित किया कि वे इस्लाम के प्रारम्भिक युग के मुसलमानो के पद-चिह्नो पर चलें और शरीअत की ज़ाहिरी वाते, उदाहरणार्थ तजमीम की (लाक्षणिक) व्याख्या इत्यादि की समस्याओ को त्याग दें जैसा कि अशाएरा का प्रसिद्ध मत है। उसके अनुयायी मुवह्हेदीन[2] के नाम से प्रसिद्ध है। फिर महदी को यह भी ज्ञात था कि हज़रत अली के समर्थक दोपाक्षम[3] इमाम के सिद्धान्त को मानते है और उनका मत है कि प्रत्येक युग में उसका मौजूद होना आवश्यक है ताकि ससार की व्यवस्था भग न हो। महदी भी इसी सिद्धान्त को मानने लगा और इमाम के नाम से प्रसिद्ध हुआ, कारण कि अभी उल्लेख हो चुका है कि शीआ अपने खलीफाओ को इमाम की उपाधि द्वारा ही सम्वोधित करते है, फिर इमाम के साथ मासूम के नाम की भी वृद्धि हो गयी। इस प्रकार इस धार्मिक विश्वास का प्रचार किया गया कि इमाम को मासूम होना चाहिए। उसने अमीरुल मोमिनीन की उपाधि की उपेक्षा की, कारण कि सर्वप्रथम शीओ का प्राचीन धार्मिक विश्वास यही है कि वे अपने खलीफाओ को इमाम के नाम से सम्वोधित करते हैं, दूसरे इसमें यह भी रहस्य था कि कही वे पूर्व के खलीफाओ की सतान के समान न वनने लगें। जव अब्दुल मोमिन[4] उसका उत्तराधिकारी हुआ तो उसने अमीरुल मोमिनीन की उपाधि धारण कर ली और उसकी सतान भी इसी उपाधि से प्रसिद्ध हुई। इसी प्रकार उनके वाद आले अवी हफस ने इसी उपाधि को पसन्द किया। इस भावना के वशीभूत होकर कि वे इस उपाधि के अन्य लोगो की अपेक्षा अधिक पात्र है क्यो कि उनका शेखुश शयूख महदी जो सल्तनत का अधिकारी था और उसके हाकिम जो स्वतन्त्र शासक थे, उनमें यही प्रचार किया करते थे। क़ुरैश की "असवियत" तो समाप्त हो चुकी थी, अत उनमे उनके पूर्वजो की उत्पन्न की हुई ये ही भावनाएँ मौजूद थी।

१ प्रथम फातेमी खलीफा (९०९ से ९३४ ई०) अल-महदी उवैदुल्लाह।
२. कट्टर एकेश्वरवादी।
३. मासूम, जो कोई अपराध कर ही न सके।
४. अब्दुल मोमिन विन अली, मुवहहिद वंश के राज्य का संस्थापक (जन्म १०९४ ई०, मृत्यु मई-जून ११६३ ई०)।

इसी प्रकार जब मगरिब की सल्तनत का जोर टूटा और जनाता ने उसपर अधिकार जमाया तो ये भी प्रारम्भ में सरलता एव "बदवियत" के आदी रहे और लम्तूना की भाँति अमीरुल मोमिनीन की उपाधि से पुकारे जाते रहे। किन्तु साथ ही साथ वे खिलाफत का सम्मान करते थे, कारण कि वे इसके आदी हो गये थे। पहले अब्दुल मोमिन के वश के अधीन रहकर और फिर बनी हफस के अधीन रहकर। इसके अतिरिक्त इनके पूर्वज भी इस उपाधि को पसन्द करते रहे यहाँ तक कि अब हमारे इस युग में भी सुल्तान लोग इसी उपाधि को पसन्द करते है और राज्य की उन्नति एवं हुकूमत की तरक्की का इसे एक चिह्न समझते है। "ईश्वर में अपने आदेशो का पालन कराने की शक्ति है।"

(३३) ईसाई धर्म में पापा एव बतरक[१] शब्द और यहूदी धर्म मे काहन[२] शब्द की व्याख्या[३]

(३४) बादशाहों एव सुल्तानो की श्रेणियाँ तथा उनकी उपाधियाँ

समझ लीजिए कि जहाँ तक बादशाह का अपने व्यक्तित्व से सम्बन्ध है, वह बड़ा ही शक्तिहीन एव कमज़ोर होता है। इस कमज़ोरी के बावजूद एक महत्त्वपूर्ण भार उसके कधो पर डाल दिया जाता है। अत. जब तक उसकी कौमवाले उसकी ओर सहायता का हाथ न बढ़ाये तो वह इस भारी बोझ एव महान् उत्तरदायित्व को किसी प्रकार उठा नही सकता। जब उसकी आवश्यकताओ का ही यह हाल है कि वह अपनी आर्थिक आवश्यकताओ के लिए अन्य लोगो पर निर्भर होता है तो फिर अपनी जातिवालो पर शासन करने में वह अन्य लोगो पर निर्भर क्यो न हो, जब कि इस सम्बन्ध में उसे महत्तर उत्तरदयित्व पूरा करना पडता है। उदाहरणार्थ, प्रजा की पूरी-पूरी देख-भाल, उसके शत्रुओं से उसकी रक्षा, न्याय-युक्त आदेश जारी करना, एक को दूसरे पर अत्याचार करने से रोकना, एक की धन-सम्पत्ति की दूसरे से रक्षा करना, सक्षेप में सबको शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करने योग्य बनाना, अथवा मानवीय जीवन से सम्बन्धि सभी आर्थिक समस्याओ की देख-भाल यानी सामानो के लेन-देन में नाप-तोल की जाँच ताकि कोई कम न तोलने पाये अथवा प्रचलित सिक्के की परख ताकि

१ Pope एवं Patriarch
२ Kohen
३ इस अंश का अनुवाद नहीं किया गया।

कोई खोटा अथवा जाली सिक्का न चला दे, दड एव सज़ाओं पर नियत्रण ताकि सव लोग उसके आज्ञाकारी एव उससे भयभीत रहें, सव उसकी इच्छा के दास हो और उसके आदेशो का पालन करते रहें इन सव वातो की देख-भाल उसे करनी पडती है। सम्मान एव श्रेष्ठता का भी वही अकेला स्वामी होता है। सक्षेप में वादशाह को सवके हृदय पर अविकार करने का जो भारी वोझ उठाना पड़ता है, उसका अनुमान करना कठिन है। इसी कारण कुछ दार्शनिको ने कहा है कि, "पर्वतो को अपने स्थान से हटा देना सवके हृदय को अधिकार में कर लेने से सरल है।" फिर यदि एक कुल के सम्वन्धी अथवा प्राचीन आश्रित सहायता हेतु तैयार हो जायें तो उनकी सहायता पूर्णत. प्राप्त होगी, कारण कि ऐसी दशा में वादशाह एव सहायको के चरित्र एक ही प्रकार के होगे और पारस्परिक सहायता का उद्देश्य पूरा हो जायगा तथा उससे पूरा लाभ होगा। इस प्रकार कुरान में हज़रत मूसा के इन शव्दों का उल्लेख है, "हे अल्लाह ! मेरे घर में मेरे भाई को मेरा वज़ीर वना। उससे मेरी नवूवत को दृढ कर और उसे मेरे कार्य में मेरा सहायक वना दे।"

वादशाह को सर्वदा एक ही प्रकार की सहायता की आवश्यकता नही होती। कभी वह तलवार की सहायता चाहता है, कभी कलम की, कभी परामर्श की, कभी हाजिवो एव दरवानो को नियुक्त करके वह काम चलाता है ताकि लोग भीड़ न लगा लें और वह उनके मामलो पर ठढे दिल से शान्तिपूर्वक सोच विचार कर सके। उसे ऐसे लोगो की भी आवश्यकता होती है जो समस्त राज्य की देख-भाल कर सकें और वादशाह का उन पर पूर्ण विश्वास भी हो। कभी ऐसा होता है कि एक ही मनुष्य कई प्रकार की सहायता हेतु पर्याप्त होता है। कभी विभिन्न लोगो द्वारा ये सहायताएँ प्राप्त होती हैं। फिर एक प्रकार की सहायता भी विभिन्न किस्मो में विभाजित हो जाती है। उदाहरणार्थ, "अहले कलम[1]" के विभाग कई भागो में विभाजित होते हैं, उदाहरणार्थ पत्र-व्यवहार करनेवाले, फरमान एव दस्तावेज़ लिखनेवाले, हिसाव-किताव करनेवाले अर्थात राजस्व वेतन के भुगतान तथा अन्य व्यय की देख-रेख करने वाले। "अहले सैफ[2]" का विभाग भी विभिन्न भागो में विभाजित होता है। उदाहरणार्थ, सेनापति, गुर्ता का मुख्य अधिकारी, डाक का मुख्य अविकारी एवं सीमात की रक्षा करनेवालो का अविकारी।

१ लिखने-पढनेवाले।

२ तलवार चलानेवाले, सैनिक।

फिर यह वात भी भली-भाँति समझ लेनी चाहिए कि इस्लाम में शाही पद एवं ओहदे खिलाफत के अधीन रहते है, कारण कि खिलाफत धार्मिक तथा सासारिक दोनो हितो की देख-भाल की ज़िम्मेदार है। इसी कारण इस्लाम में ऐसे आदेश एवं अधिनियम भी मिलेगे जो सल्तनत से सम्बन्ध रखते है, और वे भी जो खिलाफत के विषय में उपयोगी आदेश प्रदान करते है। सक्षेप मे दोनो के विपय में सविस्तर उल्लेख एव पथ-प्रदर्शन उनसे मिलता है। इसका कारण यह है कि शरीअत वास्तव में मानव-कर्म एव आचरण का ऐसा पूर्ण विधान है जिससे मनुष्य के प्रत्येक सासारिक एव धार्मिक कर्त्तव्यो का पथ-प्रदर्शन होता है। इस प्रकार फकीह का यह पूर्ण उत्तर-दायित्व है कि राज्य एव सुल्तान के सम्मान की देख-भाल करे और उन शर्तो की भी जाँच पडताल करे, जिनके अधीन वह राज्य सिंहासन पर आरूढ होकर सुल्तान कहलाये जाने का पात्र बनता है और वह शर्ते भी उसकी दृष्टि के समक्ष रहें, जिनकी पृष्ठ-भूमि में उसका सहायक, उसका नायव यानी जन-साधारण की भाषा में 'वजीर' वन सके।

सक्षेप में फकीह का यह कर्त्तव्य है कि वह समस्त दीवानी[1] एव फौजदारी के मामलो तथा अन्य राजनीतिक समस्याओ पर, चाहे उन पर कोई प्रतिवन्ध हो अथवा न हो, अपनी कडी दृष्टि रखे। नियुक्ति एव पदच्युत करने के कारणो की भी देख-भाल रखे, अपितु राज्य एव सल्तनत के किसी भी मामले को अपने नियत्रण के वाहर न होने दे। इसी प्रकार सल्तनत के ये पद, उदाहरणार्थ विजारत एव खराज तथा शासन-प्रवध के अन्य विभागो की देख-भाल रखे और अपने मतानुसार उनका सचालन करे। इन सवका यह कारण है कि इस्लाम मे शरई खिलाफत के समस्त आदेश मुल्क मे प्रचलित होना परमावश्यक है। हमारी इस पुस्तक का यह उद्देश्य नही कि हम राज्य एव सल्तनत सम्वन्धी शरई आदेशो का सविस्तर वर्णन करें और उनकी व्याख्या यहाँ करें। हमारा उद्देश्य केवल इतना ही है कि हम उस राज्य एव सल्तनत के पदो का, जो मानवसमाज के लिए आवश्यक है और जिनकी मानव-आत्मा को जरूरत है, उल्लेख करें और यह वतायें कि उनको क्या सम्मान प्राप्त है। हमारा यह उद्देश्य नही कि हम उनसे सम्वन्धित शरई आदेशो का उल्लेख करें कारण कि ये आदेश वडे विस्तृत रूप से "एहकामे सुल्तानिया" के ग्रथो, उदाहरणार्थ काज़ी अवुल हसन अल मावर्दी के ग्रथ अथवा अन्य वडे-वडे फकीहो की रचनाओ में लिखे

१ धन-संवंधी (राजस्व, वित्त) मामले।

है। यदि आप इन आदेशो के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहते है तो उन ग्रथो का अध्ययन करें। उनसे आपको इस प्रकार की पर्याप्त सूचना मिल जायगी।

हमने खिलाफत के पदो का पृथक् उल्लेख इस कारण किया है कि सुल्तानी एव खिलाफत के पदो का अन्तर पूर्ण रूप से स्पष्ट हो सके। इसका यह उद्देश्य नही कि साथ-साथ शरा सम्वन्धी आदेशो का उल्लेख एव उनके विषय में शोध कार्य किया जाय, कारण कि ये वातें इस ग्रथ के विषय से सम्वन्धित नही। हम तो सभ्यता की विशेषता एव मानव-अस्तित्व की आवश्यकताओ को सामने रखकर राज्य एव सल्तनत का उल्लेख करना चाहते हैं।

विजारत

यह पद समस्त सुल्तानी एव वादशाही पदो की जड तथा आधार है। इसका नाम ही इसके महत्त्व को प्रदर्शित करता है, कारण कि विज़ारत शव्द या तो "मुआज़िरत" से निकला है जिसका अर्थ सहायता है, अथवा "विज्र" से निकला है जिसका अर्थ भार है। मानो इस शव्द से यह सकेत होता है कि सल्तनत का वज़ीर वह महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी है जो सल्तनत का पूरा भार अपने कन्धो पर रखता है और सभी अधीनस्थ पदाधिकारियो को किसी न किसी प्रकार की सहायता प्रदान करता है। हम प्रथम खड में इस तथ्य की ओर सकेत कर चुके है कि सल्तनत की स्थिति एव राज्यव्यवस्था चार वातो में सीमित है। (१) या तो यह व्यवस्था उन समस्याओ से सम्वन्धित होगी जिनसे मानवसमाज की रक्षा की जा सकती है और उसके लिए साधन उपलव्ध हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, सैनिक व्यवस्था, अस्त्र-शस्त्र की देख-भाल, युद्ध की व्यवस्था एव प्रवध अथवा प्रतिरक्षा सम्बन्धी अन्य समस्याओ का समाधान। जो व्यक्ति इन सव वातो की देख-भाल के लिए वादशाह की ओर से नियुक्त हो, उसको पूर्व की प्राचीन सल्तनतो में साधारणत वज़ीर कहा जाता था, अपितु मगरिव में अव भी इस अधिकारी को वजीर ही कहते हैं।

(२) कभी-कभी ये प्रवध पत्र-व्यवहार से सम्वन्धित होते है जो वाहर के शासको एव पदाधिकारियो के साथ किया जाता है और इसके विषय में लिखित आदेश दिये जाते है। इस प्रकार का कार्य करने का उत्तरदायित्व साधारणत कातिव[1] पर होता था। 'कातिव' सल्तनत का दूसरा पदाधिकारी होता था। (३) तीसरे पद के

१ सचिव।

अधीन ख़राज की वसूली एवं व्यय की व्यवस्था की जाती है। इस पद का अधिकारी उसकी पूरी देख-भाल करता है। इस पद के अधिकारी को राजस्व का अधीक्षक 'साहिबुल माल' कहते हैं। पूर्व के देशो में वह वज़ीर कहलाता है।

(४) चौथे पदाधिकारी का कर्त्तव्य यह है कि प्रार्थियो द्वारा बादशाह के पास भीड़ लगाकर उसे घिरने न दे, ताकि वह शान्तिपूर्वक अपना कार्य कर सके। यह पदाधिकारी 'हाजिब' कहलाता है।

इस प्रकार राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी यही चार पद हैं जो अन्य पदो की अपेक्षा सर्वोच्च हैं। इन चार में भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वही पद है जिसके अधीन बादशाह के सभी पदाधिकारी हैं, कारण कि इस पद का सँभालनेवाला बादशाह का मित्र एव विश्वासपात्र होता है। शासन-व्यवस्था सम्बन्धी समस्त बातो में वह बादशाह का साथ देता रहता है। फिर इन साधारण पदो के अधीन भी छोटे-छोटे विशेष पद होते है, जो विशेष लोगो से सम्बन्धित होते है अथवा विशेष शासन सबधी समस्याएँ उनसे सम्बन्धित होती हैं। उदाहरणार्थ, किसी विशेष दिशा का मुख्य प्रबधक, किसी विशेष खराज के आय-व्यय का मुख्य अधिकारी, खाने-पीने की व्यवस्था का मुख्य निरीक्षक, टकसाल एव सिक्कों का निरीक्षक इत्यादि। अत इन विशेष उत्तरदायित्वो से सम्बन्धित अधिकारी उस बडे पदाधिकारी के अधीन समझे जाते है जिसकी देख-रेख में ये सब छोटे पद होते है।

इस्लाम के पूर्व राज्यो में शासनप्रबध का सचालन इसी प्रकार होता था। इस्लाम के अभ्युदय एव ख़िलाफत के राज्य का स्थान ले लेने के कारण ये सब पद भी समाप्त हो गये। राज्य-व्यवस्था के चलाने के लिए विचार-विमर्श का प्रयोग होने लगा। यह बात स्वाभाविक एव परमावश्यक थी। मुहम्मद साहब समस्त सहाबियो के साथ बैठकर राज्य की विशेष एव साधारण समस्याओ पर विचार-विनिमय करते और सहाबा से परामर्श करते थे। इसके अतिरिक्त हजरत अबू बक्र से कुछ विशेष समस्याओं पर भी परामर्श लेते थे। इस प्रकार वे अरब, जो किसरा, कैसर एव नजाशी के राज्यो से परिचित थे, वे अबू बक्र को मुहम्मद साहब का वज़ीर कहा करते थे, यद्यपि इस्लाम की सरलता बादशाहत के वैभव एव गौरव पर छा गयी थी और वजीर शब्द का मुसलमानो को कोई ज्ञान ही न रहा था। यही संबध हज़रत उमर का हज़रत अबू बक्र के साथ, हजरत अली का हजरत अमर के साथ तथा हज़रत उस्मान का हज़रत अली के साथ था।

जहाँ तक खराज की प्राप्ति एव व्यय अथवा हिसाब-किताब के कार्यालय का

सबध है, ये नियमित एव सुव्यवस्थित दशा में न थे, कारण कि अरब निरक्षर थे, लिखना-पढना तथा हिसाब-किताब न जानते थे। इसी कारण वे हिसाबी मामलो पर लिखे-पढे व्यक्ति ही नियुक्त करते थे। ऐसा उत्तरदायित्व वे अजमी दासो को, जो उस समय थोडी सख्या में थे, सौप देते थे। रहे सम्मानित अरब लोग, तो वे इन कार्यों से अत्यधिक दूर थे, कारण कि वे निरक्षर थे। पत्र-व्यवहार का भी उनके यहाँ कोई विशेष विभाग न था, न शाही फरमानो का कोई कार्यालय था। इसका भी यही कारण था कि वे लिखना-पढना न जानते थे। वे ईमानदार थे और लोगो की गोपनीय बातो को गुप्त रखते थे। कारण कि खिलाफत राजनीति के वेष में न थी, अपितु धार्मिक रूप धारण किये हुए थी। बनावट को कोई महत्त्व न प्राप्त था, अत खलीफा को किसी व्यवस्था की आवश्यकता न थी। उनमें से अधिकांश लोग अपने विचारो को सुन्दर से सुन्दर वाक्यो में व्यक्त कर सकते थे। जब लिखने की आवश्यकता पडती तो खलीफा जिसमें यह योग्यता देखता उसके जिम्मे यह उत्तरदायित्व सौप देता था। जहाँ तक हाजिब के पद का सबध है, इस्लामी शरीअत में लोगो पर इस प्रकार का प्रतिबध लगाना निषिद्ध था, अत यह पदाधिकारी होता ही क्यो ?

खिलाफत की स्थापना के समय यह रूपरेखा थी, किन्तु जब खिलाफत सल्तनत में परिवर्तित हुई और शाही उपाधियाँ एव प्रथाएँ देश में प्रचलित हुई, तब सर्वप्रथम हाजिब की समस्या पर विचार किया गया और लोगो के आने-जाने पर प्रतिबध लगाया गया, कारण कि उस समय बादशाह विद्रोहियो से अत्यधिक आतंकित थे। उन्हें भय रहता था कि कोई अचानक उनकी हत्या न कर दे। हज़रत उमर, अली, मुआविया, अमर बिन आस एव अन्य सहाबियो के उदाहरण उनके सामने थे। फिर वे क्यो न सावधानी से कार्य करते। इसके अतिरिक्त यह नीति भी थी कि यदि राजप्रासाद के द्वार प्रत्येक साधारण तथा विशेष व्यक्ति के लिए खुल जायँगे तो लोग बादशाह के पास भीड लगा लेंगे और हर समय भीड़ लगाये रखेंगे। बादशाह को राज्य-व्यवस्था की समस्याओ पर सोच-विचार करने का अवसर न देंगे। इन कठिनाइयो के कारण सुल्तानो ने राजप्रासाद के लिए हाजिब नियुक्त कर दिये। कहा जाता है कि अब्दुल मलिक ने जब अपना हाजिब नियुक्त किया तो तीन व्यक्तियो को छोडकर उसे प्रत्येक खास व आम को रोक लेने का अधिकार दिया। एक अजान देनेवाले को, कारण कि वह अल्लाह की ओर बुलाता है, दूसरे पत्रवाहक को, कारण कि डाक को भी बडा महत्त्व प्राप्त है, तीसरे भोजन लानेवाले को, कारण कि विलम्ब के कारण भोजन नष्ट हो जाता है।

फिर जब सल्तनत के गौरव में अधिक वृद्धि हुई तो ऐसे व्यक्ति की अत्यधिक आव-

श्यकता पडी, जिसकी सहायता एव परामर्श से कवीलो एव "असबियतो" की समस्याओं का समाधान किया जाय तथा उन्हें प्रसन्न रखा जाय। इस प्रकार के व्यक्ति का नाम वजीर रखा गया। रहा लिखने-पढने तथा हिसाव-किताव का कार्य, यह दासों एव जिम्मियो[1] के हाथ में ही रहा। एक विशेप व्यक्ति ऐसा छाँटा गया जो आदेशो एव आवश्यक कागज़ो की लिखाई-पढाई करे और वह राज्य की उन गोपनीय वातो एव रहस्यो की रक्षा करे जिनके खुल जाने से राजनीति अस्त-व्यस्त हो जाती है। उसकी श्रेणी वजीर से कम होती है,कारण कि लिपिक अथवा मुशी की आवश्यकता पत्र-व्यवहार के लिए होती है, न कि विचार-विमर्श के लिए। प्रत्येक व्यक्ति वाक्पटु एव वाग्मी होता था। इसी गुण के कारण वज़ीर का भी वडा आदर-सम्मान होता था। सक्षेप में उमय्या-राज्यकाल में विज़ारत का पद सबसे ऊँचा समझा जाता था। वज़ीर सब पर शासन करता था। वह राज्य की समस्त समस्याओ के समाधान में उचित उपाय सोचता था। प्रतिरक्षा, देखभाल एव सर्वसाधारण को जो धन अदा करना होता था, उस पर गौर करता था। सेना विभाग पर नियत्रण रखता तथा दान-पुण्य एव वृत्तियो के लिए उचित आदमियो का चुनाव करता था। अन्य बहुत-से उत्तरदायित्व भी वह सँभालता था।

जव अब्बासियो का राज्य प्रारम्भ हुआ और सल्तनत का गौरव एव ऐश्वर्य वढ़ा तो वजीर के अधिकारो में भी वृद्धि हुई। उसका महत्त्व भी अधिक हो गया और राज्य-व्यवस्था में वह वादशाह के अधिकारो का नायब समझा जाने लगा। फिर तो हर छोटे-वडे की गर्दन उसके समक्ष झुकने लगी और प्रत्येक व्यक्ति उस पर अवलम्वित एव निर्भर हो गया। दीवानी विभाग सीधे उसकी देख-रेख मे आ गया, कारण कि सेना को जो कुछ प्रदान किया जाता वह उसी के द्वारा दिया जाता था, अत यह विभाग उसी के अधीन रहा। इसी प्रकार पत्र-व्यवहार एव डाक विभाग भी वज़ीर के नियत्रण में दे दिया गया। इसका उद्देश्य यह था कि राज्य के रहस्यो एव अन्य गोपनीय वातो की लोगो को सूचना न होने पाये और रचना-शैली की सुन्दरता में भी कोई दोष न आने पाये, कारण कि उस समय सर्वसाधारण की भाषा विगडने लगी थी। वादशाही फरमानो के लिए एक मुहर तैयार की गयी और वह भी वजीर को सौंप दी गयी ताकि कोई उसका

१. मुसलमान शासकों के अधीन अन्य धर्म के लोग, जिनकी रक्षा का उत्तरदायित्व जिज़िया अदा करने के कारण मुसलमान शासकों पर होता था। इस्लाम के प्रारम्भिक युग में यहूदी तथा ईसाई ही ज़िम्मी कहलाते थे।

दुरुपयोग न कर सके। सक्षेप में वज़ीर राज्य में तलवार एवं कलम सम्बन्धी पदो का स्वामी हो गया और सभी विभाग उसके अधीन हो गये। यहाँ तक कि हारूनुर्रशीद के युग में लोग जाफर बिन यहया को उसके असीमित अधिकारो एवं सल्तनत पर पूर्ण प्रभुत्व के कारण सुल्तान कहा करते थे। शाही पदो में यदि कोई पद वज़ीर के अधिकारो के बाहर था तो वह हाजिबो का पद था। इसका यह कारण न था कि यह पद वज़ीर के अधीन न हो सका, अपितु वज़ीरो ने स्वय ही इस पद को अपने लिए उचित न समझा और इसे अपनी शान से कम समझा।

इसके उपरान्त अब्बासी राज्य का वह युग प्रारम्भ हुआ जब बनी अब्बास वज़ीर लगभग स्वाधीन हो गये। कभी वे अपने बादशाहो पर अधिकार जमाकर राजसिंहासन पर आरूढ हो जाते और कभी उनके बादशाह उन्हें दबा लेते और राजसिंहासन पर अधिकार जमाये रहते। वज़ीर निरकुश अधिकारो का स्वामी होने पर भी खलीफा पर इस बात के लिए निर्भर रहता था कि खलीफा उसे अपना नायब नियुक्त करे, ताकि उसके अधीन शरई आदेश प्रथानुसार चलते रहें। इस प्रकार उस समय विज़ारत दो प्रकार की थी। एक "विज़ारते तनफीज़े[1] एहकाम", जब कि बादशाह के अधिकार उसके हाथ में रहते थे। दूसरी "विजारते तफवीज़"[2], जब कि वज़ीर बादशाह को अपने अधीन करके स्वतत्र राज्य स्थापित कर लेता था और बादशाह विवश हो जाता था। जिस प्रकार दो इमामो की नियुक्ति पर मतभेद है, उसी कारण इस बात पर भी मतभेद पाया जाता है कि दो वज़ीर भी नियुक्त किये जा सकते हैं अथवा नही। बादशाहो एव वजीरो में यह सघर्ष चलता रहा, यहाँ तक कि अजम के बादशाहो ने राज्य पर अधिकार जमा लिया और खिलाफत के चिह्न मिट गये। अब इन अपहरणकर्ता अजमी बादशाहो ने खिलाफत की उपाधियो का प्रयोग भी अपने लिए उचित न समझा और वजीरो की उपाधियाँ ग्रहण करना भी अपने अनुकूल न पाया, अत वे अमीर अथवा सुल्तान कहलाये जाने लगे। उनमें जो पूर्ण रूप से स्वाधीन होता वह या तो "अमीरुल उमरा" की उपाधि द्वारा अथवा "सुल्तान" के नाम से सुशोभित होता था। इसके साथ-साथ खलीफा की ओर से भी जो उपाधि उसे प्रदान होती उसका भी वह प्रयोग करता था, इसका प्रमाण उनकी उपाधियो द्वारा मिल जाता है। वज़ीर का नाम उन्होने शक्तिहीन खलीफाओ के वज़ीरो के लिए सीमित

१ अधिशासी विज़ारत या मन्त्रित्व।
२. प्रदत्त विज़ारत या मन्त्रित्व।

कर दिया था। शासन के अन्त तक उनकी यही दशा रही, किन्तु इस बीच में अरबी भापा विगड़ गयी और केवल एक कला रूप में ही सीमित हो गयी। इसके अभ्यास के लिए कुछ लोग विशिष्ट रूप से पृथक् हो गये। भाषा का सम्मान गिर गया। वज़ीरो ने भी उसे सीखना अपनी शान के अनुकूल न समझा। इसके अतिरिक्त वे अजमी थे। भाषा में अधिक योग्यता की आवश्यकता न रही। इस प्रकार प्रत्येक वर्ग के लोग लिखने-पढने एव पत्र-व्यवहार के कार्य हेतु चुने जाने लगे। अरवी भाषा वजीरो की सेविका बन गयी।

उधर अमीर का नाम सेनापति के लिए सीमित हो गया। कहने को तो वह सेनापति होता, किन्तु उसका अधिकार सल्तनत के सभी पदो पर छाया रहता था और सव पर उसका फरमान चलता था, कभी नायव के रूप में और कभी स्वतत्र रूप में। कुछ समय तक शासनप्रवध इसी प्रकार चलता रहा। अन्त में जाकर मिस्र में तुर्क सिंहासनारूढ हुए। उन्होने देखा कि वजीर एक साधारण एव निम्न प्रकार का प्राणी है और अधिकार-हीन खलीफाओं के कार्य को सँभालना ही उसकी विशेषता समझी जाती है। ऐसा वज़ीर अमीर का आज्ञाकारी होता है। इस कारण विज़ारत का महत्त्व उनकी दृष्टि से गिर गया। इसमें उन्हें आज्ञाकारिता एव अधीनता के अवगुण दृष्टिगत हुए, अतः विजारत के काम को उन्होने अपनी शान के विरुद्ध समझा और उससे असतुष्ट रहने लगे। इस युग में वह व्यक्ति, जिसके आदेशो का सभी पालन करते हो और सेना भी जिसके अधीन रहती है, "नायव" के नाम से प्रसिद्ध होता है, न कि अमीर के या वज़ीर के नाम से। केवल हाजिव शब्द का प्रयोग अपने मूल-अर्थ के अनुसार होता रहा। वज़ीर का नाम केवल उस व्यक्ति के लिए सीमित रहा जिसके हाथ में खराज की व्यवस्था थी।

उन्दुलुस में वनी उमय्या अपनी सल्तनत के प्रारम्भ में ही वजीर के पद को उसके मूल अर्थ में समझते रहे, तदुपरान्त उन्होने उस पद को कुछ भागो में विभाजित कर दिया। इनमें से प्रत्येक पदाधिकारी को वजीर कहते थे, उदाहरणार्थ वित्त विभाग का वज़ीर, पत्र-व्यवहार का वज़ीर, पीडितो की देख-भाल का वज़ीर एव सीमात की देख-भाल का वजीर। इन वजीरो के लिए एक विशेष कार्यालय तैयार कराया गया। वहाँ वे कालीनो पर वैठकर शाही आदेश निकाला करते और अपने-अपने कर्त्तव्यो का पालन करते रहते थे। फिर एक व्यक्ति ऐसा नियुक्त हुआ जो खलीफा तथा वज़ीरो में मध्यस्थ का कार्य करता था। उसे समस्त वजीरो की अपेक्षा उच्च श्रेणी का समझा जाता था, कारण कि वह हर समय सुल्तान के साथ रहता था। अन्य वज़ीरों की अपेक्षा वह ऊँचे स्थान पर वैठता, उसे हाजिव की उपाधि द्वारा सम्वोधित किया

जाता था। वनी उमय्या के अन्तिम काल तक राज्य-व्यवस्था इसी प्रकार चलती रही। इस व्यवस्था के अनुसार हाजिव समस्त पदाधिकारियो की अपेक्षा उच्च श्रेणी का व्यक्ति होता था। उसके वाद जव मुलूकुत्तवाएफ का युग आया तो उन्होंने भी इस उपाधि को प्रशसनीय दृष्टि से देखा और स्वय भी यही उपाधि ग्रहण कर ली। इसी कारण मुलूकुत्तवाएफ हाजिव की उपाधि द्वारा ही प्रसिद्ध हुए।

वनी उमय्या की सल्तनत के उपरान्त शीई सल्तनत[1] ने इफरीकिया एव कैरवान में उसका स्थान लिया। यह शीआ सरलता एव "वदवियत" के रग में रगे हुए थे, अत उन्होने प्रारम्भ में इन पदो का अन्तर समझने के विषय में उपेक्षा की और उनके नामो के चुनाव पर ध्यान न दिया। जव यह राज्य नगर की सस्कृति का आदी हुआ तो ये लोग भी उपाधियो के चुनने में (वनी उमय्या एव वनी अब्बास का) अनुकरण करने लगे। इस वात का पता उनके इतिहास से चलता है। जव उनका राज्य-काल समाप्त हुआ और मुवह्हेदीन के राज्य का अभ्युदय हुआ, तव उन्होने भी वद-वियत के कारण पदो की छान-वीन तथा नामो के चुनाव पर ध्यान न दिया। कुछ समय पश्चात् उन्दुलुस के (उमय्या वश) का राज्य-व्यवस्था की समस्त समस्याओ में अनुकरण होने लगा। वजीर की उपाधि का उसके मूल अर्थ में प्रयोग होने लगा। उन्होने वज़ीर की उपाधि उस व्यक्ति के लिए रखी जो सुल्तान के दरवार में हाजिव का भी कार्य करे और शिष्ट-मडलो एव अन्य उपस्थित गणो को उचित स्थान पर वैठाकर अभिवादन एव सम्वोधन के निर्धारित नियम वतायें। इस प्रकार उन्होने हिजावत के पद को अत्यधिक महत्त्व दे दिया और उसके उत्तरदायित्त्व के क्षेत्र को वहुत वढा चढा दिया। अव भी उनकी सल्तनत में विज़ारत का शब्द इन्ही अधिकारो को व्यक्त करता है।

पूर्व में तुर्क सुल्तानो के यहाँ ऐसे व्यक्ति को, जो लोगो को शाही दरवार में अभिवादन के नियम वतलाये और शिष्ट मडलो को उचित स्थानो पर वैठाये, उसे "दवादार" कहते हैं। वह कातिवुस्सिर[2] तथा डाक विभाग के अधिकारियो की भी, जो वादशाह की निकट एव दूर की आवश्यकताएँ पूरी करते हैं, देख-रेख करता है। इस प्रकार उनमें अव तक यही प्रथा चली आ रही है।

१. फातिमी (उवैदीईन)।
२ वैयक्तिक सचिव।

हिजाबत

हम यह पहले बता चुके हैं कि उमय्या एव अब्बासी राज्यकाल में इस उपाधि [क]ा प्रयोग उस व्यक्ति के लिए होता था जो सुल्तान एव सर्वसाधारण के मध्य में [ह]िजावत का काम करता था। वह आवश्यकतानुसार जिसके लिए जिस समय [च]ाहता, राजप्रासाद के द्वार खुलवाता अथवा बन्द करवाता था। शाही दरबार [म]ें प्रवेश की अनुमति दे या न दे, किन्तु वह अन्य पदाधिकारियो के अधीन होता [थ]ा। इस प्रकार वजीर ही जैसा उचित समझता हस्तक्षेप करता रहता था। बनी [अ]ब्बास के राज्यकाल में तो यही प्रथा प्रचलित रही। मिस्र में हाजिब का पद नायब [क]े सर्वोच्च पद के अधीन है।

उन्दुलुस के बनी उमय्या के राज्यकाल में हाजिब की उपाधि उसे प्रदान की [ज]ाती थी जो सर्वसाधारण एव विशेष व्यक्तियो को बादशाह से भेंट कराता था [त]था बादशाह एव वजीरो तथा अन्य अधिकारियो के बीच में भी मध्यस्थ बनता था। [इ]स प्रकार उनके राज्यकाल में उसे वडा सम्मान प्राप्त था। इसका पता उनके [इ]तिहास से चल जायगा। इब्ने हुदैर[1] इत्यादि उमय्या वश के राज्य में हाजिब के [प]द पर ही आरूढ रहे।

फिर जब बनी उमय्या के राज्य का पतन हुआ तथा अन्य लोगो ने स्वतंत्र राज्य [स]्थापित कर लिये तो वे भी हाजिब कहलाये, कारण कि उन्दुलुस में इस उपाधि को विशेष सम्मान प्राप्त था, फलत. मसूर बिन अबी आमिर तथा उसकी सतान के लिए हाजिव की उपाधि विशेष सम्मान का कारण बनी। अन्त में जब उनका युग [भ]ी समाप्त हुआ और मुलूकुत्तवाएफ शक्तिशाली बने तो उन्होने भी इस उपाधि [क]ो नही त्यागा और इसे वे अपने सम्मान एव अपनी श्रेष्ठता का द्योतक समझते [र]हे। उन बादशाहो में जो व्यक्ति अपने ऐश्वर्य एव गौरव की चरम सीमा पर [प]हुँच जाता था वह अन्य उपाधियो एव शाही नामो के साथ "हाजिब" व "जूल विजारतैन"[2] नामक उपाधियो का प्रयोग अपने सम्मान के लिए अवश्य करता था। [ह]ाजिब की उपाधि से उसके उस उत्तरदायित्व का सकेत होता था जो सुल्तान तथा विशेष एव साधारण व्यक्तियो के मध्य रक्षक एवं राज्य के कर्त्तव्य को पूरा करता है

१ अबुल असबग़ बिन मुहम्मद (मृत्यु ३२० हि० । ९३२ ई०)।
२ दो विजारतों का स्वामी, अर्थात् कलम एवं तलवार की विजारतों का।

और "जुल विज़ारतैन" नामक उपाधि का यह उद्देश्य था कि वह तलवार तथा कलम दोनो विभागो का स्वामी है।

इन वादशाहो के उपरान्त इफरीकिया एव मगरिव की सल्तनतो में हाजिव की उपाधि त्याग दी गयी, कारण कि उनके स्वभाव में "वदवियत" पायी जाती थी। वे सीवे-सादे लोग थे। पदो एव श्रेणियो के भेद-भाव तथा नामो एव उपाधियो के आविष्कार में उन्हें कोई रुचि न थी।

मिस्र में उवैदीईन के राज्यकाल में हाजिव के पद का केवल कही-कही ही पता चलता है और वह भी वडे कम समय के लिए। उवैदीईन के वाद मुवह्हेदीन के राज्यकाल में भी सस्कृति एव नगर के जीवन को उन्नति न प्राप्त होने के कारण पदो के पारस्परिक भेद-भाव एव उनके नाम रखने में अधिक नवीनता एव आविष्कार का प्रदर्शन नही किया गया। उनके यहाँ केवल एक वज़ीर का पद था और कातिव[1] को ही वज़ीर के नाम से सम्वोधित करते थे। वह वादशाह को विशेष समस्याओ के सम्बन्ध में परामर्श दिया करता था। इब्ने अतीया एव अब्दुस्सलाम कूमी को यही अधिकार प्राप्त थे। यही कातिव हिसाव एव दीवानी विभाग की जाँच करता था। फिर इसके उपरान्त वज़ीर की उपाधि शाही वश के लोगो के लिए विशेप रूप से प्रयोग में आने लगी, जैसे इब्ने जामे इत्यादि के लिए, किन्तु "हाजिव" की उपाधि का उनके राज्यकाल में प्रयोग न होता था।

इफरीकिया में वनू अवी हफस के राज्य के प्रारम्भिक समय में उच्चतम अधिकार एव परामर्श का हक वज़ीर को प्राप्त था। उसे ये लोग मुवह्हेदीन का शेख़ कहते थे। नियुक्ति एव पदच्युत करने के अधिकार उसी के हाथ में थे। सेना के लिए सेनापति चुनने का अधिकार तथा युद्ध की व्यवस्था उसी के सुपुर्द थी। हिसाव-किताव एव दीवानी के विषयो के लिए एक पृथक् स्थायी पद था, जिसका सर्वोच्चाधिकारी "साहिव-अल-अशगाल"[2] कहलाता था। आय-व्यय का नियत्रण, हिसाव-किताव की जाँच, शेप राजस्व की वसूली और लोगो के दुराचार पर दड देना उसी के अधीन था, किन्तु उसके लिए मुवह्हेदीन के कुल से सम्वधित होना आवश्यक था। किसी अन्य को यह पद नही प्राप्त होता था। कलम के पद भी मुवह्हेदीन पृथक रखते थे। यह पद उसे प्रदान होता था जो रचना-शैली में दक्ष होता था और राज्य

१ सचिव।
२. वित्त संबंधी मामलों की देख-रेख करनेवाला।

के रहस्यो को गुप्त रखने एव ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध होता था। कारण कि किताबत में मुवह्हेदीन को कोई विशेष योग्यता न प्राप्त थी और पत्र-व्यवहार भी उनकी भाषा में नही होते थे। इसी कारण उन्होने इसमें से वश की शर्त पृथक् कर दी। जब उनकी सल्तनत के प्रभुत्व का क्षेत्र बढा और सल्तनत के पदाधिकारियो की सख्या में वृद्धि हुई तो बादशाह को ऐसे विशेष पदाधिकारियो की आवश्यकता होती थी जो खास तौर पर से उसके महल की देख-रेख कर सकें। राज-प्रासाद के प्रबध को भली-भाँति चला सके। खाने-पीने का प्रबध, उपहारो का वितरण, वस्त्रो की देख-भाल उसके सुपुर्द हो। रसोई एव अश्वशाला का पूरा प्रबन्ध उसके हाथ में हो। कोष की बहुमूल्य वस्तुओ का भी वही सर्वोच्च अधिकारी हो और इस बात की देख-भाल किया करे कि उसमें कौन-कौन-सी वस्तुएँ आती है और वे किस प्रकार व्यय होती है। सक्षेप में वह इन विभागो का सर्वोच्च अधिकारी हो। अत उन्होने इसके लिए एक हाकिम चुना और उसका नाम हाजिब रखा। कभी-कभी उस हाजिब को शाही फरमानो पर सुल्तान का तुगरा लिखवाने का उत्तरदायित्व सौप दिया जाता था, किन्तु यह उसी समय होता था जब हाजिब रचना-शैली में पूर्ण रूप से दक्ष हो। कभी इसके लिए पृथक् अधिकारी नियुक्त किया जाता था। कुछ समय तक शासन-व्यवस्था इसी प्रकार चलती रही। आगे चलकर बादशाहो ने लोगो से स्वतत्र रूप से मिलना जुलना बन्द कर दिया तो फिर यही हाजिब बादशाह एव अन्य अधिकारियो के संपर्क का बिचवइया बन गया। सल्तनत के उत्तरार्ध में हाजिब लोग तलवार एव युद्ध सम्बन्धी सभी बातो के अध्यक्ष भी बन बैठे और उनके परामर्श का महत्त्व बढ गया। इस प्रकार जब इस पद का महत्त्व बहुत बढ गया तो हाजिब का पद सर्वोच्च समझा जाने लगा। अबी हफ़स की सतान में तो बारहवें सुल्तान के बाद हाजिब ने सुल्तान के समस्त अधिकार छीनकर उसे एक कोने में बैठा दिया और स्वय समस्त अधिकारो के स्वामी बन बैठे। अन्त में सुल्तान अबुल अब्बास ने पुन स्वाधीनता प्राप्त की। उसने हाजिब के पद को समाप्त किया और राज्य-व्यवस्था पर पूर्ण रूप से स्वाधिकार जमा लिया। इस प्रकार उन लोगो के राज्य में अब तक यही प्रथा चली आ रही है।

मगरिब में जनाता की सल्तनत में और विशेष रूप से उनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण बनी मरीन के राज्य में हाजिब के पद का कोई पता नही चलता। सेना एव युद्ध का प्रबन्ध वज़ीर के हाथ मे है। हिसाब-किताब एव पत्र-व्यवहार का विभाग उस व्यक्ति को सुपुर्द किया जाता है जो उसे भली-भाँति चला सकता हो। कभी-कभी

यह पद विशेप रूप से आश्रितो को प्रदान किया जाता है और इसके अधिकार उन्ही तक सीमित रहते हैं, पर कभी-कभी इसका उत्तरदायित्व विभिन्न लोगो में विभाजित कर दिया जाता है। उनके यहाँ एक ऐसा पदाधिकारी भी होता है जो सर्वसाधारण को वादशाह के पास पहुँचने से रोकता है। उसे मिज़वार[1] कहते हैं। उसको सुल्तान के महल के कर्मचारियो की अफसरी प्राप्त होती है। उसी के मतानुसार शाही आदेश एव हुक्म निकाले जाते और दड प्रदान किये जाते हैं। वन्दियो की देख-रेख की जाती है। सक्षेप में शाही द्वार की सभी वातें एव मामले उसके सुपुर्द होते हैं। वह दरवारे आम में लोगो को उनके उचित स्थानो पर वैठाने का ज़िम्मेदार होता है। इस प्रकार मिजवार अपने अधिकारो के अनुसार एक प्रकार का छोटा वज़ीर होता है।

इसके विपरीत वनी अब्दुल वाद के यहाँ इन उपाधियो एव पदो की कोई चर्चा ही नही, कारण कि उन पर अव तक वदवियत की छाप पडी हुई है और नगरो की प्रथाओ के सम्वध में ये लोग अभी वहुत पीछे हैं। ये लोग कभी-कभी "हाजिव" उस अधिकारी को कह देते हैं जो सुल्तान के व्यक्तिगत तथा महल के प्रवधो का ज़िम्मेदार हो, जैसा कि वनी हफस में प्रथा थी। कभी हिसाव-किताव के विभाग एव सल्तनत के फरमानो के निर्गत कराने के कार्य भी उसी के सुपुर्द होते हैं। ये लोग वनी अवी हफस के राज्य का प्रारम्भ से ही अनुकरण करते हैं एव उसके जा-नशीन होने का दावा करते हैं, अत वहुत-सी वातो एव प्रथाओ में वे उसी राज्य की नकल करते हैं।

उन्दुलुस के वर्त्तमान राज्य में हिसाव-किताव, शाही आदेशो के निकालने एव माल सम्वधी वातो के विभाग जिस व्यक्ति की देख-रेख में है, उसे वकील कहते हैं। वज़ीर के कर्त्तव्य वही हैं जो साधारणत होते हैं, किन्तु पत्र-व्यवहार का विभाग भी उसके अधीन होता है। सल्तनत के फरमानो पर वादशाह स्वय मुहर लगाता है। अन्य राज्यो की भाँति इसके लिए पृथक् प्रवध नही।

मिस्र के तुर्को के राज्यकाल में हाजिव के नाम से वह व्यक्ति प्रसिद्ध होता है जो हाकिम कहलाता है। नगर में राज्य के आदेशो को जारी कराना उसी के जिम्मे होता है। इस प्रसिद्ध पद के उत्तरदायित्व को कई लोग, जो आदेशो के निर्गत हेतु नियुक्त होते हैं, मिलकर पूरा करते हैं। तुर्कों में हाजिव का पद नायव से नीचे

१ वरवर शब्द, जिसका अर्थ प्रथम है।

होता है, कारण कि नायब ही सल्तनत मे ऐसे उच्च अधिकार का, जिसके अन्य अधीनस्थ विभाग आज्ञाकारी होते है, स्वामी होता है। बहुत से पदाधिकारियो की नियुक्ति एव उन्हें पदच्युत करने का अधिकार भी उसी को होता है। वृत्तियो एव वेतनो मे वह आवश्यकतानुसार कमी-बेशी कर सकता है। सक्षेप में जिस प्रकार वह बादशाह के आदेश जारी करता है, उसी प्रकार वह अपने व्यक्तिगत आदेश जिम्मेदारी से जारी कर सकता है, कारण कि बादशाह की ओर से वह समस्त बातों में नायब समझा जाता है।

तुर्कों में भी हाजिब के नाम से एक पदाधिकारी होता है। सर्वसाधारण अथवा कुछ लोगों के मामले जब उसके समक्ष प्रस्तुत किये जाते है तो वह उनका निर्णय करता है। उनके झगड़ो का निपटारा करता है। जो उसके आदेशो का पालन नही करते उन्हें इसके लिए विवश करता है। हाजिब भी नायब के ही अधीन होता है। तुर्कों के राज्य में वजीर का सम्बध केवल राज्य की आय से होता है, चाहे वह आय खराज एव चुगी की हो चाहे जिजिये इत्यादि की। शाही व्यय एव अन्य निर्धारित मदो पर धन व्यय करने का उसे अधिकार होता है। राजस्व-विभाग के कर्मचारियो की नियुक्ति एवं उनको पदच्युत करने का भी उसे अधिकार होता है। सक्षेप में समय को देखकर जैसा आवश्यक एव उचित होता है, वह करता है। तुर्कों मे यह प्रथा चली आ रही है कि वजीर का पद किबतियो को प्राप्त होता है, जिनके अधीन खराज एव माल-विभाग भी होता है।

दीवाने आमाल व ख़राज[1]

यह बात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि इस पद की गणना राज्य के उन पदो में होती है जिनका अस्तित्व राज्य एव सल्तनत के लिए अत्यन्त आवश्यक है। खिराज[2] एव राज्य की आय के सभी मामले इससे सम्बधित होते है। राज्य के आय-व्यय की देख-रेख की जाती है। सैनिको के नाम, उनकी वृत्तियो एव वेतन की मात्रा इस विभाग में लिखी रहती है। उनके वेतनो का वितरण भी इसी विभाग में लिखा जाता है। ये सब कार्रवाइयाँ उन अधिनियमो के अनुसार होती है जिनको राज्य के उच्च पदाधिकारी एव ख़राज-विभाग के अधिकारी एक पजिका के रूप में

१. वित्त एवं राजस्व-विभाग।
२. राजस्व, भूमिकर, मालगुजारी।

सुरक्षित कर लेते हैं। इस पजिका में राज्य के आय-व्यय की सविस्तर चर्चा होती है। इसका बहुत बडा भाग गणित के ज्ञान से गहरा सम्बन्ध रखता है। वही लोग वास्तव में इन अधिनियमो के अनुसार कार्य कर सकते हैं जो इस ज्ञान में दक्ष हैं। अधिनियमो की यह पजिका "दीवान" के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार वे अधिकारी, जिनका इस विषय से सम्बध होता है, जहाँ बैठकर अपना कार्य करते हैं, उसे भी "दीवान" ही कहते हैं।

इस नाम का कारण यह बताया जाता है कि एक दिन किस्रा नौशीरवाँ अपने दीवान के मुशियो के पास पहुँच गया। वे सिर से सिर जोडे हुए हिसाब-किताब में इस प्रकार व्यस्त थे कि मानो बड-बडा रहे हो, तो उसके मुँह से निकल गया "देवानेह" अर्थात् ये पागल हैं। अधिक प्रयोग में आते-आते बैठने के स्थान का नाम "देवानेह" से दीवान हो गया।

फिर उस पजिका का नाम दीवान पडा जिसमें राजस्वसम्बन्धी अधिनियम एव हिसाब-किताब का वर्णन हो। कुछ लोगो का मत है कि फारसी में दीवान शैतानो को कहते हैं। सचिवो को दीवान इस कारण कहते थे कि उनकी बुद्धि बडी कुशाग्र होती थी और वे प्रत्येक कठिन से कठिन समस्या को तुरन्त समझ लेते थे। गोपनीय एव स्पष्ट बातो को तत्काल ताड जाते थे और छिन्न-भिन्न एव तितर-बितर मामलो में पलक झपकाने मात्र समय में उनसे सिद्धान्त एव निष्कर्ष की बात निकाल लेते थे। फिर पजिका के अर्थ में प्रयोग न होकर दीवान शब्द का प्रयोग उस कार्यालय के लिए प्रयुक्त हुआ, जहाँ राजस्व के कर्मचारी अपने हिसाब-किताब का कार्य सम्पन्न करते हैं और अब भी दीवान शब्द पजिका एव कार्यालय दोनो के लिए प्रयोग में आता है।

कभी-कभी इस सपूर्ण विभाग की देख-रेख एक ही अधिकारी के ज़िम्मे होती है। वह इस विभाग की विभिन्न शाखाओ की देख-भाल करता है। प्रत्येक विभाग के लिए पृथक् अधीक्षक भी नियुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार कुछ सल्तनतो में सैनिक प्रबध और उनकी जागीरो तथा इनामो का प्रबध अलग-अलग लोगो को बाँट दिया जाता है। सक्षेप में समय के औचित्य की दृष्टि से एव पिछले लोगो के आचरण को देखते हुए जो कुछ उचित होता है उस पर आचरण होता है। समझ लीजिए कि यह विभाग किसी सल्तनत में उस समय स्थापित होता है जब उसका प्रभुत्व दूर-दूर तक फैल जाता है और उसकी जड़ एव नींव दृढ हो जाती है और जब इस बात की आवश्यकता होती है कि राजनीति की समस्याओ को विभिन्न भागो में बाँटकर सल्तनत का कार्य नियमानुसार चलाया जाय।

इस्लामी सल्तनत में दीवान को हजरत उमर ने अपनी खिलाफत के समय प्रारम्भ किया। कहा जाता है कि जब हजरत अबू हुरैरा[१] बहरैन से अपार धन-सम्पत्ति लाये और उसके विभाजन एव उपहारो तथा इनामों इत्यादि की सुव्यवस्था में कठिनाई हुई तो खालिद बिन वलीद ने दीवान स्थापित करने का परामर्श दिया और कहा कि "मैने शाम के राज्यो में यही प्रथा देखी है।" हज़रत उमर ने इस परामर्श को स्वीकार कर लिया और तदनुसार आचरण किया।

कुछ लोगो का मत है कि दीवान की स्थापना का परामर्श हरमुजान[२] ने दिया था। जब उसने देखा कि सेनाएँ राज्य की विभिन्न दिशाओ में भेजी जा रही है और किसी पजिका में उनके विषय में कुछ नही लिखा जाता, तो बोला कि "इन सैनिको मे से कोई कही चला जाय तो उसके विषय में किस प्रकार कोई ज्ञान प्राप्त हो सकेगा और जो गायब हो जायगा वह अवश्य ही अपने स्थान को छोडकर व्यवस्था में विघ्न डाल जायगा। इसी कारण याद रखने के लिए एक पजिका तैयार की जाती है और उसके हिसाब-किताव के लिए कुछ लोग नियुक्त किये जाते है, अत. आप भी इसके लिए एक स्थायी विभाग "दीवान" स्थापित कीजिए। हजरत उमर ने दीवान का सविस्तर विवरण पूछा। हरमुज़ान ने उसकी व्याख्या की। इस प्रकार दीवान की स्थापना हुई। हजरत उमर ने हज़रत अकील बिन अबी तालिब[३], मखरमा बिन नौफल[४] तथा जुबैर बिन मुतइम[५] के ज़िम्मे दीवान का कार्य सौंपा। कारण कि कुरैश में यही लोग कातिब[६] समझे जाते थे। इन बुजुर्गो ने इस्लामी सेना

१ उनको यह नाम एक बिल्ली से अधिक रुचि के कारण हज़रत मुहम्मद ने स्वयं दिया था और यह इतना प्रसिद्ध हुआ कि लोगों को उनके असली नाम का कोई पता नहीं। इनके नाम से मुहम्मद साहब की हदीसें बहुत बड़ी संख्या में प्रसिद्ध हैं। वे हज़रत उस्मान के समय में मक्के के काजी थे। उनकी मृत्यु ६७९ ई० में हुई।

२. अहवज का वादशाह जो इराक की विजय के समय बन्दी बनाया गया था।

३. अकील बिन अबी तालिब हज़रत अली के बड़े भाई थे। इनकी मृत्यु ६८० ई० के लगभग हुई।

४. इनकी मृत्यु ५४ हि० (६७४ ई०) में हुई।

५. इनकी मृत्यु ५६ तथा ५९ हि० (६७५–७६ तथा ६७८-७९ ई०) के मध्य में हुई।

६. सचिव।

की एक पजिका वश के अनुसार तैयार करायी। नामो की सूची को मुहम्मद साहब के निकटतम सम्बन्धियो से प्रारम्भ किया। फिर इसी क्रम से उनसे सम्बध के अनुसार नाम लिखते गये। इस प्रकार सेना के दीवान का अभ्युदय हुआ। अज्जुहरी ने सईद बिन अल मुसय्यव के आधार पर लिखा है कि दीवान की प्रथा मुहर्रम २० हि० (दिसम्बर ६४०—जनवरी ६४१ ई०) से प्रारम्भ हुई।

अब जहाँ तक दीवाने महासिल[1] एव खराज का सम्बन्ध, है तो यह इस्लाम के बाद भी अपनी पूर्व दशा में रहा अर्थात् इराक का दीवान फारसी भाषा में और शाम का दीवान रूमी भाषा में। इसी प्रकार दीवान के कातिब भी रूमी अथवा फारसी होते थे। जब अब्दुल मलिक बिन मरवान का समय आया और खिलाफत ने सल्तनत का रूप धारण किया तथा अरब ने बदवियत के वस्त्र को उतारकर नागरिक जीवन का वस्त्र धारण किया तथा निरक्षरता को त्यागकर किताबत में कुशलता प्राप्त की और स्वय उनमें तथा उनके दासो में कुशल कातिब एव हिसाब जानने वाले मिलने लगे, तो अब्दुल मलिक ने उरदन[2] के हाकिम सुलेमान बिन साद, के नाम फरमान भेजा कि शाम के दीवानो को अरबी भाषा में परिवर्तित कर दो। सुलेमान ने एक वर्ष के भीतर इस कार्य को सम्पन्न कर लिया। अब्दुल मलिक के कातिब सरहून ने इस कला में पर्याप्त योग्यता प्राप्त कर लेने के उपरान्त रूमी कातिबो से कह दिया कि "क्योकि तुम लोगो से किताबत का काम लिया जा चुका, अत अब तुम अपनी जीविका हेतु किसी अन्य व्यवसाय की खोज करो।"

उधर इराक का दीवान फारसी भाषा में उसी प्रकार चला आता था। हज्जाज का कातिब, सालेह बिन अब्दुर्रहमान, अरबी एव फारसी दोनो भाषाओ में दीवान का कार्य जानता था। यह उसने हज्जाज के पहले कातिब ज़ादान फरूख से सीखा था। जब ज़ादान की अब्दुर्रहमान बिन अशअस के युद्ध में हत्या हो गयी[3] तो हज्जाज ने जादान का कार्य सालेह को सौंप दिया और साथ-साथ आदेश दिया कि वह फारसी दीवानो का अरबी भाषातर करे। उसने ऐसा ही किया। फारसी कातिबो को यह परिवर्तन बडा अरुचिकर लगा। अब्दुल हमीद बिन यहया कहा करता था कि, "अल्लाह सालेह का भला करे, उसने अरबी कातिबो का बड़ा उपकार किया।"

१. विभिन्न प्रकार के कर।
२ जार्डन।
३ ८५ हि० (७०४ ई०)।

उमय्या राज्य के उपरान्त जब अब्बासियो का राज्य प्रारम्भ हुआ तो दीवान का काम वजीर द्वारा सम्पन्न होने लगा, जो बडे विस्तृत अधिकारो का स्वामी हुआ करता था। इस प्रकार बनी बरमक एव बनू सहल बिन नव बख्त इत्यादि वज़ीर दीवान का काम अपने हाथ में रखते थे।

दीवान से कुछ शरई आदेश भी सम्बन्धित है, उदाहरणार्थ सेना एव बैतुल माल के आय-व्यय से सम्बन्धित आदेश, अथवा इसकी पहचान कि राज्य के कौन-से भाग सन्धि द्वारा विजित हुए है और कौन-से युद्ध द्वारा, या दीवान के कार्य को कौन सँभाल सकता है और कौन नही, अधीक्षक एव कातिब से सम्बन्धित शर्तें अथवा हिसाब-किताब के सिद्धान्त। इन सब बातो का "एहकामे सुल्तानिया" के ग्रथो में सविस्तर उल्लेख हुआ है। हमारे ग्रथ से इस विषय का कोई सम्बन्ध नही, अत. हम इसे यहाँ नही लिखते। हमारा अभीष्ट तो केवल राज्य के अधिकारों की स्वाभाविक दशा का विवेचन करना मात्र है।

यह बात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि दीवान का विभाग राज्य एवं सल्तनत की सुव्यवस्था और शासनप्रबध के लिए बडा महत्त्वपूर्ण है, अपितु इसको सल्तनत का तीसरा स्तम्भ समझना चाहिए। कारण कि प्रत्येक सल्तनत में सेना एव धन की भी आवश्यकता होती है और सैनिक-नामावली की एक सुव्यवस्थित पजिका की भी।

सक्षेप में दीवान का उच्च पदाधिकारी, राज्य के एक बड़े महत्त्वपूर्ण भाग का स्वामी होता है। उन्दुलुस में बनी उमय्या के राज्य-काल एव मुलूकुत्तवाएफ के समय में दीवान को यही गौरव एव सम्मान प्राप्त रहा। मुवह्हेदीन के राज्य-काल मे दीवान का मुख्य अधिकारी मुवह्हेदीन के वश का कोई ऐसा व्यक्ति होता था, जो धन एकत्र करने एव उसके सुव्यवस्थित रखने पर नियंत्रण रखता, वालियो एव आमिलो से हिसाब-किताब करता और समयानुसार निश्चित कर वसूल कराता था। उसको "साहेबुल अशगाल"[1] कहा करते थे। कभी ऐसा भी होता कि किसी ऐसे अन्य व्यक्ति को यह पद दे दिया जाता जो इसमें भली-भाँति दक्ष होता।

जब बनू अबी हफस इफरीकिया के बादशाह हुए तो वहाँ उन्दुलुस से योग्य एव सम्मानित लोग आने लगे। उनमें से कुछ ऐसे थे जो उन्दुलुस मे राजस्व विभाग का प्रबध कर चुके थे, उदाहरणार्थ बनू सईद, किलआ के, जो गरनाता के समीप है, अधिकारी। वे बनू अबिल हसन के नाम से प्रसिद्ध है। इसी कारण बनू अबी हफस

१. वित्त-विषयक मुख्य अधिकारी।

ने राजस्व का प्रबंध उन्ही के सुपुर्द किया और वे बडी योग्यता से राजस्व-विभाग चलाने लगे। वे उन्हें एवं मुवह्हेदीन को बारी-बारी से यह कार्य सौंपते रहे। फिर कातिब एव हिसाब-किताब जाननेवाले मुवह्हेदीन से पृथक् होकर स्वाधीन हो गये।

इसके बाद जब हाजिब की उन्नति हुई और राज्य की सभी बातो में उसी का आदेश चलने लगा तो दीवान के अधिकारी का यश एव गौरव भी समाप्त हो गया। वह हाजिब के अधीन समझा जाने लगा। उसके अधिकार बडे सीमित हो गये। हमारे युग में बनी मरीन की सल्तनत में इनाम एव खराज का हिसाब-किताब एक ही आदमी सँभालता है। समस्त हिसाबो की जाँच-पड़ताल उसी के सुपुर्द है और सब कागज़ सुल्तान एव वज़ीर के पास प्रस्तुत होकर उसी के कार्यालय में आते है और वही उनका निरीक्षण करता है। जब वह किसी खराज अथवा इनाम के कागज़ पर हस्ताक्षर कर देता है तो उसके हस्ताक्षर सबके लिए मान्य हो जाते है। यह उन समस्त शाही पदो का सार है जिनके अधिकार राज्य में विस्तृत है और सुल्तान से सम्बन्धित है।

तुर्को के राज्य में उपर्युक्त पद का विभाजन हो गया है। सैनिक वेतनो एवं वृत्तियो का हाकिम, नाज़िरुल जैश[1] एव राजस्व-विभाग का अधिकारी वज़ीर कहलाता है। यह वज़ीर ही राज्य की आय एवं खराज का प्रबध करता है और उसका पद राजस्व विभाग के उच्चतम पदो में गिना जाता है। तुर्को की सल्तनत चूंकि बडी विस्तृत है और नाना प्रकार एव विभिन्न नियमो के अनुसार कर एव खराज की वसूली होती है, अत. अनेक पदाधिकारियो द्वारा राजस्व-विभाग का काम किया जाता है। एक अधिकारी पूरे विभाग का शासन-प्रबध नही कर सकता, चाहे वह कितना ही अनुभवी क्यो न हो। वज़ीर उन सबकी सामान्य देख-भाल का कार्य करता है और सब पर नियंत्रण रखता है। यद्यपि वज़ीर के अधिकार बड़े विस्तृत होते है, किन्तु वह सुल्तान के किसी निकटतम सम्बधी, सहिबुस् सैफ[2] के अधीन होता है। वह उसी के संकेतो पर चलता है। तुर्क उसे उस्ताज़ुद्दार कहते है, कारण कि समस्त सैनिक पद उसी के अधीन होते है।

राजस्व एव हिसाब-किताब से सम्बधित और भी विशेष पदाधिकारी होते है

१. सेना-विभाग का निरीक्षक।
२. तलवार वाले।

जिनके अधिकार अपने-अपने क्षेत्र में सीमित होते है। उदाहरणार्थ नाज़िरुल ख़ास, जिसके सुपुर्द व्यक्तिगत शाही आय एवं ख़ालसे तथा अन्य करो का प्रबध होता है। इनका साधारण मुसलमानो से कोई सम्बन्ध नही होता। यह नाज़िर उस्ताजुद्दार के अधीन होता है। यदि सेना में से कोई विज़ारत के पद तक पहुँच जाय तो उस पर उस्ताजुद्दार का शासन नही चलता। फिर बादशाह का एक विशेष सेवक ख़ाज़िनदार[1] कहलाता है, जो बादशाह का दास होता है और बादशाह की व्यक्तिगत धन-सम्पत्ति की देख-भाल उसी के सुपुर्द होती है, मानो नाजिर एव ख़ाज़िन के पद विशेष रूप से बादशाह के व्यक्तिगत राजस्व से सम्बधित हो। सक्षेप में पूर्वीय तुर्कों के शासन में इस विषय से सम्बधित यही विषेष पद है।

दीवाने रसायल एवं मकातेबात[2]

यह राज्य का कोई अधिक आवश्यक विभाग नही है। जिन सल्तनतो पर बदवियत छायी हुई है उन्हें इसकी आवश्यकता ही नही, कारण कि न उनमें नगर की सभ्यता पायी जाती है और न कला-कौशल। इस्लामी सल्तनतो में दीवाने रसायल एव किताबत की आवश्यकता का अनुभव अरबी भाषा की रक्षा के लिए हुआ, ताकि उसकी शैली की सुन्दरता सुरक्षित रहे। इस प्रकार प्रायः ऐसे चुने हुए लोग कातिब नियुक्त किये जाते थे जो अत्यधिक सुन्दर भाषा में अपने विचार व्यक्त कर सकते थे। कातिब, अमीर तथा सुल्तान के कुल से सम्बधित तथा उनके कबीले के प्रभावशाली व्यक्तियो में से होता था। पिछले ख़लीफाओं एव शाम तथा इराक के मुहम्मद साहब के सहाबी अमीरो में यही प्रथा रही। यह शर्त इस उद्देश्य से थी कि ऐसे ही निकटवर्ती सम्बधियो द्वारा गोपनीय बातो एव रहस्यो की रक्षा की आशा की जा सकती है। किताबत, बिना गोपनीय बातों एवं रहस्यो की रक्षा के नहीं चल सकती। जब भाषा का रूप बदला एवं अजम के मेल-जोल से उसमें दोष आने प्रारम्भ हो गये और किताबत एक विशेष कला एव व्यवसाय हो गयी, तो किताबत के पद पर केवल उसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाने लगा जिसे भाषा पर पूर्ण अधिकार होता था एव जो रचना-कार्य में दक्ष होता था।

फिर बनी अब्बास ने तो अपने राज्यकाल में इस पद को और भी चार चाँद लगा

१. कोषाध्यक्ष।
२. शाही पत्र-व्यवहार का विभाग।

दिये। समस्त अधिकार कातिब के ही सुपुर्द किये, फ़रमानों पर कातिब स्वय अपने हस्ताक्षर करता और फिर शाही मुहर लगाता। यह मुहर एक प्रकार की जल में घोली हुई लाल मिट्टी से तैयार की जाती थी और उस पर बादशाह का नाम तथा उपाधि खुदी होती थी। यह मिट्टी मुहर की मिट्टी के नाम से प्रसिद्ध थी। फरमान को मोडकर चिपका दिया जाता था और उसके दोनो ओर मुहर लगा दी जाती थी। आगे चलकर यह प्रथा हो गयी कि फरमानो को शाही नाम से जारी किया जाता था। कातिब स्वय फरमान के प्रारम्भ अथवा अन्त में, जैसा उचित होता, अपने हस्ताक्षर बनाता था।

इसके उपरान्त किताबत के पद का सम्मान और घट गया तथा सल्तनत के अन्य पदाधिकारी भी बादशाह के विश्वासपात्र बन गये। सल्तनत के वज़ीर ने स्वाधीन अधिकार प्राप्त कर लिये। ऐसी दशा में कातिब के हस्ताक्षर का कोई महत्त्व न रहा। केवल प्रतिभाशाली व्यक्ति के हस्ताक्षरो का ही विश्वास किया जाता था। इस प्रकार हफसिया राज्य के अन्तिम काल में यही प्रथा थी। यह समय वह था जब हिजाबत के पद का सम्मान बहुत बढ गया और राज्य की समस्याएँ उसी के सुपुर्द हो गयी। हाजिब राज्य के सियाह-सफेद का मालिक-सा हो गया। पिछली प्रथा का पालन करते हुए कातिब हस्ताक्षर अवश्य करता था, किन्तु उसके हस्ताक्षर का कोई महत्त्व न होता था। फिर ऐसा होने लगा कि हाजिब द्वारा कातिब को आदेश दिया जाने लगा कि वह अपने निश्चित चिह्न के साथ अपने हस्ताक्षर फरमान पर कर दे।

तौकी लिखना भी कातिब के ही उत्तरदायित्व में से है। इसका सचालन इस प्रकार होता है कि कातिब बादशाह के समक्ष बैठ जाता है। जो अभियोग एव अन्य समस्याएँ बादशाह के समक्ष प्रस्तुत की जाती है, उन पर वह शाही आदेश अत्यधिक सुन्दर भाषा में सक्षिप्त रूप से मिसिल अथवा मिसिल ख्वानी की पजिका पर लिखता जाता है। इस कला के लिए कातिब में अत्यधिक योग्यता एव विवेक आवश्यक है। प्रसिद्ध है कि जाफर बिन यह्या हारूनुर्रशीद के सामने बैठकर शाही निर्णय लिखता और लिख-लिखकर मिसिल पढ़नेवाले के पास फेंकता जाता था। उसकी तौकियो को इतना सम्मान प्राप्त था कि देश के विद्वान् एव रचनाशैली के दक्ष लोग बडे उत्साह से उनकी खोज में रहते, कारण कि उनमें इतनी गूढ बातें पायी जाती थी जो अन्य स्थानो पर नही प्राप्त होती थी। यहाँ तक प्रसिद्ध है कि लोग एक-एक तौकी को एक-एक दीनार में ले लेते थे। फिर अन्य सल्तनतो में भी यही प्रथा प्रचलित रही।

यह बात भी भली-भाँति स्पष्ट होनी चाहिए कि कातिब के लिए यह भी आवश्यक है कि वह उच्च वश का व्यक्ति हो, सहृदयता एव गौरव का स्वामी हो। ज्ञान में भी अद्वितीय हो, रचनाशैली में भी दक्ष हो। कारण कि शाही दरबारो में जो आदेश जारी होते है, उनकी तह तक पहुँचने और उनके उद्देश्य को समझने के लिए ज्ञान की अत्यधिक आवश्यकता होती है। फिर बादशाह की गोष्ठी में रहने के लिए उच्चतम शिष्टाचार एवं सौजन्य भी ज़रूरी है। इसी प्रकार यदि फरमान लिखवाये जायँ तो वे साहित्यिक एवं विद्वत्तापूर्ण भी हो।

कुछ सल्तनतो में किताबत का उत्तरदायित्व किसी तलवार वाले[1] के सुपुर्द किया जाता है। इसका कारण यह होता है कि ये राज्य सीधे-सादे एवं ज्ञान से शून्य तथा "असबियत" के पोषक होते है। बादशाह अपनी असबियत वालो को ही सल्तनत के पदो के लिए छाँटता है। राजस्व एवं सेना विभाग तथा किताबत का पद सब इन्ही को देने का प्रयत्न करता है। "तलवार वालो" को तो ज्ञान की कुछ अधिक आवश्यकता होती नही, अतः यह विभाग-बिना सकोच "असबियत" के स्वामियो को दे दिया जाता ह। किन्तु राजस्व विभाग एव किताबत में गणित के ज्ञान तथा पांडित्य के बिना काम नही चलता, अत. इन विभागो के लिए विवश होकर अन्य योग्य लोगो को चुनना पडता है, किन्तु वह किसी "असबियत" के स्वामी के ही अधीन रहते है और लेश मात्र को उसके आदेशो की अवहेलना नही कर सकते। इस प्रकार आजकल पूर्व में तुर्को के राज्य में यही प्रथा प्रचलित है। उनके यहाँ यद्यपि किताबत का कार्य किसी साहित्यिक के सुपुर्द होता है, किन्तु वह सुल्तान के किसी निकट-सम्बन्धी के, जिसे दावेदार कहते है, अधीन रहता है। उस पर बादशाह को पूर्ण विश्वास होता है। सब उसको बादशाह का विशेष विश्वासपात्र समझते है। फिर वह किसी में विद्वत्ता एव उत्तम रचना-शैली देखकर अथवा उसे राज्य की गोपनीय बातो को गुप्त रखने के योग्य पाकर, कातिब नियुक्त कर देता है।

किताबत के लिए जिन शर्तों पर ध्यान देना आवश्यक एव अनिवार्य है और बादशाह भी कातिब के चुनाव के समय जिन्हें आवश्यक समझता है, उन शर्तों की संख्या अधिक है। इनमें सबसे उत्तम वे शर्ते है जो अब्दुल[2] हमीद कातिब ने अपने उस पत्र में, जिसे उसने विभिन्न कातिबो के पास भेजा था, लिखी है। पत्र इस प्रकार है—

१. सैनिक।

२. अब्दुल हमीद बिन यहया की १३२ हि० (७५० ई०) में मृत्यु हो गयी। यह पत्र

"हे किताबत की कला के विद्वानो ! ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और अपनी विशेष सहायता द्वारा तुम्हारा पथ-प्रदर्शन एवं उपकार करे। समझ लो कि नबियों, पैग़म्बरों तथा प्रतापी बादशाहों को छोड़कर ईश्वर ने मनुष्यों को विभिन्न किस्मों में विभाजित किया है। यद्यपि वास्तव में वे सब एक सरीखे हैं, किन्तु व्यवसाय, नाना प्रकार के आर्थिक धंधों एवं जीविकोपार्जन के विभिन्न तरीकों के कारण वे एक-दूसरे से पृथक् हैं। उदाहरणार्थ, ईश्वर ने तुम्हें अत्यधिक विद्वत्ता, योग्यता, मुरव्वत एवं सौजन्य दिया है। तुम्हारे ही कारण ख़िलाफ़त की व्यवस्था भली-भाँति सम्पन्न होती रहती है और उसके समस्त कार्यों की चूलें ठीक बैठती हैं। तुम्हारे ही परामर्श से मानव पर शासन होता है। बादशाह हर समय तुम पर निर्भर रहता है। उसके समस्त कार्य तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। वास्तव में तुम ही बादशाह के कान हो जिनसे वह सुनता है, तुम ही उसकी आँख हो जिनसे वह देखता है, तुम ही उसकी जिह्वा हो जिससे वह बोलता है और तुम ही उसके हाथ हो जिनसे वह छूता है। ईश्वर तुमको अपनी योग्यता द्वारा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के अवसर प्रदान करे और जो देन तुमको उसने प्रदान की है, उसे न छीने।

हे साहित्यकारो ! तुममें से प्रत्येक को कलाकार से अधिक उत्तम गुणों एवं आदतों की अधिक आवश्यकता है। यदि इस पत्र में लिखे हुए गुण तुममें पाये जाते हैं तो वास्तव में तुम अच्छे कातिब हो। तुम्हारा स्वामी भी इन्हीं गुणों को देखना चाहता है। सहनशीलता के समय सहनशीलता के गुणों द्वारा सुशोभित हो, निर्णय के समय कुशाग्र बुद्धि का प्रदर्शन करो, जब आगे बढ़ने की आवश्यकता हो तो सबसे आगे निकल जाओ। पीछे हटने के समय रुक जाओ, मर्यादा एवं न्याय के पुतले बनो, गोपनीय बातों को गुप्त रखो, कठिनाई का वीरतापूर्वक मुक़ाबला करते रहो, भविष्य में पेश आनेवाले ख़तरों का पहले से ही ज्ञान प्राप्त कर लो। अपनी दूरदर्शिता, अपने शिष्टाचार एवं अनुभव से भविष्य में घटनेवाली घटनाओं को समय के पूर्व पहचान लो और ताड़ लो। प्रत्येक समस्या के परिणाम को

जहशियारी के "वुज़रा", इब्ने हमदून के "तज़किरे" तथा क़लक़शन्दी के "सुबहुल आशा" में भी दिया हुआ है।

प्रकट होने के पूर्व ही समझ जाया करो और हर एक के लिए पहले से ही तैयार रहो।

हे साहित्यकारो! नाना प्रकार की योग्यताएँ प्राप्त करने में एक-दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न करो और मुकाबला करो। दीन एवं धर्म का ज्ञान प्राप्त करो और सर्वप्रथम अल्लाह की किताब एवं धार्मिक कर्त्तव्यों से परिचय प्राप्त करो। फिर अरबी भाषा में कुशलता प्राप्त करो, कारण कि तुम्हारे लिए भाषा-ज्ञान परमावश्यक है। फिर सुलेख को भी न भूलो। सुलेख किताबत की कला की शोभा है। अरबी पद्यों को कंठस्थ करो और इनमें जो विद्वत्तापूर्ण बातें एवं रहस्य हों, उनके अर्थ भली-भाँति समझो। अरब एवं अजम के इतिहास तथा वहाँ वालों के चरित्र के विषय में भली-भाँति ज्ञान प्राप्त करो। कारण कि इससे तुमको अपने उस अध्यवसाय की ओर, जिसकी पूर्ति का तुमने संकल्प कर रखा है, अग्रसर होने का अवसर मिलेगा। इसके साथ गणित की कला की भी उपेक्षा मत करो, कारण कि ख़राज के कातिब इसी पर निर्भर होते हैं। लोभ एवं लिप्सा से बचते रहो; चाहे वे वस्तुएँ जिनके तुम लोभी हो, उच्च श्रेणी की हों अथवा निम्न श्रेणी की। लोभ एवं लिप्सा द्वारा मनुष्य अपमानित हो जाता है और उनके कारण "कातिब" के कार्यों में विशेष रूप से विघ्न पड़ता हैं। किताबत को कृपणता से बचाये रखो। चुग़ुलख़ोरी एवं पीठ-पीछे लगाने-बुझाने से घृणा करो। अज्ञान के समस्त कार्यों को त्याग दो। अभिमान, घमंड एवं डींग से बचते रहो, कारण कि ये बुरी आदतें अनावश्यक रूप से लोगों के साथ शत्रुता के द्वार खोलती हैं। अपने व्यवसायवालों के साथ केवल ईश्वर के लिए स्नेह एवं प्रेम करो। जो व्यक्ति अपने विद्वान्, न्यायकारी एवं पूज्य पूर्वजो का अनुकरण करने योग्य हो, उसको यह कला सिखाओ और बताओ। यदि कालचक्र से कोई किसी दुर्घटना में ग्रस्त हो जाय तो उसके साथ सहानुभूति प्रदर्शित करो, यहाँ तक कि उसकी दशा पुनः ठीक हो जाय। उसकी दुर्दशा, समृद्धि में परिवर्तित हो जाय। यदि किसी का अभिमान तथा घमंड अपने भाइयों से भेंट करने में बाधक हो और वह लोगों से मिलने पर नाक-भौं चढ़ाये तो तुम स्वयं उसका आदर-सत्कार करो। उससे परामर्श करो। उसके अनुभव से लाभान्वित हो। यदि तुममें से कोई किसी से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायता ले तो उसका अपनी संतान एवं भाई-बन्दों से

अधिक उपकार मानो। यदि कार्य में सफलता हो तो उसे सहायता करनेवाले की सहायता का फल समझो। यदि किसी बुराई का सामना करना पड़े तो इसे अपना दोष समझो। यदि स्थिति में परिवर्तन हो जाय तो दुस्साहस एवं शोक अपने हृदय में उत्पन्न मत होने दो।

हे साहित्यकारो ! तुम्हारी भूलें बड़ी तीव्र गति से हानि पैदा करती हैं। फिर यह भी जान लो कि यदि तुम में से कोई ऐसे व्यक्ति की संगत एवं संपर्क में आ जाय, जो परोपकार में अपनी जान खपा दे, तो उपकृत व्यक्ति का भी कर्त्तव्य है कि वह उपकार करनेवाले के प्रति निष्ठा, कृतज्ञता, शुभ भावनाएँ एवं उसकी गोपनीय बातों की रक्षा तथा सफलता की इच्छा अपने हृदय में रखे। यदि आवश्यकता पड़ जाय तो इन भावनाओं को कार्यरूप में परिणत करके भी दिखाए। अल्लाह तुम्हारी सहायता करे। किसी दशा में इस शिक्षा की उपेक्षा न करो, चाहे तुम सुखी हो और चाहे दुखी एवं परेशान, चाहे समृद्ध हो या कष्ट में। कातिब सरीखे सम्मानित व्यवसायवाले के लिए तो यह आदत बड़ी ही अच्छी है।

जब तुममें से कोई हाकिम की श्रेणी पर पहुँच जाय अथवा मनुष्योपयोगी कार्य बड़े पैमाने पर उसके हाथ में आ जायें, तो ईश्वरपरायणता को वह कभी अपने हृदय से न निकाले। कभी उसकी आज्ञाकारिता से विमुख न हो। निर्बल के साथ नरमदिली का व्यवहार करे। पीड़ित के प्रति न्याय करे, कारण कि सभी मनुष्यों को ईश्वर ने उत्पन्न किया है। जो व्यक्ति उसकी संतान के साथ नरमी का व्यवहार करे, वह ईश्वर को बड़ा ही प्रिय होता है। निर्देश एवं निर्णय में न्याय की उपेक्षा न करो। सज्जनों को दान-पुण्य द्वारा सम्मानित करो। राज्य की आय में वृद्धि करो और नगरों को आबाद करो। प्रजा को प्रोत्साहन दो और उनको कष्ट न पहुँचाओ। सभा में सौजन्य एवं शिष्टाचार की मूर्ति बने रहो। खराज के पत्रों पर जब दृष्टि डालो अथवा राज्य के अधिकारों की प्राप्ति का जब प्रश्न आये, तो अत्यधिक कोमलहृदयी बन जाओ। जब किसी व्यक्ति का तुमसे सम्पर्क हो तो उसके स्वभाव को भली-भाँति परख लो। जब उसकी भली-बुरी आदतों का पता लग जाय तो उसकी भली बातों में उसकी सहायता करो और बुरी बातों से उसे उचित एवं सुन्दर ढंग पर बरजो।

तुम्हें भली-भाँति ज्ञात है कि चाबुक-सवार जब चाबुक-सवारी के

सिद्धांतों से भली-भाँति परिचित होता है तो वह अपने घोड़े की आदत एवं स्वभाव का पता लगा लेता है। यदि वह दुलत्ती चलाता है तो वह सवारी के समय उसे नहीं भड़काता, अपितु प्यार से एवं पुचकार कर काम लेता है। यदि वह सधा हुआ है तो सावधानी से बाग सँभाले रखता है। यदि मुँहज़ोर और उद्दंड है तो उसके मुंह एवं सिर को दृष्टि में रखता है। यदि बहुत मचलता है तो तसल्ली देकर वश में कर लेता है। यदि उसमें केवल एक ही ओर भागने की आदत है तो वह उसे भी ठीक करता है। चाबुक-सवारी के यही सिद्धान्त उस व्यक्ति का भी पथ-प्रदर्शन करते हैं जो लोगों पर शासन करता है। लोगों के प्रति उसे सद्-व्यवहार करना चाहिए। उनकी देख-भाल करना तथा उनसे मेल-जोल रखना चाहिए। सत्य तो यह है कि कातिब को चाबुक-सवार से अधिक नरमी एवं सुन्दर व्यवहार की आवश्यकता होती है, कारण कि उसकी शिष्टता बड़ी उच्च श्रेणी की होती है और उसकी कला सम्मानित। उसे ऐसे व्यक्तियों से वार्त्ता एवं विचार-विनिमय करना पड़ता है, जिनसे बात करने में उसे नरमी एवं शिष्टाचार की अधिक आवश्यकता होती है। चाबुक-सवार का संबंध तो एक पशु से होता है, जो न तो उत्तर दे सकता है और न अच्छे-बुरे को समझ सकता है। वह अपने सवार की केवल इतनी ही बात समझता है कि वह उसे जिस ओर मोड़ता है वह मुड़ जाय।

हे कातिबो! ईश्वर तुम पर दया करे। तुम नरमी से व्यवहार करो और यथासम्भव समझ-बूझकर कार्य करो। यदि इस शिक्षा का पालन करोगे तो ईश्वरकृपा से जिसके साथ भी तुम रहोगे, उसके अत्याचार एवं ज़ुल्म से सुरक्षित रहोगे। तुम उसके साथ मेल एवं प्रेमपूर्वक व्यवहार करोगे तो वह तुम्हारे साथ भाइयों के समान प्रेमपूर्वक व्यवहार करेगा। स्मरण रहे कि तुममें से कोई भी अपने उठने-बैठने, वेश-भूषा, सवारी, खाने-पीने, रहन-सहन, सेवक एवं परिजनों के विषय में अथवा अन्य बातों में अपनी श्रेणी से आगे कदम कभी न बढ़ाये, इसलिए कि यद्यपि ईश्वर ने तुमको इस कला द्वारा सम्मानित किया है, किन्तु फिर भी तुम सेवक हो। तुम्हारे लिए सेवा-कार्य की उपेक्षा करना किसी प्रकार उचित नहीं। तुम ज़िम्मेदार एवं रक्षक हो। अपव्ययिता तुम्हारे लिए किसी प्रकार उचित नहीं। सावधानी की दृष्टि से तुम्हारे लिए यह आवश्यक है कि तुम संयम से कार्य करो। अपव्ययिता एवं भोग-विलास के दुष्परिणाम से हर समय भयभीत रहो,

कारण कि इन आदतों से दरिद्रता तो बढ़ती ही है, साथ ही मनुष्य अपमानित अलग होता है। कातिब साहित्यकार भी होता है और सम्मानित व्यक्ति भी, इन बातों का अधिक ध्यान रखना चाहिए। वास्तव में संसार की घटनाओ से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, अतः तुम अपने पिछले एवं भूतकाल के अनुभव से अपने कर्म को सुधारो। ऐसे उपाय करो जो स्पष्ट हों, उनके उद्देश्य सच्चे और परिणाम उत्तम हों।

यह भी समझ लो कि यदि कोई योजना बनानेवाला, अपने ज्ञान एवं सूझ-बूझ का उपयोग न करे तो उसकी समस्त योजनाएँ नष्ट हो जाती है। अतः तुममें से प्रत्येक के लिए आवश्यक है कि जो कुछ भी जिह्वा से निकालो वह खूब सोच-समझकर और जाँच-तोलकर। प्रारम्भिक एवं उत्तरवर्ती वार्त्ता अथवा पत्र-व्यवहार में अधिक विस्तार में न पड़ो। बात के सब पहलुओं को सामने ले आओ, कारण कि कातिब के कार्य के लिए यह परमावश्यक है। इससे बात को अधिक बढ़ाने एवं लम्बे-चौड़े विवरण से भी बचा जा सकता है। ईश्वर से ही सहायता की इच्छा करते रहो और उससे भय करते रहो कि कहीं ऐसी भूल में न पड़ जाओ, जिससे तुम्हारे शरीर, बुद्धि एवं कला को हानि पहुँचे। यदि तुममें से किसी ने यह कल्पना की, अथवा यह कहा कि मेरी कला की सफलता एवं उन्नति, मेरे उपाय एवं परिश्रम का फल है, तो यह उसकी भूल होगी। ऐसा करके तुम ईश्वर को इस बात का अवसर देते हो कि वह तुम्हें तुम्हारे ऊपर छोड़ दे, जो तुम्हारे कार्यों के लिए कदापि उचित न होगा। इसी प्रकार कोई यह भी न कहे कि वह अन्य लोगों की, जो यह व्यवसाय करते है, अपेक्षा अधिक योग्य, समझदार एवं ज्ञानी है, कारण कि यह अहंभाव का द्योतक है। बुद्धिमान् लोग दो व्यक्तियों में अधिक योग्य उसे मानते है जो अहंभाव को अपने निकट न आने दे, अपितु अपने साथियो को अपने मुकाबले में अधिक योग्य एवं कार्य-कुशल समझे। हर एक के लिए आवश्यक है कि वह ईश्वर की देन एवं उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे। अपनी राय पर अभिमान न करे और न अपनी आत्मा की शुद्धता का गुण-गान करे। तुम अपने भाई, संबधी, साथी और क़बीलेवालो को अधिक आगे मत बढ़ाओ-चढ़ाओ। ईश्वर की स्तुति प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है। यह स्तुति उसी समय सम्भव है जब वह उसकी महानता के समक्ष झुके, उसके ऐश्वर्य के सामने अपने को क्षुद्र एवं हीन समझे, उसकी देनों के प्रति कृतज्ञ हो।

अब मैं अपने पत्र के अन्त में उपर्युक्त शिक्षा पर आचरण करने की प्रार्थना करता हूँ, कारण कि जब शिक्षा स्वीकृति-योग्य होती है तो उस पर आचरण भी परमावश्यक होता है। ईश्वर की स्तुति के उपरान्त मेरे पत्र का सारांश यही है, अतः इस बात का उल्लेख मैंने अपने पत्र के अन्त में किया और इसी पर उसे समाप्त किया है। हे विद्यार्थियो एवं कातिब लोगो! ईश्वर अपने सदाचारी एवं नेक दासों का साथ तथा आश्रय हमें और तुम्हें प्रदान करे और हमारे ऊपर दया करे।"

अश् शुर्ता

इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी आजकल इफरीकिया में "हाकिम", उन्दुलुस में "साहिबुल मदीना" तथा मिस्र के तुर्को के राज्य में "वाली" कहलाता है। यह पद राज्य के तलवार के अधिकारी के अधीन होता है। वह अपने आदेशो का पालन उसी से कराता है। यह पद अब्बासियों के राज्यकाल में बनाया गया था और वास्तव में उस व्यक्ति के लिए बना था जो अपराधों की प्रारम्भिक पूछ-ताछ एवं जाँच करता था। जब जाँच पूरी हो जाती थी तो वह अपराधियों को दड दिलाता था। कारण कि अपराधी पर जो अपराध लगाये जाते थे, उनमें शरीअत की ओर से इस कारण जाँच की जाती थी कि जाँच के उपरान्त उचित दंड दिया जा सके। अपराध के प्रमाण एकत्र हो जाने के उपरान्त हाकिम अपराधी से जन-हित की दृष्टि से अपराध स्वीकार कराता था। अतः वह अधिकारी, जो अपराधो की जाँच और अपराध का प्रमाण मिल जाने के उपरान्त, अपराधियो को दड दिलाने का कार्य करता था, काज़ी के निर्णय का पालन कराता था। ऐसे व्यक्ति को 'साहिबुश् शुर्ता' कहते थे।

कभी-कभी साहिबुश् शुर्ता दड एव कसास जारी करने में काजी के अधीन नही, अपितु स्वाधीन होता था। इस पद पर नगर के सम्मानित व्यक्तियो एव उच्चश्रेणी वालो की नियुक्ति होती थी और अब भी होती है, किन्तु साहिबुश् शुर्ता के अधिकार हर खास व आम को प्राप्त नही होते। उसके आदेश केवल दुराचारियो, व्यभिचारियो, धूर्तो, जालसाजो एवं निम्न वर्ग के लोगो पर चलते हैं।

उन्दुलुस के बनी उमय्या के राज्यकाल में यह पद दो विभागों मे विभक्त हो गया। एक शुर्ता कुबरा[1] कहलाया और दूसरा शुर्ता सुगरा[2]। जिसे शुर्ता कुबरा का

१. बड़ी पुलिस। २. छोटी पुलिस।

पद प्राप्त होता है वह विशेष सम्मानित व्यक्तियो, सुल्तान के सम्बन्धियो एवं उच्च वर्ग के लोगो के अत्याचारो, अपराधो एव कुकृतियो का दड देता है। शुर्ता सुगरा का अधिकारी केवल नगर के साधारण लोगो से सम्बन्धित रहता है और ऐसे ही लोगो को दंड देता है। शुर्ता कुबरा का अधिकारी सुल्तान के द्वार पर आसन ग्रहण करता है। लोग उसके आदेशो का पालन करने के लिए उसके सामने बैठे रहते है। यह पद इतनी उच्च श्रेणी का होता था कि सल्तनत के महान् व्यक्तियो को ही दिया जाता था, यहाँ तक कि अधिकाश लोग इस पद से उन्नति करके वज़ीर अथवा हाजिब भी हो जाते थे।

मगरिब के मुवह्हेदीन के यहाँ भी इस पदाधिकारी को बड़ा सम्मान प्राप्त था और वह पद प्रत्येक खास व आम को नही दिया जाता था, अपितु बड़े-बडे मुवह्हेदीन ही इसके पात्र समझे जाते थे। किन्तु सल्तनत के सम्मानित लोगो को यह पद न प्राप्त होता था। अब इस पद का महत्त्व इतना घट गया है कि मुवह्हेदीन के अतिरिक्त अन्य लोगो को भी यह पद प्राप्त होने लगा है और सल्तनत के आश्रित लोग भी इस पद पर नियुक्त होने लगे है। मगरिब में मरीनी राज्यकाल में इस समय यह पद मरीनी दासो एव आश्रितो को प्राप्त है।

पहले तुर्क सुल्तानो के अधीन तुर्क लोग इस पद पर नियुक्त होते थे, अथवा पिछले कुर्द सुल्तान की सतान इसकी पात्र समझी जाती थी। उनकी नियुक्ति इस दृष्टिकोण से होती थी कि उनके स्वभाव में कठोरता की कितनी मात्रा है, क्योकि वे आदेश देने में निर्भीक एव निडर होते थे। ऐसे ही लोग उपद्रव के दमन हेतु उपयुक्त होते हैं और दुराचार एव व्यभिचार की जड़ काट देते हैं। व्यभिचारियो के समूह को छिन्न-भिन्न कर देते है और शरा के अनुसार दड जारी कराते है। यदि ऐसा न हो तो नगर की शान्ति की रक्षा असम्भव हो जाय।

कयादतुल असातील[1]

मगरिब एव इफरीकिया में इस पद की गणना सल्तनत के बड़े पदो में होती है। यह अधिकारी भी "तलवार के अधिकारी" के अधीन रहता है और उसी के अधीन इसकी व्यवस्था होती है। ये लोग क़ायेदुल असातील को "अलमिलन्द" भी कहते है। यह शब्द फिरग भाषा से लिया गया है।

१. जल-सेना विभाग का मुख्य अधिकारी।

इस पद की प्रथा केवल इफरीकिया एव मगरिब में इस कारण है कि ये दोनों देश भूमध्य-सागर के दक्षिणीय तट पर स्थित है और दक्षिण में ही बरबरो का देश क्योटा से इस्कन्दरिया तथा शाम तक फैला हुआ है। उत्तरीय तट पर उन्दुलुस, फिरग एव सकालिया प्रदेश स्थित है। यह तट रूम[1] एव शाम तक फैला हुआ है। इस समुद्र के तट पर बसनेवालो के कारण इसका नाम रूम-सागर पड गया है और शाम-सागर भी। इस तट के दोनो ओर तथा आस-पास के निवासी जहाज़ चलाने की कला में अन्य क़ौमो की अपेक्षा श्रेष्ठ है। रूम, फिरग तथा कोत[2] भूमध्य-सागर के उत्तरीय तट पर बसे हुए है। उनका अधिकाश युद्धकार्य एवं व्यापार समुद्र द्वारा ही होता है, इसी कारण वे जहाज चलाने एव समुद्रीय युद्ध में बडे दक्ष है। जब उन लोगो ने दक्षिणीय तट पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया, जिस प्रकार रूम वालो ने इफरीकिया पर तथा कोत ने मगरिब पर अधिकार जमा लिया था, तो वे अपने जहाज़ी बेड़े लेकर पहुँच गये और उन पर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार वे बरबर पर छा गये और राज्य उनके हाथ से निकल गया। वहाँ उन्होंने बडे-बडे नगर, उदाहरणार्थ करताजना, सबीतला, जलूला, मुरनाक, शरशाल एवं तनजा इत्यादि आबाद किये। करताजना का बादशाह तो इन विजयी लोगो के आने के पहले से ही रूम के बादशाह से युद्ध किया करता और सेना से भरे हुए जहाज़ी बेडे रूम के विरुद्ध भेजा करता था। सक्षेप में समुद्रतट के निवासी आज से नही, अपितु प्राचीन काल से जहाज चलाने एव समुद्रीय युद्ध में अत्यधिक दक्ष एव निपुण होते चले आये है।

जब मुसलमानो ने मिस्र विजय कर लिया तो हज़रत उमर बिन ख़त्ताब ने अमर बिन आस को लिखा कि समुद्र के विषय में मुझे सूचना भेजो। उसने उत्तर में लिखा कि "समुद्र एक बडा ससार है, जिस पर शक्तिहीन मनुष्य को इस प्रकार फिरना पडता है, जिस प्रकार एक लकडी पर कीडे को।" यह सुनकर हज़रत उमर ने मुसलमानो को समुद्रीय यात्रा से रोक दिया और फिर अरबो ने इसका साहस ही नही किया। जो लोग हज़रत उमर को सूचना दिये बिना समुद्रीय यात्रा हेतु गये उन्हें दड भोगना पड़ा। उदाहरणार्थ, अरफजा बिन हरसमा अल अज़दी तथा बजीला का सरदार, जिसने उमान पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी, इनके नाम इस बारे में

१. बैज़न्टाइन।
२. गोथ।

लिये जा सकते हैं। हज़रत उमर को जब इसका पता चला तो आपने उसको बहुत फटकारा और उसकी निन्दा की। हज़रत मुआविया के राज्यकाल तक यही दशा रही, पर हज़रत उमर ने इसके बाद जहाज़ चलाने एव समुद्रीय युद्ध की अनुमति प्रदान की। इस ऐतिहासिक घटना का कारण यह है कि प्रारम्भ में अरब वालो को बदवियत के कारण जहाज़ चलाने का ज्ञान न था। वे इस कला में कुशल न थे। इसके विपरीत रूमियों तथा फिरंगियो को समुद्र का सर्वदा सामना करना पडता था। उसकी यात्रा करते-करते वे जहाज़ चलाने में बडे दक्ष हो गये थे।

जब अरबों का राज्य दृढ हो गया, सल्तनत का गौरव बढा और अजमी कौमें उनकी दासता के बंधन में आयी, तो बड़े-बड़े कुशल कारीगर उनके पास पहुँच गये। समुद्रीय यात्रा के लिए अरबो ने बाहरी लोगो की सेवाएँ प्राप्त की और फिर उनके साथ रहकर यह लोग जहाज़ चलाने में दक्ष हो गये। इन्होने अच्छी योग्यता पैदा कर ली। तब इन्होंने भी समुद्र में ही जेहाद किये, नौकाएँ एव जहाज़ स्वयं तैयार किये और सेना एव अस्त्र-शस्त्रो से भर-भरकर जहाजी बेडे समुद्र-पार काफिरों से युद्ध हेतु भेजे। इन्होने विशेष रूप से उन देशो एव राज्यो पर आक्रमण किये जो समुद्रीय तट पर स्थित थे, जैसे कि शाम, इफरीकिया, मगरिब एव उन्दुलुस इत्यादि पर।

खलीफा अब्दुल मलिक ने हस्सान बिन नोमान, इफरीकिया के हाकिम को आदेश भेजा कि वह तूनिस में जहाजो एव समुद्रीय यन्त्रो का एक कारखाना खोले, कारण कि उसे जेहाद से बडी रुचि थी। उसकी इच्छा थी कि जेहाद की तैयारियाँ बहुत बडे पैमाने पर की जायें। इस प्रकार ज़ियादतुल्लाह प्रथम बिन इबराहीम बिन अल अग़लब के समय में, मुख्य मुफ्ती असद बिन फुरात[१] के नेतृत्व में सिसली विजय हुआ।[२] कूसरा[३] पर भी उसी के राज्यकाल में विजय प्राप्त हुई और असद बिन अल फुरात ने उसे भी विजय किया। मुआविया बिन अबी सुफियान के राज्यकाल में मुआविया बिन हुदैज ने भी सकलिया (सिसली) पर आक्रमण किया, किन्तु उसे विजय न कर सका। यह सौभाग्य ईश्वर ने असद बिन अल फुरात के भाग्य में लिखा था, जो उसे प्राप्त हुआ।

१. असद का जन्म १४२ हि० (७५८–६० ई०) में हुआ और मृत्यु २१३ हि० (८२८ ई०) में हुई।
२. ८२७ ई०।
३. Pantelleria

फिर उबैदीईन एव (उन्दुलुस के) बनी उमय्या के राज्यकाल में इफरीकिया एव उन्दुलुस के बेड़े एक-दूसरे पर आक्रमण करते रहे और युद्ध एवं रक्तपात होता रहा। समुद्रीय तटवर्ती प्रदेश नष्ट हो गये। अब्दुर्रहमान नासिर के राज्यकाल में उन्दुलुस के जहाजो की सख्या २०० के लगभग तक पहुँच गयी थी। इफरीकिया के जहाज़ भी लगभग इतने ही थे। उन्दुलुस का कायेदुल असातील[1] इब्ने रूमाहिस था। बजाया एव मरिया उन्दुलुस के बेडो के बडे-बडे बन्दरगाह थे। प्रत्येक नगर से जहाज बनकर यही एकत्र होते थे। प्रत्येक बेडे का पृथक् निरीक्षक एव अधिकारी होता था जो जहाज चलाने की कला में दक्ष होता था। युद्ध एव अस्त्र-शस्त्र की देख-भाल उसी के सुपुर्द होती थी। जहाज को वायु अथवा डाँडो द्वारा चलाने और बन्दरगाह पर उसके लगर डालने का मामला जहाज़ के रईस से सम्बन्धित था।

जब जेहाद हेतु प्रस्थान अथवा किसी शाही उद्देश्य हेतु जहाज़ो के बेड़े प्रस्थान के लिए एक स्थान पर एकत्र होते तो बादशाह उनको अपनी सेना, दासो अथवा सेवको से भरता और राज्य के किसी उच्च पदाधिकारी के अधीन उन्हें उनके निश्चित स्थान की ओर भेजता था। फिर सब इस बात की प्रतीक्षा किया करते कि ईश्वर उन्हें विजय, सफलता एव लूट की धन-सम्पत्ति के साथ वापस लाये। मुसलमान अपने राज्य में समुद्र के चारो ओर छा गये थे और उनकी सल्तनत को विशेष ज़ोर एव एक खास शान प्राप्त हो गयी थी। समुद्र की दूसरी ओर की ईसाई कौमो के भी बेड़े उनकी टक्कर के न थे। इस प्रकार वे समुद्रीय द्वीप एव तटवर्ती स्थानो को एक-एक करके विजय करते रहे। इतिहास इन विजयो एव लूट की धन-सम्पत्ति का द्योतक है।

इन लोगो ने उन बहुत-से द्वीपो पर भी अधिकार जमा लिया, जो समुद्रीय तट से दूर एक ओर सटे हुए स्थित थे। यानी मुयूरका[2], मनूरका[3], याबसा[4], सरदीनिया[5], सकलिया[6] कूसरा[7], मालता[8], अकरीतिश[9], कबरस[10], रूम[11] एव फिरग के अन्य

१. जहाजी बेड़े का अध्यक्ष।
२. Mallorca
३. Minorca
४. Ibiza
५. Sardinia
६. Sicily
७. Pantelleria
८. Malta
९. Crete
१०. Cyprus
११. Byzantine

देश। अवुल कासिम शीई[1] और उसके उत्तराधिकारी अपने वेड़ो को महदिया से धर्म-युद्ध के लिए जेनोवा भेजते और वे विजय के सुखद समाचार तथा लूट की धन-सम्पत्ति लेकर लौटते। उन्दुलुस के मुलूकुत्तवाएफ में से दानिया के हाकिम मुजाहिद आमरी ने वेड़े भेजकर सरदीनिया द्वीप को ४०५ हि० (१०१४-१५ ई०) में विजय कर लिया, यद्यपि ईसाइयो ने इसे पुनः शीघ्र वापस ले लिया।

सक्षेप में इस काल में मुसलमानो ने समुद्री तट के अधिकाश भाग पर अधिकार जमा लिया था और हर समय उनके वेडे समुद्र में आते-जाते दृष्टिगत होते थे। मुसलमान समुद्री वेडो के ज़रिये जल-मार्ग से महाद्वीप तक, जो रूम-सागर के उत्तरीय तट पर स्थित है, पहुँचने लगे और वहाँ फिरंग प्रदेश को छिन्न-भिन्न करने लगे, जैसा कि वनू अविल हुसेन[2] सकलिया के वादशाहो के राज्यकाल में, जो उवैदीईन के प्रचारक एव समर्थक थे, हुआ। ईसाई अपने वेडो को भय के कारण उत्तर-पूर्वी ओर फिरग के समुद्रीय तटो, सकलिया एव रूमानिया के द्वीपो तक हटा ले गये और मुसलमान उन पर सिह की भाँति टूट पडने लगे। सक्षेप में समुद्रीय तट के अधिकाश भागो को मुसलमानो ने अपनी सेना एव अपने अस्त्र-शस्त्रो द्वारा अपने अधीन कर लिया था। वे कभी सधि के उद्देश्य से और कभी युद्ध के उद्देश्य से समुद्र में घूमते फिरते थ, जब कि ईसाइयो के जहाज़ दिखाई तक न पडते थे।

जब उवैदीईन एव (उन्दुलुस के) वनी उमय्या का राज्य शक्तिहीन हो गया तव ईसाइयो ने भूमध्य-सागर के पूर्वी द्वीपो की ओर हाथ वढाया और सकलिया (सिसली), अकरीतिश (क्रीट) एव मालता पर अधिकार जमा लिया। फिर वे लोग शाम के तट की ओर वढे और तरावलस[3], असकलान[4], सूर[5] एव अक्का[6] विजय कर लिये और वे शाम के तटो पर छागये। उन्होंने वैतुल मुकद्दस पर भी अधिकार जमाया और वहाँ एक गिरजा

१. दूसरा फातेमी वादशाह, जिसने ९३४ से ९४६ ई० तक राज्य किया। उसके अधिकाश आक्रमण ९३४-३५ ई० में हुए।
२. सिसली के वनी कलव का १०वीं शताब्दी ईसवी के अन्त तथा ११वीं शताब्दी ई० के प्रारम्भ का हाकिम।
३. Tripoli
४. Ascalon
५. Tyre
६. Acco

घर का निर्माण कराया, ताकि वे अपनी धार्मिक प्रथाओ एवं इबादतों को शान्ति-पूर्वक कर सकें।

इधर बनू ख़जरून से उन्होने तरावलस ले लिया और तदुपरान्त काबिस एवं सफाक़िस पर भी विजय प्राप्त करके उन पर जिज़िया लगा दिया। फिर उबैदीईन की ख़ास राजधानी महदिया को भी बुलुग्गीन बिन ज़ेरी के उत्तराधिकारियो के हाथ से छीन लिया। सक्षेप में पाँचवी शताब्दी[1] हि० में ईसाई पुनः भूमध्य-सागर पर छा गये। मिस्र एव शाम के राज्यो में मुसलमानो की समुद्रीय शक्ति कमज़ोर पड़ गयी और अन्त में समाप्त हो गयी। अब तक मुसलमानो का इस ओर कोई ध्यान नही है, यद्यपि उबैदीईन के राज्यकाल में इन्ही मुसलमानो ने, जैसा कि उनके इतिहास से पता लगता है, समुद्रीय शक्ति को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाया था।

जब जहाजी बेडो की चर्चा ही समाप्त हो गयी तो समुद्रीय बेडे के अधिकारी का पद भी न रहा। अब केवल इफ़रीकिया तथा मगरिब में ही यह पद मिलता है, किन्तु भूमध्य-सागर का पश्चिमी भाग अब भी शक्तिशाली युद्ध-पोतो से भरा हुआ और शत्रुओं के उत्पात से सुरक्षित है।

लम्तूना के राज्यकाल में बेडे के अधिकारी का पद कादस[2] प्रायद्वीप के सरदार बनू मैमून अपने अधिकार में किये हुए थे। जब लम्तूना ने अब्दुल मोमिन की अधीनता स्वीकार की तो युद्ध का बेडा अब्दुल मोमिन के हाथ में आया और उसी के समय में जहाज़ो की कुल सख्या १०० तक पहुँच गयी।

तदुपरान्त छठी शताब्दी[3] हि० में मुवह्हेदीन को उन्नति प्राप्त हुई और उन्होने समुद्र के दोनो तटो पर अधिकार जमा लिया। उन्होने अपने समुद्री बेड़ो की बहुत बडे पैमाने पर उन्नति की। मुवह्हेदीन के समुद्री बेडे का अधिकारी अहमद सिकिल्ली था। उसके पूर्वज सदगियान के निवासी थे, जो सदवीकिश की एक शाखा है, वे जरबा द्वीप में आकर बस गये थे। ईसाई लोग उसे बन्दी बना ले गये थे और उसका पालन-पोषण उन्ही के पास हुआ। फिर सकलिया के हाकिम[4] ने उसको बन्दी-गृह से छुडाकर अपने आश्रय में ले लिया। जब सकलिया के हाकिम की मृत्यु हो गयी तो उसका पुत्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। कुछ कारणो से वह अहमद से रुष्ट हो गया, अहमद प्राण के भय से सकलिया से भागकर तूनुस पहुँचा और बनू अब्दुल

१. ११वीं शताब्दी ईसवी।
२. Cadiz.
३. १२वीं शताब्दी ईसवी।
४. रोज़र द्वितीय।

मोमिन के हाकिम के यहाँ अतिथि हुआ। उसके बाद यहाँ से भी प्रस्थान करके मराकश पहुँचा। वहाँ खलीफा यूसुफ बिन अब्दुल मोमिन[1] ने उसका भली-भाँति स्वागत किया और अत्यधिक इनाम एव दान के उपरान्त वेडे के सरदार का पद उसे प्रदान कर दिया। जब अहमद को यह पद प्राप्त हुआ तो उसने ईसाइयो से बहुत-से युद्ध किये। मुवह्हेदीन के राज्यकाल के इतिहास से उसके विषय में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार का उदाहरण न तो पिछले इतिहासो में मिलता है और न वाद के।

जब मिस्र एवं शाम के सुल्तान सलाहुद्दीन युसुफ बिन अय्यूब[2] ने अपने राज्यकाल में शाम के सीमान्त प्रदेशो को ईसाइयो के हाथ से फिर वापस लेना चाहा और बैतुल मुकद्दस से भी उन्हें हटाना निश्चय किया, तो बैतुल मुकद्दस के आस-पास से, जो ईसाइयो के अधीन था, समुद्री वेडे उनकी सहायतार्थ पहुँच गये और अपनी सख्या एव शक्ति से ऐसी सहायता पहुँचायी कि इस्कन्दरिया के जहाज उनका मुकाबला न कर सके थे। कारण कि भूमध्य-सागर के पूर्वी तट के आस-पास ईसाई बहुत समय से अधिकार जमाये हुए थे और उनके वेडे वहाँ बहुत बडी सख्या में पड़े थे। उनके विपरीत मुसलमान अपनी समुद्रीय शक्ति, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके है, बहुत पहले से खो चुके थे। इस कारण सलाहुद्दीन ने मगरिब के सुल्तान याकूब अल-मसूर के पास, जो उस समय मुवह्हेदीन का बादशाह था, अब्दुल करीम बिन मुनक़िज़ को भेजा। यह अब्दुल करीम शैज़र के बनू मनकिज़ के उस वश से था, जो सलाहुद्दीन के राज्यकाल तक शासन करता चला आया था। सलाहुद्दीन ने अब्दुल करीम द्वारा मगरिब के सुल्तान से युद्ध के वेड़े माँगे, ताकि ईसाइयो की कुमक को रोका जा सके और शाम की सीमा पर मुसलमानो की सहायता हो सके। सलाहुद्दीन ने अब्दुल करीम के हाथ मसूर के नाम एक पत्र भी भेजा जो फाज़िल वेसानी[3] का लिखा हुआ था। इस पत्र को एमाद अल इसफहानी[4] ने

१. शासनकाल ११६३–११८४ ई०।

२ मलिक अन्नासिर सलाहुद्दीन यूसुफ प्रथम बिन अमीर नज्मुद्दीन अय्यूब, सलीबी युद्धों (क्रूसेड) का प्रसिद्ध योद्धा (जन्म तकरीत ११३८ ई०—मृत्यु ११९३ ई०)। यूरोप के साहित्य में वह सलाडिन के नाम से प्रसिद्ध है।

३. अब्दुर्रहमान बिन अली अल-क़ाज़ी अल-फ़ाज़िल वेसानी, जन्म ५२९ हि० (११३५ ई०), मृत्यु ५९६ हि० (१२०० ई०)।

४. मुहम्मद बिन मुहम्मदएमादअल-इसफहानी, जन्म ५१९ हि० (११२५ ई०), मृत्यु ५९७ हि० (१२०१ ई०)।

"फतहुल कुदसी" में उद्धृत किया है। यह पत्र इन शब्दों से प्रारम्भ किया गया था— "अल्लाह हमारे सरदार के लिए सफलताओ एव आशीर्वाद के द्वार खोल दे।" इस पत्र में मसूर को "अमीरुल मोमिनीन" की उपाधि द्वारा सम्बोधित न किया गया था, अत. मंसूर को बड़ा बुरा लगा, किन्तु उसने अपनी भावनाओ को छिपाये रखा और राजदूत को बड़े स्नेह एवं कृपा-भाव से ठहराया, किन्तु फिर उसे असफल विदा कर दिया गया। इस ऐतिहासिक घटना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि केवल मगरिब के सुल्तान के पास उस समय बडे अच्छे युद्ध के बेड़े थे, और यह भी ज्ञात हुआ कि ईसाइयो ने भूमध्य-सागर की पूर्वी दिशा में अपना पूर्ण अधिकार जमा रखा था और मिस्र एवं शाम के राज्यों का कोई ध्यान समुद्रीय शक्ति की ओर न था और आवश्यकता पड़ने पर उन्हे मग़रिब की ओर हाथ फैलाना पड़ता था।

जब याकब अल-मसूर की मृत्यु हो गयी और मुवह्हेदीन का राज्य सकट में पड गया तो जलालका[1] ने उन्दुलुस के बडे भाग पर अधिकार जमा लिया। मुसलमान विवश होकर समुद्र तट की ओर खिसक आये और उन्होने भूमध्य-सागर की पश्चिमी दिशा के द्वीपो पर अधिकार जमा लिया। समुद्र पर मुसलमानो की शक्ति पुन. बढ़ गयी। उन्होंने बहुत बड़ी सख्या में युद्ध के बेडे एकत्र कर लिये। सक्षेप में मुसलमानो ने अपनी खोयी हुई शक्ति पर पुनः अधिकार जमा लिया। अब वे ईसाइयों से बराबर का मुकाबला करने लगे। इस प्रकार सुल्तान अबुल हसन[2] ग़रनाता के बादशाह के राज्यकाल में ऐसा ही हुआ कि जब उसने जेहाद का संकल्प किया और उसके युद्ध के जहाजो का अनुमान लगाया गया तो सख्या एव शक्ति में वे ईसाई जहाजो से कुछ कम न थे।

इसके उपरान्त मुसलमानों की समुद्रीय शक्ति का पुन. पतन होने लगा। मगरिब में बदवी आदतो का ज़ोर बढ जाने और साथ-ही-साथ उन्दुलुस की प्रथाओं से अनभिज्ञ होने के कारण वे जहाज चलाने की कला को भूल गये। इसके विपरीत ईसाइयों ने जहाज चलाने की कला में खूब योग्यता पैदा कर ली और अपना अभ्यास पहले से अधिक बढा लिया। उन्होने उन सब कलाओ को सीख लिया जो समुद्रीय युद्ध मे प्रभुत्व के लिए आवश्यक है। मुसलमानों में यदि किसी को जहाज़ चलाने की

१. Galician.
२. अबुल हसन ने १३३१ ई० से १३५१ ई० तक राज्य किया।

कला में दक्षता प्राप्त हुई, तो वे थोड़े-से मुसलमान थे जो तटवर्ती नगरो में वसे थे, किन्तु इन बेचारो को सहायता एव किसी राज्य के आश्रय की, जो उनको सैनिक सगठन सिखाये तथा नियमित रूप से उस दिशा में उनकी सेवाएँ प्राप्त करे, अधिक आवश्यकता थी ।

मगरिव की सल्तनत में अव भी समुद्रीय वेड़े के अधिकारी का पद वर्त्तमान है। जहाज़ वनाने एव चलाने की प्रथा जारी है। जव कोई सकट आ जाता है और समुद्रीय युद्ध छिड जाता है, तो उस समय के लिए युद्ध के वेडे तैयार रहते है। मगरिव-वालो के मस्तिष्क एव हृदय में यह विचार आरूढ है कि मुसलमानों का समुद्र पार वसनेवाले ईसाइयो पर आक्रमण करके उनके राज्य को विजय करना आवश्यक एव अनुपेक्ष्य है। इन्ही विचारो के कारण वहाँ के मुसलमान काफिरो पर आक्रमण करने के लिए हर समय उद्यत रहते है और युद्ध के वेड़ो को तैयार रखते है, कारण कि समुद्रीय युद्ध जगी जहाजो के विना किसी प्रकार नही लड़ा जा सकता। "ईश्वर ही धर्म-निष्ठ मुसलमानो का मित्र है।"[1]

(३५) सल्तनतो मे तलवारवालो एव क़लमवालो के पदो का पारस्परिक महत्त्व

समझ लीजिए कि सल्तनत का शासक राज्यव्यवस्था के सचालन में तलवार एव कलम दोनो पर निर्भर होता है, किन्तु जिस समय सल्तनतवाले राज्य की नीव डाल रहे हो, उस समय कलम की अपेक्षा तलवार की अधिक आवश्यकता पडती है। कारण कि उस समय कलम राज्य का एक सेवक मात्र होती है, जिसकी योग्यता इतने पर ही समाप्त हो जाती है कि वह शाही आदेशो को राज्य में जारी करती है। किन्तु तलवार तो सल्तनत की स्थापना में सल्तनतवालो का वरावर का हाथ वटाती है और वरावर की सहयोगी होती है। यही सम्बन्ध तलवार का कलम से उस समय भी स्थिर रहता है जव "असवियत" शक्तिहीन होकर अपने जीवन के अन्तिम दिन गिन रही होती है। उस समय भी सल्तनत अपना अस्तित्व वनाये रखने के लिए तलवारवालो पर ही अवलम्वित होती है, ताकि वे उसको जीवित रखें और उसकी ओर से प्रत्येक कष्ट एव सकट दूर करें। इस प्रकार तलवार को कलम पर सल्तनत

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

के प्रारम्भ एवं अत दोनों ही कालो मे प्राथमिकता प्राप्त होती है। यही कारण है कि प्रारम्भ में तलवारवाले उच्च पदो पर आरूढ़ हो जाते हैं और समृद्ध एव बड़े-बड़े जागीरदार बन बैठते हैं।

सल्तनत के मध्य युग में सुल्तान एक प्रकार से तलवारवालो की उपेक्षा कर सकता है। सल्तनत की नीव दृढ हो चुकती है और उस समय उसका पूरा ध्यान सल्तनत से लाभान्वित होने की ओर आकृष्ट रहता है, उदाहरणार्थ खराज इत्यादि वसूल करना एवं उसे सुव्यवस्थित करना, सल्तनत के ऐश्वर्य को बढाना और प्रत्येक दिशा में उसके आदेश जारी करना। यह सब उद्देश्य कलम द्वारा ही प्राप्त होते हैं और वही उनकी सहायक होती है। तलवार मियान में विश्राम करती है। यदि राज्य में कोई अकस्मात् दुर्घटना हो जाय अथवा देश में अशान्ति फैल जाय तो तलवार पुन. अपना कार्य प्रारम्भ कर देती है। इन अवसरो के अतिरिक्त तलवार की कोई आवश्यकता नही पड़ती। अत. राज्य के मध्य-युग में कलमवाले उच्च पदो पर आरूढ एव समृद्ध होते हैं। वे वादशाह के विश्वासपात्र होते है और एकान्त मे उसके पास आते-जाते है। इसका यह कारण है कि कलम राज्य के लाभो के उपभोग का साधन बनती है। राज्य की विभिन्न दिशाओ को सुव्यवस्थित करती है और सल्तनत के ऐश्वर्य में वृद्धि करती है। इस प्रकार जो वजीर कलम के धनी होते हैं, वे बादशाह के मुँह-लगे हो जाते है। इसके विपरीत उस उमय "अहले सैफ" की बादशाहों को कोई आवश्यकता नही रहती। वे बादशाह के हृदय से दूर, अपितु उसके आतक से हर समय भयभीत रहते हैं।

अबू मुस्लिम के इस वाक्य में इसी तथ्य की ओर सकेत है। यह वाक्य उसने उस समय कहा था जब मसूर ने उसको अपने पास बुलवाया था। उसने कहा था—"हमने फारस के दार्शनिको की यह शिक्षा याद कर रखी है कि जब सल्तनत दृढ़ता एव शान्ति के मैदान में प्रविष्ट हो जाय तो सल्तनत के वज़ीर से बहुत भय करना चाहिए, कारण कि ऐसे समय राज्य में उसी को उच्च अधिकार प्राप्त होते हैं।"

(३६) सल्तनत एवं सुल्तान के विशेष चिह्न

ज्ञात होना चाहिए कि बादशाह के कुछ विशेष चिह्न होते है, जिनकी आवश्यकता उसके शाहाना ठाट-बाट को होती है और जिनके कारण वह अपनी प्रजा, मित्रो एवं राज्य के पदाधिकारियो से पृथक् पहचाना जाता है। उनमें से जो चिह्न

अधिक प्रसिद्ध हैं, उन्हें हम अपनी सूचना के अनुसार लिपिबद्ध करते हैं। "और उसे सभी विद्वानो से अधिक ज्ञान प्राप्त है।"[१]

आलह[२]

राज्य का चिह्न आलह है, अर्थात् पताका उड़ाना, तबल, तम्बूर, बिगुल एव शख बजवाना। अरस्तू ने "किताबे सियासत" में लिखा है कि इन वस्तुओ का उद्देश्य शत्रुओ को युद्ध में डराना एव आतकित करना होता है, कारण कि भयकर स्वर आत्मा को भयभीत कर देते है। सच पूछिए तो रण-क्षेत्र के ये सब उपकरण उत्तेजनाप्रद गिने जाते है, प्रत्येक व्यक्ति इनसे स्फूर्ति अनुभव करता एव साहस प्राप्त करता है। अरस्तू का यह दृष्टिकोण यद्यपि कुछ सत्य-सा और एक सीमा तक विश्वसनीय भी है, किन्तु वास्तविक रहस्य कुछ और है। वह रहस्य यह है कि आत्मा सगीत एव सुखद स्वर सुनने पर एक विशेष प्रसन्नता एवं हर्ष का अनुभव करती है और इतनी अचेत हो जाती है कि उसे कठिन से कठिन कार्य भी सरल ज्ञात होने लगते है। ऐसी अचेत दशा में कभी-कभी मनुष्य अपने प्राण पर भी खेल जाता है। यह उत्तेजना केवल मनुष्य तक ही सीमित नही, मूक पशुओ तक में वर्त्तमान है, उदाहरणार्थ ऊँट हुदी[३] से मस्त हो जाता है और घोडा सीटी से झूमने लगता है। जब ध्वनि सगीत के विशेप सिद्धातो के अनुसार निकलती है तो वह शरीर में आग लगा देती है, उदाहरणार्थ उत्तम स्वरवाले सगीतज्ञो का सगीत सुननेवालो को लोट-पोट कर देता है। अजम के बादशाह इसी कारण सगीत के यत्र भी अपने साथ रखते थे और सगीतज्ञ शाही सेना के चारो ओर गाते-बजाते और वीरो को ऐसा गरमा देते थे कि वे प्राण त्यागने पर उद्यत हो जाते थे। हमने स्वय देखा है कि अरब के युद्धो में सेना के समक्ष गायक पद्य एव कविताएँ पढते और गाते-बजाते चलते है और वीरों को ऐसा उभार देते है कि फिर उन्हें अपने प्राणो की सुध-बुध नही रहती और वे तत्काल रण-क्षेत्र में कूद पड़ते है और शत्रु से भिड जाते है। इसी प्रकार मगरिब में ज़नाता कौम में यह प्रथा है कि कवि सेना की पक्तियो के समक्ष चलते है और गाते जाते है। वे ऐसे स्वर में गाते है कि द्वार एव दीवारो को हिला डालते है और कायर को भी वीर बना

१ क़ुरान शरीफ से उद्धृत।
२. बादशाही के कुछ प्रमुख चिह्न।
३. अरब के ऊँटवालो का विशेप गाना, जिसे वे ऊँट चलाते समय गाते है।

देते है। वे अपनी भाषा में उस सैनिक गीत को "ताजूगायेत" कहते है। इन घटनाओ एव तथ्यो का रहस्य यही है कि इन उपायो से आत्मा को उत्तेजना एव प्रसन्नता प्राप्त होती है और वीरता की भावनाएँ जागृत होती है।

विभिन्न रग की पताकाओ, उनकी अधिकता एव लम्बाई का उद्देश्य भी शत्रु को भयभीत एव आतकित करना है, किन्तु कभी-कभी भय एव आतक अग्रसर होने की शक्ति को बढा देते है एव मनुष्य को निर्भय बना देते है, कारण कि मनुष्य की मनोवृत्ति एव भावनाएँ बडी विचित्र है। मनुष्य की बुद्धि उन्हें समझ नही सकती। फिर सुल्तान एव सल्तनतें उपर्युक्त विशेषताओ का प्रयोग करने में विभिन्न प्रकार से कार्य करती है। कुछ में इनकी अधिकता एव बहुतायत होती है और कुछ में कमी तथा न्यूनता। इनका आधार सल्तनत के छोटे-बडे होने पर है। इनमें झडो की प्रथा का जहाँ तक सम्बन्ध है, वह युद्धो में आज से नही, अपितु सृष्टि की रचना के समय से है। कौमो ने युद्ध में झडो के प्रयोग को अपना सैनिक नियम बना रखा है। इस प्रकार स्वय मुहम्मद साहब के शुभ राज्यकाल मे सेना में पताकाओ का प्रयोग हुआ और इसी प्रकार खलीफाओ के काल में भी।

रहा नक्कारा इत्यादि, तो मुसलमान अपने प्रारम्भिक राज्यकाल में इसका प्रयोग न करते थे, कारण कि वे सल्तनत की शान व शौकत एव अनावश्यक दिखावे को मिथ्या एव व्यर्थ समझते थे। इनको वे कोई महत्त्व न देते थे। अत जब सल्तनत ने खिलाफत का स्थान लिया, सासारिक भोग-विलास एव समृद्धि में मुसलमानो की रुचि बढी और फारस एव रूम की प्राचीन कौमें, जो प्राचीन काल से राज्य करती चली आ रही थी, उनके साथ घुली-मिली और उनको शाही ऐश्वर्य एव गौरव की योजनाएँ समझायी, तो मुसलमानो ने अन्य चीजो के साथ तबला इत्यादि बजाना भी पसन्द किया। बादशाहो ने स्वय भी इस प्रथा का पालन किया और अपने आमिलो को भी यही आदेश भेजे, ताकि इस प्रकार राज्य एव राज्यवालो के ऐश्वर्य तथा गौरव का प्रदर्शन हो। कभी-कभी अब्बासी अथवा उबैदीईन खलीफा सीमान्त के किसी हाकिम अथवा सेनापति के लिए झडे तैयार कराते और उसको उसके कार्य अथवा अभियान पर अपने महल या उस व्यक्ति के घर से उन पताकाओ सहित रवाना करते, फलत. उसका प्रस्थान इस शान से होता कि अत्यधिक सेना तथा पताकाएँ उठानेवाले उसकी सवारी के साथ-साथ होते। वादन-यत्र भी साथ-साथ रहते और इस प्रकार उसके ऐश्वर्य एव गौरव में वृद्धि कर दी जाती थी। खलीफा तथा आमिल के सैनिक दस्तो में केवल पताकाओ की सख्या एव रग के आधार पर भेद-भाव किया जा सकता था।

उदाहरणार्थ अब्बासियों की पताकाएँ काले रग की होती थी। इस प्रकार वे इस रंग से अपने वंश के शहीदो का शोक मनाते थे और इसे वनी उमय्या की हत्या एव उनके विनाश की स्मृति का चिह्न समझते थे, अत अब्बासियो को "मुसव्वेदह"[1] कहा जाता था।

उसके बाद जब अब्बासी राज्य छिन्न-भिन्न हुआ और अलवियो ने प्रत्येक दिशा से उन पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया, तो अलवियो ने शत्रुता प्रदर्शित करने के लिए अपनी पताकाएँ सफेद रग की बना ली, अत वे "मुवय्येजह"[2] कहलाये। उबैदीईन के पूरे राज्यकाल में अलवियो में से जिन लोगो ने पूर्व पर आक्रमण किये, उदाहरणार्थ तबरिस्तान, सादा तथा करामेता आदि प्रचारक, वे "मुवय्येज़ह" कहलाते थे।

मामून ने अपने राज्यकाल में पताकाओ का काला रग त्यागकर हरा रग ग्रहण किया और हरी पताकाएँ बनवा ली। रही पताकाओ की सख्या की बात, तो उसके लिए कोई सीमा निर्धारित न थी। उबैदीईन के शासनकाल में जब अज़ीज़ निज़ार[3] ने शाम की विजय का सकल्प किया तो उसके साथ ५०० बडी पताकाएँ एव दुन्दुभियाँ थी। मगरिब में सिनहाजा के बरबर बादशाहों के यहाँ पताकाओं का कोई विशेष रग निश्चित न था, अपितु वे शुद्ध रगीन रेशम की होती थी और उन पर सुनहरा काम रहता था। उनकी ओर से आमिलो को भी पताकाएँ रखने की अनुमति थी। फिर जब मुवह्हेदीन का राज्यकाल प्रारम्भ हुआ, अथवा उनके बाद ज़नाता ने शासन की बागडोर सँभाली, तो नक्कारो एवं पताकाओ का प्रयोग सुल्तान तक ही सीमित हो गया। अन्य अधिकारियो को उनके रखने का अधिकार न रहा। नक्कारे एवं पताकाएँ ले जाने के लिए एक पृथक् सैनिक दस्ता होता था जो बादशाह के पीछे-पीछे चलता था। उसको साकह कहते थे। इन पताकाओं की सख्या प्रत्येक सल्तनत की प्रथानुसार घटती-बढ़ती रहती थी। कुछ सल्तनतो में ७ की सख्या रही, कारण कि ७ सख्या शुभ समझी जाती थी। इस प्रकार मुवह्हेदीन के राज्यकाल में ७ पताकाएँ ही रहा करती थी। बनू अल-अहमर ने भी उन्दुलुस में इसी प्रथा का पालन किया। कुछ सल्तनतो में यह सख्या १० या २० तक पहुँची, उदाहरणार्थ ज़नाता के राज्यकाल में। सुल्तान अबुल हसन के राज्यकाल में छोटे-बड़े नक्कारों

१. काले।
२ श्वेत।
३ ३६७ हि० (९७७ ई०)।

एव पताकाओं को मिलाकर कुल सख्या १००–१५० तक पहुँची। पताकाएँ रगी
रेशमी कपड़े की होती थी और उन पर सोने के तारो का काम रहता था।

वालियों, आमिलों तथा सेनापतियो को सफेद मलमल की बनी हुई एक छोटी-
पताका एव एक छोटा-सा नक्कारा रखने की अनुमति थी और वह भी युद्ध के समय
इससे अधिक वे कुछ नही रख सकते थे। पूर्व में तुर्कों के राज्यकाल में यह प्रथा
कि वहाँ केवल एक बडी पताका रखी जाती है, जिसके सिरे पर बालों का एक व
वडा गुच्छा लगा होता है। इसको ये लोग "शालिश" अथवा चत्र कहते है।
वडे झडे का प्रयोग केवल बादशाह कर सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य पताक
भी होती है जिनको ये लोग "सनजक" कहते है। यह अरबी भाषा का "राय
है। नक्कारो की इनके यहाँ कोई सीमा नही। इनको ये "कूस" कहते हैं। प्रत्ये
अमीर तथा सेनापति अपने इच्छानुसार जितने नक्कारे चाहे रख सकता है, कि
चत्र नही रख सकता। यह विशेष शाही चिह्न है।

आधुनिक काल में उन्दुलुस में जलालका के फिरग के जो बादशाह शासन
रहे है, उनके यहाँ पताकाएँ थोडी होती है, किन्तु वे लम्बी होती है। उनके स
आक्रमण के समय साज एव तम्बूर बजने की भी प्रथा है और राग भी गाये जाते है
अजम के अन्य बादशाहो के यहाँ भी यही प्रथा है।

सरीर

सरीर, मिम्बर, सिंहासन, कुर्सी अथवा अरीका बादशाह के बैठने के लिए लकड़ी
तैयार किये जाते है, ताकि बादशाह अन्य दरबारवालों की अपेक्षा ऊँचे स्थान पर आसी
हो और उनके बराबर न बैठे। इस्लाम के पूर्व बादशाह लोग दरबारों में सिंहासन
आसीन होते थे। अजमी सल्तनतो में यही प्रथा चलती रही, अपितु अजमवालों ने
सोने के सिंहासन बनवाये। हजरत सुलेमान एव हजरत दाऊद की कुर्सी तथा सिंहा
दोनों हाथीदाँत एव स्वर्ण से तैयार किये गये थे। किन्तु यह सब उस युग का वर्णन
जब कि हुकूमतो पर शान व शौकत एव आडम्बर तथा भोग-विलास का रंग चढ़ ग
था। जब तक हुकूमतें "बदवियत" के युग से गुज़रती रही, इस प्रकार ठाठ-बाट
भेद-भाव की इच्छा ही उत्पन्न न हुई थी।

इस्लामी राज्यकाल में सर्वप्रथम अमीर मुआविया ने अपने लिए राज-सिंहा
का निर्माण कराया और लोगों को यह कारण बताया कि क्योंकि मै भारी हो ग
हूँ, अतः सिंहासन के बिना मेरा काम नही चल सकता। लोगो ने कोई आपत्ति न की

बाद में आनेवाले अन्य इस्लामी बादशाहो ने भी इसी प्रथा का पालन किया। राज-सिंहासन सल्तनत की शान का एक चिह्न बन गया। अमर बिन आस जब मिस्र में अपने राज-प्रासाद की गोष्ठियो में सर्व-साधारण के साथ भूमि पर बैठते और मिस्र का बादशाह मुक़ौक़स उनके पास उपस्थित होता तो उसके बैठने के लिए लोग सोने का सिंहासन उठाये हुए आते और वह बादशाहो की भाँति अमर बिन आस के समक्ष सिंहासन पर आसीन होता। मुक़ौक़स ज़िम्मी था। ज़िम्मियो से प्रतिज्ञा की जाती है और प्रतिज्ञा का पालन भी इस्लाम में आवश्यक है, अतः उसके इस व्यवहार पर कोई मुसलमान आपत्ति प्रकट न करता था। इसके साथ-साथ यह भी सत्य है कि उस समय तक मुसलमान ज़ाहिरी ऐश्वर्य एव वैभव तथा शान व शौकत को कोई महत्त्व न देते थे। इसके उपरान्त अब्बासियो, उबैदीईन तथा अन्य इस्लामी सुल्तानो ने पूर्व तथा पश्चिम में ऐसे-ऐसे राज-सिंहासन, मिम्बर एवं कुर्सियाँ बनवायी कि उनके समक्ष क़ैसर एव किसरा के भी राज-सिंहासन एव मिम्बरो का कोई मूल्य न रहा।

टकसाल

एक लोहे का ठप्पा होता है; जिस पर चित्र अथवा कुछ वाक्य उलटे खुदे होते हैं। जब उसे प्रयोग में आनेवाले दिरहम तथा दीनार पर रखकर हथौडे से चोट मारी जाती है तो उसके उलटे वाक्य दिरहम तथा दीनार पर सीधे उभर आते हैं। किन्तु ठप्पा लगाने के पूर्व दिरहम तथा दीनार को कसौटी पर कसकर देख लिया जाता है कि वह खरा है अथवा खोटा। उसके ठीक वज़न की भी जाँच कर ली जाती है कि वह कम है अथवा अधिक, अथवा बराबर। इस प्रकार दिरहम एवं दीनार जब टकसाल से निकलते हैं तो लोग गिन-गिनकर उन्हें अपने प्रयोग में लाते हैं। यदि उनके वज़न की परख नही हो सकती तो फिर तोलकर उनसे कारोबार चलता है।

सिक्का शब्द वास्तव में लोहे के ठप्पे के लिए बना था। फिर उन चिह्नों को कहने लगे जो दिरहमो एव दीनारो पर दृष्टिगत होते हैं। फिर इससे भी हटकर उस पद को सिक्का कहने लगे जिसके अधीन दिरहम एव दीनार के समस्त प्रबंध सम्पन्न होते हैं। इस प्रकार अब इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। यह सल्तनत का परमावश्यक पद है, कारण कि इसी के द्वारा खरा अथवा खालिस सिक्का चलता है और लोग खोटे सिक्के से बचते हैं। अजम के बादशाहो के सिक्को पर समकालीन बादशाह, किसी क़िले अथवा पशु का चित्र होता था। अजमी सल्तनत के अन्तिम

काल तक यही प्रथा रही। जब इस्लामी राज्य प्रारम्भ हुआ तो मुसलमानों ने कुछ इस्लामी सरलता से प्रभावित होकर और कुछ अरबी "वदवियत" के कारण सिक्के के प्रवध की ओर से उपेक्षा की। ये लोग सोने और चाँदी को तोलकर आपस के लेन-देन में काम में लाते थे। फारस के दिरहम एव दीनार भी इनके यहाँ प्रचलित थे और ये उन्हें तोलकर लेते और अपना काम चलाते, किन्तु शासन की उपेक्षा के कारण जाली एव खोटे सिक्के प्रचलित हो गये। विवश होकर अब्दुल मलिक ने हज्जाज को आदेश दिया कि टकसाल स्थापित की जाय, जैसा कि सईद बिन अल मुसय्यब एवं अबूज् जिनादे[1] के कथन से पता चलता है। यह ७४ हि० (६९३–९४ ई०) अथवा मदाएनी[2] के अनुसार ७५ हि० (६९४–९५ ई०) की घटना है। फिर ७६ हि० (६९५–९६ ई०) में यह फरमान जारी किया गया कि इसी टकसाल के दिरहमो एव दीनारो का प्रयोग किया जाय। इस सिक्के पर "अल्लाहो अहदुन, अल्लाहो समदुन"[3] खुदा हुआ था। फिर यजीद बिन अब्दुल मलिक के राज्यकाल में जब इब्ने हुबैरा इराक का वाली हुआ तो उसने सिक्के में अन्य सुधार किये। फिर खालिद अल कसरी एव यूसुफ बिन उमर ने अपने-अपने समय में और भी सुधार किये।

कहा जाता है कि इस्लामी शासन में सर्वप्रथम मुसाब बिन जुबैर के आदेशानुसार इराक में दिरहम एव दीनारों पर ७० हि० (६८९–९० ई०) में ठप्पा लगाया गया। यह कार्य उनके भाई अब्दुल्लाह के, जो उस समय हिजाज़ के वाली थे, आदेशानुसार हुआ। इस सिक्के के एक ओर "वरकतुल्लाह"[4] और दूसरी ओर अल्लाह का नाम खुदा था। फिर एक वर्ष उपरान्त हज्जाज ने इस सिक्के को वदल डाला और उस पर "अल्लाह के नाम से—हज्जाज" खुदवाया और सिक्के का वही वज़न निर्धारित किया जो हज़रत उमर फारूक के काल में निश्चित हो चुका था।

वज़नों का प्रामाणिक विवरण इस प्रकार है—इस्लाम के प्रारम्भ में दिरहम का वजन ६ दाँग था। एक मिस्काल का वज़न १$\frac{३}{७}$ दिरहम, अतः १० दिरहम का वजन ७ मिस्काल होता था। फ़ारस के दिरहमो का वज़न इससे भिन्न था। कोई मिस्काल

१. अब्दुल्लाह बिन जकवान, मृत्यु १३० हि० तथा १३२ हि० (७४७–४८ ई० तथा ७४९–५० ई०) के मध्य में।
२. इस्लाम के प्रारम्भिक काल का प्रसिद्ध इतिहासकार।
३. अल्लाह एक है और अल्लाह समद (श्रेष्ठ, पूज्य) है।
४. अल्लाह का आशीर्वाद।

वज़न पर २० कीरात[1] का था और कोई १२ या १० का। ज़कात अदा करने के समय जब मुसलमानों को दिरहम का वज़न निश्चित करना पड़ा, तो उन्होंने बीच के वज़न का दिरहम निश्चित किया, जो १४ कीरात का होता था। मिस्काल का वज़न वही, १$\frac{3}{7}$ दिरहम रहा। यह भी कहा जाता है कि बगली दिरहम का वज़न ८ दाँग, तबरी का ४ दाँग, मग़रिबी का ३ दाँग और यमनी का १ दाँग था। हज़रत उमर ने आदेश दिया कि अधिक प्रचलित दिरहम का पता लगाया जाय। इस प्रकार उपर्युक्त हिसाब से बगली तथा तबरी दिरहम दोनो मिलकर १२ दाँग के बराबर होते थे। फिर अरबी औसत निकालकर ६ दाँग का वजन निश्चित किया गया, जिसमें $\frac{3}{7}$ दिरहम यदि और बढ़ाया जाता तो मिस्काल बन जाता था। यदि मिस्काल में से ३।१० कम कर दिया जाता तो दिरहम रह जाता था।

अब्दुल मलिक ने जब इस आशय से सिक्का बनाने का विचार किया कि सोना व चाँदी के सिक्के, जो मुसलमानो के लेन-देन के प्रयोग में आ रहे थे, खोट से बचाये जा सकें, तो उनका वजन वही निश्चित किया जो हज़रत उमर के राज्यकाल में निर्धारित हो चुका था। फिर सिक्के पर केवल वाक्य लिखवाये, चित्र नही, क्योकि अरब स्वाभाविक रूप से वाक्यो में रुचि रखते थे, चित्रो में नही। इसके अतिरिक्त इस्लामी शरीअत में चित्रकारी निषिद्ध थी, अत दोनो कारणो से चित्रो की उपेक्षा की गयी। अब्दुल मलिक का यह कार्य इस्लामी सल्तनत में एक उदाहरण बन गया और सब लोगो ने इसी नियम का पालन किया।

दिरहम एव दीनार गोल टिकियो के रूप में बनाये गये और उन पर समानान्तर वृत्तों में लिखाई की गयी। एक ओर ईश्वर की प्रशसा एव दरूद के वाक्य और दूसरी ओर ठप्पे की तिथि एव समकालीन खलीफा का नाम खोदा गया। अब्बासी, उबैदीईन एव (उन्दुलुस के) उमय्या राज्यकाल में इसी प्रकार के सिक्के चलते रहे। सिनहाजा ने अपना सिक्का अपने राज्यकाल के अन्त में चलाया। इब्ने हम्माद[2] के इतिहास से पता चलता है कि बजाया के अधिकारी मसूर ने सर्वप्रथम अपना सिक्का चलाया।

जब मुवह्हेदीन का राज्यकाल प्रारम्भ हुआ तो महदी ने दिरहम के सिक्के को गोलाकार के स्थान पर चौकोर आकार में परिवर्तित कर दिया। गोल दीनार में

१. Carats

२. मुहम्मद बिन अली इब्ने हम्माद ने अपने इतिहास की रचना ६१७ हि० (१२२० ई०) के लगभग की।

चौकोर खुदाई करवायी। उसके एक ओर ईश्वर के प्रशंसा सम्बन्धी वाक्य लिखवाये और दूसरी ओर अपना तथा अपने वली अहद का नाम लिखवाया। इस प्रकार मुवह्‌हेदीन के राज्यकाल में यही प्रथा चलती रही। अब तक उनके यहाँ के सिक्के इसी रूप के होते है। कहा जाता है कि महदी का प्रभुत्व प्रारम्भ होने के पूर्व ही भविष्यवाणी करनेवाले महदी की चर्चा "साहिबुद्दिरहमुल मुरब्बा"[1] की उपाधि द्वारा करते थे। आजकल पूर्वी सल्तनत में उनके सिक्के का कोई निश्चित रूप नही। वे दिरहम एव दीनार को तोलकर अपने लेन-देन में काम में लाते है। वे अपने सिक्के पर मगरिबवालो की भाँति ईश्वर की प्रशंसा एव दरूद के वाक्य तथा खलीफा इत्यादि के नाम खुदवाते[2] है।

सिक्के का वर्णन समाप्त करने के पूर्व हम शरई दिरहम एव दीनार की वास्तविकता और उसके वज़न को भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। संसार भर के विभिन्न देशो, प्रान्तो तथा नगरो में विभिन्न तोल के सिक्के प्रचलित हैं। इस्लामी शरीअत में भी इनका उल्लेख है और अनेक विषयो यानी जकात निकाह एव हुदूद[3] इत्यादि के शरई आदेशों का उनसे सम्बन्ध है। इस स्थिति में शरीअत के लिए आवश्यक हुआ कि शरई दिरहम एवं दीनार की वास्तविकता स्पष्ट की जाय और उनका वह वज़न निश्चित किया जाय, जो शरई आदेशो के अनुसार इन दिरहमो एव दीनारो का होना चाहिए, उनसे कम न अधिक।

यह बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि इस्लाम के प्रारम्भ, सहाबा एवं ताबेईन के समय से इस पर इजमा हो चुका है कि शरई दिरहम वह है कि जिसके १० दिरहमो का वज़न ७ मिस्काल सोने के बराबर हो। एक ओकिया[4] सोने में ४० दिरहम बनते हैं जब कि एक शरई दिरहम ७।१० दीनार का माना जाता है। एक मिस्काल का वजन ७२ औसत दरजे के गेहूँ के दाने के बराबर होता है। इसलिए एक दिरहम का वज़न जो ७।१० मिस्काल के बराबर होता है, ५५ जौ दाने के बराबर हुआ। ये वजन सबके सब इजमा से प्रमाणित है।

जाहिलियत के युग में दिरहम कई प्रकार के होते थे। इनमें सबसे खरा तबरी था जो ८ दाँग का होता था। बगली भी खरा माना जाता था, जो ४ दाँग का होता

१. चौकोर दीनार का अधिकारी।
२. कुछ पोथियों के अनुसार नहीं खुदवाते।
३. शरई दंड। ४. लगभग १ औंस।

था। शरई दिरहम दोनो के मध्य का निश्चित हुआ, अर्थात् ६ दाँग का। इस प्रकार १०० दिरहम वगली और तवरी पर ५ दिरहम शरई ज़कात के निश्चित हुए। अव इसमें लोगो का मतभेद है कि शरई दिरहम का उपर्युक्त वज़न अव्दुल मलिक ने निश्चित किया अथवा इसके उपरान्त लोगो ने इस पर इजमा किया है। खत्तावी[1] ने "किताव मआलिमुस् सुनन" एव मावर्दी ने "एहकाम अस्सुल्तानिया" में इस विषय की चर्चा की है। आधुनिक काल के विद्वानो ने इसे इस आधार पर रद्द कर दिया है कि इससे यह प्रमाणित होता है कि हज़रत मुहम्मद, सहावा एव वाद के राज्यकाल में दिरहम एव दीनार की शरई स्थिति एवं वज़न अज्ञात रहा होगा, यद्यपि ज़कात, निकाह एव हुदूद इत्यादि में वहुत से शरई आदेश इनसे सम्वन्धित है। यदि इनका वजन निश्चित न होता तो आदेश कैसे निर्गत होते। विवश होकर स्वीकार करना पड़ता है और यह सत्य भी है कि हज़रत मुहम्मद एव सहावा के राज्यकाल में दिरहम एव दीनार का वज़न ज्ञात था और इसी वज़न के अनुसार हक सम्वन्धी शरई आदेश उन पर निर्भर होते थे। इनका मुसलमानो को भली-भाँति ज्ञान था।

जव इस्लामी सल्तनत ऐश्वर्य एव वैभव के क्षेत्र में प्रविष्ट हुई तो नवीन स्थिति के आवश्यकतानुसार शरा के आधार पर दिरहम एव दीनार का खास वजन निश्चित करना इस कारण ज़रूरी हो गया कि लोग अनुमान एव अटकल की कठिनाई से वच जायें। इस प्रकार वजन निश्चित हुआ। इस युग में अव्दुल मलिक राज्य कर रहा था। उसी ने वज़न निश्चित कराये। जो शरई वज़न लोगो को ज्ञात था, उसका ध्यान रखा गया, अर्थात् उससे घटने-वढ़ने नही दिया गया। उसने सिक्के पर ईश्वर के नाम एवं दुरूद के उपरान्त अपना नाम तथा तिथि भी खुदवायी। जाहिलियत के सिक्को का प्रयोग वन्द करा दिया। जो उस समय के सिक्के प्रचलित थे उनको वर्तमान सिक्को के रूप में ढाल लिया गया। इस ऐतिहासिक तथ्य को कोई अस्वीकार नही कर सकता। फिर इसके वाद सल्तनतो में शरई तोल से कम अथवा अधिक वज़न के सिक्के चलने लगे। प्रत्येक देश एव सल्तनत ने अपना अलग-अलग सिक्का वना लिया। जव यह दशा हुई तो लोगो ने उनके उस शरई वज़न का ध्यान रखा जो इस्लाम के प्रारम्भ में प्रचलित था और फिर हर एक अपने-अपने राज्य के विशेष सिक्के से दिरहम एव दीनार के शरई वज़न को मिलाकर देखता और उसकी कमी-वेशी को समझकर जितना अन्तर होता उसके अनुसार शरई हक़ अदा करता।

१. हम्द (अहमद) विन मुहम्मद, ३१९ हि० (९३१) से ३८६ हि० अथवा ३८८ हि० (९९६ ई० अथवा ९९८ ई०)।

दीनार के वज़न के विषय में विद्वान् लोग पूर्णरूप से सहमत हैं कि वह औसत दर्जे के ७२ गेहूँ के दाने के बराबर होता है, केवल इब्ने हज़म ने इससे मतभेद किया है। उसके अनुसार एक दीनार ८४ दाने के बराबर होता है। क़ाज़ी अब्दुल हक़[1] ने भी उसका यही कथन उद्धृत किया है, किन्तु शोधको ने इब्ने हज़म के मत का खडन किया है और उसको गलत बताया है। वास्तव में शोधको का मत ही ठीक है। यही ऊकिया के विषय में कहा जा सकता है। उसका वजन भी विभिन्न देशों में अलग-अलग है। उसका शरई वजन जो हम बता चुके है, सबको ज्ञात है। किसी का इसमें मत-भेद नही।

मुहर

यह भी शाही विशेषता एव राज्य के चिह्नो में से एक है। इस्लाम के पूर्व एव बाद में फरमानो पर मुहर लगाने की प्रथा प्रचलित रही। सहीहैन[2] में उल्लेख है कि जब मुहम्मद साहब ने कैसर[3] को पत्र लिखना निश्चित किया तो लोगो ने निवेदन किया कि अजमवाले उस पत्र को, जिस पर मुहर नही लगी होती, कोई महत्त्व नही देते। आपने चाँदी की अँगूठी तैयार करायी और उसमें "मुहम्मदुर्रसूलल्लाह"[4] खुदवाया। इमाम बुखारी का कथन है कि आपकी मुहर पर मुहम्मद, रसूल तथा अल्लाह के तीन शब्द अलग-अलग तीन पक्तियों में खुदे थे, अत: आपने पत्र पर मुहर लगायी और साथ-साथ आदेश दे दिया कि कोई अन्य इस प्रकार की मुहर न बनवाये। इमाम बुखारी का यह भी कथन है कि हज़रत अबू बक्र, हज़रत उमर तथा हजरत उस्मान ने अपनी-अपनी खिलाफत के युग मे इसी मुहर का प्रयोग किया। फिर हजरत उस्मान के हाथ से वह अरीस नामक कुएँ में गिर पड़ी। मुहर गिरने के समय यद्यपि कुएँ में जल कम था, किन्तु मुहर गिरने के बाद जल की थाह न मिल सकी। हज़रत उस्मान को अँगूठी खो जाने का बड़ा शोक हुआ और आपने इस घटना को अपने राज्य हेतु एक अपशकुन समझा। फिर आपने उसी प्रकार की एक अन्य अँगठी बनवा ली।

१. सम्भवतः अब्दुल हक बिन अब्दुर्रहमान अल-इशबीली, (५१०–५८१ हि०, १११६—११८५ ई०)।
२. सहीह मुस्लिम तथा सहीह बुखारी।
३. बैज़ण्टाइन शाहंशाह।
४. हज़रत मुहम्मद, ईश्वर के दूत।

मुहर की खुदाई तथा मुहर लगाने के कई नियम प्रचलित हैं। वास्तव में खातम[1] उस वस्तु को कहते हैं जो अँगुली में पहनी जाती है। उससे भी मुहर लगायी जाती है। किसी वस्तु के उद्देश्य तथा अन्त को भी खातम कहते हैं। इस प्रकार जब किसी कार्य को अन्त तक पहुँचा दिया जाय तो कहा जाता है "खतम्तुल अम्र"[2], "खतम्तुल कुरान"[3] भी इसी से है। "खातमुन् नवीईन"[4] एवं "खातमुल अम्र"[5] का प्रयोग भी इसी अर्थ में होता है। बरतनों एव मटको के ढक्कन के लिए भी इसी शब्द का प्रयोग होता है, किंतु उन्हें खिताम बोलते हैं। जिस प्रकार कुरान शरीफ में है—"खितामुह मिस्कुन"[6]; इसकी टीका में लोगो का मत है कि "खिताम का अर्थ अत एवं समाप्ति है और भाव यह है कि स्वर्गीय मदिरा के अन्त में कस्तूरी की सुगधि मिलेगी" किन्तु यह मत ठीक नही, कारण कि यहाँ "खिताम" का अर्थ ढक्कन है। प्रथा यह है कि मदिरा को मटके में भरकर मिट्टी इत्यादि से उसे बन्द कर दिया जाता है, ताकि उसमें सुगधि उत्पन्न हो जाय और वह स्वादिष्ठ भी हो जाय। इसी कारण ईश्वर ने स्वर्ग की मदिरा की प्रशसा की है और फरमाया है कि इसका ढक्कन भी कस्तूरी का बना होगा, न कि मिट्टी इत्यादि का। इस प्रकार जब "खातम" का प्रयोग उपर्युक्त अर्थानुसार ठीक है तो नक्शे खातम में भी खातम का वही अर्थ होगा। इसका रूप यह होता है कि मुहर में वाक्य अथवा चिह्न खुदे होते हैं। जब उसको मिट्टी अथवा मसी से भिगाकर कागज के पृष्ठ पर रख दिया जाता है तो उसका चिह्न कागज के पृष्ठ पर उभर आता है। इसी प्रकार यदि उसको किसी भी नरम वस्तु,उदाहरणार्थ मोम इत्यादि पर रखकर दबाया जाता है तो उसके खुदे हुए अक्षर नरम वस्तु पर उभर आते हैं।

मुहर के वाक्य जिस प्रकार खोदे जाते हैं उसके उलटे उभरते तथा पढ़े जाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि वे मुहर पर दायें से बायें सीधे लिखे गये है तो इसके विपरीत बायें से दायें पढे जायेंगे। यदि वे मुहर पर उलटे खोदे गये हैं तो सीधे पढे जायेंगे। इस प्रकार खुदे हुए अक्षर कागज़ पर उतरने के उपरान्त अपनी मूल दशा के प्रतिकूल

१. मुहर।
२. मैंने कार्य को पूरा कर दिया।
३. मैंने पूरा क़ुरान पढ डाला।
४. नबियों में अन्तिम नबी।
५. मामले का अन्त।
६. कस्तूरी का ढक्कन अथवा डाट।

हो जाते हैं। यह भी सम्भव हैं कि कागज़ के पृष्ठ पर उभरे हुए चिह्नों के लिए खातम शब्द का प्रयोग "अन्तिम" के अर्थ में होता हो, कारण कि पत्र इसी चिह्न से प्रामाणिक माना जाता और स्वीकृत होता हैं। इस प्रकार इस चिह्न के बिना पत्र अधूरा एव स्वीकार न करने योग्य होता है।

कभी यह मुहर वाक्य के रूप में होती है, जो पत्र के प्रारम्भ अथवा अन्त में ईश्वर की स्तुति के रूप में उद्धृत किया जाता है। अथवा उसमे बादशाह, अमीर या कातिब का नाम लिखा होता है, अथवा उसके कुछ गुणो का भी उल्लेख होता है। यह लेख भी पत्र को प्रामाणिक एव स्वीकार करने योग्य बनाता है। इसको साधारण अर्थ मे चिह्न कहते हैं और "खतम" भी एवं "खातम आसिफी," आसिफी चिह्न के अनुरूप होने के कारण। "खातम काज़ी" का भी यही अर्थ है, जिसे वह वादी-प्रतिवादी के पास भेजता है। वह उसका चिह्न समझा जाता हैं अथवा वह लेख जिससे उसके आदेश जारी होने के योग्य होते हैं। "खातम सुल्तान" तथा "खातमे खलीफ़ा" का भी यही अर्थ है। इस प्रकार यह उनके आदेशो के पहचानने का एक चिह्न होता है।

जब हारूनुर्रशीद ने फजल के स्थान पर उसके भाई जाफर को अपना वज़ीर बनाना चाहा तो वह उसके पिता से कहने लगा—"पिताजी! मै चाहता हूँ कि अपनी अँगूठी को सीधे हाथ से उलटे हाथ मे बदल लूँ।" यहाँ उसने अँगूठी अथवा मुहर से विज़ारत की ओर सकेत किया है, कारण कि पत्रो अथवा फ़रमानो पर हस्ताक्षर करना वज़ीर का ही कर्त्तव्य था। उस युग में यही प्रथा थी। इस तथ्य का प्रमाण उस ऐतिहासिक घटना से भी मिलता है जिसको तबरी ने उद्धृत किया है कि मुआविया ने हज़रत हसन को सधि हेतु राज़ी कर लेने के उपरान्त सादे कागज़ के अन्त पर मुहर लगाकर भेज दिया और यह लिख दिया कि "आप मेरे इस मुहर के पत्र पर जो शर्त चाहें लिख भेजें, वह स्वीकार की जायगी।" यहाँ मुहर लगाने का तात्पर्य पत्र के लेख के अन्त पर हस्ताक्षर कर देना है।

यह भी सभव है कि किसी नरम वस्तु पर मुहर लगायी जाती हो और वह जब उस पर उभर आती हो तो पत्र को लपेटकर सुरक्षित स्थान में रख दिया जाता हो। खत्म का प्रयोग यहाँ ढक्कन अथवा डाट के अर्थ में किया जाता है। दोनों दशाओ में तात्पर्य मुहर से ही है।

पत्रो पर मुहर लगाने की प्रथा सर्वप्रथम मुआविया ने निकाली, कारण कि जब उन्होने ज़ियाद के नाम जो, उस समय कूफे में था, आदेश भेजा कि अमर बिन अज़्

जुबैर को एक लाख दिरहम दे दिये जायँ, तो बीच में पत्र को खोलकर एक लाख के दो लाख बना दिये गये। जब ज़ियाद की ओर से हिसाब प्रस्तुत किया गया, तब मुआविया के समक्ष दो लाख की धन-राशि आयी। मुआविया ने उसे स्वीकार न किया और अमर से शेष एक लाख की रकम माँगी और उसको बन्दी बना दिया। अन्त मे उसके भाई अब्दुल्लाह ने इस माँग को पूरा किया। इस घटना के उपरान्त मुआविया ने मुहर का दीवान स्थापित किया। यह कहानी तबरी ने उद्धृत की है और लिखा है कि पत्र को डोरी से बाँधकर उस पर मुहर लगाने की प्रथा उसी समय से चली। इससे पूर्व पत्र बाँधे नही जाते थे।

मुहर के दीवान कुछ सचिव होते है, जिनके ज़िम्मे शाही पत्रो का जारी करना और उन पर मुहर लगाना है, चाहे उनको लपेटकर उन पर मुहर लगायी जाय चाहे अन्य प्रकार से। कभी-कभी सचिवो के बैठने के स्थान अथवा कार्यालय को भी दीवान कहते हैं। इसका उल्लेख हमने दीवाने आमाल के सम्बन्ध में किया है।

फिर पत्रो को बन्द करने के भी दो नियम हैं। कभी पत्रों में छेद करके तागे से बाँध दिया जाता है, जैसी कि मगरिब में प्रथा है, और कभी पत्र के अन्तिम भाग को लपेटकर उसे चिपका देते है। पूर्ववालो के यहाँ यही प्रथा है। बाँधने अथवा चिपकाने के स्थान पर हस्ताक्षर बना देते हैं, जिससे पत्र को खोलकर पढ लेने का भय जाता रहता है। मगरिबवाले बाँधने के स्थान पर थोडा-सा चपड़ा लगाकर उस पर मुहर लगा देते है। पूर्व में भी सर्वदा से यही प्रथा है कि पत्र की अतिम लपेट पर पत्र को चिपकाने के उपरान्त उस पर मुहर लगा दी जाती है। मुहर एक प्रकार की लाल मिट्टी पर लगायी जाती है जिसका प्रयोग विशेष रूप से इसी कार्य के लिए होता है। अब्बासियो के राज्यकाल में इसे मुहर के काम में आनेवाली मिट्टी कहते थे। यह सीराफ[1] से लायी जाती थी। पता चलता है कि यह मिट्टी वही मिला करती थी। सक्षेप में मुहर का उत्तरदायित्व चाहे पत्र के चिह्न से सम्बन्धित हो और चाहे चिह्न बनाये हुए ढक्कन अथवा लिफाफे में बन्द पत्र से, वह दीवानुर्रसाएल के अधीन है। अब्बासियो के राज्यकाल में यह कार्य वज़ीर की देखरेख में होता था। फिर जब इस प्रथा में परिवर्तन हुआ तो यह कार्य प्रत्येक उस व्यक्ति को मिलने लगा, जिसकी देखरेख में पत्र-व्यवहार का विभाग एव दीवाने किताबत[2] होता था।

१. दक्षिणी मेसोपोटामिया से कर में मुहर की मिट्टी भी ली जाती थी।
२. सचिवों का विभाग।

इसके उपरान्त मगरिब में मुहर बादशाह का विशेष चिह्न समझी जाने लगी, जिसे बादशाह अपनी अँगुली में पहनता था। यह सोने की होती थी और इस पर याकूत अथवा फीरोजा या जमर्रुद इत्यादि का नग जड़ा होता था। बादशाह इसको अपना विशेष चिह्न समझकर पहनता था। इसे सुल्तान के विशेष चिह्नो में उसी प्रकार समझा जाता था जिस प्रकार अब्बासियो के राज्यकाल मे मुहम्मद साहब की कबा एव लाठी और उबैदीईन के राज्यकाल में छत्र को।

तिराज

इसे भी शाही ऐश्वर्य एव गौरव का विशेष द्योतक समझा जाता है। इसके विषय में सल्तनतो की यह प्रथा चलती रही है कि या तो सुल्तानो के नाम इस पर बिनावट में काढे जाते हैं, अथवा कोई अन्य चिह्न, जो केवल सुल्तान तक सीमित होता है, उस पर बनाया जाता है। यह शुद्ध रेशम अथवा अन्य प्रकार के रेशमो का होता है। इसके ताने-बाने में ही कलाबत्तू से लिखाई की जाती है। यदि कलाबत्तू से कार्य नही लिया जाता तो किसी अन्य रगीन धागे का प्रयोग किया जाता है, जो वस्त्र के रग से भिन्न रग का होता है। सक्षेप में कारीगर बिनावट की दृष्टि से जो उपाय उचित समझते है, उसी का प्रयोग करते है। इस शानदार कढ़ाई से वस्त्र इस योग्य बनता है कि शाही पोशाक बनकर सुल्तान के ऐश्वर्य एवं वैभव तथा गौरव में वृद्धि करे। कभी यह कपडा उस व्यक्ति के सम्मान को चार चाँद लगा देता है, जिसको बादशाह विशेष खिलअत द्वारा सम्मानित करता है, अथवा जिसको किसी विशेष उच्च पद द्वारा सम्मानित करके शाहाना पोशाक प्रदान करता है।

इस्लाम के पूर्व अजम की सल्तनतो में यह प्रथा थी कि इस वस्त्र पर बादशाहो के चित्र अथवा अन्य चित्र, जो राज्य की ओर से निश्चित होते थे, काढे अथवा बुने जाते थे। जब इस्लाम आया तो इस्लामी सुल्तानो ने चित्रो का प्रयोग बन्द कर दिया और वस्त्रो पर अपने नाम तथा अन्य वाक्य, जिनको वे अपने लिए शुभ समझते थे, तुगरा लिपि में लिखवाने लगे। इस प्रकार बनी उमय्या तथा अब्बासियों के राज्य-काल मे इसे बड़े गर्व का विषय समझा जाता था। इस प्रकार के वस्त्र के बुनने के लिए शाही राजप्रासाद में एक कारखाना स्थापित होता था जिसको वे "दारुत्तराज़" अथवा कपड़ा बुनने का कारखाना कहते थे। इसके लिए एक अधिकारी नियुक्त होता था जिसे वे "साहिबुत्तराज" कहते थे। उसका कर्त्तव्य रँगाई तथा बुनाई के कारीगरो की देखभाल होता था। वह उनके वेतन एव मज़दूरी का वितरण करता, यन्त्रो को उपलब्ध करने तथा कार्यो को सुगमतापूर्वक चलाने मे सुविधा पैदा करता

था। कारखाने के अधिकारी का पद राज्य के किसी बहुत बडे सम्मानित व्यक्ति को दिया जाता, अथवा किसी विशेष शाही दास को प्रदान होता था। उन्दुलुस में बनी उमय्या की सल्तनत एव उसके उपरान्त मुलूकुत्तवाएफ में यही प्रथा रही। मिस्र मे उवैदीईन के राज्यकाल अथवा उनके समकालीन पूर्वी अजम के बादशाहो के यहाँ यही प्रथा रही, किन्तु जब बडी-बडी सल्तनतो की शक्ति टुकडे-टुकडे हो गयी और वे विभिन्न भागो में विभाजित होकर बनावट एव आडम्बर को भूल गयी तो सल्तनतो में न तो ये कारखाने ही शेष रहे और न इनके अधिकारी।

इसके उपरान्त मुवह्हेदीन ने मगरिब में बनी उमय्या के स्थान पर शासन की बागडोर सँभाली तब छठी शताब्दी हि०[1] का प्रारम्भ ही था। उन्होंने भी प्रारम्भ में ऐसे कारखानो की ओर कोई ध्यान नही दिया, कारण कि वे उस समय सरल एव धार्मिक जीवन के आदी थे, जिसको उन्होने अपने इमाम मुहम्मद तूमर्त-अल-महदी से उत्तराधिकार में पाया था। अत वे लोग रेशम के एव सुनहरे वस्त्र धारण करने से बचते रहते और उनके यहाँ तिराज नामक पद का अस्तित्व ही न था। उनके बाद की आनेवाली सतानो ने ऐसे कारखानो की ओर कुछ ध्यान दिया, किन्तु प्राचीन सल्तनतो के स्तर तक वह भी न पहुँच सकी और हमारे इस युग में मरीनियो के राज्य ने अपनी युवावस्था को प्राप्त होकर तिराज़ के कारखानो को धूम-धाम से प्रारम्भ किया है। इसमें उन्होंने अपने समकालीन राज्य इब्ने-अल-अहमर का, जो उन्दुलुस में स्थापित है, अनुकरण किया। उन्दुलुस के मुलूकुत्तवाएफ ने भी उन्ही का अनुगमन किया।

समकालीन मिस्र एव शाम के तुर्कों के राज्य में प्रत्येक राज्य अपने महत्त्व के अनुसार तिराज़ की उन्नति करता है, किन्तु उनके यहाँ तिराज का कारखाना राजप्रासाद में नही स्थापित होता और न उसके अधिकारी का पद सल्तनत के पदो में सम्मिलित है, अपितु जब कभी सल्तनत को "तिराज़" की आवश्यकता पडती है तो रेशम अथवा कलाबत्तू का काम करनेवाले कारीगरो को बुलवाकर उनसे काम ले लिया जाता है। इसका नाम उनके यहाँ "ज़रकश" है, जो कि फारसी भाषा का शब्द है। कारीगर बडी कुशलता एव सुन्दरता से सुल्तान एव अमीर का नाम काढ अथवा बुन देते है।

खेमागाह एवं खरगाह

रेशमी, ऊनी तथा सूती खेमे एव खरगाह[2] भी सल्तनत के ऐसे विशेष चिह्न है जो उसकी समृद्धि के द्योतक है। बादशाह उनको यात्राओ में अपने साथ रखते

१ १२वीं शताब्दी ईसवी। २ बड़े खेमे।

है और उनमें नये आविष्कारो का समावेश कराते रहते है। ये रग-बिरगे भी होते है और छोटे-बडे भी। सक्षेप में सल्तनत की समृद्धि एव पतन से इनका गहरा सम्बन्ध होता है। सल्तनत जब प्रारम्भ में अपने कदम जमाती है तो प्रभुत्ववाली कौमे शुरू में वैसे ही ख़ेमो में रहती-बसती है, जिनमे वे पहले से रहती आयी है। इस प्रकार अरव खलीफा, बनी उमय्या के प्रारम्भिक राज्यकाल तक अपने प्राचीन ऊनी खेमो में निवास करते रहे, अपितु इस समय तक भी रेगिस्तानो में निवास करनेवाले अरव कुछ लोगो को छोडकर ऊनी ख़ेमो में ही जीवन व्यतीत करते थे, जिस प्रकार आज भी अरबो में यह प्रथा है। प्राचीन काल में भी अरव जब युद्धो के लिए कूच करते तो अपने परिवार एव कुटुम्ब तथा कबीले सबको साथ लेकर निकलते। इसीलिए वे जब कही पडाव करते तो दूर-दूर तक फैल जाते थे। एक-दूसरे से काफी दूर होकर उतरते, यहाँ तक कि कभी-कभी एक कबीले का पडाव दूसरे कबीले की दृष्टि से ओझल हो जाता था। अब्दुल मलिक के प्रारम्भिक राज्यकाल में भी पडाव की यही प्रथा अरव में प्रचलित थी। फिर जब रौह बिन जिम्बा[1] के ख़ेमे व डेरे जल जाने की दुर्घटना घटी तो उसी के परामर्श से साका[2] की नियुक्ति हुई। साका वह सैनिक दस्ता होता था जो सबको एकत्र करके बादशाह के सामने कर देता और बादशाह के प्रस्थान की सबको सूचला देता रहता था। अब्दुल मलिक ने साका की सरदारी के लिए हज्जाज को नियुक्त किया।

ख़ेमे जल जाने की दुर्घटना इस प्रकार घटी कि अब्दुल मलिक ने यात्रा में एक स्थान पर पडाव किया। कबीले प्रथानुसार ऐसे बिखरकर ठहरे कि एक-दूसरे की दृष्टि से ओझल हो गये। प्रातःकाल अब्दुल मलिक ने कूच किया, किन्तु रौह बिन ज़िम्बा को दूरी के कारण अब्दुल मलिक के प्रस्थान का पता न लग सका और वह अपने कबीले के साथ शान्तिपूर्वक ठहरा रहा। दुष्टो ने अवसर पाकर आक्रमण कर दिया और रौह बिन जिम्बा के शिविर जला डाले। इस दुर्घटना के उपरान्त रौह ने अब्दुल मलिक को परामर्श दिया कि जब तक साका न नियुक्त होगा, इस प्रकार की कठिनाइयाँ नित्य-प्रति सहन करनी पडेंगी। अब्दुल मलिक ने परामर्श को पसन्द किया और साका नियुक्त करके हज्जाज को उसका अफसर बनाया।

१. रौह अब्दुल मलिक का मुख्य परामर्शदाता बताया जाता है। उसकी मृत्यु ८४ हि० (७०३ ई०) में हुई।
२. सेना के पीछे के भाग के रक्षक।

इस घटना से इस बात का भी पता चलता है कि हज्जाज को अरबो में कितना अधिक सम्मान प्राप्त था, कारण कि अरबो को यात्रा के लिए तैयार करना प्रतिभाशाली व्यक्ति का काम है और उसका, जिसको "असबियत" की शक्ति प्राप्त होती हो, ताकि कबीले के दुष्ट लोग आज्ञा के जारी करने में कोई रोक-टोक न कर सकें। हज्जाज "असबियत" की शक्ति का स्वामी होने के कारण एक विशेष सम्मान का पात्र था। इसलिए अब्दुल मलिक ने उसका इस पद के लिए चुनाव किया।

जब अरब सल्तनत पर भी सभ्यता एव संस्कृति का रग चढा और नगर-जीवन से वे अधिक प्रभावित हो गये तो उन्होंने जगलो एव मैदानो को त्याग दिया और नगरो एव कसबो को अपना निवासस्थान बनाया। वे खेमो में रहना-बसना त्यागने लगे और राजप्रासादो में निवास करने के आदी हुए, ऊँटो की सवारी छोडी और घोड़ो के शहसवार बने। इस प्रकार के परिवर्तन के कारण उनकी यात्रा के ढग में भी परिवर्तन होने लगा। अब वे लोग ऊन इत्यादि के खेमो के स्थान पर रेशमी खेमे यात्रा में रखने लगे। वे उनसे विभिन्न प्रकार के घर तैयार कर लेते थे। खेमे गोल भी होते थे और लम्बे अथवा चौकोर भी। उन्ही खेमो में वे शानदार एव आश्चर्यचकित कर देनेवाली सभाएँ करते थे। अमीर तथा सेनापति का खेमा सज्जा में अद्वितीय होता था। इन खेमो को मगरिब के बरबर अपनी भाषा में अफराग[1] कहते थे। मगरिब में अफराग केवल बादशाहो तक ही सीमित होते थे, और किसी को उन्हें रखने का अधिकार न था। पूर्व में नि सन्देह प्रत्येक अमीर अफराग रख सकता है, चाहे वह बादशाह से कितना ही कम क्यों न हो।

नगर के जीवन के प्रभुत्व के कारण अरबो में जब आरामपसन्दी की भावनाएँ उत्पन्न हुई तो युद्ध हेतु प्रस्थान करते समय स्त्रियो एव बालको को महलो एव राजप्रासादो में छोडने की प्रथा निकली। इससे वे यात्रा में हलके-फुलके भी हो गये और पडाव में एक-दूसरे के निकट ठहरने लगे, कारण कि अब परदे की कठिनाई का अन्त हो गया। बादशाह एव सेना एक ही स्थान पर पडाव करती और रग-बिरगे खेमो के एक स्थान पर एकत्र होने के कारण एक अत्यन्त हृदयग्राही एव सुन्दर दृश्य दिखाई देता। फिर आगे चलकर सल्तनत जितनी ही उन्नत होती गयी उतने ही खेमो में सज्जा एव दिखावे के नये-नये उपाय निकाले जाने लगे। मुवह्हेदीन की भी यही दशा रही। वे अपने प्रारम्भिक राज्यकाल में उन्ही खेमो को लेकर यात्रा

१. ऐसे खेमे जो गोलाई में लगते हों।

किया करते थे, जिनमें वे राज्य की प्राप्ति के पूर्व रहा करते थे। जब वे समृद्धि एवं भोग-विलास के जीवन में प्रविष्ट हुए एव महलो तथा राज-प्रासादो की हवा खायी तो उन्होंने भी प्रदर्शन को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। जिसकी वे कल्पना भी न कर सकते थे, उसे भी उन्होने कर डाला। रण-क्षेत्र में सेना एक ही स्थान पर एकत्र होकर ठहरती है, ताकि एक ही आवाज में सब जाग जायँ। इसका यह भी कारण है कि इन्हें अपने परिवार की भी कोई चिन्ता नही होती। यदि परिवार भी साथ हो तो सेनावालो का प्राण त्यागना तो कठिन हो ही जाय, उसकी रक्षा हेतु उचित प्रवध की अलग आवश्यकता हो।

नमाज के लिए मकसूरह एवं खुत्बे

यह दोनो चीजें खिलाफत एव इस्लामी सल्तनत की विशेषताएँ है। गैर इस्लामी सल्तनतो में इनका अस्तित्व नही मिलता। नमाज के मक़सूरे का विवरण इस प्रकार है कि मेहराव पर एक ओट अथवा रोक स्थापित की जाती है जो वाजू के स्थान को घेर लेती है और एक कोठरी-सी वन जाती है। मुआविया[1] पर जब खारजी ने आक्रमण किया और उसका वार चूक गया, तव उन्होने इसका आविष्कार किया। कुछ लोगो का कथन है कि जब एक यमन-निवासी ने मरवान विन हकम पर तलवार का वार किया, तव से उसने मकसूरह का आविष्कार किया।[2] सक्षेप मे इन दोनों के उपरान्त इस्लामी खलीफाओ ने इस प्रथा को प्रचलित रखा। इस प्रकार बादशाह अन्य लोगो की अपेक्षा श्रेष्ठ बनकर खडा होता है।

यह सव शाहाना ठाट-बाट की वातें सल्तनतो में साधारणत उसी समय से प्रचलित होती हैं, जब सुल्तान लोग अपना प्रभुत्व वढ़ाने के उपरान्त ऐश्वर्य एव गौरव की अभिलाषा करने लगते है। उन्हें जाहिरी आन-वान की इच्छा होने लगती है। फिर समस्त इस्लामी सल्तनतो में मकसूरह का यही रूप रहा। उदाहरणार्थ, अव्वासियो के राज्यकाल में जव वे छोटे-छोटे राज्यो में विभक्त हो गये तव मकसूरह की यही प्रथा जारी रही। तदुपरान्त उवैदीईन ने और फिर उन आमिलों ने जो उवैदीईन

१. खारजियों ने हजरत अली, अमर बिन आस एवं मुआविया को ४० हि० (६६१ ई०) में एक साथ हत्या कर देने का षड्यन्त्र रचा था, जिसमें केवल हजरत अली की हत्या हो सकी।
२ मरवान पर यमन-निवासी ने ४४ हि० (६६४–६५ ई०) में आक्रमण किया था।

की ओर से मगरिब पर आमिल हुए, अर्थात् सिनहाजा में से बनू बादीस ने कैरवान में और बनू हम्माद ने क़लआ में मकसूरे का यही रूप रखा। इसके बाद जब मुवह्हेदीन समस्त मगरिब एव उन्दुलुस पर छा गये तो उन्होने "बदवी" स्वभाव के कारण इस बनावट की प्रथा को समाप्त कर दिया। जब वे भी बनावट के आदी हो गये और उनका तीसरा बादशाह अबू याकूब मसूर सिंहासनारूढ हुआ तो उसने पुन मकसूहा का निर्माण कराया। फिर मगरिब एव उन्दुलुस के बादशाहो के यहाँ भी यही प्रथा चल निकली और अन्य इस्लामी सल्तनतो ने भी इसी को प्रचलित रखा।

मिम्बर[1] से खुत्बे[2] की प्रार्थना

इसका ऐतिहासिक तथ्य यह है कि इस्लाम के प्रारम्भ में खलीफा लोग स्वय नमाज़ की इमामत किया करते थे। इन बुजुर्गों की यह प्रथा रही कि नमाज के उपरान्त मुहम्मद साहब पर दूरूद भेजते और सहाबा के लिए ईश्वर की सतुष्टि की प्रार्थना किया करते। अमर बिन आस ने ही सर्वप्रथम मिस्र में जामा मस्जिद का निर्माण कराया और उसमें मिम्बर बनवाया। हज़रत इब्ने अब्बास वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने खलीफा के लिए मिम्बर पर प्रार्थना की। वे जब बसरे में आमिल के पद पर नियुक्त थे तो उन्होने अपने खुत्बे में हज़रत अली के विषय में इस प्रकार प्रार्थना की—"हे ईश्वर! सत्य के सम्बन्ध में हज़रत अली की सहायता कर।" फिर यही प्रथा चल पडी।

हज़रत उमर को जब समाचार प्राप्त हुए कि अमर बिन आस ने मिम्बर का निर्माण कराया है तो आपने उनको लिखा कि "मुझको पता लगा है कि तुमने एक मिम्बर बना लिया है और इस प्रकार तुम अपनी गरदन मुसलमानो की गरदनो से ऊँची उठाते हो। क्या तुम्हारे लिए यह पर्याप्त न था कि तुम खुत्बे के समय खडे रहते और मुसलमान तुम्हारे चरणो में बैठे होते। मैं तुमको शपथ दिलाता हूँ, किन्तु तुम फिर भी मिम्बर को न तोडोगे।"

१. मस्जिद का मंच।
२ जुमा की नमाज़ एवं दोनो ईदो की नमाज़ के समय पढ़ा जानेवाला प्रवचन, जिसमें ईश्वर की वन्दना, मुहम्मद साहब, उनके घरवालों एवं सहायकों की आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना के साथ समकालीन बादशाह की भी चर्चा होती है।

वाद में इस्लामी सल्तनत में वनावट अधिक बढ़ गयी और खलीफा लोगो ने कुछ रुकावटो के कारण नमाज़ एव खुत्बे में सम्मिलित होना वन्द कर दिया। उन्होने दोनो कामो के लिए अपने-अपने सहायक नियुक्त किये। खतीव[1], खुत्वे मे समकालीन खलीफा का नाम आदरपूर्वक लेते और उसके लिए शुभकामनाएँ करते, कारण कि ईश्वर ने लोकहित का अधिकार उन्ही को प्रदान कर रखा है, और फिर प्रार्थना की स्वीकृति की ऐसे अवसर पर अधिक सम्भावना होती है। प्राचीन काल की प्रथाओ से यह भी सिद्ध होता है कि जो कोई शुभ कामना करे वह समकालीन सुल्तान के लिए ही करे। इस प्रकार खलीफा ही अकेला शुभकामनाओ का पात्र समझा गया है। इसके उपरान्त जब वादशाहो के अधिकार छिन गये और अपहरण-कर्त्ताओ ने अधिकार का अपहरण कर लिया, तब खलीफा के वाद उनके नाम भी जोड़े जाने लगे और उन्हें भी शुभकामनाओ की प्रार्थना में सम्मिलित किया जाने लगा। जव खिलाफत पूर्णत समाप्त हो गयी तो फिर मिम्वरो पर केवल सुल्तानो के लिए ही प्रार्थना की जाने लगी और किसी अन्य का नाम लेना उचित न समझा गया।

जब तक सल्तनत सरलता एव बदवियत के युग से गुजरती है और दिखावट एव आडम्वर की ओर से उपेक्षा होती रहती है, तो देशवाले सूक्ष्म रूप से विना नाम अथवा बिना किसी व्यक्ति की चर्चा के मुसलमानो के वाली के लिए खुत्वो में शुभ कामनाएँ करते है और उसको अब्बासिया खुत्बा कहा जाता है। कारण कि पहले सूक्ष्म शुभकामना अब्वासी खलीफाओं के विषय में ही की जाती थी और नाम लिए अयवा नाम निर्धारित किये विना खुत्वो में उन्ही की प्रशसा एव उन्ही के लिए शुभ कामनाएँ की जाती थी। कहा जाता है कि जब अबू ज़करिया यहया बिन अवी हफस ने अब्दुल वाद वश के सस्थापक यगमरासिन विन ज़य्यान से तलमसान का राज्य छीन लिया, तो उसने चाहा कि यग़मरासिन को तलमसान का राज्य पुन. सौंपे, तो उसने कुछ शर्ते लगायी। उनमें से एक शर्त यह थी कि उसके राज्य में खुत्वे में अबू जकरिया का नाम लिया जाय। यगमरासिन ने उत्तर दिया कि हमारे यहाँ मिम्वर लकड़ी के ऐसे टुकड़े समझे जाते है जिन पर जिसका नाम चाहते है, ले लेते है। इस पर कोई प्रतिवध नही।

इसी प्रकार वनी मरीन राज्य के सस्थापक याकूव विन अब्दुल हक के पास जव तूनुस (ट्यूनिस) से खलीफा मुस्तसिर का, जो वनी अवी हफस का तीसरा खलीफा हुआ है,

१. खुत्वा पढ़नेवाला।

राजदूत आया तो अपने निवास-काल में एक बार जुमे की नमाज़ में देर से सम्मिलित हुआ। याकूब तक यह सूचना पहुँचायी गयी कि यत. राजदूत के खलीफा का नाम खुत्बे में नही पढा जाता, इसलिए वह जुमे की नमाज़ में सम्मिलित नही हुआ। याकूब ने आदेश दिया कि खुत्बे में खलीफा मुस्तंसिर के लिए शुभकामना की जाय। इस प्रकार उस समय से बनी मरीन मुस्तंसिर के प्रचारक बने।

सक्षेप में सल्तनतें जब तक सरलता एव "बदवियत" का वस्त्र धारण किये रहती है, दिखावे की वातो को भूली रहती है और जब देश की राजनीति पर नयी-नयी वातें अपना प्रभाव डालने लगती है, तो देशवासी देश की उन्नति एव समृद्धि पर गौर करते है और उसकी सभ्यता, संस्कृति तथा गौरव को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा देते है। एसी वातो को देश में प्रचलित करते है जिनसे भेद-भाव बढाया जा सके। इनसे आविष्कार एव ईजाद का काम लेते है और फिर उनको उन्नति की चरम सीमा तक पहुँचा देते है। यदि राज्य में यह वातें न हो तो इनके अभाव के कारण व्याकुल एव दुखी रहते है एवं उनके प्रचलन का अनथक प्रयत्न करते है।

(३७) युद्ध एवं विभिन्न कौमों के युद्ध के ढग, पक्तियों की सुव्यवस्था के नियम

सृष्टि की रचना से लेकर आज तक मनुष्यो में युद्ध, सग्राम एव रक्तपात होता रहा है। इसमें प्रतिकार की भावनाओ का हाथ होता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से बदला लेना चाहता है। हर "असबियत" वाला अपनी "असबियत" के प्रति पक्षपात प्रदर्शित करता है। जब दोनो शक्तियाँ एक-दूसरे के मुकाबले में आती है तो एक बदले की भावना लेकर उठती है और दूसरी प्रतिरक्षा की भावना लेकर युद्ध के लिए आती है। इस प्रकार लडाई ठन जाती है। सक्षेप में युद्ध मनुष्य के लिए एक स्वाभाविक बात है, जिससे कोई कौम अथवा कबीला बच नही सकता। वास्तव में प्रतिकार की भावनाओ के, जो युद्ध की जड है, अधिकांश चार कारण होते है; मर्यादा एव अहंभाव, शत्रुता, ईश्वर के लिए और धर्म की रक्षा हेतु उत्साह एव क्रोध का प्रदर्शन, राजनीतिक उद्देश्यों एव सल्तनत की प्राप्ति के सम्बन्ध में क्रोध की भावनाओ का भड़क जाना। प्रथम बात पास-पास के कबीलो तथा वशो में युद्ध का कारण बनती है। दूसरी बात उन वहशी कौमो में युद्ध एव रक्तपात का कारण बनती है जो जगलो एव वियाबानो में मारी-मारी फिरा करती है। उदाहरणार्थ, अरब, तुर्क, तुर्कमान कुर्द अथवा उन सरीखी अन्य कौमें, कारण कि ये भाले की नोक

से अपनी जीविका प्राप्त करती है। अन्य लोगो के हाथो में जो कुछ ह उसे ये अपनी जीविका का साधन समझती है। जो अपनी सम्पत्ति को इनके हाथ से बचाते हैं उनसे युद्ध करने पर उद्यत रहती हैं। इन विचारो के अतिरिक्त इनका कोई अन्य लक्ष्य नही होता। इन्हें किसी राज्य पर अधिकार जमाने की इच्छा नही होती। इनका पूरा ध्यान इसी ओर आकृष्ट रहता है और इनका दृष्टिकोण सर्वदा यही होता है कि किसी प्रकार अन्य लोगो के हाथ से धन-सम्पत्ति छीनी अथवा ऐंठी जाय। तीसरी बात को हम जेहाद कहते हैं। चौथी बात उन युद्धों का कारण हैं जो विद्रोहियो एव उपद्रवियो के साथ किया जाता हैं। इस प्रकार ये युद्ध की चार किस्में हुईं। इनमें से प्रथम दो विद्रोह एव उपद्रव के युद्ध कहे जाते है और बाद के दो युद्धो को जेहाद एव न्याय के युद्ध कहते है।

सृष्टि की रचना के पूर्व से मनुष्यो में युद्ध के दो नियम प्रचलित हैं। एक वह युद्ध जिसमें नियमित रूप से पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके शत्रु पर आक्रमण अथवा चढाई हो। दूसरी वह जिसमें वीरों की टोलियाँ एक-एक करके शत्रुओ पर छापे मारें और फिर अपनी सेना में वापस लौट जायँ। अजम प्रथम प्रकार के युद्ध के आदी हैं और दूसरे प्रकार का युद्ध अरब अथवा बरबर लड़ा करते हैं। पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके जो युद्ध किया जाय वह अधिक भरोसे का युद्ध माना जाता है और शत्रु के लिए उस युद्ध की अपेक्षा, जिसमें बारी-बारी से अचानक छापे मारे जायँ, अधिक विनाश-कारक होता है। कारण कि इसमें नमाज की पक्तियो के समान पक्तियाँ सुव्यवस्थित की जाती है और फिर पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके ही पूरी सेना आगे बढती है। इस प्रकार प्रत्येक को वीरता के साथ युद्ध करना पडता है और प्रत्येक अपनी वीरता को भली-भाँति प्रदर्शित कर सकता है। पूरी सेना कदम जमाकर युद्ध करती है, जी भरकर युद्ध एव रक्तपात होता है और यह शत्रु के लिए भी अधिक ख़ौफनाक सिद्ध होती हैं। सेना एक लम्बी दीवार है अथवा एक दृढ किले के समान अपने पाँव जमाये खडी रहती है, जिसे शत्रु अपने स्थान से नही हिला सकता। इस प्रकार कुरान शरीफ में लिखा है कि "ईश्वर उन्हें नि सन्देह प्रिय समझता है जो उसके मार्ग में पक्ति बाँधकर युद्ध करते है, मानो सीसा पिलायी हुई दीवार हो।"[1] हदीस में लिखा है—"एक मोमिन दूसरे मोमिन के लिए एक दीवार के समान दृढ़ता का साधन होता है, जिस प्रकार दीवार का एक भाग दूसरे भाग को दृढ बनाता है, इसी प्रकार एक मोमिन

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

दूसरे मोमिन को अपने अस्तित्व से दृढ रखता है।" इसी तथ्य पर शरीअत का यह आदेश आधारित है कि "रण-क्षेत्र में दृढता अनिवार्य है और पीठ दिखाकर भागना हराम है।" कारण कि पक्तियो का उद्देश्य एक सुव्यवस्था स्थापित रखना है जो सैनिको के स्थान को छोड देने पर अस्तव्यस्त हो जाती है। अब जिस सैनिक ने शत्रु को पीठ दिखायी तो उसने मानो पक्तियो की व्यवस्था में विघ्न डाला और बडी गडबडी पैदा की। यदि पराजय हो गयी तो यह पाप भी उसने अपने सिर पर लिया, अपितु कहा जा सकता है कि मानो उसने शत्रु को मुसलमानो के विरुद्ध साहस दिलाया, शत्रु की उन पर शक्ति बढायी और ऐसे उत्पात का कारण बना, जिसने धर्म को छिन्न-भिन्न कर दिया। इन्ही कारणो से इस कुकर्म को बहुत बडा पाप माना गया है और इसकी गणना गुनाहे कबीरा[1] में होती है। इस वर्णन से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि पक्ति बाँधकर युद्ध करना शरीअत की दृष्टि से शत्रु के लिए विनाश का साधन एव घातक है।

जहाँ तक दूसरे प्रकार के युद्ध अर्थात् टोलियो के रूप में शत्रु पर छापे मारना और फिर अपनो में पहुँचकर शरण लेने का सम्बन्ध है, वहाँ तक इसमें न शत्रु के लिए अधिक हानि है और न अपनी पराजय का भय। इसके विपरीत पहले प्रकार के युद्ध में दोनो भय होते है। यद्यपि इसमे भी कुछ सेना पक्तियाँ सुव्यवस्थित किये तैयार खडी रहती है कि छापा मारनेवाले खतरे की दशा में उसकी ओर शरण के लिए पहुँच जाते है। यह पक्ति उनके लिए युद्ध के किले का काम देती है। इसका उल्लेख हम आगे चलकर करेंगे।

प्राचीन बडी-बड़ी सल्तनतो में, जिनके पास सेना भी अधिक सख्या में होती थी और जिनका राज्य भी विस्तृत होता था, यह प्रथा प्रचलित थी कि रण-क्षेत्र में वे अपनी सेना का कुछ भागो में विभाजन कर देती थी। इसका कारण यह था कि सल्तनत में सेना की सख्या जब बहुत बढ जाती थी और सेनाएँ दूर-दूर की दिशाओ से सिमटकर अगणित हो जाती थी, तो इस बात का बडा भय रहता था कि रण-क्षेत्र में एक स्थान पर एकत्र होकर आपस में सब इस प्रकार न मिल-जुल जायँ कि एक-दूसरे को पहचान भी न सकें और शत्रु के स्थान पर अपने साथियो की ही धोखे में हत्या कर डालें। अत इसी भय से बचने के उद्देश्य से सेना को कई भागो में विभाजित कर दिया जाता था और ऐसी व्यवस्था की जाती थी कि उसका प्रत्येक दस्ता अपने साथी दस्ते

१. घोर पाप।

को पहचानता रहे। चार दिशाओ के अनुसार सेना को चार बड़े-बड़े भागों मे विभाजित कर दिया जाता था और सेना का सरदार, सुल्तान अथवा सेनापति सेना के मध्य में स्थान ग्रहण करता था। इस व्यवस्था को वे "ताबेआ" व्यवस्था कहते थे। फारस, रूम, इस्लाम के प्रारम्भिक काल एवं बनी उमय्या तथा बनी अब्बास की सल्तनतों में यही प्रथा प्रचलित थी। सेना का स्थायी भाग अलग कर दिया जाता था, जो बादशाह के समक्ष पक्तियाँ जमाकर खडा होता था। इसका एक सरदार होता था और एक पताका। इसमें अन्य विशेषताएँ भी पायी जाती थीं। सेना के इस भाग को मुकद्दमा[1] कहा जाता था। फिर बादशाह की दायी एव बायी ओर भी सेना के दस्ते होते थे जिनको मैमना[2] तथा मैसरा[3] कहते थे। बादशाह के पीछे भी सेना का एक भाग होता था जिसको साका[4] कहते थे। बादशाह तथा उसके साथी सेना के उपर्युक्त चारो भागो के मध्य में अपना स्थान ग्रहण करते थे और उनके स्थान को कल्ब[5] कहा जाता था।

जब दोनो ओर से यह व्यवस्था पूर्ण हो जाती और जहाँ तक दृष्टि जाती, सेना जमी खडी होती, अथवा इतनी दूर तक सेना को जमाना पड़ता कि दोनो सेनाओ के मध्य में एक अथवा दो दिन चलने तक की दूरी होती, तो सेना की सख्या की कमी अथवा अधिकता को देखते हुए युद्ध प्रारम्भ किया जाता। यह सब बातें इस्लामी विजयो के विवरणो में वर्णित मिलेंगी, अथवा बनी उमय्या एवं बनी अब्बास की सल्तनतो के इतिहास में इनका पता चलेगा। उनसे यह भी पता चल जायगा कि अब्दुल मलिक के समय में "तावेआ" व्यवस्था के दूर-दूर तक फैले होने के कारण सेना के कुछ भाग बादशाह की कूच से अनभिज्ञ रहकर पीछे ही रह जाते थे, अत. साका के नाम से सेना का एक पीछे का भाग नियुक्त किया गया, जो पूरी सेना को बादशाह की कूच की सूचना देकर उसको बादशाह के साथ रवाना करता था। उसका सरदार सर्वप्रथम हज्जाज बिन यूसुफ को, जैसा कि उल्लेख हो चुका, नियुक्त किया गया। उन्दुलुस के बनी उमय्या के राज्यकाल में भी यही प्रथा थी, किन्तु इनका कोई सविस्तर उल्लेख हमारे पास नही, कारण कि हमने तो उन्ही सल्तनतो का युग देखा है जिनकी सेनाएँ इतनी

१ अग्र भाग।
२ सेना का दायाँ भाग।
३ सेना का बायाँ भाग।
४ सेना का पीछे का भाग।
५. सेना का मध्य भाग।

कम होती है कि उनमें एक दूसरे को न पहचानने का भय ही नही उत्पन्न होता। अपितु हम देखते है कि दोनो सेनाएँ एक स्थान तथा एक नगर में उतर जाती है और प्रत्येक अपने सामनेवाले को जानता-पहचानता रहता है और उसके नाम एव उपाधि से रण-क्षेत्र में उसको पुकार लेता है, तो इस दशा में "तावेआ" व्यवस्था की आवश्यकता क्यो पडने लगी।

छापेवाले युद्ध में सेना के पीछे कोई दृढ रोक एव पशुओ की एक पंक्ति रखी जाती है और उसको आक्रमणकारियो के आगे वढने अयवा पीछे हटने के समय शरण का सावन वनाया जाता है। इस उपाय से युद्ध अधिक देर तक चलाया जा सकता है और शत्रु पर प्रभुत्व प्राप्त करने की भी उसमें अविक सम्भावना होती है। जो लोग पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके युद्ध करते है, वे भी कभी-कभी दृढता एव एक स्थान पर जमे रहने की दृष्टि से इसी उपाय का पालन करते है और सेना के पीछे पशुओ की एक पक्ति खडी कर लेते है। फारस वालो के विपय में कहा जाता है कि यद्यपि वे पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके युद्ध करते थे, किन्तु फिर भी अपने साथ हाथियो की पक्ति रखते थे, इन हाथियो पर लकडी के हौदे होते थे। प्रत्येक हौदे में वीर सवार रहते थे और हथियार तथा साज व सामान उन पर लदा होता था। सेना की पताकाएँ भी इन्ही पर होती थी। फिर इन हाथियो को पक्ति के रूप में सेना के पीछे जमाकर उनको अपनी रक्षा हेतु एक सुरक्षित किला समझा जाता था। इस उपाय से उनके दिलो को पर्याप्त ढाँढस रहता था और उनका साहस वढ जाता था।

कादिसिया के इतिहास का अव्ययन करने से पता चलेगा कि युद्ध के तीसरे दिन जव ईरानी, मुसलमानो पर टूट पड़े और उधर से मुसलमान वीर भी उन पर झपटे और एक-दूसरे के साथ पूर्ण-रूप से गुँथ गये तो मुसलमानो ने तलवार से हाथियो की सूँडें काटनी प्रारम्भ कर दी। हाथी भडककर उलटे पाँव भागने लगे और सीधे मदाएन की ओर चल दिये। ईरानी सेना के छक्के छूट गये और अन्त में चौथे दिन वह वुरी तरह पराजित हो गयी।

उन्दुलुस के कोत एव रूम के सुल्तान तथा अधिकाश अजमी कौमें सिंहासनो से यह काम लेती है। वादशाह का सिंहासन रणक्षेत्र में विछाया जाता है। उसके सेवक, परिजन एव उस पर प्राण त्यागनेवालो के दस्ते उसके राज-सिंहासन को चारो ओर से घेर लेते है। सिंहासन के आस-पास पताकाएँ लगायी जाती है। फिर उसके इधर-उधर धनुर्धारियो की एक पक्ति तथा पैदल सेना खडी की जाती है। इस प्रकार राज-सिंहासन सुरक्षित भी रहता है और वीरो के लिए रक्षा का एक उत्तम स्थान वन जाता

है। कादिसिया के युद्ध में भी फारसवालो ने ऐसा ही किया था। रुस्तम को एक राज-सिंहासन पर आरूढ किया गया था। जब उनकी सेना में भगदड़ मची और अरब उनकी सेना के मध्य में घुसकर उसके सिंहासन तक पहुँच गये तो रुस्तम फुरात की ओर भाग निकला, किन्तु मार्ग में ही मौत के घाट उतार दिया गया।

अरब तथा अन्य "बदवी" कौमें, जो दूसरे प्रकार के युद्ध की आदी है, अपनी सेना के पीछे ऊँटो की पक्तियाँ खडी करती है, जिनके कजावो[1] में उनके परिवारवाले होते है। यह पक्ति उनके लिए रक्षा का काम देती है और वे इसको "मजबूदह" कहते है। सक्षेप में प्रत्येक कौम युद्ध में इसी उपाय का पालन करती है और इसे युद्ध के दाव-घात के लिए एक भरोसे की चीज़ समझती है और पराजय से रक्षा हेतु शान्ति का चिह्न जानती है। फिर यह कोई काल्पनिक चीज नही, अपितु रात-दिन की प्रयोग में आयी हुई और देखी-भाली चीज है। हमारे युग की सल्तनतें इस ओर से उपेक्षा कर रही हैं। वे लद्दू जानवर और खेमो से सेना का साका तैयार करती है जो हाथी एव ऊँट के साका का कदापि काम नही दे सकते। इसी कारण सेनाएँ पराजित हो जाती है और रण-क्षेत्र से भाग खड़ी होती है। इस्लाम के प्रारम्भ में पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके युद्ध होता था, यद्यपि अरब छापामार युद्ध के ही आदी थे। केवल दो कारणों से अरबो नें अपना नियम एव ढग बदल दिया था। एक तो इसलिए कि उनके शत्रु भी इसी प्रकार के युद्ध के आदी थे, अत विवश होकर वे भी इसी प्रकार युद्ध करने लगे। दूसरा कारण यह था कि उनके धार्मिक विश्वास एव धैर्य ने उनको सचाई सिखायी थी, जो इसी प्रकार के युद्ध में प्राप्त हो सकती थी।

सर्वप्रथम पक्तियो को सुव्यवस्थित करके युद्ध करना त्यागकर तावेआ का युद्ध मरवान बिन हकम ने प्रारम्भ किया। उसने जह्हाक खारजी तथा खैबरी से इस विधि से युद्ध किया था। तबरी लिखता है कि जव खबरी की पराजय के समाचार प्रसिद्ध हुए और खारजियो ने शैबान विन अव्दुल अजीज अल यशकूरी को, जिसकी उपाधि अवुद् दलफा थी, अपना सेनापति वनाया और मरवान ने खारजियो के मुकावले में पाँव जमाये, तो उसी दिन से उसने पक्तियो के युद्ध को त्यागकर "तावेआ" की व्यवस्था प्रारम्भ करायी। फिर जब इस्लामी सल्तनतें समृद्ध एव सुखी हो गयी तो सेना के पीछे रक्षा के दस्ते रखने की प्रथा भी समाप्त हो गयी। जब तक सल्तनत पर "वदवियत" का रग चढ़ा रहा और लोग खेमो में जीवन व्यतीत करते रहे, तब उनके

१. ऊँट का हौदा।

पास ऊँट बड़ी अधिक सख्या म होते थे और यात्राओ में वे अपने ऊँटो पर अपने परिवार को साथ रखने के आदी थे। जब "वदवियत" का युग समाप्त हुआ और लोग शहरी जीवन एव राजप्रासादो तथा महलो के निवास के आदी हुए तो यात्राओ में अकेले निकलने लगे। स्त्रियो एव परिवार वालो को घर पर ही छोडने लगे। समृद्धि ने उनको सुन्दर खेमे-डेरे रखने का आदी वना दिया। वे युद्ध में जाते तो केवल वोझ ढोने के पशुओ को अपने साथ ले जाते, जो उनके खेमे-डेरे इत्यादि भी उठाते थे एव अन्य सामान भी। किन्तु युद्ध का यह नवीन ढग युद्ध के प्राचीन ढग की अपेक्षा कुछ अधिक लाभदायक सिद्ध न हुआ, कारण कि इस प्रकार सेनावाले जान तोडकर युद्ध नही करते एव वीरता तथा पौरुष प्रदर्शित करते हुए शत्रु के मुकावले में न जमते थे। साधारण-सी वात में उनके पाँव उखड जाते थे और उनकी पक्तियाँ टूट जाती थी।

इस वात को ध्यान में रखते हुए छापा-मार युद्ध करनेवाले अपने पीछे प्रतिरक्षा के दस्ते खड़े करते है। मगरिव के वादशाह जो छापा-मार युद्ध लडने के आदी है, फिरगियो का एक रक्षक दल अवश्य अपनी सेना के पीछे रखते है, ताकि सामने की लडाई लडनेवालो के लिए वे रक्षक वन सकें। उन्होने फिरगियो को पीछे के दस्ते के लिए इस आशय से छाँटा कि वे लोग पक्तियाँ सुव्यवस्थित करके युद्ध करते है। इस उद्देश्य हेतु ऐसी ही कौम के लोग चुने जाते थे जिनके कारण आगे की सेना की पीठ दृढ रहे। यदि कही ऐसी कौम के लोग इसमें भरती कर लिये जायँ जो छापा मार युद्ध के आदी है, तो अपनी आदत के अनुसार ज़रा-से दवाव में पीछे के दस्ते के लोग भी अपना स्थान छोड भागेंगे और फिर आगेवाली सेना के भी पाँव उखड जायेंगे। यद्यपि इस प्रकार से काफिरो से सहायता लेनी पडती है, किन्तु वादशाहो ने इस वात को कोई महत्त्व नही दिया, कारण कि यदि किसी अन्य कौम से सहायता ली जाय, जो छापा-मार युद्ध की आदी हो, तो वादशाहो को उनकी ओर से अपना स्थान छोडकर हट जाने का भय होता है। यह भय फिरंगियो के विषय में नही पैदा होता, कारण कि वे तो सर्वदा जमकर और एक स्थान पर डटकर युद्ध करने के आदी है। वे लोग अपना स्थान कभी नही छोडते, अत उनसे अधिक इस उद्देश्य के लिए कौन उपयुक्त हो सकता है। फिर यह भी है कि मग़रिव के वादशाह फिरगियो से इस प्रकार की सहायता जेहाद के अतिरिक्त अन्य लडाइयो में, जो कि उनसे तथा अरव एव वरवर से ठनती है, लिया करते हैं। किन्तु जेहाद में उनसे इस भय से सहायता नही लेते कि वे कही मुसलमानो पर न पल्ट पड़ें। मगरिव में आजकल ऐसा ही हो रहा है और उसके कारण वही है जिनका हमने उल्लेख किया।

तुर्क इस समय बाणो से युद्ध करते है एव सेना की व्यवस्था पक्तियो द्वारा करते है। सेना के आगे-पीछे तीन पक्तियाँ बनाते है। युद्ध के समय घोड़ों से उतरकर पैदल हो जाते है और सामने की दिशा में बाणो की वर्षा करते है। हर पिछली पक्ति अगली पक्ति की रक्षा करती है और शत्रु से उसे बचाती है। वे अन्त तक इसी प्रकार युद्ध करते है, जब तक कि किसी एक पक्ष की विजय न हो जाय। इनके युद्ध का ढग वास्तव मे बड़ा विचित्र है।

प्राचीन काल के लोगो का युद्ध-नियम यह था कि वे रण-क्षेत्र के निकट सेना के चारो ओर इस भय से खाई खोद लेते थे कि शत्रु रात्रि के समय छापा न मारे। अँधेरी रात्रि एक तो पहले ही भयानक होती है, फिर रात्रि के छापे का कष्ट झेलना और भी दु खदायी होता है। ये दोनो ही कष्ट सेना को भागने पर विवश करते है और रात्रि के अँधेरे में सेनावाले लज्जावश इधर-उधर कही सुरक्षित हो जाते है। ऐसी घबराहट एव बेचैनी में यदि पक्तियाँ ठीक करने का प्रयत्न किया जाय तो भी सैनिको के पाँव नही जमते और वे भागते दीख पडते है। इससे बडी भारी पराजय का सामना करना पडता है। इन्ही खतरो से बचने के लिए पिछले समय के लोग पडाव के वक्त अपनी सेना के आस-पास खाई खोद लिया करते थे कि यदि शत्रु छापे मारने का प्रयत्न करे तो वह स्वय ही उसमें गिरकर समाप्त हो जाय। पिछले जमाने में इस योजना के अनुसार सुगमतापूर्वक कार्य हो सकता था। वे प्रत्येक पडाव पर बहुत बडी सख्या में मजदूर एकत्र कर लेते थे। देशो की जनसख्या भी अधिक थी और सल्तनतो के प्रभुत्व का क्षेत्र भी विस्तृत था। इस समय जब कि राज्यो की जनसख्या कम हुई, सल्तनतें कमज़ोर पडी, सेनाओ की सख्या घटी और मजदूर अप्राप्य हो गये, तब खाई खोदने की प्रथा भी ऐसी मिटी कि मानो थी ही नही।

सिफ्फीन के सग्राम के समय[1] हजरत अली ने अपने साथियो को उभारने के लिए जो बहुमूल्य परामर्श दिये, उनसे युद्ध के अनेक बहुमूल्य सिद्धान्त प्राप्त होते है। हजरत अली से बढकर युद्ध में कुशल कौन था? उन्होने कहा है—"एक सीसा पिलायी हुई दीवार के समान पक्ति बनाकर खड़े हो जाओ। जिरह पहननेवाले आगे रहे और जिनके पास ज़िरह न हो वे पीछे रहें। दाँतो को किटकिटाकर बन्द कर लो, ताकि यदि सिर पर तलवार पड़े तो उचट जाय। भालो पर झुक जाओ, ताकि वे टूटने से सुरक्षित रहें। आँखें नीचे रखो, ताकि हृदय मजबूत रहे और हृदय में घबराहट का

१ ३७ हि० (६५७-५८ ई०)। यह युद्ध हजरत अली एवं मुआविया में हुआ।

स्थान न रहे। मद स्वर में बोलो, ताकि शक्तिहीनता तुम तक न पहुँच सके और तुम्हारा सम्मान हाथ से न जाय। पताकाओं को सीधा रखो और उन्हीं के हाथ में दो जो वीरता में अद्वितीय हों। सत्यता एव धैर्य को कभी मत त्यागो, कारण कि ईश्वर की सहायता धैर्य से ही प्राप्त होती है।...... ....

निम्नांकित पद्य भी युद्ध की नीति पर प्रकाश डालता है।

पद्य

मैं तुम्हारे समक्ष युद्धकला की कुछ गूढ़ समस्याएँ प्रस्तुत करता हूँ, कारण कि तुमसे पूर्व फारस के बादशाह इनका पर्याप्त पालन कर चुके हैं। यह इसलिए नहीं कि मैं इनको अधिक जानता हूँ, अपितु इनकी स्मृति मोमिनों के लिए बड़ी लाभप्रद होगी और उनको उभारेगी।

रण-क्षेत्र में दोहरी ज़िरह, जो तलवार के कारीगरों का एक कारनामा है, पहनो। तेज़ धारवाली हिन्दी तलवार बाँधो, कारण कि वह ज़िरह की लड़ियों को तेज़ी से काट देती है।

सामान से लदे आगे बढनेवाले घोड़ों पर सवार हो, जो उस सुरक्षित किले की भाँति हों जिससे कोई निकल न सके।

सेना के पड़ाव के चारों ओर खाई खोद लो, चाहे तुम विजयी होकर शत्रु का पीछा कर रहे हो, अथवा वह तुम्हारा पीछा कर रहा हो।

और नदी को पार न करो अपितु उसके उस पार उतरो ताकि वह तुम्हारी सेना एवं शत्रु के बीच में रोक एवं दीवार बन सके।

यथासम्भव शत्रु से रात्रि में मुकाबला करो और सेना के पिछले भाग में सच्चे वीरों को नियुक्त करो। इस उपाय से खतरे से बचाव अधिक हो सकता है।

संग्राम के समय जब सकरे रणक्षेत्र में सेनाएँ न समा सकें तो भालों की नोक उनको चौड़ा कर सकती है।

शत्रु पर प्रथम वार ही टूट पड़ो, उसे सँभलने न दो, क्योंकि ज़रा सी कायरता एवं झिझक मनुष्य को नष्ट कर देती है।

सेना के अगले भाग में महान् योद्धाओं को रखो, जिनके स्वभाव में विश्वासघात न करनेवाली सचाई पायी जाती हो।

जब झूठे लोग परेशान करनेवाले समाचार फैलायें तो उन पर कान न धरो, कारण कि झूठे लोगों के कर्म एवं वचन का कोई विश्वास नहीं।

यह कथन कि "अचानक शत्रु पर टूट पडना चाहिए, सोच-विचार एव झिझक उचित नही," लोगो के साधारण दृष्टिकोण के विरुद्ध है। हज़रत उमर ने जव अबू उबैद बिन अल मसऊद सकफी को फारस एव इराक का सेनापति बनाया तो उनसे कहा कि "देखो ! मुहम्मद साहब के सहाबियो की बात को ध्यान से सुनो और उसको कार्यान्वित कराओ। उनसे अपने कार्यो में सहायता लिया करो और उन पर विचार करते रहो। जब तक अवसर को भली-भाँति न जाँच लो और ऊँच-नीच को समझ न लो, तब तक शत्रु से मत भिड पडो, कारण कि यह युद्ध है। इसमें धैर्य धारण करनेवाला मनुष्य उपयुक्त रहता है, जो अवसर पाकर अग्रसर होने अथवा रुके रहने के महत्त्व को भली-भाँति जानता हो।" फिर कहा कि "यदि सलीत में जल्दबाज़ी न होती तो मैं उसी को सेनापति बनाता, किन्तु युद्ध में जल्दबाजी करने मे हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नही । युद्ध के लिए वही मनुष्य उपयुक्त है जो धैर्य धारण कर सके और सोच-विचार की प्रवृत्ति रखता हो।" हजरत उमर का यह कथन इस बात को स्पष्ट करता है कि युद्ध में तेज़ी की अपेक्षा धैर्य रखना अच्छा है। धर्य तेज़ी से उत्तम है ताकि युद्ध का उचित रग-ढग स्पष्ट हो जाय। अत यह कथन सैरफी के दृष्टिकोण का खंडन करता है। यदि सैरफी के कथन की इस प्रकार व्याख्या की जाय कि एकाएकी आक्रमण सम्बन्धी परामर्श उस समय के लिए है, जब कि सोच-विचार एवं गौर के उपरान्त यह पूर्ण रूप से उचित ज्ञात हो जाय कि इस समय क्षण भर का विलम्ब उचित नही। ऐसी अवस्था में तो उसका कथन अपने स्थान पर नि सन्देह ठीक है।

युद्ध में सफलता एव विजय साज व सामान की बहुतायत एव सैनिको की सख्या पर अवलम्बित नही, अपितु उसका आधार भाग्य एव सयोग पर है। कभी-कभी विजय के वाह्य कारण एक-एक करके ज्यादा से ज़्यादा आ उपस्थित होते है। कभी सेना की सख्या अधिक होती है, हथियार पूरे और नये ढग के उपलब्ध होते है, वीरो की अधिकता होती है, सेना एव पक्तियो को बडे अच्छे ढग से सुव्यवस्थित किया जाता है, सक्षेप में युद्ध के समस्त सिद्धातो की पूरी-पूरी व्यवस्था होती है, किन्तु सफलता दूसरे पक्ष को ही प्राप्त होती हैं। विजय एवं सफलता के रहस्य दो प्रकार के होते है। एक वे, जिनमें मनुष्य के कर्म-भोग का हाथ होता है, उदाहरणार्थ धूर्तता, जालसाज़ी, युद्ध की युक्तियाँ, निराधार समाचार उड़ाकर शत्रु को अपमानित करना, शत्रु से ऊँचे स्थान पर ठहरकर इस प्रकार युद्ध करना कि शत्रु नीचे की ओर होने के कारण शीघ्र पराजित हो जाय। झाडियो, घाटियो एव छिपने के स्थानो मे बैठकर शत्रु को एकदम घेर लेना कि शत्रु को बुरी तरह घिरकर भागते ही बने, अथवा इसी प्रकार के अन्य उपाय काम में लाना।

दूसरे गुप्त रहस्य वे हैं, जो मनुष्य की शक्ति के वाहर हैं और जिनमें केवल ईश्वर का हाथ होता है। उदाहरणार्थ, एक पक्षवाले के हृदय में ऐसा आतक एव रोव छा जाना कि एका-एकी उसके पाँव उखड जायें और उसे पराजित होना पडे। इन गुप्त कारणो का विजय तथा पराजय में वडा हाथ होता है, अत प्रत्येक पक्षवाला विजय के लोभ में यह सव खेल खेलता है और उनका स्पष्ट प्रभाव देखता है। इसी कारण मुहम्मद साहव ने कहा है—"युद्ध धूर्तता का नाम है।" अरव में यह प्रसिद्ध है कि "कभी-कभी कवीले की अपेक्षा युक्ति से अधिक काम निकल आता है।" हमारे इस वर्णन से यह वात स्पष्ट हो गयी कि विजय एव सफलता में गुप्त कारणो का वहुत वडा हाथ होता है, जाहिरी कारणो का स्थान गौण। इन्ही गुप्त कारणो को दूसरे शब्दो में भाग्य तथा सयोग कहते है।

ऐसे गुप्त कारणो के, जिनका सवंध केवल ईश्वर की लीला से है, प्रभाव का प्रमाण भी हमें मुहम्मद साहव की शुभ वाणी द्वारा मिलता है। उनका कथन है कि "मैं अपने शत्रु से एक मास की दूरी पर रहता हूँ, ताकि उसके हृदय पर मेरा आतक व्यापक हो जाय। अन्त में यही मेरी सफलता का कारण वनता है।" मुहम्मद साहव अथवा उनके वाद के युग में भी इसी का प्रमाण मिलता है कि इन दैवी कारणो ने कभी-कभी आश्चर्यजनक प्रभाव प्रदर्शित किये हैं और विजय प्रदान की है।··· ·

प्रत्यक्ष कारणो को महत्त्व देते हुए तुरतूशी लिखता है कि युद्ध में यदि एक ओर प्रसिद्ध वीरो एव नामी शहसवारो की दूसरे पक्ष की अपेक्षा कुछ अधिकता है तो उसको सफलता प्राप्त होगी। उदाहरणार्थ, एक पक्ष में १० अथवा २० वीर है और दूसरे में ८ या १६, तो अधिक सख्यावाले पक्ष को अवश्य विजय प्राप्त होगी। किंतु उनका यह दृष्टिकोण ठीक नही। ज़ाहिरी कारणो में जिस चीज़ का वास्तव में वहुत वडा प्रभाव होता है, वह है "असवियत"। जिस पक्ष में सव "असवियतें" एक ही "असवियत" में लीन हो गयी हो, वह उस पक्ष पर, जिसमें "असवियतें" विभिन्न एव अधिक संख्या में हो, विजय प्राप्त करेगा। क्योंकि "असवियत" के अधिक सख्या में होने की वजह से प्रत्येक कवीला अपनी-अपनी डफली अलग वजाता है और अपनी मनमानी चलाता है तथा अवसर पडने पर साथ छोड देता है। इसके विपरीत यदि समस्त "असवियतें" मिलकर एक हो गयी हो तो भिन्न-भिन्न शरीरो के वावजूद सव योद्धा एक-जान हो जाते हैं। हर एक दूसरे पर प्राण न्योछावर करता है। इस प्रकार "असवियत" को ही हम ज़ाहिरी कारणो में विजय के लिए कुछ महत्त्व दे सकते है, न कि संख्या को, जिसकी ओर तुरतूशी झुक गया है। इस भ्रम का कारण

वास्तव में यह है कि अल्लामा को "असबियत" के प्रभाव का ज्ञान न था। उनकी दृष्टि केवल विभिन्न लोगो अथवा समूहो पर थी। उनकी दृष्टि में "असबियत" एव कुल का कोई महत्त्व न था। इसका सविस्तर उल्लेख इससे पूर्व किया जा चुका है। तुरतूशी ने जो कारण बताया है उसे हम केवल जाहिरी कारणो में गिन सकते है। अन्य जाहिरी कारण है सेना का साज व सामान, अस्त्र-शस्त्रो की अधिकता, वीरो की सख्या का आधिक्य इत्यादि। हम यह बता ही चुके है कि प्रभुत्व एव विजय में इनका कोई हाथ नही। वह तो पूर्ण रूप से गुप्त कारणो—धूर्तता, धोखे, एव दैवी बातो पर निर्भर होती है। यदि आप भौतिक ससार के इस रहस्य को ध्यानपूर्वक देखें और समझेंगे तो आपको इस रहस्य का पता चल जायगा।

युद्ध में प्रभुत्व एव विजय की प्राप्ति प्रसिद्धि-प्राप्ति की साधना से पूर्णत मिलती-जुलती है। उसके भी कुछ गुप्त कारण होते है जो दृष्टि से ओझल रहते है। बहुत-से बादशाह, आलिम, पवित्र लोग एव सिद्ध पुरुष ऐसे है, जो वास्तव में प्रसिद्धि के पात्र है किन्तु देश में उनकी प्रसिद्धि नही होती, और यदि होती भी है तो सयोग से निन्दा मिश्रित ही। वास्तव में उनके लिए यह कदापि ठीक नही। बहुत से ऐसे व्यक्ति है जो बिलकुल अप्रसिद्धि की भेंट हो जाते है, यद्यपि वे प्रसिद्धि के सबसे अधिक पात्र होते है। कभी ऐसा भी होता है कि प्रसिद्धि भी होती है और प्रसिद्ध व्यक्ति वास्तव में इसका पात्र भी होता है। इस पूरे गोरखधधे का रहस्य है कि प्रसिद्धि एव नामवरी प्रचार द्वारा प्राप्त होती है और प्रचारित समाचारो में प्राय न्याय्य उद्देश्यो की उपेक्षा की जाती है और उनमें पक्षपात का पुट दिया रहता है। उनसे भ्रम एव सदेह भी उत्पन्न हो जाता है। समाचारो के वर्णन को वास्तविकता से मिलाने की चेष्टा बहुत कम की जाती है और झूठ एव बनावट का आवरण उन पर चढा दिया जाता है। कभी-कभी वर्णन देनेवाले की अज्ञानता इसका कारण होती है। अधिकाश ऐसा होता है कि लोग सासारिक सम्मान प्राप्त लोगो एव उच्च पदवालो का गुण गान करने लगते है और उनको प्रसिद्धि देते है, ताकि उनकी आड में वे सासारिक यश प्राप्त कर सकें। इस प्रकार अधिकाश लोग यश एव समृद्धि पर मरने लगते है और उसी को मूल उद्देश्य समझते है। वास्तविक योग्यता एव निपुणता से उनका कोई सम्बन्ध नही होता। दूसरी ओर उच्च पदवाले अनुचित प्रशसा के प्रति असतोष प्रकट नही करते, अपितु प्रसन्न होते है और फूले नही समाते।

अब आप स्वय गौर करें कि जब ऐसी अनुचित बातें प्रसिद्धि के कारण स्वीकार की जाने लगें तो वास्तविक प्रसिद्धि कितनी अप्राप्य होगी। अत इन्ही गुप्त कारणो

से सच्ची प्रशंसा दुष्प्राप्य हो जाती है और तथ्य अन्य ही रूप धारण कर लेता है, अपितु यह कह सकते हैं कि सत्य झूठ का जामा पहन लेता है। जब प्रसिद्धि भी गुप्त कारणों से होने लगी तो मानो सौभाग्य एव सयोग ही उसके आधार हुए। इससे पूर्व ही यह कथन किया जा चुका है कि गुप्त कारणों को सौभाग्य एवं सयोग कहा जाता है।

(३८) खराज एवं उसकी कमी-बेशी के कारण

सल्तनत के प्रारम्भ में खराज की मात्रा कम एवं वसूली का योग अधिक होता है। सल्तनत के अन्तिम काल में इसका उलटा होता है। खराज की मात्रा बढ जाती है और वसूली का योग कम हो जाता है। इस तथ्य का कारण यह है कि यदि हुकूमत इस्लामी सिद्धातो पर स्थापित है तो सदको, खराज एव जिज़िये इत्यादि की समस्त वसूली शरा के अनुसार निर्धारित मात्रा में होती रहती है और वह सब कम मात्रा में होते हैं। यदि धन की ज़कात होगी तो वह भी कम और यदि अनाज एव पशुओ की ज़कात होगी तो वह भी कम। यही हाल जिज़िये एव खराज का है कि वह भी कुछ अधिक न होंगे। सक्षेप में इन सब शरई करो की सीमाएँ निर्धारित हैं जिनमें वृद्धि की सम्भावना नही। जब सल्तनत प्रभुत्व एव "असबियत" पर आधारित होगी तो उसका प्रारम्भ भी "बदवियत" से ही होगा, जिसका प्रमाण हम पहले अध्यायो में दे चुके हैं। "बदवियत" कृपा, नम्रता, शुभचिन्ता, सद्व्यवहार, असग्रह और अपरिग्रह एव प्रजा से उचित सीमा तक कर की वसूली की अपेक्षा रखती है। इसी कारण "बदवियत" की छाया में प्रजा को जो कुछ कर एव खराज अदा करना पडता है, वह कम होता है। जब देशवासियो पर लगानो का भार कम होता है तो वे प्रसन्नतापूर्वक कार्यो में तल्लीन रहते हैं और मुल्क की आबादी दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढने लगती है। कारण कि लगान की मात्रा कम होने के कारण लोग दूर-दूर से आकर वहाँ बस जाते हैं। राज्य की जन-सख्या में वृद्धि होने के कारण हर प्रकार की वसूलियाँ बढ़ जाती है और खराज में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

जब राज्य इसी प्रकार दीर्घ काल तक चलता रहता है और बादशाह निरतर राज्य प्राप्त करते रहते हैं, तो उनमें धन एकत्र करने की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और बदवियत की सरलता, सौजन्य एव रवादारी की भावनाएँ भी समाप्त हो जाती हैं। अब इस प्रकार अत्याचार पर आधारित राज्य एव नगर का जीवन प्रारम्भ होता है, जिसमें बादशाहो में धन एकत्र करने एव धन की माँग की भावनाएँ उन्नति पर होती

है। उनके चरित्र बिगड़ते है और उनकी आवश्यकताएँ बढ जाती है। इस अवस्था को प्राप्त होकर वे भोग-विलास एव नाज़-नखरो के शौकीन बनते है, जिसके फलस्वरूप उनकी आवश्यकताएँ भी साथ-साथ अधिक हो जाती है। इस परिस्थिति से घिरकर उनको अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने का केवल एक यही साधन दृष्टिगत होता है कि व्यापारी, कृषक एव अन्य प्रजा पर कर की मात्रा दुगुनी, चौगुनी अथवा उससे भी अधिक बढा दें। व्यापारिक माल के आयात एव निर्यात पर चुगी लगायें और इस प्रकार अपने राज्य की आय बढाकर अपने हर प्रकार के उचित एव अनुचित व्यय पूरे करें। फिर जैसे-जैसे बादशाहो के भोग-विलास की आदत बढती है, वैसे-वैसे उनके व्यय में भी अपार वृद्धि होती है। राज्य के कर भी इसी प्रकार बढते जाते है, यहाँ तक कि लगानो एव विभिन्न करो का भार बेचारी प्रजा की कमर तोड देता है, किन्तु यह भार शनै-शनै बढता है, इसलिए प्रजा इसकी आदी हो जाती है और फिर उसको यह भी ज्ञान नही रहता कि प्रारम्भ में किसने करो में वृद्धि की थी और वह किस प्रकार इस सीमा तक पहुँचा, किन्तु प्रजा की जनसख्या पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। लोग जब अपने लाभ एव करो की तुलना करते है और अपनी सारी दौड़-धूप की प्राप्ति पर दृष्टि डालते है तो उनकी लाभ कमाने की भावनाएँ ठडी पड़ जाती है। उनका साहस टूट जाता है। उनका उत्साह मन्द पड़ जाता है। वे काम-काज से हाथ खीचने लगते है। भूमि का उपयोग कम हो जाता है। जब यह दशा हो जाती है तो खराज की मात्रा बहुत ही घट जाती है। सल्तनतवाले राज्य की आय को घटता देखकर लगानो एव करो इत्यादि की मात्रा में और वृद्धि करते है ताकि कमी की पूर्ती करें, यहाँ तक कि इस शनै-शनै की वृद्धि से कर एव ख़राज इस सीमा तक पहुँच जाते है कि कारोबारी लोगो एव कृषको का लाभ उसमें लुप्त हो जाता है। सभ्यता एवं सस्कृति के कार्यो पर अत्यधिक व्यय करना पडता है और साथ-साथ खराज एव लगान भी भारी-भारी मात्रा में लगाने पडते है, किन्तु उन्हें उससे कोई व्यक्तिगत या सार्वजनिक लाभ नही दृष्टिगत होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने लाभ के पीछे अपनी जान खपाता है, अतः जब लोगो को लाभ दृष्टिगत नही होता तो वे देश छोड़ने लगते है। सभ्यता एव सस्कृति का पतन होने लगता है और इसका दड राज्य को स्वयं ही भोगना पडता है।

सक्षेप में किसी देश की सभ्यता इस बात पर निर्भर है कि देशवालो पर नाना प्रकार के करो का भार यथासम्भव हलका रखा जाय, ताकि वे प्रसन्नतापूर्वक अपने कार्यों में अपने प्राण खपायें और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करें।

(३९) सल्तनत के अन्तिम युग में चुगी एव मार्गीय करों की प्रथा प्रारम्भ होती है

पहले ही बताया जा चुका है कि प्रारम्भ में सल्तनत पर "बदवियत" का रंग चढा होता है। राज्यवाले भोग-विलास से अनभिज्ञ एव वासनाओ की तृप्ति से दूर होते हैं। इसी कारण उनकी आवश्यकताएँ कम होती है। वे कम कमाते तथा कम व्यय करते है। राज्य से जो कुछ खराज एव लगान प्राप्त होता है वह उनकी आवश्यकताओं के लिए न केवल पर्याप्त होता है, अपितु उसमें से कुछ बच भी रहता है। फिर शनै-शनै सल्तनत "बदवियत" से निकलकर नगर के जीवन एव सस्कृति की ओर अग्रसर होती है और अन्य सभ्य सल्तनतो के मार्ग पर चलने लगती है। सस्कृति अपने साथ अधिक से अधिक व्यय लाती है। बादशाह के व्यक्तिगत व्यय एव दान-पुण्य इतने अधिक हो जाते है कि राज्य की आय से यह व्यय पूरा नही हो पाता। सल्तनत को इस बात की आवश्यकता होती है कि कर एव खराज में वृद्धि की जाय ताकि राज्य की बढती हुई सेना सम्बन्धी आवश्यकताओ की भी उनसे पूर्ति हो और बादशाह का खर्च भी चल सके। राज्य के करो में वृद्धि का यह पहला कदम होता है। फिर जब सल्तनत वाले भोग-विलास की ओर अधिक आगे बढते है और इस सम्बन्ध में उनके व्यय में वृद्धि होती है तथा सेना के व्यय बढ जाते है, तो राज्यकर भी अधिक बढाना पडता है, यहाँ तक कि सल्तनत अपने जीवनकाल की अन्तिम साँसें लेने लगती है। "असबियत" में शक्ति नही रहती कि राज्य के विभिन्न भागो से कर प्राप्त कर सके। फलत राज्य की आय गिर जाती है।

इधर सास्कृतिक आवश्यकताएँ बराबर बढती रहती है और सैनिक व्यय भी साथ-साथ अधिक होता जाता है, अत शासक को इस समस्या के समाधान का एक यही मार्ग दृष्टिगत होता है कि वह व्यापारिक माल पर नाना प्रकार के कर लगाये। बाजारो में जो कुछ भी बिके और नगर में व्यापारिक माल से जो कुछ आय हो उसमें से राज्य का कर भी वसूल किया जाय। किन्तु इस अनुचित आचरण से भी बादशाह की भूख नही मिटती और वह हर प्रकार की वसूली के लिए चिंतित एव व्याकुल रहता है। देशवाले भोग-विलास के कारण अपना व्यय बढा लेते है। इस प्रकार वे सल्तनत से अधिक-से-अधिक इनाम की आशा करते है, ताकि अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति करें। फिर ऐसी दशा में सेना की सख्या में भी वृद्धि हो जाती है। उसके वेतन एव उसकी वृत्ति का बोझ भी सल्तनत पर बढ जाता है। सल्तनत के अन्तिम युग में तो करो की इतनी अधिकता हो जाती है कि व्यापार की ओर से लोगो की

आशाएँ टूट जाती है और राज्य के बाजार एव मडियाँ फीकी पड़ जाती है। देश की जनसख्या घटने लगती है और इसकी हानि भी सल्तनत को ही भुगतनी पडती है। उसके आर्थिक ताने-वाने कमज़ोर पड जाते है।

इतिहास से पता चलता है कि पूर्व में अब्बासी एव उबैदीई सल्तनतो के अन्तिम युग में ऐसा ही हुआ कि देशवालो पर नाना प्रकार के भारी-भारी कर लगाये गये, यहाँ तक कि हाजी को भी हज के दिनो में भारी-भारी कर अदा करने पडते थे। अन्त में सलाहुद्दीन इब्ने अय्यूब ने इन कुप्रथाओ को मिटाया और इनके स्थान पर परोपकार एव भलाई की प्रथाएँ चलायी। इसी प्रकार उन्दुलुस में विभिन्न समूहों के समय भी यही प्रथा रही। फिर मुरावेतीन के अमीर यूसुफ बिन ताशफीन शासको ने इन कुप्रथाओ का अन्त किया। हमारे इसी युग में इफरीकिया में जरीद के नगरो पर जब से वहाँ के हाकिमो ने अधिकार प्राप्त किया है, नाना प्रकार के कर लगा दिये है। "ईश्वर अपने सेवको पर कृपा करता है।"[1]

(४०) सल्तनत का व्यापार प्रजा को हानि पहुँचाता है और देश के राजस्व को नष्ट कर देता है

यह बात भली-भाँति जाननी चाहिए कि देश में भोग-विलास के बढ जाने और नाना प्रकार के प्रदर्शनो की प्रथाओ के प्रचलित हो जाने से जब देश के व्यय में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है और राज्य का कर उन हानियो एव कमियो की पूर्ति नही कर पाता तथा राज्य देश की कर-व्यवस्था में वृद्धि करके राज्य की आय बढाने पर तुल जाता है, तो चीज़ो के आयात-निर्यात पर चुगी लगायी जाती है और बाजारी व्यापारिक माल की आय पर कर लगाया जाता है। यदि चुगी की प्रथा पूर्व से चल रही हो तो उसकी सख्या में वृद्धि कर दी जाती है। कभी आमिलो एव ख़राज वसूल करनेवालो को इस सम्भावना के कारण निचोडा एव चूसा जाता है कि वे लोग ख़राज का अत्यधिक माल खा गये होगे, जो जाँच में नही आया है।

इस प्रकार ख़राज की आड में सल्तनत व्यापार एव कृषि का कारोबार प्रारम्भ करती है। सल्तनतवालो के मस्तिष्क में यह बात समा जाती है कि चूँकि व्यापारी एव कृषक थोडी-सी पूँजी से अत्यधिक लाभ एव अनाज प्राप्त करते है तो सल्तनत इसमे क्यो पीछे रहे, जब कि उसके पास पूँजी भी अधिक है। अत. उसे अधिक से

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

अधिक लाभ की आशा होती है, कारण कि कारोबार में लाभ की कमी अथवा ज़ियादती पूँजी की कमी एव ज़ियादती पर निर्भर होती है। अतः सरकार मवेशी तथा अनाज सस्ते से सस्ते मूल्य पर क्रय करती है और बाज़ारो में लाकर भारी मूल्य पर बेचती है और समझती है कि इस प्रकार ख़राज बढेगा और ख़ूब लाभ होगा, हालाँ कि यह उसका भ्रम होता है। इस प्रकार कई तरह से प्रजा का विनाश हो जाता है।

सर्वप्रथम हानि यह होती है कि व्यापारी एव कृषक पशुओ एव अन्य व्यापारिक सामग्री के क्रय-विक्रय में झिझकने लगते है, कारण कि प्रजा तो धन-सम्पत्ति में एक-दूसरे के बराबर अथवा एक-दूसरे के निकट होती है। एक व्यापारी अथवा कृषक दूसरे के मुकाबले में आ सकता है, किन्तु यदि सुल्तान स्वय व्यापार एव कृषि में हाथ डाल दे तो चूँकि उनके पास पूँजी अधिक होती है, अत. प्रजा में से कोई भी उसका मुकाबला नही कर सकता। सुल्तान के मुकाबले में प्रत्येक व्यक्ति अपनी असफलता एव अपने काम में घाटा देखता है। इसी दु ख में उसके पाँव आगे बढने के स्थान पर पीछे हटते हैं। फिर बादशाह की ख़रीदारी की यह स्थिति होती है कि कभी वह डरा-धमकाकर धन-सम्पत्ति छीन लेता है और कभी कम से कम मूल्य पर प्राप्त करता है। कारण कि कोई अन्य व्यक्ति तो उसका मुकाबला कर नही सकता और न मूल्य बढने की सम्भावना होती है, फलत व्यापारी को बहुत कम लाभ प्राप्त होता है। परेशान व्यापारी जब अनाज, रेशम, मधु, शक्कर तथा अन्य खाने-पीने की वस्तु प्राप्त करते हैं अथवा नाना प्रकार का व्यापारिक माल लाते है, तो उनको बाज़ारो में ले जाने अथवा बाज़ार के भावो को देखने की प्रतीक्षा नही करनी पडती, अपितु जिस मूल्य पर सौदा पट जाता है, वे माल को निकाल देते हैं, कारण कि माल को रोके रखने पर अथवा उनको बाज़ार में ले जाने पर उन्हे सल्तनत का भय होता है। यदि इच्छानुसार लाभ प्राप्त करने के लोभ में वे माल रोके रखते है तो उनका सारा माल पत्थर की भाँति बिना किसी लाभ के पडा रहता है और वह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है। तब उनके जीविकोपार्जन का कोई साधन नही रहता, क्यो कि व्यापारियो की रोज़ी तो माल के लेन-देन एव उलट-फेर पर ही निर्भर है। यदि उनको नक़द धन की आवश्यकता पड जाती है तो वे बाज़ारभाव से गिराकर सस्ते मूल्य पर भी माल निकाल देते हैं। जब इस प्रकार की हानियाँ व्यापारियो एव कृषको को बार-बार उठानी पडती है, तो उनकी पूँजी शीघ्र ही समाप्त हो जाती है और इस प्रकार वे अपने व्यापार से हाथ धो बैठते है। संक्षेप में इस प्रकार व्यापारियो

के निरन्तर हानि उठाने से और लाभ नष्ट होने से उनके उत्साह में कमी हो जाती है। वे अपने व्यापार से हाथ खीच लेते है। फलत खराज में बडी शोचनीय दशा तक कमी हो जाती है, कारण कि देश का खराज अधिकाश व्यापारियो एव कृषको द्वारा ही प्राप्त होता है। यह दुर्दशा तब और भी महत्त्वपूर्ण होती है जव चुगी की प्रथा भी चला दी जाय और उससे खराज की वसूली में वृद्धि की आशा की जाय। जव कृषक खेती से और व्यापारी व्यापार से अलग हो जाते है तो खराज या तो पूर्णत समाप्त हो जाता है, या बड़ी खतरनाक सीमा तक उसमें कमी हो जाती है। बादशाह जव खराज की आय तथा अपने व्यापार की आय की तुलना करने बैठता है तो उसकी आँखें खुल जाती है, क्योकि दोनो आयो में वहुत बड़ा अन्तर है।

मान लिया जाय कि व्यापार वादशाह के लिए लाभदायक है, किन्तु इसमे भी तो सन्देह नही कि क्रय-विक्रय में कठिनाइयाँ अलग उठानी पड़ती है और खर्च अलग वरदाश्त करना पड़ता है। इधर राज्य की आय का बहुत कुछ भाग उसके हाथ से निकल जाता है। कर, जिसकी धन-राशि व्यापार से कही अधिक होती है, हाथ से जाता रहता है। यदि व्यापार दूसरे के पास हो तो कर की धन-राशि विना किसी कठिनाई, परिश्रम एवं दौड़-धूप के प्राप्त होती रहती है और वह भी व्यापार के लाभ से अधिक होती है। अत. इसमें सन्देह नही कि वादशाह के व्यापार में हाथ डाल देने से राज्यवाले नष्ट एव दुर्दशा को प्राप्त हो जाते है और अन्त में सल्तनत भी विनाश से नही वच सकती, कारण कि जव लोगो को कृषि एव व्यापार से कोई लाभ नही प्राप्त होता तो उनकी आर्थिक दशा बुरी तरह गिर जाती है। तब खर्च ही खर्च रह जाता है, आय नही होती। इस प्रकार जनता बरबाद हो जाती है। जब देशवासी नष्ट हुए तो सल्तनत का पता कहाँ मिल सकता है।

फारसवालो का तरीका यह था कि वे उसी व्यक्ति को बादशाह वनाते थे जो शाही वश से सम्बन्धित होता था और धर्मनिष्ठता, दान-पुण्य, वीरता, पौरुष सरीखे उत्तम गुणों से सुशोभित होता था। न्याय के गुण को दृष्टि में रखकर वे उसके साथ यह भी शर्त लगाते थे कि वह किसी ऐसी कला में हाथ न डालेगा जो उसके पडोसियो को हानि पहुँचाये तथा ऐसा व्यापार न प्रारम्भ करेगा जिससे मूल्य बढने की आशका हो। न वह दासो से सेवा लेगा, कारण कि उनसे भलाई एव हित सम्वन्धी परामर्श की कोई आशा नही होती।

यह बात भली-भाँति ज्ञात होनी चाहिए कि बादशाह के धन की वृद्धि और उसके प्राणो का सुख खराज की ही वसूली पर निर्भर है। खराज की वसूली इस बात

पर निर्भर है कि वादशाह अपने अधीनस्थ धनी लोगो के साथ न्यायपूर्वक व्यवहार करे। उन पर दया एवं कृपा की दृष्टि रखे। इससे उनकी आशाएँ बढेंगी, उत्साह में वृद्धि होगी और फिर लोग खुले दिल से पूँजी को कार-बार में लगाकर उससे लाभ प्राप्त करेंगे और उन्हे बटायेंगे। इस प्रकार शाही आय में वृद्धि होगी। इसके विपरीत आय-वृद्धि के साधन के रूप में राज्य का व्यापार में हाथ डालना अथवा कृषि कराना देश एव देशवासियो के लिए लाभजनक होने के स्थान पर हानि का कारण होता है। उससे प्रजा नष्ट हो जाती है। खराज की वसूली कम हो जाती है और देश उजडने लगता है।

कभी व्यापार एवं कृषि करनेवाले अमीर लोग एवं अपहरणकर्ता ऐसा करने लगते है कि वे वाहरी व्यापारियों एव कृषको से व्यापारिक माल अथवा अनाज जिस भाव पर चाहते है क्रय कर लेते है, और उसे फिर अपनी अधीन प्रजा को जिस भाव पर चाहते है, बेच देते है। व्यापार का यह प्रकार पहले प्रकार से भी अधिक हानिकारक है और प्रजा को शीघ्रातिशीघ्र विनाश के घाट उतार देता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक कुशल व्यापारी, जो आजीवन व्यापार ही करता रहा है या एक पेशेवर किसान, जो वाल्यावस्था से खेती ही करता चला आ रहा है, वादशाह को चक्कर में डाल देता है और उसको समझाता है कि साझे में व्यापार किया जाय और उसमें एक भाग उसका भी हो। इससे उसका उद्देश्य वादशाह की आड में लाभ कमाना होता है। इस प्रकार चुगी एव अन्य करो से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। यही वाते व्यापार की कमर तोड दिया करती है। इस प्रकार धोखा देकर लोग अपना खेल खेलते है, किन्तु यह नही समझते कि इस प्रकार वादशाह का खराज कितना घट जायगा और उसे लाभ के स्थान पर कितनी हानि होगी। अत. वादशाह को ऐसे स्वार्थी चापलूसो से वचना चाहिए एव अपने खराज की आय को इस प्रकार के दुराचार से ठेस न लगानी चाहिए।

(४१) वादशाह एवं उसके विश्वासपात्रो की धन-सम्पत्ति सल्तनत के मध्य युग में वढती है

सल्तनत के प्रारम्भिक युग में खराज इत्यादि की रकम वादशाह के कबीले एवं "असबियत" वाले आपस में वाँट लेते है। इसका कारण यह है कि वही राज्य के संस्थापक होते है और राज्य की नीव वही डालते है, अत वे उसका लाभ भी क्यो न उठायें। प्रारम्भ में तो उन्हें कदापि नही भुलाया जा सकता। वादशाह का पूरा

ध्यान खराज इत्यादि से हटकर अपनी निरकुशता एव शक्ति को दृढ बनाने की ओर होता है। "असबियत" वालो से ही उसे सम्मान प्राप्त होता है और उन्ही पर वह अपने आप को निर्भर समझता है। बादशाह की इस अपेक्षा के कारण खराज एव कर का उतना ही भाग उसे प्राप्त होता है जितना उसकी आवश्यकताओ को बडी कठिनाई से पूरा करने के लिए पर्याप्त होता है। जब बादशाह की यह दशा हुई तो उसके विश्वासपात्र और वे, जो उससे सम्बधित है, उदाहरणार्थ वज़ीर, कातिब, दास इत्यादि, प्रायः खाली हाथ ही रहते है और उनका जीवननिर्वाह अधिकतर चापलूसी एवं चाटुकारी द्वारा होता है। उनका सम्मान एव पद निम्न कोटि का और अनिश्चित-सा होता है, कारण कि उनका स्वामी स्वय "असबियत" वालो के प्रभाव में ग्रस्त तथा उनसे दबा रहता है। उसके अधिकार भी सीमित होते है, अत उसे इन लोगो के उभारने का अवसर कहाँ और किस प्रकार मिल सकता है। इस स्थिति की समाप्ति के उपरान्त जब सल्तनत की नीव दृढ़ होती है और सुल्तान को अपनी कौम पर स्वतत्र अधिकार प्राप्त होते है तो वह वसूली की अधिक रकम "असबियत" वालो के हाथ नही लगने देता। उनको उतना ही देता है जितना अन्य लोगो को मिलता है। इस प्रकार उनकी आय घट जाती है और सल्तनत के नौकर-चाकर एव आश्रित सल्तनत को दृढ रखने तथा शासन चलाने में उनके बराबरके साझीदार समझे जाते है। इस वातावरण के उत्पन्न हो जाने पर बादशाह समस्त खराज अथवा उसका अधिकाश भाग स्वय दबा लेता है। सल्तनत की धन-सम्पत्ति को अपने अधिकार में रखता है और विशेष अवसरो के लिए वह धन एकत्र किये रहता है। इस प्रकार उसकी धन-सम्पत्ति बढ जाती है। खजाना माला-माल हो जाता है। उसके अधिकार बहुत बढ जाते है। सक्षेप में पूरी कौम मे वही आदर एव सम्मान का स्वामी दृष्टिगत होता है।

जब बादशाह यह रूप धारण कर लेता है तो उसके विश्वासपात्र, सहायक, वजीर, हाजिब, कातिब, दास, अधिकारी एव सेनावाले भी अपना रग पलटते है। उनको महत्त्व प्राप्त होता है। उनके अधिकार बढ़ते है। वे धन एकत्र करने की चिन्ता में लगते है। सल्तनत का यह मध्य युग भी जब विनाश की ओर अग्रसर होता है और शासन की युवावस्था समाप्त होकर वृद्धावस्था के चिह्न दृष्टिगत होते है तो "असबियत" समाप्त हो चुकती है और सल्तनत के सस्थापकों का अन्त हो चुका होता है। इस समय सल्तनत विरोधियों एव विद्रोहियों के जाल में फँसती है और राज्य का बुरा चाहनेवाले प्रत्येक दिशा से उस पर टूट पड़ते है। ऐसी अवस्था में

बादशाह को विवश होकर नये सहायक तैयार करने पड़ते है और सल्तनत के गिरते हुए सम्मान को बचाना पड़ता है, अत वह अब खराज का उपयोग अपने सहायको के हित के लिए प्रारम्भ कर देता है और उन्हें खिलाता-पिलाता है। ये सहायक "तलवारवालो" एव उनकी "असबियत" से सम्बधित होते है, जिन पर वह अपने खजाने लुटाता एव धन-सम्पत्ति न्योछावर करता है, किन्तु इस दशा में दान-पुण्य एव व्यय भी उसे अधिक करना पडता है। खराज में, जैसा कि हम बता चुके है, कमी होने लगती है। खराज की कमी से बादशाह की धन-सम्बन्धी आवश्यकता और बढती है। वह इसी चिन्ता में ग्रस्त रहता है कि राज्य की आय किस प्रकार बढायी जाय, जिससे राज्य का व्यय पूरा हो सके। बादशाह की चिन्ता के कारण उससे सम्बधित लोग, उदाहरणार्थ हाजिब, कातिब इत्यादि भी समृद्ध एव धन-धान्यसम्पन्न नही रह पाते। उनका सम्मान कम हो जाता है।

फिर सल्तनत के अन्तिम युग में कुछ ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि इधर तो बादशाह के विश्वास-पात्र एवं इष्ट-मित्र अपने पूर्वजो की सचित धन-सम्पत्ति का अपव्यय प्रारम्भ कर देते हैं और उधर बादशाह "और भी अधिक" व्यय करने की इच्छा करने लगता है। वह सोचता है कि इस धन का, जिसे मेरे विश्वास-पात्र नि सकोच व्यय कर रहे है, वास्तविक उचित पात्र मै ही हूँ, कारण कि मेरे ही पूर्वजो की कृपा एवं उन्ही के प्रयत्नो से इनके पूर्वजो ने यह धन-सम्पत्ति एकत्र की है। इसी विचार से बादशाह उनमें से एक-एक को शनै.-शनै. निचोडने लगता है और शासन उनका विरोधी हो जाता है। जब बादशाह के विश्वास-पात्र नष्ट होने लगते है और समृद्ध एव धनी लोग समाप्त हो जाते है, तो इसका परिणाम भी बादशाह को ही भोगना पडता है। इस प्रकार वह भव्य भवन, जिसका निर्माण बादशाह के पूर्वजो द्वारा हुआ था, एकाएक भूमि पर आ रहता है। इस तथ्य के प्रमाण में इतिहास से अनेक उदाहरण उपस्थित किये जा सकते है, उदाहरणार्थ अब्बासियो के राज्यकाल में बनू कहतबा, बनी बरमक, बनू सहल और बनू ताहिर सरीखे वजीरो के साथ इसी प्रकार का व्यवहार हुआ। इसी प्रकार उन्दुलुस में बनी उमय्या के अन्तिम राज्यकाल में मुलूकुत्तवाएफ के बनू शुहैद, बनू अबी अबदह, बनू हुदैर, तथा बनू बुर्द इत्यादि के साथ ऐसा ही व्यवहार किया गया, अपितु हमारे युग में भी यही सब कुछ हो रहा है।

इन्ही घटनाओ एव तथ्यो के कारण बहुत से अधिकारी एव सल्तनत के ओहदे-दार, जब धन-सम्पत्ति एकत्र कर लेते है तो अपने पदो एव ओहदो को त्याग-कर अन्य

देशो को चले जाने के विषय में सोचने लगते है और बादशाह के हाथो से बचने का प्रयत्न करते हैं। वे सोचते हैं कि अन्य देशो मे पहुँचकर अपनी सचित धन-सम्पत्ति को शान्ति से इच्छानुसार व्यय करें एव लाभान्वित हो, यद्यपि यह बड़ा अनुचित कदम एव झूँठा विचार है जो उनकी सासारिक दशा पर बडा बुरा प्रभाव डालता है। समझ लीजिए कि इन पदो में उलझने के उपरान्त फिर उनसे मुक्ति कठिन ही नही, अपितु असम्भव है। यदि बादशाह स्वय भी देश से निकल भागना चाहे तो न प्रजा ही उसको निकलने के लिए क्षण भर का अवसर देगी, न उसकी "असबियत" वाले अनुमति देंगे, अपितु उसे घेरे रहेंगे और उसके बहुत-से विचारो मे बाधा डालते रहेंगे। यदि बादशाह के इस सकल्प का पता चल जाय तो राज्य का तो उसके हाथ से निकल जाना आवश्यक ही है, किन्तु उसके प्राण भी खतरे में पडते है। समय की गति-विधि कुछ इस प्रकार की है कि राज्य का फदा एक बार गले में पड़ने के उपरान्त फिर निकाले नही निकलता, विशेष रूप से जब सल्तनत उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गयी हो। उसमें अराजकता बुरी तरह फैल गयी हो और देश में दुराचार एव व्यभिचार ने सौजन्य, सहृदयता एव सच्चरित्रता का स्थान ले लिया हो। ऐसी दशा मे यदि बादशाह के विशेष सेवको, विश्वास-पात्रो एवं राज्य के सम्मानित लोगो में से कोई निकल भागने की योजना बनाये तो उसको भी नही छोड़ा जाता। इसके कई कारण हैं।

(१) बादशाह यह जानते है कि उनके सहायक एवं अधीन अपितु उनकी समस्त प्रजा, उनके वे दास एव ममलूक है जो उनके गुप्त भेदो से परिचित है। इस भय से कि कही वे उसके रहस्य एव गुप्त भेद अन्य लोगो को न बता दें, उन्हें दासता की बेडियो से छूटने नही दिया जाता। इसके अतिरिक्त उनकी मर्यादा भी उन्हें इस बात की अनुमति नही देती कि अब तक जो उनकी सेवा एवं दासता में रहे हो वे किसी अन्य स्थान पर पहुँचकर दूसरो के सेवक एव दास कहलायें और अन्य लोगों की दासता में प्रविष्ट हो।

इस प्रकार उन्दुलुस में बनी उमय्या अपने अधिकारियो को हज तक के लिए इस भय से जाने की अनुमति न देते थे कि कही वे बनी अब्बास के चगुल में न फँस जायँ। इसी कारण बनी उमय्या के राज्यकाल में उनके पदाधिकारी हज तक न कर सके और बनी उमय्या के राज्यकाल के अन्त में मुलूकुत्तवाएफ के राज्यकाल में उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकी और वे हज कर सके।

दूसरा कारण यह है कि यदि बादशाह अपने विश्वासपात्रो को अपनी दासता

से किसी न किसी प्रकार मुक्त भी करना चाहें तो वे इस वात को किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकते कि वे उनके राज्य से कमायी हुई धन-सम्पत्ति भी ले जायँ। इस कारण वादशाह उनकी धन-सम्पत्ति को छीन लेते हैं और उन्हें खाली हाथ निकालते हैं। यह मान लिया जाय कि यदि वे किसी प्रकार छिप-छिपाकर एव नज़र वचाकर धन-सम्पत्ति ले भागे, तो यह होता भी वहुत कम है, और दूसरे देश के वादशाह उनको नहीं छोडते, अपितु उन्हें अपने लाभ का साधन समझकर डरा-धमकाकर किसी आड में या खुल्लम-खुल्ला उनकी लायी हुई धन-सम्पत्ति छीन लेते हैं और उनको वुरी तरह चूस लेते हैं। उनका दृष्टिकोण यह होता है कि जो धन-सम्पत्ति उन लोगो के पास है, वह खराज का धन है जो सर्व-साधारण के हित पर व्यय होना चाहिए, किसी एक अथवा दो व्यक्तियो को अपने इच्छानुसार उसे व्यय करने का अधिकार नही है। वास्तव में वादशाहो के दूरदर्शी नेत्रो से कोई धन-सम्पत्ति किस प्रकार वच सकती है? ये लोग जव लोगो के गाढे पसीने की कमायी हुई धन-सम्पत्ति को नही छोडते तो खराज एव सल्तनत के इस्तेमाल में क्यो चूकेंगे, जहाँ शरा एव प्रथा दोनो के ही अनुसार उन्हें हस्तक्षेप का अधिकार है। ......[१]

सक्षेप में धन-धान्यसम्पन्न लोगो का वादशाह के पजे से निकल भागने का विचार केवल मिथ्या है। वे अधिक से अधिक अपने प्राण ही वचा सकते है, किन्तु धन-सम्पत्ति ले भागना और किसी अन्य देश मे पहुँचकर उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करना उनकी वहुत वड़ी भूल है। जीविकोपार्जन एव रोज़ी के लिए उनको प्राचीन शाही सेवाएँ पर्याप्त है जो उन्हें शाही वृत्ति का पात्र वनाती है और उनके आदर-सम्मान को भी सुरक्षित रखती है। यदि वे व्यापार एव कृषि में हाथ डालें तो उनमें भी उन्हें सफलता प्राप्त हो सकती है, किन्तु इसके लिए उन्हें सतोष एव धैर्य की आवश्यकता है।

(४२) वादशाह के दान-पुण्य मे कमी खराज की कमी की द्योतक है

इसका कारण यह है कि सल्तनत, ससार के लिए एक वडे वाज़ार के समान है और आवादी एव सस्कृति इसी पर अवलम्वित है। यदि वादशाह धन एव खराज को रोक ले और आवश्यक मदो पर व्यय न करे अथवा उसके पास धन तथा खराज

१. यहाँ मग़रिव के इतिहास के कुछ उदाहरण दिये गये हैं, जिनका अनुवाद नहीं किया गया।

हो ही नही, तो ऐसी दशा में बादशाह के सहायक एव उसकी सेनावाले धन से रहित हो जाते है। फिर उनसे उनके सम्बधियों एव सेवको को जो कुछ आय होती है वह भी बन्द हो जाती है, कारण कि जब उनके व्यय में कमी हुई तो उनसे सम्बधित सभी खर्चों में कमी हो जाना परमावश्यक है। जब देश का समृद्ध वर्ग, जो शालीनता की जान होता है और जिस पर बाजारों की समृद्धि वास्तव में निर्भर होती है, दान-पुण्य से वचित होने लगता है तो दरिद्रता का युग प्रारम्भ हो जाता है। व्यापारियो के लाभ में कमी होने लगती है और फिर ख़राज में भी कमी आ जाती है। ख़राज एव कर की वसूली के लिए यह आवश्यक है कि देश में लेन-देन एव कारोबार का ज़ोर हो। उद्योग-धधे तेज़ी से चल रहे हो। बाजारो में रौनक एवं चहल-पहल हो। लोग लाभ के लोभ में अधिक से अधिक पूँजी लगा रहे हो। यदि इस समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता में कमी होती है तो समस्त हानि राज्य को सहन करनी पडती है। सल्तनत की आय शोचनीय दशा तक घट जाती है, कारण कि ख़राज की वसूली कम हो जाने पर सल्तनत की आय कम हो ही जानी चाहिए।

हम कह चुके है कि राज्य, ससार के लिए एक बड़े बाजार के समान है। वह बाजारो की जड एव नीव है और स्वयं अपने आय-व्यय पर जीवित रहता है। यदि वह कगाल हो जाय और उसके व्यय घट जायँ तो बाज़ार इत्यादि, जो उसी पर निर्भर है, ठडे पड़ जायँगे। वास्तव में प्रजा एव बादशाह के बीच में धन-सम्पत्ति का उलट-फेर होता रहता है। धन-सम्पत्ति बादशाह से प्रजा तक पहुँचती है और फिर प्रजा द्वारा बादशाह तक आती है। यदि बादशाह कुछ व्यय न करे तो प्रजा अवश्य ही दरिद्र हो जायगी।

(४३) अत्याचार सभ्यता के विनाश का द्योतक है

लोगो की धन-सम्पत्ति का अपहरण उनकी आशाओ का अन्त कर देता है। उनकी धन-सम्पत्ति एकत्र करने की समस्त अभिलाषाएँ समाप्त हो जाती है। कारण कि वे समझ लेते है कि इधर माल हाथ लगा और उधर लुटा, मानो धन की प्राप्ति का फल निराशा हो। इसी प्रकार जब उनकी आशाएँ समाप्त हो जाती है एव अभिलाषाएँ ठडी पड़ जाती है तो वे धन कमाने से हाथ खीच लेते है। परिश्रम एवं प्रयत्न से पीछे हटते है। अत्याचार एवं शोषण यदि बड़े विस्तृत क्षेत्र में हो रहा हो तो उसका प्रभाव भी विस्तृत होगा। लोग जीविकोपार्जन के समस्त साधनो की ओर से निराश

होकर बैठ रहेंगे। इसके विपरीत यदि अत्याचार कम होगा तो उसका कुप्रभाव भी उसी के अनुसार कम तथा हलका होगा।

इधर यह भी सत्य है कि सभ्यता की उन्नति धन की अधिकता, बाज़ार एव मडियो की चहल-पहल, लोगो का उद्योग-धंधो में व्यस्त होकर जीविकोपार्जन करने का प्रयत्न, परिश्रम एव दौड-धूप पर निर्भर है। जब लोग जीविकोपार्जन की ओर से निराश एवं बद-दिल होकर, थककर बैठ जायें और धन-सम्पत्ति पैदा करने की ओर से हाथ खीच लें तो बाज़ार ठडे पड जाते हैं और देश की दशा शोचनीय हो जाती है। लोग जीविकोपार्जन एवं रोजी कमाने के लिए अन्य देशो को निकल जाते है। फलत देश उजड़ने लगता है। नगर एव कसबे बसनेवालो से खाली हो जाते हैं। जब देश की दुर्दशा हो जाती है तो सल्तनत भी विनाश से बच नही सकती, कारण कि उसका अस्तित्व सभ्यता की उन्नति पर निर्भर है। यदि देश में उपद्रव होता है और खराबी पैदा होती है तो इससे देश की सभ्यता शीघ्र एव अवश्य ही प्रभावित होती है।

इस प्रसंग में मसऊदी की वह कहानी शिक्षाप्रद है, जो उसने फारसवालो के विषय में लिखी है। इसमें मोबेज़ान (फारस वालो का मुख्य धार्मिक नेता) दार्शनिक बहराम बिन बहराम को उल्लू की एक कहानी सुनाकर अत्याचार से रोकता है तथा असावधानी से चेताता है। वह लिखता है कि एक दिन बहराम ने एक उल्लू की आवाज़ सुनकर मोबेज़ान से पूछा कि "तुम समझते हो कि यह क्या कह रहा है?" उसने उत्तर दिया कि "जी हाँ! एक नर उल्लू किसी मादा उल्लू से विवाह करना चाहता है। वह अपने महर में २० उजडे हुए ग्रामो की माँग करती है। नर उल्लू इस शर्त को स्वीकार करते हुए कहता है कि यदि बहराम बादशाह का राज्य कुछ दिन और रह गया तो तू जो २० वीरान ग्राम ही चाहती है, मै तुझे सहस्रो वीरान गाँव दे दूँगा।" यह सुनकर बहराम एक दम चौंक पडा और मोबेज़ान से एकान्त में पूछने लगा कि "बताओ, तुम्हारा इससे क्या तात्पर्य है?" उसने उत्तर दिया—"बादशाह! याद रखो कि देश की उन्नति, आदर-सम्मान एव उसका अस्तित्व धर्म के नियमो के पालन पर निर्भर है। इसका सम्बन्ध ईश्वर की आज्ञाकारिता पर कटिबद्ध होने और उसके आदेशो के अनुसार जीवन निर्वाह करने पर निर्भर है। धर्म के नियमो का अस्तित्व बादशाह के कारण है। बादशाह की इज्ज़त प्रजा पर निर्भर है। प्रजा का जीवन, धन-सम्पत्ति से है और धन-सम्पत्ति देश की आबादी एव रौनक से प्राप्त होती है। आबादी न्याय एवं इसाफ के सिद्धान्तो पर ज़िन्दा

रहती है। न्याय एव इसाफ एक तराजू का नाम है जिसको ईश्वर ने प्राणियो के लिए सिरजा है और उसकी नाप-तोल के लिए बादशाह को नियुक्त किया है। अव हे वादशाह! तुम ज़रा सोचो कि तुमने भूमि के स्वामियों को उनकी उन भूमियो से, जो उनको आबाद रखती थी और जो खराज अदा करके देश की आय मे वृद्धि किया करती थी, वचित कर दिया है। तुमने उनकी भूमि को उनसे छीनकर अपने सेवको, दासो एव विश्वास-पात्रो को दे दिया है। उन लोगो ने भूमि को नष्ट किया और उजाड दिया। तुमने इसके दुष्परिणाम की ओर से उपेक्षा की और भूमि के सुधार की ओर कोई ध्यान न दिया। फिर उनसे इस कारण कि वे वादशाह के दरबारी एवं विश्वास-पात्र थे, खराज की वसूली में भी उपेक्षा की। खेद है कि जो लोग खराज अदा करते तथा भूमि को आवाद करते थे, वे बेचारे अपनी भूमियो से वचित होकर देश छोड-कर भाग गये और उन्होने वीरानो में स्थान ग्रहण किया और वही जाकर बस गये। इस कारण देश की जनसख्या कम हुई। जमीनें परती पडी रह गयी और उजड़ती गयी। देश की आय घट गयी। सेना एव प्रजा नष्ट हो गयी। अन्त में फारस के आस-पास के राजाओ ने फारस पर लालच की दृष्टि डालनी प्रारम्भ् कर दी है, कारण कि वे समझ गये है कि फारस के राज्य की नीव खोखली हो गयी है।"

वहराम ने जव यह करुणामय घटनाएँ सुनी तो वह अपने देश की दशा पर गौर करने लगा। उसने अपने विश्वासपात्रो को प्रदान की हुई ज़मीनें छीनकर उनके प्राचीन स्वामियो को दे दी और प्राचीन प्रथाओ का पुनरुद्धार किया। जब भूमि के प्राचीन स्वामियो को उनकी भूमि मिल गयी तो वे उसे पुन. समृद्ध करने मे लग गये। उनमें से जो भूमि छिन जाने के कारण दरिद्र हो गये थे, वे सपन्न एवं धनी बन गये। भूमि आवाद हो गयी। देश हरा-भरा एव उन्नत हो गया। खराज वसूल करनेवालो के पास धन-सम्पत्ति के ढेर लग गये। सेना एव लश्कर के वैभव में उन्नति हो गयी। शत्रु हताश हो गये। सीमातो पर सेनाओ के पहरे लग गये। बादशाह शान्तिपूर्वक अपने कार्यो मे व्यस्त हो गया। इस प्रकार वादशाह की भी दशा सुधरी और उसका राज्य सुव्यवस्थित हो गया, अत इस कहानी से स्पष्ट रूप में यह निष्कर्ष निकलता है कि अत्याचार सभ्यता की जड काटता है, परिणामत. विनाश की विपत्ति सल्तनत पर टट पड़ती है और वह नष्ट हो जाता है।

चूंकि कभी-कभी वड़े-वडे नगरो पर राज्य की ओर से घोर अत्याचार होने पर भी वे नष्ट नही होते, अत इससे कोई भ्रम न हो जाना चाहिए। इसका कारण इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि अत्याचार एव पीड़ित बस्तियों में विशेष सम्बन्ध होता

है। यदि नगर वहुत वडा और जनसख्या अधिक होती है और उसका प्रभाव दूर-दूर तक फैला होता है, तो उस पर हुए अत्याचारो का प्रभाव कम दृष्टिगत होता है। सभ्यता में कमी तो प्रारम्भ हो ही जाती है, किन्तु शनै-शनै, क्योकि नगर के मामले वहुत विस्तृत होते है और उसके कारोवार की सस्थाएँ देश के वहुत वडे क्षेत्र तक पहुँची होती है, अतः देश की वीरानी के स्पष्ट चिह्न अधिक समय उपरान्त ही वहाँ दृष्टिगत होते है। कभी-कभी ऐसा होता है कि नगर मे विनाश के चिह्न गुप्त रूप से प्रारम्भ हो जाते है, किन्तु इससे पूर्व कि अत्याचारी सल्तनत के हाथो नगर पूरी तरह नष्ट हो, स्वय सल्तनत नष्ट हो जाती है और दूसरी सल्तनत उसका स्थान ले लेती है। यह दूसरी सल्तनत आवादी में नयी जान डालती है और वह उन दोपो एवं खरावियो को, जो दृष्टि से ओझल होकर नगर की जड़ें काट रही थी, दूर करती है। इस प्रकार विनाश के गुप्त चिह्नो पर आवरण ही पडा रह जाता है और नगर देखते-देखते अपनी खोयी हुई शोभा पुन. प्राप्त कर लेता है। लोग समझते है कि नगर अपनी पहली दशा में ही चल रहा है। सक्षेप में अत्याचार का प्रभाव सभ्यता पर अवश्य पड़ा करता है और फिर उसकी विनाशक लपटें राज्य को भी छू लेती है।

साथ-साथ यह भी याद रखना चाहिए कि अत्याचार किसी की धन-सम्पत्ति छीन लेने और किसी की भूमि पर अकारण अधिकार जमाकर उसे भूमि से वचित कर देने तक ही सीमित नही होता, अपितु उसका क्षेत्र वडा विस्तृत होता है। किसी का दूसरे की सल्तनत एव हुकूमत को छीन लेना, अपहरण, अनुचित माँग, किसी को वह उत्तरदायित्व सौंप देना जिसकी अनुमति शरीअत द्वारा नही प्राप्त है, यह सव अत्याचार के विभिन्न रूप है। जिसने यह सव कुछ किया उसने अत्याचार किया। इसी प्रकार जिसने अकारण किसी पर कर लगाया, अथवा इस सम्वध में अनुचित रूप से कठोरता प्रदर्शित की, उसने अत्याचार किया। जिसने किसी का माल लूटा-खसोटा, उसने अत्याचार किया, जिसने किसी के न्याय की प्राप्ति में विघ्न डाला, उसने भी अत्याचार किया। साधारणत लोगो की धन-सम्पत्ति का अपहरण करनेवाला अपहरणकर्त्ता ही है। इन सवके सभी दुष्कर्मो का दुष्परिणाम राज्य को भोगना पडता है, कारण कि उनसे सभ्यता मिटती है, लोगो की आशाओ एव अभिलाषाओ पर पानी फिर जाता है, तथा लोगो के जोश एव उत्साह ठडे पड जाते है। जव सभ्यता मिटती है तो सल्तनत भी, जिसकी शोभा एव अस्तित्व उसी पर आधारित है, नष्ट हो जाती है।

शरीअत ने जो अत्याचार को हराम कर दिया है, तो उसमें भी यही रहस्य है कि यदि अत्याचार ससार में प्रचलित होता है तो ससार की सभ्यता मिटती है, वीरानी फैलती है और मानव जाति की वे जडें, जिनकी रक्षा का शरीअत ने प्रत्येक प्रकार सेध्यान रखा है, कटती हैं। विशेष रूप से पाँच आवश्यक उद्देश्यो, अर्थात् धर्म, आत्मा, जीवन, बुद्धि, सतान एव धन की रक्षा से भी इस सिद्धात का विशेष सम्बन्ध है। जब ज्ञात हो गया कि अत्याचार संसार की सभ्यता को मिटाकर मानव-जाति के विनाश का कारण बनता है, तो उसे बडा ही खतरनाक समझना चाहिए। इसी प्रकार उसका दड भी बहुत बड़ा होता है। कुरान शरीफ एवं हदीस दोनो उसकी बुराइयो एव तत्सम्बन्धी दड से परिपूर्ण हैं। अत्याचार एवं अन्य पापो में अन्तर है, अत. उसके सम्बन्ध में शरीअत के आदेश भी पृथक् है। इसी प्रकार परस्त्री-गमन, हत्या एव मदिरापान के अपराध के लिए अलग-अलग दड निश्चित किये गये हैं, कारण कि इन अपराधो पर प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार प्राप्त है और अत्याचार तो वही कर सकता है जिसमें कुछ शक्ति भी हो। शक्तिहीन किसी पर क्या अत्याचार करेगा। वह उस अत्याचार का, जो उस पर हो रहा हो, निराकरण नही कर सकता। इसी दृष्टिकोण से अत्याचार की घोर निंदा की गयी है और उसके लिए कठोर दड निश्चित किये गये है, ताकि प्रत्येक व्यक्ति, जिसमें शक्ति हो, अत्याचार की ओर कदम बढाते हुए काँपे।

हमने जो इस तथ्य का उल्लेख किया तो इस पर यह सन्देह न किया जाय कि शरीअत ने युद्ध एव हत्याकाड के लिए कठोर दंड निश्चित किये है, हालाँ कि युद्ध एव हत्याकाड शक्तिशाली लोगो के अत्याचार हैं। इस सन्देह का उत्तर दो प्रकार से दिया जा सकता है। एक यह कि शरीअत की ओर से केवल उस आचरण पर दड दिया जाता है जिससे किसी व्यक्ति अथवा किसी के धन का विनाश हो। इस्लाम के अधिकाश आलिमो का यही मत है और यह स्थिति उस समय हो सकती है जब कि अपराध हो चुका हो। युद्ध मे यह बात नही होती, अत. इसके लिए दड किस प्रकार निश्चित हो सकता है। दूसरी तरह से उत्तर यह है कि युद्ध करनेवाले को अधिकार-सम्पन्न नही कहा जा सकता। अधिकार-सम्पन्न अत्याचारी तो वह है जो विना किसी रोक-टोक के किसी पर पूरा अधिकार रखता हो और यही अधिकार वास्तव में सभ्यता के उजडने का कारण बनता है। युद्ध करनेवाले में यह शक्ति नही होती। वह तो केवल डरा-धमकाकर धन ऐंठना चाहता है और शरा के अनुसार उससे रक्षा की प्रत्येक को शक्ति प्राप्त है, अत. उसकी शक्ति सभ्यता के विनाश का कारण नही बन सकती।

सभ्यता को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए सबसे बडा अत्याचार प्रजा से बेगार में काम लेना है। रोज़ी के अध्याय में हम इस बात को स्पष्ट करेंगे कि लोगो के काम-काज तथा व्यापारिक कारोबार उनके लिए धन-सम्पत्ति एव जीविकोपार्जन के आवश्यक साधन हैं। इसे इस प्रकार समझ लीजिए कि लोगो को जो कुछ भी रोज़ी मिलती है वह उनके काम-काज एव कारोबार का मूल्य है। बस्तियो में लोग परिश्रम एव मज़दूरी करके ही जीविकोपार्जन करते है। जब उनकी मेहनत एव मजदूरी का उनको कोई बदला अथवा पारिश्रमिक न मिले तो उनके जीविकोपार्जन के द्वार बन्द हो जाते हैं और उनके प्रयत्न एव परिश्रम व्यर्थ हो जाते हैं। जीविकोपार्जन एव रोजी से उनके हाथ खाली हो जाते हैं। उनकी समस्त धन-सम्पत्ति छिन जाती है और वे बरबाद हो जाते है। यदि इसी प्रकार का व्यवहार उनसे बार-बार किया जाय तो उनकी आशाएँ एव अभिलाषाएँ समाप्त हो जाती है।

इससे भी बडे अत्याचार का उदाहरण, जो सभ्यता को भी नष्ट करे और सल्तनत को भी तबाह करे, यह है कि सल्तनत लोगो की धन-सम्पत्ति को राज्य के दबाव द्वारा सस्ते मूल्य पर क्रय करे और फिर ज़बरदस्ती अधिक से अधिक मूल्य पर उनको दे डाले। कभी ऐसा होता है कि सस्ते मूल्य पर चीज़ें क्रय करके देश में चारो ओर बाँट दी जाती है और एक निश्चित अवधि पर उनका मूल्य लोगो को अदा करना पडता है। जब लोग राज्य द्वारा अधिक मूल्य पर क्रय किये हुए माल को बाज़ार में लाते है तो वह बाज़ार के भाव पर कम मूल्य में बिकता है। इस प्रकार राज्य के अत्याचार के कारण व्यापारी हर प्रकार से हानि उठाते है, अर्थात् मँहगा लेते है और सस्ता बेचते है। इस तरह उनकी मूल पूँजी भी समाप्त होने लगती है। कभी-कभी यह कष्ट बहुत व्यापक होता है। प्रत्येक स्थानीय व्यापारी, चाहे वह दूकानदार हो चाहे बाहर का खरीदार, मेवा बेचनेवाला हो चाहे अनाज-बेचनेवाला, शिल्पकार हो अथवा कोई अन्य व्यवसायवाला, इस अत्याचार से नही बचता। इस प्रकार निरन्तर कष्ट में फँसे रहने के कारण बेचारे व्यापारियो की मूल पूँजी की ही हानि होने लगती है। अब उनके लिए व्यापार बन्द कर देने के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही रहता। उनकी आशाओ का सहारा उनकी मूल पूँजी थी। जब तक वह बाकी रही, लाभ की आशा में वे उसे बार-बार कारोबार में लगाते रहे और हानि उठाते रहे, किन्तु जब पूँजी ही समाप्त हो गयी, तो विवश होकर कारोबार से हाथ उठा लेना पड़ता है। उधर बाहरी व्यापारी भी लेन-देन में हानि उठाकर इस ओर मुख नही करते। फलत. देश में निराशा फैल जाती है।

प्रजा का रोजगार नष्ट हो जाता है, कारण कि प्रजा की जीविका का साधन क्रय-विक्रय एव व्यापारिक लेन-देन है। जब बाज़ार एव कारोबार मे हानि होने लगती है तो सल्तनत का ख़राज भी कम हो जाता है और धीरे-धीरे वह पूर्णत. समाप्त हो जाता है। इसका कारण यह है कि सल्तनत के मध्य-युग अथवा उसके बाद के युग में ख़राज का अधिकाश भाग चुगी अथवा करो द्वारा प्राप्त होता है। जब ख़राज को भी ठेस लगती है तो सल्तनत के ताने-बाने ढीले पड जाते है और वह नष्ट हो जाती है। उधर सभ्यता नष्ट-भ्रष्ट होती है। फिर ये सारे विघ्न एव हानियाँ शनै.-शनै परदे के पीछे अपना कार्य करती रहती है और हुकूमत एवं सभ्यता की जड़ें खोखली करती रहती है, और किसी को इनका ज्ञान तक नही होता। यह विनाश उस समय होता है जब सल्तनत कमाने के साधन एकत्र करके प्रजा की धन-सम्पत्ति लूटने-खसोटने लगती है और उनको नगा एव कगाल कर देती है। यदि वह अकारण अत्याचार एव जुल्म द्वारा लोगो की धन-सम्पत्ति छीनने-झपटने पर तुल जाय, उनके अन्त.पुर का अपमान करे, उनके प्राणो को नष्ट करे, उनकी मर्यादा को ठेस पहुँचाये, तो सल्तनत मे क्षण भर में विघ्न पड़ जाता है और देखते-देखते राज्य का तख़्ता उलट जाता है। देश में ऐसी अशान्ति फैल जाती है जो रोके नही रुकती। इस प्रकार इन्ही विनाशकारक ख़तरो को दृष्टि में रखते हुए शरीअत ने उपर्युक्त अत्याचारो का निराकरण किया है और उन्हें हराम बताया है। क्रय-विक्रय में लोगों की धन-सम्पत्ति पर अनुचित रूप से अधिकार जमाने का निषेध किया है, ताकि उन ख़तरो की रोक-थाम हो सके जो सभ्यता को नष्ट करते है एव अर्थव्यवस्था की जड काटते है।

अब रही यह बात कि बादशाह लोगो की धन-सम्पत्ति को अकारण क्यो ऐंठने एव उन्हें चूसने लगता है, तो इसका कारण यह है कि बादशाहो की धन-सम्पत्ति एकत्र करने की लिप्सा बढ जाती है। वे धन के भूखे हो जाते है। उनका भोग-विलास उनके व्यय को दुगुना-चौगुना कर देता है, जिसे चलाने के लिए उन्हे अधिक से अधिक ख़राज की आवश्यकता होती है। उनकी सीमित आय से उनका जीवन-निर्वाह नही होता। विवश होकर वे ऐसे उपाय सोचते एव ऐसे मार्ग टटोलते है जिनसे उनकी आय उनके बढते हुए व्यय को पूरा कर सके, किन्तु उनकी विलासप्रियता किसी एक केन्द्र एव सीमा पर नही ठहरती, अपितु नित्य-प्रति बढ़ती रहती है। इसी के साथ-साथ वे ख़राज मे भी वृद्धि करते रहते है और अधिक से अधिक धन की इच्छा किया करते है। वे जितना प्रजा को धन की वसूली के लिए निचोड़ते है,

उतना ही राज्य में विघ्न बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि राज्य एक दिन समाप्त हो जाता है और कोई शत्रु उसको हड़प कर लेता है।

(४४) सल्तनतों मे बादशाह के पास पहुँचने पर किस कारण प्रतिबन्ध लगता है और सल्तनत के पतन की ओर अग्रसर होने पर यह प्रथा किस प्रकार ज़ोर पकड़ती है

ज्ञात होना चाहिए कि सल्तनत प्रारम्भ में अधिक आडम्बरों एवं बनावट से दूर तथा अछूती रहती है, कारण कि सल्तनत को शुरू में अपने पाँव जमाने एव अपना सम्मान तथा प्रभुत्व फैलाने के लिए "असबियत" की अत्यधिक आवश्यकता होती है तथा "असबियत" "बदवियत" चाहती है और "बदवियत" आडम्बरो एव सांस्कृतिक दिखावटी कार्यों से दूर ही रहती है। यदि सल्तनत धार्मिक सिद्धान्तो पर पूर्णत स्थापित है तो धार्मिक आवश्यकताओ के कारण, वह देश के सांस्कृतिक अविनियमो से बचती ही रहती है। यदि सल्तनत केवल अपहरण एव अन्य देशो को विजय करने के सिद्धान्तो पर खडी है, तो उस समय "बदवियत" ही बाधक होती है और उसको टेढे विधानो एव नियमो में नही उलझने देती, अत जब तक सल्तनत, "बदवियत" के युग से गुज़रती है, सुल्तान सीधा-सादा बदवी रहता है। लोगो से बिना किसी दिखावे के मिलता-जुलता है। बादशाह के पास लोगो के आने-जाने की आम इजाज़त होती है। इसके बाद जब बादशाह कुछ आदर-सम्मान प्राप्त कर लेता है तो साधारण लोगो से पृथक् रहने लगता है और केवल अपने विश्वास-पात्रो तथा दरबारियो से ही खुलकर मिलता-जुलता है। वह साधारण लोगो के साथ मिलने की ओर से उपेक्षा करने लगता है और जहाँ तक होता है, उनसे बचने का प्रयत्न किया करता है। द्वार पर पहरे बैठाता है और एक द्वारपाल रखता है, जिसका कर्तव्य यह होता है कि ऐसे लोगों को द्वार में न घुसने दे जिन पर बादशाह को विश्वास न हो, चाहे वे उसके मित्र हो अथवा उच्च पदाधिकारी।

जब सल्तनत उन्नति करती हुई आगे बढती है तो अपने लिए शासन-विधान एव राज्य के सिद्धान्त बनाती है। बादशाह भी अपना रग बदलता है। बड़े-बड़े सुल्तानो के समान आदतें पैदा कर लेता है। शाहाना आन-बान एव विशेष नियमो तथा आदतो से घिर जाता है। शाही दरबार के शिष्टाचार के नियम निश्चित होते है। शाहाना अभिवादन एव वार्तालाप के नियमो एवं सिद्धातो का आविष्कार किया जाता है और फिर उन पर बडी कठोरता से आचरण होता है। उनका बाल-बराबर भी विरोध

नही किया जाता। यदि किसी ने भूलकर भी तत्सम्बन्धी नियमों एवं आदेशों की अवहेलना की, तो बादशाह के हृदय में अत्यधिक क्रोध उत्पन्न हो जाता है और कभी-कभी वह बदला लेने तथा कष्ट पहुँचाने तक के लिए उद्यत हो जाता है। अत. बादशाह के विशेष मित्र ही इन नियमो से भली-भाँति परिचित होते है और उनकी भूल-चूक की सम्भावना नही रहती। इस कारण अन्य लोगो को बादशाह के पास उपस्थित होने से रोका जाता है कि कही कोई बादशाह के पास पहुँचकर असभ्य रूप से व्यवहार न कर बैठे और फिर बादशाह के कोप एवं रोष का पात्र न बने। अत इस भेद-भाव के लिए भी एक हाजिब नियुक्त होता है जो पहले प्रकार के हाजिब से पृथक् होता है और उसका विशेष उत्तरदायित्व रहता है।

प्रथम हाजिब बादशाहो एव सुल्तानो के पास उनके विश्वास-पात्रों को भीतर प्रविष्ट होने की अनुमति देता है और अन्य लोगो को द्वार पर ही रोक लेता है। दूसरा हाजिब उस स्थान पर खडा रहता है जहाँ राज्य के उच्च पदाधिकारी आसीन होते है। वह इस दरबार में उनके अतिरिक्त किसी साधारण व्यक्ति को प्रविष्ट नही होने देता। प्रथम प्रकार का हाजिब सल्तनत के प्रारम्भिक युग मे होता है, जब कि वह आडम्बरपूर्ण तथा बनावटी रूप नही धारण करती।

मुआविया, अब्दुल मलिक एवं बनी उमय्या के ख़लीफ़ाओ के युग में इसी प्रथम हाजिब का पता चलता है और शब्दकोश एव शब्दोत्पत्ति के अनुसार इसी को वास्तव मे हाजिब कह सकते हैं। इसके उपरान्त जब बनी अब्बास को प्रमुख प्रभुत्व प्राप्त हुआ और उन्होने शाहाना ऐश्वर्य एव गौरव तथा ठाट-बाट का प्रयोग शुरू किया, तो ख़ली-फाओ में बादशाहो सरीखी आदतें पैदा हुईं और दूसरा हाजिब भी रखा गया। फिर अब्बासी राज्यकाल में दरबार के लिए दो भवन निश्चित हुए। एक विशेष व्यक्तियो के लिए और दूसरा सर्वसाधारण के लिए।

फिर सल्तनतो में एक तीसरा हाजिब भी नियुक्त हुआ, जिसका कर्त्तव्य उपर्युक्त हाजिबो से पृथक् था। यह प्रथा उस समय प्रारम्भ हुई जब बादशाह के अधिकार छीनकर उसे एक कोने मे बैठा देना निश्चित कर लिया गया और जब बादशाह के विश्वासपात्र एव उच्च पदाधिकारी उसके किसी वशज को नाम के लिए सिंहासनारूढ़ करके उस पर पूरा-पूरा अधिकार रखना चाहते थे। वे सर्वप्रथम उसकी सतान, मित्रो एव विश्वासपात्रो को बादशाह के पास जाने से रोक देते है और उनके प्रवेश पर कठोर प्रतिबध लगा देते है। वे बादशाह को यह समझा देते है कि यदि आप इन लोगो से स्वतत्रतापूर्वक मेल-जोल रखेंगे तो आपका सम्मान एव आपका आतक

लोगो के हृदय से समाप्त हो जायगा और अनुशासन सम्बन्धी नियमो में बड़ा विघ्न पडेगा। इन युक्ति का उद्देश्य यह होता है कि वादशाह अन्य लोगो से भेंट न कर सके और उसे एकान्तवास की ऐसी आदत पड जाय कि उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो सके।

इस प्रकार उन्हे अपने उद्देश्यो में सफलता मिल जाती है और वे सव पर स्वतत्र रूप से अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

तीसरी हिजावत प्रभुत्व एवं स्वतत्र अधिकार प्राप्त करने का सावन होती है। अधिकाश सल्तनतो का जब अन्तिम काल प्रारम्भ होता है, तो यह प्रथा भी प्रारम्भ होती है। यह प्रथा इस बात का खुला चिह्न है कि राज्य अव अपनी वृद्धावस्था में प्रविष्ट हो गया है और समाप्त होनेवाला है। बादशाह को स्वय ऐसी दशा में अपने प्राण का भय होता है, कारण कि जब सल्तनत कमजोर पडती है और वादशाह की सतान का प्रभुत्व समाप्त हो जाता है तो राज्य के उच्च पदाधिकारी एव विश्वासपात्र राज्य की बागडोर सँभाल लेते हैं और पूर्ण रूप से स्वाधीनता का दावा करने लगते हैं। स्वाधीनता की आदत स्वाभाविक रूप से सभी को होती है। वे इससे किसी प्रकार नहीं बच सकते, और फिर ऐसी दशा में, जब कि प्रभुत्व एव स्वतत्र अधिकार प्राप्त करने के सभी साधन एकत्र हों।

(४५) एक सल्तनत का दो सल्तनतो मे विभाजित हो जाना

यह बात ज्ञात रहनी चाहिए कि सल्तनत का दो भागो में विभाजित हो जाना उसकी कमजोरी के चिह्नो की प्रथम कडी है। जब सल्तनत की अत्यधिक उन्नति हो जाती है और भोग-विलास एव समृद्धि अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो बादशाह समस्त गौरव एव श्रेष्ठता तथा माहात्म्य की मूर्ति बन जाता है और किसी को अपना साझीदार नहीं समझता। किसी अन्य का लेश मात्र भी सहायक बनना उसे रुचिकर नहीं होता। वह उन साधनो की जड काटने लगता है जो किसी समय बराबरी का दावा कर बैठने हैं। उधर उन्हीं लोगो में से कोई व्यक्ति ऐसी प्रतिकूल दशा देखकर बादशाह के पास से भाग निकलता है और देश के किसी दूरस्थ भाग में पहुँचकर उन लोगो से मिल जाता है जो उसी की श्रेणी में सम्मिलित होते हैं, अर्थात् बादशाह उनकी ओर से भयभीत होता है और वे बादशाह की ओर से। ये सब एक भावनाओ एव एक ही विचार के लोग राज्य के दूरस्थ भागो में अपना प्रभाव एव प्रभुत्व जमाने लगते हैं और केन्द्रीय राज्य का क्षेत्र सकीर्ण होने लग जाता है। फलत बादशाह का

यह निकल भागनेवाला निकटवर्ती सम्बन्धी अपना एक स्थायी राज्य स्थापित कर लेता है और अपने प्रभुत्व को बढाते-बढाते बादशाह के राज्य के टुकड़े कर डालता है और कुछ भागो पर स्वय अधिकार जमा लेता है।

देख लीजिए कि एक समय अरबी-इस्लामी सल्तनत की पूरी शक्ति बनी हुई थी। उसकी हुकूमत दूर-दूर तक फैली हुई थी। अब्द मनाफ की "असबियत" समस्त मुजर कबीलो पर अपने अधिकार जमाये हुए थी। उस समय किसी को खिलाफत के विरुद्ध साँस लेने की शक्ति न हो सकी। केवल खारजियो ने कुछ सिर उठाया था और वह भी देश एव राज्य की अच्छाई में नही, किन्तु उनकी भी दाल नही गली, कारण कि उनके मार्ग में ऐसी "असबियत" बाधक थी जिसका वे मुकाबला न कर सकते थे। उसने इनका दमन कर दिया। इसके बाद जब बनी उमय्या के हाथ से राज्य निकलकर बनी अब्बास के हाथ में पहुँचा, तो वे दीर्घ काल तक बड़े ऐश्वर्य एव गौरव से राज्य करते रहे। अन्त में उन्होंने शाही आडम्बर एव प्रदर्शन को उनकी चरम सीमा पर पहुँचा दिया, उनकी सल्तनत सीमान्त से केन्द्र की ओर सिमटने एव सिकुडने लगी और नित्य-प्रति उनके प्रभुत्व का क्षेत्र कम होता गया। अब्दुर्रहमान प्रथम अद्दाखिल ने उन्दुलुस पर अधिकार जमा लिया और एक स्थायी राज्य की नीव डाली। फिर बढते-बढते उसने पूरी सल्तनत के आधे भाग पर अधिकार जमा लिया और एक इस्लामी राज्य के स्थान पर दो राज्य स्थापित हो गये। मगरिब मे इदरीस ने अपना अधिकार जमाया और राज्य की नीव डाली। उसके उपरान्त उसके पुत्र ने अवरवह, मगीलह एव जनाता बरबरों पर अधिकार जमाकर दोनो मगरिबो[1] को अपने अधीन कर लिया। फिर अब्बासी राज्य का क्षेत्र और भी सीमित हुआ और इफरीकिया में अगालेबा ने स्वाधीनता प्राप्त कर ली। उसके बाद शीआ[2] उठ खड़े हुए और कुतामा एव सिनहाजा ने उनकी सहायता की और सब मिलकर इफरीकिया, मग़रिब, फिर मिस्र, शाम तथा हिजाज़ पर छा गये और इदरीसियो पर भी अधिकार जमा लिया। इस प्रकार उन्होंने सल्तनत के तीन भाग कर डाले।

अब्बासियो की सल्तनत तो अरब के केन्द्रीय स्थान एवं उनके मूल स्थान पर स्थापित रही, किन्तु उधर बनी उमय्या ने उन्दुलुस में अपने प्राचीन राज्य के नमूने पर नये राज्य की रूपरेखा तैयार की। उबैदीईन ने इफरीकिया, मिस्र, शाम एव हिजाज़

१. मोराको तथा अलजीरिया।
२. फ़ातेमी (उबैदीईन)।

पर अपना अधिकार जमाया। ये तीनो सल्तनतें कुछ दिन तो इसी प्रकार स्थापित रहीं, फिर अन्त में एक साथ अथवा कुछ आगे-पीछे समाप्त हो गयी।

इसी प्रकार अब्बासियो के राज्य के अन्य टुकडे हुए। हमदानियो ने अपना पृथक् राज्य स्थापित किया। बनू उकैल जजीरे तथा मोसल में उनके उत्तराधिकारी बने। मिस्र एव शाम में तूलूनी तथा उनके उत्तराधिकारी बनू तुगश (इखशीदी) हुए, सुदूर पूर्व में मावरउन्नहर तथा खुरासान में सामानी हुए, अलवी[1] दैलम तथा तबरिस्तान में हुए। अन्त में दैलम ने फारस, दोनो इराको, यहाँ तक कि बगदाद तथा खलीफा तक पर अधिकार जमा लिया। फिर सलजूक आये। उन्होने उस पूरे भू-भाग पर अधिकार जमा लिया। बाद में उन्नति के शिखर पर पहुँचकर, जैसा कि इतिहास से पता चलता है, उनकी सल्तनत के भी टुकड़े-टुकड़े हो गये।

मगरिब एव इफरीकिया के सिनहाजा राज्य की भी यही दशा हुई। जब बादीस बिन मन्सूर के समय मे यह चरम सीमा को पहुँच गयी तो बादीस के चाचा हम्माद ने उनके विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मगरिब को अवरास पर्वत, तलेमसान तथा मालवीया नदी से पृथक् करते हुए अपना राज्य अलग स्थापित कर लिया। उसने कुतामह पर्वत में मसीलह के समीप कलआ बसाया और वहाँ निवास करना प्रारम्भ कर दिया। साथ ही तित्तेरी पर्वत के अशीर पर भी अधिकार जमा लिया। इस प्रकार बादीस से अलग होकर उसका राज्य चला। बादीस का वश कैरवान तथा उसके आस-पास राज्य करता रहा, यहाँ तक कि दोनो की शक्ति नष्ट हो गयी।

मुवहहेदीन के राज्य की भी यही दशा रही, वह भी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचने के उपरान्त जब सिकुड़ने लगा तो इफरीकिया में बनू अबी हफस ने विद्रोह करके अपना स्थायी राज्य स्थापित कर लिया और भावी सतानो के लिए उसके आस-पास अपना प्रभाव बढाया। जब उनका गौरव चरम सीमा पर पहुँच गया तो दूर-दूर तक उन्ही का डका बजने लगा। उन्ही की सतान में से, अबू जकरिया यहया बिन अस्सुल्तान अबी इसहाक इबराहीम, उनके चौथे खलीफा ने पश्चिमी प्रान्तो पर अधिकार जमा लिया और बजाया कान्सटैन्टाइन एव आस-पास के स्थान मिलाकर अपना राज्य अलग स्थापित कर लिया। इस प्रकार राज्य दो भागो में विभाजित हो गया। फिर बजाया के हाकिमो ने तूनुस को भी अपने प्रभुत्व के अधीन कर लिया। इसके उपरान्त राज्य उसकी संतान में विभाजित हो गया।

१. जैदिया।

कभी-कभी सल्तनत दो-तीन से भी अधिक भागो में बँट जाती है। जिस प्रकार उन्दुलुस में मुलूकुत्तवाएफ के प्रभुत्व के समय राज्य के कई भाग हो गये, वही दुर्दशा पूर्व में अजम के बादशाहो एवं इफरीकिया में सिनहाजा की सल्तनतो की हुई। सिन-हाजा के राज्य की तो इतनी दुर्दशा हो गयी कि अन्त में इफरीकिया के प्रत्येक किले में एक स्वतंत्र शासक होने लगा। यही दुर्दशा इफरीकिया में जरीद एवं ज़ाब की हुई जिसका अध्ययन आप आगे के पृष्ठो में करेंगे।

सक्षेप में प्रत्येक सल्तनत उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचकर कमज़ोरी एव पतन के गर्त की ओर बढती है और अपना दामन केन्द्र की ओर समेटने लगती है। राज्य के निवासियो में से कोई न कोई व्यक्ति उठ खड़ा होता है और उसके कुछ भागो पर अधिकार जमाकर उसके टुकडे-टुकड़े कर डालता है।

(४६) सल्तनतों मे कमजोरी पैदा होने के उपरान्त अटल हो जाती है

हम पहले के पृष्ठो में उन समस्त कारणो का एक-एक करके उल्लेख कर चुके हैं जो सल्तनत के पतन एवं उसकी अन्तिम नाजुक दशा के सूचक होते है। साथ ही साथ यह भी लिखा जा चुका है कि ये कारण सल्तनत म स्वत. एव स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सल्तनत में शक्तिहीनता उत्पन्न होना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि प्राणियो के लिए वृद्धावस्था। यह ऐसा रोग है जिसका उपचार असम्भव है, कारण कि यह स्वाभाविक वात है और स्वाभाविक बात अटल है और उसका उपचार सम्भव नही। कुछ वुद्धिमान् राजनीतिज्ञ अपने विवेक से ताड़ जाते हैं कि सल्तनत में शक्तिहीनता उत्पन्न होने लगी है और वह युवावस्था से निकलकर वृद्धावस्था में प्रविष्ट हो रही है। वे इस बात को समझकर कि इस कमजोरी का अन्त किया जा सकता है, उसके दूर करने एव सुधार करने का प्रयत्न करने लगते हैं। उन्हे यह भ्रम रहता है कि सल्तनत की शोचनीय दशा पूर्वगामी सुल्तानो की अपेक्षा असावधानी का परिणाम है हालाँ कि उनके इस विचार में कोई तथ्य नही होता और इस ओर सुधार के प्रयत्न करने से भी कोई लाभ नही होता, कारण कि सल्तनत की कमज़ोरी एव पतन स्वाभाविक होता है। इस कार्य में किसी का कोई हाथ नही होता और उसे रोकने में वे आदतें वाधक होती हैं जो पूर्ण रूप से राज्य या व्यक्ति की प्रकृति का अश वन जाती है। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति अपने पिता एवं पितामह को रेशम एवं दीवा धारण करते हुए पाता है और सुनहरे अस्त्र-शस्त्र, जड़ाऊ ज़ीन का प्रयोग करते हुए देखता है, तो वह उन बातो से कैसे बच सकता है और अपने पूर्वजों के चलन

के विरुद्ध किस प्रकार कोई कार्य कर सकता है। वह लोगो से मेल-मिलाप का व्यवहार एव मोटे तथा साधारण वस्त्रो का प्रयोग किस प्रकार कर सकता है। यदि वह प्रचलित प्रथाओं का विरोध करते हुए साधारण वस्त्र धारण करे, लोगो से मेल-मिलाप रखे, तो उसके मार्ग में उसके वश की परम्पराएँ बाधक होगी और इन अस्वाभाविक कार्यों के कारण लोग उसे पागल समझने लगेंगे। उसकी सल्तनत पर भी इसका बुरा प्रभाव पडेगा। नबी एव पैगम्बर लोगो की प्राचीन आदतो एव प्रथाओ को उस समय तक किसी प्रकार न बदल सकते थे, जब तक कि दैवी सहायता उनके साथ न होती।

कभी-कभी शाही "असबियत" अपना ज़ोर खो चुकती है और उसके साथ बादशाह का ऐश्वर्य एव गौरव भी लोगो के हृदय से मिट जाता है। ऐसी अवस्था मे प्रजा सुल्तान के प्रति धृष्टता प्रदर्शित करने लगती है और विरोध पर तुल जाती है। सल्तनत अपने गौरव की रक्षा का यद्यपि अत्यधिक प्रयत्न करती है, किन्तु वह मिट जाती है। कभी-कभी पतन के समय उसमें कल्पनातीत अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है, जिससे भ्रम होता है कि उसकी कमज़ोरी समाप्त हो गयी और शोचनीय दशा का अन्त हो गया, किन्तु तथ्य कुछ और ही होता है। उसकी असामयिक शक्ति-वृद्धि उसके अन्त की द्योतक होती है। इस प्रकार सल्तनत एकाएक शक्ति एव प्रभुत्व दिखाकर सर्वदा के लिए समाप्त हो जाती है। इसकी तुलना उस दीपक से की जा सकती है जो बुझने के समय एकाएक चमक उठता है। भ्रम होता है कि वह तेज़ी से जल उठा, किन्तु वास्तव में बुझ रहा होता है। इस प्रकार उसकी यह चमक उसके बुझने का चिह्न होती है।

(४७) सल्तनत के विभाजित होने के कारण

सल्तनत का स्थायित्व दो कारणो पर निर्भर होता है। प्रथम, उस ऐश्वर्य एवं "असबियत" पर, जिसे सेना के नाम से सम्बोधित किया जाता है, द्वितीय, धन पर जो सेना के अस्तित्व का आधार है। बादशाह अपने जीवन की उन्नति भी इसी से करता है और इससे अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति में भी सहायता प्राप्त करता है। जब सल्तनत का अन्त होनेवाला होता है तो ये दोनो ही आधार खोखले हो जाते हैं।

जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है, सल्तनत की नीव "असबियत" के आधार पर पडती है और उसी के द्वारा वह अपने पाँव जमाती है। यह "असबियत" भी वह मुख्य "असबियत" होती है जिसमें सब "असबियतें" आकर लीन हो जाती हैं। सब छोटी-छोटी "असबियतो" का सगम यही बड़ी तथा व्यापक "असबियत" होती है।

इस व्यापक 'असबियत' को हम शाही वश की "असबियत" कह सकते है। जब सल्तनत सरलता के क्षेत्र से निकलकर बनावट एव समृद्धि के क्षेत्र में प्रविष्ट होती है और बादशाह को अपने स्थायित्व की चिन्ता होने लगती है, तो वह सर्वप्रथम अपने वश-वालो, निकटवर्तियो एव सम्बधियो पर हाथ डालता है, जो उसके साथ बराबरी का दावा करते है और अपने आपको उसका साझीदार समझते है। वह सल्तनत में उनके पद छीनता है, उनका सम्मान घटाता है और उनकी शक्ति को तोड़ता है। इस प्रकार बादशाह के वश के लोग दो घातक रोगो से ग्रस्त हो जाते है। सर्वप्रथम वे भोग-विलास एव आराम की इच्छा करने लगते है, फिर वे बादशाह के क्रोध की दृष्टि का लक्ष्य बन जाते है। अन्त में बादशाह ज़रा-ज़रा-से बहाने पर उनकी हत्या कराने लगता है। इसका कारण यह है कि प्रारम्भ में बादशाह के सम्बन्धी राज्य के बड़े-बडे पदो पर अधिकार जमा लेते है और प्रमुख अधिकारी बन जाते है। उनके हृदय में यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि उनके समान कोई अन्य व्यक्ति नही है। उन्हें अपने ऊपर अभिमान हो जाता है। बादशाह उनका यह रग-ढग देखकर खटक जाता है और भय करने लगता है कि कही ऐसा तो नही कि एक दिन वे राजसिंहासन पर भी हाथ डालने लगें, अत वह उनके विनाश का प्रयत्न करने लगता है। उनका अपमान भी प्रारम्भ कर देता है। उनसे उनकी धन-सम्पत्ति भी छीनता है और भोग-विलास से, जिसके वे दीर्घ काल से आदी हो चुके होते है, वचित करता है, फलतः शाही वंश के बहुत-से लोग नष्ट हो जाते है और उनकी सख्या पर्याप्त रूप से घट जाती है। शाही "असबियत" का भी पतन होने लगता है। यही वह "असबियत" थी जो किसी समय समस्त "असबियतो" को अपने में लीन कर लेती थी, वे सब उसी के अधीन एवं वशवर्ती थी। अब उसका ताना-बाना ढीला पड जाता है तो उसकी शक्ति एव उसका बल छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो जाता है। फिर बादशाह अपने इष्ट मित्रो एव आश्रितो तथा उपकृत लोगो से पृथक् एक नयी "असबियत" स्थापित करता है, किन्तु उसमें पहली "असबियत" के समान शक्ति नही होती, कारण कि न ये लोग खून के रिश्ते से वचित एव अज़ीज़दारी के सम्बन्ध से दूर होते है।

हम पूर्व मे उल्लेख कर चुके है कि "असबियत" का पूरा ऐश्वर्य एवं गौरव अजीज़-दारी एव खूनी रिश्ते से उत्पन्न होता है। ईश्वर ने इस सम्बन्ध को वह शक्ति प्रदान की है जो किसी अन्य सम्बन्ध को नही, अत बादशाह अपने वश से पृथक् होकर प्राकृतिक सहायको एव मित्रो से वचित हो जाता है। जब अन्य "असबियत" वाले वशो को इसका पता चलता है तो वे धृष्ट हो जाते है और बादशाह के विश्वासपात्रो एव सहचरों

को दवाने लगते हैं। वादशाह के समक्ष इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही रह जाता कि एक-एक करके वह उनकी भी हत्या करा दे और उनके पद अन्य पदाधिकारियो को प्रदान कर दे। उस समय वे लोग भी दो ओर से वड़ी गम्भीर परिस्थितियो में घिर जाते हैं। सर्वप्रथम उनके भोग-विलास का जीवन ही उनको कुछ कम नष्ट नही देता, फिर वादशाह का निष्ठुर हाथ उनको विनाश के घाट उतारता है, यहाँ तक कि उनकी "असवियत" की शक्ति एव उनका सम्मान दोनो ही समाप्त हो जाते हैं और वे दीन एव विवश हो जाते हैं। उनकी सख्या अलग घट जाती है, फलत राज्य की विभिन्न दिशाओ एव सीमान्तो में प्रतिरक्षा के साधन कमजोर पड़ जाते हैं। फिर उनकी रक्षा का उचित प्रवध नही हो सकता। प्रजा यह देखकर किसी-न-किसी सल्तनत का दावा करनेवाले के नेतृत्व में विद्रोह की पताका वुलन्द करती है और विद्रोही सल्तनत की विभिन्न दिशाओ को अपने उपद्रवो के केन्द्र वना लेते हैं, कारण कि वे यह समझ लेते हैं कि उन दिशाओं में राज्य की प्रतिरक्षा के साधन कम हैं और केन्द्र से अधिक सेना पहुँचने की सभावना नही, और न इसकी कि उसकी एक आवाज़ पर सव लोग दौड पड़ेंगे और सव उसकी पताका के नीचे आ जायेंगे।

इस प्रकार राज्य के दूरस्थ भाग विद्रोहियो के अधिकार में आते जाते हैं और केन्द्रीय राज्य का क्षेत्र सीमित होता जाता है। यहाँ तक कि कभी-कभी विद्रोही केन्द्र के समीप पहुँच जाते हैं। इस प्रकार सल्तनत अपने विस्तार एवं ऐश्वर्य के अनुसार कभी दो सल्तनतो में और कभी तीन अथवा इससे भी अधिक टुकडो में वँट जाती है। वादशाही "असवियत" के अतिरिक्त कोई अन्य "असवियत" राज्य की वागडोर सँभाल लेती है तथा अपनी वीरता का लोहा सवसे मनवाकर उन्हें पराजित कर देती है।

एक समय जव इस्लामी राज्य की शक्ति वढी तो उसकी सीमाएँ उन्दुलुस एव हिन्द तथा चीन तक पहुँच गयी थी। उधर वनी उमय्या के नाम का डका पूरे अरव में वजता था। वनी अव्द मनाफ की "असवियत" वडी ही व्यापक थी। उनका आदेश अरव के प्रत्येक भाग पर चलता था, यहाँ तक कि एक वार सुलेमान विन अव्दुल मलिक ने दमिश्क से आदेश निकाला कि करतवा[1] में अव्दुल अज़ीज विन मूसा इव्ने नुसैर का वध कर दिया जाय, तो किसी को भी उसकी आज्ञाओ के उल्लघन का साहस न हुआ। जव वनी उमय्या भोग-विलास में ग्रस्त रहने लगे और उनकी "असवियत" कमज़ोर हुई तो सल्तनत एव प्रभुत्व ने उनका साथ छोडा और वनी अव्वास ने उनका स्थान ले

१ फारडोवा।

लिया। उन्होंने बनी हाशिम की संख्या को कम करना प्रारम्भ किया और सैयिदो एव अलवियो की हत्या शुरू कर दी, यहाँ तक कि अब्द मनाफ की "असबियत" का किसी को पता भी न रहा। अरबो ने उन पर आक्रमण कर दिया और राज्य के दूरस्थ भागो मे बहुत-से अन्य दावा करनेवाले लोग राज्य के अधिकाश प्रदेश दबा बैठे। बनी अगलब ने इफरीकिया में अपने पाँव जमा लिये और उन्दुलुस में बनी उमय्या स्वाधीन हो गये। इस प्रकार सल्तनत के कई टुकड़े हो गये। बनू इदरीस ने मगरिब पर छापा मारा और बरबर उनकी सहायतार्थ उठ खड़े हुए, कारण कि उन्हें उनकी "असबियत" पर पूरा भरोसा था। उन्हे ज्ञात था कि केन्द्र से उन पर आक्रमण सम्भव ही नही। सक्षेप मे "असबियत" की कमजोरी पर राज्य के दूरस्थ भागों में राज्य के विभिन्न प्रतिस्पर्धी खडे हो जाते हैं और वे सल्तनत के सीमान्तो पर अधिकार जमा लेते हैं। उनका प्रभुत्व वहाँ जम जाता है। इस प्रकार सल्तनत विभिन्न भागो में विभाजित हो जाती है। एक शक्ति कई शक्तियो में बँट जाती है। कभी-कभी सल्तनत के बहुत अधिक टुकडे हो जाते हैं और मूल सल्तनत राजधानी तक ही सीमित होकर रह जाती है। इधर सल्तनत के विश्वासपात्र समृद्धि एव भोग-विलास में डूबे हुए तथा अमीरी के नशे में चूर, विनाश के गर्त में पड़े रहते हैं। सल्तनत टुकड़े-टुकड़े होकर जीवन की अन्तिम साँस लेती रहती है।

कभी ऐसा होता है कि शक्तिहीनता के बावजूद सल्तनत का जीवनकाल बढ जाता है और उसको अपने अस्तित्व के लिए "असबियत" की कोई आवश्यकता नही होती, कारण कि अमीरो एव वालियो के हृदय में उसके ऐश्वर्य एवं गौरव का सिक्का बैठ जाता है। सैकडो वर्षो की अधीनता में वे बादशाहो की आज्ञाकारिता के आदी हो चुकते हैं। उनमे किसी को यहाँ तक पता नही होता कि उनकी अधीनता कब से प्रारम्भ हुई। वे होश सँभालते ही अपनी ग्रीवा को बादशाह के सामने झुकते देखते हैं। ऐसी दशा मे बादशाह को "असबियत" की कोई आवश्यकता नही होती। वह राज्य-व्यवस्था एव शासनप्रबध के सचालन में अनुशासित एव अव्यवस्थित, दोनो प्रकार की सेनाओ का प्रयोग कर लेता है। आज्ञाकारिता की जो भावनाएँ प्रजा के स्वभाव मे प्रविष्ट हो जाती हैं उनसे उसे बडी सहायता मिलती है। किसी को आज्ञाओ के उल्लघन का साहस नही होता और विद्रोह के लिए कोई सिर नही उठा सकता। यदि कोई अल्पदर्शी ऐसा कर भी बैठे तो सब लोग उसके विरोध पर उद्यत हो जाते हैं और बादशाह से पहले ही वे उसे दबा देते हैं। ऐसी अवस्था मे कोई ऐसी कल्पना ही नही करता और यदि कोई ऐसा विचार करे तो उसका साहस उसका साथ नही देता।

सक्षेप में अधीनता एव आज्ञाकारिता का कुछ ऐसा वातावरण फैल जाता है कि सल्तनत विद्रोह एव राजनीतिक झगडो से सुरक्षित होकर अमन व चैन की वशी वजाती रहती है। किसी के हृदय में उसके विरोध की कल्पना तक नही होती, अत. जिस प्रकार "असवियत" एव खानदानी ज़ोर व शक्ति से सल्तनत शान्ति एव चैन का जीवन व्यतीत करती है, उसी प्रकार इस समय भी उपद्रव, विद्रोह एवं राजनीतिक अशान्ति से सुरक्षित होकर चलती चली जाती है। किन्तु इसकी भी सीमा होती है। आखिर हर चीज़ का जीवन-काल निश्चित होता है। एक समय ऐसा आता है कि यह सल्तनत पतन की अवस्था में ही चलते-चलते समाप्त हो जाती है और किसी वाहरी शक्ति को इसे समाप्त करने की आवश्यकता नही होती। जिस प्रकार किसी व्यक्ति को भोजन न मिले तो उसकी प्राकृतिक गरमी समाप्त होती जायगी और उसकी मृत्यु हो जायगी, उसी प्रकार सल्तनत की व्यक्तिगत कमज़ोरी अन्त में उसे एक दिन नष्ट कर देती है और मृत्यु को पहुँचा देती है।

अव रही यह वात कि सल्तनत की आर्थिक दशा क्यो गिर जाती है, तो इसका यह उत्तर है कि प्रारम्भ में सल्तनत पर "वदवियत" का रग चढ़ा होता है। प्रजा के साथ नरमी का व्यवहार किया जाता है। व्यय के सम्वन्ध में सयम से काम लिया जाता है। लोगो की धन-सम्पत्ति के अपहरण के विषय में सावधानी का वरताव किया जाता है। खराज एव कर की वृद्धि की चिन्ता नहीं की जाती। धन-सम्पत्ति एकत्र करने के लिए सोच-विचार नहीं करना पडता। वालियो एव आमिलो से हिसाव लेने में वाल की खाल नहीं निकाली जाती। अपव्यय से दूर रहा जाता है। इस दशा में सल्तनत को अधिक धन की आवश्यकता नही पड़ती। किन्तु जब "वदवियत" का युग समाप्त होता है और उसके साथ उसके प्रभाव का अन्त हो जाता है और सल्तनत को ऐश्वर्य एव गौरव हासिल हो जाता है, तो आडम्वर एवं भोग-विलास भी देश में प्रचलित हो जाते हैं। वादशाह एव प्रजा के व्यय में भी वृद्धि होने लगती है। धन पानी के समान वहाया जाने लगता है। ऐसी अवस्था में इस वात की आवश्यकता होती है कि सेना तथा राज्य के पदाधिकारियो के वेतनो एव वृत्ति में पर्याप्त वृद्धि की जाय। क्योंकि आडम्वरो की कोई सीमा नही होती और वे वढते ही रहते हैं, अत. साथ-साथ लोगो का व्यय भी वढता है। वादशाह एव राज्य के पदाधिकारी तो सर्वप्रथम इस क्षेत्र में प्रविष्ट होते ही है, किन्तु प्रजा भी अपव्ययिता से नहीं वच सकती, कारण कि प्रजा अपने शासको का अनुकरण करती है। इस कारण वादशाह वाज़ार की चीज़ो पर कर लगाता है, ताकि आर्थिक कमी की पूर्ति कर सके। एक ओर तो उसको राज्य के वढ़ते हुए व्यय

एवं सेना के बढे हुए वेतन को पूरा करने की चिंता होती है और दूसरी ओर वह अपनी प्रजा को विलास-प्रिय पाकर समृद्ध समझने लगता है। फिर वह उनसे किस कारण हाथ खीचे ? आडम्बरो एव भोग-विलास की और भी वृद्धि हो जाती है। तब करो एव चुगियो की आय भी अपर्याप्त मानी जाती है। यह समय वह होता है जब सल्त-नत दूर-दूर तक फैली हुई होती है। उसका गौरव अपनी चरम सीमा पर होता है। इसी कारण प्रजा किसी बात का विरोध नही कर सकती, अत बादशाह नाना प्रकार से प्रजा की धन-सम्पत्ति लूटने लगता है—व्यापारिक करो से भी और अन्य अच्छे-बुरे साधनो से भी। साधारण से साधारण सन्देह पर वह बडी-बडी रकमें वसूल कर लेता है। सेना सल्तनत को "असबियत" में कमज़ोर पाकर उद्दड हो जाती है। बाद-शाह विवश होकर अत्यधिक दान एव धन-सम्पत्ति प्रदान करके उसको दबाये रखता है कि वह सिर न उठाये। उधर दीवानी के पदाधिकारियो एव कर तथा खराज वसूल करनेवालो की धन-सम्पत्ति उनके पास से भागती जाती है, कारण कि खराज बहुत बडी सख्या में प्राप्त होता है और वह सब उन्ही के हाथो में पहुँचता है। उनका सम्मान बढा हुआ होता है, अत सुल्तान उन पर भी अपने दाँत तेज करता है और उनको निचोडने की चिन्ता में लगता है। वे ईर्ष्यावश एक-दूसरे की चुगली खाते हैं और इस प्रकार एक-एक करके लुटते एव नष्ट होते जाते हैं। जब वे दीन एव दरिद्र हो जाते हैं तो सल्तनत की रौनक भी समाप्त हो जाती है। सल्तनत जब उनको चूस चुकती है तो अन्य धनी लोगो पर लालच की दृष्टि डालती है और उन्हे चूसने लगती है।

उस समय सल्तनत शक्तिहीन हो जाती है और उसके ऐश्वर्य एव गौरव में पर्याप्त अन्तर पड जाता है, अत उनके सुधार हेतु बादशाह अधिक से अधिक धन व्यय करता है। वह समझ लेता है कि सल्तनत की शोचनीय दशा में 'तलवार वाले' ही सल्तनत की अधिक से अधिक सहायता कर सकते हैं, अत वह अपने सैनिको पर विशेष दृष्टि डालता है। सेना के इनाम, वृत्ति एव वेतन हेतु उसे धन की हर समय लिप्सा रहती है। वह उसको प्रसन्न रखना तथा उससे काम लेना चाहता है, किन्तु उसकी यह राजनीति व्यर्थ सिद्ध होती है और उसके उद्देश्य की पूर्ति मे उसकी सहायक नही होती। सल्तनत उसी प्रकार शक्तिहीन होती जाती है। सल्तनत के दूरस्थ भागो के लोग उपद्रव एव विद्रोह प्रारम्भ कर देते हैं और सल्तनत से बात-बात पर झगडा करने लगते हैं। उधर सल्तनत की हर चाल असफल और हर युक्ति व्यर्थ सिद्ध होती है। नित्य-प्रति उसकी बात बिगडती जाती है, यहाँ तक कि वह विनाश के गर्त में पहुँच जाती है। यदि कोई सल्तनत का प्रतिस्पर्धी खडा हो जाता है तो उसको वह सुगमतापूर्वक छीन लेता है, अन्यथा इसी

प्रकार घुलते-घुलते वह समाप्त हो जाती है, जिस प्रकार दीपक की वत्ती तेल समाप्त होने के उपरान्त स्वत. ठडी हो जाती है। उसे किसी वुझानेवाले की आवश्यकता नही होती।[1]

(४८) नयी सल्तनतों की स्थापना

एक प्राचीन जमी-जमायी सल्तनत जव कमजोरी की साँस लेकर समाप्त हो जाती है और उसके स्थान पर दूसरी नयी सल्तनत स्थापित होती है, तो उसकी स्थापना अधिकाश दो प्रकार से होती है। एक तो इस प्रकार कि जव सल्तनत कमज़ोर पड़ने लगती है तो उसके दूर के स्थानो के आमिल एव वाली अपने-अपने स्थान पर स्वतंत्र शासक बन जाते हैं और प्रत्येक अपने प्राप्त किये हुए छोटे-से राज्य को अपनी कौम, सतान और अपने सहायको में चलाता है। फिर उनके राज्य के भाग शनै -शनै बढते जाते हैं और उनके शासन को शक्ति प्राप्त हो जाती है। कभी ऐसा होता है कि यह सव आमिल एव वाली एक-दूसरे पर आक्रमण करते है। अव इनमें जो अधिक शक्तिशाली होता है वही वाज़ी ले जाता है और दूसरे के राज्य पर अधिकार जमा लेता है। इस प्रकार जव वनी अव्वास की सल्तनत कमज़ोर पड़ी और राज्य के दूर के भागों पर उसका प्रभाव कम होता गया, तो वनू सामान ने मावराउन् नहर में, वनू हमदान ने मोसल एवं शाम में और वनू तूलून ने मिस्र में स्वतत्र राज्य स्थापित कर लिये। इसी प्रकार उन्दुलुस में जव वनी उमय्या का राज्य छिन्न-भिन्न हुआ तो विभिन्न समूहो के राज्य स्थापित हो गये। वालियो एवं आमिलो ने स्वाधीनता प्राप्त करके राज्य के टुकड़े-टुकडे कर डाले। फिर उनके राज्य उनकी सतान एव सम्वधियो में एक के वाद दूसरे मे पहुँचते रहे।

इस दशा में प्राचीन हुकूमतो और नयी हुकूमतो में सघर्ष नही होता। युद्ध एवं रक्तपात का द्वार नहीं खुलता, अपितु हर आमिल एव वाली अपने-अपने स्थान पर दासता त्यागकर स्वाधीनता के वस्त्र धारण कर लेता है। उसके हृदय में कभी यह लोभ

१ कुछ पोथियो में इसके वाद एक अन्य अध्याय है जो संभवतः वाद में जोड़ा गया है। उसका शीर्षक है—"एक सल्तनत का अधिकार सर्वप्रथम अपनी अन्तिम सीमा तक फैल जाता है और फिर शनैः-शनैः सिकुड़ने लगता है, यहाँ तक कि सल्तनत घुलकर समाप्त हो जाती है।" इस नये अध्याय में पिछले अध्यायो की पुनरावृत्ति की गयी है, अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।

नही पैदा होता कि आक्रमण करके असली राज्य को अपने अधीन बना ले और समस्त देश पर प्रभुत्व प्राप्त कर ले। ये आमिल केवल केंद्रीय शासन की कमजोरी से लाभ उठाते हैं। जव दूर के स्थान केंद्र के प्रभाव से निकल जाते है और वहाँ तक सैनिक-शक्ति नही पहुँच सकती, तो आमिल केवल अपने-अपने स्थान पर स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए इसको सुनहरा अवसर समझते हैं।

नये राज्य के स्थापित होने का दूसरा रूप यह है कि सल्तनत के आस-पास की कौमें अथवा कवीले कोई धार्मिक भावना लिये हुए और मज़हवी प्रचार के बल-बूते पर अथवा प्रभुत्व एव "असबियत" की अपार शक्ति अपने साथ लिये हुए वर्त्तमान राज्य के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं और देश को अपने अधीन करना चाहते हैं। उधर तो उनकी व्यक्तिगत शक्ति एव प्रभुत्व की भावनाएँ उनके हृदय मे समायी रहती हैं, इधर सल्तनत की शोचनीय दशा उनकी दृष्टि के सामने होती है। संक्षेप में ये दोनो बातें उनके आक्रमण का कारण बनती हैं। अन्त में वे एक दिन सल्तनत के स्वामी बन जाते हैं।

(४९) सतत प्रयत्न द्वारा, न कि अचानक छापा मारकर, नयी सल्तनतें प्राचीन जमी-जमायी सल्तनत पर अधिकार प्राप्त किया करती हैं

अभी-अभी उल्लेख हुआ था कि नया राज्य दो प्रकार से स्थापित होता है। एक यह कि देश के दूरवर्ती स्थान छोटे-छोटे राज्यो में विभाजित हो जाते हैं। वाली एवं आमिल अपने-अपने स्थान पर हाकिम बन वैठते है। उनका उद्देश्य यह नही होता कि वे पूरी सल्तनत पर अधिकार जमा लें, अपितु वे उस प्रदेश को, जो उनके अधीन होता है, स्वतत्र रूप से अधिकार में कर लेना ही पर्याप्त समझते हैं और उसी से सतुष्ट होकर वैठ रहते हैं। दूसरा रूप सल्तनत का दावा करना एवं विद्रोह करना होता है। इसमें आक्रमणकारी खुल्लमखुल्ला हुकूमत का दावा करके उठते हैं। उनकी सहायता हेतु प्रभुत्व एव "असबियत" की अपार शक्ति होती है, जो उन्हें युद्ध के लिए प्रेरित करती है। उसी के वल-वूते पर वे डटकर युद्ध करते हैं। विजय एव पराजय की तराजू के पलड़े डगमगाते रहते हैं। यहाँ तक कि उन्हे विजय प्राप्त हो जाती है। वैसे यदि वे जान तोडकर अचानक आक्रमण कर दें तो उन्हें कभी भी विजय प्राप्त नही हो सकती, पराजय निश्चत रहती है।

जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, इसका कारण यह है कि युद्ध में सफलता आकस्मिक घटनाओ पर निर्भर होती है। सेना की संख्या, अस्त्र-शस्त्र एव युद्ध की कुशलता कितनी ही सतोषजनक क्यो न हो, वे सब विजय हेतु हुई आकस्मिक घटनाओं का

मुकाबला नही कर सकती। इसी कारण युद्ध के लिए धूर्तता एवं विश्वासघात बडे लाभदायक होते है। हदीस में उल्लेख हुआ है—"युद्ध चालबाज़ी एव धूर्तता का नाम है।" यह बात बार-बार स्पष्ट की जा चुकी है कि समस्त प्रजा प्राचीन सल्तनत की आज्ञाकारिता एव अधीनता की आदी हो जाती है। यह बात नये राज्य की स्थापना में बाधक होती है,कारण कि उसके समर्थको के विचार भिन्न होते है। नये राज्य के विश्वास-पात्र उसकी आज्ञाकारिता को परम कर्त्तव्य समझते है। किन्तु सर्वसाधारण की तुलना में उनकी सख्या ही कितनी होती है कि उनकी आज्ञाकारिता से कोई अच्छा निष्कर्ष निकल सके। अधिकाश सख्या ऐसे लोगो की होती है जिनका मत एकनिष्ठ एव सगठित होता है, कारण कि वे दीर्घकाल से प्राचीन सल्तनत के आज्ञाकारी रह चुके होते है, अत. उनके विरुद्ध उनका पाँव तेज़ी एव वीरता से नही उठता। इसी कारण नये राज्य की स्थापना करनेवाला शत्रु पर एक बारगी आक्रमण नही करता, अपितु धैर्य से कार्य लेता है और उस समय तक आक्रमण को टालता रहता है जब तक कि शनै -शनैः प्राचीन सल्तनत कमज़ोर एव सुस्त न पड जाय। जब बादशाह की कौम तथा कबीलेवालो का विश्वास अपनी सल्तनत से उठ जाता है और नयी दावेदार हुकूमत के साथ उनकी सहानुभूति स्थापित हो जाती है, तब नि सन्देह नये राज्य की विजय एव सफलता का मार्ग खुलता है और उसको पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो जाता है।

इसके अतिरिक्त नये राज्य के सस्थापक को एकाएक सफलता न प्राप्त होने का एक कारण यह भी है कि प्राचीन सल्तनत धन-सम्पत्ति एव खाद्य सामग्री से मालामाल रहती है। क्योकि राज्य दीर्घकाल से चला आता है, उसे समृद्धि एव भोग-विलास का जीवन प्राप्त होता है, कर एवं खराज अधिक-से-अधिक हासिल होते हैं, जो अन्य सल्तनतो को प्राप्त नही होते। अत अच्छे-से-अच्छे घोडो से उनकी अश्वशाला भरी रहती है, उत्तम प्रकार के अस्त्र-शस्त्रो से शस्त्रागार परिपूर्ण होते है, देश एव राज्य का ऐश्वर्य तथा गौरव चरम सीमा पर होता है, बादशाह की ओर से कभी प्रसन्नतापूर्वक और कभी अप्रसन्न होकर निरन्तर दान-पुण्य होता रहता है। इन सब बातो से शत्रु उस सल्तनत से आतकित एव भयभीत रहता है और एकाएक उस पर हाथ डालने से डरता है। उधर नये राज्य के सस्थापको का हाल सुनिए। वे इन उपर्युक्त समृद्धि एव सस्कृति सम्बन्धी विषयो से अपरिचित एव अनभिज्ञ होते है। वे दरिद्रता, फाके एव सरलता के आदी होते है, अत जब प्राचीन सल्तनत की आन-बान एवं गौरव देखते अथवा सुनते है, तो एकदम हतोत्साह हो जाते है और खुलकर युद्ध एव सग्राम से जान चुराने लगते है। अत शनै -शनैः सल्तनत को वे छोटी-छोटी झडपो से सताने लगते है, यहाँ तक कि

प्राचीन सल्तनत का दीपक स्वतः बुझने लगता है। वह एक वृद्ध की भाँति अपने जीवन की घड़ियाँ गिनने लगती है और "असबियत" के जोर एव खराज की वसूली में अत्यधिक कमी आ जाती है। फिर इस सुनहरे अवसर को नया राज्य हाथ से नही जाने देता और अधिक प्रतीक्षा के उपरान्त तत्काल ही प्राचीन सल्तनत पर अधिकार जमा लेता है।

नये राज्य के तुरन्त सफल न होने का एक कारण यह है कि दोनो सल्तनतो के अनुयायियो के वश एव परिवार के चरित्र एव स्वभाव में ज़मीन-आसमान का अन्तर होता है। नये राज्य के पदाधिकारियो को अपने उद्देश्यो में जो सफलता प्राप्त होती है अथवा उसकी आशा होती है तो उस पर वे बडा गर्व करते है और फूले नही समाते। इस प्रकार दोनो पक्षो में बाह्य एव आतरिक रूप से वड़ी दूरी एव वैमनस्य रहता है। इसी कारण से चढाई करनेवालो को प्राचीन राज्य की गुप्त तैयारियो एव प्रयत्नो का पता नही चल पाता और उन्हें एकदम कोई निर्णय करने का साहस नही होता, अतः वे शनै-शनै सल्तनत की जडें खोदते रहते हैं और उसके जोर को धीरे-धीरे तोडते रहते हैं, यहाँ तक कि सल्तनत के पतन के आदेश ईश्वर की ओर से आ जाते हैं और उसकी प्राकृतिक दशा समाप्त हो जाती है। हर दिशा से उसमें कमजोरी एव विघ्न दृष्टिगत होने लगते है। अव नये राज्य के सहायको को प्राचीन सल्तनत की कमज़ोरी का पता चलता है और उनमे साहस पैदा होता है। फिर वे सल्तनत के विभिन्न इलाके एव भाग दवाकर अपनी शक्ति और बढा लेते हैं। तदुपरान्त उनका साहस इतना अधिक वढ जाता है कि वे अन्तिम युद्ध के लिए भी तैयार हो जाते है और साधारण छेड़-छाड को समाप्त कर देते हैं, कारण कि अब शत्रु की शक्ति के निराधार विचार उनके सकल्प को कमजोर नही करते। अन्त मे वे तत्काल पूरी सल्तनत पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेते हैं।

इस प्रकार वनी अव्वास के इतिहास में आप पढेगे कि कव से उनसे सहानुभूति रखनेवालो एव उनके सहायको ने खुरासान में खिलाफत का प्रचार प्रारम्भ कर रखा था और अपनी माँगो का नारा लगा रहे थे, किन्तु अन्त में १० वर्ष अथवा उससे भी अधिक समय के उपरान्त उन्हें सफलता प्राप्त हुई और वे उमय्या राज्य पर छा गये। अलवियो[1] को देखिए कि उन्होने तबरिस्तान में दैलमियो को अपना पक्षपाती बनाकर वनी अब्वास के विरुद्ध कव से खिलाफत का दावा कर रखा था, किन्तु काफी अधिक समय के उपरान्त इनको वहाँ आस-पास में सफलता प्राप्त हुई। इसी प्रकार जब ये समाप्त हुए और दैलम

१. ज़ैदियों।

फारस एव दोनो इराको की ओर अग्रसर हुए तो वर्षों प्रयत्न के उपरान्त इसफहान एव फारस पर अधिकार जमा लेने में सफल हुए और फिर वाद में खलीफा को भी दवा लिया।

यही दशा उवैदीईन की हुई कि कुतामा वरवरों में अब्दुल्लाह शीई ने उनका प्रचार दस वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया था। इस अवधि में इफरीकिया में वनी अगलव का प्रभाव वढता रहा, यहाँ तक कि उवैदीईन अन्त में पूरे मगरिव को दवा वैठे, फिर मिस्र की ओर वढे और लगभग ३० वर्ष तक उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करते रहे। वार-वार उन पर आक्रमण होते और वगदाद एव शाम से उनकी प्रतिरक्षा हेतु जल तथा स्थल मार्ग से सेनाएँ पहुँचती। फिर कही उन्होने इस्कन्दरिया, फुय्यूम तथा मिस्र के ऊपरी भाग पर अधिकार जमाया। तदुपरान्त उनका प्रचार हिजाज तक पहुँचा और मक्के-मदीने में भी उनके दूत कार्य करने लगे। इसके उपरान्त उनके सरदार जौहर कातिव ने अपार सेना लेकर मिस्र पर आक्रमण किया और उस पर भी अधिकार जमाया तथा वनू तुगश की सल्तनत की भी नीव खोद डाली एव काहेरा की स्थापना की। तत्पश्चात् उनका खलीफा मुइज्ज-ले-दीनिल्लाह सिंहासनारूढ हुआ और वह इस्कन्दरिया पर अधिकार के ६० वर्ष वाद तक राज्य करता रहा।

इसी प्रकार सल्जूक मावराउन् नहर पहुँचकर सामानियो पर एकाएक अधिकार न जमा सके, अपितु ३० वर्ष तक निरन्तर सुवुक्तिगीन[1] के वश से खुरासान में युद्ध करते रहे और फिर कही जाकर उन पर अधिकार जमा सके। उन्होने वहाँ से वगदाद की ओर अपनी वागें फेरी और वहुकालिक सघर्ष के उपरान्त वगदाद विजय किया।

तातारियो को भी इसी स्थिति का सामना करना पडा। ६१७ हि० (१२२०-२१ ई०) में उत्तरी जगलो से उनका तूफान उठा और ४० वर्ष के दीर्घकाल के सघर्ष के उपरान्त वे वगदाद की सल्तनत को विजय कर सके।

मगरिव के लम्तूना ने भी मुरावेतीन के साथ मिलकर दीर्घकाल के उपरान्त मगरावा के वादशाहो को अपने अधीन किया। फिर मुवह्हेदीन लम्तूना के विरुद्ध उठ खडे हुए और लगभग ३० वर्ष के घोर युद्ध के उपरान्त उनकी राजधानी मराकश पर मुवह्हेदीन ने अपना झडा गाड़ा। तत्पश्चात् जनाता में से वनी मरीन मुवह्हेदीन

१. नासिरुद्दीन सुवुक्तिगीन ९७७ ई० में गजनी का वादशाह हुआ। उसने हिन्दुस्तान पर भी आक्रमण किया। इस प्रकार पंजाव के पश्चिमी भाग से खुरासान तक के भाग उसके राज्य में सम्मिलित हो गये। उसकी मृत्यु ९९७ ई० में हुई।

के विरुद्ध उठ खड़े हुए और ३० वर्ष अथवा उससे कुछ कम या अधिक अवधि मे फास पर अधिकार जमाकर उनको राज्य से पृथक् कर सके। फिर युद्ध मे ३० वर्ष और व्यतीत किये, तब कही जाकर वे मुवह्हेदीन की राजधानी मराकश पर अधिकार जमा सके। इन सब बातो का वर्णन उन सुल्तानो के इतिहास में लिखा हुआ है।

सक्षेप मे किसी नये राज्य की स्थापना एवं पुराने राज्य के उखाडने तथा नष्ट करने में बहुत अधिक समय लगता है। इस अवधि में आक्रान्त लोग पूर्ण प्रयत्न कर चुकते हैं तब कही जाकर देश मे उनके पाँव जमते हैं। किन्तु इस्लामी विजयो का उदाहरण प्रस्तुत करके जिस तथ्य का हमने प्रतिपादन किया है, उसका खडन न किया जाय। यह सत्य है कि मुहम्मद साहब की मृत्यु के तीन-चार वर्ष उपरान्त ही मुसलमानो ने फारस एव रूम[1] का विनाश कर डाला और उनके विस्तृत राज्य का समूल उच्छेदन कर दिया, किन्तु यह सब मुहम्मद साहब का चमत्कार था कि इधर तो मुसलमान अपने धर्म की सत्यता पर सतुष्ट होने के कारण इतने उत्तेजित हो गये कि जेहाद मे प्राण त्यागने को एक साधारण बात समझने लगे और दूसरी ओर मुसलमानो के शत्रुओ के हृदय में आतक एव साहसहीनता उत्पन्न हो गयी। अत. इन्ही कारणो से यह अस्वाभाविक एवं असाधारण घटना घट सकी और देखते-देखते मुसलमानो ने दृढ़ राज्यो को धूल में मिला दिया तथा साधारण प्रथानुसार उन्हें अपने पाँव जमाने मे अधिक समय नही लगा। जब यह अचानक विजय असाधारण प्रकार से प्राप्त हुई तो इसे चमत्कार ही कहा जायगा और मुहम्मद साहब का मोजज़ा। स्वाभाविक विधियो की तुलना चमत्कारो से नही की जा सकती और न उन्हें सामने रखकर चमत्कारो की आलोचना ही की जा सकती है।

(५०) सल्तनत के अन्तिम काल मे देश की जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है, सक्रामक रोग फैलते है और अकाल पड़ते हैं

यह बात स्पष्ट हो गयी कि सल्तनत अपने आदिम काल में राज्य में नरमी से काम लेती है और सबके साथ बड़ा ही उत्तम व्यवहार करती है। यदि सल्तनत धार्मिक दृष्टिकोण पर स्थापित है, तो धार्मिक आवश्यकताओ के वशीभूत होती है, किन्तु "बदवियत" सल्तनत के लिए प्राकृतिक रूप से बडी सहायक रहती है। वह उसे सद्-व्यवहार एव सदाचरण पर स्थापित रखती है। जब सल्तनत का व्यवहार प्रजा के प्रति प्रशसनीय होता है तो प्रजा के हृदय मे आशाएँ बढ़ जाती हैं और वह प्रसन्नतापूर्वक देश भर

१. बैजण्टाइन।

में फैल जाती है। देश की जनसख्या घनी हो जाती है। सतान की सख्या वढ जाती है, किन्तु यह सब कुछ शनै-शनै होता है। एक अथवा दो शताब्दियो में जनसख्या बहुत अधिक हो जाती है। जब दो शताब्दियाँ व्यतीत हो जाती है तो सल्तनत की स्वाभाविक स्थिति अन्तिम सीमा को प्राप्त हो जाती है। देश की जनसख्या बहुत ही अधिक हो जाती है और नित्यप्रति उसमें वृद्धि होती रहती है।

हमने इससे पूर्व जो वर्णन किया, उसे सामने रखते हुए यह सन्देह न कीजिए कि जब राज्य के अन्तिम दिनो में सल्तनत की ओर से प्रजा पर अत्याचार वढता है और कठोरता प्रारम्भ होती है, तो जनसख्या किस प्रकार वढेगी। पिछला वर्णन नि सन्देह ठीक है और दोनो में कोई विरोध नही। वास्तव में जब राज्य की ओर से देश की जनसख्या पर अत्याचार होने लगते है और फिर खराज में कमी होना प्रारम्भ होता है तो जनसख्या नि सन्देह कम होने लगती है। किन्तु इस कमी के चिह्न अधिक समय वाद दृष्टिगत होते है, क्योकि कमी शनै-शनैः होती है, एकदम नही कि उसका पता चल जाय। इसका यह कारण है कि प्राकृतिक घटनाओ का आगम धीरे-धीरे ही होना परमावश्यक है।

सल्तनत के अन्तिम काल में अकाल इतने वढ जाते है कि लोग कृषि करना छोड देते है, अधिकाश तो इस कारण कि राज्य के करो एव खराज की वसूली में अत्याचार प्रारम्भ हो जाते है, और कुछ इस वजह से कि सल्तनत की शक्तिहीनता के कारण विद्रोह प्रारम्भ हो जाते है, प्रजा नष्ट-भ्रष्ट एव शोचनीय दशा को प्राप्त हो जाती है और जनसख्या घटने लगती है। अनाज के भडार भी कम हो जाते है। वास्तव में कृषि एव फसल तो सम दशा में रहती ही नही। उसकी अच्छाई-बुराई एव कमी और ज्यादती का सबध वर्षा की कमी एव अधिकता पर है। वर्षा कभी कम होती है, कभी अधिक, कभी हलकी, कभी तेज़। सक्षेप में, वह एक दशा पर नही रहती। इसी प्रकार कृषि एव फसल भी अपनी दशा वदलती रहती है। कभी उनकी उत्पत्ति कम होती है, कभी अधिक, कभी हलकी, कभी तेज। ज्यादातर लोग अनाज-भडारो पर निर्भर रहते है और उन्ही पर दृष्टि रखकर जीवित रहते है। जब अनाज का भडार कम हो जाता है तो लोगो को अकाल का भय हो जाता है। अनाज का मूल्य बाज़ार में अधिक हो जाता है। दीन एव दरिद्र भूखो मरने लगते है और किन्ही वर्षो में तो भडार पूर्णत. समाप्त हो जाते है। फिर धनी-दरिद्र, समृद्ध एव दीन सभी मौत के शिकार हो जाते है।

नाशात्मक रोगो के अधिक होने एव हत्याकाड अथवा लूट-मार की अधिकता के विभिन्न कारण है। एक कारण तो उपर्युक्त अकाल ही है। लोग अनाज की कमी

अथवा अभाव के कारण नष्ट हो जाते हैं, दूसरा कारण है सल्तनत की शोचनीय दशा, जिसके फलस्वरूप देश मे विद्रोह एव उपद्रव अधिक सख्या में होने लगते है और हत्याकाड, मार-काट बहुत होती है। देश मे लाशो के ढेर लग जाते है और कब्रस्तान पट जाते है। तीसरा कारण सक्रामक रोग होते हैं। इन रोगो के फैलने का कारण प्रायः जनसख्या की वृद्धि से दूषित वायुमडल है। जब वायुमडल दूषित होता है तो प्राणियो की प्राकृतिक दशा में भी दोष आ जाता है। यदि वायु अधिक दूषित हो जाय तो महामारी फैल जाती है। कभी-कभी व्यापक प्रकार का ज्वर फैल जाता है और लोग मरने लगते हैं। इन सब बातो का कारण जनसख्या की अधिकता है जो सल्तनत के अन्तिम युग में होती है।

स्वास्थविज्ञान के सिद्धान्तो के अनुसार यह परमावश्यक है कि आबादी के बीच-बीच में जगल एव खुले मैदान छोडे जायँ, ताकि लोगो की घनी आबादियों के कारण वायुमडल दूषित न हो सके। खुली हवा इसका निराकरण करती है और स्वच्छ एव स्वास्थ्य प्रद हवा प्रविष्ट होती है। यही कारण है कि जो नगर बड़े घने है, उदाहरणार्थ पूर्व में मिस्र और मगरिब में फास, इनमें सक्रामक एव घातक रोग बहुत बड़ी संख्या में फैलते हैं और वे बडे ही विनाशकारी सिद्ध होते हैं। जो आबादियाँ खुली-खुली बसी है, उदाहरणार्थ ग्राम अथवा छोटे क़सबे, उनमें ऐसे रोग बहुत ही कम सुनने में आते हैं।

(५१) मानव-सभ्यता के लिए राजनीतिक नेतृत्व परमावश्यक है, ताकि उसके अधीन मानवजाति का कार्यकलाप सुव्यवस्थित हो सके

यह तथ्य बार-बार स्पष्ट किया जा चुका है कि मनुष्य के लिए सामाजिक जीवन अनुपेक्ष्य है। इसे हम "सभ्यता" कहते हैं। समाज के लिए एक न्यायकारी शासक की आवश्यकता होती है, ताकि लोग अपने झगडे उसकी सेवा में प्रस्तुत कर सकें और उसी से न्याय की याचना करें। उस शासक के निर्णय का आधार कभी तो दैवी शरीअत होती है, जिसका पालन करके मनुष्य पुण्य एव उपकार का भाजन होता है और उसका उल्लघन करने पर उसे दड भोगना पडता है। कभी शासक के निर्णयो का आधार राजनीति एव मानव द्वारा तैयार किये हुए वे विधान होते हैं जिनके पालन में मनुष्यो को सासारिक लाभ दृष्टिगत होता है। इसी लाभ की दृष्टि से अधिनियम बनाये जाते हैं। शरई नियम इस लोक तथा परलोक दोनो के ही हित से सबधित होते हैं, क्योंकि इस्लाम की शरा बनानेवाले परलोक के हित से भली-भाँति परिचित होते हैं और

अपने विधान में परलोक के सौभाग्य का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। इसके विपरीत बुद्धि पर आधारित राजनीति में केवल इस लोक के लाभ पर ही दृष्टि रखी जाती है।

जिस चीज को "सियासये मदनीयह"[1] कहते हैं, वह इससे सबधित नही है। उसका सम्बन्ध तो दार्शनिकों के अनुसार उस राजनीति से है जिसके अधीन मानव समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी आत्मा एव अपने चरित्र का इस प्रकार सुधार करता है कि शासकों की आवश्यकता ही नही रहती। इसको दार्शनिक लोग "आदर्श राजनीति"[2] कहते हैं। जिन अधिनियमों का इस मानव-सगठन में ध्यान रखा जाता है उनका नाम "सियासये मदनीयह" रखा गया है। वे नियम जो सर्वसाधारण के हित को दृष्टि में रखकर संगठन हेतु बनाये जाते हैं और जिनका परिचय हमने बुद्धि पर आधारित राजनीति के नाम से कराया है, उनको विद्वान् लोग "सियासये मदनीयह" नहीं कहते। फिर "मदीनये फाजेला" का अस्तित्व भी असम्भव है, अपितु इस सम्बन्ध में उनका पूरा वाद-विवाद काल्पनिक एव आकस्मिक है।

बुद्धि पर आधारित राजनीति दो प्रकार की होती है, एक वह जिसमें साधारण मनुष्यों के हित का ध्यान रखा जाय और बादशाह के विशेष हितों का भी। यानी उस बात का कि उनका राज्य ठीक आधार पर किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। यह राजनीति दर्शन-शास्त्र के सिद्धान्तों पर आधारित होती है और फारसवाले इसी राजनीति का पालन करते हैं। किन्तु ईश्वर ने हमें इस्लामी शरीअत से सम्मानित कर दिया है एव खिलाफत हमारी पथप्रदर्शक है, अत हमें फारस की राजनीति की आवश्यकता नही रही। कारण कि शरई आदेशों में लोक-परलोक के सभी विशेष हितों का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है और समस्त राजनीतिक आदेश उसमें सम्मिलित हैं, फिर हमको पृथक् विधान बनाने की आवश्यकता ही क्या है।

बुद्धि पर आधारित राजनीति की दूसरी किस्म सुल्तान के विशेष हितों से सबधित होती है। उसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सल्तनत आतक द्वारा किस प्रकार स्थापित रह सकती है। लोक-हित के सबध में इसमें भी विवेचन किया जाता है, किन्तु केवल साधारण रूप से, न कि मौलिक रूप से। आजकल भी बिना धार्मिक भेद-भाव के समस्त बादशाह इसी दूसरे प्रकार की राजनीति से काम लेते हैं, किन्तु मुसलमान बादशाह यथासम्भव इस्लामी शरीअत की आवश्यकताओं को नही भूलते। प्रत्येक

१ राजनीतिक स्वर्ग (यूटोपिया)।
२ आदर्श नगर, "मदीनयेफाजेला।"

नियम में उनका ध्यान अवश्य रखते है। इसी कारण उनके शासनविधान में शरई आदेश भी मिलते हैं और नैतिक अनुशासन भी और वे नियम भी, जिनकी मानवसमाज को आवश्यकता होती है। इनके अधिनियमो में प्रभुत्व एव "असबियत" की आवश्यकताओ का भी विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। इनमें शरीअत का पालन परम कर्त्तव्य माना जाता है। उसके बाद दार्शनिको के अधिनियमो का स्थान है और तदुपरान्त पिछले बादशाहो के चरित्र एवं परम्पराओ के अनुसरण का।

इस विषय में सर्वोत्कृष्ट जो लेख हमे उपलब्ध है वह ताहिर बिन हुसेन का पत्र है, जिसमें उसने अपने पुत्र[1] अब्दुल्लाह बिन ताहिर को, जब वह मामून द्वारा रक्का, मिस्र एवं उनके मध्यवर्त्ती भाग का वाली नियुक्त किया गया था, सम्बोधित किया है। इस पत्र में ताहिर ने अपने पुत्र को ऐसी वह प्रत्येक शिक्षा दी है जिसकी उसे अपने शासन-काल में आवश्यकता पड़ने की सम्भावना थी, अर्थात् धार्मिक, नैतिक, शरई एव राजनीति सबधी अधिनियम। इसमें उसने उत्कृष्ट आचरण एवं नैतिकता तथा सच्चरित्रता की ओर उसे विशेष रूप से प्रेरित किया है, क्योकि इनकी एक बडे से बडे बादशाह को भी आवश्यकता हो सकती है और इनकी उपेक्षा नही की जा सकती। एक साधारण मनुष्य को भी इनकी आवश्यकता होती है। पत्र जो तबरी के इतिहास से उद्धृत है, इस प्रकार है—

> "देखो, उस ईश्वर का भय करो जो अकेला है और कोई उसका साथी नहीं। उसके क्रोध एवं कोप से काँपते रहो। रात-दिन अपनी प्रजा की देख-भाल एवं चिन्ता रखो। स्वास्थ्य एवं समृद्धि की दशा में परलोक को कभी न भूलो। उस समय का स्मरण रखो जो तुम पर आनेवाला है। उन बातों को ध्यान में लाओ, जिनके कारण तुम से पूछ-ताछ की जायगी। केवल उनका ध्यान ही न रखो, अपितु उन पर आचरण भी करो। समस्त पुण्य कर्तव्यों का पालन करो। ईश्वर (इस प्रकार) तुम्हें अपनी रक्षा में रखेगा और परलोक में अपने क्रोध एवं दारुण वेदना से सुरक्षित रखेगा। जान लो कि ईश्वर ने तुम्हारा बड़ा

१. इसकी रचना २०५–६ हि० (८२१ ई०) में हुई होगी। यह ९वीं शताब्दी ईसवी के ताहिर तैफ़ूर के बग़दाद के इतिहास में भी दिया हुआ है। सम्भवतः इब्ने खलदून को इस ग्रंथ का पता न था। अन्य इतिहासों में भी यह पत्र उद्धृत हुआ है, किन्तु सभी में तथा इब्ने खलदून के ग्रंथ की विभिन्न हस्तलिखित पोथियों में थोड़ा-बहुत अन्तर है।

कल्याण किया है और तुम पर बड़ी कृपा की है कि अपने दासो की देखभाल तुम्हारे हाथ में रखी है। तुम्हारे लिए यह परमावश्यक है कि तुम न्यायपूर्वक व्यवहार करो और ईश्वर के बताये हुए मार्ग पर अग्रसर रहो। लोगो के कष्ट दूर करने का प्रयत्न करो। उनके सम्मान, मर्यादा, पदो, प्राणो एवं वंशो की पूरी-पूरी रक्षा करो। संक्षेप में उनके आराम के जिम्मेदार बन जाओ। तुम्हें स्मरण रहे कि ईश्वर तुमसे उन नियमो के विषय में पूछ-ताछ करेगा, जिनका पालन तुम्हारा कर्त्तव्य है और फिर बाद में उनके विषय में तुम्हें पुरस्कृत करेगा। अत उपर्युक्त बातो का पालन करने के लिए तुम अपनी बुद्धि, समझ एवं विवेक को पूर्ण रूप से खपा दो। तुम्हारा किसी भी कार्य में व्यस्त होना इसमें बाधक न हो सके। समझ लो कि यह तुम्हारा चोटी का कार्य है। यह कार्य तुम्हारे जीवन को सुधारनेवाला है। सर्वप्रथम तुमसे इसी विषय में प्रश्न किया जायगा। तुमको चाहिए कि सर्वप्रथम अपने आपको पाँचो समय की नमाज़ का आदी बनाओ। जमाअत की नमाज़ें पढते रहो। सुन्नतें[1] भी मत छोड़ो, उदाहरणार्थ वज़ू भली-भाँति करो। वज़ू में धोया जानेवाला कोई अंग सूखा न रखो। उसको अल्लाह के नाम से प्रारम्भ करो। कुरान ठहर-ठहरकर पढो। रुकू[2], सिज्दा[3] एव तशह्हुद[4] में जल्दी मत करो, अपितु शरीर को स्थिर करो और नमाज़ में अपना हृदय लगा दो। जो तुम्हारे सहचर अथवा तुम्हारे अधीन हो उन्हें भी इसी सदाचरण का आदी बनाओ, कारण कि इसी से प्रत्येक बुराई एव अनुचित आचरण से बचाव होता है।

इस अनिवार्य आचरण पर अमल करने के उपरान्त मुहम्मद साहब की सुन्नतों का पालन किया करो। उनके-जैसा चरित्र अपना भी बना लो। फिर हज़रत के बाद जो पवित्र व्यक्ति हुए हैं उनके पद-चिह्नो पर चलो। जब तुम्हें

१. वे बातें जो अनिवार्य नहीं है, किन्तु इस कारण कि हज़रत मुहम्मद उनका ध्यान रखते थे, वे बडी महत्त्वपूर्ण हैं।
२ नमाज़ में घुटने के बल झुकना।
३. नमाज़ में भूमि पर मत्था रखना।
४. ईश्वर के एक होने एवं मुहम्मद साहब के उनके रसूल होने से सम्बन्धित वाक्य का पाठ।

किसी कठिनाई का सामना करना पड़े तो इस्तिखारा[1] करो। पवित्र जीवन व्यतीत करो। क़ुरान शरीफ़ में जो आदेश दिये गये हैं और जिन कार्यों के करने से रोका गया है, तदनुसार आचरण करने से बाल-बराबर भी विचलित न हो। फिर मुहम्मद साहब की हदीस को भी कभी न भुलाओ। जो क़दम उठाओ वह ईश्वर की प्रसन्नता के लिए हो। जो बातें पसन्द करो अथवा रद्द करो उनमें न्याय को हाथ से न जाने दो। इसमें किसी के प्रति पक्षपात मत करो। फिकह सीखो एवं फिकह-वेत्ताओं का आदर-सम्मान करो। धर्म की शिक्षा ग्रहण करो और धार्मिक लोगों का आदर-सम्मान करो। अल्लाह की किताब का अध्ययन करो, उसे समझो और उसका ज्ञान रखनेवालों का हृदय से आदर करो। जान लो कि मनुष्य को सबसे अधिक सम्मानित करनेवाला गुण यही है कि वह फिकह के ज्ञान को सीखे-सिखाये, पढ़े-पढ़ाये एवं उसके अध्ययन में लगा रहे। वह प्रत्येक ऐसी बात में लगा रहे जो उसको अल्लाह के निकट पहुँचा दे। यही चीज उसके उपकार का चिह्न है और भलाई की ओर उसे ले जाती एवं उसका पथ-प्रदर्शन करती है। यही उसे पाप तथा विनाश से बचाती है। यदि ईश्वर की सहायता मनुष्य के साथ हो तो उसके ज्ञान के द्वार मनुष्य के लिए खुल जाते हैं। उसका गौरव हृदय में समा जाता है। वह परलोक में उच्च श्रेणी पाने का अधिकारी बनता है, अपितु इस लोक में भी जब तुम्हारी सच्चरित्रता प्रकट होगी तो संसार तुम्हारे आदेशों को सिर-आँखों पर रखेगा और तुम्हारे क्रोध से डरेगा। लोग तुमसे स्नेह बनाये रखेंगे। तुम्हारे न्याय पर उनको पूरा-पूरा भरोसा होगा। संयम से कार्य करो, कारण कि यह अधिक लाभदायक, शान्ति एवं रक्षा का जिम्मेदार और गौरव तथा श्रेष्ठता का चिह्न है। संयम ही मनुष्य को भलाई एवं श्रेष्ठता की ओर ले जाता है। उपकार दैवी सहायता का चिह्न है। दीन एवं मुहम्मद साहब की सुन्नत का आधार यह संयम ही है। संसार का उपकार भी इसी पर निर्भर है। अपना परलोक का जीवन सुधारने में लेश मात्र भी उपेक्षा न करो। पुण्य को हाथ से न जाने दो। सदाचार, सद्व्यवहार, सच्चरित्रता, शुभाकांक्षा एवं दूसरों की सहायता, सहानुभूति और अधिक-से-अधिक

१. किसी कार्य के करने के पूर्व अल्लाह की इच्छा ज्ञात करने की विधि। इसके विभिन्न नियम हैं।

भलाई के लिए यत्न करने की आदत डालो। अपने प्रत्येक व्यवहार में ईश्वर की प्रसन्नता एवं उसकी इच्छा का ध्यान रखो। क्या तुमको इतना ज्ञान नहीं कि सांसारिक बातों में संयम करने से सम्मान प्राप्त होता है, पापों से रक्षा होती है। उससे तुम्हारे कार्यों का सुधार प्रत्येक हितैषी एवं शुभचिन्तक की अपेक्षा अधिक होता है, अतः संयम को अवश्य ग्रहण करो। उससे शिक्षा प्राप्त करो। तुम्हारे समस्त कार्य बनते चले जायेंगे। तुम्हारे अधिकार बढ़ेंगे। तुम्हारी विशेष एवं साधारण महत्त्वाकांक्षाएं सुधर जायेंगी। ईश्वर पर भरोसा रखो। तुम्हारी प्रजा की गरदन तुम्हारे समक्ष झुकी रहेगी। समस्त कार्यों में अल्लाह की ओर ही देखो। तुम पर जो उसकी देन है, वह बाकी रहेगी। जिसको तुम कोई कार्य सुपुर्द करो तो उस पर उस समय तक,जब तक कि खूब पूछ-ताछ न कर लो, कोई दोष न लगाओ। कारण कि पवित्र लोगों को दोष लगाना एवं उनके विषय में कोई शंका रखना सबसे बड़ा पाप है, अत. अपने साथियों के विषय में सद्भावनाएँ रखो, दुर्भावनाओं को अपने हृदय से निकाल दो, ताकि वे अपने उत्तरदायित्व को परिश्रम एवं शान्ति से पूरा करें। ईश्वर के शत्रु शैतान को मार्ग भ्रष्ट करने का अवसर न दो। वह तुम्हारी साधारण कमजोरी से लाभ उठाकर तुम्हारे हृदय में शंकाएँ उत्पन्न कर देता है और तुम्हारे जीवन के आनन्द को नष्ट कर देता है। याद रखो कि सद्भावना द्वारा तुम शान्ति एवं आनन्द का अनुभव करोगे, जिससे तुम्हारे कार्य तुम्हारे इच्छानुसार ठीक हो जायेंगे और लोग तुमसे प्रेम करने पर विवश होंगे और समस्त कार्य भली-भाँति सम्पन्न होंगे।

अपने साथियो के प्रति सद्भावना प्रकट करने और अपनी प्रजा के साथ दया एव कृपा-पूर्ण व्यवहार करने का यह अर्थ नहीं कि उनके विषय में कोई जाँच अथवा पूछ-ताछ ही न की जाय और मित्रों के कारोबार से कोई सम्बन्ध ही न रखा जाय, अथवा प्रजा की आवश्यकताओ की ओर से उपेक्षा की जाय या प्रजा के विषय में कोई ध्यान ही न दिया जाय। प्रजा के उत्तरदायित्व का भार तुम्हारे लिए अन्य कर्तव्यों-भारो से हलका होना चाहिए, क्योंकि यह बोझ धर्म के तथ्य को भी जीवित रखता है और सुन्नत भी इससे जीवित रहती है। फिर एक बार और सुन लो कि इन सब कार्यों में निष्ठा परमावश्यक है। निष्ठा के बिना कुछ सम्भव नहीं। अपनी आत्मा के सुधार में इस प्रकार लग जाओ कि मानो परलोक में केवल तुमसे ही तुम्हारे आचरण के विषय में प्रश्न किया जायगा। तुम्हारे अच्छे कार्यों से तुम्हें पूर्ण लाभ होगा और बुरे कार्यों के लिए दंड दिया जायगा।

ईश्वर ने तुम्हें दीन (इस्लाम) की रक्षा एवं सम्मान का साधन बनाया है। जो तुम्हारे अधीन अथवा देख-रेख में हों उनको भी दीन के मार्ग पर चलाओ और स्वयं अपने आप को भी न भुलाओ। अपराध करने का पेशा करनेवालों को अपराध के अनुसार दंड दो। न दंड की ओर से उपेक्षा करो, न दिये हुए दंड को माफ़ करो, न उसमें नरमी दिखाओ और न उसको टालो, कारण कि उसमें कमजोरी दिखाना तुम्हारी सद्भावनाओं में विघ्न डालेगा। अपने सभी कार्यों में मुहम्मद साहब की सुन्नत का पालन करो और बिदअतो एवं सन्देह से बचो। इससे तुम्हारा धर्म भी सुरक्षित रहेगा और पौरुष तथा मर्यादा भी। वचन का पालन करो। सदाचरण की ओर सर्वदा प्रेरित रहो। दुर्व्यवहार का बदला नेकी से दो। अपनी प्रजा की भूलों की ओर से उपेक्षा करो। जिह्वा को झूठ बोलने से बचाओ। तुम्हारे इस लोक तथा परलोक के कार्यों के विनाश का प्रथम चिह्न यह है कि तुम झूठों को पास बैठाओ तथा झूठ का उनको साहस दिलाओ। झूठ से वास्तव में पाप प्रारम्भ होता है और चुगली एवं झूठे इलजाम से वह चरम सीमा पर पहुँच जाता है। चुग़ली सुननेवाला मित्र से वंचित होता है और चुग़ली करनेवाला सहायकों से। उसका कोई काम नहीं बनता। योग्य एवं सच्चे लोगों का हृदय से आदर करो। शरीफ़ लोगों का सम्मान करो। कमजोरों को साहस दिलाओ और सम्बन्धियों के साथ दयापूर्वक व्यवहार करो। इस विषय में ईश्वर की प्रसन्नता का ध्यान रखो। उसके आदेशों का पालन करो। उससे परलोक में पुण्य की आशा करो। दुर्भावनाओं एवं अत्याचार से पृथक् रहो। उनकी ओर कोई ध्यान न दो, अपितु अपनी प्रजा से कह दो कि तुम अत्याचार की किसी प्रकार अनुमति नहीं दे सकते। दंड देते समय न्याय को मत त्यागो और समस्त बातों में सत्य के समर्थक रहो। उस ज्ञान को प्राप्त करो जो तुम्हें सन्मार्ग पर ले जा सके। क्रोध के समय अपने को वश में रखो। सहनशीलता एवं धैर्य को कभी मत त्यागो। जब कोई कार्य प्रारम्भ करो तो स्वेच्छाचार, क्रोध एवं तेजी से काम न लो। सावधान रहो।

किसी विषय में यह न कहना कि मुझे इसके निर्णय का पूर्ण अधिकार है, मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ। कारण कि यह कथन तुम्हारे विचारों की कमजोरी और ईश्वर पर तुम्हारे विश्वास न होने का खुला चिह्न है। अपने उद्देश्यों में कोई कपट मत रखो। ईश्वर पर भरोसा रखो। यह जान लो कि समस्त राज्य अल्लाह का ही है। वह जिसको चाहता है देता है और जिससे चाहता है

ले लेता है।[1] तुम किसी समृद्ध से उसकी धन-सम्पत्ति इतने शीघ्र छिनती हुई न देखोगे और न ईश्वर की ओर से क्रोध होता हुआ पाओगे, जितने शीघ्र सुल्तानों एवं उच्च पदाधिकारियो से उनका पद छिन जाता है और वे ईश्वर के क्रोध का निशाना बनते हैं। यह इस प्रकार होता है कि वे अल्लाह की देन एवं उपकारों के प्रति कृतघ्नता प्रकट करने लगते हैं और अल्लाह ने उन पर जो कृपा की है उसका अनुचित लाभ उठाने लगते हैं। लोभ एवं लिप्सा से बचते रहो। उपकार एवं पवित्र जीवन को ही तुम अपना पथ-प्रदर्शक समझो। प्रजा का उपकार, देश की समृद्धि, प्रजा की देखभाल, उनके प्राणों की रक्षा एवं पीड़ितों की सहायता को ही अपनी सारी सम्पत्ति समझो। यह बात अपने ध्यान में रख लो कि धन-सम्पत्ति जब खजानों में जमा कर ली जाती है तो बढ़ती नहीं। जब उसको प्रजा की भलाई एवं उपकार में लगा दिया जाता है तो इससे उसका कल्याण होता है। उसके खतरों को उससे यदि दूर कर दिया जाता है तो प्रजा का संचित धन बढ़ता और शुद्ध होता है। देश उन्नति करता एवं समृद्ध होता है। जमाने में खुशहाली फैलती है और सम्मान एवं लाभ के मार्ग खुलते हैं। तुम्हारा खजाना इस्लाम के प्रचार एवं मुसलमानो के उपकार में व्यय हो। तुमसे पूर्व जो "अमीरुल मोमिनीन" हुए हैं उनके समय के अधिकारियो का पूरा-पूरा ध्यान रखो। उनको जो प्राप्त हो रहा हो उसमें कमी मत करो। उनकी तथा उनकी आर्थिक दशा की देखभाल रखो। यदि तुमने ऐसा किया तो वर्त्तमान समृद्धि स्थायी रूप से चलती रहेगी और अल्लाह की ओर से अधिक-से-अधिक देन प्राप्त होती रहेगी। तुम सुगमतापूर्वक खराज एवं प्रजा की अन्य धन-सम्पत्ति वसूल कर सकोगे। जब सबकी गरदनें तुम्हारे न्याय एवं उपकार के कारण झुकी होंगी तो वे तुम्हारे दास हो जायेंगे। जो कुछ तुम चाहोगे उसे वे प्रसन्नतापूर्वक करेंगे।

संक्षेप में इन सब उचित बातों में जो सीमाएं हमने निर्धारित कर दी है उन पर दृढ़तापूर्वक जमे रहो। उनसे अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करो। यह भली-भाँति जान लो कि स्थायी वही धन है जो ईश्वर के मार्ग में व्यय किया जाय। कृतज्ञ लोगों का अधिकार पहचानो और उन्हें वह दे दो। देखो, संसार एवं उसकी समृद्धि तुम्हें परलोक के भयंकर दंड से असावधान न बना दे और तुम अपने कर्त्तव्यों के पालन में शिथिलता एवं काहिली न करने लगो। कारण

१. क़ुरान शरीफ़ से उद्धृत।

कि शिथिलता कर्त्तव्य-पालन में बाधक होती है, जिससे हर प्रकार के कष्ट सिर पर आ जाते हैं। जो कार्य करो अल्लाह के लिए करो और उसी से पुण्य की आशा रखो, कारण कि ईश्वर तुम्हारा अत्यधिक उपकार करता है। उसकी देनों के प्रति कृतज्ञ रहो और लेश मात्र न डगमगाओ। अल्लाह तुम्हारे प्रति अपनी दया एवं देन में वृद्धि कर देगा। अल्लाह की यह आदत है कि वह अपने कृतज्ञ बन्दों की कृतज्ञता के अनुसार उनके उपकार में वृद्धि करता रहता है। किसी पाप को साधारण न समझो। किसी ईर्ष्यालु की ओर ध्यान न दो। किसी दुराचारी पर दया मत करो। किसी कृतघ्न से मेल न करो। किसी शत्रु की उपेक्षा न करो। किसी चुगली करनेवाले को सच्चा न समझो। किसी विश्वासघाती पर भरोसा न करो। किसी व्यभिचारी से मित्रता मत करो। किसी मार्गभ्रष्ट का अनुसरण मत करो। धूर्त की प्रशंसा मत करो। किसी मनुष्य को क्षुद्र मत समझो। किसी भिखारी को कुछ दिये बिना वापस मत करो। झूठी बात को अच्छी दृष्टि से मत देखो। विद्वेषकों की ओर ध्यान न दो। विश्वासघात, अभिमान एवं क्रोध से कार्य न लो। किसी की आशाएँ भंग न करो। अकड़कर न चलो। परलोक सुधारने में कोई कमी न करो। चुग़ली खानेवाले की ओर आँख उठाकर भी न देखो। किसी अत्याचारी की, उससे भयभीत होने के कारण उपेक्षा मत करो। परलोक का पुण्य इस लोक में न माँगो।

फ़क़ीहों[1] से परामर्श करो। अपने आपको धैर्य का अभ्यस्त बना लो। अनुभवी लोगों, बुद्धिमानों एवं विवेकपूर्वक कार्य करनेवालों से कुछ सीखो। अपने परामर्श में विलासियों एवं कृपणों को सम्मिलित न होने दो, न उनकी बात सुनो, कारण कि उनके द्वारा जो हानि पहुँच सकती है, वह लाभ से अधिक है। याद रखो कि कृपणता से बढ़कर प्रजा के कार्यों में शीघ्र ख़राबी पैदा करने-वाली कोई आदत नहीं। भली-भाँति समझ लो कि जब तुम लोभी होगे तो अधिक लोगे, कम दोगे। जब तुम्हारी यह दशा होगी तो तुम्हारे काम बहुत ही कम बनगे और अधिकांश बिगड़ेंगे। कारण कि प्रजा तुम्हारे प्रति उसी समय तक स्नेह करती रहेगी जब तक तुम इसकी धन-सम्पत्ति को हानि न पहुँचाओगे और अत्या-चार न करोगे। अपने सच्चे मित्रों के प्रति दयापूर्ण व्यवहार करो और दान-

१. फिकह-वेत्ताओं।

पुण्य करते रहो। कृपणता से बचते रहो, इसलिए कि कृपणता ही वह पहला पाप है जिसमें मनुष्य ईश्वर की अवज्ञा करता है। पापी की मित्रता वैसी ही है जैसी कि अग्नि एवं उसकी लौ की। ईश्वर का आदेश है कि जो लोग कंजूसी से बचते हैं, उनका उपकार होगा, अतः उचित अवसरों पर दान करो। समस्त मुसलमानों का भला करो और विश्वास रखो कि मनुष्य के कार्यों में दान-पुण्य को बहुत ही ऊँचा स्थान प्राप्त है, अतः दान-पुण्य की आदत डालो। उस पर आचरण करो और उसी को अपना धार्मिक विश्वास समझो।

सेना के कार्यालयों एवं पदों की जाँच पड़ताल करो। उनको दिल खोलकर रोज़ी दो। उनके वेतन में वृद्धि करो। इससे ईश्वर उनकी दरिद्रता एवं बुभुक्षा को भी दूर करेगा और तुम्हारे काम भी उनसे खूब निकलते जायेंगे। वे सच्चे हृदय से एवं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी आज्ञा पालन करेंगे। बादशाह के लिए यह क्या कम सौभाग्य की बात है कि वह अपनी सेना एवं प्रजा पर दया एवं कृपा करता हो, उनसे न्याय-पूर्वक व्यवहार करता हो और दान-पुण्य का हाथ उन पर खोले रहता हो। जब अच्छाई एवं बुराई के विषय में तुम्हें ज्ञान प्राप्त हो जाय तो राजनीति के उत्तम पहलुओं को अपनी दृष्टि के समक्ष रखो और उन पर आचरण करो। बुराई से बचते रहो। यदि ईश्वर ने चाहा तो तुम्हें सफलता प्राप्त होगी और तुम्हारा उपकार होगा। यह भी खूब समझ लो कि जहाँ बाह्य साधनों से सफलता नहीं मिलती, वहाँ केवल ईश्वर की कृपा से सफलता प्राप्त हो जाती है, कारण कि संसार में वही ऐसी तराज़ू है जिससे लोगों की कृतियाँ तोली एवं परखी जाती हैं। कर्म एवं निर्णय में न्याय पर ध्यान रखना प्रजा की दशा सुधार देता है। मार्गों पर शान्ति हो जाती है। पीड़ित को न्याय प्राप्त हो जाता है। लोग अपने-अपने अधिकार प्राप्त करते हैं। जीवन सँवरता है। ईश्वर की ओर से शान्ति प्राप्त होती है। धर्म दृढता-पूर्वक स्थापित रहता है। सुन्नत एवं इस्लामी शरा का पालन होता है। ईश्वर के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करो। उपद्रव से बचते रहो। सहसा करने की आदत मत डालो। अशांति, चिंता एवं परेशानी को पास न आने दो। अपने भाग्य से संतुष्ट रहो। अपने अनुभव से लाभ उठाओ। तुम्हारा मौन रहस्यमय हो। तुम्हारी वार्ता सीधी-सच्ची हो। शत्रु के साथ न्याय करो। संदेह के अवसर पर खूब सोच-समझ लो। दलीलों एवं प्रमाणों पर भली-भाँति ध्यान दो। प्रजा के कार्यों में किसी की मित्रता एवं रवादारी की परवाह न करो। किसी निन्दा करनेवाले की निंदा का भय मत करो। सहनशील

रहो। धैर्य धारण करो। सोच-विचार से काम लो। देखो, सोचो, समझो एवं शिक्षा ग्रहण करो। अपने ईश्वर के समक्ष झुको।

अपनी प्रजा से प्रेम रखो। हत्या कराने में शीघ्रता से कार्य न करो, कारण कि किसी की अकारण हत्या करा देना ईश्वर के निकट बहुत बड़ा पाप है। खराज की पूरी देख-भाल रखो। प्रजा की कमर उसी से मजबूत होती है। अल्लाह ने उसे इस्लाम के लिए सम्मान एवं समृद्धि का साधन बनाया है, खराज के स्वामियो को उसके द्वारा समृद्धि एवं प्रतिरक्षा की शक्ति प्रदान की है। ईश्वर एवं मोमिनों के शत्रुओं के लिए उसे जलने एवं कुढ़ने का साधन बनाया है। उसको काफिर शत्रुओं के अपमान का जरिया बनाया है। अतः अपने सहचरों में उसे बाँटते समय न्याय एवं बराबरी के सिद्धांत को अपनी दृष्टि के समक्ष रखो। किसी शरीफ़ को उसकी शराफ़त, किसी धनी को उसकी धन-सम्पत्ति, किसी कातिब को उसकी किताबत के कारण अथवा किसी विश्वासपात्र को उससे वंचित न करो। किसी पर इतना बोझ न लादो जिसे वह सहन न कर सके। सबको न्यायपूर्वक अपने-अपने स्थानों पर बनाये रखो। इससे वे शान्ति के साथ रहेंगे और प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे।

खूब समझ लो कि जबसे तुम वाली बने हो, तुम सबके खजांची भी हो, रक्षक एवं आश्रयदाता भी हो। जो लोग तुम्हारे अधीन हैं उन्हें रैयत इसी कारण कहा गया है कि तुम उनके लिए गड़रिये के समान हो। जो धन उनकी आवश्यकता से अधिक हो और उसमें से जो कुछ वे तुमको दें, वह लो और उसको उन्हीं के कार्यों के ठीक करने एवं उन्हीं के उपकार में व्यय करो। उन पर ऐसे लोगों को शासक एवं हाकिम नियुक्त करो जिनमें विवेक हो, जो अनुभवी एवं ज्ञानी हो, शासन-प्रबंध एवं राजनीति से भली-भाँति परिचित हों, क्रियात्मक दृष्टि से भी कुशल एवं अनुभवी हों। उनके लिए रोजी के द्वार खोल दो। राज्य की ओर से जिन कर्त्तव्यो का तुम्हें पालन करना चाहिए, उनकी व्यवस्था करना तुम्हारा ही उत्तरदायित्व है। इनमें उपर्युक्त विषयों को बड़ा महत्त्व प्राप्त है, अतः कोई कार्य एवं व्यस्तता तुम्हें इस कार्य से न रोके। यदि तुमने इसका निर्धारण कर लिया और उसको भली-भाँति सम्पन्न कर लिया, तो तुम अपने ईश्वर की ओर से अधिक देन के पात्र बनोगे। तुम्हारे कार्य चलते चले जायँगे। प्रजा तुम पर प्राण न्योछावर करेगी और तुम्हें पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त होती रहेगी, फलतः तुम्हारा नगर समृद्ध एवं धनधान्य-सम्पन्न हो जायगा। उसकी सीमा का

विस्तार बढ़ेगा, खराज में वृद्धि होगी और फिर इससे तुम्हारी सेना की हालत भी सुधर जायगी। साधारण लोग तुमसे प्रसन्न रहेंगे, कारण कि तुम्हारे द्वार उन पर धन-सम्पत्ति की वर्षा होगी। शत्रु भी तुम्हारी राजनीति एवं तुम्हा न्याय का गुणगान करेंगे। संक्षेप में तुम्हारे प्रत्येक कार्य में न्याय दृष्टिगत होग और शक्ति दिखाई पड़ेगी, अतः बड़ी रुचि एवं साधना से इस शिक्षा पर आचरण करो और इसे हर चीज से अधिक महत्व दो। ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारे कार्य का अच्छा फल मिलेगा।

अपने राज्य के प्रत्येक नगर में एक अमीन[1] नियुक्त करो, जो तुम्हा आमिलों[2] के आचरण एवं कार्यों से तुम्हें ऐसा अवगत रखे मानो तुम अपने प्रत्येक आमिल के कार्य को स्वयं देख रहे हो। अपने आमिलों को जो भी आदेश दो उसे भली-भाँति सोच लो। यदि उसमें लोगों की कुशलता एवं उपकार पाओ और उससे कोई कष्ट टलता एवं कुछ भला होता हुआ देखो, तो उसे जारी करो अन्यथा आदेश को रोके रखो। बुद्धिमान् लोगों से इसके विषय में परामर्श करो। फिर जो बात निश्चय हो वह करो। कभी-कभी ऐसा होता है कि मनुष्य एक बात को सोचता है, तौलता है और फिर अपने मतानुसार उस पर आचरण करता है, किन्तु उसमें धोखा दृष्टिगत होता है। अतः यदि परिणाम पर दृष्टि न रखी जाय तो विनाश का सामना करना पड़ता है और कार्य अलग बिगड़ता है अत. जिस बात का संकल्प करो उसमें अपनी पूरी समझ से काम लो और फि ईश्वर से सहायता माँगते हुए पूरी शक्ति एवं भरोसे से उसमें लग जाओ। अप समस्त कार्यों में इस्तिखारा किया करो। आज का काम आज ही कर लो। उसको कल पर न छोड़ो। कार्य स्वयं करो। आज का काम यदि तुमने कल पर टाल तो कल के लिए पृथक् कार्य होंगे जो टाले हुए कार्य को न करने देंगे। यदि दोनों कार्य करोगे तो थककर रुग्ण हो जाओगे। जब हर रोज का काम रोजाना कर लो तो शरीर को भी सुख प्राप्त होगा, हृदय को भी शान्ति मिलेगी और तुम्हार शक्ति भी बनी रहेगी। जिन शरीफ तथा सम्मानित व्यक्तियों के स्वभाव ए चरित्र की जाँच-पड़ताल कर चुको और जो तुम्हारे प्रति स्नेहपूर्वक व्यवहा करें और तुम्हें उचित परामर्श दें, तुम्हारे कार्यों की देख-भाल करें तो अपन

१. विश्वस्त अधिकारी।
२. पदाधिकारियों।

मित्रता के लिए उन्हें छाँट लो। उनका उपकार करो और उन पर दया की वर्षा करो। उनमें से आवश्यकता-ग्रस्त लोगों की आवश्यकता पूरी करो। उनके बोझ को स्वयं वहन करो। उनका सुधार करो, ताकि उन्हें किसी अन्य मित्र की आवश्यकता न रहे। दीन, निर्धन तथा ऐसे निःसहाय लोगों की, जो अपनी फ़रियाद तुम तक न पहुँचा सकें, अथवा उन लोगों की, जिन्हें अपने अधिकारों का स्वयं ज्ञान न हो देख-रेख में पूरी शक्ति लगा दो। तुम्हारी प्रजा में से जो लोग सदाचारी हों उनको इस कार्य हेतु नियुक्त करो कि वह इस प्रकार के निर्धनों की आवश्यकताएँ तुम तक पहुँचायें, ताकि तुमको उनके उपकार का अवसर प्राप्त हो सके।

अनाथों, विधवाओं और दुखी लोगों का पता लगाओ। 'अमीरुल मोमिनीन" के आचरणानुसार बैतुल माल से उनकी वृत्ति निश्चित करो ताकि, उन पर ईश्वर की दया प्रदर्शित हो सके। इससे ईश्वर उनके जीवन को भी सुखी कर देगा और तुम्हारी धन-सम्पत्ति में भी वृद्धि करेगा। अंधों एवं अपाहिजों के लिए बैतुल माल से वृत्तियाँ निश्चित करो। वृत्तियों की सूची में "हाफ़िज़ों"[1] को प्राथमिकता प्रदान करो। उन्हें अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक वृत्ति दो। मुसलमान रोगियों के लिए चिकित्सालय खोलो। रोगियों के लिए दयाभाव रखनेवाले सेवक एवं कुशल चिकित्सकों का प्रबंध करो जो उनका सच्चा उपचार करें। उनकी आवश्यकताओं की व्यवस्था करो, किन्तु इस बात का ध्यान रखो कि बैतुल माल पर अपव्यय का बोझ न पड़ने पाये, कारण कि जब लोगों के अधिकार एवं उनकी बड़ी-से-बड़ी इच्छाएँ पूरी कर दी जाती हैं तो वे इस पर भी प्रसन्न नहीं होते और जब तक अपने वालियों के समक्ष अपनी आवश्यकताओं का वर्णन न करें, संतुष्ट नहीं होते। उन्हें और अधिक प्राप्त करने तथा अधिक उदारता का सर्वदा लोभ रहता है। कभी-कभी लोगों की ओर से उचित एवं अनुचित प्रार्थनाएँ इतनी अधिक संख्या में होती हैं कि अधिकारी वर्ग थककर परेशान हो जाता है। जो व्यक्ति न्याय की ओर इस कारण प्रेरित होता है कि वह उसका लाभ इस लोक में एवं पुण्य परलोक में पाये, तो वह उस व्यक्ति की तुलना में, जो केवल ईश्वर के निकट पहुँचने के लोभ एवं उसकी दया की अभिलाषा से न्याय करता है और इसके अतिरिक्त उसका कोई उद्देश्य नहीं होता, बराबर तो क्या, कम ही होता है।

१. जिन्हें पूरा क़ुरान शरीफ़ कंठस्थ होता है।

लोगों को अपने समक्ष उपस्थित होने की आम अनुमति दो और उनसे बेरोक-टोक खुलकर मिलो। उनसे मिलते समय अपने होश-हवास ठीक रखो। उनके समक्ष नम्र बने रहो और प्रसन्नचित्त रहो। प्रश्नोत्तर एवं वार्तालाप में मीठे बोल बोलो। दान-पुण्य से उन्हें लाभ पहुँचाओ। जब लोगों को कुछ देना चाहो तो दिल खोलकर एवं प्रसन्नचित्त होकर प्रदान करो। केवल नैतिक दृष्टिकोण एवं पुण्य का ध्यान रखो। उनको असंतुष्ट न करो, न उन पर एहसान जताओ, कारण कि यह ऐसा लाभदायक व्यापार है जो ईश्वर ने चाहा तो लाभ पहुँचाकर रहता है। प्राचीन काल में तथा प्राचीन कौमों में जो सुल्तान एवं अमीर हुए हैं उनके इतिहास से शिक्षा ग्रहण करो। फिर अपनी समस्त बातों में केवल अल्लाह पर ही भरोसा रखो। उससे प्रेम का सम्बन्ध रखो। उसकी भेजी हुई शरीअत एवं मुहम्मद साहब की सुन्नत का पालन करो। उसके दीन एवं उनकी किताब का संसार में प्रचार करो। उनके विरुद्ध ऐसे कार्य कदापि न करो जो ईश्वर के क्रोध को भड़काएँ।

तुम्हारे आमिल जो धन एकत्र करते हैं और जो कुछ व्यय करते हैं, उसकी देख-भाल रखो कि वह धन कहाँ-कहाँ से आता है और कहाँ-कहाँ चला जाता है। तुम न हराम कमाई करो और न अपव्यय। आलिमों की गोष्ठियों में अधिक उठा-बैठा करो। उनकी परामर्श-गोष्ठियों एवं सभाओं में सम्मिलित हुआ करो। तुम्हारे मित्र ऐसे होने चाहिए कि यदि वे तुममें कोई दोष पायें तो तुम्हें उसकी सूचना देने में तुम्हारा आतंक उनको न रोक सके, अपितु गुप्त रूप से अथवा खुल्लम-खुल्ला वे तुमको टोकें और तुम्हारी त्रुटियों को बतायें। तुम्हारे इस प्रकार के मित्र वास्तव में तुम्हारे हितैषी एवं शुभचिंतक होंगे। अपने आमिलों एवं कातिबों के कार्य की देख-भाल रखो। उनमें से प्रत्येक के लिए विशेष समय निश्चित कर दो ताकि वे उस समय सल्तनत एवं प्रजा की समस्त बातें तुम्हारी सेवा में प्रस्तुत करें और तुमको पढ़कर सुनायें। तुम उस समय पूर्ण रूप से सावधान होकर बैठो और जो बातें प्रस्तुत हों उन पर बार-बार गौर करो। उनके विषय में पूर्ण विचार करके संतुष्ट हुआ करो। तुम जो भी उपकार करो उसका कोई एहसान न प्रजा पर जताओ और न किसी अन्य पर। किसी से निष्ठापूर्वक व्यवहार के अतिरिक्त कुछ आशा मत करो। संयम से कार्य करो और मुसलमानों के कार्यों में उनकी सहायता करते रहो। इसी उद्देश्य से दया एवं उपकार के कार्य करो।

मेरे इस पत्र पर ग़ौर करो और इसकी शिक्षाओं पर सदा आचरण करो। अपने समस्त कार्यों में अल्लाह पर भरोसा रखो और उसी से कुशलता एवं भलाई की इच्छा करते रहो, कारण कि ईश्वर सदाचारियों का सर्वदा साथ देता है। तुम्हारी सबसे बड़ी इच्छा यह हो कि ईश्वर तुमसे संतुष्ट रहे। धार्मिक शासन संसार में स्थापित हो। धर्मनिष्ठ लोगों को सम्मान प्राप्त हो। काम में न्याय, सदाचरण एवं सच्चरित्रता का संचार हो। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि ईश्वर तुम्हारी सहायता करे, तुम्हारे प्रति दया का व्यवहार करे और तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करे एवं तुम्हें भाग्यशाली बनाये।"

इतिहासकारो का कथन है कि जब यह पत्र प्रकाशित हुआ तो लोगों को बड़ा पसन्द आया। जब यह मामून के समक्ष पढ़ा गया तो मामून ने कहा कि वास्तव मे ताहिर ने कोई बात नही छोड़ी जिसके विषय में शिक्षा न दी हों। सांसारिक, धार्मिक, देश एव प्रजा सभी के उपकार के उपाय वताये है। सल्तनत एव खिलाफत की स्थापना, रक्षा के नियम एवं खलीफाओ की आज्ञाकारिता, सभी बातों पर ज़ोर दिया है। फिर मामून के आदेशानुसार उसकी प्रतियाँ सभी दिशाओ के आमिलो के पास इस आशय से भेजी गयी कि वे इसका अक्षरश. पालन करें और इसकी शिक्षाओ के अनुसार आचरण करें।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इस पत्र से बढ़कर राजनीति के सिद्धान्तो की शिक्षा देने-वाला कोई अन्य लेख नही है।

(५२) इमाम महदी, उनके विषय में लोगों के विचार एवं महदवियत की वास्तविकता

शताब्दियो से मुसलमानो में यह भविष्यवाणी प्रचलित है कि ससार के अन्तिम काल में "अहले बैत"[1] से एक ऐसा व्यक्ति संसार में पैदा होगा जो ईश्वर के दीन को ससार में स्थापित करेगा, न्याय फैलायेगा, मुसलमान उसका साथ देंगे और वह समस्त इस्लामी राज्यो को अपने अधिकार में कर लेगा। उसका नाम महदी होगा। फिर महदी के वाद दज्जाल[2] आयेगा एवं कयामत के अन्य चिह्न दृष्टिगत होगें। जैसा कि

१. हज़रत मुहम्मद के घर के लोग।

२ वह झूठा, जो कयामत के पूर्व खुदा होने का दावा करेगा। कहा जाता है कि वह काना होगा।

प्रामाणिक हदीसो में उल्लेख है, हज़रत ईसा उतरेंगे और दज्जाल की हत्या करेंगे। अथवा हज़रत ईसा भी हज़रत महदी के साथ प्रकट होंगे और दज्जाल की एक-दूसरे की सहायता से हत्या करेंगे। हज़रत ईसा इमाम महदी के पीछे नमाज़ पढ़ेंगे। इन विश्वासों के सम्बन्ध में मुसलमान उन हदीसो से प्रमाण प्रस्तुत करते है जिनको हदीस के विद्वान् उद्वृत करते है। जिनका इसके विरुद्ध विश्वास है वे इन हदीसो में सदेह प्रकट करते है और कुछ हदीसें इसके विरुद्ध बताते है। पिछले युग के सूफी लोग इमाम महदी के प्रकट होने की समस्या का अन्य प्रकार से समाधान करते है। उनके तर्क का नियम और ही है। वे इसमें कश्फ[1] से कार्य लेते है जो उनका मूल नियम है।

अनेक आलिमो ने महदी के विषय में हदीसें प्रस्तुत की है, जिनमें तिरमिज़ी,[2] अबू दाऊद,[3] अल-बज्ज़ार,[4] इब्ने माजह,[5] अल-हाकिम,[6] अत्तबरानी,[7] अबू यला अल मौसिली[8] प्रमुख है।......[9]

१ सूफियो की वह शक्ति जिससे वे गुप्त बातो का ज्ञान प्राप्त कर लेते है।

२. मुहम्मद बिन ईसा "तिरमिज़ी" की मृत्यु २७९ हि० (८९२ ई०) में हुई।

३ सुलेमान बिन अल अशऊद २०२–२७५ हि० (८१७–१८–८८९ ई०)। उनकी रचना का नाम सुनन है।

४ अहमद बिन अमर अल-बज्ज़ार की मृत्यु २९२ हि० (९०४–५ ई०) में हुई। उनकी रचना का नाम मुसनद है।

५ मुहम्मद बिन यज़ीद २०९–२७३ हि० (८२४–२५–८८७ ई०)। उनकी रचना का नाम सुनन है।

६ अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह अल-हाकिम अन्-नीशापूरी, ३२१–४०५ हि० (९३३–१०१४ ई०)। उनकी रचना का नाम मुस्तदरक है।

७. सुलेमान बिन अहमद अत्तबरानी, २६०–३६० हि० (८७३–९७१ ई०)।

८ अहमद बिन अली अबू यला यला मौसिली की मृत्यु ३०७ हि० (९१९–२० ई०) में हुई।

९. इसके उपरान्त हदीसो का उल्लेख है जिनका अनुवाद नहीं किया गया। हदीसो के उपरान्त सूफियो के मतो की भी चर्चा की गयी है। इसका अनुवाद भी छोड़ दिया गया है।

(५३) सल्तनत एवं कौमों का अभ्युदय
तथा
भविष्यवाणियाँ एवं जफ़र[1]

मानव की यह स्वाभाविक विशेषता है कि उसे अपने कार्यो के परिणाम की चिंता रहती है और वह अपने जीवन एव मृत्यु के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया करता है। भविष्य में घटनेवाली अच्छी-बुरी घटनाओ की जानकारी में उसे बड़ी रुचि होती है। उदाहरणार्थ, वह पता लगाया करता है कि ससार का जीवन-काल अब कितना रह गया है ? सल्तनतें अपना प्रभुत्व कब तक स्थापित रख सकेंगी ? उनमें से सबसे पहले कौन-सी सल्तनत समाप्त होगी और बाद में कौन-सी ? सक्षेप में इन बातों की खोज मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, इसी कारण आप अनेक लोगो को देखेंगे कि वे स्वप्न द्वारा भविष्य में घटनेवाली घटनाओ के परिणाम का पता लगाने का प्रयत्न किया करते हैं। यह बात तो हम साधारणत. देखा ही करते हैं कि बादशाह एवं सर्वसाधारण भी काहनों[2] के पास जा-जाकर भविष्य की घटनाओ का पता लगाया करते हैं। यही कारण है कि बड़े-बड़े नगरो में कुछ लोग भविष्यवाणी के व्यवसाय द्वारा रोज़ी कमाते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें ज्ञात है कि लोगो की इसमें बड़ी दिलचस्पी होती है, फिर वे इसे जीविकोपार्जन का साधन क्यो न बनायें। वे काहन मार्गों में बैठ जाते हैं अथवा दूकानें लगा लेते हैं और उनसे जो प्रश्न किया जाता है, उसका उत्तर देने के लिए उद्यत रहते हैं। अत स्त्रियो, बालको एव मूर्खो की प्रात.काल से सायकाल तक उनके पास भीड लगी रहती है। एक आता है और एक जाता है। कोई अपनी कमाई एव पद के विषय में पूछता है तो कोई अपनी आर्थिक एव सामाजिक समस्याओ के विषय में प्रश्न करता है। कोई शत्रुता एव मित्रता की समस्याओ का समाधान चाहता है।

जो इन प्रश्नो का उत्तर रमल[3] के चिह्नो से देते हैं उन्हे मुनज्जिम (ज्योतिषी) कहा जाता है, जो लोग छोटे-छोटे ककड़ो एव अनाज के दानो से भविष्यगणना करते हैं,

१ भविष्यवाणी की एक विधि।

२. शकुन विचारनेवाले।

३. शून्य की बिन्दियो द्वारा भविष्यवाणी की एक विधि।

उन्हें "हासिब"[1] कहते हैं। दर्पण अथवा जल देखकर भविष्यवाणी करनेवाले 'ज़ारि-बुल मन्दल'[2] कहलाते हैं।....[3]

१ हिसाब लगानेवाले।

२. वृत्त खींचनेवाले।

३. इसके उपरान्त भविष्यवाणी के विभिन्न नियमों एवं इस्लामी सल्तनतों की अवस्था के विषय में भविष्यवाणियों की चर्चा की गयी है।

अध्याय ४

देश एवं नगर

नगर सम्बन्धी सभ्यता की विभिन्न क़िस्में, नगरों की दशा, उसका विवेचन

(१) सल्तनत का अभ्युदय नगर एवं आबादियों के पूर्व होता है

बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतो एव भव्य भवनो का निर्माण सभ्यता एवं संस्कृति का ही परिणाम होता है। भोग-विलास तथा आराम-चैन, राज्य की खुशहाली एवं समृद्धि के द्योतक होते हैं। इसका प्रमाण हम पिछले पृष्ठो मे दे चुके है। सस्कृति अपना यह प्रभाव उस समय जमाती है जब "बदवियत" एव उसकी आवश्यकताओं का युग समाप्त हो चुकता है और शहर का जीवन उसका स्थान ले चुकता है। उस समय तक कोई शक्तिशाली सल्तनत स्थापित हो चुकती है। इसके अतिरिक्त शहरो एव नगरो का तात्पर्य उन्ही वस्तियो से होता है जिनमें सब लोगो के लिए न कि विशेष लोगो के रहने-बसने के लिए, बड़े-बड़े भवन हो। यह बात उसी समय सम्भव है जब कि लोग बड़ी सख्या में मिल-जुलकर रहें और एक दूसरे की सहायता करें। किसी एक व्यक्ति अथवा छोटे-से समूह द्वारा यह सम्भव नही कि वह ऐसे भवन बना ले। फिर यह कार्य उन परमावश्यक कार्यों में नही आता जिनके करने के लिए मनुष्य स्वाभाविक रूप से वाध्य होता है। यह जरूरी नही कि वह बिना किसी दवाव के ऐसी वस्तियो के बसाने में व्यस्त हो जाय। वास्तविक वस्तुस्थिति तो यह है कि सल्तनत अपने दबाव, धौंस और राज्य की शक्ति द्वारा साधारण लोगो से निर्माण कार्य कराती है। अधिक से अधिक मजदूरियाँ देकर भव्य भवनो का निर्माण कराया जाता है और इस प्रकार एक शानदार नगर बस जाता है। यह बात स्पष्ट है कि अधिक से अधिक मजदूरियाँ देना अथवा जबरदस्ती काम लेना सल्तनत एवं राज्य द्वारा ही सम्भव है। अत. यह भी स्पष्ट है कि नगर बसाने एव बड़ी-बड़ी इमारतो के निर्माण के लिए सल्तनत का अस्तित्व अनिवार्य एव अपरिहेय होता है।

नगरो को बसाने के इच्छुक शासन एव सल्तनत के दृष्टिकोण तथा अध्यवसाय के अनुसार और दैवी घटनाओ के अधीन जब नगर बसकर पूर्ण हो जाता है तब उसकी परिस्थितियाँ एव जीवन-अवधि सल्तनत की जीवन-अवधि से सम्बन्धित होती है। वे उसी के साथ चलतीं और समाप्त होती हैं। यदि सल्तनत का जीवन काल कम होता है और कुछ दिन जमने के वाद वह समाप्त होने लगती है तो वसा-बसाया नगर भी उजडना प्रारम्भ हो जाता है और वहाँ विनाश एवं शोक का वातावरण छा जाता है।

यदि सल्तनत की आय अधिक होती है तो नगर की समृद्धि भी दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति करने लगती है। बड़े-बड़े कारखाने खुलते है। लम्बे-चौड़े भव्य भवनो का निर्माण होता है। नित्यप्रति उनकी सख्या बढती है। खुले बाज़ार बन जाते है। चौड़े मार्ग बनाये जाते है। यहाँ तक कि मीलो के क्षेत्रफल में चमकीला, दमकीला नगर बस जाता है। बगदाद सरीखे भव्य नगरो का उदाहरण हमारे समक्ष है।

ख़तीब बगदादी[1] ने अपने इतिहास में लिखा है कि मामून के राज्यकाल में बगदाद में ६५,००० स्नानागार थे। चालीस से अधिक आबादियाँ मिलकर बगदाद नगर बसा था और उसकी जन-सख्या इतनी अधिक हो गयी थी कि वह किसी चहारदीवारी में न घेरी जा सकती थी। इस्लाम के प्रारम्भ में कैरवान, करतबा एव महदिया की आबादियाँ ऐसी ही फैल गयी थी। उनके उपरान्त काहिरा का ऐश्वर्य एव गौरव भी इतना बढ गया था। कभी-कभी नगर बसानेवाली सल्तनतें नष्ट हो जाती है, किन्तु जो पर्वत एव मैदान नगर को घेरे होते हैं, वे उसकी सभ्यता के अन्त.-प्रवाह के साधन बन जाते हैं। इस प्रकार नगर राज्य के समाप्त हो जाने के उपरान्त भी जीवित रहता है और बाहरी स्थानो से अपनी जनसंख्या की कमी पूरी कर लेता है। मगरिब में फास (फेज़) एव बजाया तथा पूर्व में इराक और अजम के नगर इसी प्रकार अपनी आबादी को सुरक्षित रख सके और उनके आस-पास की बस्तियो ने उनकी जनसख्या को गिरने नहीं दिया। इसका कारण यह है कि बदवी लोगो की आदत होती है कि जब वे लोग समृद्धि एवं सुख सम्पन्नता की हालत में प्रवेश करते है तो सुख-चैन एव नाज़ व नेमत के जीवन के आदी हो जाते है और नगरो में जाकर बस जाते हैं तथा स्थायी रूप से वही निवास करना प्रारम्भ कर देते है। अब यदि इस बसे हुए नगर के इर्द-गिर्द बदवी बस्तियाँ नही हैं अथवा कम है तो सस्थापिका सल्तनत का विनाश नगर की वीरानी एव विनाश का द्योतक होता है। इधर वह सल्तनत मिटी, उधर उस नगर की आबादी घटनी प्रारम्भ हुई। यहाँ तक कि उसके निवासी तितर-बितर हो जाते हैं और एक भरा-पूरा नगर एकदम उजाड़ नजर आता है। मिस्र बग़दाद, कूफा, कैरवान, महदिया तथा बनी हम्माद इत्यादि के किलो की यही दशा हुई।

कभी-कभी ऐसा होता है कि सस्थापिका सल्तनत के समाप्त होने के उपरान्त तुरन्त ही कोई दूसरी सल्तनत उसका स्थान ले लेती है और उस नगर को अपनी राजधानी बना लेती है। उस सल्तनत का विचार यह होता है कि जब एक बना-बनाया

१ सम्भवतः अल-ख़तीब-अल बग़दादी, 'तारीख़े बग़दाद' का लेखक।

तथा बसा-बसाया नगर प्राप्त हो रहा है, तो उसे नया नगर बसाने की आवश्यकता ही क्या है ? इस दशा में उस नगर को और भी रौनक प्राप्त हो जाती है और उसकी रौनक को चार-चाँद लग जाते हैं। घर बहुत बडी संख्या में बनते हैं, कारखाने खुलते हैं। सक्षेप में, नया राज्य जैसे-जैसे उन्नति करता है नगर भी अपना रंग-रूप बदलता है, मानो नया जीवन प्राप्त करता हो। फास और क़ाहिरा के शहर इसी तरह उन्नत हुए हैं।

(२) सल्तनत की स्थापना के पश्चात् सल्तनतें नगरों में पाँव जमाना चाहती हैं

जब किसी कौम को प्रभुत्व प्राप्त होता है तो वह आस-पास के नगरो पर अधिकार प्राप्त करने के लिए विवश होती है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि सल्तनत स्थापित होने पर लोगो में आराम की आदत एवं विलास-प्रियता बढ जाती है और वे अपने कार्य-भार को हलका करने की चिन्ता करने लगते हैं। सभ्यता की जो आवश्यकताएँ अपूर्ण एव अधूरी रहती हैं, उनकी पूर्ति भी सल्तनत करना चाहती है। संक्षेप में ये आवश्यकताएँ एव उद्देश्य नगर में ही पूरे हो सकते हैं, अतः सल्तनत नगर में ही अपने पाँव जमाना चाहती है। दूसरा कारण यह है कि नगरो पर अधिकार कर लेने के उपरान्त शत्रुओ का खटका मिटता है,कारण कि सीमा के समीप का नगर कभी-कभी शत्रु के लिए शरण का स्थान बन जाता है। वह उसमें ठहरकर दृढ़तापूर्वक युद्ध करता है। नये राज्य का पौरुषपूर्वक मुकाबला करता है और चाहता है कि नयी शक्ति का नितान्त विनाश कर दे। इस सघर्ष में नगर उसके शत्रु के लिए कवच का काम करता है और उसकी योजनाओ को सहायता पहुँचाता है। तब उस नगर को विजय कर लेना बड़ा कठिन हो जाता है।

नगर में प्रतिरक्षा के साधन बहुत अधिक होते हैं। वहाँ दृढ़ किले तथा चहारदीवारियाँ होती हैं, अत. नगर में रहकर युद्ध करने के लिए थोडी-सी सेना भी बहुत बड़ी सेना का काम देती है। नगर में "असबियत" की आवश्यकता भी अधिक नही होती, कारण कि खुले मैदानो में उनकी आवश्यकता उस समय होती है जब शत्रु टूटकर गिरता है। ऐसी अवस्था में "असबियत" एवं एक दूसरे की सहायता के भरोसे पर ही शत्रु का डटकर मुकाबला किया जाता है। किन्तु नगर में दृढ एवं मजबूत शहरपनाहें "असबियत" तथा सेना के आधिक्य की आवश्यकता बहुत कुछ पूरी कर देती हैं। सक्षेप मे

किले, चहार-दीवारियाँ एव शहरपनाहें खुले मैदान में युद्ध करनेवाली शक्ति का साहस शीघ्र समाप्त कर देती है और उसके प्रभुत्व की योजनाओ को मिट्टी में मिला देती हैं। इन परिस्थिति के कारण नयी सल्तनतो के लिए आस-पास के नगरो का विजय कर लेना अपने जीवित रहने के लिए परमावश्यक होता है ताकि वे इस भय से सदा के लिए मुक्त हो जायें। यदि आस-पास नगर न हो तो सल्तनत को स्वयं नये नगर बसाने की चिन्ता होती है, ताकि सभ्यता की उन्नति हो सके और धन-सम्पत्ति को इधर-उधर लिये फिरने से मुक्ति प्राप्त हो जाय। यह उद्देश्य भी सामने होता है कि यदि कोई "अनबियतवाला" कबीला अथवा समूह उन पर आक्रमण कर दे तो उससे अपनी रक्षा करने के लिए एक दृढ स्थान मिल सके, अत इस वाद-विवाद द्वारा यह सिद्ध होता है कि सल्तनत की स्थापना के उपरान्त नगर में निवास करना एव उस पर अधिकार जमाना परमावश्यक होता है।

(३) बडे-बड़े नगरो एव भव्य भवनों का निर्माण शक्तिशाली सल्तनतें ही करती है

यह हम पहले स्पष्ट कर आये हैं कि नगर की इमारतो, भवनों, एवं गृहो का बड़ा-छोटा होना सल्तनत की शक्ति एव निर्बलता पर निर्भर है। इसका यह कारण है कि नगर का निर्माण मजदूरो, कारीगरो एव मेमारो की अधिकता और बहुतायत पर निर्भर है। जब सल्तनत बडी होती है और उसके इलाके एव सीमाएँ दूर-दूर तक फैली होती हैं तो वह अपने राज्य के आस-पास से मजदूर एव कारीगर अधिक सख्या में एकत्र कर लेती है और वे मिल-जुलकर देखते-देखते भूमि को दृढ भवनो से ढँक देते हैं। कभी-कभी निर्माण-कार्य में नाना प्रकार की मशीनो एव चरखियो आदि से भी काम लेते है। कुछ लोग जब प्राचीन नगरो के आश्चर्यजनक भग्नावशेषो, किसरा के ऐवान, मिस्र के एहरामों, मला (कार्येज) एव शरशाल की मेहरावो आदि को देखते हैं तो आश्चर्यचकित रह जाते है। वे यह सोचने पर विवश होते है कि जैसे विशाल प्राचीन लोगो के ये भव्य भवन है, वैसे सम्भवत उनके डील-डौल भी लम्बे-चौड़े ही रहे होंगे, हालाँकि ऐसा सोचना एक भूल एव गलती है और उनकी उन मशीनो एव चरखियो के प्रयोग से परिचित न होने का प्रमाण है जो भूतकाल में उन्होंने भवनो के निर्माण के लिए ईजाद कर रखी थी और जिनकी सहायता से वे इन गगनचुम्बी भवनो का निर्माण कर गये। यदि किसी को विश्वास न हो तो अजम के देशो में जाकर देख ले कि भारी बोझ उठाने के लिए उन्होंने कैसे-कैसे यन्त्रो का आविष्कार किया था।

प्रायः लोग जब भव्य एवं प्राचीन भवनों को देखते है तो कह दिया करते है कि ये आद जाति के बनाये हुए है, कारण कि उन्होने यह धारणा बना ली है कि इस कौम का डील-डौल असाधारण था और यह देवरूपी क़ौम थी, हालाँ कि यह विचार निराधार है। हमको अनेक प्राचीन आश्चर्यजनक भवन ऐसे लोगो के भी मिलेंगे जिनके डील-डौल के विषय में हमें विश्वस्त रूप से ज्ञात है कि वे हम-जैसे ही अथवा हमसे कुछ अधिक डील-डौल के न थे। उदाहरणार्थ, फारस में किसरा का ऐवान, इफरीकिया में उबैदीईन के भवन, वनी हम्माद के कलए में सिनहाजा के भग्नावशेष, कैरवान मस्जिद में अगालबा के भग्नावशेष, रबातुल फतह में मुवह्हेदीन के गगन-चुम्बी भवन, रबाते अबू सईद इत्यादि। इनके निर्माताओ का हाल चाहे वे हमारे युग के समीप के हो और चाहे पहले के, हमें विश्वास के साथ ज्ञात है और हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि वे किसी असाधारण डील-डौल के व्यक्ति न थे। यह केवल कहानी कहनेवालो की कपोलकल्पित बातें है जो उन्होने आद, समूद तथा अमालका जातियो के बारे में गढ़ी है। उदाहरणार्थ, समूद के तराशे हुए पत्थरो के घर उसी रूप में अवतक वर्त्तमान है। प्रामाणिक हदीसो से भी सिद्ध होता है कि ये घर उन्ही के है। हिजाज़ी काफले रातदिन उनकी ओर से गुजरते है और उनको देखते है कि लम्बाई तथा चौडाई में वे साधारण घरो के समान है। वास्तव में इन कौमो के विषय मे मस्तिष्क में गलत धारणाएँ बैठ गयी है और उन धारणाओ के कारण यह निराधार किस्से भी गढ़ लिये गये है। अत. बड़ी-बडी शानदार इमारतें, कारीगरो के डील-डौल की द्योतक नही, अपितु उस सल्तनत के ऐश्वर्य एव वैभव की द्योतक है जिसके राज्यकाल में उनका निर्माण हुआ।

"ईश्वर जो चाहता है वह पैदा करता है[1]।"

(४) बड़े-बड़े भवन एक ही सल्तनत नही बना सकती

इसका कारण वही है जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके है कि भव्य भवनो के निर्माण हेतु बहुसख्यक मनुष्यो का मिल-जुलकर काम करना और पारस्परिक सहयोग से कार्य की मात्रा वढाना नितात आवश्यक है, कारण कि कुछ भवन इतन बड़े होते है कि उनका निर्माण एक अथवा दो या दस-वीस या सौ-पचास मनुष्यो के बस की बात नही होती। बहुत बडी मशीनो से भी यह काम सम्भव नही होता। इसके लिए सैकड़ो की सख्या में मनुष्यो की सगठित शक्ति की आवश्यकता होती

(१) क़ुरान शरीफ से उद्धृत।

है। इसी एक ही सल्तनत के समय में शानदार इमारतो का निर्माण नही होता, अपितु प्रत्येक सल्तनत अपने-अपने शासन काल में निर्माण-कार्य जारी रखती और उसमें वृद्धि करती रहती है। इस प्रकार विभिन्न सल्तनतो के वाद इमारतें पूरी होती है। कार्य एक सल्तनत प्रारम्भ करती है और वाद में आनेवाले राज्य अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उसे आगे वढाते और उच्चतर करते रहते है। यहाँ तक कि कुछ समय में एक आश्चर्यजनक गौरव की वस्तु सवके समक्ष आ जाती है। देखनेवाले समझते है कि यह एक ही सल्तनत अथवा एक ही वादशाह का कारनामा है।

इसके प्रमाण में इतिहास मारिव के वाँध का उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है। इसका निर्माण सवा विन यगजुव ने प्रारम्भ कराया और उसमें ७० नदियो को लाकर मिलाया था, किन्तु पूरा होने के पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गयी। वाद के आनेवाले हिमयरी वादशाहो ने अपनी-अपनी वारी से उसे पूरा कराया। इसी प्रकार करताजना[2] वना और उसकी अद्वितीय नहर एव आद के (पुलो के) मेहराव वहुत अधिक समय में वनकर तैयार हुए। विभिन्न वादशाहो ने अपने-अपने राज्यकाल में उन पर धन-सम्पत्ति व्यय की और अन्त में उसे पूर्ण कर दिया। अधिकाश प्राचीन वडे-वडे भवन इसी प्रकार शनै-शनै वर्तमान रूप धारण कर सके जिसे देखकर हम आश्चर्यान्वित हो जाते है। हम अधिक दूर क्यो जायें। अपने ही युग के वादशाहो को देखिए कि एक वादशाह एक भव्य भवन की नीव डालता है और उसका निर्माण-कार्य उच्च स्तर पर प्रारम्भ करता है, किन्तु यह कार्य उसके जीवन-काल में पूर्ण नही होता। वह उसे अधूरा छोडकर ससार से चल वसता है फिर उसके वाद दूसरे वादशाह उसकी ओर ध्यान नही देते। फलत वह भवन अपूर्ण एव अधूरा रह जाता है।

इस तथ्य को हम एक अन्य प्रकार से सिद्ध कर सकते है। हम वहुत-से भवनो को इतना दृढ पाते है कि सल्तनतें उनका खडन एव विनाश नही करा पाती, यद्यपि तोडना वनाने से और गिराना निर्माण से कही अधिक सरल है, कारण कि 'तोडने से चीज अपने स्रोत अथवा शून्य की ओर जाती है। अत जव उनका एक अथवा कई सल्तनतें खडन नही करा सकती, जो वहुत सरल है, तो उनको एक सल्तनत वना कैसे सकती है? इतिहासो में लिखा है कि जव हारूनुर्रशीद ने किसरा के ऐवान का खडन

१. दक्षिणी-पश्चिमी अरव का एक नगर तथा Sabaean (सावी) वादशाहों की राजधानी।
२. Carthage.

कराना चाहा और इस विषय में यहया बिन ख़ालिद से जो उस समय वन्दीगृह में था, परामर्श किया तो उसने कहा, "अमीरुल मोमिनीन ! ऐसा न कीजिए। इनको इसी दशा में छोड दीजिए। अनन्त काल तक य आपके पूर्वजो के, जिन्होने इस भव्य भवन के निर्माता से राज्य छीना था, ऐश्वर्य एव गौरव के द्योतक रहेंगे।" हारूनुर्रशीद समझा कि, "है तो अजमी ही ! अजम के नाम को बनाये रखना चाहता है" और शपथ लेकर कहा "मै इनका खडन करके रहूँगा।" अत. खडन कार्य प्रारम्भ हुआ और बहुत बडी सख्या में मज़दूर एकत्र कराये गये। इस विचार से कि भवन के जोड खुल जायँ और वह सुगमतापूर्वक टूट-फूट सके, सिरका छिडक कर आग लगा दी जाती थी, किन्तु वह भवन न टूटा। जब हारुनुर्रशीद ने देखा कि वह उसके तुडवाने में असमर्थ है और अब काम अधिक जारी रखने से और भी अपमान होगा तो यहया से पुन. परामर्श किया कि, "क्या भवन इसी प्रकार बिना तुड़वाये छोड दूं ?" तो उसने उत्तर दिया, नही ! अब काम जारी रखिए अन्यथा लोग यह कहेंगे कि देखो अजम के बनवाये हुए भवन का अरब बादशाह अमीरुल मोमिनीन खडन भी न करवा सके।" रशीद समझ गया कि, उसने व्यग किया है, किन्तु वह कर ही क्या सकता था। अत उसको कार्य बन्द कराना पड़ा।

इसी प्रकार की घटना मामून के समय में घटी जब कि उसने मिस्र के एहरामो[1] को ढाना चाहा। उसने बहुत बडी सख्या में मज़दूर एकत्र किये। उन्होने इमारत तोडना प्रारम्भ किया। जब वाहर की दीवार थोडी-बहुत टूट गयी तो भीतर से खाली स्थान दृष्टिगत हुआ जिसके पीछे अन्य दीवारे थी। यह देखकर मामून के भी छक्के छूट गये और उसने काम वही रुकवा दिया। यह छेद अब तक उसी प्रकार बाकी है। लोगो का विचार है कि यहाँ से मामून को कोई गडी हुई धन-सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। यही हाल (मलगा) करताजा[2] के मेहराव का है कि अब तक खडा है। कुछ ही दिनो की बात है कि तूनुसवालो को इमारत के लिए पत्थर की आवश्यकता हुई और इस पुल का पत्थर पसन्द किया गया। बहुत समय तक उसके खडन का प्रयत्न किया गया, तब कही जाकर थोडा-सा गिरा। मेरी बाल्यावस्था थी जब कि लोग उस पुल के गिराने का प्रयत्न कर रहे थे और इस विषय में परामर्श गोष्ठियाँ किया करते थे।

"ईश्वर को सभी बातो पर शक्ति प्राप्त है।"

१. पिरामिड।
२. कारथेज।

(५) नगर बसाने में ध्यान देने योग्य बातें तथा उनकी उपेक्षा के दुष्परिणाम

जब किसी कौम को भोग-विलास, समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता प्राप्त होती है तो उनमें आराम करने एव शरीर को कष्ट न देने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी अवस्था में वह नगरो की ओर प्रस्थान कर देती है। वहाँ बसकर भव्य भवनो एव ऊँचे-ऊँचे महलो के निर्माण की उसे चिन्ता हो जाती है। शान्तिदायक स्थान की इच्छा वह करने लगती है। अत उसके लिए आवश्यक होता है कि नगर में रहकर वह हानि से बचने और लाभ प्राप्त करने के साधन एकत्र करे। अर्थात् बाहरी आक्रमणो से बचने के उचित उपाय सोचे, आबादी के चारो ओर शहरपनाह बनाये और नगर को ऐसे स्थान पर बसाये जहाँ वह शत्रु के आक्रमण से अधिक से अधिक सुरक्षित रह सके यानी किसी ऊँचे टीले अथवा पहाडी की चोटी पर या किसी ऐसे स्थान पर जहाँ आस-पास नदी अथवा नहर बहती हो, ताकि शत्रु आक्रमण के समय उसे सुगमता-पूर्वक पार न कर सके और पुल इत्यादि पर होकर उसे पार करना पड़े। शत्रु के मार्ग को रोकने के लिए नहर निकालने की बात भी सोची जाती है।

इसी प्रकार दैवी दुर्घटनाओ से भी नगर की रक्षा परमावश्यक है। उदाहरणार्थ, नगर ऐसे शुद्ध-स्वच्छ अथवा खुले मैदान में बसाया जाय जहाँ का जलवायु स्वास्थ्य-प्रद हो और नगर की जनता रोगो एव बीमारियो से सुरक्षित रह सके, कारण कि जब कहीं से स्थानाभाव के कारण हवा निकल नहीं पाती तो रुकी रहती है और खराब हो जाती है। यदि आबादी के पास बदबूदार हवा होती है अथवा गदे-गदे तालाब होते है तो उनकी दुर्गंध वायु को दूषित कर डालती है। प्राणियो में नाना प्रकार के रोग फैल जाते है। आबादी विविध प्रकार के रोगो का केन्द्र बन जाती है। हमने इसे देखा है कि जिन नगरो में वायु की शुद्धता पर ध्यान नही रखा जाता, वे प्राय रोगो के केन्द्र बने रहते है। इफ़रीकिया के काबिस नगर के विषय में प्रसिद्ध है कि उस स्थान की दूषित वायु के कारण कोई यात्री अथवा स्थानीय निवासी एक विशेष प्रकार के ज्वर से सुरक्षित नही रह सकता। कुछ लोगो का मत है कि इस नगर की वायु अब दूषित हुई है, पहले न थी। इसका कारण अल-बकरी[1]

१. अब्दुल्लाह बिन अब्दुल अजीज प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता हुआ है। उसने अपना अधिकांश जीवन कारडोवा में व्यतीत किया। उसकी मृत्यु अक्तूबर-नवम्बर १०९४ ई० में हुई।

ने यह लिखा है कि किसी समय वहाँ खुदाई में एक ताँबे का मुहर बन्द बरतन मिला जिस पर सीसे की मुहर लगी हुई थी। उसकी मुहर जब खोली गयी तो उसमें से धुंवा उठा और वह वायुमडल में फैल गया। उसी समय से ज्वर का वह रोग व्यापक हो गया। बकरा का इस कहानी को उद्‌धृत करने का उद्देश्य यह है कि इस बरतन में जादू के जोर से वायु के समान कोई ऐसा पदार्थ बन्द कर दिया गया था जो मुहर के हटाने से वायुमडल में फैल गया जिससे ज्वर का रोग फैल गया। यद्यपि जन-साधारण ऐसी कहानियाँ गढा करते है और उन्ही के विचार इस प्रकार से निराधार हुआ करते है। यत बकरी स्वय कोई विद्वान् न था, अत ऐसी निराधार कहानी की आलोचना करने के स्थान पर उसने जैसा कुछ सुना वैसा ही अपने ग्रन्थ में उद्‌धृत कर दिया। इसमें तथ्य केवल इतना है कि वायु के अधिकाशत. एक ही स्थान पर ठहरे रहने से वायुमडल दूषित हो जाता है और ज्वर फैल जाता है। जब वायु को इधर-उधर चलने का अवसर प्राप्त होता है तो उसकी दुर्गन्ध कम हो जाती है और प्राणियो को रुग्ण नही करती। अत जब कोई नगर घना बसा होता है और उसमें हर समय हलचल मची होती है, तो वायु में भी हर समय लहरें पैदा होती रहती है। हवा को ठहरने का अवसर नही मिलता, अपितु हर समय लहराव के कारण बुरी हवा निकल जाती है और स्वच्छ ताजी हवा आ जाती है। इसके विपरीत नगर की आवादी जब घटती है तो हवा की लहरें कमज़ोर पड़ जाती है। वायु एक स्थान पर ठहरी रहती है और ठहरकर सड जाती है। इस गदी वायु का हानिकर प्रभाव आवादी इत्यादि पर पडने लगता है। काबिसनगर की दशा भी ऐसी ही हुई। जिस समय वह नया-नया बसा था और आबादी घनी थी तो लोगो के चलने-फिरने से उसकी वायु में हर समय कँपकँपी रहती थी। इस प्रकार वहाँ स्वास्थ्य-हानि की आशंकाएँ वहुत कम थी। न तो वायु में दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी और न उसके कारण वीमारी का खटका होता था। अब जव उसकी आबादी घटी तो उसकी वायु स्थिर होने के कारण सड गयी और उससे पूरा नगर रोग का केन्द्र बन गया। अत॰ रोग के उत्पन्न होने का ठीक कारण यही है।

कभी इसका उलटा भी होता है कि एक नगर जब प्रारम्भ में वसाया जाता है और वायु को स्वच्छ रखने के वहाँ कोई साधन भी नही होते तो आबादी की कमी के कारण वहाँ वहुत-से रोग फूट पड़ते है। जब आबादी वढती है तो दशा उसके विरुद्ध हो जाती है। रोग एक-एक करके नष्ट होने लगते है। आज हमारे सामने राजधानी फास जो नवीन नगर के नाम से प्रसिद्ध है, इस तथ्य का खुला उदाहरण

है। यही नहीं ससार में आप जिस नगर पर दृष्टि डालेंगे, तो जिस तथ्य का हमने निरूपण किया है, उसे शत-प्रतिशत ठीक पायेंगे।

वे साधन जिनसे आबादी को लाभ पहुँचाया जा सकता है, निम्नाकित है। पहले तो जल पर पर्याप्त ध्यान दिया जाय अथवा नगर नहर के किनारे बसाया जाय, या उसके निकट ही मीठे जल के झरने हो कारण कि जब जल आबादी के समीप ही होता है तो आबादी को बड़ी शाति एव आराम मिलता है। उसकी जल की आवश्यकता शीघ्र पूरी हो जाती है। जल की आवश्यकता प्रत्येक जीव को कितनी है, यह स्पष्ट है। इसी प्रकार आबादी के समीप मवेशियो के लिए हरी-भरी चरागाहो का प्रबन्ध भी परमावश्यक है, कारण कि प्रत्येक आबादी में बच्चे लेने, दूध प्राप्त करने, एव सवारी करने के लिए पशुओ का होना परमावश्यक है। जब चरागाहें समीप होंगी तो लोग अपने मवेशियो को चराने के लिए दूर ले जाने के कष्ट से बच जायेंगे और जब चाहेंगे पास ही चरा लाया करेंगे। इसके साथ खेती-बारी भी नगर के निकट ही होनी चाहिए। ईंधन की आवश्यकता से भी लोगो को मुक्ति नही मिल सकती, कारण कि वे इससे आग जलाते है, तापते है और भोजन भी बनाते है। लोगो को घर की छतो एव अन्य आवश्यकताओ के लिए लकडी की भी आवश्यकता होती है। नगर बसाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह समुद्र तट के समीप हो, ताकि दूरस्थ नगरो से सुगमतापूर्वक व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो सकें। किन्तु इसे उपर्युक्त अन्य बातो की अपेक्षा कम महत्त्व प्राप्त है। इन सब बातो की जितनी अधिक सुविधा नगरवासियो को होती है, नगर का महत्त्व उतना ही अधिक बढता जाता है।

कभी-कभी तो नगर के सस्थापक नगर बसाते समय उसकी प्राकृतिक स्थिति पर दृष्टि नही रखते। वे यदि किसी बात पर दृष्टि रखते भी है तो प्राय अपनी, एव अपनी कौम की सुविधा पर ही, न कि सर्वसाधारण की सुविधा पर। इस प्रकार जब अरबो ने इस्लाम के प्रारम्भ में इराक एव इफरीकिया में नगरों की स्थापना की तो अपने पालतू जानवरो एव ऊँटो की चरागाहो का पर्याप्त ध्यान रखा और नगर ऐसे स्थानो पर बसाये जहाँ उनके लिए चारा भी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सके एव खारा जल भी। किन्तु उन्होने मीठे पानी, खेती-बारी, जलाने एव भवन-निर्माण के काम में आनेवाली लकड़ी, तथा ऊँटो के अतिरिक्त अन्य मवेशियो की चरागाहो पर कोई ध्यान नही दिया। कैरवान, कूफा, बसरा अथवा इस प्रकार के अन्य नगर इस तथ्य के खुले प्रमाण है। यही कारण है कि जब तक नगरो के निर्माण में नैसर्गिक सुविधाओ का ध्यान नही रखा जाता तब तक वे विनाश की ओर ही बढते रहते है।

जो नगर समुद्र तट पर स्थित है उनके लिए यह भी आवश्यक है कि वे या तो पर्वत के अंचल में बसे हो अथवा बहुसख्यक कबीलो की बस्तियो से घिरे हो, ताकि यदि किसी समय शत्रु अचानक नगर पर टूट पड़े तो समस्त कबीले सहायतार्थ सिमट आयें और एक ही आवाज़ पर सब एकत्र हो जायँ। इसका कारण यह है कि भले ही कोई नगर समुद्रतट पर स्थित हो, लेकिन उसकी सहायता हेतु "असबियत" वाले कबीले उसके चारो ओर यदि न हों और न वह पर्वत के आँचल में स्थित हो तो उसे सर्वदा शत्रु के नैश आक्रमणो तथा उसके समुद्री बेड़े का भी भय रहेगा क्योकि शत्रु जानता है कि नगर के रक्षार्थ न तो कोई "असबियत" ही मुकाबला करने को है न नगरवासी ही जो आराम के जीवन एव भोग-विलास के आदी हो चुके है, इतना साहस कर सकते है कि मुकाबला कर सकें। वे लोग तो स्वयं ही नगर सस्थापको के कधो के लिए भारस्वरूप होते है। पूर्व में इस्कन्दरिया, मगरिब में तराबलस,[1] और बोना[2] एव सलामती,[3] "असबियत" वाले कबीलो से ऐसे घिरे हुए है कि एक आवाज़ लगा दी जाय तो सब सहायता के लिए टूट पड़ें। फिर उन तक पहुँचने के मार्ग भी इतने कठिन है कि शत्रु को उन पर अचानक आक्रमण करने का साहस नही होता, कारण कि वे मार्ग पर्वत की ऊँचाइयो एव घाटियो की नीचाइयो में छिपे होते है अथवा यह कहिए कि शहर ऐसे किलेबन्द है कि शत्रु या तो मार्ग की कठिनाई का विचार करके साहसहीन हो जाता है या यह सोचकर कि नगर की सहायता हेतु सभी कबीले सहमत होकर सहायता के लिए टूट पडेंगे, वह आक्रमण हेतु अग्रसर नही होता। सब्तह,[4] बजाया[5] तथा कुल[6] यद्यपि छोटे-छोटे तटवर्ती नगर है, पर वे अपनी भौगोलिक स्थिति के आधार पर शत्रु के साहस को दलित किये रहते है। इसी कारण अब्बासियो के राज्यकाल में इस्कन्दरिया सीमांत के प्रदेशो में गिना जाता था यद्यपि उनका प्रभुत्व बरका एव इफरीकिया तक फैला हुआ था। क्योंकि वह समुद्रतट पर स्थित था और शत्रु के आक्रमण का हर समय खटका रहता था, इस कारण इसे सीमान्त के स्थानो की भाँति अत्यन्त दृढ किया गया था।

१. Tripoli, त्रिपोली।
२. Bone, बोन।
३. Sale, सेल।
४. Ceuta, क्योटा।
५. Bougie, बोग।
६. Collo, कोल्लो।

शत्रुओं ने इस्कन्दरिया एव तरावलस पर इस्लामी राज्यकाल में अनेक बार अचानक आक्रमण किये।

(६) संसार के सर्वोत्कृष्ट पूजागृह एव मस्जिदें

ईश्वर ने भूमि के किन्हीं-किन्ही भागों को विशेष सम्मान एव खास गौरव प्रदान किया है और वहाँ की गयी उपासनाओ का पुण्य अन्य स्थानो की अपेक्षा बहुत अधिक बनाया है। अपने दासो के प्रति कृपा प्रदर्शित करते हुए एव उनके लिए सौभाग्य के मार्ग प्रशस्त करते हुए उसने उन स्थानो की विशेषताओ एव प्रसादो को अपने पूज्य रसूलों एव नबियों की वाणी द्वारा प्रकट किया है। ससार के समस्त पूजागृहो एव मस्जिदो में प्रामाणिक हदीसो के अनुसार तीन मस्जिदें सर्वोत्कृष्ट मानी गयी हैं, अर्थात् मक्के की मस्जिद, मदीने की मस्जिद एव बैतुल मुकद्दस। मक्के की मस्जिद "बैतुल हराम" का निर्माण हज़रत इबराहीम ने ईश्वर के आदेशानुसार कराया। तदुपरान्त वहाँ हज करने का ससारवालो को आदेश दिया। हजरत इबराहीम ने स्वय एव उनके पुत्र हज़रत इस्माईल ने अपने पवित्र हाथों से ईश्वर के इस पवित्र एव सम्मानित घर का निर्माण किया और ईश्वर के आदेश का पालन किया। कुरान शरीफ में इस घटना का इसी प्रकार उल्लेख हुआ है। काबे के निर्माण के उपरान्त हज़रत इस्माईल अपनी माता हज़रत हाजेरा एव जुरहुम कबीले सहित जीवन पर्यन्त वहीं निवास करते रहे। उनका मजार भी वहीं है।

बैतुल मुकद्दस के निर्माण का आदेश ईश्वर की ओर से हज़रत दाऊद एव हज़रत सुलैमान को मिला था। इन्हीं दोनो महानुभावों ने आदेश का पालन किया और वहाँ की मस्जिद एव हयाकिल का निर्माण कराया। उसके आसपास हज़रत इस्हाक की सन्तान के बहुत-से नबियो के रौज़े है।

मदीने में हमारे नबी हज़रत मुहम्मद हिजरत करके पहुँचे थे। ईश्वर की ओर से आपको हिजरत का तथा मदीने को अपने धर्म के प्रचार का केन्द्र बनाने का आदेश मिला था। आपका मज़ार भी इसी पुण्य भूमि में है।

हम भी चाहते है कि इन तीनो मस्जिदो का कुछ ऐतिहासिक वर्णन प्रामाणिक सूत्रों की पृष्ठ भूमि में दें और बतायें कि ये किस प्रकार प्रारम्भ हुई और किस प्रकार शनै-शनै उन्नति कर सकी······[1]

१. इब्ने खलदून ने इन तीनों का सविस्तर उल्लेख किया है। इस भाग का अनुवाद नहीं किया गया।

(७) इफ़रीक़िया एवं मग़रिब में नगरों की संख्या कम है

इसका कारण यह है कि इस्लाम के सहस्रो वर्ष पूर्व इस देश में बरबर जाति के लोग बसते थे जो बदवी जीवन व्यतीत करते थे। नगर के जीवन एव सस्कृति से न तो उनका दूर का भी सम्बन्ध था और न सभ्यता के प्रभाव में आकर वे अपनी आबादियो को नगरो का रूप ही देते थे। यहाँ आकर आबाद होनेवाली फिरंग एवं अरब कौमो को राज्य करने के लिए बहुत कम समय मिल सका और वे अपने कदम अधिक न जमा सकी, न नगरो के निर्माण की व्यवस्था ही कर सकी। अतः बरबर अपनी मूल "बदवी" दशा में ही मस्त एव मगन रहे और इधर-उधर छिन्न-भिन्न होकर बसते रहे। इसके अतिरिक्त बरबर कला-कौशल से दूर एव उनसे अनभिज्ञ भी थे। वे "बदवियत" के आदी थे जब कि कला-कौशल के लिए नगर के जीवन की आवश्यकता होती है। उन्हें न भवन-निर्माण की कला में कुशलता प्राप्त थी और न उन्हें इस बात से रुचि थी कि वे भव्य भवनो का निर्माण करायें तथा बड़े-बड़े नगर बसायें। तीसरे वे "असबियत" वाले थे एव वश तथा कुल के लिए प्राण त्याग करनेवाले। "असबियत" एव नसब परस्ती "बदवियत" की ही पृष्ठ पोषक है। नागर जीवन से उसका कोई सम्बन्ध नही होता। नगर निवासी आराम तलब एव विलासप्रिय होते है। वे अपने शासको पर बोझ होते है। इसी कारण "बदवी" लोग नगर-निवास से बचते है और उसे पसन्द नही करते। नगर की ओर तो उसी का हृदय आकृष्ट होता है जो विलासप्रिय हो और जिसके पास धन-सम्पत्ति की अधिकता हो।

इस प्रकार इफरीकिया एव मगरिब की सब अथवा अधिक जनसख्या "बदवी" है जो खेमो, डेरो एव पर्वत की गुफ़ाओ में निवास करने की आदी है। इसके विपरीत अजम की आबादियाँ, उदाहरणार्थ इन्दुलुस, शाम, मिस्र, एव इराक इत्यादि के निवासी सबके सब सभ्यता एव नगर के जीवन के आदी है। इसका कारण यही है कि वे वश को अधिक महत्त्व नही देते, न उसकी शुद्धता की रक्षा की चिंता करते है। वे अपने कुल का गुण-गान नही किया करते और न उस पर अभिमान ही करते है। दूसरी ओर "बदवियो" को देखा जाय तो पता चलेगा कि वे कुल ही पर मिटे जाते है और उसकी रक्षा में रक्त बहाने पर उद्यत रहते है। इस कारण उनमें "असबियत" सीमातीत होती है और इस "असबियत" एव कुल मर्यादा की चिन्ता ही उन्हें बदवी जीवन की ओर आकृष्ट किया करती तथा नागर जीवन से दूर रखती

है, कारण कि नगर में रहकर तो वे अपनी कठोरता, अक्खड़पन एव वीरता आदि सभी गुणों को भूल जाते हैं। वे दूसरो की सहायता करने के स्थान पर दूसरो पर बोझ हो जाते हैं। अत आप इस ऐतिहासिक तथ्य को भली-भाँति समझ लीजिए और नगर की सभ्यता को इसी सिद्धान्त की कसौटी पर परखिए।

(८) प्राचीन सल्तनतों की अपेक्षा इस्लामी ऐश्वर्य एव गौरव की तुलना मे इस्लामी सल्तनतों के भव्य भवनों की सख्या कम है

इसका कारण वही है जो हम बरबरो के सम्बन्ध में लिख चुके है कि अरब क्योंकि पूरे बद्दू थे और कला-कौशल से अनभिज्ञ थे, अत. वे लोग नागर जीवन से अपरिचित रहे और इस्लाम के पूर्व जिन देशो पर इन्हें प्रभुत्व प्राप्त हुआ वहाँ वे लोगो से अलग-अलग रहे, उनमें घुले-मिले नही। जब इस्लाम के उपरान्त उन्हें विजय प्राप्त हुई तो उन्होने एक जगह जमकर अधिक समय नही व्यतीत किया जिससे वे सभ्यता एव नागर जीवन को उच्च स्तर पर पहुँचाते और भव्य भवनो का निर्माण कराते। फिर अन्य लोगो के बनवाये भवन एव आराम के निवास-स्थान मिल गये तो उन्होंने स्वयं अपने भवनो के निर्माण की ओर ध्यान नही दिया।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनका दीन एव धर्म भवन-निर्माण में अपव्ययता की घोर निन्दा करता था और उतने ही भवन बनवाने की अनुमति देता था जितने निवास हेतु आवश्यक एवं अनिवार्य थे। इसका प्रमाण हमें इस ऐतिहासिक घटना से मिलता है कि जब कूफे के बाँसो के घर नित्यप्रति जलने लगे तो लोगो ने विवश होकर हज़रत उमर से पत्थर के भवनो के निर्माण की अनुमति माँगी ताकि आग लगने के भय से मुक्ति प्राप्त हो जाय। हज़रत ने अनुमति तो दे दी, किन्तु आदेश दिया कि "कोई भी तीन से अधिक कमरो का घर कदापि न बनवाये और न भवनो पर किसी प्रकार का अपव्यय करे, अपितु सुन्नत के मार्ग का ध्यान रखे। सौभाग्य सर्वदा उसका साथ देगा।" साथ-साथ एक शिष्ट-मडल कूफे भेजा और आदेश दिया कि वह लोगो को चेतावनी देता रहे कि वे अपने भवनो को आवश्यकता से अधिक बलन्द न करें। जब हज़रत उमर से प्रश्न किया गया कि आवश्यकता का प्रतिबंध लगाने की क्या ज़रूरत है तो उन्होंने आदेश दिया कि न तुम अपव्यय करो और न कष्ट उठाओ।

जब धर्मनिष्ठा एव ईश्वरीय भय का युग समाप्त हुआ और अरबवाले शह-शाहियत एव भोग-विलास के चक्कर में आ गये तथा फारसवालो से सेवाएँ कराने लगे तो उनसे अरबो ने कला-कौशल एव भवन-निर्माण कला में कुशलता प्राप्त कर ली

और वे भी आरामतलबी एव विलासिता की ओर आकृष्ट हो गये। उन्होने वडे-वडे भवनो का निर्माण कराया। किन्तु इस समय उनकी सल्तनत अपने जीवन की अतिम साँसें ले रही थी। उनको अवसर ही न मिल सका कि और कुछ समय तक वे शान्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते, अधिक से अधिक सख्या में महल बनवा पाते एव भव्य नगरो तथा कस्बो का निर्माण कराते।

अन्य कौमो के साथ ऐसा नही हुआ। उदाहरणार्थ, फारसवालो का राज्य सहस्त्रों वर्ष तक जमकर चला। इसी प्रकार किब्त, नब्त, रूम इत्यादि के राज्य भी सदियो तक चलते रहे। आद, समूद, अमालका एव तबाबेआ लोग भी दीर्घकाल तक राज्य करते रहे। इन सभी ने कला-कौशल की उन्नति की और अपने लम्बे राज्यकाल में उन्होने ससार के आश्चर्यजनक भवनो का वहुसख्यक निर्माण कराया जो सहस्रो वर्ष के वाद आज भी वर्त्तमान है। जब आप कौमो का इतिहास पढेंगे तो जिन तथ्यो का हमने उल्लेख किया है उन्हें शत-प्रति-शत ठीक पायेंगे।

(६) एक-आध को छोड़कर अरबों के बनवाये हुए भवन शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं

इसका कारण वही है जो अभी बताया जा चुका कि अरब लोग ठेट बद्दू थे और कला-कौशल से अपरिचित थे। अत. उनके भवन मज़बूत, दृढ़ एव स्थायी नही होते थे। एक कारण और भी था जिसकी ओर हम इससे पूर्व भी सकेत कर चुके है कि उन्होने जब कभी नगर बसाये, बस्तियाँ आवाद की तो प्राकृतिक आवश्यकताओ का ध्यान नही रखा, न औचित्य की ओर दृष्टिपात किया। स्थान की सुन्दरता, जलवायु का स्वास्थ्यप्रद होना, मीठे एव स्वादिष्ठ जल की निकटता, खेतो एव चरागाहो के सान्निध्य आदि सुविधाओ की ओर से वे प्राय. असावधान रहते थे। नगर एव बस्ती के गुण एव अवगुण, तथा आबादी की सुन्दरता एवं विशेषता इन्ही प्राकृतिक दशाओ पर निर्भर है। किन्तु अरबो ने उनसे कोई सम्बन्ध न रखा। वे तो अपने ऊँटो की चरागाहो का ध्यान रखते थे अर्थात् जल मीठा है अथवा खारा, कम है अथवा अधिक। वे इस बात की खोज न करते कि यहाँ की भूमि कृषि के लिए उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त, वायु स्वास्थ्यप्रद है अथवा नही। इन बातो की वे चिन्ता करते भी क्यो? कारण कि वे तो एक स्थान पर ठहरते ही न थे, नित्यप्रति चलते-फिरते रहते थे। आज यहाँ है तो कल वहाँ। वे दूर-दूर से अनाज ले आते। ऐसी अवस्था में उन्हें खेती-वारी हेतु भूमि ढूँढ़ने की आवश्यकता ही क्या थी। वे

किस लिए इस विषय में परिश्रम करते। वे मैदानों एवं जंगलो में पड़ाव करते थे। जब कभी एक स्थान पर निवास करने के कारण जलवायु दूषित हो जाता तो तत्काल वहां से चल पड़ते और कहीं अन्यत्र जाकर ठहर जाते थे।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि कूफा, बसरा एव कैरवान को जब अरबो ने बसाया तो केवल अपने ऊँटो की चरागाहो का ध्यान रखा, जगल के सामीप्य पर दृष्टि रखी और यातायात के मार्गो के विषय में सोच-विचार किया। इसके अतिरिक्त नगर बसाने के लिए जिन प्राकृतिक सुविधाओ का होना अनिवार्य है उनकी उन्होने उपेक्षा की। उन्होंने उन आवश्यकताओ पर ध्यान नहीं दिया जिनसे नगर की जनसंख्या बढ़ती है और घटने नही पाती। हम बता चुके है कि प्रत्येक स्थान आबादी के लिए उपयुक्त नहीं होता। फिर यह भी आवश्यक है कि नगर के आस-पास ऐसी कौमें आबाद हो जो आबादी को घटने तथा कम न होने दें। अरबो ने इस बात पर कभी ध्यान नही दिया। फलत: जब उनके राज्य का ज़ोर टूटा और "असबियत" समाप्त हुई तो अचानक बस्तियाँ वीरान हो गयी और एसी उजड गयी कि मानो थी ही नही। यदि उनके आस-पास अन्य कौमें होती तो आबादी की गिरती दशा को थाम लेतीं और उन्हें नष्ट होने से बचा लेती।

"ईश्वर ही निर्णय करता है और कोई भी उसके निर्णय में परिवर्तन नही कर सकता।"[१]

(१०) नगरों के विनाश का प्रारम्भ

नगर जब बसाये जाते है तो प्रारम्भ में उनकी आबादी कम होती है। भवन-निर्माण हेतु सामग्री, पत्थर, चूना इत्यादि भी कम प्राप्त होते है। इसी प्रकार भवनो की सज्जा, सामग्री, नरम पत्थर, मीनाकारी एव पिच्चीकारी हेतु शीशे, काँच एव नीला इत्यादि उपलब्ध नहीं होते। विवश होकर घर "बदवी" ढांचे के बनते है और सीधे-सादे होते हैं। जब जनसंख्या में वृद्धि होती है, नगर निवासियो की संख्या बढ़ती है तब कला-कौशल की चर्चा होती है, अच्छे-अच्छे कारीगर एव शिल्पकार पैदा होते है, भवनो के निर्माण एव सज्जा हेतु सुन्दर वस्तुएँ ढूंढ़ कर लायी जाती है और भवन-निर्माण के नये-नये यंत्र ईजाद किये जाते हैं। ऐसी स्थिति बस्ती

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

की युवावस्था होती है, किन्तु जब इसका पतन होने लगता है तो नगरवालो की जन-सख्या कम हो जाती है। कला-कौशल का पतन हो जाता है, भवन-निर्माण में सुन्दरता का ध्यान कम रखा जाता है और वह कार्य ऐसी परिपाटी का रूप धारण कर लेता है जिसका पालन कठिनाई से होता है क्योकि जनसख्या की कमी के कारण न तो मज़दूर ही मिलते है, न अन्य वस्तुएँ। अब जो नये भवन बनते है उनके लिए वीरान, एव उजड़े हुए महलो, घरो तथा कारखानो को तोड-फोडकर पत्थर एव चूना प्राप्त किया जाता है। एक भवन का सामान दूसरे भवन में लगाया जाता है। एक भवन उजड़ता है तो दूसरा बसता है, एक मिटता है तो दूसरा बनता है। इस प्रकार बसा बसाया नगर ग्राम का रूप धारण करने लगता है और अन्त में ग्राम बनकर ही रह जाता है अथवा पूर्णत वीरान हो जाता है।

"ईश्वर अपने प्राणियो से इसी प्रकार व्यवहार करता है।"

(११) नगरों में खाद्य सामग्री की बहुतायत और बाजारों की चहल-पहल तथा रौनक नगर की सांस्कृतिक अवस्था पर निर्भर है

सत्य तो यह है कि प्रत्येक मनुष्य अकेला ही अपनी आर्थिक आवश्यकताओं को कदापि पूरा नही कर पाता। आपस में मिल-जुलकर तथा एक दूसरे की सहायता से ही सब लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताएँ पूरी करते और जीवन निर्वाह करते है। अनाज को ही ले लीजिए, चूंकि प्रत्येक मनुष्य अपना भोजन अकेले स्वय तब तक प्राप्त नही कर पाता जब तक कि उसके साथी उसका साथ नही देते। एक अनाज बोता है, एक खेत काटता है, एक लोहारी का, एक बढईगीरी का पेशा करता है, सक्षेप में जब कार्य का इस प्रकार विभाजन होता है तभी व्यक्ति के मुँह में भोजन जाता है। इसके साथ यह भी सत्य है कि सब लोग जब काम पर लगते है और अपने-अपने कार्यो के फल का उपभोग करते है तो वह उनकी आवश्यकताओ से कही अधिक पाया जाता है। कृषक जो अनाज पैदा करता है वह उसकी आवश्यकता से कही बहुत अधिक होता है। जुलाहा जो कपडा बुनता है वह उसकी ज़रूरत से कही ज्यादा होता है। जब नगरवाले अपने कार्यों द्वारा अपनी आवश्यकताओ से अधिक चीजें पैदा करते है तो विवश होकर उन्हें उन वस्तुओ को दूसरे नगरो में जाकर बेचना पडता ह और अधिक से अधिक धन उन्हें मिलता है। इस प्रकार वे नित्यप्रति धनी होते जाते है। क्योकि धन-सम्पत्ति अपने साथ भोग-विलास का चसका लाती है। अत. ये विलास-प्रिय एव नाज़-नखरों के शौकीन हो जाते है।

यह हम पहले ही बता चुके है कि मनुष्य के व्यवसाय उसके उद्योग के परिणाम है। मनुष्य जितना अधिक उद्योगी एव कार्यकुशल होता है धन-सम्पत्ति की उतनी ही उन्नति होनी है। जब लोगो में विलास-प्रियता उत्पन्न होती है तो उसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक पहलू पर पडता है। आवासो का रग ढग बदलता है। वस्त्र शानदार होने लगते है। विचित्र प्रकार के बर्तन तैयार कराये जाते है। प्रत्येक कार्य के लिए सेवक नौकर रखे जाते है। आडम्बर-पूर्ण सवारियो की व्यवस्था की जाती है। यह सब चीजें उसी समय उपलब्ध हो सकती है जब देश में अच्छे से अच्छे शिल्पकार पैदा हो और नाना प्रकार की वस्तुओं का आविष्कार किया जाय। वे बाजारो में आयें और बाजारो की रौनक तथा चहल-पहल बढे। बाज़ारो की आबादी से नगर के आय-व्यय में वृद्धि होती है। लोगों में समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता का सचार होता है। सभ्यता नित्यप्रति बढने लगती है। सभ्यता के बढने के साथ-साथ ही कामो की बहुतायन होती है और लोगो में विलास-प्रियता फलती है। उनकी आदतें रग पलटती जाती है और उनकी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती है। फिर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नाना प्रकार के कला-कौशलो का आविष्कार किया जाता है। धन-सम्पत्ति की बहुतायत होती है और बाज़ार की रौनक बढ जाती है, कारण कि केवल जीविकोपार्जन के लिए ही सघर्ष किया जाता है और वह ही वास्तविक शहरी आचरण का प्रतीक होता है। इससे विलास-प्रियता नही बढती। उसमें जो दौड-धूप करनी होती है, वह धन-धान्य सम्पन्नता एव विलास-प्रियता का कारण बनती है।

जिस नगर की सभ्यता जितनी बढती है उसके निवासियो में प्रत्येक व्यवसाय एव कला-कौशल के कलाकार तथा विभिन्न वस्तुओ में रुचि रखनेवाले आदमी भी उसी अनुपात से अधिक सुखसम्पन्न होते है। किसी बडे नगर का काज़ी, व्यापारी, कारीगर, अमीर एव पुलीस का अधिकारी छोटे नगर के काज़ी, व्यापारी, कारीगर, अमीर एव पुलिस के अधिकारी की अपेक्षा कही अधिक खुशहाल एव समृद्ध होता है। उदाहरण के लिए, फास सरीखे आबाद नगर को ले लीजिए। उसकी दशा में तथा बजाया, तलमसान एव सिब्ता के इन्ही लोगो की दशाओ में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। फास के हर पेशेवाले, कारीगर एव कलाकार की उन नगरो के पेशेवालो, कारीगरो एव कलाकारो से तुलना करें तो उनकी समृद्धि में बडा अन्तर मिलेगा। यदि तलमसान की तुलना वहरान[1] अथवा अलजायर[2] से की जाय तो यही अन्तर मिलेगा।

१. Oran. २. Algiers.

यदि तलमसान एव अलजायर की तुलना कम आवाद नगरों के कारीगरों से की जाय तो यही अन्तर होगा। आप छोटे से छोटे गाँव तक में यही अन्तर पायेंगे। इस अन्तर का यही कारण है कि लोगो के कार्य एव धधे भिन्न, कम अथवा अधिक होते रहते है। इस प्रकार सभ्यताएँ काम काज की बाजार हैं। लोगो की जितनी आय होती है, उतना ही व्यय भी होता है। फास के काज़ी की यद्यपि आय अधिक है, किन्तु उसका व्यय भी उतना ही अधिक है। यही हाल तलमसान के काजी का है कि जितनी उसकी आय है उतना ही उसका व्यय भी है। जहाँ आय-व्यय दोनो ही अधिक हों वहाँ के लोगो की दशा अच्छी होगी। वे विलास-प्रिय एव नाज़-नखरे के शौकीन भी होगे। फास मे कारोबार की अधिकता एव शोरगुल तथा नगरवासियों के आय-व्यय सभी अधिक है, अत. उनमें उसी अनुपात से विलास-प्रियता एव कृत्रिमता भी पायी जाती है। यही दशा वहरान, कान्सटैन्टाइन, अलजायर एव बिसकरा की है कि जितनी ही इनमें अन्योन्य कारबार की कमी होती है, उतना ही यहाँ के आय-व्यय में अन्तर आता जाता है। यहाँ तक कि एक साधारण से साधारण नगर तक में जिसको बड़ी कठिनाई से नगर कह सकते है और जिसमें कार-बार और धंधे केवल आर्थिक आवश्यकताओं का समाधान कर सकते है, आप इसी तथ्य को प्रत्यक्ष होता पायेंगे। यही कारण है कि इन छोटे-छोटे नगरों के निवासी, परेशान, दरिद्र एवं दीन होते है। उनके धधे कठिनाई से उनकी आर्थिक आवश्यकताओं का समाधान कर पाते है। न वे अपनी कमाई में से कुछ बचा सकते है और न उनकी आय मे कुछ वृद्धि हो सकती है। अत. मुश्किल से ही उनमें कोई खाता-पीता दिखाई देता है। अधिकाश लोग दीन, दरिद्र एव परेशान ही रहते है।

उपर्युक्त वर्णन में आपने छोटे-बड़े नगरों के ऊँचे एव मध्यवर्गों म जो अन्तर देखा है वही अन्तर आप साधारण से साधारण वर्ग तक में पाते चले जायेंगे। देख लीजिए कि फास का फकीर तथा भिखारी तलमसान एवं वहरान के भिखारी की अपेक्षा अच्छी दशा में होगा। मैने स्वय देखा है कि फास में भिखारी ईदुज़्ज़ुहा के अवसर पर कुरबानी की खालो का मूल्य माँगते घूमते है। वे भोजन हेतु, मांस, घी, मलाई इत्यादि एव पहनने के लिए सुन्दर वस्त्र और अच्छे-अच्छे बरतन छलनी इत्यादि माँगते है। यह बात उनकी समृद्धि की द्योतक है। यदि तलमसान एव वहरान में कोई भिखारी इस प्रकार की प्रार्थना करे तो उसे लोग विचित्र समझकर झिड़क देंगे।

आज हम स्वय काहिरा एवं मिस्र की धन-धान्य सम्पन्नता तथा समृद्धि देखकर दग रह जाते है। यहाँ तक कि मगरिब से बहुत-से फकीर मिस्रवालों की समृद्धि की

कहानियाँ सुनकर मिस्र चले जाते है। साधारण लोगो का मत है कि मिस्रवाले बडे त्यागी है और ईश्वर ने उन्हें धनी भी बनाया है। दान-पुण्य में उन्हें बडी श्रद्धा है, अत दान के भूखे लोग मिस्र पहुँचते हैं। किन्तु इस विचार में कोई तथ्य नही है। इस बात का उल्लेख तो हम ऊपर कर ही चुके है कि मिस्र एव काहिरा की जनसख्या अन्य नगरो की अपेक्षा कही अधिक है। इसी कारण वहाँ के निवासी समृद्ध है और वे सर्वदा दान-पुण्य किया करते हैं, अन्यथा आय-व्यय सब नगरो में लगभग बराबर होता है। जब आय में वृद्धि होती है तो साथ ही साथ व्यय में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार व्यय का बढना आय की वृद्धि का द्योतक है। जब किसी नगर में आय-व्यय दोनो बढे हो तो वहाँ के निवासी सुखी, समृद्ध एव उदार होते है और नगर की आबादी दूर-दूर तक फैल जाती है। अत जब कभी आपको किसी नगर के निवासियो के विषय में दान-पुण्य के असाधारण समाचार प्राप्त हो तो आप उनका खडन न करें और समझ लें कि इसका आधार वहाँ की जनसख्या की अधिकता है। आबादी की अधिकता से व्यवसाय एव धधो में वृद्धि होती है और तब वहाँ लोगो में दान-पुण्य एव उदारता की भावनाएँ बढती है।

लोगो की समृद्धि एव कष्टो का प्रभाव मनुष्यो पर ही नही, अपितु पशुओ तक पर भी दृष्टिगत होता है। जो लोग समृद्ध एव धनी होते है और अन्य लोगो को भोजन इत्यादि कराते रहते है तथा अनाज, दाने अथवा भोजन के टुकडे उनके यहाँ हर तरफ बिखरे रहते है वहाँ चीटियाँ असख्य पक्तियो मेंउ नके घरो में रेंगती फिरती है। उनके भवनो पर पक्षियो के झुड के झुड उडते दृष्टिगत होते है। पक्षी प्रात काल भूखे आते है और सायकाल पेट भरकर जाते है। दूसरी ओर दीन दरिद्रो को देखिए कि उनके यहाँ न कोई चीटी रेंगती दृष्टिगत होती है और न उनके घरो पर कोई पक्षी उडता दिखाई पडता है और न ही उनके मकानो के कोनो में चूहे तथा बिल्लियाँ फिरती दिखाई पडती है। जब वे स्वय भोजन के लिए तरसते है तो जानवरो के लिए भोजन कहाँ से लायें।

सक्षेप में इस विषय में मनुष्यो एव जानवरो की एक ही दशा है। क्योकि अमीरो तथा धनी लोगो के पास हर चीज़ की बहुतायत होती है, अत वे स्वय निश्चिन्त होकर उड़ाते-खाते है और अन्य लोगो को भी खिलाते-पिलाते है। मनुष्य भी उनके यहाँ से मालामाल होकर जाते है और जानवर भी पेट भरकर लौटते है। सक्षेप में नगर की आबादी जितनी अधिक होती है उतना ही वहाँ के निवासी खुशहाल, समृद्ध, दानी एव उदार होते है।

(१२) शहरों में चीजो के भाव

वैसे तो वाजारो में मनुष्यो की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ उपलब्ध होती है, किन्तु आवश्यक वस्तुओ के मूल्यो में बडा अन्तर होता है। उदाहरणार्थ, अनाज, गेहूँ इत्यादि अथवा सब्जियो जैसे पियाज, लहसुन इत्यादि के मूल्यो में कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जो जीवन को सुखी एव आनन्दमय बनाने के काम आती है। उदाहरणार्थ, स्वादिष्ठ मेवे, उत्तम वस्त्र, उच्च कोटि के बरतन, शानदार सवारियाँ अथवा जीवन की अन्य विलासिताएँ। जब किसी नगर की आबादी बढती है तो केवल भोजन की वस्तुओ का भाव सस्ता होता है और अन्य आडम्बर की वस्तुओ का मूल्य महँगा हो जाता है। इसके विपरीत जब नगर की जनसख्या कम होती है तो इससे उलटी बात होती है कि आवश्यकता की वस्तुओ का मूल्य अधिक एव अनावश्यक वस्तुओ का मूल्य कम होता है। इसका कारण यह है कि भोजनोपयोगी वस्तुओ, अनाज इत्यादि की प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता होती है। वह एक साल अथवा कम से कम एक मास का अनाज भर लेना चाहता है क्योकि इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नही होता। अत: सभी नगरवाले अथवा सव नही तो अधिकाश लोग इन आवश्यक वस्तुओं को सग्रह करने के प्रयत्न में लग जाते है, चाहे वे वस्तुएँ उसी नगर से प्राप्त होती हो अथवा उसके आस-पास से।

हम यह बता चुके है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा पैदा की हुई जिन्स उसकी तथा उसके घरवालो की आवश्यकता से कही अधिक होती है और बहुत-से लोगो की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। अत. नगर की पैदावार नगर की आवश्यकता से कही अधिक होती है। इसलिए इन चीजो का भाव प्राय कम होता है। परन्तु आकस्मिक दुर्घटनावश नि.सन्देह भाव चढ़ जाता है। यदि लोग आकस्मिक दुर्घटनाओ के भय से अनाज का भडार एकत्र न करें तो कभी-कभी पैदावार इतनी अधिक हो जाती है कि बिना मूल्य के भी वाँटी जा सकती है। जहाँ तक आवश्यकता से अधिक वस्तुओ का प्रश्न है वहाँ तक यह कहा जा सकता है कि न तो सब लोगो को उनकी आवश्यकता ही होती है और न सब लोग अथवा अधिकाश व्यक्ति पैदावार के काम में व्यस्त ही होते है। जव किसी नगर की आवादी वढती है और समृद्धि एवं आडम्बर का सचार होता है तो इन वस्तुओं की हर ओर से माँग होती है और प्रत्येक समृद्ध व्यक्ति अपनी स्थिति के अनुसार अधिक से अधिक मात्रा में उनकी माँग करता है। इस कारण उनकी उत्पत्ति नगर की आवश्यकता के लिए पर्याप्त नही होती। चीज

थोड़ी होती है और उसके इच्छुक अधिक होते हैं। एक पर एक गिरता है। धनी लोग अधिक से अधिक मूल्य पर वस्तुओ को लेने को तैयार होते हैं। फलत. ऐसी वस्तुओ का मूल्य अधिक रहता है।

अधिक आवाद नगरो में कला-कौशल, मज़दूरी एवं नौकरी का मूल्य वढ चढ जाता है। इसके तीन कारण है। एक यह कि नगर में समृद्धि एव खुशहाली फैली हुई होती है। अत अधिकांश लोग कारीगरो, मज़दूरो एवं सेवको पर निर्भर होते है। दूसरा कारण यह है कि सेवको एव मजदूरो की आर्थिक आवश्यकताएँ सुगमतापूर्वक पूरी हो जाती हैं और उनकी ओर से उन्हें कोई चिन्ता नही होती, अत वे अपनी सेवाओ के वदले अधिक से अधिक वस्तु माँगते हैं और उसमें किसी प्रकार की कमी पसन्द नही करते। उधर समृद्ध नगरनिवासी स्वयं अपना कार्य करने से वचते हैं। सेवको के विना वे कुछ नही कर सकते। इस कारण वेतन एवं मज़दूरी वढ जाती हैं। तीसरे नगर में धनी एव अमीर लोगो की संख्या अधिक होती है और वे अपना काम करना नहीं जानते। वात-वात पर दूसरो की सहायता चाहते है। अत वे हर मूल्य पर कारीगरो, मज़दूरो एव सेवको को स्वीकार कर लेते है और उनसे काम लेते हैं। इस भय से कि कही अन्य लोग उनकी सेवाएँ न प्राप्त कर लें, वे मजदूरी वढाकर उनसे काम लेने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार कारीगरो एवं मज़दूरों के दिमाग़ भी आसमान पर चढ जाते है। वे अपने कार्यो का मूल्य वढा देते है, अतः इन्ही मार्गो से नगरवालो का धन तथा उनकी दौलत विखरती और वढ़ती रहती है। प्रत्येक दिशा में धन की वर्षा होती देख पडती है।

दूसरी ओर छोटे-छोटे नगरो को देखिए तो उनमें आवादी की कमी के कारण चीज़ो की पैदावार कम होती है और वे कम मात्रा में प्राप्त होती है। कमी के कारण लोग अकाल की आशका से उनका सग्रह कर लेते हैं। अत. वे और भी अप्राप्य हो जाती हैं। उनका भाव चढ़ जाता है। अव रही अनावश्यक वस्तुएँ, मेवे इत्यादि वे नगर के निवासियो को जो सख्या में कम और दीन-दुखी भी होते है उनकी आवश्यकता नही होती। अत. इन चीजो का वाज़ार ठडा ही रहता है। जव उनके ग्राहक कम होते हैं तो उनका मूल्य भी सस्ता रहता है।

कभी-कभी वड़े नगरो में चीज़ों की महँगाई चुगी एवं नाना प्रकार के भारी, करो पर जिन्हें राज्य अपने अतिम चरण में लगाया करते है निर्भर रहती है। इस प्रकार व्यापारियो एवं प्रजा की कमर टूटती है। हर चीज़ का भाव चढ जाता है और एक आम महँगाई की लहर दौड़ जाती है। छोटे-छोटे नगरो में चुगी या तो होती ही

नही और होती भी है तो बहुत थोडी-सी, अत. चीजें सस्ती रहती है। कही-कही भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए नगरवालो को अत्यधिक व्यय करना पडता है। इसका प्रभाव मूल्यो पर पडता है जो प्राय चढ जाते है।

उन्दुलुस की आजकल यही दशा है। ईसाइयो ने जब उन्दुलुसवालो को कृषि के अयोग्य, बजर एव खारी भूमि की ओर ढकेल दिया और स्वय हरी-भरी एव उपजाऊ भूमियो पर अधिकार जमा लिया तो उन्दुलुसवालो को भूमि को कृषि योग्य बनाने मे बड़ी कठिनाई का सामना करना पडा और इस सबध में धन के लिए भी बड़ा कष्ट भोगना पडा और अत्यधिक धन भी व्यय करना पडा। उन लोगो ने बहुत अधिक मात्रा में खाद एकत्र की और हर प्रकार से प्रयत्न करके भूमि को कृषि योग्य बनाया। फिर इन सबका प्रभाव भावो पर पड़ा और पैदावार महँगी हो गयी। उन्दु-लुस महँगाई का केन्द्र हो गया। यह सब ईसाइयो का कुप्रभाव है कि उन्होने मुसलमानो को ऐसे अनुचित भूमि के टुकड़े पर बसने के लिए विवश किया। लोग जब उन्दुलुस की महँगाई के विषय में सुनते है तो समझते है कि सम्भवत. वहाँ अनाज कम पैदा होता है, यद्यपि वास्तव में ऐसा नही है। उन्दुलुस का भू-भाग, जहाँ तक हमे ज्ञात है, अनाज की उपज में सबसे बढकर है और वहाँ के लोगो को कृषि मे बड़ी कुशलता प्राप्त है। कुछ कारीगरो, मज़दूरो एव बाहर से आनेवाले मुजाहिद[1] लोगो को छोडकर बादशाह से लेकर साधारण बाजारी जन तक कृषि में रुचि रखते है और यही उनका व्यवसाय है। मुजाहिद लोग खेती से इस कारण अलग रहते है कि शासन की ओर से उनको जीविका-साधन एव भोजन प्राप्त हो जाते है। अत. उन्दुलुस की महँगाई का वही कारण हुआ जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है।

अब बरबर देशो को देखिए। वहाँ सब कुछ उलटा है। उनकी भूमि कृषि के लिए बडी उपयुक्त है, अत. उनको कृषि के सम्बन्ध में अधिक कठिनाई नही भोगनी पड़ती। धन भी अधिक व्यय नही होता और उसके साथ-साथ वहाँ यह व्यवसाय सभी लोग करते है। अत वहाँ अनाज का भाव इत्यादि बहुत सस्ता रहता है।

(१३) बदवी लोग अधिक आबाद (सभ्य) नगरों मे नही बस सकते

पिछले वर्णन में यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि अधिक सभ्य नगरों के लोगो में विलास-प्रियता बढ जाती है और इसके साथ-साथ उनकी आवश्यकताओ की मात्रा

१. जिहाद करनेवालों।

भी अधिक से अधिक हो जाती है। नाज-नखरो का शौक उन्हें इधर-उधर भटकाता है और आराम की चीजो को वे हर मूल्य पर लेने के लिए तैयार होते है। अत नगर में आवश्यक वस्तुओ का मूल्य वढ जाता है। महँगाई का दूसरा कारण है राज्य की ओर से वाज़ारो के व्यापार पर कर लगाया जाना। इससे नगर की व्यापारिक वस्तुएँ महँगी हो जाती हैं। मजदूरियाँ वढ जाती है और लोगो के समय का मूल्य चढ जाता है। अत नगर-वासियो का व्यय दुगुना-चौगुना हो जाता है। उनको अपनी तथा अपने परिवारवालो की जीविका के लिए वहुत-से धन की आवश्यकता होती है। थोडे धन में उनका जीवन निर्वाह नही हो पाता। दूसरी ओर वेचारे वदवियो की आय कम होती है। वे ऐसे स्थानो में रहते है जहाँ के वाजार इतने मदे होते है कि उनमें ऐसे कारोवार एव धधे ही नही मिलते जिनकी आड में उन्हें कुछ धन प्राप्त हो जाय और वे समृद्ध हो जायँ। अत वदवी लोग खाली हाथ रहते है। उनके लिए यह सम्भव नही होता कि वे नगर में जाकर निवास करें और वहाँ के खर्च उठायें। वे तो ऐसे ग्रामो में रहने के आदी होते हैं जहाँ थोडे-से काम से वे अपना पेट भर लेते हैं, कारण कि आडम्वर एव नाज-नखरो से जिनके लिए अधिक धन की आवश्यकता होती और अधिक कार्यों में अपने आपको फँसाना पडता है वे अनभिज्ञ होते हैं। यदि कोई वदवी ऐसा कर भी वैठता है और रेगिस्तान के जीवन को त्यागकर किसी वड़े नगर में वस जाता है तो शीघ्र ही वह वहाँ के जीवन से घवरा उठता है और अपना निवास-स्थान वदलने पर पछताता और लज्जित होता है।

केवल वही वदवी जो धन-सम्पत्ति एकत्र करके और आवश्यकता से अधिक धन लेकर नगर में वस जाता है एव नाज़-नखरे तथा आडम्वर पसद करने लगता है, नगर में निवास कर सकता है कारण कि वह स्वभाव, चरित्र एव आचार-विचार में नगरवासियो के समान हो जाता है और उनके साथ घुल-मिल जाता है। इस प्रकार नगरो की आवादियाँ प्रारम्भ होती हैं और वदवी का स्वभाव धन-सम्पत्ति की अधिकता के कारण नगर-वासियो सरीखा वन जाता है। वह नगर वसाने लग जाता है।

(१४) देशो और नगरो की दीनता, दरिद्रता एवं समृद्धि का अन्तर

जिन देशो की सभ्यता उन्नत होती है और जिनमें अनेक कौमें वसी होती हैं उनके निवासी समृद्ध एव धनी होते हैं। वडे-वडे नगर उन देशो में वसे होते हैं और वहाँ की सल्तनत का ऐश्वर्य एव गौरव भी अधिक होता है। इन सवका कारण ऊपर लिखा है। वहाँ कारीगरो एव धधो की अधिकता होती है जो समस्त देश को धन-धान्य सम्पन्न

कर देते है। लोग अपनी वास्तविक आवश्यकताओ को पूरा करके धन बचा लेते है। फिर देश की सभ्यता जितनी उन्नत होती है उतना ही वहाँ धन का बाहुल्य होता है। सक्षेप में धन की अधिकता से देश मे समृद्धि एव खुशहाली फैलती है । लोगो मे विलास-प्रियता पैदा होती है। बाज़ारों मे चहल-पहल बढ़ती है और बाज़ारो की रौनक से सल्तनत की आय दिनदूनी रात चौगुनी बढ़ जाती है। उसके ऐश्वर्य एव गौरव में वृद्धि होती है। दृढ एव भारी-भारी किलो का निर्माण होता है। बडे-बड़े नगरो की नीव पडती है और बडी शान से वे बसाये जाते है।

देख लीजिए कि पूर्व के देशो में मिस्र, शाम, इराक, अजम, हिन्द, चीन एवं अन्य पूर्वीय देश सभ्यता की दृष्टि से कितने उन्नत एवं धन-धान्य सम्पन्न है। उनकी सल्तनतें बहुत बडी है। नगरो की सख्या और आबादी भी बेहद बड़ी है। व्यापार ज़ोरो पर चल रहा है। सक्षेप में सभी बातें ईर्ष्या योग्य हैं। आज हम उन ईसाई व्यापारियो को क्यो न देख ले जो मगरिब के मुसलमानो में आते-जाते है अथवा उनमे बस जाते है। उनकी समृद्धि का क्या ठिकाना है और उनका गुणगान किस प्रकार सम्भव है। यही दशा सुदूर पूर्व इराक-अजम, हिन्द एव चीन के व्यापारियो की है जिनकी धन-सम्पत्ति की कहानियाँ हम आने-जानेवालो से नित्यप्रति सुनते रहते है। कभी-कभी तो हम उन पर विश्वास ही नही करते।

साधारण लोगो का तो इस विषय में यह कहना है कि उनकी यह समृद्धि उनकी धन-सम्पत्ति के बाहुल्य के कारण है अथवा उनके यहाँ सोने-चाँदी की खानें अन्य देशो की अपेक्षा अधिक है या पिछली कौमो द्वारा सचित ख़ज़ाने उनको प्राप्त हो गये होंगे। यद्यपि इनमें से कोई भी बात सत्य पर आधारित नही है क्योकि सोना इत्यादि तो सूडान से आता है जो मगरिब के निकटतम है। फिर पूर्ववाले अपने देश की पैदावार अन्य देशों में व्यापार के उद्देश्य से ले जाते है। यदि वे स्वय धनी होते तो फिर ऐसा क्यों करते और धन की चिन्ता में क्यो इधर-उधर मारे-मारे फिरते, अपितु सब लोगो की उपेक्षा करके अपने स्थान पर बैठे रहते।

ज्योतिषियो ने जब पूर्ववालो की समृद्धि एव धन-सम्पत्ति की यह कहानियाँ सुनी तो इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया कि नक्षत्रो का प्रभाव एव कृपा पश्चिम की अपेक्षा पूर्व पर अधिक है। इसी कारण वहाँ पैदावार का बाहुल्य है। यह अनुमान एक सीमा तक ठीक है, कारण कि भूमि पर घटनेवाली घटनाएँ नक्षत्रो से प्रभावित होती है, किन्तु ज्योतिषियो का दिमाग भूमि-सम्बन्धी उस कारण की ओर नही गया जिनका प्रभाव इस कार्य पर अत्यधिक पड़ता है। वह कारण है पूर्व की बेहद उन्नत

सभ्यता जिसे प्राथमिकता प्राप्त है। जब वहाँ की आबादी अधिक हुई तो वहाँ के कारोबार एव धधे भी बढ गये और उनके कारण देश में धन का सचार होने लगा। इस प्रकार इन स्थानो की समृद्धि का कारण नक्षत्र ही नही, अपितु भूमि सबधी अन्य परिस्थितियाँ भी हैं। उदाहरणार्थ, वहाँ की जनसख्या एव कारोबार की अधिकता।

यही हाल इफरीकिया एव बरक़ा का है कि जब उनकी सभ्यता घटी तो उनकी दशा भी शोचनीय हो गयी। वे दरिद्रता एव फाके के शिकार हो गये। देश का खराज कम हो गया, आय घट गयी। यद्यपि इससे पूर्व शीआ[1] सल्तनत एवं सिनहाजा के राज्य-काल में लोगो की खुशहाली खराज की अधिकता एव लोगो की समृद्धि उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी थी। यहाँ तक कि मिस्र के वाली के व्यय हेतु कैरवान से ही धन जाया करता था। सल्तनत इतनी धनी थी कि जब महदी का सेनापति जौहर अल-कातिब मिस्र विजय हेतु रवाना हुआ तो माल से भरे हुए १००० बोझ ऊँटो पर लदे थे ताकि सेना के वेतन का भुगतान किया जा सके और मुजाहिदो के व्यय में काम आये। यद्यपि उस युग में भी मगरिबवाले इफरीकिया से कम थे, किन्तु धन-सम्पत्ति की कुछ कमी न थी। मुवह्हेदीन के राज्य काल में तो समृद्धि का वातावरण चारो ओर व्याप्त था और खराज बडी अधिक सख्या में प्राप्त होता था। आजब ही मगरिब बडी दुर्दशा को प्राप्त हो गया है और उसकी जनसख्या बेहद घट चुकी है। बरबर क़ौम तो उस क्षेत्र में रही ही नहीं। चारो ओर वीरानी छाई हुई है और सम्भव है कि उसकी दशा और भी शोचनीय हो जाय। एक वह समय था जब भूमध्य-सागर से लेकर सूडान तक, सूस से लेकर बरका तक के प्रदेश सभ्यता में उन्नति पर थे। अब वहाँ सब जगल ही जगल दृष्टिगत होता है। केवल समुद्रीय तट और उसके आस-पास की ऊँचाई पर कुछ आबादी रह गयी है।

(१५) नगरों मे भूमि और गृहों की प्राप्ति में कठिनाई, महर्घता और लाभ

नगरवासी, भूमि, जायदाद एव जागीरो के स्वामी अचानक और एकदम नही हो जाते क्योकि उनके पास इतना धन नही होता जिसे व्यय करके वे बडी बडी जागीरें खरीद सकें। जागीरें शनै-शनै प्राप्त होती हैं और वे भी दो प्रकार से। एक तो बाप-दादा अथवा पूर्वजो की भूमि या जागीर उत्तराधिकार में प्राप्त करके और उसमें वृद्धि

१. फ़ातेमी।

करते-करते उसे बढाकर और दूसरे किन्ही जमीनो, घरो एवं जागीरों पर प्रभुत्व जमाकर। बाज़ारो के रगढग बदलने के समय भी जायदाद पैदा की जा सकती है। यह इस प्रकार पैदा की जा सकती है—जब कोई सल्तनत अपना जीवन-काल समाप्त करके स्थान छोडने लगती है और उसकी सेना कम हो जाती है तथा समस्त व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है, वहाँ के नगर विनाश एव वीरानी की ओर अग्रसर होने लगते है और लोगो की हालत गिर जाने के कारण व्यापार में लाभ कम प्राप्त होता है, प्रत्येक वस्तु का महत्त्व कम हो जाने के कारण लोग अपनी जागीरें और घर कौडियों के मोल वेचने लगते है और उन्हें साधारण वस्तु के समान फेंकने लगते है। तब कुछ लोग इस अवसर से लाभ उठाकर जागीरो एव घरो को साधारण मूल्य पर क्रय कर लेते है और साधारण धन व्यय करके बडी जागीरों के स्वामी बन जाते है। फिर जब दूसरे नये राज्यो की स्थापना होती है तो नगरो में भी नवस्फूर्ति का सचार होने लगता है। हर चीज पर रौनक आने लगती है। तब जागीरों का मूल्य भी वढ़ जाता है और उनको वही महत्त्व प्राप्त हो जाता है जो पहले कभी उन्हें प्राप्त था। उस समय उनको कौडियो के मूल्य पर क्रय करनेवाला नगर के चोटी के धनी लोगों में गिना जाने लगता है। किन्तु उसकी यह सम्पन्नता उसके प्रयत्नो का फल नही होती, अपितु राजनीतिक परिवर्तन, सल्तनतो एव नगरो की उथल-पुथल के फलस्वरूप उसको यह पदवी प्राप्त होती है।

नगरवालो की धन-सम्पत्ति एव जागीरें उनके विलासमय जीवन के लिए पर्याप्त नही होती, न वे उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकती है। हमने पूज्य व्यक्तियो से सुना है कि जागीर एव सम्पत्ति बनाने का उद्देश्य केवल यह होता है कि आगामी सतान होश सँभालने और कमाने योग्य होने तक उनसे जीविका प्राप्त कर सके। जब वह स्वय अपने पाँव पर खडे होने योग्य हो जाय तो उनमें वृद्धि करके अपने वाद आनेवाली सतान के लिए वह उसे छोड़ जाय। कभी-कभी ऐसा होता है कि मरते समय किसी का बालक अल्पवयस्क ही रह जाता है और बुद्धि की कमी एवं शारीरिक दोष के कारण जीविकोपार्जन योग्य नही होता। ऐसी अवस्था में जागीर उसके लिए सतोष का साधन बन जाती है और उसकी जीविका का सहारा होती है। धनी लोगो का जागीर बनाने का उद्देश्य यही होता है कि धनी होकर वे भोग-विलास का जीवन व्यतीत कर सकें।

ऐसा अवसर बहुत कम और वह भी उस समय जब कि राज्यों में परिवर्तन के कारण बाज़ारो का रग पलटता है और क्रय की हुई वस्तु का मूल्य अचानक चढ जाता है, तभी आता है कि हज़ारपति लखपति और लखपति करोड़पति बन जाय। किन्तु

इस प्रकार अचानक धनी वन जानेवाले लोग अन्य धनी लोगो की दृष्टि में वहुत खटकते है और हाकिमो की भी निगाहें उन पर पडती रहती है। वे उनको नही छोडते, अपितु किसी न किसी प्रकार उनसे जागीरें छीन लेते है अथवा साधारण मूल्य पर उन लोगो से क्रय कर लेते है।

(१६) नगरों में पूँजीपतियो को हानि से वचने के लिए प्रभुत्व एवं संरक्षण की आवश्यकता पडती है

जव किसी नगरवासी की धन-सम्पत्ति वढती है और वह जायदाद का स्वामी वन जाता है तो पूरे नगरवालो की दृष्टि उस पर केन्द्रित होने लगती है। वह भोग-विलास एव समृद्धि के वातावरण में पलने लगता है। अमीर एव हाकिम लोग लोभ के कारण उस पर टूट पड़ते है और प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी उपाय से उसकी धन-सम्पत्ति पर अधिकार जमाना चाहता है। इसके लिए वे एक उपाय यह भी करते है कि उसे किसी शाही क्रोध में फाँसकर उसकी धन-सम्पत्ति पर अधिकार कर लेने का प्रयत्न करते है। यत. आजकल की राजाज्ञाएँ न्याय पर आधारित नही होती और उन्हें स्वार्थसिद्धि का साधन वनाया जा सकता है। राजाज्ञाओ का न्यायाधारित्व शरई खिलाफत की ही विशेषता थी जो हज़रत मुहम्मद के उपरान्त शीघ्र ही समाप्त हो गयी। इस विषय में मुहम्मद साहव का यह कथन प्रसिद्ध है कि, "मेरे उपरान्त खिलाफत तीस वर्ष रहेगी, तदुपरान्त निरकुश शासन स्थापित हो जायँगे।"

जव यह स्थिति हो जाती है तो नगर के प्रसिद्ध धनी लोगो को अपने सहायक एव समर्थक रखने पड जाते है और वादशाह के किसी निकटतम सम्वन्धी, विश्वास-पात्र अथवा "असवियत" वाले से उन्हें अपना मेल-जोल वढाना पडता है ताकि उसके द्वारा वे वादशाह की छत्र-छाया में शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें, और लोगो के अत्याचार से अपनी रक्षा कर सकें। यदि वे इस उपाय से कार्य न लें तो शासक एव अन्य अत्याचारी लोग उन पर अत्याचार प्रारम्भ कर दें और सव मिलकर उनकी धन-सम्पत्ति को वाँट लें।

(१७) नगरों की संस्कृति सल्तनतों द्वारा आती है और जव तक सल्तनत अपने पाँव जमाये रखती है तव तक ही उनकी सभ्यता भी वनी रहती है

नगर की सस्कृति की एक ही दशा हरदम नही रहती। समृद्धि एव कौमो के घटने-वढने के साथ-साथ उसमें भी परिवर्तन होता रहता है। जव नगर का जीवन अपनी

प्रवीणता पर आ जाता है तो कलाओ की उन्नति होती है। नाना प्रकार के कुशल एवं योग्य कलाकार तथा शिल्पकार पैदा होते है जो अपनी कला से नगरवालो के जीवन एव स्वभाव में परिवर्तन कर देते है। अब जैसे-जैसे सस्कृति के प्रभाव से लोगो की रुचि में परिवर्तन होता है उसी तरह नाना प्रकार की कलाएँ पैदा होती है और उन्हें उन्नति प्राप्त होती है। जब कुछ समय तक यही स्थिति रहती है तो अभ्यास के कारण कलाकार अपनी-अपनी कलाओ में दक्ष हो जाते है। उनका अभ्यास नित्यप्रति उन्नति करता रहता है। यह उसी दशा में सम्भव होता है जबकि नगर की जनसख्या बढ़ रही हो और नगरवाले भोग-विलास में पल रहे हो। यह सल्तनत की वजह से होता है, कारण कि वह प्रजा से धन-सम्पत्ति वसूल करके अपने विश्वासपात्रो एव आश्रितो पर व्यय करती है और वे बड़े-बडे पद प्राप्त करके समृद्ध होते जाते है। फिर उनकी समृद्धि उनके विश्वास-पात्रो एव आश्रितो को प्रभावित करती है और उनकी धन-सम्पत्ति में नित्यप्रति वृद्धि होती रहती है। उनमें विलास-प्रियता उत्पन्न हो जाती है। सस्कृति एव नगर के जीवन के विभिन्न पहलुओ में वे रुचि लेने लगते है। उनकी रुचि के परिवर्तन के कारण नाना प्रकार की कलाओ का आविष्कार होता है और नगर नाना प्रकार की कलाओं के प्रदर्शन का केन्द्र बन जाता है। इसी वातावरण को हम हजरियत अथवा नगर का जीवन या सस्कृति कहते है।

इसी कारण उन नगरो पर जो हुकूमत से दूर एक कोने में आबाद होते है उनकी जन-सख्या अधिक होने के बावजूद, बदवियतो पर जो छायी रहती है और वे नगर के वातावरण से अपरिचित रहते है। इसके विपरीत जो नगर शासन-केन्द्र के समीप होते है, उन्हें बादशाह की निकटता प्राप्त होती है और वे उसकी धन-सम्पत्ति द्वारा उसी प्रकार सर्वदा लाभान्वित हुआ करते है जिस प्रकार जल अपने बहाव के स्थान को भी हरा-भरा रखता है और उसके आस-पास के स्थान को भी। सक्षेप में जहाँ तक जल की तरी का प्रभाव रहता है, खुश्की नही आती, हरियाली ही दृष्टिगत होती है। हम पूर्व पृष्ठो में यह भी उल्लेख कर चुके है कि बादशाह तथा उसका शासन ससार के लिए बाज़ार सरीखा होता है। माल व अस्बाब बाज़ार में मिलता है अथवा उसके आस-पास। उससे दूर जाइए तो कुछ न मिलेगा। यह बादशाह एव सल्तनत का हाल है। समीप रहने पर सब कुछ मिलेगा, दूर रहने पर कुछ न प्राप्त होगा।

इसके अतिरिक्त सल्तनत का जीवन-काल जितना अधिक होगा और बादशाह एक-एक करके सिंहासनारूढ़ होते रहेंगे, नगर की सस्कृति भी उतनी ही पूरी शान से चमकती ही न रहेगी, अपितु नित्यप्रति बढती रहेगी। जब शाम में यहूदियों की सल्त-

नत जम गयी और १४०० वर्ष तक चलती रही तो नगर की सस्कृति भी उनमें जड पकड़ गयी। उनकी नस-नस में सभ्यता एव सस्कृति की लहर दौड़ गयी और खाने-पीने, वस्त्र एव रहन-सहन के विषयो में उन्होने ऐसी-ऐसी कलाओ का आविष्कार किया जो आज तक प्रचलित हैं। इस प्रकार हम शाम में जो नगर की सस्कृति देखते है वह उन्ही की अथवा उन रूमवालो की यादगार है जिनका शासन ६०० वर्ष तक जमा रहा।

यही हाल किब्तियो का रहा कि उनकी राज्य सत्ता भी ३००० वर्ष तक स्थापित रही और नगर की सस्कृति उनकी नस-नस में प्रविष्ट हो गयी। मिस्र नगर सस्कृति का केन्द्र बन गया। इसके बाद यूनान एव रूमवालो ने उनका स्थान लिया तथा वे उन्ही के पद-चिह्नो पर चले। किन्तु इस्लाम ने शहर के जीवन का तख्ता पलट दिया और नगर की सस्कृति की जड काट दी।

यही हाल यमन का हुआ। वहाँ अरबो का शासन अमालका एव तबाबेआ के राज्यकाल से सहस्रो वर्ष तक स्थापित रहा। अत. नगर की सस्कृति ने भी वहाँ अपने पाँव जमाये।

इराक की भी यही दशा रही कि जब नब्त एव फारसवालो के राज्य वहाँ स्थापित हुए और कलदानी[1], कियानी[2], किसरवी[3] और बाद में अरब सहस्रो वर्ष तक शासन करते रहे, तब नगर की सस्कृति ने वहाँ वह ज़ोर पकडा कि इतिहास उसका दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करने में असमर्थ है। इस प्रकार आज भी शाम, इराक एव मिस्र का नाम नगर की सस्कृति को प्रसिद्धि देनेवालो की प्रथम श्रेणी में है।

उन्दुलुस में देखिए कि जब उसमें कूत[4] और उनके उपरान्त बनी उमय्या के राज्य सहस्रो वर्ष तक स्थापित रहे तो सभ्यता एव सस्कृति को वहाँ भी अत्यधिक उन्नति प्राप्त हुई।

इफरीकिया एव मगरिब की स्थिति इन सबसे पृथक् है। इस्लाम के पूर्व इफरीकिया में कोई बड़ा राज्य स्थापित नही हुआ। कुछ समय तक रूमियो[5] तथा फिरगियो ने इफरीकिया के तटो को अपने अधीन रखा, किन्तु बरबर भी उनसे कभी

१. Chaldaeans.
२. Kayyanids (Achaemenids)
३ Sassanian (al-Kisrawiyah)
४ Gothic
५ Byzantine.

न दबे। वे किलो एव दूरस्थ मैदानो में स्वतन्त्र रहे। मगरिबवाले तो राज्य के समीप भी न पहुँचे। ये लोग कूतो को खराज अदा किया करते थे। जब इस्लाम का अभ्युदय हुआ और इफरीकिया एवं मगरिब पर अरबो को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो प्रारम्भ मे उनको भी जमकर राज्य करने का अवसर न मिला। फिर अरबवाले स्वयं नगर के जीवन से अपरिचित थे, अतः ये लोग नगर की सभ्यता क्या फैलाते? इफरीकिया एवं मगरिब में जो सल्तनतें स्थापित भी हुईं तो उनको नगर की सस्कृति का कोई ऐसा प्राचीन उदाहरण नही मिला जिसके आधार पर वे अपनी सभ्यता को उन्नति देते। कारण कि उनकी अधीन प्रजा बरबर थी जो जन्मजात "बदवियत" में रँगी थी। नगर की सस्कृति से उसका दूर का भी सम्बन्ध न था।

हिशाम बिन अब्दुल मलिक के राज्य काल में जो सुदूर मगरिब से आये बरबरों में कुछ सभ्यता अवश्य पायी जाती थी, किन्तु फिर वहाँ अरब न जम सके और शीघ्र ही बरबर लोगो ने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और इदरीस से बैअत करके राज्य पर अधिकार जमाया। अरब नाममात्र को थे। न उनकी कोई सख्या थी और न प्रभाव। केवल इफरीकिया में अगालेबा के राज्य के साथ अपनी सस्कृति को उन्नति देते रहे और देश की समृद्धि एव कैरवान की जनसख्या की अधिकता के कारण संस्कृति को आश्रय प्रदान किया। फिर कुतामा और उनके बाद सिनहाजा भी इसी परम्परा का अनुसरण करते रहे। उन्होने बहुत बडी सीमा तक सस्कृति को उन्नति दी, किन्तु अभी सस्कृति ने अपनी अवस्था के ४०० वर्ष भी पूरे न किये थे कि वे स्वय समाप्त हो गये और जैसे ही उनकी सल्तनत का अन्त हुआ, नगर की सस्कृति का भी अन्त हो गया। हिलाली नामक अरब बदवियो ने उन पर प्रभुत्व प्राप्त कर लिया।

नगर की सस्कृति के अवशेष केवल किन्ही-किन्ही स्थानो पर रह गये। अब भी उन लोगो में जो कलआ, कैरवान एव महदीया में कभी निवास कर चुके हैं, सभ्यता एव सस्कृति के चिह्न पाये जाते हैं। उनके रहन-सहन एवं जीवन के अन्य पहलुओ में नगर की सस्कृति एव "बदवियत" दोनो मिलकर चमकती है जिसे विवेकवाले नगरवासी साफ पहचान लेते हैं। इसी प्रकार इफरीकिया के अधिकाश नगरो में प्राचीन सस्कृति के अवशेष अब तक मिलते हैं, किन्तु मगरिब मे तो चिह्न भी नही पाये जाते कारण कि इफरीकिया में अगालेबा के समय से शीओ एव सिनहाजा के राज्य-काल तक सस्कृति का ज़ोर रहा।

मगरिब में मुवह्हेदीन के राज्य के साथ सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ। क्योकि मुवह्हेदीन की सल्तनत को उन्दुलुस में बड़ा गौरव प्राप्त था और वहाँ सभ्यता सामान्य

रूप से फैल चुकी थी। अत. वहाँ के लोगो ने मगरिव में पहुँचकर अपनी सस्कृति का प्रतिविम्व डाला और ईसाइयो ने पूर्वी उन्दुलुस से मुसलमानो को निकाला तो वे विवश होकर इफरीकिया में निवास करने लगे और उन्होने वहाँ अपनी सस्कृति फैलायी। इधर तो उन्दुलुस की सस्कृति इफरीकिया में अपना प्रभाव डाल रही थी, उधर मिस्र-निवासी मगरिव एव इफरीकिया में पहुँचकर अपना रग जमाने लगे। इस प्रकार मिल-जुलकर मगरिव एव इफरीकिया में अच्छी खासी सभ्यता फैल गयी। किन्तु जव मगरिव की सल्तनत शक्तिहीन हुई और नगरो की सभ्यता छिन्न-भिन्न हो गयी तो वरवर अपनी मूल दशा पर पलट आये। उनमें वही "वदवियत" एव कठोरता आ गयी। सक्षेप में इस समय मगरिव की तुलना में इफरीकिया में सभ्यता के अधिक चिह्न पाये जाते है। इसका कारण यह है कि मगरिव की अपेक्षा वहाँ देर तक विभिन्न सल्तनतें रही। इसके अतिरिक्त वहाँ के निवासियो में मिस्रवालो के चरित्र की छाप पड़ने की अधिक सम्भावना थी।

इस रहस्य को इस प्रकार समझ लेना चाहिए कि संस्कृति की न्यूनता एव अधिकता का आधार सल्तनत की शक्ति तथा कमज़ोरी, कौम की अधिकता एवं कमी, नगर की छोटाई-वड़ाई एव धन-सम्पत्ति की कमी तथा अधिकता पर निर्भर है।

इस प्रकार सल्तनत सस्कृति का एक ढाँचा है। नगर एवं नागर सभ्यता उसका मास एव खाल हैं और राजस्व एव ख़राज, कला-कौशल और व्यापार उसकी नसो में सचारित वह रक्त है जो शरीर की उन्नति का कारण होता है। इस प्रकार जव वादशाह सहायता के पात्रो एव अपने आश्रितो को धन-सम्पत्ति प्रदान करता है तो वह चल-फिर कर प्रजा में पहुँच जाती है और कर एव ख़राज की आड में उनके पास से पुन राजकोप में पहुँचकर अन्य रूप में सचरणहेतु तैयार हो जाती है। अत. सल्तनत के गौरव के अनुसार प्रजा धनी रहती है और प्रजा के धन-धान्य सम्पन्न होने के कारण सल्तनत का खज़ाना भरा एव मालामाल रहता है। इन दोनो धन-सम्पत्ति एव गौरव का कारण सभ्यता की उन्नति है। अत इस तथ्य को सामने रखकर यदि आप सल्तनतो की हालत को जाँचेंगे तो हमारे कथन को शत-प्रतिशत ठीक पायेंगे।

(१८) नगर की संस्कृति उसकी सभ्यता का मूल, उसकी प्रौढ़ अवस्था की समाप्ति का चिह्न तथा उसके पतन का भी द्योतक है

हम पूर्व पृष्ठो में उल्लेख कर चुके है कि देश एव सल्तनत "असवियत" की अतिम सीमा है और नगर की सस्कृति "वदवियत" की। सभ्यता चाहे जिस प्रकार की हो

"वदवी" हो अथवा नगर की, शहशाहियत हो अथवा सर्वसाधारण से सम्बन्धित, उसकी एक आयु उसी प्रकार होती है जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की। बुद्धि एव लोगो के कथनानुसार मनुष्य का विकास और उसकी उन्नति ४० वर्ष पर समाप्त हो जाती है और फिर वह थोड़े से अवकाश के उपरान्त पतन की ओर अग्रसर होती है। नगर के जीवन एव सस्कृति की भी यही स्थिति है। उनकी भी एक अतिम सीमा होती है जिससे वे आगे नही वढती और वहाँ से वे पतन की ओर अग्रसर होने लगती है। इसका यह रूप होता है कि जब लोगो को सुख एव समृद्धि प्राप्त होती है तो वे स्वाभाविक रूप से सस्कृति के समस्त मार्गों की ओर अग्रसर होते और उनके आदी हो जाते है, भोग-विलास एव ऐश व आराम के नये-नये उपाय सोचते है। फिर इसके साथ-साथ कला-कौशल को उन्नति प्राप्त होती है। जीवन के प्रत्येक पहलू में कला एवं आविष्कार की तरक्की होने लगती है। भोजन, वस्त्र, पोशाक, भवन-निर्माण, फर्श, वरतन, रहन-सहन एव जीवन निर्वाह के समस्त नियमो में नित्य ऐसे नये आविष्कार होने लगते है कि "वदवियत" के युग में उनकी कल्पना भी नही हो सकती। जब नगर का जीवन इस सीमा को पहुँच जाता है तो लोग कामुकता के वश में हो जाते है फिर वे ऐसी अवस्था में पहुँच जाते है कि न वे इस लोक के रहते है, न परलोक के। धर्मनिष्ठता हाथ से निकल जाती है और कुकर्म उन्हें इस ओर नही जाने देते। ससार इस कारण हाथ से निकल जाता है कि अधिक से अधिक आवश्यकताएँ एव महत्त्वाकांक्षाएँ पूरी करने के लिए आय पूरी नही पड़ती।

यह स्पष्ट है कि जब नगर में सस्कृति की संचार होता है तो नगरवालों के व्यय बढ जाते है। तब जैसे-जैसे आबादी अधिक होती है, वैसे-वैसे ही सस्कृति की भी उन्नति होती है। दोनो साथ-साथ चलते है। यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि बडे-बडे नगरो के बाज़ारो में जीविका सबधी आवश्यकताओ का मूल्य अधिक होता है और चीज़ो का भाव चढ़ा हुआ होता है। कर (टैक्स) एव चुगी के प्रतिबध भाव में और भी वृद्धि कर देते है, कारण कि सस्कृति का अभ्युदय उसी समय होता है जब सल्तनत उन्नति की चरम सीमा पर होती है। यही वह युग है कि इसमें शासन को चुगी लगाने के उपाय सूझते है। जब उसके व्यय में वृद्धि हो जाती है तो उसको पूरा करने के लिए उसे इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय दृष्टिगत नही होता कि चुगी वसूल की जाय। चुगी लगने का परिणाम यह होता है कि चीजो का मूल्य बढ जाता है और भाव चढ़ जाते है। यह वात स्पष्ट है कि बाजार के व्यापारी, व्यापारिक सामग्री का मूल्य निश्चित करते समय समस्त व्यय, यहाँ तक कि अपने परिश्रम एव कष्ट का मूल्य भी लगा

लेते है। ऐसी अवस्था में वे चुगी की उपेक्षा किस प्रकार कर सकते है, अत जब असली मूल्य पर चुगी का धन वढता है तो चीजो का मूल्य कही से कही पहुँच जाता है और नगरवासियो के व्यय बढ़ जाते है और वे विवश होकर संयम त्यागकर अपव्यय का आश्रय लेते है। उनके पास इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता। उनकी आदतें पहले से ही विगड चुकी होती है। वे कामुकता एव वासनाओ के वश में होते है। अपने व्यय को घटा न सकने के कारण वे जो कुछ कमाते है सब का सब उडा डालते है। जीवन की इस सीमा को प्राप्त होकर वे दीनता एव दरिद्रता के शिकार हो जाते है। वाज़ारो में चीज़ो का विक्रय एव माँग कम होने लगता है। वाजार ठडे पड जाते है और नगर की दुर्दशा हो जाती है।

ये समस्त दोष सस्कृति के विस्तार से उत्पन्न होते है, फिर यह तो वे दोप है जो नगर के आम वाज़ारो एव आवादी में दृष्टिगत होते है। नगरवासी स्वय भी खरा-वियो से सुरक्षित नही रह सकते। वे विवश होकर अपनी वढी हुई आवश्यकताओ की पूर्ति में अत्यधिक प्रयत्न करते है और इस दिशा में किसी भी उचित एवं अनुचित उपाय को नही छोड़ते। इस प्रकार उनकी आत्मा नित्यप्रति अपमानजनक आदतें एवं स्वभाव अपने में उत्पन्न कर लेती है। दुराचार, व्यभिचार, दुष्टता, छल, धूर्तता अथवा जिस प्रकार सम्भव होता है वे जीविकोपार्जन करते है। वे सदा यही सोचते रहते है कि किसी न किसी चाल से रोज़ी कमायी जाय। इसी कारण आप देखेंगे कि ऐसे सभ्य नगर-वासी झूठ, जुएवाज़ी, धोखेवाज़ी, चालवाज़ी, चोरी, झूठी गवाही तथा व्याज खाने में वडे दक्ष होते है। दुराचार एव व्यभिचार के सभी मार्ग उनके सामने खुले होते है जिनमें से किसी को ग्रहण करने में उन्हें कोई सकोच नही होता और न इस विपय में उन्हें कोई लज्जा ही आती है चाहे किसी निकटतम सवधी का ही मामला क्यो न हो, वे किसी को क्षमा करना नही जानते, यद्यपि "वदवियत" उन्हें अपमानजनक भावनाओ से वाज़ रखती है। फिर इन नगरवासियो को ऐसी युक्तियाँ एव ऐसे उपाय भी खूव आते है जिनसे वे शासन के अत्याचार, कठोरता एव आतक से सुरक्षित भी रह सकते है।

सक्षेप में सभ्यता के वातावरण में प्रत्येक व्यक्ति इन्ही कुकर्मो में ग्रस्त रहता है। केवल ईश्वर ही जिसे वचाये, वह वचा रहता है। इस प्रकार यह समझना चाहिए कि नगर गुडो एव दुराचारियो का एक समुद्र होता है जो हर समय लहरें मारा करता है। वे वालक जो शाही वश अथवा अन्य शरीफ एवं सम्मानित वशो से सम्वन्धित होते है, शिक्षा-दीक्षा की साधारण-सी उपेक्षा के कारण नगर की आवारगी के

बुरी तरह शिकार हो जाते है, कारण कि जहाँ तक मनुष्यो का सम्बन्ध है, सभी मनुष्य एक समान होते है। इनका पारस्परिक भेद-भाव और उनकी एक दूसरे पर प्राथमिकता, उनकी योग्यता एवं श्रेष्ठता तथा अपमानजनक कार्यों से बचने की इच्छा पर निर्भर है। जिसे दुष्कर्म की आदत पड जाती है, उसके लिए कुल एव वश की शुद्धता का कोई मूल्य नही होता और वह उसे अन्य लोगो की दृष्टि में अच्छा प्रामाणित नही कर सकती। आप बहुत-से अच्छे वश एव कुल के लोगो तथा शाही वश से सम्बन्ध रखनेवालो को पायेंगे जो ऐसी ही आवारगी में डूबे रहकर जीविकोपार्जन हेतु अत्यन्त अपमानजनक व्यवसाय करने से नही चूकते। इसका कारण केवल यह है कि नगर के विषैले वातावरण से उनके चरित्र विगड चुकते है और दुष्टता एव बदमाशी का उन पर पूरा-पूरा रग चढ चुकता है। जब नगर अथवा कौम में साधारणत. मानवता को कलक लगानेवाले ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हो जाते है तो ईश्वर उनके विनाश का आदेश दे देता है। वह स्वय कहता है, "जब हम किसी बस्ती को नष्ट करना चाहते है तो हम वहाँ के निवासियो को जो भोग-विलास के आदी होते है, दुराचार में ग्रस्त हो जाने का आदेश दे देते है। अत. आदेश पूरा हो जाता है और हम उसे नष्ट कर देते है।"[1]

इसका कारण यह होता है कि नगरवासियो की आय उनकी बढती हुई इच्छाओ, एवं आवश्यकताओ के लिए पर्याप्त नही होती। इस सम्बन्ध में वे अपनी आय के साधन औचित्य पर ध्यान दिए बिना बढाते है और उनके चरित्र एव आचरण मिट्टी में मिल जाते है। जब नगरवासियो की वैयक्तिक दशा बिगड़ जाती है तो पूरी शासन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है और वे विनाश को प्राप्त हो जाते है। अतः आप कुछ विशेष लोगो को यह कहते हुए सुनेंगे कि नगर मे जब नारगी के वृक्ष अधिक सख्या में बोये जाते है तो वह नगर नष्ट हो जाता है। इसी विचार के अधीन साधारण लोग नारगी का वृक्ष अपने घरो में लगाने से बचते है और उसे अशुभ समझते है। इसका यह तात्पर्य नही कि नारगी के वृक्ष में यह प्रभाव है कि वह नगर अथवा घर को नष्ट कर देता है, अपितु इस कथन का उद्देश्य केवल यह है कि उद्यानो का लगाया जाना और उनमें नहरो का निकालना नगर की सस्कृति एव नगर के जीवन की उन्नति के द्योतक है। नारगी, नीबू एव सरो के वृक्षो के लगाने का हरियाली के अतिरिक्त कोई अन्य उद्देश्य नही। उनमें कोई

१. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।

ऐसा विशेप स्वाद अथवा लाभ नही जिस से उनको वोया अथवा लगाया जाय। इस प्रकार का भोग-विलास नगरवालो की विलासिता एव ऐशपसन्दी का चिह्न है। यही वह सीमा है जहाँ पहुँचकर नगर विनाश का प्रिय भोजन वन जाता है। इसी प्रकार का कथन कनेर के विषय में प्रसिद्ध है। वह भी विनाश का कारण होता है। इसका उद्देश्य केवल यही है कि इस प्रकार के वृक्ष केवल सुन्दरता एवं सजावट के लिए लगाये जाते है। उनके लगाने का उद्देश्य यह होता है कि उनके लाल-लाल एवं सफेद-सफेद फूलो से दृष्टि को आनन्द एव हृदय को प्रसन्नता हो। यह आदतें अनावश्यक विलासिता की चिह्न हैं जो विनाश का द्योतक हैं।

नगर की सस्कृति के दोषो में से एक दोप यह भी है कि वह कामुकता में वृद्धि करता है और भोग-विलास में रुचि पैदा करता है। इसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक अग में दृष्टिगत होता है। खाने-पीने में उत्तम वस्तुओ से रुचि होती है। स्वादिष्ठ भोजनो के विना जीवन निर्वाह नही हो पाता। जव शरीर में उत्तम भोजन पहुँचने लगते है तो नाना प्रकार के दुष्कर्म सूझते है जिनसे मानव का विनाश हो जाता है। सक्षेप में सम्यता की उन्नति की चरम सीमा नगर का जीवन एव सस्कृति हैं और जव उन्हें पूर्ण उन्नति प्राप्त हो जाती है तो पतन प्रारम्भ हो जाता है। उनकी स्थिति पशुओ के समान होती है। जिस प्रकार वे अपनी युवावस्था को प्राप्त होकर वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होते है उसी प्रकार सम्यता भी। हम यहाँ तक कह सकते है कि नगर की सस्कृति विनाश की ओर नही ले जाती, वल्कि वह स्वय विनाश है। वह ऐसे चरित्र का आधार है जो पूर्णत. विनाश है। अत. स्पष्ट हो गया कि मनुष्य वह है जिसमें अपने लाभ को प्राप्त करने एव हानि को रोकने की योग्यता हो और जो इस दिशा में उचित प्रयत्न कर सके।

नगरवासी अपनी आवश्यकताएँ स्वय पूरी नही कर सकता। वह लाभ प्राप्त करने में असमर्थ होता है। कुछ तो वह इस वात की योग्यता ही खो वैठता है, कारण कि वह विलास-प्रिय एव आराम का अभिलाषी हो जाता है और स्वयं अपना कार्य करने का आदी नही रहता, प्रत्येक वात में अन्य लोगो पर निर्भर होता है। कुछ यह भी कि समृद्धि एव भोग-विलास में पल-वढकर अपना काम अपने हाथ से करने में नाक-भौं चढाने लगता है और इसमें अपना अपमान समझता है। यह दोनो आदतें वडी वुरी है। इसी प्रकार नगरवासी अपनी हानियो का भी निराकरण नही कर सकता। इस दिशा में उचित प्रयत्न एव परिश्रम करने का साहस खो वैठता है कारण कि ऐश व आराम के जीवन में पलकर एव नगर के अनुशासन में जीवन व्यतीत

करके वह सौजन्य से शून्य हो जाता है। अपनी हानि के निराकरण के सम्बन्ध में सेना पर पूरा भरोसा करने से उसके कधो पर बोझ हो जाता है। प्रत्येक कष्ट में सैनिक शक्ति की ओर उसकी दृष्टि रहती है। फिर उसमें इस कारण भी दोष आ जाते है कि उसकी आदतें खराव हो जाती है। स्वभाव में अधीनता एव आज्ञाकारिता की भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है। वह प्रत्येक हानि को भुगतने का आदी बन जाता है। उसमें अपनी मर्यादा की रक्षा की भावनाएँ नही रहती। इस प्रकार जब नगरवासी नगर में बस कर न तो अपने चरित्र की ही रक्षा कर पाता है न अपनेध र्म की तो वह वास्तव में मानवता से शून्य हो जाता है और केवल नाम मात्र को मनुष्य रह जाता है।

इस वर्णन का निष्कर्ष यह निकला कि नगर की सस्कृति, सभ्यता एव सल्तनत के लिए वह युग है जिसे हम मनुष्य के जीवन में उन्नति की चरम सीमा कहते है। जिस प्रकार इस सीमा को प्राप्त होकर मनुष्य पतन एव विनाश की ओर अग्रसर होता है उसी प्रकार सभ्यता एव सल्तनत नगर की सस्कृति के बाद शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाती है।

(१९) जब राज्य का पतन तथा अन्त होता है तो राजधानी उसके साथ-साथ नष्ट हो जाती है

जब किसी राज्य में विघ्न पडता है और बिगाड़ उसकी नस-नस में घुस जाता है तो राजधानी अपना जीवन नही सँभाल सकती और शीघ्र नष्ट हो जाती है। इस तथ्य के विभिन्न कारण है। एक यह कि जब किसी प्राचीन सल्तनत का विनाश होता है और उसके स्थान पर नयी सल्तनत प्रारम्भ होती है तो उस पर "वदवियत" छायी रहती है। वह लोगो की धन-सम्पत्ति को लूटने की ओर से हाथ खीचे रहती है। प्रजा पर न राजस्व का और न खराज का अधिक वोझ डालती है और न भारी-भारी कर लगाती है। इसी प्रकार जब आय नही बढती तो व्यय का बोझ भी हल्का रहता है। अप-व्ययिता एव भोग-विलास की ओर उसका कदम नही बढता। जब नयी सल्तनत इस रग-ढग की स्थापित होती है तो उसके कारण राजधानी में बनावट एव दिखावे का वातावरण समाप्त हो जाता है। प्रजा शासक का अनुकरण करने लगती है, कारण कि यह स्वा-भाविक ही है कि प्रजा, राजा के पद-चिह्नो पर चला करती है चाहे, वह अपनी इच्छा से हो (क्योकि प्रत्येक अधीनस्थ व्यक्ति अपने हाकिम एव स्वामी का अधीन होता है) अथवा अपनी इच्छा के विरुद्ध (कारण कि जब शासक भोग-विलास से रुचि नही रखता, अपितु घृणा करता है तो प्रजा को भी उससे पृथक् रहना ही पड़ता है)। इस

प्रकार दिखावे एवं बनावट के समाप्त हो जाने के उपरान्त नगर संस्कृति एवं नागर जीवन की जड़ कट जाती है और नगर अपनी चहल-पहल तथा रौनक़ खो बैठता है। इसे हम विनाश एव वीरानी कहते हैं।

दूसरा कारण यह है कि एक सल्तनत का दूसरी सल्तनत पर प्रभुत्व उसकी पहले की गहरी शत्रुता एव उसकी वजह से युद्ध तथा मारकाट का परिणाम होता है। इस प्रकार जब तक शत्रुता, युद्ध एव मारकाट की सभी श्रेणियाँ पार न कर ली जायँ, एक शक्ति दूसरी शक्ति पर विजय नही प्राप्त कर सकती। शत्रुता का आधार पारस्परिक घृणा एव आदतो का विरोध होता है। अत जब एक शक्ति दूसरी पर प्रभुत्व प्राप्त करती है तो मिटनेवाली शक्ति की हर आदत और स्वभाव प्रत्येक रग-ढग एव आचार-व्यवहार नयी शक्ति की दृष्टि में अत्यन्त निंद्य प्रतीत होता है। वह उसका समूलोच्छेदन करके नयी प्रकार की सस्कृति एवं नागरिक जीवन की नीव डालती है और अपनी राज-व्यवस्था नये ढग से करती है। इस प्रकार इसी परिवर्तन एव उलट-फेर से राजधानी एक बार उजड़ एव वीरान होकर पुन. शनै -शनै. आबाद होने और शोभा प्राप्त करने लगती है। इसी मध्य युग को हम वीरानी एवं विनाश का युग कहते हैं।

तीसरा कारण यह है कि प्रत्येक कौम का एक विशेष वतन होता है जहाँ से उसकी सल्तनत का प्रादुर्भाव होता है। फिर जब वह अपनी विजयो को बढ़ाती है और दूर-दूर के देश अपने अधिकार-क्षेत्र में ले आती है तो उसके अधीनस्थ इलाके उसकी मूल राजधानी के अधीन एव उपांत समझे जाते हैं और विजित नगर असल राज्य से सम्बन्धित समझे जाते हैं। इस कारण कि राजधानी सल्तनत के मध्य में होनी चाहिए सल्तनत अपनी प्राचीन राजधानी को ही अपने राज्य का केन्द्र बनाये रखती है और विजित राजधानी के निवासी, सुल्तान की निकटता के लोभ में केन्द्र की ओर बढ़ने लगते हैं। फलत भरा-भराया एवं सभ्य नगर उजड़ने लगता है। जब सभ्यता का पतन होने लगता है तो नगर के जीवन का अन्त हो जाता है क्योकि नगर का जीवन एव आबादी साथ-साथ बढती है और साथ ही मिटती है, इस प्रकार विजित राजधानी वीरान हो जाती है।

इतिहास इस प्रकार के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है। जब सलजूकियो को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो उन्होने इसफहान को अपनी राजधानी बनाया और बग़दाद ने अपनी शोभा खो दी और उसकी प्राचीन रौनक समाप्त हो गयी। अरब ने अपने राज्य-काल में मदाएन को छोड़कर कूफा एव बसरा को राजधानी बनाया तो मदाएन

पर वीरानी छा गयी। बनी अब्बास ने अपने राज्य-काल में दमिश्क को छोडकर बागदाद को राजधानी बनाया और बनी मरीन ने मगरिब में मराकश को छोड़कर फास को राजधानी बनाया तो प्राचीन राज्य-केन्द्र उजड़ते एव वीरान होते गये। नये नगरो की आबादी प्राचीन नगरो के विनाश का कारण बनने लगी। इसका निष्कर्ष यही निकला कि राज्य का एक नये स्थान को शासन केन्द्र बनाने का अर्थ प्राचीन राजधानी का विनाश होता है।

चौथा कारण यह है कि नया शासन, पिछले शासन के हितैषियो, एव शुभ-चिन्तको को उनके मूल निवास स्थान से दूर दूसरे स्थान पर स्थानातरित कर देना अपना परम कर्त्तव्य समझता है ताकि उनके खतरो से पूर्ण-रूप से रक्षा हो सके। प्राचीन राजधानी में जो लोग रहते, बसते है उनमे विजित शासन के हितैषियो की अधिकता होती है और वे विभिन्न रूप मे शासन से सम्बन्धित होते है। अधिकाशत. तो शासन के आश्रित होते है। उसके प्रति अपनी आस्था को किस प्रकार भुला सकते है प्रभुत्व एव "असबियत" से वे भले ही वचित हो चुके हो, किन्तु हृदय से अपनी निष्ठा के कारण पिछले शासन के साथ होते है। उधर नये शासन का यह दृष्टिकोण होता है कि जिस प्रकार उसके द्वारा पिछली हुकूमत मिटी है उसी प्रकार उसके अवशेष एव चिह्न तक मिट जायँ। अत उसके लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता कि प्राचीन शासन से सहानुभूति रखनेवालो को भी अपनी राजधानी में स्थानातरित कर ले। कुछ को वन्दी बना कर, कुछ पर कृपा दृष्टि प्रदर्शित करके अपने पास बुला ले। प्राचीन राजधानी में इस प्रकार जन-साधारण, श्रमिको एव कृषको के अतिरिक्त कोई अन्य नही रह जाता। जो लोग निकल कर चले जाते है उनके स्थान पर नगर की रक्षा हेतु सेना रखी जाती है। जब राजधानी इस प्रकार प्राचीन राज्य के समर्थकों से रिक्त हो जाती है तो आबादी में अत्यधिक विघ्न पड़ जाता है।

फिर नये राज्य के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह अपनी श्रेणी एव दृष्टि-कोण के अनुसार कोई नवीन सभ्य नगर बसाये। इसका उदाहरण इस प्रकार दिया जा सकता है कि जिस तरह किसी आदमी के पास किसी विशेष प्रकार का एक घर हो और जब उसके दिन फिर जायँ और वह वर्त्तमान आवश्यकताओ एव रुचि के अनुसार उसका निर्माण कराना चाहे तो फिर उसके लिए इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नही होता कि वह उसे तुडवा कर दूसरे नये घर का निर्माण कराये और उसे नवीन प्रकार से तैयार कराये। ससार के इतिहास से पता चलता है कि राजधानियो में इस प्रकार के परिवर्तन बार-बार होते रहते है। हम ने इसे स्वय अपनी आँखो से देखा है।

एक सल्तनत के मिटने पर उसकी राजधानी के नष्ट होने का स्वाभाविक कारण यह है कि सल्तनत का सभ्यता से वही सम्बन्ध है जो सभ्यता का धातु से। धातु का रूप उसे तत्सम्बन्धी विशेष दृष्टि के सहारे सुरक्षित रखता है। यह निश्चय हो चुका है कि धातु एव रूप एक दूसरे से पृथक् नही हो सकते। इसी प्रकार सल्तनत के अस्तित्व की सभ्यता के बिना कल्पना नही हो सकती, कारण कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से अत्याचार एव उद्दडता, दुराचार और धूर्तता लेकर पैदा हुआ है जिसका निराकरण किसी राज्य-सत्ता तथा न्यायकारी के बिना सम्भव नही। हाकिम अपनी राजनीति द्वारा शासन करना चाहता है, चाहे वह सल्तनत शरा के अनुसार हो और चाहे देश के हितानुसार। सक्षेप में सभ्यता के लिए सल्तनत का अस्तित्व अनिवार्य है। अब यह ज्ञात हो गया कि सभ्यता तथा सल्तनत दोनो का अस्तित्व एक दूसरे के बिना नही हो सकता, एक का अस्तित्व दूसरे का अस्तित्व है और एक का विनाश दूसरे का विनाश है। यदि इनमें से एक में विघ्न पड़ जाय तो दूसरे में विघ्न पडना अनिवार्य होता है। यदि सल्तनत की नीव हिल जाय तो देश अपने अस्तित्व को किसी प्रकार स्थापित नही रख सकता। इस प्रकार रूम, फारस, एव अरब तथा बनी उमय्या एव बनी अब्बास की सल्तनतो की यही दशा हुई। वैयक्तिक सल्तनत के पतन के विषय में उपर्युक्त सिद्धात लागू नही किया जा सकता। उदाहरणार्थ, नौशीरवाँ, हरकुल[1], अब्दुल मलिक बिन मरवान तथा रशीद की सल्तनतें जब अपने-अपने समय पर बदली तो कौमी प्रभुत्व पर कोई प्रभाव नही पड़ा और सभ्यता उसी प्रकार की रही, कारण कि बाद में आनेवाला प्रत्येक बादशाह सभ्यता के अस्तित्व का रक्षक एव उसकी स्थापना के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुआ। राज्य के नियमो एव सिद्धातो में अगले-पिछले बादशाह एक दूसरे से मिलते-जुलते रहे। अत. उनका परिवर्तन सभ्यता को कुछ अधिक प्रभावित न कर सका। इसका भी कारण यह है कि सल्तनत जो वास्तव में सभ्यता को प्रभावित करती है, और उसके अस्तित्व का कारण है, पूर्ण रूपसे प्रभुत्व एवं "असबियत" पर अवलम्बित है। वह शखसी बादशाहो के परिवर्तन से नही बदलती, अपितु उसी प्रकार वर्त्तमान रहती है। यदि एक "असबियत" मिट कर, दूसरी "असबियत" उसका स्थान ले और पहली "असबियत" वाली कौम पूर्ण रूप से नष्ट हो जाय तो नि:सन्देह देश में बहुत बडी उथल-पुथल हो जाती है और सभ्यता का स्थान वीरानी ले लेती है। ईश्वर में जो वह चाहे करने की शक्ति है। "यदि वह उन्हें नष्ट करना

१. Heraclius.

चाहे तो वह नष्ट कर देता है और नये प्राणियो का सर्जन कर देता है। ईश्वर के लिए यह कठिन नही[1]।"

(२०) कुछ कलाएँ विशेष रूप से नगरो में पायी जाती हैं

यह एक खुला तथ्य है कि नगरवालो के कर्त्तव्य एव आचरण एक दूसरे की सहायता के विना जन्म नही पा सकते, कारण कि मनुष्यो की सभ्यता स्वाभाविक रूप से पारस्परिक सहयोग पर निर्भर है। जिन कार्यो की जन-साधारण को अधिक आवश्यकता होती है, उनके लिए कुछ लोग अपने आपको विशेष रूप से पृथक् कर लेते है। वे उनमें कुशलता एव दक्षता पैदा कर लेते है और उन्ही उद्योग-धधों को अपनी जीविकोपार्जन का साधन समझते है, कारण कि वे जानते है कि नगर की सभ्यता का अस्तित्व उन कार्यो के बिना हो ही नही सकता। जिन उद्योग-धंधो की नगरवालो को साधारणत. आवश्यकता नही होती वे वडी शोचनीय दशा में रहते है। कोई उनकी ओर ध्यान नही देता। दरजी, बढई, लोहार इत्यादि ऐसे पेशेवाले है कि नगर का कार्य इनके बिना चल ही नही सकता। अब रहे ऐसे पेशे जो केवल मनोरजन एवं तफ़रीह के साधन होते है, और आर्थिक आवश्यकता के समाधान में उनका कोई स्थान नही होता। वे ऐसे नगरो में पाये जाते है जो सभ्यता की चरम सीमा पर होते है और नगर के जीवन एव सस्कृति के केन्द्र होते हैं। उदाहरणार्थ, शीशा बनानेवाले, सुनार, इत्र बेचनेवाले, भटियारे, नानबाई, फर्राश, इत्यादि। फिर ये पेशे भी प्रत्येक सभ्य नगर में एक प्रकार से नही पाये जाते। नगर की सस्कृति जितनी उन्नति करती है, नगर के इस प्रकार के पेशों को उतनी ही उन्नति प्राप्त होती है और वे बढते जाते हैं। अत. यह हो सकता है कि एक नगर में ये पेशे कम हो और एक में अधिक।

देख लीजिए कि हम्माम[2] बडे सभ्य एवं आबाद नगरो में ही पाये जाते है, कारण कि लोगो की समृद्धि एव खुशहाली के साथ-साथ इनका अस्तित्व परमावश्यक हो जाता है, किन्तु एक औसत आबादी के नगर में हम्माम कम सख्या में मिलेगे। वहाँ यदि किसी बादशाह अथवा हाकिम ने हम्माम बनवा भी लिया तो इस कारण कि साधारण आबादी को इनकी आवश्यकता नही होती, वे शीघ्र ही टूट-फूट कर नष्ट हो

१ कुरान शरीफ से उद्धृत।
२. सार्वजनिक स्नानगृह अथवा गरम जल के स्नानगृह।

ते है और उनके प्रवधक लाभ न होने के कारण उनका प्रवंध छोड़कर भाग जाते "ईश्वर अपने हाथ दृढतापूर्वक वन्द रखता है, किन्तु उन्हें खोल भी देता है[1] ।"

(२१) नगरो में "असबियत", एक दूसरे पर प्रभुत्व

मनुष्य स्वाभाविक रूप से आपस में एक दूसरे के साथ मेल-जोल एव मेल-मिलाप ने का आदी है भले ही कुल का सम्बन्ध उनमें न हो। किन्तु कुल के सम्बन्ध के आधार जो मेल-जोल होता है वह वडा दृढ होता है और कुल के विना कमजोर। सक्षेप यद्यपि कुल का सम्बन्ध न भी हो तो भी एक प्रकार की "असवियत" अवश्य पैदा. ती है। नगरवालो में से वहुत से लोग वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा जुड जाते हैं और एक एव एक रिश्ते के हो जाते हैं। फिर उनमें वही शत्रुता एव सत्यता की भावनाएँ पी जाती है जो विभिन्न कवीलो एव समूहो मे मिलती हैं। उनकी अलग-अलग लियाँ वन जाती है और प्रत्येक "असवियत" पृथक् हो जाती है। जव सल्तनत में द्ावस्था के चिह्न दृष्टिगत होने लगते है और राज्य की विभिन्न दिशाओ में उसका ाव समाप्त होकर उसकी शक्ति राजधानी में ही सीमित हो जाती है, तव नगर-ले इस चिन्ता में ग्रस्त हो जाते है कि उनका प्रभुत्व किस प्रकार स्थापित रखा जा कता है और उनके नगर की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है। वे परस्पर एक रे से परामर्श करते है और साधारण एव श्रेष्ठ तथा ऊँच-नीचका भेद-भाव करने ाते हैं। यत मनुष्य में स्वाभाविक रूप से यह भावनाएँ पायी जाती है कि वे दूसरे : प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हैं। अतः देश के प्रतिष्ठित लोग शक्तिशाली वादशाह । न पाकर अपना पृथक् स्वतत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करने लगते है और उद्देश्य हेतु परस्पर लडते-झगडते है। प्रत्येक अपने दासो, आश्रितो एव सहायको वल पर उठता है और नगर के दुष्टो को धन-सम्पत्ति देकर अपनी ओर मिलाने ा प्रयत्न करता है। इस प्रकार एक दूसरे से गुथकर अन्त में एक दूसरे पर अधिकार मा ही लेता है। फिर वह अपने साथियो एव हितैपियो को कृपा एव दया द्वारा म्मानित करता है और शत्रुओ को मौत के घाट उतारता अथवा निर्वासित करता , ताकि विरोधियो के ज़ोर-शोर एव शक्ति को पूर्ण रूप से कुचल दे और फिर किसी ो सिर उठाने की शक्ति न हो। अत इस प्रकार विजयी शक्ति को नगर में स्वतत्र

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

राज्य स्थापित करने का अवसर मिल जाता है और फिर सल्तनत एक नस्ल से दूसरी नस्ल में चलती रहती है।

इस नयी सल्तनत को स्वय उन्ही हालतों का सामना करना पडता है जिनका एक वडी सल्तनत को। उदाहरणार्थ, वह बाल्यावस्था से युवावस्था अथवा उन्नति की चरम सीमा को प्राप्त होती है। तदुपरान्त वृद्धावस्था की ओर और फिर विनाश की तरफ अग्रसर होती है।

कभी-कभी ऐसी छोटी सल्तनतें बडी सल्तनतो के रग-ढग पर चलने लगती है और उनका बादशाह उन बडे बादशाहो की वराबरी का दावा करता है जो कबीलो एव समूहो के स्वामी तथा "असबियत" वाले होते हैं, जो महान् युद्ध करता है और जिसका राज्य दूर-दूर तक के देशो तक फैला होता है। यह इस प्रकार होता है कि नया बादशाह भी सिंहासनारूढ होता है, सशस्त्र सेनाएँ राज्य की विभिन्न दिशाओ में भेजता है, शाही फरमानो के लिए मुहरें तैयार होती हैं, लेखा एव निरीक्षण-विभाग स्थापित होते हैं, इनशा[1] एव दीवानी विभागो की स्थापना होती है। सक्षेप में उसका रग-ढग कुछ ऐसा बदल जाता है कि उसको देखकर शिक्षा प्राप्त होती है एव आश्चर्य होता है कि प्राचीन सल्तनत का ज़ोर टूट जाने और कुछ सम्बन्धियो के आपस मे मिलकर "असवियत" पैदा करने से नयी सल्तनत क्या से क्या हो गयी। कभी-कभी ऐसा होता है कि नयी सल्तनत सरलता को ही अगीकार किये रहती है और अपने आपको ससार के समक्ष व्यग का विषय नही बनाती।

इस प्रकार इफरीकिया में जब हफसिया राज्य शक्तिहीन हो गया और अन्त में उसकी ऐसी दुर्दशा हो गयी कि बीसियों वर्षों तक वह सँभल न सकी तो जरीद, तराब्लस, गेब्स, तोजर, नफता, कफसा, विस्करा एव जाब सरीखे नगरो में ऐसी ही अराजकता स्थापित हो गयी। प्रत्येक नगर में पृथक् हाकिम का राज्य था। वही अपने परगने एव एलाके का शासन-प्रबध करता और राजस्व तथा कर वसूल करता था। यद्यपि वे लोग प्राचीन सल्तनत की अनुयायिता का भी दावा करते थे, किन्तु अपनी मृत्यु के समय वे अपनी सतानो को अपना उत्तराधिकारी वना गये जिन्होने कुछ ही दिनो में अत्याचार एव कठोरता से लोगो को तग कर डाला और मलिको एव सुल्तानो की सतानो के उसी प्रकार के चरित्र एव नियमो पर चलकर अशान्ति उत्पन्न कर दी। वे अपनी दशा को भूलकर सुल्तान कहलाने लगे। अततोगत्वा "अमीरुल मोमिनीन"

१. पत्र-व्यवहार का विभाग।

अब्बास ने इस उपद्रव को शात किया और जो स्थान उनके अधिकार में आ गये थे, उन्हें उनसे छीन लिया।

सिनहाजा की सल्तनत के अन्तिम युग में जरीद के एलाक़ो में भी विभिन्न स्थानो पर अव्यवस्था फैल गयी थी और सल्तनत का प्रभाव पूर्णत समाप्त हो गया था। यहाँ तक कि शेखुल मुवहहेदीन और उनके बादशाह अब्दुल मोमिन ने उन्हें देश एव राज्य से निर्वासित करके मगरिब की ओर भगा दिया और जरीद के पूरे एलाक़े से उनके प्रभाव को समाप्त कर दिया। इसी प्रकार बनी अब्दुल मोमिन के अतिम राज्य काल में सिब्ता[1] की यही दशा हुई थी कि वहाँ भी अमीरो एव रईसो ने अत्यधिक उद्दडता प्रदर्शित की थी और अपने आपे से बाहर निकल गये थे।

यह आपने उन उच्च वशवाले रईसो एवं अमीरो के प्रभुत्व का हाल सुना जो नगर में सम्मानित एव प्रतिष्ठित होते है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि नगर के निम्न वर्ग के एवं दुष्ट तथा दुराचारी लोग विद्रोह कर देते है और अपने कुछ साथियो के सहयोग के ज़ोर पर एव उनकी "असबियत" की सहायता से ऐसा ज़ोर पकड़ लेते है कि नगर के सम्मानित एव प्रतिष्ठित लोग भी उनसे दब जाते है, कारण कि उनकी "असबियत" तो समाप्त ही हो चुकती है, अत मुकाबले की शक्ति वे पैदा ही कहाँ से कर सकते है।

"ईश्वर में अपने आदेशो को मनवा लेने की शक्ति है"[2]

(२२) नगरवालो की भाषा

नगरवाले प्राय उस कौम की भाषा का अनुसरण करते है जो उस पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार पूर्व से पश्चिम तक के सभी इस्लामी नगरो में अरबी भाषा आज तक प्रचलित है, यद्यपि मूल मुज़र अरबी भाषा एव उसके एराब[3] दोनो में दोष आ चुके हैं। इसका कारण यही है कि इन नगरों में बसनेवालो के धर्म पर इस्लामी सल्तनत का जब प्रभुत्व स्थापित हुआ तो अधीनस्थ क़ौमें अपनी भाषाएँ भुला बैठी और इस्लामी भाषा अरबी के अधीन हो गयी। यह बात स्पष्ट है चूँकि मुहम्मद साहब अरबी थे, अत इस्लाम धर्म भी अरबी भाषा में आया और जो कौमें इस धर्म

१ Ceuta.

२ कुरान शरीफ से उद्धृत।

३ ज़बर, ज़ेर और पेश।

को स्वीकार करती गयी वे अपनी भाषाओ को छोड़कर अरबी भाषा को स्वीकार करती गयी।

हज़रत उमर ने अजमियो में प्रचलित महाविरो के प्रयोग का निषेध कर दिया था। आपका कथन था कि यह "खिब" अथवा छल एव धूर्तता है। जब धर्म ने अजमी भाषाओ की पूर्णत उपेक्षा की और मुसलमानो की भाषा अरबी हो गयी तो अजमी भाषाएँ स्वत. मिट गयी, कारण कि प्रजा अपने आचार-व्यवहार एव धर्म में अपने बादशाह का अनुसरण करती है, अत अरबी भाषा इस्लामी राज्यो में प्रविष्ट हो गयी और अरब की आज्ञाकारिता का चिह्न समझी जाने लगी। समस्त इस्लामी नगरो एव देशो में प्राचीन भाषाएँ पूर्णतः नष्ट हो गयी और प्रत्येक दिशा में अरबी की ही चर्चा होने लगी। स्थानीय भाषाओ को विदेशी भाषाओ का स्थान प्राप्त हो गया, किन्तु इसके साथ-साथ अरबी भाषा भी दोषो एव परिवर्तनों से सुरक्षित न रह सकी। अन्य भाषाओ के शब्द इसमें सम्मिलित हो गये। वाक्यो के रूप में परिवर्तन होने लगा। फिर इस मिश्रित भाषा का नाम हज़री[1] भाषा रखा गया, कारण कि समस्त इस्लामी नगरो में यही प्रचलित और इसी को उन्नति प्राप्त थी।

एक कारण यह भी है कि आज तक इस्लामी नगरो मे उन्ही अरबो की सताने रहती-बसती चली आयी है जिन्होने उन पर अधिकार जमाया और जिनका जीवन सभ्य जीवन है, कारण कि वे अजमियो की भूमियो एव देशो के स्वामी बनकर समृद्ध हो चुके थे। फिर उनके उपरान्त उनकी भाषा उनकी सतान में विरासत के रूप में आयी और उनकी भावी सतानें अपने पूर्वजो की भाषा बोलती-चालती रही, यद्यपि उसमें कुछ अजमी शब्द मिश्रित हो गये। सक्षेप में अरबी ही प्रचलित रही। इस प्रकार अरबी सर्वदा नगरवासियो एव हजरियो की भाषा समझी गयी। इसको हजरी भाषा की उपाधि प्राप्त हुई। बदवी भाषा पूर्व की भाँति अजमी शब्दो के मिश्रण से सुरक्षित रही।

जब पूर्व में देलम एव सल्जूकियो को प्रभुत्व प्राप्त हुआ और पश्चिम में जनाता एव बरबर ने अपना अधिकार जमाया और इस्लामी देशो में उन्ही को प्रभुत्व प्राप्त हो गया तो अरबी भाषा में अत्यधिक दोष उत्पन्न हो गये और वह नष्ट ही हो जाती यदि मुसलमान किताब[2] एव सुन्नत जो धर्म के स्रोत है की आड़ में अरबी भाषा की रक्षा अपना परम कर्त्तव्य समझ कर उसकी रक्षा के लिए हर प्रकार से कटिबद्ध

१. नगरवालों की।
२. कुरान शरीफ।

न हो गये होते। जब समय के परिवर्तन से तातारियों एव मुगलो को प्रभुत्व प्राप्त हुआ तो इस्लाम से उनके अपरिचित होने के कारण किताव एवं सुन्नत की आड भी समाप्त हो गयी और फिर अरबी भापा का सभी स्थानो से अन्त हो गया। इस्लामी देशो, इराक, खुरासान, फारस, हिन्द, सिन्ध, मावराउन्नहर, शाम एव रूम के देशो में भी उसका दबदबा समाप्त हो गया। कविताओ एव पद्यो में भी अरबी का प्रयोग समाप्त हुआ। केवल कही-कही पाठ्यक्रमो में अरबी भापा सम्मिलित रह गयी और वह भी उन्ही लोगो तक जिन्हें ईश्वर ने उससे रुचि प्रदान की। धर्म (इस्लाम) के साथ-साथ मिस्र, शाम, उन्दुलुस एव मगरिब में अरबी भापा को कुछ स्थायित्व प्राप्त हुआ है। अन्य इस्लामी देशो में तो अरबी भापा का चिह्न तक मिट गया। यहाँ तक कि पाडित्य-पूर्ण ग्रथ अजमी[1] भापा में लिखे जाने लगे है और पठन-पाठन में भी अजमी भापा प्रचलित है।

१. ग़ैर अरबवालो की।

अध्याय ५

जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन

(लाभकर कार्य, कला-कौशल और
तत्सम्बन्धी अन्य समस्याएँ)

(१) जीविकोपार्जन तथा लाभ के वास्तविक अर्थ, लाभ ही मनुष्य के परिश्रम का मूल्य है

मानव स्वभावत. खाद्य सामग्री एकत्र करना अनिवार्य समझता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक वह क्षण भर के लिए भी अपनी इस आवश्यकता की उपेक्षा नही कर सकता और वास्तव में सग्रह की उपेक्षा करना ईश्वर का ही गुण है। मनुष्य को नाना प्रकार की आवश्यकताओ के लिए दूसरों का मुँह देखना पडता है। मनुष्य की आवश्यकताओ को दृष्टि में रखकर ही ईश्वर ने समस्त प्राणियो को उसके लाभार्थ पैदा किया है और कुरान शरीफ में जगह-जगह पर इस परोपकार का उल्लेख किया गया है। वह कहता है, "उसने ज़मीन तथा आसमान में जो कुछ है वह सब तुम्हारे लिए पैदा किया है। उसने सूर्य तथा चन्द्रमा को तुम्हारे अधीन किया है। उसने समुद्र को तुम्हारे अधीन किया[1]। उसने आकाश-मडल को तुम्हारा वशवद किया और पशुओ को तुम्हारे अधिकार मे किया।" मनुष्य को ईश्वर ने अपना उत्तराधिकारी वनाया है। अतः उसको ससार की समस्त वस्तुओ पर प्रभुत्व भी उसने प्रदान किया है, किन्तु केवल एक मनुष्य सब पर अधिकार नही जमा सकता, अपितु सब मिल-जुलकर संसार की वस्तुओं का अपने लाभार्थ प्रयोग करते है। जो वस्तु एक मनुष्य को प्राप्त हो जाती है दूसरा विना उसका मूल्य चुकाये हुए उसे नही हासिल कर सकता। अत. जब मनुष्य निर्बलता के चक्र से निकल कर कुछ शारीरिक शक्ति प्राप्त करता है तथा जीविकोपार्जन के लिए हाथ-पाँव मारता है तो वह जो कुछ इस प्रकार कमाता है उसको अपने आवश्यकतानुसार व्यय करता है तथा चीजो का मूल्य चुकाता है। ईश्वर ने कहा है कि "ईश्वर से ही रोजी माँगो।"[1] कुछ वस्तुएँ ऐसी भी है जो बिना मूल्य मिल जाती है। उदाहरणार्थ, वर्षा का जल, कृषि एव अन्य कार्यों के लिए बिना मूल्य ही प्राप्त होता है। किन्तु केवल यह जल ही रोजी के लिए उस समय तक पर्याप्त नही होता जव तक मनुष्य उसके साथ अपना प्रयत्न एव उद्योग भी सम्मिलित न करे। यदि इस परिश्रम से मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ, जिनके बिना उसका जीवन असम्भव

१. कुरान शरीफ़ से उद्धृत।

है, पूरी हो जायें तो इस प्रकार के परिश्रम के मूल्य को लाभ कहा जाता है और यदि आवश्यकता से अधिक एकत्र हो जाय तो उसे पूँजी कहते हैं।

मनुष्य जो जीविकोपार्जन करता है उससे यदि वह केवल अपने आपको लाभ पहुँचाये और उसे व्यय करके वह स्वय उससे लाभ कमाये, उसे अपनी आवश्यकताओ पर व्यय करे तो यह लाभ वास्तव में उसके लिए रोज़ी कहलायेगा। मुहम्मद साहब ने कहा है कि "तुम्हारी धन-सम्पत्ति वास्तव में वही है जिसे तुम खाकर समाप्त कर देते हो अथवा पहिनकर फाड डालते हो या दान में देकर व्यय कर देते हो।" यदि कमानेवाला अपनी कमाई से लाभ न उठाये और उसे अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति में व्यय न करे तो वह उसके लिए रोजी नही, केवल उसके परिश्रम का मूल्य है जो कि उसके प्रयत्न से प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, 'तरके' को ले लीजिए, यह मरनेवाले के लिए लाभ है रोज़ी नही, कारण कि वह उससे कोई नफा नही उठा सकता। जब उनके उत्तराधिकारी उससे लाभान्वित होगे तो वह उनके लिए रोजी बन जायगा। सुन्नी मुसलमान उसी को रोज़ी कहते हैं। मोतज़ेला रोज़ी के लिए वे यह शर्त लगाते हैं कि उस पर उचित रूप से अधिकार प्राप्त हुआ हो, यदि ऐसा नही है तो वह उनके निकट रोज़ी नहीं। इसी कारण उन्होने अपहरण की हुई एवं हराम वस्तुओ को रोज़ी के क्षेत्र से निकाल दिया है और वह उन्हें रोज़ी नही मानते, यद्यपि ईश्वर अपनी कृपा तथा दया द्वारा अपहरणकर्त्ता, ज़ालिम, धर्मनिष्ठ मुसलमान तथा काफिर सभी को रोज़ी पहुँचता है, किन्तु वे इसके लिए बहुत-सी दलीलें भी देते हैं जिनके उल्लेख का यह उपयुक्त स्थान नही है।

लाभ के लिए परिश्रम एव उद्योग की आवश्यकता पड़ती है। रोज़ी कमाने के लिए प्रयत्न, परिश्रम, कोशिश तथा दौड-धूप की अत्यधिक आवश्यकता होती है। ईश्वर का आदेश है कि, "ईश्वर से ही रोज़ी माँगो[1]।" क्योंकि प्रयत्न इन आदेशो तथा दैवी प्रेरणा से सम्बन्धित है और उसी पर निर्भर है। अत प्रत्येक कार्य ईश्वर की ही शक्ति से सम्पन्न होता है, किन्तु इसका यह अर्थ नही कि मनुष्य हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाय। इसके लिए मनुष्य को कार्य करने की भी आवश्यकता पड़ती है। यदि किसी कला-कौशल को जीविकोपार्जन का साधन बनाया जाय तो स्पष्ट है कि उसमें अन्तत कार्य करना ज़रूरी रहेगा। यदि कोई पशुओ, वनस्पतियो अथवा खनिज

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

पदार्थ आदि का स्वामी है तो उसके लिए भी परिश्रम करना परमावश्यक होता है, अन्यथा उसे किसी प्रकार का कोई लाभ नही हो सकता।

फिर यह भी अपने स्थान पर सत्य है कि खनिज पदार्थों में सोना-चाँदी को ईश्वर ने पूँजी का मूल्य प्रदान किया है। ससारवाले प्राय इसी से भडार भरते है। यदि इसके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु का वे सग्रह करते है तो उसका उद्देश्य भी यही होता है कि उससे सोना चाँदी प्राप्त हो सके कारण कि यह दो उत्तम खनिज पदार्थ ऐसे हैं जो वाजार के उतार-चढाव तथा बाज़ार के ख़तरो से भी मुक्त रहते हैं। अत यही कमाई का मूल उद्देश्य एव भडार तथा ख़ज़ाने की वास्तविक सम्पत्ति है। जब यह सब तथ्य सामने आ गये तो यह समझ लिया जाय कि मनुष्य जिस वस्तु को लाभ-दायक जानकर जमा करता तथा प्राप्त करता है, यदि वह केवल कला-कौशल की किस्मो मे से है तो उसमें लाभ, प्रयत्न एव परिश्रम द्वारा प्राप्त होगा, कारण कि कला-कौशल में उद्योग के अतिरिक्त और है ही क्या। यदि कला-कौशल के साथ कोई और भी वस्तु सम्मिलित हो, उदाहरणार्थ वढई और जुलाहे की कला में लकडी तथा सूत का भी हाथ हो, तो उसमें मूल्य अधिकाश परिश्रम का ही होगा। यदि लाभ कला-कौशल की किस्मो में से नही है तो उसमें भी परिश्रम का हाथ होगा क्योकि उद्योग के विना लाभ का अवसर ही प्राप्त नही हो सकता।

इसके अतिरिक्त कभी-कभी परिश्रम का हाथ स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है और पूँजी में उसका हिस्सा चाहे कम हो चाहे अधिक, लगाया अवश्य जाता है। कभी परिश्रम का वाह्य रूप से हाथ नही दिखाई देता, उदाहरणार्थ अनाज इत्यादि के भावो में जिनमें पूँजी तथा परिश्रम दोनो पर ध्यान रखा जाता है। किन्तु जिन देशों में सुगमतापूर्वक कृषि हो जाती है वहाँ परिश्रम का भाग उसके भाव में दृष्टिगत नही होता। वहुत कम लोग ही समझते हैं कि अनाज के भाव में परिश्रम भी सम्मिलित है। अत. इस वर्णन से यह वात स्पष्ट हो जाती है कि लाभ सव का सव या उसका अधिकाश भाग परिश्रम का ही मूल्य है। साथ ही साथ यह वात भी स्पष्ट हो गयी कि परिश्रम एव रोजी का वास्तविक तथ्य क्या है, जो वस्तु लाभदायक सिद्ध हो वही रोजी वन सकती है।

जिन नगरो की जनसख्या कम होती है उनमें क्योकि मानव के परिश्रम की कमी होती है, अत उसी अनुपात से रोज़ी की भी कमी हो जाती है। जिन नगरो की आवादी अधिक होती है उनमें उसी अनुपात से रोजी का बाहुल्य होता है, लोग सुखी एव धन-धान्य सम्पन्न होते है। इसका यही कारण है कि जब किसी नगर की जनसख्या

घटने लगती है तो साधारण लोग कहा करते हैं कि वहाँ अब रोजी का द्वार बन्द हो गया। वहाँ की बहती हुई नहरें तथा उबलते हुए झरने सूख जाते है, कारण कि नहरो तथा झरनो के लिए खुदाई एव सफाई की आवश्यकता होती है। जब जनसख्या ही कम हो गयी तो यह कार्य कौन करे ? यदि उन बडे नगरो को देखा जाय जिनमें किसी समय बड़ी घनी आबादी थी तो पता चलेगा कि उनमें हर तरफ नहरो के जाल बिछे हुए थे। जब वे उजडे तो उन नहरो का पानी भी सूख गया और समस्त भू-भाग सूखा मैदान दिखाई पडने लगा।

'ईश्वर ही रात्रि तथा दिन का निर्धारक है"[1]

(२) जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन तथा उनकी किस्मे

जीविकोपार्जन रोज़ी की इच्छा एव उसके लिए प्रयत्न एव परिश्रम को कहते हैं। मआश[2] शब्द "ऐश[3]" से निकला है जिसका अर्थ जीवन है। क्योकि जीवन जीविकोपार्जन एव परिश्रम तथा उद्योग पर निर्भर है, इसी कारण उसको "मआश" कहा गया।

१—जीविकोपार्जन के कई साधन हैं। उनमें से पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त होने पर राज्य के विधान के अधीन अन्य लोगो से कर तथा खराज के रूप में कुछ द्रव्य या वस्तु प्राप्त करना जिसे कर या खराज कहा जाता है, सर्वप्रथम साधन है।

२—जल, तथा स्थल के पशुओ का शिकार करके जीविकोपार्जन करना। शिकार को व्यवसाय कहा जाता है। यह दूसरा साधन है।

३—पालतू जानवरो से लाभदायक चीज़ें प्राप्त करना और उनको रोज़ी का साधन बनाना। उदाहरणार्थ, दूध देनेवाले जानवरो से दूध प्राप्त करना, रेशम के कीडो से रेशम और मधुमक्खी से मधु सग्रह करना आदि, तीसरे प्रकार के साधन हैं।

४—कृषि से अनाज और वृक्षो से फल प्राप्त करना जीविकोपार्जन का मुख्य साधन होता है। इसका नाम कृषि है।

५—मनुष्य के उद्योग द्वारा जीविकोपार्जन भी अन्य प्रधान साधन है। यह दो प्रकार से सम्भव होता है। प्रथम तो विशेष कार्य एव व्यवसाय द्वारा, उदाहरणार्थ किताबत, बुनाई, घुड़सवारी, बढई, दर्ज़ी इत्यादि के पेशो अथवा किसी अन्य विशेष पेशे द्वारा जिसमें हर प्रकार का श्रम आ जाता है।

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।
२ जीविकोपार्जन।
३. जीवन।

६—दूसरे पूँजी तथा धन-सम्पत्ति लगाकर लाभ-प्राप्ति द्वारा। सामान या माल असबाव क्रय करके इधर-उधर नगरो में लिये फिरना, उसे विभिन्न बाज़ारो में बेचना अथवा माल क्रय करके अपने पास इस आशय से रखे रहना कि बाज़ार का भाव चढ जाने पर उसे बेचा जाय आदि, इसके अन्तर्गत आते है। यहसब व्यापार के रूप है और कुछ लोगो के जीविकोपार्जन का साधन यही व्यापार है।

सक्षेप मे उपर्युक्त सब बातें जीविकोपार्जन के विभिन्न साधन है। विद्वानो एव दार्शनिको उदाहरणार्थ हरीरी[1] एव अन्य लोगो के मस्तिष्क में यही बात थी जब उन्होने कहा कि "हमें जीविका राज्यसत्ता, व्यापार, कृषि तथा उद्योग-धधे द्वारा प्राप्त होती है।" राज्यसत्ता जीविकोपार्जन का प्राकृतिक साधन नही है। हम उसका उल्लेख इस स्थान पर नही करेंगे। इससे पूर्व राज्य, करो एव राज्यसत्ता के विषय में दूसरे अध्याय में कुछ कहा जा चुका है। कृषि, कला-कौशल एव व्यापार जीविकोपार्जन के प्राकृतिक साधन है।

कृषि को सभी साधनो के ऊपर प्राथमिकता प्राप्त है, कारण कि यह सरल तथा प्राकृतिक साधन है। इसके लिए अधिक ज्ञान की आवश्यकता नही होती। इसी कारण इसे हजरत आदम[2] का आविष्कार बताया जाता है। कहा जाता है कि उन्होने ही कृषि का पाठ मानव को पढाया और कृषि करना सिखाया। इस बात से यह स्पष्ट होता है कि कृषि जीविकोपार्जन का प्राचीनतम साधन है और प्राकृतिक परिस्थितियो के निकटतम है।

कला-कौशल कृषि के बाद है। इनमें ज्ञान की भी आवश्यकता होती है और सोच-विचार की भी। इसी कारण आप देखेंगे कि कला-कौशल केवल नगरवासियो में प्रचलित होते है, बदवियो में नही। कहा जाता है कि कला-कौशल का आविष्कार हजरत इदरीस[3] ने किया जो कि मानव के दूसरे पिता कहे जाते है। कहा जाता है कि उन्होने भावी नस्लो के लिए दैवी प्रेरणा द्वारा इसका आविष्कार किया।

व्यापार भी लाभ कमाने का प्राकृतिक साधन है, किन्तु व्यापार में प्राय युक्ति, सूझबूझ, एव धूर्तता की आवश्यकता होती है। इसमें बहुत-से उपाय करने पड़ते

१. सम्भवतः "मकामात" का लेखक अल-कासिम बिन अली (४४६–५१६ हि०। १०५४–५५ से ११०२ ई०)
२. वे मुसलमानों तथा ईसाइयो इत्यादि के अनुसार सबसे पहले पुरुष माने जाते है।
३. एक पैग़म्बर।

हैं ताकि क्रय-विक्रय के समय मूल्यो के घटने-वढने से लाभ हो, हानि न हो। यद्यपि वे उपाय जुए के प्रतिरूप होते हैं, किन्तु शरीअत ने व्यापारिक उलट-फेर का निषेध नही किया है, कारण कि इसमें जुए के समान दूसरे की धन-सम्पत्ति पर, मूल्य अदा किये विना अधिकार नही जमाया जाता, अत. व्यापार में शरा के अनुसार कोई हानि नहीं, किन्तु जुआ हराम वताया गया है।

(३) नौकरी जीविकोपार्जन का प्राकृतिक साधन नही

सल्तनत के विभिन्न विभागो के लिए सेवको की नियुक्ति करना वादशाह के लिए अनिवार्य होता है। उनके विना उसका कोई काम नही चल सकता। उदाहरणार्थ, वादशाह सैनिको द्वारा सेना एव पुलिस विभाग की व्यवस्था करता है और सचिवो से कितावत-विभाग चलाता है। इसी प्रकार अन्यवि भाग चलाये जाते हैं, परन्तु प्रत्येक कार्य के लिए ऐसे विशेषज्ञ की खोज की जाती है जो तत्सम्वन्धी कार्य कर सके। इन सेवको के वेतन शाही खज़ानो से अदा किये जाते है। वे सेवक एक प्रकार से राज्य के स्तम्भ होते हैं। राज्यव्यवस्था उन्ही पर आधारित होती है। वादशाह एक झरने के समान होता है और वे उसकी छोटी-छोटी नहरें।

इनके अतिरिक्त भी अन्य सेवाएँ होती हैं। इसका कारण यह है कि विलासप्रिय एव धन-धान्य सम्पन्न लोग अपना काम स्वय अपने हाथ से नही करना चाहते। वे इसमें अपनी मानहानि समझते हैं। इसके अतिरिक्त भोग-विलास में पलकर वडे होने के कारण वे कार्य करने की सामर्थ्य खो वैठते है। सक्षेप में वे अपने कार्यो के लिए सेवको को नियुक्त करने पर विवश होते है। अपनी आय से उनके वेतन का भुगतान करते हैं, किन्तु यह पौरुप के सिद्धान्त को देखते हुए अनुचित कार्य है, कारण कि अपने कार्य का भार दूसरे के कन्धो पर डालना अपनी अयोग्यता एव विवशता को स्वीकार करना है और इससे व्यय भी वढ जाता है। साहसी पुरुप कभी इस प्रकार विवश नहीं होते कि वे स्वय अपना काम न कर पायें और वात-वात में अन्य लोगो से अपना काम निकालें। क्योंकि मनुष्य अपनी आदत एव परिस्थितियो पर निर्भर होता है, अत धन-धान्य सम्पन्न होने के उपरान्त वह ऐसी अपमानजनक आदतें अपने अन्दर उत्पन्न कर लेता और अपनी कौम तथा कुल को भूल जाता है।

इसके अतिरिक्त ऐसे सेवक भी वहुत कम ही है जो कार्य करने के योग्य भी हो और भरोसे के भी काविल, कारण कि सेवक चार प्रकार के हो सकते हैं। एक वे जो केवल अपने कार्य में निपुण हो, किन्तु भरोसे के योग्य न हो। दूसरे वे जो भरोसे के

अब यदि यहाँ यह प्रश्न किया जाय कि खज़ाने इत्यादि यदि भूमि में दफन नही किये गये तो पिछली कौमो की वह अपार धन-सम्पत्ति, जिसका उल्लेख प्राय किया जाता है, कहाँ गयी ? इस समस्या का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि सोना-चांदी, जवाहिरात और धन-सम्पत्ति कमायी हुई वस्तुएँ है और लोहे, ताँबे, सीसे तथा अन्य खनिज पदार्थों से भिन्न नही है। वे सभ्यता एव मनुष्य के परिश्रम के घटने-बढने से घटती-बढती रहती है और कम तथा अधिक होती रहती है। लोगो के अधिकार मे जो कुछ कमाई आती है वह एक दूसरे के हाथो मे चलती-फिरती रहती है। इसमें तरके का क्रम भी चलता है। आज यदि एक देश में धन-सम्पत्ति का बाहुल्य है तो कल वह देश धन-सम्पत्ति से शून्य होगा और वही धन-सम्पत्ति दूसरे देश में पहुँच जायगी। सक्षेप मे सभ्यता में यही परिवर्तन नित्यप्रति होते रहते है। उदाहरणार्थ, यदि मगरिब तथा इफरीकिया में धन-सम्पत्ति की कमी है तो इसका यह अर्थ नही कि सकालिया एव यूरोप के देशो में भी इसका अभाव है। यदि मिस्र तथा शाम में धन-सम्पत्ति की कमी है तो इससे यह निष्कर्ष नही निकलता कि हिन्दुस्तान तथा चीन में भी इसका अभाव है। सक्षेप में हमारी कमाई हुई धन-सम्पत्ति एक स्थान पर नही ठहरती। वह आज किसी के हाथ में है तो कल किसी दूसरे के हाथ में होगी। आज एक अमीर है तो कल कोई दूसरा। सभ्यता यही खेल खेला करती है।

इसके अतिरिक्त खनिज पदार्थ एव उससे सम्बन्धित अन्य वस्तुएँ भी नष्ट हुआ करती है। मोती एव जवाहिरात तो सब चीजो की अपेक्षा शीघ्र नष्ट हो जाते है। इसी प्रकार सोना-चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा इत्यादि भी शीघ्र ही नष्ट हो जाते है।

अब मिस्र के खज़ानो का हाल सुनिए। वहाँ किब्तियो का राज्य सहस्रो वर्ष तक रह चुका था। पिछली कौमो के समान उनके यहाँ भी यह प्रथा चली आ रही थी कि जब वे अपने मुर्दे को दफन करते तो उसकी जो कुछ धन-सम्पत्ति, सोना-चाँदी तथा जवाहिरात इत्यादि होते वे सब उसी के साथ दफन कर दिये जाते थे। जब किब्तियो का राज्य नष्ट हुआ और फारसवालो ने मिस्र पर अधिकार जमाया तो उन्होंने कबरें खोद-खोदकर अपार धन-सम्पत्ति निकाली। देख लीजिए कि मिस्र के एहराम[1] से जो वास्तव में बादशाहो की कब्रें है कितनी अधिक धन-सम्पत्ति निकाली जा चुकी है और निकाली जा रही है। फारसवालो के उपरान्त यूनान-वालो ने भी कब्रो को खुदवाया और अत्यधिक धन-सम्पत्ति प्राप्त की। आज तक लोग

१. पिरामिड।

इन कब्रो को धन-सम्पत्ति का भडार समझते है और प्राय. उनमें गडी हुई धन-सम्पत्ति मिल भी जाती है। किब्ती अपने मुर्दों के सामान में धन-सम्पत्ति के साथ सोने-चाँदी के वर्तन भी रख दिया करते थे । इसी लोभ में मिस्रवासियो में से वहुत से लोगो ने कब्र खोदने का व्यवसाय ग्रहण कर लिया। राज्य के अन्तिम युग में जव इन व्यवसायवालो पर कर लगाया जाने लगा तो उन्होंने कर भी अदा किया और खुदाई भी करते रहे। उनकी देखा-देखी बहुत से लालची मूर्ख यह कार्य करने को दौड़ पड़े और शासन को कर के रूप में भारी-भारी धनराशि देकर खुदाई कराते रहे, किन्तु उन्हें असफल रहना पडा। हानि के अतिरिक्त उन्हें कुछ न प्राप्त हुआ। अत ऐसे मूर्ख लोभियो को हम यही परामर्श देंगे कि वे ईश्वर के लिए जीविकोपार्जन में शिथिलता एव काहिली से काम न ले और ईश्वर से उसी प्रकार शरण माँगें जिस प्रकार मुहम्मद साहब ने माँगी थी कि ईश्वर उनको शैतानी कल्पनाओ से मुक्ति प्रदान करे। इस प्रसग में वे जो निराधार एव झूठी कहानियाँ सुनते चले आये है उन्हें कदापि स्वीकार न करें।

"ईश्वर जिसे चाहता है उसे विना हिसाब के रोजी प्रदान करता है।"

(५) पद एवं श्रेणी धन-सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए लाभदायक है

यह हमारा अनुभव है कि समस्त आर्थिक मामलो में उच्चश्रेणी के लोग ही अधिक धनी होते है। इस तथ्य का रहस्य यह है कि धनी पदाधिकारियो के पीछे सदा चापलूस लोग लगे रहते है और उनके प्रत्येक आवश्यक तथा अनावश्यक कार्य विना किसी मूल्य अथवा पारिश्रमिक के करते रहते है ताकि उनकी प्रसन्नता से वे अपनी आकाक्षाओं की पूर्ति कर सकें। इस प्रकार उच्च पदस्थ लोगो के वहुत से कार्य बिना-किसी मूल्य के पूरे हो जाते है और उनका वहुत-सा धन वच जाता है। उनकी धन-सम्पत्ति नित्यप्रति वढती रहती है और शीघ्र ही वे चोटी के धनी लोगो में गिने जाने लगते है। यही कारण है कि उच्चाधिकारो को भी आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति का एक साधन माना गया है। अव दूसरी ओर उस धनी को देखिए जिसे कोई पद अथवा सम्मान प्राप्त नही है। उसका धन उतना ही वढेगा जितनी उसकी पूंजी है अथवा जितना उसका प्रयत्न तथा परिश्रम। इस प्रकार व्यापारियो की दशा यह है कि वे अपनी सम्पत्ति एव प्रयत्न के अनुपात में नित्यप्रति धनी होते जाते है, विना मूल्य के उनका कोई काम नही होता और वह हो भी किस प्रकार तथा किस लोभ के कारण हो सकेगा? पदाधिकारियो की पद-शक्ति द्वारा लोगो के सैकडो काम निकलते है, किन्तु

पूँजीपति के पास पूँजी के अतिरिक्त होता ही क्या है ? ऐसी अवस्था में कोई मुफ्त में उसका कार्य क्यों करने लगा ?

इसका प्रमाण यह भी है कि फकीहो, आलिमो तथा दीन (इस्लाम) के सम्मानित लोगो के प्रसिद्ध हो जाने पर जब सब लोग उनके भक्त हो जाते है और लोग यह समझने लगते हैं कि वे वास्तव में बडे पहुँचे हुए है तो उनके सासारिक कार्य विना मूल्य दिये ही हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति विना कुछ प्राप्त किये उनकी सहायता हेतु कटिबद्ध रहता है, फलत दीन के उन प्रसिद्ध लोगो की धन-सम्पत्ति तेजी से वढने लगती है, कारण कि कार्य का मूल्य तथा मजदूरी उन्हें नही अदा करना पडती। वे विना परिश्रम एव अधिक धन व्यय किये शीघ्र धनी हो जाते है। नगरो में भी हमको इस प्रकार के सम्मानित व्यक्ति मिलते है और ग्रामो में भी। ग्रामो में लोग उनकी ओर से कृषि एव व्यापार का कार्य करते है और वे सम्मानित लोग स्वय घर में एकान्त-वास ग्रहण किये रहते है, फलत उनका धन वढता रहता है और आय में वृद्धि होती रहती है। विना किसी प्रयत्न अथवा परिश्रम के उनकी गणना धनी लोगो में होने लगती है। यहाँ तक कि जो लोग उनके अचानक धनी हो जाने के रहस्य को नही समझते, वे उनको देखकर आश्चर्य किया करते हैं और यह नही समझते कि वास्तव में इसका कारण क्या है।

"ईश्वर जिसे चाहता है उसे रोज़ी देता है और विना किसी हिसाव के देता है[1]।"

(६) दीनता प्रकट करनेवालो और चाटुकारी करनेवालो को अधिकांश लाभ एवं सम्पन्नता प्राप्त होती रहती है

हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि मानव जो कुछ कमाता है वह उसके परिश्रम का मूल्य होता है। यदि मनुष्य काम से विलकुल हाथ उठा ले तो कमाई से भी खाली हो जायेगा। फिर कार्य जितनी उच्च श्रेणी का होता है लोग उसकी उतनी ही अधिक चिन्ता करते हैं। उतना ही उसका सम्मान एव मूल्य अधिक हो जाता है और इसी अनुपात से आय भी वढ़ती है। यह भी पिछले पृष्ठो में सिद्ध किया जा चुका है कि पद एव श्रेष्ठता धन को वढाने में सहायक होती है क्योंकि लोग सम्मानित व्यक्तियो का विश्वासपात्र वनने के लिए विना कोई मूल्य लिये हुए उनके कष्टो का निवारण करते रहते है तथा उनको लाभ पहुँचाने का प्रयत्न किया करते है। वे इसमें तन-मन-

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

धन बलिदान करने में कोई कसर नही उठा रखते, किन्तु उनका यह आचरण त्याग पर आधारित नही होता। वे अपने हृदय मे अच्छी और बुरी सभी प्रकार की भावनाएँ छिपाये रहते है। उनकी यह इच्छा होती है कि इस चाटुकारी से उनके सम्मान एव पद में अधिक से अधिक वृद्धि हो जाय। सक्षेप मे, सम्मानित लोगो के विपय मे इन चापलूसो की यह चाटुकारी तथा त्याग अपना प्रभाव दिखाता है और वे उसे शीघ्र ही धनी बना देते हैं और देखते-देखते वे उच्च श्रेणी को प्राप्त हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त श्रेष्ठता का माप भी विभिन्न श्रेणियो में विभाजित है। कोई ऊँचा होता है और कोई नीचा। ऊँचे से ऊँचा सम्मान बादशाह को प्राप्त होता है, उससे ऊँचा कोई मनुष्य नही। सबसे निम्न वर्ग में वह दरिद्र होता है जो न किसी-को हानि पहुँचाने के योग्य होता है और न कोई लाभ। इन दोनो श्रेणियो के मध्य मे अनेक श्रेणियाँ है और ईश्वर जिसे चाहता है उसे उस श्रेणी में रखता है। इन्ही श्रेणियो के अनुपात से मानव की आर्थिक व्यवस्था आँकी जाती है, और उसकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं तथा उन्हे स्थायित्व प्राप्त होता है कारण कि मानव का स्थायित्व पारस्परिक सहयोग एव सहायता पर निर्भर है। अतः यदि कोई ऐसी परिस्थिति की कल्पना करे जिसमें परस्पर सहयोग न प्राप्त हो सके तो मनुष्य का स्थायित्व भी सम्भव न हो सकेगा। फिर यह सहयोग वडी कठिनाई से प्राप्त होता है। उसमें किसी के अधिकार या इच्छा का कोई स्थान नही होता, कारण कि कुछ लोग ऐसे भी है जो मानव-हित से अपरिचित होते हैं, और दूसरो के सहयोग से हाथ खीच लेते हैं। अत एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो कि उन्हें सहयोग देने के लिए विवश कर सके और मनुष्य को नष्ट होने से वचा सके। साथ ही साथ यह बात बुद्धि एव विवेक से सम्बन्ध रखती है, स्वभावत· प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के कार्य करने के लिए तैयार नही होता, अत कुछ लोग दूसरो से सहयोग करने से मुँह फेर लेते हैं। इसी तथ्य की ओर "आयत"[1] मे सकेत किया गया है। "हमने इनमें से कुछ लोगो को विभिन्न श्रेणियो में रखा है ताकि वे दूसरो से ज़बरदस्ती काम न ले सकें। तुम्हारे पालने-वाले की दया उससे कही अधिक है जो वे कमाते हैं।"

इस उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो गयी कि सम्मान उस शक्ति का नाम है जिसके अधीन एक मनुष्य अपने अधीनस्थ मनुष्यो पर अधिकार प्राप्त करता है। वह जो काम चाहता है उसका आदेश देता है, किसी वस्तु का निषेध करता है, सवको अपने प्रभुत्व

१ कुरान शरीफ के वाक्य।

के अधीन रखता है और शरा के आदेशो तथा राजनीति के सिद्धान्तो के अनुसार मानव का न्याय करता है। एक को दूसरे पर अत्याचार करने पर नही, अपितु लाभ पहुँचाने पर विवश करता है और इसके साथ-साथ अपने उद्देश्य भी अपने अधीनस्थ लोगो से पूरे कराता है। किन्तु प्रथम उद्देश्य अर्थात् मानव का लाभ मूल उद्देश्य है और ईश्वर की इच्छा भी यही है। दूसरा उद्देश्य सम्मानित व्यक्ति का व्यक्तिगत लाभ है। जिस प्रकार दैवी आदेशो में भी थोडा बहुत दोष होना आवश्यक है, कारण कि ससार में कोई भी भलाई बिना बुराई के नही हो सकती और थोडी बहुत बुराई अधिक भलाई के अस्तित्व में बाधक नही होती, इसी कारण कहा जाता है कि ससार मे थोडा-बहुत अत्याचार होना चाहिए और होता है।

चाहे कोई नगर हो अथवा देश उसमें प्रत्येक प्रकार के उच्च वर्ग का निम्नवर्ग पर अधिकार होता है। निम्न वर्गवाले उच्च वर्गवालो के सम्मानित व्यक्तियो से सहायता प्राप्त करते हैं। सम्मानित व्यक्तियो का धन उनकी सहायता से बढता है। जितनी ही वे उनसे सहायता लेते हैं उतना ही उनके धन में वृद्धि होती है। उच्च पद उनकी आर्थिक उन्नति के द्वार खोल देता है। जितनी ही सम्मानित व्यक्ति की श्रेणी ऊँची होती है उतना ही उसका प्रभाव भी विस्तृत होता है। इसी आधार पर सम्मानित व्यक्ति का धन बढता-घटता रहता है। यद्यपि कोई व्यक्ति उच्च सम्मान से वचित हो तो चाहे वह धनी ही क्यो न हो उसका धन उसके उद्योग एव परिश्रम तथा धन के अनुसार घटता-बढता रहता है। उदाहरणार्थ, व्यापार, कला-कौशल तथा कृषि करनेवालो का धन। जब वे लोग अपने व्यवसाय के लाभ पर ही जीवन-निर्वाह करते है और कोई पद नही रखते तो वे प्राय दरिद्रता एव फाको में ग्रस्त रहते है। उनकी धन-सम्पत्ति बहुत धीरे-धीरे बढती है। अधिकाश ये लोग अपनी स्थिति से सघर्ष ही करते रहते हैं और कभी-कभी भोग-विलास का आनन्द भी उठा लेते हैं।

जब यह बात सिद्ध हो गयी कि उच्च पद ऊपर की श्रेणियो में बँटा हुआ है और उच्च पद से लाभ एव सौभाग्य के द्वार खुलते है तो समझ लेना चाहिए कि उसका दान-पुण्य भी बहुत बडा सौभाग्य है और सम्मानित व्यक्ति बहुत बडा धनी। वह अपने अधीनस्थ वर्गो के लिए दान-पुण्य के द्वार खोलता है। उसके अधीनस्थ लोग उस पर निर्भर होते है। ऐसी अवस्था में जिसे भी सम्मान की इच्छा होगी वह अवश्य ही नम्रता दिखाने एव चाटुकारी करने पर विवश होगा, ताकि उसे इस प्रकार का सम्मान प्राप्त हो। यदि वह ऐसा न करेगा तो सर्वदा दबा रहेगा और सम्मानित पद तक न पहुँच सकेगा। इसी कारण हमने लिखा कि दीनता एव चाटुकारी

सम्मान की प्राप्ति के साधन है और सम्मान एव सौभाग्य धन कमाने के साधन। ससार में ऐसे वहुत-से उदाहरण मिलेंगे कि बहुत-से धनी लोग चाटुकारी के कारण वडे-वडे पदो पर पहुँच गये और उन्होने अत्यधिक सम्मान प्राप्त कर लिया। उन्ही की तुलना में ऐसे लोग भी मिल जायँगे जो स्वाभिमान के कारण सर्वदा सम्मान से वचित रहते है। उनकी जीविका केवल उनके परिश्रम पर निर्भर रहती है और वे अधिकाश दरिद्रता एव फाको का शिकार वने रहते है।

अभिमान तथा घमड की गणना यद्यपि चरित्रहीनता मे है, किन्तु यह उस समय पैदा होते है जब मनुष्य को अपने उच्च पद का भरोसा होता है और इस वात का भी कि लोगो के लिए उसकी योग्यता अनुपेक्ष्य है। उदाहरणार्थ, किसी वहुत बड़े विद्वान्, कुशल कातिब तथा उच्च श्रेणी के कवि को देखा जा सकता है। उच्च कुल से सम्वन्धित व्यक्ति भी स्वाभिमानी हो जाते है, किसी बादशाह एव बडे आलिम की सतान इसके उदाहरण है। जव वे अपने पूर्वजो के विषय में सुनते है कि वे वहुत बड़े गौरव एव श्रेष्ठता के स्वामी थे तो वे अपने आपको भी वहुत बडा सम्मानित व्यक्ति समझने लगते है, किन्तु यह गौरव केवल ऐसी वस्तु पर होता है जिसका कोई मूल्य नही। पूर्वजो के बड़े होने से उनकी सतान बड़ी नही हो जाती, जव तक कि वह स्वयं गौरव एव सम्मान के कार्य न करे। इसी प्रकार उन लोगो को भी अभिमानी पाया गया है जो धूर्त्त, चालाक, सूझ-वूझवाले एव अनुभवी होते है। वे भी अपने वरावर किसीको नही समझते। ऐसे लोगो के विपय में देखा गया है कि वे किसी अन्य सम्मानित व्यक्ति के समक्ष नही झुकते और अपने वडे के साथ कोई चाटुकारी का व्यवहार नही करते, अपितु अन्य लोगो को अपने आपसे निम्न श्रेणी का समझते है और उनके समक्ष दीनता प्रकट करना अच्छा नही समझते, क्योकि वे समझते है कि ऐसा करने से उनके सम्मान मे कमी हो जायगी और वे अपमानित हो जायँगे। यह मूर्खता का चिह्न है।

अब जितना वे अपने आपको अन्य लोगो से श्रेष्ठ समझते है उसीके अनुसार वे लोगो से व्यवहार करते है। यदि कोई उनको उच्च श्रेणी का नही समझता तो वे उससे जलने लगते है और इसी चिन्ता मे घुलते रहते है कि किस प्रकार हमारी श्रेष्ठता अन्य लोग स्वीकार कर ले। दूसरी ओर लोग उनके इस व्यवहार को वहुत वुरी दृष्टि से देखते है, कारण कि मनुष्य की प्रकृति मे यह बात है कि वह अकारण किसी की श्रेष्ठता एव गौरव को स्वीकार नही करता जव तक कि गौरव एव सम्मान को देखकर उसे स्वीकार करने पर विवश न हो जाय। इन अभिमानी लोगों के पास उच्च पद न

होने के कारण कोई ऐसा साधन नही होता कि वे अन्य लोगो को दवा सकें, लोगो की गर्दनें अपने सामने झुका सकें, फलत लोग उनके शत्रु हो जाते है। इसके अतिरिक्त वे लोग उच्च श्रेणीवालो से लाभ उठाने से वचित रहते है। उनको कभी कोई सम्मान नही प्राप्त होता और न कोई लाभ। जव वे सवको निम्न वर्ग का समझकर सवसे पृथक् रहते है और किसीको मुंह नही लगाते तो फिर उनको किस तरह लाभ प्राप्त हो सकता है ? इसी कारण उनकी आर्थिक दशा भी गिरती जाती है। वे सर्वदा दरिद्रता एव फाके में ग्रस्त रहते हैं। यह वात प्रसिद्ध है कि कला-कौशल के कारीगर लोग सासारिक लाभ से वचित होते हैं और रोज़ी का लाभ उनको उनकी कला में प्राप्त हो जाता है, किन्तु वे अपनी कला में ही मस्त रहते है। सल्तनतो में सदाचरण के ही आवार पर लोगो को विभिन्न सम्मान प्राप्त होते है।

प्राय कमीने तथा चरित्रहीन लोग चापलूसी एव चाटुकारी करके वडे-वडे पद प्राप्त कर लेते है और उच्च सम्मानवाले एव कुलीन लोग उन्नति नही कर पाते। इसका कारण यह है कि सल्तनत जव उन्नति के शिखर पर पहुँचकर ज़ोर पकड़ जाती है तो प्रभुत्व केवल वादशाह को ही प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त सव लोग उसके अधीन रहते हैं। वादशाह के सामने समस्त प्रजा सेवको एव दासो के समान होती है। वादशाह की दृष्टि में छोटे-वड़े का कोई अन्तर नही रहता। जो उसकी सेवा अधिक करते है और उसके निकट पहुँचने का प्रयत्न करते है उन्हे वह उच्च पदो द्वारा सम्मानित करता है। ऐसी अवस्था में वाज़ारी लोग वादशाह के निकट पहुँचने का प्रयत्न करते है। नाना प्रकार से उसकी सेवा करके उसे प्रसन्न करते है और उसके प्रत्येक आदेश के समक्ष सिर झुकाये रहते है। वे नम्रता एव चाटुकारी में कोई कमी नही करते यहाँ तक कि वादशाह के विश्वासपात्रो की भी चाटुकारी करते रहते है और उसके सम्वन्धियो के भी दास वने रहते है। अन्त में वाज़ारियों को भी इस धूर्तता के कारण वादशाह के सहचरो में सम्मिलित कर लिया जाता है और फिर वे सासारिक धन-सम्पत्ति से लाभ उठाने लगते हैं और धन-धान्य सम्पन्न हो जाते है।

इसके विपरीत राज्य के सच्चे हितैपी अपने उन पूर्वजो के कारनामो पर जिन्होने सल्तनत का वुरा चाहनेवालो को नष्ट करके सल्तनत की वुनियाद डाली थी अकडते रहते है। वे अपने पिछले इतिहास का स्मरण करके वादशाह के समक्ष ज़रा भी नही झुकते, अपितु वरावरी का दावा करते है और अपने आपको उसीके वरावर समझते है। वादशाह जव उनका यह रग-ढग देखता है तो वह उनसे जलने लगता है, उनको दूर रखता है और केवल अपने निम्न वर्ग के इन आश्रितो को मुंह लगाता है जो भूत-

काल पर दृष्टि नही रखते, अभिमान एव गर्व नही करते, अपितु नम्रता एव चाटुकारी से कार्य करते हैं। फलत इन्ही निम्न वर्ग के लोगो का सम्मान वढ़ जाता है। वे वड़े-वडे पद प्राप्त कर लेते है। जब अन्य लोग उन्हें वादशाह का विश्वासपात्र पाते है तो उनका हृदय भी उन्ही की ओर आकृष्ट हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति उन्हीको प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगता है। इधर इन कमीनो का यह सम्मान और उधर राज्य के हितैपियो की ऐसी दुर्दशा कि वादशाह उनको अपने पास नही फटकने देता, न उनको मुँह लगाता। यह दोनो ही बातें सल्तनत का नाश कर देती है।

(७) काजी, मुफ्ती[1], मदर्रिस[2], इमाम, ख़तीब[3] एवं मुअज्जिन[4] इत्यादि धार्मिक लोग प्राय· धनी नही होते

इसका कारण वही है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है कि धन-सम्पत्ति परिश्रम का मूल्य है। परिश्रम का मूल्य लोगो की आवश्यकतानुसार घटता-वढ़ता रहता है। जो कार्य सभ्यता के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है और जिसकी सर्व-साधारण को वहुत ही जरूरत होती है उसका मूल्य भी अत्यधिक वढ़ जाता है। परन्तु जिस वस्तु की सर्वसाधारण को आवश्यकता न हो उसका सम्मान और मूल्य भी अत्यधिक बढ़ जाता है, भले ही उससे अधिक से अधिक लाभ होता हो। उपर्युक्त धार्मिक व्यक्तियो से सर्व साधारण व्यक्तियों का सरोकार प्रायः नही रहता। उनकी आवश्यकता तो केवल उन्ही लोगो को होती है जो थोडी-वहुत धर्मनिष्ठता की ओर आकृष्ट होते हैं।

इनमें मुफ्तियो तथा काज़ियो की आवश्यकता अभियोगो का निर्णय करने के लिए होती है, किन्तु वह भी उन्हीको जो विवश होते हैं। सब लोगो को इनकी आवश्यकता नही होती। इसीलिए सर्वसाधारण लोग इन धार्मिक लोगो की चिन्ता नही करते। सल्तनत के स्वामी का कर्तव्य सर्वसाधारण के हितो की देखभाल एवं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। इसी कारण वह उनकी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उनके लिए कुछ वृत्ति निश्चित कर देता है, किन्तु इतना नही कि वे अन्य

१ फ़तवा (व्यवस्था) देनेवाला।
२ शिक्षक।
३ खुत्बा पढ़नेवाला।
४. अजान देनेवाले।

कला-कौशलवालो तथा सम्मानित व्यक्तियो का मुकावला कर सकें। अतएव इन लोगो के हिस्से में वहुत थोडा-सा धन आता है जिससे वे बडी कठिनाई से ही जीवन-निर्वाह कर पाते हैं। क्योकि उनका धार्मिक कार्य वडा सम्मानित समझा जाता है, अत सर्वसाधारण के हृदय में उनका वडा आदर-सम्मान होता है और वे वडे सम्मान की दृष्टि से उनको देखते हैं। इसी कारण वे लोग कभी ससार के सामान्य व्यक्तियो के समक्ष नहीं झुकते और उनके सामने तक नही फटकते। यदि वे स्वय आयें तो उन्ही-को कुछ लाभ पहुँच जाय, किन्तु वे धर्म के सम्मानित कार्यों में हर समय मग्न रहने के कारण इतना समय नही निकाल पाते कि राज्य के उच्च पदाधिकारियो की सेवा में उपस्थित हो और उनकी धन-सम्पत्ति में से कुछ पाने की आशा लगायें। इसके अतिरिक्त वे अपने व्यवसाय को इतना श्रेष्ठ एव सम्मानित समझते है कि उनकी आत्मा यह सहन नही कर सकती कि वे ससारवालो की चाटुकारी में अपना समय नष्ट करें और अपने आपको तथा अपने व्यवसाय को अपमानित करें। इन्ही कारणो से धार्मिक लोगो की आर्थिक दशा कभी नही सुधरती।

इसी वात पर एक विद्वान् से मेरा वाद-विवाद हो गया। वे मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हुए। सयोग से उन्ही दिनो मामूनूर्रशीद के हिसाव-किताव के कुछ फटे-पुराने कागज़ मुझे प्राप्त हो गये जिनमें उसके राज्य की आय-व्यय का लेखा दिया हुआ था। काज़ियो, इमामो तथा मुअज्ज़िनो के वेतन की सख्या भी उसमें दी हुई थी। मैंने यही कागज़ उपर्युक्त विद्वान् को दिखा दिये और अन्त में उन्हें सहमत होना पडा कि वास्तव में मेरा शोध शत-प्रतिशत सत्य था और जो कुछ मै कहता था वह ठीक था।

(८) कृषि शक्तिहीन शान्तिप्रिय लोगो का व्यवसाय है

कृषि क्योकि वास्तव में एक भौतिक एव सरल कार्य है, अत सुखी एव धन-धान्य सम्पन्न नगरवासी कभी इस कार्य में हाथ नही डालते और इसी कारण कृषक दरिद्रता एव अपमान में ग्रस्त रहते हैं। एक वार हज़रत मुहम्मद ने किसी अनसारी[1] के घर में हल रखा हुआ देखा तो कहा कि जिस घर में भी यह आता है, अपमान साथ-साथ आते है। इमाम वुखारी ने इन वाक्यो की व्याख्या करते हुए लिखा कि, "कृषि में अत्यधिक सलग्न रहने के कारण मनुष्य इस सीमा को प्राप्त हो जाता है"। "कृषि" के

१. वे मदीनावासी जिन्होने हज़रत मुहम्मद के मदीना पहुँचने के उपरान्त उनकी सहायता की।

अध्याय में इस हदीस की व्याख्या करते हुए इसका कारण यह बताया है कि "बेचारे किसान को सर्वदा भारी-भारी कर देने पडते है और वह अधिकारियो की कठोरता सहन किया करता है। इस कारण उसकी मर्यादा की भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और वह अपमान सहने का आदी हो जाता है।" हजरत मुहम्मद ने कहा है कि "कयामत उस समय तक न आयेगी जब तक कि जकात जुर्माने का रूप न धारण कर लेगी" अर्थात् कयामत आने के पूर्व अत्याचारी, आतकमय एव निरकुश वादशाहो का राज्य आयेगा जो मनुष्य के अधिकारो की कोई परवाह न करेंगे और उन पर भारी-भारी जुर्माने लगाया करेंगे। इसी प्रकार जकात भी जुर्माने का रूप धारण कर लेगी।

'ईश्वर जो चाहे वह कर सकता है।'

(९) व्यापार की व्याख्या एवं उसकी किस्मे और विधियाँ

व्यापार मे पूँजी बढाकर लाभ कमाया जाता है। हरएक माल जैसे—आटा, अनाज, पशु अथवा वस्त्र इत्यादि सस्ता क्रय करके महँगा बेचा जाता है। पूँजी पर जो अधिक धन प्राप्त होता है वह लाभ कहलाता है। लाभ प्राप्त करने के लिए व्यापारी या तो माल को रोके रखता है और बाजार का भाव चढने की प्रतीक्षा करता रहता है ताकि उसको अधिक मूल्य पर बेचकर खूब लाभ कमाये अथवा माल को अपने नगर से क्रय करके दूसरे किसी नगर मे ले जाता है जहाँ उसे अधिक मूल्य मिलता है। इस प्रकार व्यापारी को अधिक लाभ होता है। कुछ लोगों ने व्यापार की व्याख्या दो ही वाक्यो में भली-भाँति की है और इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि "व्यापार सस्ता खरीदने और महँगा बेचने का नाम है।" यह कथन भी हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है।

(१०) किस प्रकार के लोगों को व्यापार करना चाहिए और किन लोगो को नही

हम पहले उल्लेख कर चुके है कि व्यापार माल के क्रय-विक्रय द्वारा धन बढाने का नाम है। इस प्रकार सस्ते मूल्य पर एक वस्तु क्रय करके अपने ही नगर के बाजार में भाव चढने पर बेच दी जाती है अथवा दूसरे नगर में ले जाकर अधिक मूल्य पर बेची जाती है और लाभ कमाया जाता है। इसको व्यापार कहते हैं। इसका दूसरा रूप एक चीज को उधार लेकर अधिक मूल्य पर बेचना है। अब इन साधनो से जो

२८

लाभ प्राप्त होता है वह बहुत थोडा होता है, किन्तु यदि पूँजी अधिक हो तो यह लाभ भी बहुत अधिक होगा, कारण कि बहुत-सी वस्तुओ में से यदि थोडी-थोडी चीज़ भी मिले तो वह बहुत होती है। फिर व्यापार में माल के उलट-फेर एव क्रय-विक्रय से खरीदने तथा बेचनेवाले दोनो ही का सम्बन्ध रहता है। आजकल ससार में सदाचारियो का बडा अभाव है, अत हर प्रकार का धोखा खा जाने का भय रहता है। यदि बेचनेवाला धूर्त्तता कर जाता है तो पूंजी घट जाती है और व्यापारी माल के क्रय में ठग लिया जाता है। यदि खरीदार मूल्य के भुगतान में धूर्त्तता करता है तो लाभ से हाथ धो बैठना पड़ता है। क्रय करनेवाले ने यदि मूल्य के भुगतान में टाल-मटोल की और उसमें समय लगा दिया तो माल की वृद्धि रुक जाती है। माल केवल उलट-फेर से ही बढता है। जब मूल्य ही प्राप्त न होगा या देर से प्राप्त होगा तो नये माल का क्रय न हो सकेगा। जब नये माल का क्रय रुक जायेगा तो लाभ समाप्त हो जायेगा। यदि खरीदार मूल्य अदा करने से इनकार कर दे तो असल पूंजी भी चली जाती है। यह उसी दशा में सम्भव है जब कि ऋण की लिखा-पढी न हो और उसका कोई साक्षी न हो। रहा सल्तनत का हाकिम तो वह इन झगड़ो में अधिक लाभदायक नही होता। क्योंकि वह तो जो बात प्रत्यक्ष होती है उसके अनुसार निर्णय कर देता है। उसे वास्तविक बात की कोई सूचना नही होती। इस उलझन में बेचारे व्यापारी को बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। या तो वह बडी कठिनाई से लाभ प्राप्त करता है या कष्ट सहन करने पर भी लाभ हासिल नही कर पाता, अपितु जितना लगाता है, उसे उतना ही मिल पाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लाभ तो दूर रहा, मूलधन से भी उसको हाथ धोना पड़ता है। अब यदि सयोग से व्यापारी, लड़ाका, गणितवेत्ता एव हाकिमो तक पहुँचवाला हुआ तो वह अपने इन गुणो के कारण हानि से बच जाता है और व्यापार में सिर पकडकर कभी नही रोता। यदि कोई स्वय सम्मानित व्यक्ति है तो उसके भय से क्रय-विक्रय करनेवाले धूर्त्तता नही कर सकते और यदि मामला हाकिमो तक पहुँच भी जाता है तो वे भी उसके प्रभाव से उसीके पक्ष में निर्णय करते है। ऐसे व्यक्ति के प्रति लोग कभी धूर्त्तता नही कर पाते। ऐसी दशा में उसका व्यापार उन्नति करता रहता है और उसे लाभ होता रहता है। जो व्यक्ति न साहसी हो और न उसे कोई सम्मान ही प्राप्त हो तो उसे चाहिए कि वह कभी भूलकर भी व्यापार में हाथ न डाले अन्यथा वह अपनी धन-सम्पत्ति खो देगा और लोग उसे हड़प कर लेंगे तथा फिर उसके विषय में कोई भी कुछ न सुनेगा। क्योंकि निम्न वर्ग के लोगो को माल के अपहरण का लोभ होता है और यदि शासन

का हाथ उनके सिर पर न हो तो लोगो की धन-सम्पत्ति क्षण भर में नष्ट हो जायेगी और किसीको कोई लाभ न होगा।

(११) व्यापारियों के चरित्र सम्मानित व्यक्तियों एवं उच्च पदाधिकारियो के चरित्र की अपेक्षा गिरे हुए होते हैं

व्यापारी क्रय-विक्रय के बखेडो में फँसकर बडा कष्ट भोगते रहते है, अत उनमें कृपणता उत्पन्न हो जाती है जो मर्यादा के विपरीत समझी जाती है और उच्च पदाधिकारी एव सम्मानित लोग उसे बुरा समझते है। निम्न वर्ग के लोगो के समुख उनका चरित्र और भी पतित हो जाता है तथा वात-वात पर झगडा करना, धोखा देना, झूठ बोलना, चीजो के मूल्य के लेन-देन में झूठी शपथ लेना आदि आदतें उनमें पैदा हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में उनकी गणना भी वास्तव में निम्न वर्ग में होने लगती है। यही कारण है कि सम्मानित व्यक्ति व्यापार की ओर से उपेक्षा करते है ताकि उनका चरित्र न बिगडने पाये। हमारा यह अभिप्राय नहीं कि सभी व्यापारी चरित्रहीन होते है, अपितु कुछ ऐसे व्यापारी भी होते है जो चारित्र्यहीनता से मुक्त होते है, किन्तु उनकी सख्या वडी ही कम होती है।

(१२) व्यापारियो का एक स्थान से दूसरें स्थान पर माल ले जाना

कुशल एव अनुभवी व्यापारी वही माल वाहर ले जाते है जिनकी अमीरो, गरीवो, बादशाह और सर्व साधारण को भी आवश्यकता होती है, कारण कि ऐसे माल की निकासी बहुत होती है। जिस माल की आवश्यकता कुछ ही लोगो को हो और अन्यो को न हो उसके बिकने में कभी-कभी वाधा पड जाती है। यदि किसी विशेष वर्ग ने किसी कारण वश क्रय न किया तो लाभ तो अलग रहा, मूल पूंजी का सँभालना मुश्किल हो जाता है। इसी प्रकार कुशल व्यापारी वाहर मध्यम वर्ग की चीजें ले जाते है। यदि केवल उत्तम वस्तुएँ ले जायँ तो उनके क्रय करनेवाले केवल थोडे लोग ही निकलेंगे, कारण कि उनकी सख्या कम होती है, अत. यह भय होता है कि वे क्रय करें अयवा न करें। सर्वसाधारण तो औसत दर्जे के माल पर गिरते है। अतएव उसका वाजार वडी मुश्किल से मदा पडता है, अपितु उसका सपूर्ण क्रय-विक्रय प्राय. हो जाता है। बुद्धिमान् व्यापारी भी व्यापारिक माल ऐसे नगरो में ले जाते है जिनके मार्गो में खतरे होते है अथवा जो दूरस्थ स्थानो पर स्थित होते है। इन परिस्थितियो के कारण नगरो में माल कम पहुँचने की वजह से एवं लोगो के अधिक आवश्यकताग्रस्त होने के कारण वहाँ

माल का आयात आवश्यक होता है और बहुत ऊँचे दामो में निकलता है तथा व्यापारी को खूब लाभ होता है। यह माना हुआ सिद्धान्त है कि जब कम वस्तुएँ प्राप्य होती हैं और उनकी आवश्यकता लोगो को अधिक होती है तो दाम बढ जाता है और वह बहुत अधिक मूल्य पर मिला करती है। इसके विपरीत यदि व्यापारी नगर के निकट कहीं अपना माल ले जाय तो अधिकाश व्यापारियो के वहाँ माल लेकर पहुँचते रहने के कारण माल का भाव गिरा रहता है। इस प्रकार हमारे यहाँ जो व्यापारी सूडान से माल लाते हैं वे बड़े धनी होते हैं। इसका कारण यह है कि सूडान यहाँ से बहुत दूर है, मार्ग में निर्जन जगल पडते हैं जिनमें लुट जाने का भी भय होता है और प्यासे मर जाने का भी। पानी दूर-दूर तक नही मिलता, यदि मिलता है तो विशेष स्थानो पर जिनका पता केवल विशिष्ट व्यापारियो को ही होता है। ऐसे व्यापारी कम ही होते हैं जो इन सब खतरो का सामना करके वहाँ से माल लायें। जो इन खतरो का सामना कर लेते हैं वे धन-धान्य सम्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण हमारे यहाँ सूडान का माल बहुत अधिक मूल्य पर बिकता है और इसका भाव सर्वदा चढ़ा रहता है। यही दशा हमारे माल की है जो हमारे यहाँ से सूडान भेजा जाता है, वह अधिक मूल्य पर बिकता है। इस प्रकार माल के इधर-उधर ले जाने में व्यापारियो की पूँजी बढ जाती है और वे शीघ्र ही धन-धान्य सम्पन्न हो जाते हैं। यही हाल उन यात्रियो का है जो हमारे नगरो से निकलकर दूरस्थ स्थानो की यात्रा करके पूर्व में पहुँचते हैं। वे भी खूब कमाते हैं। जो भय के कारण एक ही देश में घूमते-फिरते रहते हैं और दूर जाने का साहस नही करते उनको सर्वदा कम लाभ प्राप्त होता है।

(१३) माल को महँगाई के लोभ मे भरे रखना

बुद्धिमान् एव अनुभवी लोगो में यह बात प्रसिद्ध है कि अनाज को इस लोभ में रोक रखना कि महँगाई ही में निकाला जाय, बडा ही अशुभ कार्य है और बाद में लाभ के स्थान पर हानि हो जाती है। इसका कारण यह है कि लोग अपना भोजन प्राप्त करने के लिए विवश होते हैं, इसके कारण वे अधिक से अधिक मूल्य अदा करने की भी परवाह नही करते, किन्तु आवश्यकता से अधिक मूल्य का भुगतान करने पर उन्हें अत्यधिक क्षोभ होता है और वे यह अनुभव करते हैं मानो उनसे रकम व्यर्थ में ले ली गयी। इस क्षोभ का पाप अधिक मूल्य पर बेचनेवाले उस व्यक्ति पर पडता है जो उनकी आवश्यकता से अनुचित लाभ उठाता है और उनको व्यर्थ में लूट लेता है। सम्भवत यही कारण है कि इस्लामी शरीअत में व्यापार के इस नियम को अनुचित

रूप से लोगो का माल खाना बताया गया है, कारण कि विवशता की दशा में लोगो के हाथ दुगुने-चौगुने मूल्य पर माल वेचना और लोगो का विवश होकर उसे क्रय करना ऐसा ही है कि मानो अधिक मूल्य पर वेचनेवाले व्यापारी ने लोगो की सम्पत्ति विना किसी वदले के ऐंठ ली हो। खाद्य-सामग्री के अतिरिक्त अन्य चीजो के क्रय करने पर लोग विवश नही होते, अपितु वे उसे स्वेच्छा से क्रय करते है, किसी विवशता के कारण नही, अत इन चीजो के क्रय के बाद उनके हृदय मे कोई दु ख नही पैदा होता और उसका पाप व्यापारी पर नही होता। सक्षेप में कहा जा सकता है कि महँगाई के समय अनाज को सोने के भाव बेचना लोगो के दु.खो को बढाना और लोगो की हाय लेना है। इस प्रकार अधिक मूल्य पर बेचने से व्यापारी को जो लाभ होता है वह उसके विनाश का कारण वन जाता है।

इसी समय मुझे एक हास्यप्रद कहानी का स्मरण हो आया जो हमारे शेख अबू अब्दुल्लाह अल-अबीली ने सुनायी थी। उन्होने बताया कि "सुल्तान अबू सईद के राज्यकाल में फकीह अबुल हसन अल-मलीली फास के काजिउल-कुज़्ज़ात के पास पहुँचे। उनसे पूछा गया कि आप अपनी वृत्ति के लिए किस वस्तु के कर को अधिक पसन्द करते है।" उन्होने सोचकर कहा कि "मदिरा के कर को।" समस्त उपस्थितगण हँस पडे और पूछने लगे कि इसमे क्या रहस्य है? उन्होने कहा कि "जब सल्तनत के समस्त राजस्व एव कर हराम हो गये तो मैंने वृत्ति के लिए वह वस्तु पसन्द की जिसमें धन व्यय करने से हृदय को कष्ट नही पहुँचता। मदिरा क्रय करनेवाले मदिरा की खरीद में अपना धन खुशी-खुशी फेंका करते है और व्यय के उपरान्त न पश्चात्ताप करते हैं और न दु ख।" वास्तव में यह एक वडा विचित्र रहस्य है जिस पर गौर करना चाहिए।

(१४) चीजों का मूल्य सस्ता होना व्यापारियों के लिए हानिकारक है

यह बात स्पष्ट हो चुकी कि कला-कौशल एव व्यापार जीविकोपार्जन के ऐसे साधन है जिनसे मनुष्य अपना पेट पालता है और जीवन-निर्वाह करता है। माल व असबाब को क्रय करके बाजार में ले जाना और अधिक मूल्य पर बेचकर लाभ प्राप्त करना और उसीको अपनी जीविकोपार्जन का साधन बनाना ही असली व्यापार कहलाता है। व्यापारी लोग इसी प्रकार अपनी रोजी कमाते हैं। जब भोजन एव वस्त्र से सम्बन्धित सामग्री बाज़ार में सस्ती हो जाती है तो व्यापारियो को व्यापारिक माल में लाभ मिलना बन्द हो जाता है। बाजार ठडा पड जाता है। वे अपना धधा छोडकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है, अपितु उनकी मूल पूँजी भी समाप्त होने लगती है। इस प्रकार केवल व्यापार की ही हानि नही होती, अपितु कला-कौशल से जीविको-

पार्जन करनेवाले के कार्यों में भी विघ्न पड जाता है। उदाहरणस्वरूप, अनाज को ले लिया जाय। जव अनाज का भाव अधिक समय तक गिरा रहता है तो अनाज की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जितने कला-कौशल में भाग लेनेवाले होते हैं उन सवका कार्य फीका पड जाता है। लाभ न मिलने के कारण सव अपने कार्य से हाथ खीचने लगते हैं। व्यापारी माल वढाना वन्द कर देते हैं अथवा वह वहुत कम वढता है, जिससे उनका जीवन-निर्वाह नही हो पाता। विवश होकर वे अपनी मूल पूँजी खाने लगते हैं। उनकी दशा शोचनीय हो जाती है। उन्हें रोज़ी तक नही प्राप्त होती। वे दरिद्रता में जीवन व्यतीत करने लगते हैं। उनके साथ-साथ अन्य व्यवसायवाले भी प्रभावित होते हैं। उनके काम भी ठडे पड जाते हैं। उदाहरणार्थ, आटा पीसनेवाले अथवा वावरची इत्यादि। उनके धधे भी रुकने लगते हैं। सेना की दशा भी गिरने लगती है। सेना के वेतन का गाँव की आय से भुगतान होता है। अत आय कम हो जाने के कारण सिपाहियो का जीवन-निर्वाह नही हो पाता और उनकी दशा शोचनीय हो जाती है।

इस प्रकार यदि शक्कर एव मधु का भाव वहुत समय तक गिरा रहेगा तो जो लोग इन चीज़ो का व्यवसाय करते हैं वे सव नष्ट हो जायँगे। सक्षेप में जो वस्तु अधिक समय तक सस्ती रहती है उससे सम्वन्धित जितने पेशेवाले होते हैं वे सवके सव हानि उठाते हैं और सवकी दुर्दशा हो जाती है। यह दशा केवल अल्प-मूल्यता तक ही सीमित नही रहती। महँगाई में भी विभिन्न व्यवसाय करनेवालो की ऐसी ही दुर्दशा हो जाती है। लोगो को सुख, शान्ति तो उस समय प्राप्त होती है जव कि चीज़ो का भाव न तो वहुत अधिक हो और न वहुत सस्ता तथा चीज़ें सुगमतापूर्वक प्राप्त होती रहें। विकनेवाली वस्तुओ में अनाज की अल्पमूल्यता अच्छी समझी जाती है, कारण कि धनी तथा दरिद्र सभी को इसकी अत्यधिक आवश्यकता होती है। साधारण लोग इसीसे जीवित रहते हैं। अनाज ही एक ऐसी वस्तु है जिसका सस्ता होना व्यापार के नष्ट होने पर भी अच्छा माना गया है।

(१५) व्यापारियो के चरित्र सामान्यतः अन्य लोगो से घटिया होते हैं और वे मुरव्वत नही करते[1]

1 इस खंड में उन्हीं वातो की पुनरावृत्ति की गयी है जिनका उल्लेख खंड ११ में हो चुका है। अतः इसका अनुवाद नहीं किया गया।

(१६) कला के लिए शिक्षा परमावश्यक है

कला किसी विषय से सम्बद्ध कर्म में चिन्तन-शक्ति के विनियोग का नाम है। उसका कर्म से सम्बन्ध भौतिक होता है और ज्ञानेन्द्रियो द्वारा उसका निरीक्षण हो सकता है। जो विषय वस्तुएँ भौतिक रूप में ज्ञानेन्द्रियो द्वारा देखी जा सकती है उनका उचित ढग से और कुशलतापूर्वक अभ्यास किया जा सकता है। उपयुक्त उत्साह होने पर उन्हें सीखा जा सकता है। अभ्यास इसके लिए बडा आवश्यक होता है।

आदत एक प्रकार का स्थायी गुण है जो कि किसी कार्य को बार-बार करने से प्राप्त होती है। यहाँ तक कि कार्य का वह रूप भी स्थायी बन जाता है। आदत उस मौलिक कार्य का रूप है जिससे वह बनती है। ऐसी बातो का सिखाना जिन्हे मनुष्य ने स्वय अपनी आँखो से देखा हो उन बातो के सिखाने से जिन्हें किसीने सीखा है, अधिक सरल होता है। वह आदत जो कि व्यक्तिगत निरीक्षण के ऊपर आधारित है उस आदत से जो किसीकी शिक्षा द्वारा प्राप्त होती है, अधिक पूर्ण एव दृढ होती है। जो विद्यार्थी किसी कला में कुशलता प्राप्त करता है और जो आदत वह सीखता है वह गुरु की आदत एव उसकी शिक्षा के अनुसार होती है।

इसके अतिरिक्त कुछ कलाएँ साधारण है और कुछ जटिल। साधारण कलाएँ जीवन की आवश्यकताओ से सम्बन्धित होती हैं तथा जटिल कलाएँ आनन्दमय जीवन की आवश्यकताओ से। साधारण कलाएँ सर्वप्रथम इसलिए सिखायी जाती हैं कि वे साधारण होती हैं और जीवन की आवश्यकताओ से उनका सम्बन्ध होता है। उनके सीखने की बड़ी माँग होती है, अत. उनकी शिक्षा को प्राथमिकता प्राप्त होती है, किन्तु यह शिक्षा निम्न श्रेणी की होती हैं।

बुद्धि हर प्रकार की कलाओ को जिनमें जटिल कलाएँ भी सम्मिलित है, सीखने से बाज नही आती, कारण कि एक के बाद दूसरी वस्तु का पता चलता रहता है, यहाँ तक कि मनुष्य को पूर्ण कुशलता प्राप्त हो जाती है। यह सफलता एक ही बार में नही प्राप्त होती। इसकी प्राप्ति में समय लगता है, यहाँ तक कि पीढियाँ बीत जाती हैं। किसी ऐसी वस्तु की जिसकी कल्पना की जा सकती है, अनायास अस्तित्व में आना सम्भव नही, विशेष रूप से कला-सम्बन्धी बातो का, अत इसमें समय लगना अनुपेक्ष्य है। इस कारण छोटे-छोटे नगरो में कलाएँ उच्च श्रेणी नही प्राप्त कर पाती और केवल साधारण कलाओं का ही प्रयोग होता है। जब इन नगरो में नगर सम्बन्धी सस्कृति की उन्नति होती है तथा सुख-सम्पन्नता के साधनो की आवश्यकता

होती है तो कलाओ तथा कारीगरी की भी उन्नति होती है और वे सम्भावित स्थिति से वास्तविक स्थिति में आती है।

कलाओ का विभाजन अन्य प्रकार से भी होता है। उदाहरणार्थ, एक वह कला जो मनुष्य की आर्थिक आवश्यकताओ से सम्बन्धित हो चाहे वह आवश्यक हो अथवा अनावश्यक। उदाहरणार्थ, जुलाहे का काम, वढई का काम, लुहार तथा कसाई का काम। इसके अतिरिक्त वे कलाएँ है जो मनुष्य की चिन्तनशक्ति से सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ, कितावत, जिल्दसाजी, सगीत, कविता, शिक्षा। दूसरी वह कला है जिसका सम्वन्ध राजनीति से है। उदाहरणार्थ, सेना का कार्य।

(१७) नगर के जीवन एव संस्कृति के वढने पर ही कला-कौशल की उन्नति होती है

इसका कारण यह है कि जव तक नगर की सभ्यता पूर्ण रूप से उन्नत न हो जाय तथा नागर जीवन एव सस्कृति का पूर्ण रूप से विकास न हो जाय तव तक लोग अपनी आर्थिक आवश्यकताओ ही में उलझे रहते है अर्थात् उनको केवल भोजन प्राप्त करने की चिन्ता होती है, उदाहरणार्थ अनाज की पैदावार की ओर उनका पूरा ध्यान लगा रहता है। फिर जव नगर में सस्कृति की उन्नति होती है तो हर प्रकार के कार्य की भी उन्नति होने लगती है। लोगो को अपनी आर्थिक आवश्यकताओ की चिन्ता नही रहती। ऐसी अवस्था में उनका ध्यान अनावश्यक एव ऐसी वस्तुओ की ओर आकृष्ट होता है जो भोग-विलास से सम्वद्ध होती है। इसके अतिरिक्त कला एव ज्ञान मनुष्य की उस चिन्तनशक्ति द्वारा जन्म पाते है जिनके कारण वह पशुओ से पृथक् किया जाता है। क्योकि भोजन की प्राप्ति मनुष्य की वह पाशविक आवश्यकता है जिसे मानवता पर प्राथमिकता प्राप्त है, अत मनुष्य की चिन्तनशक्ति सम्वन्धी कलाओ एव ज्ञानो पर भी उसका प्रभुत्व होता है। सभ्यता के क्षेत्र में नगर जितनी ही उन्नति करता है, कलाओ में उतनी ही वारीकियाँ निकलती आती है। उनकी विभिन्न शाखाएँ वन जाती है, कारण कि लोग सस्कृति की वजह से आडम्वर एव दिखावा पसन्द करने लगते है। इस कारण कलाओ की उन्नति अनिवार्य होती है। जिस नगर की सभ्यता निम्नस्तरीय हो और वह केवल वदवी वर्ग की ही हो तो उसमें उन्ही आवश्यक कलाओ की ज़रूरत होगी जिनका सम्वन्ध जीविका-निर्वाह मात्र से है, यानी दर्ज़ी, जुलाहे, कसाई इत्यादि के कला-कौशल की। किन्तु इन लोगो की कलाएँ साधारण श्रेणी की ही होती है जिनसे केवल जीवन की आवश्यकताएँ ही पूरी

होती हैं। उन पर किसी प्रकार के नवाविष्कार का आवरण नही चढा होता। जब नगर की सभ्यता उन्नति करती है और लोगो को प्रत्येक वस्तु में कुशलता प्राप्त करने की इच्छा होती है तो कलाएँ भी विभिन्न नमूने की ईजाद होती हैं। जो कलाएँ पहले से प्रचलित होती हैं वे उन्नति के शिखर तक पहुँच जाती हैं, कारण कि सुख-सम्पन्नता एव विलास-प्रियता लोगो पर गहरा प्रभाव डालती है। पुरानी कलाओ के उन्नति के शिखर पर पहुँचने के साथ ही नित्य नये आविष्कार होते हैं। उदाहरणार्थ, कसाई, चमडे एव कपडे के रँगनेवाले भी मिलने लगते है। सभ्यता जब और भी अधिक बढती है तो कलाओ एव कारीगरियो में नये-नये आविष्कार होने लगते हैं। नगर-निवासी इन नयी-नयी कलाओ से भली-भाँति खाते-कमाते है और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करते है, उदाहरणार्थ कोई अत्तार होता है तो कोई ठठेरा, कोई स्नान कराता है तो कोई बावरची बनता है, कोई मोमबत्ती बेचता है तो कोई हरीसा।[1] कोई सगीत नृत्य सिखाने लगता है और कोई तबला बजाना। कुछ लोग कितावत को अपना व्यवसाय बनाते है और कुछ जिल्दसाज़ी को। सक्षेप में यह बाते समृद्धि एव सुख-सम्पन्नता के साथ-साथ है। इनमें मानव-चिन्तन की अधिक आवश्यकता होती है।

इस प्रकार जब मिस्र में नगरो का जीवन उन्नति के शिखर पर पहुँचा तो वहाँ ऐसे लोग भी निकल आये जो पक्षियो को बोलियाँ बोलना सिखाते, और पशुओ को ऐसा वश मे कर लेते है कि देखनेवाले चकित रह जाते है। वे शिकारी पक्षियो को शिक्षा देकर हवा में नचाते है और हवा में ही डोरो पर चलाते है। पशुओ और पत्थरो को उठवाते है। सक्षेप में उनके ऐसे-ऐसे करतब देखने में आते हैं जिनकी मगरिब-वाले कल्पना भी नही कर सकते। इसका कारण केवल यह है कि मगरिब अभी सभ्यता एव सस्कृति मे मिस्र और काहेरा की बराबरी नही कर सकता।

(१८) नगरों में संस्कृति जितनी दृढ, स्थायी एवं पुरानी होती है उतनी ही वहाँ कलाएँ भी दृढ एव स्थायी होती है

इसका कारण यही है कि कलाओ का जन्म सभ्यता की उन्नति से होता है। जब वे दीर्घकाल तक किसी सभ्य नगर में प्रचलित रहती है और अधिक समय तक लोगो में उनका चलन रहता है तो वे दृढ एव स्थायी रीतियो का रूप धारण कर लेती है

१ एक प्रकार की लप्सी।

और फिर वडी कठिनाई से ही मिटती है। इतिहासो से पता चलता है कि जब सभ्य नगरो का पतन हुआ और वे उजडने लगे तो उनमें सस्कृति सम्बन्धी कलाएँ मिटते-मिटते भी इतनी वच गयी है कि नये सभ्य नगर उनकी वरावरी नही कर सकते। इसका कारण यही है कि उजडनेवाले नगरो में कलाएँ हाल में ही प्रचलित नही होती कि शीघ्र मिट जायँ, अपितु शताब्दियो से प्रचलित रहती है और दृढ़ हो चुकती है। इसके विपरीत नये सभ्य नगरो में हाल में ही कलाएँ प्रचलित होती है तो उनका प्राचीन नगरो से मुकाविला हो ही नही सकता।

समकालीन उन्दुलुस में ही देख लिया जाय कि यद्यपि उसकी सभ्यता पूर्व की अपेक्षा वहुत घट चुकी है, किन्तु सभ्य नगरो के समान सभी कलाएँ पायी जाती है और वे मिटाने से भी नही मिटी हैं। वहाँ अव भी अत्यन्त कुशल अभियन्ता, वावरची, संगीतज्ञ एव नृत्य करनेवाले मिल जायँगे। वहाँ के महल सर्वोत्तम फर्शो से सुसज्जित होते है। भवन वडे ही सुव्यवस्थित रूप से एव योजनानुसार वनाये जाते हैं। खाने-पीने एव अन्य प्रयोग के वर्तन एक से एक उत्तम तथा उत्कृष्ट धातुओ के होते है। विवाह एव अन्य समारोहो के अवसर पर दर्शनीय प्रवन्ध होते हैं। सक्षेप में इस प्रकार की समस्त प्रथाएँ एव प्रभुत्व तथा ऐश्वर्य एव गौरव की वस्तुएँ इतनी उत्तम दशा में अव भी वर्त्तमान है कि हाल का कोई सभ्य नगर मुश्किल से ही उसका मुकाविला कर सकता है। इसका कारण वही है जिसका हम उल्लेख कर चुके हैं कि यहाँ वनी उमय्या तथा कूत[1] के राज्यकाल में यहाँ तक कि मुलूकुत्तवाएफ के समय के शासको के राज्यकाल में भी सस्कृति इतनी उन्नति पर रही जितनी आज भी किसी देश में नही है। इराक, शाम तथा मिस्र में भी कलाओ की ऐसी ही उन्नति रही और दीर्घकाल तक यह कला-कौशल का केन्द्र वने रहे और अव भी यही समझा जाता है कि जव तक उनकी सभ्यता पूर्णत नष्ट न हो जायगी वहाँ की कलाएँ नहीं समाप्त हो सकती। तूनुस (ट्युनिस) का उदाहरण भी आपके समक्ष है। इसमें भी सिनहाजा एव मुवह्हेदीन की सल्तनत के समय में नगर का जीवन एव सस्कृति के साथ-साथ कलाओ को भी वडी उन्नति प्राप्त हुई थी। यद्यपि उन्दुलुस की अपेक्षा तूनुस (ट्युनिस) कला-कौशल में पीछे रहा, किन्तु फिर भी वहाँ कला-कौशल की वडी चर्चा थी। कुछ इस कारण कि मिस्र वहाँ से निकट था और वही के निवासी प्रतिवर्ष मिस्र जाया करते थे जहाँ रहकर वे वहाँ की आदतें स्वभाव तथा कला को जो-जो उन्हें रुचिकर होती, सीख लेते थे और फिर

१. गोथिक वंश।

अपने देश में आकर उनको प्रचलित करते थे। इस प्रकार मिस्र तथा तूनुस (टयुनिस) कला-कौशल एव सस्कृति में अद्वितीय हो गये। कुछ इस कारण कि ७वी शती (१३वी शती ई०) में जब मुसलमान उन्दुलुस से निर्वासित हुए तो वे तूनुस (टयुनिस) में ही जाकर बसे। यद्यपि अव तूनुस (टयुनिस) की सम्यता पतनशील है, किन्तु वहाँ की सस्कृति ने अभी तक अपना रग नही बदला। कैरावान, मराकश, कलात इब्ने हम्माद की भी यही दशा है। यद्यपि वे विनाश को पहुँच चुके है, किन्तु प्राचीन कला-कौशल तथा सस्कृति एव सम्यता के अवशेष वहाँ अब भी उसी प्रकार वर्त्तमान है जो भूतकाल के इतिहास का स्मरण दिलाते रहते है।

(१९) कला-कौशल की जब देश में माँग होती है तो उनकी उन्नति भी होती है और नये-नये आविष्कार भी होते रहते है

यह बात स्पष्ट है कि मनुष्य कोई कार्य बिना किसी मूल्य अथवा पारिश्रमिक के नही करता। कार्य ही उसके लिए लाभ एव जीविकोपार्जन का साधन है। यदि वह बिना मूल्य के कार्य करने लगे तो उसका जीवन-निर्वाह कैसे हो सकता है।[1] इसी तथ्य के आधार पर जब किसी कला की नगर अथवा देश में माँग होती है और वह सम्मान की दृष्टि से देखी जाती है तो वह एक व्यापारिक सामग्री के समान होती है जिसको प्रसिद्धि प्राप्त होती है और वह बिकने के लिए हर समय प्रस्तुत की जा सकती है। लोग ऐसी कलाओ को सीखने के लिए बडी रुचि दिखाते है, ताकि उसको जीवन-निर्वाह का साधन बना सकें। जब किसी कला की देश अथवा नगर में माँग ही न हो, बाजार में उसका कोई मूल्य ही न हो तो कोई भी उसके सीखने के लिए तैयार नही होता और उसकी ओर दृष्टिपात नही करता। इसी आधार पर हज़रत अली का यह कथन प्रसिद्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य उसका वह कार्य है जिसको वह भली-भाँति सम्पन्न कर सकता है[1]। अन्य शब्दो में इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि कला ही मनुष्य का अथवा उसके कार्य का मूल्य है जो उसके जीविकोपार्जन का साधन है।

इस सम्बन्ध में एक अन्य तथ्य को भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि "सल्तनत की दृष्टि से कला-कौशल का मूल्य घटता-बढता रहता है। जिस कला की सल्तनत

१ इस कथन के हवाले बहुत-से स्थानों पर मिलते है, देखिए इब्नेक़ुतैबह, "उयूनुल अख़बार", सालेबी, "एजाज" तथा इब्ने बस्साम, "ज़ख़ीरह"।

में माग होती है, उसके गुणो की वेहद प्रशसा होती रहती है। वाजारो में भी उसी-से रौनक होती है और प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि मे वही उत्तम दीखती है। सल्तनत जिस कला की प्रशसा न करे और नगरवाले उसे पसन्द न करें तो उसका मूल्य शेप नहीं रहता, कारण कि सल्तनत एक वड़े वाजार के समान है जिसमें प्रत्येक वस्तु चाहे थोडी हो अथवा वहुत, खप जाती है। जिस चीज़ का चलन सल्तनत के वाज़ार में हो उसीका सर्वसाधारण में भी ज्यादा चलन होता है। सर्वसाधारण यदि किसी कला को पसन्द नही करते तो सामान्य रूप से उसकी माँग कम होती और वाज़ार भी उमको अधिक स्वीकार नही करता।

(२०) नगर जव उजड़ने लगते है तो वहाँ की कलाएँ भी कम होने लगती है

इसका कारण यह है कि कला को उस समय तक उन्नति प्राप्त होती है जव तक उसकी माँग अथवा आवश्यकता होती है। जव नगर की दशा शोचनीय हो जाती है और उसका जीवनकाल युवावस्था को समाप्त करके वृद्धावस्था में प्रविष्ट होता है तो उसकी सभ्यता का भी पतन हो जाता है। वहाँ का भोग-विलास भी समाप्त हो जाता है और लोग केवल अपनी मूल आवश्यकताओ की प्राप्ति मात्र का प्रयत्न करते रहते है। जव यह स्थिति हो तो कलाओ का पतन हो जाता है। इसका कारण यह है कि कलाओं का देश के भोग-विलास से घनिष्ठ सम्वन्ध है। वे एक दूसरे से पृथक् नही हो सकती। यह वात स्पष्ट है कि जव कलाकार का पेट अपनी कला से नही भरेगा तो वह उसे छोड भागेगा और किसी अन्य कला को स्वीकार कर लेगा। यदि वह ऐसा न करे तो उसे अपना विनाश दृष्टिगत होने लगेगा। इस प्रकार से कलाएँ एक-एक करके कम होती चली जायेंगी और धीरे-धीरे सव नष्ट हो जायेंगी। अत. वडे-वड़े नगर जव नष्ट होने लगते है तो वहाँ न कोई शिल्पकार मिलता है न नक्काश, न सुनार न कातिव, न सुलेख लिखनेवाले। सक्षेप में सस्कृति सवधी समस्त कलाओ का समूलोच्छेदन हो जाता है।

(२१) अरव लोग कलाओ से सव कौमो की अपेक्षा अधिक दूर रहते है

इसका कारण यह है कि अरव वदवी जीवन व्यतीत करते है। वे नागर जीवन, नगर की सस्कृति तथा कला-कौशल से अपरिचित होते है। इनकी तुलना में अजम उदाहरणार्थ, पूर्ववाले एव वे ईसाई कौमें जो भूमव्य-सागर के तट पर आवाद है, सस्कृति

सभ्यता मे बडी उन्नति कर गयी हैं। वे वदवियत से अनिभिज्ञ है। यहाँ तक कि
के यहाँ ऊँट तक जो अरबो को रेगिस्तान में खीच ले गया और जिसने उनको वदवी
ा दिया, वहाँ नही होता। न अजम के यहाँ चरागाहें होती है और न ऊँटो के पलने
वढने के लिए रेगिस्तान। इस प्रकार वदवियत की अन्य विशेपताओं एव आव-
कताओ को सभ्यता एव सस्कृति में पलनेवाले लोग नही जानते।

इसी कारण अरव की वस्तियो में तथा उन स्थानो में जिन्हें इन लोगो ने विजय
या, कला-कौशल की चर्चा वहुत ही कम रही। उधर अजम के प्रदेश चीन, हिन्द,
कस्तान, एव फिरगिस्तान[1] कला-कौशल में बडी उन्नति कर गये यहाँ तक कि
य कौमें वहाँ से कला-कौशल सीख-सीख कर जाती है और अपने देशो में उन्हें प्रचलित
रती हैं।

मगरिब की वरवर कौम की दशा भी अरव-जैसी है। शताब्दियो से वदवी एव
ल स्वभाव के होने के कारण उनमें कला-कौशल का कोई नाम नही जानता। उनके
ा में नगरो की सख्या वहुत कम है। वहाँ यदि कोई कला है भी तो वह ऊन और
ाल की। वहाँ ऊन की बुनाई और चमडे की रँगाई अच्छी होती है। उनके देश की
ल सम्पत्ति यही दोनो वस्तुएँ है जिनकी सवको आवश्यकता होती है और देश में
नकी अत्यधिक माँग भी है। पूर्व में फारसवालों नव्त, किव्त, वनी इस्राईल, यूनान
था रूम में प्राचीन कौमो के युग से लेकर आज तक नागर जीवन एव संस्कृति की
र्चा है। इसी के साथ-साथ हर प्रकार की कला देश में प्रचलित है। स्थायी रूप से
क स्थान पर रहने के कारण उनके यहाँ कलाएँ इतनी पुष्ट हो गयी है कि देश नष्ट
ो गया, किन्तु कलाएँ अव तक पूरी तरह नही मिट सकी।

अव रहे यमन, वहरैन, उमान तथा जजीरा तो वे यद्यपि अरवो के ही अधीन है,
न्तु वहाँ आद, समूद, अमालका, हमीरी, तवावेआ तथा अजवा[2] सरीखी सभ्य कौमें
हस्रो वर्प रही। देश उनके कारण सभ्यता एव सस्कृति का केन्द्र वन गया और
ला-कौशल को दृढता प्राप्त हो गयी। इस कारण यद्यपि उनकी सल्तनें मिट गयी,
न्तु कलाएँ वहाँ से नही मिटने पायी और अव तक उनमें आविष्कार होते रहते हैं।
हाँ की कढाई एव रेशम की बुनाई तो अव तक प्रसिद्ध चली आ रही है।

"ईश्वर ही पृथ्वी का स्वामी है और जो कुछ पृथ्वी पर है सव उसका है।"

१. फैक्स के देश।
२. दक्षिणी अरब के शासक।

(२२) जिसको एक कला में कुशलता प्राप्त हो जाती है वह बड़ी कठिनाई से दूसरी कला मे कुशलता प्राप्त कर पाता है

इसका यह कारण है कि यदि किसी दर्ज़ी को अपने व्यवसाय में ही दक्षता प्राप्त हो जाय और हृदय से वह उसमें मग्न रहने लगे तो फिर वह कुशल बढई अथवा भवन-निर्माण करनेवाला नही हो सकता। इसका कारण यह है कि कुशलता मनोवैज्ञानिक गुण है। उसका एक रग है जो काम करते-करते कारीगर पर चढ जाता है। अब जिस प्रकार दो गुणो की ओर एक ही समय में किसी मनुष्य का झुकाव नही हो सकता, जिस तरह दो रग भी किसी वस्तु पर एक ही समय में नही चढ सकते, उसी प्रकार दो तरह के व्यवसायो में कुशलता एक ही समय में एक व्यक्ति को नही प्राप्त हो सकती। प्रत्येक व्यक्ति की मनोवृत्ति पृथक् होती है। कोई किसी व्यवसाय में कुशलता प्राप्त करता है और कोई किसी में। जब किसी को एक व्यवसाय में कुशलता प्राप्त हो जाती है तो दूसरे व्यवसाय में उतनी कुशलता नही प्राप्त हो पाती। हमारा अनुभव कि यद्यपि एक कुशल कारीगर दूसरी कारीगरी की ओर आकृष्ट भी होगा तो वह बडी कठिनाई से उसमें कुशलता प्राप्त कर सकेगा इस बात का प्रमाण है। यदि उसने कुशलता प्राप्त कर भी ली तो वह उस श्रेणी की कुशलता कदापि न होगी जैसी कि पहली कला में उसे प्राप्त थी। यही सिद्धान्त उन कार्यो का भी है जिनमें सोच-विचार से कार्य करना पडता है। यदि किसी विद्वान् ने एक विद्या में कुशलता प्राप्त कर ली तो उसे उतनी सफलता दूसरे ज्ञान में नही प्राप्त होगी। इसका यही कारण है कि जब मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो के अनुसार एक कला की गहरी छाप पड जाती है तो दूसरी कला की छाप नही पड पाती और यदि पड़ती भी है तो उसका अधिक प्रभाव नही होता। इसी को हम कुशलता कहते हैं।

(२३) मुख्य कलाएँ

जिस प्रकार ससार में मनुष्यो के कार्य असख्य है उसी प्रकार कलाएँ भी अगणित है, किन्तु इनमें कुछ ऐसी आवश्यक है जिनके बिना मनुष्य का कार्य नही चल सकता और वे सम्मानित भी समझी जाती है, कुछ उनके विपरीत है। यहाँ हम केवल आवश्यक एव श्रेष्ठ कलाओ का ही उल्लेख करेंगे, अन्यो का नही। कृषि, भवन-निर्माण कला, बढईगीरी इत्यादि आवश्यक कलाएँ है। दाई का कार्य, किताबत[1] का कार्य, सगीत,

१. लिखने की कला।

तवीबो के कार्य सम्मानित गिने जाते है। इनमें से सभ्यता के युग में दाई के कार्य की वहुत अधिक आवश्यकता पडती है, कारण कि इस पर बालको का जीवन तथा उनका स्वास्थ्य निर्भर होता है। दाइयो को वालको तथा उनकी माताओ की शुश्रूपा करने की शिक्षा प्रदान की जाती है। चिकित्सको के व्यवसाय में मनुष्य के स्वास्थ्य तथा रोग के निराकरण के उपाय बताये जाते है। सक्षेप में इस विपय का क्षेत्र मनुष्य के शरीर से सम्बन्धित है। किताबत एव वर्राकी[1] की कलाएँ कई दृष्टि से वडी ही महत्त्वपूर्ण है। यह मनुष्य को भूल-चूक से वचाती है, उसके हार्दिक विचारो को अन्य मनुष्यो तक पहुँचाती है तथा मानवबुद्धि के वहुमूल्य आविष्कारो को विद्या के भडार ग्रन्थो के रूप में सुरक्षित रखने का साधन वनती है। सगीत ध्वनि को कानो के लिए रोचक बनाता है, उससे ध्वनि-सौदर्य की वृद्धि होती है और उसमे चार चाँद लगते है। इनमें से अन्तिम तीन कलाएँ वादशाहो के दरवारो तथा एकान्त गोष्ठियो के गौरव एव सम्मान का साधन वनती है। बादशाहो की दृष्टि में इनका वडा महत्त्व होता है, अत. इनको अन्य कलाओ पर श्रेष्ठता प्राप्त होती है। उनके महत्त्व को देखते हुए अन्य कलाएँ उनसे निम्न श्रेणी की गिनी जाती है। सब कलाओ का मूल्य एव महत्त्व समय की आवश्यकता के अनुसार घटता वढता रहता है।

(२४) कृषि

(२५) भवन-निर्माण

(२६) बढ़ई का काम

(२७) बुनाई तथा सिलाई

(२८) दाई का कार्य

(२९) चिकित्सा-शास्त्र एवं बड़े-बड़े नगरो तथा आवाद वस्तियों मे उसकी आवश्यकता और उजाड़ स्थानो में उसकी अनावश्यकता

१. इब्ने खलदून न वर्राकी के अध्याय में लिखा है कि प्राचीन काल में वर्राकी के अन्तर्गत काग़ज बनाना, कितावत और जिल्दसाज़ी तीनों पेशे समझे जाते थे।

(३०) मानवीय कलाओ में लिखने की कला का महत्त्व

(३१) वर्राकी (पुस्तकों की तैयारी) का व्यवसाय

(३२) सगीत

(३३) प्रत्येक कला के अभ्यास से विशेपतया लिखने तथा गणित की कलाओ से मनुष्य की बुद्धि बढती है।[1]

१. उपर्युक्त खडो (२४–३३) के अनुवाद यहाँ नहीं दिये गये है।

अध्याय ६

ज्ञान की विभिन्न क़िस्में, शिक्षा-विधि, तत्सम्बन्धी शर्तें

(१) शिक्षा मानव सभ्यता की एक प्रकृत आवश्यकता ह

यह खुला हुआ तथ्य है कि मानवेन्द्रियों की तुष्टि के निमित्त खाने के लिए भोजन और निवास हेतु किसी-न-किसी प्रकार के स्थान की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओ के विषय में मनुष्य तथा अन्य पशुओ में कोई भेद नही है। मनुष्य को पशुओ से पृथक् करनेवाली वस्तु है उसका विवेक एवं बुद्धि, जो उसके जीविकोपार्जन के मार्ग निकालती है, एक मनुष्य को दूसरे के साथ मिल-जुलकर बसना सिखाती है, पवित्र नवियो की शिक्षा से अवगत कराती है एवं परलोक के मार्ग दिखाती है। प्रतिक्षण अथवा प्रतिपल मनुष्य सोच-विचार किया करता है। उसकी यही चिन्तनशक्ति एवं विवेक ज्ञान-विज्ञान तथा कलाओं के स्रोत है। जब वह अपने शरीर की स्वाभाविक आवश्यकताओ के कारण विवश होता है तो वह ऐसे लोगो की खोज में लग जाता है जो उससे अधिक बुद्धिमान् होते है अथवा उससे अधिक ज्ञानवान् और उससे श्रेष्ठ भी। वह उनसे ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करता है और फिर आगे चलकर स्वय भी तथ्यो को एक-एक करके पहचानता और उनसे सम्बन्धित कारणो का भी ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार दीर्घ काल तक अभ्यास करते-करते उसे तथ्यो और उनके कारणो का पता चल जाता है और उनमें उसे विशेष कुशलता प्राप्त हो जाती है। भावी सतान जब उसको इस प्रकार कुशल देखती है तो उसके समक्ष झुक जाती है। शिक्षा का क्रम इसी से प्रारम्भ होता है। इस सक्षिप्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा कि शिक्षा-दीक्षा मनुष्य के लिए स्वाभाविक है।

(२) वैज्ञानिक शिक्षा भी एक प्रकार की कला है

जब तक किसी विद्वान् को किसी ज्ञान के प्रारम्भिक सिद्धान्तो एव अन्य नियमों पर पूरा-पूरा अधिकार न प्राप्त हो जाय और उसको समस्त समस्याओ से परिचय प्राप्त करके मूल सिद्धातो से निष्कर्ष निकालने का अभ्यास न हो जाय उस समय तक उसे उस विद्या में कुशल नही कहा जा सकता और वह पूर्ण रूप से उस ज्ञान की जानकारी नही प्राप्त कर सकता। यह कुशलता सिद्धान्तो तथा समस्याओ को रट लेने मात्र से या उन्हें समझ लेने मात्र से नही प्राप्त होती, कारण कि हम देखते है कि कई सिद्धान्तो को साधारण

मनुष्य भी समझ लेता है और विद्वान् भी, जाहिल भी और कुशल आलिम भी, पर प्रारम्भिक ज्ञानवाले व्यक्ति को अथवा जाहिल को उसके प्रयोग की कुशलता नही प्राप्त हो पाती। अत यह सिद्ध हो गया कि कुशलता समस्याओ के मूल सिद्धातो को समझ लेने या उन्हें रट लेने मात्र से नही प्राप्त होती। इसका कारण यह है कि हम देखते है कि कई सिद्धान्तो को साधारण मनुष्य भी समझ लेता है और विद्वान् भी, जाहिल भी और कुशल आलिम भी, पर प्रारम्भिक ज्ञानवाले व्यक्ति को अथवा जाहिल को उसके प्रयोग की कुशलता नही प्राप्त हो पाती। अत. यह सिद्ध हो गया कि कुशलता समस्याओ के मूल सिद्धातो को समझ लेने तथा याद कर लेने से अधिक बडी चीज़ है और वह केवल कुशल आलिमो को ही प्राप्त होती है। यहाँ यह भी सिद्ध हो जाता है कि कुशलता चाहे शारीरिक कार्य सबधी गुण हो अथवा बुद्धि एव विवेक सम्बन्धी, शारीरिक ही होती है। परन्तु ज्ञानेन्द्रियो द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तु के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि ससारवाले प्रत्येक ज्ञान तथा कला को उनके कुशल विद्वानो से सम्बन्धित करते है चाहे वे किसी कौम अथवा किसी राष्ट्र में हुए हो। फिर यह भी स्पष्ट है कि वैज्ञानिक शिक्षा एक कला है। वैज्ञानिक शिक्षा-शास्त्रियो का इस विषय में बडा ही अधिक मतभेद है। प्रत्येक प्रसिद्ध विद्वान् का पारिभाषिक शब्दकोष पृथक् होता है जो दूसरे विद्वान् से अलग रहता है। कला में ऐसा ही होता रहता है कि प्रत्येक कला दूसरे से पृथक् होती है। यदि हम पारिभाषिक शब्दकोष को विज्ञान मानें तो सबका पारिभाषिक शब्दकोष एक ही होना चाहिए। यदि विज्ञान एक ही है तो पारिभाषिक शब्दकोष का एक होना अनिवार्य है। उदाहरण-स्वरूप कलाम के ज्ञान को ले लीजिए। जहाँ तक उसके पारिभाषिक शब्दो का सम्बन्ध है, प्रारम्भिक काल तथा उसके बाद के विद्वानो में अत्यधिक मतभेद है, यद्यपि सब आलिमो का ज्ञान एक ही है। यही दशा फिकह, अरबी भाषा साहित्य एव अन्य ज्ञानो की है। इस विवाद से यह निष्कर्ष निकला कि विज्ञान चाहे एक ही हो किन्तु शिक्षा के पारिभाषिक शब्द कला की भाँति भिन्न-भिन्न है।

जब से मगरिब की सभ्यता में विघ्न पडा और सल्तनत का सम्मान घटा तो अन्य कलाओ के साथ-साथ वैज्ञानिक शिक्षा का भी वहाँ से अन्त होने लगा। एक वह युग था जब कि कैरवान, करतेबा तथा मग़रिब एव उन्दुलुस की राजधानी सभ्यता का केन्द्र थी, विज्ञान तथा कला का बाज़ार वहाँ गरम था, वैज्ञानिक शिक्षा की हर ओर चर्चा रहती थी। नगर के जीवन तथा नगर की सस्कृति के भी वे केन्द्र थे। जब वहाँ वीरानी एव विनाश का प्रारम्भ हुआ तो शिक्षा का भी मगरिब से अन्त हो गया। केवल

मराकश में मुवह्हेदीन के आश्रय में शिक्षा की कुछ चर्चा है। शिक्षा को वहाँ इस कारण उन्नति न प्राप्त हुई कि मुवह्‌हेदीन पर बदवियत छायी रही और वे नगर की संस्कृति से अनभिज्ञ रहे। ऐसी अवस्था में वहाँ शिक्षा का कैसे ज़ोर होता। जब मुवह्‌हेदीन ने अपना रहा-सहा प्रभुत्व भी खो दिया तो उनके यहाँ से वैज्ञानिक शिक्षा की चर्चा भी समाप्त हो गयी। इसी युग मे इफरीकिया से काजी अबुल कासिम[1] बिन ज़ैतून ७वी शताब्दी[2] हि० के मध्य में विद्याध्ययन के लिए इफरीकिया से पूर्व की ओर रवाना हुए और इमाम इबनुलखतीब[3] के शिष्यो से शिक्षा ग्रहण करने लगे और अकली[4] तथा नकली[5] ज्ञानो में अच्छी कुशलता प्राप्त कर ली। तदुपरान्त वे अपने वतन तूनुस (ट्यूनिस) में वापस आ गये। उसके उपरान्त अबू अब्दुल्लाह इब्न शुयेब अद्दक्काली[6] मगरिब से मिस्र विद्याध्ययन हेतु रवाना हुए और पूर्ण रूप से शिक्षा ग्रहण करके तूनुस लौट आये। फिर इन्ही बुर्जुगो के शिष्य विभिन्न सतानो को शिक्षा प्रदान करते रहे, यहाँ तक कि काजी मुहम्मद बिन अबदुस्सलाम,[7] इब्नुल हाजिब[8] के टीकाकार तथा शिष्य का युग आया। इब्नुल इमाम तथा उसके शिष्यो द्वारा उनकी विद्वत्ता का प्रभाव तूनुस से तलमसान पहुँचा। इब्नुल इमाम, काज़ी मुहम्मद बिन अबदुस्सलाम के सहपाठी तथा गुरुभाई थे। दोनो ने एक ही गुरु तथा शेख़ से शिक्षा प्राप्त की थी। तूनुस में इब्ने अबदुस्सलाम के शिष्य तथा तलमसान में इब्नुल इमाम के कुछ शिष्य अब भी बचे खुचे रह गये हैं, किन्तु उनकी सख्या इतनी कम है कि इस बात का भय है कि कही दोनो विद्वानो का प्रभाव पूर्ण रूप से समाप्त न हो जाय।

१ अबुल कासिम बिन अबी बक्र (जन्म ६२१ हि० १२२४ ई०, मृत्यु ६९१ हि० १२९२ ई०)ने पूर्व के देशों की १२५१ ई० तथा १२५८ ई० में यात्रा की।
२. १३वीं शती ई०।
३ सम्भवतः इमाम फख़रूद्दीन राज़ी से तात्पर्य है।
४. बुद्धि अथवा तर्क सम्बन्धी ज्ञान।
५. नकल (हज़रत मुहम्मद के परम्परागत कथन) पर आधारित ज्ञान।
६. मुहम्मद बिन शुऐब अल हस्कूरी (मृत्यु ६६४ हि०, १२२५ ई०)।
७. वह स्वयं इब्नुल हाजिब का शिष्य न था।
८. अबू अमर उस्मान बिन अल-हाजिब (मृत्यु ६४६ हि०, १२४९ ई०) अरबी व्याकरण का बड़ा प्रसिद्ध विद्वान् हुआ है। इब्ने ख़लदून ने भी उसके ग्रंथों का अध्ययन किया था।

७वीं शती हि० के अन्त में जवावह से अबू अली नासिरुद्दीन[1] अलमशद्दाली पूर्व की ओर पहुँचा और अबी अमर बिन अलहाजिब के शिष्यों से शिक्षा ग्रहण करने लगा। उसने तथा शिहाबुद्दीन अब क़राफी[2] ने साथ-साथ शिक्षा पायी थी। सक्षेप में अकली तथा नकली ज्ञानों में परिपूर्ण कुशलता प्राप्त करके वह मग़रिब की ओर लौटा और बिजाया में ठहर गया। वही उसका शिक्षा-कार्य चलता रहा। फिर उसका एक शिष्य इमरान अल-मशद्दाली[3] तलमसान में पहुँचा और वही शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ कर दी। उसके शिष्य बिजाया तथा तलमसान में अब भी मिलते है, किन्तु उनकी भी सख्या बडी कम है।

जब से क़रतेवा तथा कैरवान में वैज्ञानिक शिक्षा की चर्चा समाप्त हुई और शिक्षा का उत्साह ठडा पडा तो फास एव मगरिब के समस्त नगर भी विद्वानो से शून्य हो गये। शिक्षा समाप्त हो गयी। अब वहाँ के निवासियो के लिए वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करने के द्वार लगभग बन्द हो गये है।

किसी विद्या में कुशलता प्राप्त करने का सरलतम साधन यह है कि विद्यार्थियो को वादविवाद का अभ्यास कराया जाय। तत्सम्बन्धी विभिन्न समस्याओ पर शोधपूर्ण विचार-विनिमय हो। विभिन्न विषयो पर वार्त्ता की जाय और विद्यार्थी उनमें उत्साह-पूर्वक भाग लें। शिक्षा के इस नियम द्वारा कुशलता शीघ्र प्राप्त हो जाती है और देखते-देखते विद्यार्थी अपने विषय में दक्ष हो जाते है, किन्तु आज हमारे युग में शिक्षा का ढग ही दूसरा हो गया है। शिष्य लोग वर्षों विद्वानो की गोष्ठियो में मौन बैठे रहते है, और वादविवाद नही करते। वे ज्ञान की विभिन्न समस्याओं को प्राय रटते रहते है। इस कारण किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त करके भी वे दक्ष नही हो पाते और न उनमें शोध की योग्यता ही पैदा हो पाती है। वे केवल ऊपरी बातें रट लेते हैं। शिक्षा समाप्त कर लेने पर भी इन्हें किसी प्रकार की कोई कुशलता प्राप्त नही होती। न वे वादविवाद कर सकते है, न विचार-विनिमय और न उस विषय की शिक्षा ही दे सकते है। इसका एक-मात्र कारण यह है कि एक तो उनकी शिक्षा ठीक तरह से नही होती और दूसरे

१. मनसूर बिन अहमद (लगभग ६३२ हि०) १२२५ से (७३१ हि०) १३३०-३१ ई०।
२. अहमद बिन इदरीस (मृत्यु ६८४ हि०, १२८५ ई०)।
३. इमरान बिन मूसा (६७० हि० १२७१-७२ ई० से ७४५ हि० १३४४-४५ ई०) नासिरुद्दीन का शिष्य तथा जामाता।

उन्हें कुशल आचार्य भी नही मिल पाते। अन्यथा विभिन्न ज्ञान विषयक समस्याएँ कण्ठस्थ कर लेने में वैसे वे सबसे आगे होते है, कारण कि रटाई को ही वे अपनी शिक्षा का ध्येय समझते है और उसे ही तद्विषयक दक्ष ज्ञान की पराकाष्ठा भी।

इसका परिणाम यह है कि मगरिब में विद्यार्थी के लिए शिक्षा प्राप्त करने की अवधि १६ वर्ष रखी गयी है और तूनुस में केवल ५ वर्ष जो साधारण विद्यालयो की प्रथा को देखते हुए किसी ज्ञान में कुशलता प्राप्त करने की न्यूनतम ही नही, अपितु सम्भवतः अपर्याप्त अवधि भी है। इसका कारण यह है कि मगरिब की शिक्षा-विधि ठीक नहीं है। इसीलिए उसका अभ्यास-काल वढ गया है। सच पूछा जाय तो इतने समय में भी जैसी योग्यता होनी चाहिए वह पैदा नही हो पाती।

उन्दुलुस में दो सौ वर्ष से जव से मुसलमानो की सभ्यता का पतन प्रारम्भ हुआ, वैज्ञानिक शिक्षा का भी अन्त हो गया है। वहाँ वैज्ञानिक शिक्षा की ओर अव कोई ध्यान नही दिया जाता, केवल अरबी साहित्य की कुछ चर्चा शेष है। उनके ज्ञान की सपूर्ण पूँजी उतनी ही है जितनी से उन्हें उनके पिछले इतिहास का स्मरण दिलाया जाता है। फिकह इससे भी कम प्रचलित है और अकली ज्ञानो का तो कोई नाम ही नही लेता। इसका कारण केवल यही है कि मुसलमानो के पतन तथा शत्रुओ के प्रभुत्व के कारण वैज्ञानिक शिक्षा में कुशल वश समाप्त हो गये और उनके उत्तराधिकारियो के चिह्न मिट गये। समुद्र तट पर मुसलमानो की सभ्यता किसी अश में पायी जाती है, लेकिन वह भी नाम मात्र की ही है। वे लोग प्राय. अपनी आर्थिक समस्याओ में ही उलझे रहते है और अन्य वातो की ओर कोई ध्यान ही नही दे पाते।

"अपना आदेश पूरा करने की शक्ति ईश्वर में ही है।"[1]

पूर्व में वैज्ञानिक ढग की शिक्षा अव भी प्रचलित है। वहाँ प्रत्येक दिशा मे शिक्षा की चर्चा है। कारण यह है कि नगरो में सभ्यता का सचार है। विद्वानो के वश पहले-जैसे ही चले आ रहे है और विज्ञान की परम्पराएँ भी वैसी ही। यद्यपि वहाँ के बडे-बड़े नगर, जैसे वगदाद, वसरा एव कूफा जो किसी समय ज्ञान-विज्ञान के वहुत बडे केन्द्र थे नष्ट-भ्रष्ट हो चुके है, किन्तु उनका स्थान अन्य नगरो ने ले लिया है। इस प्रकार विज्ञान पूर्व में अजम के खुरासान से लेकर मावराउन्नहर तक और पश्चिम में काहेरा तथा आस-पास तक फैला हुआ है। इनकी सभ्यता भी उन्नति पर है और शिक्षा-कार्य भी। सक्षेप में पूर्ववाले ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अत्यधिक अनुभव के स्वामी भी है और उन्होने इस दिशा में

१. क़ुरान शरीफ से उद्धृत।

त्यधिक अभ्यास भी प्राप्त कर लिया है। अन्य कलाओ में भी उन्हें अत्यधिक कुशलता
ाप्त है, यहाँ तक कि मगरिबवाले जब विद्याध्ययन के लिए वहाँ जाते है तो उनकी
ारणा यह होती है कि पूर्ववाले उनसे अधिक बुद्धिमान् एवं प्रतिभाशाली होते है।
नका विचार यह होता है कि पूर्ववालो की बुद्धि एव विवेक स्वाभाविक रूप से अधिक
शाग्र होते हैं। वे पूर्ववालों को अपने से इतना ऊँचा समझते हैं मानो वे किसी विचित्र
कार की मानव-जाति से सम्बन्धित हो। इसका केवल यही कारण है कि मगरिब-
ले ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल में पूर्ववालो की कुशलता देखकर अत्यधिक
भावित हो जाते है और फिर उनके विषय में इतनी उच्च धारणाएँ बनाने पर विवश
ा जाते है, यद्यपि इसमें कोई तथ्य नही। पूर्व एव पश्चिम के देशो में प्राकृतिक रूप से
तना अन्तर नही कि उनको दो पृथक् वस्तु समझ लिया जाय। भौगोलिक दृष्टि से
ा सन्देह प्रथम तथा सातवी इकलीमो में बडा अधिक अन्तर है, फलतः वहाँ के निवासियो
स्वभाव एव प्रकृति में बहुत बडा फर्क दृष्टिगत होता है और इसकी उपेक्षा नही की
ा सकती। पर जहाँ तक इस प्रश्न का सम्बन्ध है कि पूर्व तथा पश्चिमवालो में इतना
धिक अन्तर क्यो होता है, तो उसका कारण वही है जिसका उल्लेख हमने कलाओ
प्रकरण में किया है अर्थात् जिस स्थान पर संस्कृति को जितनी उन्नति प्राप्त रहती
, वहाँ के निवासियो की बुद्धि भी उसी हिसाब से अधिक तीव्र होती है। अब हम इस
थ्य का और अधिक विश्लेषण करते हैं।

जिन लोगो को सभ्यता में उन्नति प्राप्त हो जाती है वे अपने समस्त मामलो में
ाहे वे आर्थिक हो, चाहे निवास-स्थान से सम्बन्धित, इस लोक से सम्बन्धित हो चाहे
रलोक से, कुछ ऐसे विशिष्ट अनुशासन एव नियमो का पालन करते है जिनकी वे लेश-
ात्र भी अवहेलना नहीं करते। जिस अनुशासन अथवा जिस नियम का उन्हें पालन
रना होता है उसका वे पालन करते है। जो बातें पालन योग्य नही होती उनकी वे
पेक्षा करते जाते तथा उन्हें त्यागते जाते है। इस प्रकार वे कुछ विशिष्ट सीमाओ के
ीतर अपना जीवन व्यतीत करते है। उनकी ये सब बातें एक कला का रूप धारण
र लेती हैं जिसको उनके बाद के आनेवाले उनसे सीखते रहते है।

साथ ही साथ इस तथ्य की भी उपेक्षा नही की जा सकती कि प्रत्येक कला का
भ्यास बुद्धि को तेज करता और एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक शक्ति उत्पन्न करता है
ौर उसमें दूसरी कला को सीखने की भी योग्यता उत्पन्न हो जाती है, कारण अभ्यास
विवेक की शक्ति बढ जाती है। फलत प्रत्येक ज्ञान-विज्ञान सुगमतापूर्वक सीखा
ा सकता है। इस प्रकार मिस्रवालो ने शिक्षा सम्बन्धी विज्ञान को उन्नति के शिखर

पर पहुँचा दिया और ऐसी-ऐसी बातें कर डाली, जिन्हें देखकर अकल दग रह जाती है। उदाहरणार्थ, जगली गधो एव पशुओ को ऐसे ऐसे शब्द रटा देते है और ऐसे कार्य एव करतब सिखा देते हैं जिन्हें देखकर मनुष्य आश्चर्य में रह जाता है और मगरिब-वाले तो इन बातो को समझ ही नही पाते। इसका कारण यही है कि शिक्षा एव ज्ञान-विज्ञान में अभ्यास पैदा कर लेने तथा उन्हें अपनी आदत में सम्मिलित कर लेने से बुद्धि में तेज़ी एव चिंतन-शक्ति में जाग्रति पैदा हो जाती और प्रबुद्ध प्रतिभा के कारण विद्वत्ता के ऐसे चमत्कार दृष्टिगत होने लगते हैं कि सर्वसाधारण ऐसे विद्वानो को अपने से पृथक् समझने लगते है, यद्यपि बात ऐसी नही होती।

यदि आप नगरवासियो तथा बदवियो की तुलना करें तो यह भली-भाँति ज्ञात हो जायगा कि नगरवासी अपनी बुद्धि एव सूझ-बूझ के कारण हर बात की तह को पहुँच जाता है और वास्तविक तथ्य का पता लगा लेता है। बदवी जब उसे देखता है तो समझता है कि इसमें कोई और ही रहस्य है हालाँकि बात केवल इतनी ही होती है कि नगरवासियो को ज्ञान-विज्ञान का अभ्यास होता है और नगर की सभ्यता तथा नागर जीवन से वे भली-भाँति परिचित होते है और बदवी इन बातो से अनभिज्ञ होता है। इस विचार में भी कोई तथ्य नही कि नगरवासियो में असाधारण बुद्धि पायी जाती है और बदवियो में वह बुद्धि नही पायी जाती। हमने बहुत से बदवियो को देखा है जो असाधारण बुद्धि एव विवेक के स्वामी होते हैं, केवल अन्तर इतना होता है कि नगर-वासियो की बुद्धि एव विवेक पर ज्ञान-विज्ञान की छाप पडी रहती और उसकी आत्मा हर प्रकार से पूर्ण हो जाती है। एक साधारण बदवी इन बातो से अनभिज्ञ होता है, अत उसकी बुद्धि एव समझ अपनी ज्ञान-सीमा तक ही परिमित रहती है, आगे कदम नही बढा पाती। इसी तथ्य को मगरिबवाले तथा पूर्ववाले लोगो को सामने रखकर जाँचिए तो पता चलेगा कि सभ्यता के पथ पर अग्रसर पूर्ववाले क्योकि शिक्षा एव ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में सबके आगे थे और मगरिबवाले नगर की सस्कृति से अनभिज्ञ और बदवियत के निकटतम थे। अत. नासमझ मगरिबवासी, पूर्ववालो को अपने से वास्तव में पृथक् समझते थे और उनका विचार था कि वे अन्य प्रकार के मनुष्य है और हम अन्य प्रकार के। उनकी यह बात तथ्य से अनभिज्ञ होने का प्रमाण है।

"ईश्वर अपने किसी प्राणी को इच्छानुसार अन्य प्राणियो से अधिक दे डालता है।[1]

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।

(३) सभ्यता की जितनी ही उन्नति होती है और नगर की संस्कृति का जितना ज़ोर होता है, ज्ञान-विज्ञान की चर्चा ही अधिक होती है

पहले वताया जा चुका है कि वैज्ञानिक ढग से शिक्षा प्राप्त करना भी अन्य कलाओ के समान एक कला है और यह भी कि नगरो की सभ्यता जितनी घटती-वढती है और उनमें नगर की सभ्यता एव सस्कृति की चर्चा जितनी कम अथवा अधिक होती है उसी हिसाव से कलाओ का चलन भी कम अथवा अधिक होता है और उनकी अच्छाई एव श्रेष्ठता में अन्तर आता रहता है। इसका कारण यह है कि ये कलाएँ जीविकोपार्जन की आवश्यकताएँ पूरी हो जाने के वाद की चीज़ें हैं। जव जीविकोपार्जन की चिन्ता से मनुष्य मुक्त हो जाता है तो उसे ज्ञान-विज्ञान एव कलाओ की चिन्ता होती है। यदि कोई किसी ग्राम अथवा असभ्य नगर में पैदा हो और उसे शिक्षा प्राप्त करने में रुचि हो तो उसे विवश होकर सभ्य नगर की ओर जाना पडेगा, कारण कि वही उसकी प्यास वुझ सकती है और उसकी इच्छा पूरी हो सकती है। छोटे-छोटे स्थानो पर वैज्ञानिक ढग से शिक्षा की ऐसी सस्थाएँ नही होती जहाँ वह अपनी इच्छा की पूर्ति कर सके।

वगदाद, करतेवा, कैरवान (कारडोवा), वसरा तथा कूफ़ा के इतिहास का अध्ययन कीजिए कि इस्लाम के प्रारम्भ में जव वहाँ नगर सस्कृति एव नागर जीवन को उन्नति प्राप्त हुई और ज्ञान-विज्ञान का सागर लहरा उठा, नाना प्रकार के विज्ञानो एव कलाओ का आविष्कार हुआ, नये-नये वैज्ञानिक शोध होने लगे तो वास्तव में उन्होने पूर्वकालीन लोगो को भुला दिया और उनसे कही आगे निकल गये। जव इतिहास ने करवट वदली और युग परिवर्तन हुआ तथा इन उपर्युक्त नगरो की सभ्यता का पतन हुआ तो वहाँ के निवासियो की वड़ी दुर्दशा हो गयी और वे छिन्न-भिन्न हो गये। वैज्ञानिक शिक्षा का भी अन्त हो गया और वह अन्य इस्लामी नगरो में अपनी चमक-दमक दिखाने लगी।

हमारे इस युग में मिस्र का काहेरा नगर विज्ञान एव वैज्ञानिक शिक्षा में अद्वितीय है, कारण कि वह आज से नही, अपितु सहस्रो वर्षों से उच्च सभ्यता का केन्द्र रहा है और नागर सस्कृति में भी वह सर्वोच्च रहा है। अत कलाओ की जड़ें वहाँ दृढ हो गयी हैं और उनके साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान का भी वडा ज़ोर है। यह ज़ोर विशेप रूप से पिछले २०० वर्षो में जव से कि तुर्कों का राज्य वहाँ प्रारम्भ हुआ अर्थात् सलाहुद्दीन विन अय्यूव के समय से और भी वढ़ गया है। यह एक विशेप ऐतिहासिक तथ्य है कि

तुर्की अमीर अपनी सन्तान के लिए बडे चिन्तित रहा करते थे, कारण कि उनके बादशाहो की यह प्रथा थी कि वे अपने अमीरो के मरते ही उनकी धन-सम्पत्ति छीन लेते थे, क्योकि अमीर लोग उनके दास तथा सेवक ही तो होते थे। वे अपने अमीरो के धन को अपनी सम्पत्ति समझते थे। फलत अमीरो की सन्तान उनकी मृत्यु के उपरान्त दरिद्र हो जाती थी। इस भय से बचने के लिए अमीरो ने यह उपाय निकाला कि अत्यधिक धन लगाकर मदरसे खोलें तथा सरायें बनवा दें। सन्तान के नाम पर वे अत्यधिक आय के वक़्फ पृथक् कर देते थे जिनकी आय से वे सर्वदा चलते रहते थे और इन वक्फो का मुतवल्ली अथवा प्रबधक वे अपनी सन्तान को कर देते थे। इस कार्य के दो लाभ थे, एक तो यह कि वे बहुत बडे पुण्य के कार्य थे और उससे लोगों को निरन्तर लाभ पहुँचता रहता था तथा उस दान से बढकर कोई अन्य दान भी नही होता था। दूसरा लाभ यह था कि उन वक़्फो की आड मे उनकी सन्तान का जीवन-निर्वाह होता रहता था और वे भूखे नहीं मर पाते थे। उधर सुल्तानो के अपहरण के द्वार भी बन्द हो जाते थे। इस प्रकार वक्फो की सख्या बहुत बढ गयी थी। विद्यार्थी एव शिक्षक बहुत बडी सख्या में मिलने लगे। विद्यार्थियो एव शिक्षको को बहुसख्यक वृत्तियाँ भी निश्चित होने लगी। जब यह दशा हो गयी तो फिर इराक एव मगरिब से विद्यार्थियो की बहुत बडी सख्या वहाँ पहुँच गयी। ज्ञान-विज्ञान की माँग बढ गयी और उन्हें उन्नति प्राप्त होने लगी।

"ईश्वर जो चाहता है वह पैदा करता है।"[1]

(४) समकालीन सभ्यता के विभिन्न विज्ञान

वे सभी ज्ञान-विज्ञान जो मानव-समाज के अध्ययन और अभ्यास के विषय हैं, दो प्रकार के होते हैं। एक प्राकृतिक जिनकी ओर उसका चिन्तन स्वत. आकृष्ट होता है, और दूसरे नकली[2] जिन्हें वह उनके आविष्कर्ताओं से सुनकर जानता है।

प्रथम प्रकार के ज्ञान में दर्शन-सम्बन्धी विषय है। उनको सीखने के लिए मनुष्य स्वय अपनी चिन्तन-शक्ति का प्रयोग करता है। वह स्वय अपनी बौद्धिक शक्ति से उनके विषयो, समस्याओ, तर्क एव शिक्षाविधि का ज्ञान प्राप्त करता है। सक्षेप में वह स्वय अपनी बौद्धिक शक्ति से काम लेकर इन ज्ञानो में कुशलता प्राप्त करता है। उनसे सम्बन्धित प्रत्येक उचित एवं अनुचित बात के विषय में शोध करता है। नकली

१. कुरान शरीफ़ से उद्धृत।

२. नकल (हजरत मुहम्मद के परम्परागत-कथन) पर आधारित ज्ञान।

ज्ञान का आधार शरा के नियमो एव शरा के स्रोत की बतायी हुई रवायतो पर है। मनुष्य की वुद्धि का उसमें इसके अतिरिक्त कोई हाथ नही कि मूल सिद्धान्तो के आधार पर साधारण प्रकार के निष्कर्ष निकाले जायँ और उनका मूल सिद्धांत से समाधान कराया जाय। जो बातें नित्यप्रति विस्तार से पेश आती रहती हैं उनका उल्लेख मूल सिद्धान्त के रूप में अलग से नही हो सकता। उनका किसी-न-किसी प्रकार तुलनात्मक तर्क द्वारा समाधान करना पडता है, किन्तु इस तुलनात्मक तर्क का आधार भी नकल[1] ही है, कारण कि वे मूल सिद्धान्त जिनमें परिवर्तन सम्भव नही नकल पर ही आधारित हैं। इस प्रकार तुलनात्मक तर्क भी वास्तव में नकल ही पर आधारित हुआ।

नक़ली ज्ञान का स्रोत अल्लाह की किताब[2] तथा हज़रत मुहम्मद की सुन्नतें हैं जिन पर इस्लामी शरा आधारित है। इस्लाम (धर्म) इन्ही पर अवलम्बित है। जिस विद्या द्वारा हमें अल्लाह की किताब तथा मुहम्मद साहब की सुन्नत के समझने में सहायता मिले, वह नकली ज्ञान में सम्मिलित समझी जाती है, यहाँ तक कि अरबी साहित्य जो अरबवालो तथा कुरान शरीफ़ की भाषा है, इसी नकली ज्ञान में गिनी जाती है। जब नकली ज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया तो अन्य सभी प्रकार की विद्याएँ भी इसी के अन्तर्गत आ जाती हैं, कारण कि प्रत्येक मुसलमान का जिसके लिए शरा का पालन अनिवार्य है, कर्त्तव्य है कि वह उन दैवी आदेशो का ज्ञान प्राप्त करे जो अल्लाह की किताब एव हज़रत मुहम्मद की सुन्नत पर आधारित हैं।

इस प्रकार यह परमावश्यक है कि अल्लाह की किताब के शब्दो तथा उसके अर्थ को भली-भाँति समझा जाय और उनकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाय। ऐसी विद्या जिससे उपर्युक्त बोध होता है तफसीर[3] कहलाती है। फिर यह भी आवश्यक है कि अल्लाह की किताब के शुद्ध उच्चारण के विषय में हज़रत मुहम्मद के जो कथन बताये जाते हैं उनका ज्ञान प्रमाण सहित प्राप्त हो। जिस विद्या द्वारा यह ज्ञान प्राप्त होता है उसे किरअत कहा जाता है। यह भी आवश्यक है कि हज़रत मुहम्मद की हदीस के प्रमाणो का पता लगाया जाय और अन्तिम काल के हदीस का उल्लेख करनेवाले लेखको के विषय में भी छान-बीन की जाय और यह भली-भाँति देख लिया जाय कि वे सच्चे हैं अथवा झूठे, ताकि उन कथनो एव सूत्रो द्वारा जो शरा सम्बन्धी आदेश प्राप्त

१. हज़रत मुहम्मद के परम्परागत कथन।
२. क़ुरान शरीफ।
३. क़ुरान शरीफ की टीका।

हो, उसकी प्रामाणिकता पर पूर्ण विश्वास हो जाय। जिस ज्ञान में इस प्रकार का शोध होता है उसे हदीस कहते हैं। फिर यह भी आवश्यक है कि दैवी आदेशो से विशेप नियम एवं मूल सिद्धान्त निकाले जायँ ताकि उनकी सहायता से नाना प्रकार की दैनिक प्रयोग मे आनेवाली बातो एव घटनाओ का वैधानिक रूप से ज्ञान प्राप्त हो सके। जिस ज्ञान में इस प्रकार का तर्क-वितर्क एव शोध होता है उसे फिकह के सिद्धान्त कहते हैं। अन्त में यह बात भी आवश्यक है कि उपर्युक्त ज्ञानों द्वारा जो शरा के आदेश मुसलमानो के लिए प्राप्त हो वे एक स्थान पर ज्ञान-विज्ञान के रूप में सकलित हो। अत. जिस ज्ञान के अधीन ये आदेश आ जाते है, वे फिकह कहलाते है।

जहाँ तक (मुसलमानो के) कर्त्तव्यो का सवध है, वे दो प्रकार के है—शरीर सम्वन्धी तथा हृदय सम्वन्धी। इनका सम्बन्ध मुसलमानो के धार्मिक विश्वास से है, अर्थात् ईश्वर के अस्तित्व एव गुणो से सम्बन्धित, कयामत के विषय में अथवा स्वर्ग के सुख एव नरक के दड तथा ईश्वर की शक्ति के बारे में। जिस ज्ञान में उपर्युक्त विश्वासों पर तर्क-वितर्क किया जाता है उसको कलाम कहते हैं।

साथ ही साथ कुरान शरीफ एव हदीस को समझने के लिए भाषा सम्वन्धी ज्ञानो की भी उपेक्षा सम्भव नही। भाषा सम्वन्धी ज्ञान कई प्रकार के है। उदाहरणार्थ, शब्दकोष सम्बन्धी ज्ञान, व्याकरण, वाक्य-रचना, साहित्य इत्यादि। इन सब ज्ञानो के विपय में आगे चलकर विस्तार से उल्लेख किया जायगा।

उपर्युक्त नकली ज्ञान केवल मुसलमानो के लिए आवश्यक है, यद्यपि अन्य धर्मों मे भी इसी प्रकार की चीजें पायी जाती है। इस्लाम के नकली ज्ञान इस दृष्टि से अन्य धर्मवालो के ज्ञानो के कुछ-न-कुछ अनुरूप है कि शरीअतवाले पैगम्बरो[1] को ही उनके प्रचार का दैवी आदेश हुआ था, किन्तु दोनो में अन्तर यह है कि पिछले आदेश (ईश्वर द्वारा) रद्द कर दिये गये है और केवल इस्लामी विधान के पालन का (ईश्वर की ओर से) आदेश हुआ है। मुसलमानो के लिए उनके विषय में विचार करने का (ईश्वर की ओर से) निषेध हुआ है। हजरत मुहम्मद ने कुरान शरीफ के अध्ययन के अतिरिक्त अन्य दैवी ग्रथों के अध्ययन से रोका है और इस बात का निषेध किया है। हजरत मुहम्मद का कथन है कि "अहले किताब को न सच्चा समझो और न झूठा ही" अपितु यह कहो कि "हम ईमान लाये उस चीज पर भी जो हम पर उतरी और उस पर

१. ईसाइयो, तथा यहूदियो के पैग़म्बरों को, इन पैग़म्बरो के अनुयायी "अहले किताब" कहते हैं।

भी जो तुम पर उतरी और हमारा-तुम्हारा खुदा एक है।[1]" एक बार हज़रत मुहम्मद ने हज़रत उमर के हाथ में तौरीत[2] के कुछ अश देख लिये। वे इतने क्रोधित हुए कि उनके मुँह पर क्रोध के चिह्न झलकने लगे। उन्होने कहा, "क्या मैं तुम्हारे लिए स्पष्ट, तथा खुला हुआ कुरान अथवा दीन[3] नही लाया हूँ। ईश्वर की शपथ है, यदि मूसा भी आज मेरे युग में जीवित होते तो उनके लिए भी मेरे अनुसरण के सिवा कोई अन्य उपाय न होता।"

उपर्युक्त शरा सम्बन्धी नकली ज्ञान आज मुसलमानो में इतने प्रकार के प्रचलित हो गये हैं कि उनका उल्लेख सम्भव नही। प्रत्येक प्रकार के ज्ञान के पारिभाषिक शब्द निश्चित हैं और प्रत्येक शब्द का संकलन वैज्ञानिक रूप में हुआ है। सक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रत्येक विद्या की भली-भाँति शिक्षा-दीक्षा हो रही है। प्रत्येक प्रकार के ज्ञान का कोई-न-कोई ऐसा कुशल विद्वान् मौजूद है जिसके पास समस्त ससार भाग-भागकर पहुँचता रहता है। एक समय में, पूर्व तथा पश्चिम दोनो में समस्त ज्ञान-विज्ञान प्रचलित थे, किन्तु आजकल मग़रिब की सभ्यता का पतन हो चुका है, अत ज्ञान-विज्ञान की वहाँ उतनी चर्चा नही है। पूर्व के विषय में नही कहा जा सकता कि वहाँ की क्या दशा है, किन्तु वहाँ की सभ्यता अभी तक उसी रूप में है और नागर जीवन एव सस्कृति का वहाँ बड़ा ज़ोर है। अत विश्वास तो यही है कि वहाँ भी नक़ली ज्ञान भली-भाँति प्रचलित होंगे। वहाँ वक्फो की सख्या भी अधिक है और उनसे विद्यार्थियो को अधिक-से-अधिक वृत्तियाँ भी मिलती रहती हैं।

(५) कुरान की टीका तथा उसका शुद्ध रूप से पाठ
(६) हदीस
(७) फिक्ह, उसकी शाखाएँ
(८) तरके के कानून
(९) फिक्ह के सिद्धांत तथा तत्सम्बन्धी वाद-विवाद
(१०) कलाम[4]
(११) कुरान तथा सुन्नत में अस्पष्ट वर्णन तथा उनके कारण मुसलमानों में विभिन्न मतों का पैदा होना

१. कुरान शरीफ से उद्धृत।
२. वह दैवी पुस्तक जो मूसा पैग़म्बर (मोज़ेज) पर उतरी।
३. इस्लाम धर्म।
४. देखिए पूर्व पृष्ठ ४६१।

(१२) तसव्वुफ
(१३) स्वप्नफल प्रकाशन विद्या
(१४) अक़ली ज्ञान तथा उसकी क़िस्में
(१५) संख्या का ज्ञान, गणित अंकगणित तथा तरका
(१६) रेखागणित, भूमापन
(१७) ज्योतिष-विद्या
(१८) तर्क-शास्त्र
(१९) भौतिक-शास्त्र
(२०) चिकित्सा-शास्त्र
(२१) कृषि-शास्त्र
(२२) आत्मविद्या
(२३) जादू-टोने
(२४) अक्षरों के रहस्य का ज्ञान
(२५) कीमिया
(२६) दर्शन-शास्त्र एवं उसके दोष तथा उसका खंडन
(२७) फलित ज्योतिष से हानियाँ, उसके दोष एवं उसका खंडन
(२८) कीमिया का अस्तित्व असम्भव है तथा उसके द्वारा जो हानियाँ होती है
(२९) रचनाओं का मूल उद्देश्य जो हमेशा सामने रखना चाहिए[1]
(३०) ग्रथो की अधिकता ज्ञानोपार्जन में बाधक होती है।

ग्रथो की अधिकता, शिक्षा विषयक पारिभाषिक शब्दो की विभिन्नता, उनके नियमो तथा सिद्धान्तो का बाहुल्य ज्ञानोपार्जन में अत्यन्त बाधक होता है, कारण कि विद्यार्थी एव शिक्षक को विवश किया जाता है कि वह समस्त रचनाओ पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करे, अन्यथा उसका ज्ञान अधूरा समझा जायगा और उसे विश्वस्त विद्वान् न समझा जा सकेगा। अत वह सब विद्याओ को रटता है, उनके विभिन्न पारिभाषिक शब्दो को याद करता है और अपना पूरा जीवन इसी कार्य म लगा देता है,किन्तु फिर भी

१. उपर्युक्त खंडों (५–२९) का अनुवाद नहीं किया गया।

उसका ज्ञान पूरा नही हो पाता और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उदाहरण हेतु फिकह् के ज्ञान को ले लीजिए और इसमें भी मालिकी फिकह् की शाखा को। उसके "मुदव्वनह्" नामक ग्रथ पर टीकाओ के ऊपर टीकाएँ तथा टिप्पणियाँ लिखी गयी है उदाहरणार्थ इब्ने यूनुस, अल्-लखमी, तथा इब्ने वशीर के ग्रथ एव उनकी टिप्पणियाँ, कुजियाँ तथा प्रस्तावनाएँ। इसके अतिरिक्त "उत्वीयह्" और उसी विपय पर लिखे गये "अलव्यान वत्तहसील" नामक ग्रथ को ले लीजिए या इब्नुल हाजिव के ग्रथ तथा उसके विपय में जो ग्रथ लिखे गये, उन्ही को ले लीजिए। केवल यही नही अपितु इन सवको रटने के उपरान्त विद्यार्थी से यह आशा रखी जाती है कि वह कैरवान, करतेवा, वगदाद एव मिस्र के विभिन्न सिद्धान्तो में भेद कर सके और उनको भली-भाँति समझ सके। जव उसे इन सव पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है तव कही जाकर उसे फतवे लिखने की अनुमति दी जाती है, हालाँ कि वास्तव में उपर्युक्त सव ग्रथ एक ही विपय पर है और उनमें केवल रचना-शैली का अन्तर है।

विद्यार्थी इन्ही को रटने में अपना जीवन समाप्त कर देता है। इसके वजाय यदि शिक्षक विद्यार्थियो को धर्म के सिद्धान्त समझा देते तो कही अच्छा होता। शिक्षा-कार्य भी सरल हो जाता और ज्ञान भी शीघ्र प्राप्त हो जाता। किन्तु अव किया क्या जाय क्योकि यह दोपपूर्ण शिक्षा पद्धति हमारे यहाँ प्रचलित हो चुकी है और उसने एक पक्की आदत का रूप धारण कर लिया है जिसमें कोई परिवर्तन करना असम्भव है।

इसी प्रकार अरवी भापा-विज्ञान का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। इनमें "सीवावै" नामक ग्रथ है। इस पर अगणित पुस्तकें लिखी गयी है। विद्यार्थियो का यह कर्तव्य है कि वे उन्हें रटें भी और वसरे, कूफे, वगदाद तथा उन्दुलुसवालो के सिद्धान्तो को समझें और भूत काल एव आधुनिक काल के विद्वानो के मतो उदाहरणार्थ इब्नुल हाजिव तथा इब्ने मालिक के ग्रथो को और उन ग्रथो से सम्वन्धित जो साहित्य है, उसे पढें। इसी में विद्यार्थी का जीवन समाप्त हो जाता है, अत. कोई व्यक्ति वडी कठिनाई से ही इन पर अधिकार पा सकता है। इस समय एक ही उदाहरण हमारे सामने है और वह मिस्र के भापा-विज्ञान के विद्वान् इब्ने हिशाम का है। मगरिव में हमें उसकी रचनाएँ प्राप्त हो गयी है। उसने भापा-विज्ञान में इतनी कुशलता प्राप्त कर ली है जो सीवावै तथा इब्ने जिन्नी सरीखे विद्वानो से भी श्रेष्ठ है। उसे इस विद्या के सिद्धान्तो पर पूर्ण अधिकार तथा योग्यता प्राप्त है। उसने यह वात सिद्ध कर दी है कि विद्वत्ता केवल प्राचीनकाल के लोगों तक सीमित नही, किन्तु ऐसे लोग विरले ही मिलेंगे। साधारणत तो यही वात है कि यदि कोई अपना पूरा जीवन-काल अरवी भापा-विज्ञान

के सीखने में लगा दे तब भी बडी कठिनाई से उसे इस पर अधिकार प्राप्त हो सकेगा। लोग ज्ञानोपार्जन के साधनों को ही सीखने में अपना जीवन समाप्त कर देते है और उन विद्याओ के मूल उद्देश्यो को तो वे प्राप्त ही नही कर पाते।

(३१) शिक्षा के लिए विभिन्न विद्याओं के सारग्रन्थ या कुजियाँ भी हानिकारक होती हैं

बहुत-से आधुनिक विद्वान् ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थो को सक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने लगे है। प्रत्येक विद्या की विस्तृत समस्याओ, कठिन एव गूढ विवरणो को वे सूची के रूप में प्रस्तुत कर देते है, जो देखने में तो कुछ नही, किन्तु समझने पर बहुत कुछ है। इस प्रकार उन्होने कम शब्दो में अधिक अर्थ का भडार प्रस्तुत कर दिया है और विद्यार्थियो के लिए अत्यधिक कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी है। मोटे-मोटे ग्रथो, कुरान की टीका एव अन्य विद्याओ के ग्रथो के खुलासे इसलिए तैयार कर डाले है जिससे प्रत्येक व्यक्ति सुगमतापूर्वक उन्हें याद कर सके।

इब्न अल-हाजिब ने फिकह में, इब्ने मालिक ने अरबी भाषा-विज्ञान में और अल खूनजी ने तर्कशास्त्र में इसी सिद्धान्त का पालन किया है। रचना के इस ढग से शिक्षा को बड़ी हानि हुई और ज्ञानोपार्जन में बडा विघ्न पडा। इसका कारण यह है कि इस प्रकार की रचनाओ में नये विद्यार्थी के मस्तिष्क पर विद्या की उन अन्तिम समस्याओ के समझने का बोझ लादा जाता है, जिनके समझने के योग्य वह नही होते। शिक्षा का यह बडा ही दोष-पूर्ण ढग है। इस विधि के कारण विद्यार्थी मूल समस्याओ के समझने की उपेक्षा करके कठिन शब्दो को समझने में लीन हो जाता है। उनके बडी कठिनाई से समझ में आनेवाले शब्दो के अर्थ का पता चलाकर उनके द्वारा समस्याओ का समाधान करता है, कारण कि यह माना हुआ सिद्धान्त है कि आप यदि किसी बात को अत्यधिक सक्षिप्त रूप से कहेंगे तो आपके शब्द बहुत ही कठिन हो जायँगे और समझ में न आयँगे। इस विधि से विद्यार्थी का बहुत-सा समय शब्दो के अर्थ समझने में निकल जाता है।

फिर यदि इस ओर से भी उपेक्षा कर ली जाय और यह स्वीकार कर लिया जाय कि किस प्रकार इन खुलासो पर पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया जाय तो भी वह कुशलता नही प्राप्त होती, जो विस्तृत एवं बड़े-बडे ग्रथो के अध्ययन से होती है। इसका कारण यह है कि बड़े-बडे ग्रथो में ज्ञान-विज्ञान की समस्याओ का बार-बार विस्तार से उल्लेख होता है और इस प्रकार पूर्ण योग्यता प्राप्त हो जाती है।

इन खुलासो से केवल समस्याओं के नाम बार-बार आते है, जिसके कारण पूर्ण योग्यता नहीं प्राप्त होती और ज्ञान अधूरा रह जाता है। इस प्रकार खुलासा तैयार करनेवालो का उद्देश्य तो यह था कि समस्याओ को सुगमतापूर्वक याद किया जा सके, किन्तु इस प्रकार ज्ञान को जो हानि पहुँची उसकी ओर से उन्होने पूर्ण रूप से उपेक्षा प्रदर्शित कर दी।

(३२) ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की उचित एव लाभदायक विधि

ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की सर्वोत्तम विधि यह है कि विद्यार्थियो को थोड़ा-थोडा करके समझाया जाय। उदाहरणार्थ, जब किसी विशिष्ट ग्रन्थ की शिक्षा देनी हो तो उसके प्रत्येक अध्याय की मूल समस्याओ का पहले उल्लेख करें और सक्षेप में उनकी व्याख्या भी करते जायें। विद्यार्थी की बुद्धि एव उसकी योग्यता को अवश्य ध्यान में रखा जाय, ताकि जो बात बतायी जाय वह उसकी बुद्धि ग्रहण करती रहे। इसी प्रकार पूरे ज्ञान की शिक्षा दी जाय, तो उस ज्ञान में विद्यार्थी को एक विशेष अभ्यास हो जायगा। यद्यपि उसकी योग्यता साधारण तथा निम्न श्रेणी की होगी, किन्तु उसका मस्तिष्क इस योग्य अवश्य हो जायगा कि वह उस ज्ञान की समस्याओ को सक्षिप्त रूप से समझ सके।

अब शिक्षक को पुन प्रारम्भ से उस ज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए और इस बार शिक्षा का स्तर कुछ ऊँचा कर देना चाहिए, यानी विषय को सक्षिप्त रूप से न समझाकर विस्तार से समझाया जाय और साथ ही साथ समस्याओ की पारस्परिक तुलना भी समझायी जाय और विरोध का कारण भी बताया जाय। इसी विधि से पूरे ज्ञान की शिक्षा दे देनी चाहिए। इस बार भी विद्यार्थी को अभ्यास होगा, जो पूर्वाभ्यास से उत्तम एव पक्का होगा।

अब फिर तीसरी बार उस ज्ञान की शिक्षा प्रारम्भ से देनी चाहिए और इस बार प्रत्येक कठिन समस्या को उचित व्याख्या एव टीका-टिप्पणी के साथ समझाया जाय। जब इस विधि से भी शिक्षा पूरी हो जाय तो विद्यार्थी अपने ज्ञान में कुशल एव अभ्यस्त समझा जा सकेगा। सक्षेप में शिक्षा की उत्तम एव लाभदायक विधि यही है।

इस प्रकार तीन बार की शिक्षा से ज्ञान में बडी अच्छी योग्यता प्राप्त हो जाती है। कुछ ऐसे भी समझदार एव बुद्धिमान् विद्यार्थी होते है जो तीन से भी कम यानी केवल दो बार में ही पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेते है।

बड़े खेद का विषय है कि आज तक हमने जितने भी शिक्षक देखे उनमें से अधिकाश शिक्षा-विधि के ज्ञान से अनभिज्ञ एवं अपरिचित निकले। उन्हें इसके लाभो का ज्ञान न था। उनकी शिक्षा-विधि यह है कि वे सर्वप्रथम विद्यार्थियो को कठिन समस्याएँ पढाते और सिखाते हैं और उनके समाधान का भारी बोझ उनके कमज़ोर दिमाग पर डालते है, और समझते है कि यह शिक्षाविधि ठीक है और लाभदायक भी। फिर वे ज्ञान की अन्तिम समस्याओ को प्रारम्भिक समस्याओ मे मिलाकर गडबड कर देते है और जो समस्याएँ बाद में पढानी चाहिएँ उन्हें प्रारम्भ मे ही रटाने लगते हैं। वे इतना नही जानते कि किसी विद्या को समझने की योग्यता शनै:-शनै पैदा होती है। प्रारम्भ में विद्यार्थी समस्त समस्याओ को समझने के योग्य नही होता और वह जो कुछ समझता भी है तो सक्षिप्त रूप से और वह भी क्रियात्मक उदाहरणो द्वारा, किन्तु उसकी योग्यता धीरे-धीरे ही बढ़ती है। ज्ञान की समस्याओं के बार-बार पढने से ही वह बढती है, यहाँ तक कि उसे उस ज्ञान की समस्त समस्याओ की योग्यता प्राप्त हो जाती है। अब यदि यह भूल की जाय कि अन्तिम समस्याओ का बोझ प्रारम्भ से ही विद्यार्थी पर डाल दिया जाय, जब कि उसकी समझ एव बुद्धि कमज़ोर हो और उसमें योग्यता की भी कमी हो, तो उसकी बुद्धि उन्हें समझ नही पाती। उसको यह भ्रम होता है कि यह विद्या बडी कठिन है और उसकी योग्यता के बाहर है। अत. वह ज्ञानोपार्जन में उपेक्षा बरतने लगता है और विद्याध्ययन से जी चुराने लगता है, अपितु उसका अभ्यास छोडने के उपाय ढूँढता है। ये दुष्परिणाम अनुचित शिक्षा-विधि से उत्पन्न होते है।

फिर यह भी अनुचित बात है कि विद्यार्थी चाहे प्रारम्भिक शिक्षा ही प्राप्त कर रहा हो और उसने जिस पुस्तक को अपनी योग्यतानुसार शुरू कर रखा है, शिक्षक उसे उस पुस्तक को पढाते समय उससे ऊपर की पुस्तकों की समस्याओं को पढाने या सिखाने लगे। इससे उसकी समझ एव बुद्धि पर ऐसा बोझ पडेगा जिसे वह उठा न सकेगा। जब तक विद्यार्थी किसी ग्रथ को आद्योपान्त भली-भाँति समझ न ले और वह उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करके इतना दक्ष न हो जाय कि अन्य पुस्तको के अध्ययन में अपनी इस योग्यता से काम ले सके, तो ऐसी अवस्था में उसका ध्यान कदापि न बँटाना चाहिए, कारण कि जब विद्यार्थी को किसी ग्रन्थ या विषय का कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो उस ग्रन्थ के शेष भागो को समझने की उसमें स्वत योग्यता उत्पन्न हो जाती है और उनको समझने की इच्छा भी उसमें प्रकट होती रहती है, जो उसे शनै-शनै ज्ञान के मूल उद्देश्य तक पहुँचा देती है। अन्त में एक दिन उस विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जाता है। यदि इसके विरुद्ध शुरू से ही प्रारम्भिक एव चरम

समस्याओं का भेद-भाव समाप्त कर दिया जाय तो विद्यार्थी की कमज़ोर बुद्धि समस्याओं के समझने के योग्य न रहेगी और मद पड़ जायगी। वह निराश हो जायगा और अपने आपको ज्ञानोपार्जन में असमर्थ समझकर ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न छोड देगा तथा शिक्षा प्राप्त करने से हाथ धो लेगा।

शिक्षा देते समय इस वात पर भी ध्यान देना चाहिए कि एक ही विपय की शिक्षा बीच में अधिक समय का अन्तर देकर न प्रदान की जाय, कारण कि इस प्रकार क्रम तोड़ देने से भूल-चूक का अधिक भय हो जाता है। ज्ञान की विभिन्न समस्याओं की शिक्षा में क्रम एव सम्वन्ध पर ध्यान न देने से सीखी हुई बातें भी मस्तिष्क से निकल जाती हैं और अभ्यास प्राप्त करना कठिन हो जाता हैं। इसके विरुद्ध जब प्रारम्भिक एव अन्तिम समस्याओ को क्रम एव एक-दूसरे से सम्वन्वित करके पढ़ाया जाय तो इसमें भूलने का भी भय कम होता है और अभ्यास भी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो जाता है, कारण कि अभ्यास के लिए किसी कार्य का क्रम से तथा लगातार होना परमावश्यक है। जब पिछले भाग को भुला दिया जाय तो अभ्यास कैसे हो सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा-विधि में इस वात का भी ध्यान रखना चाहिए कि दो विपय एक ही समय पर न पढ़ाये जायें, अन्यथा किसी में भी कोई योग्यता न प्राप्त हो सकेगी, कारण कि इस प्रकार विद्यार्थी की बुद्धि एवं उसका ध्यान बँट जायगा। वह एक को छोड़कर दूसरे की ओर जायगा और दूसरे को छोडकर पहले की ओर आयेगा, फलत. दोनो से वचित रहेगा और दोनों में से कोई भी ज्ञान उसे प्राप्त न हो सकेगा। अन्त में वह दोनों विपयों को कठिन समझ-कर निराश हो जायगा। यदि वह एक ही विपय पर पूरा ध्यान देगा तो उसमें कुछ कर दिखायेगा।

अब यहाँ हम विद्यार्थियों को उनके एक वड़े लाभ की वात वताते हैं, जिसे उन्हें भली-भाँति समझ लेना चाहिए और जो उनके लिए वडी उपयोगी सिद्ध होगी, किन्तु इससे पूर्व निम्नलिखित प्रस्तावना को समझ लेना उचित होगा।

ईश्वर ने सोचने की शक्ति मनुष्य को विशेप प्राकृतिक देन के रूप में दी है। उसने उसका उसी प्रकार सर्जन किया है जिस प्रकार अन्य अनेक वस्तुओं का। यह शक्ति मन में क्रिया तथा गति के रूप में मस्तिष्क के बीच के छिद्र की एक प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। कभी-कभी (इस विचार-शक्ति द्वारा) मनुष्य के सुव्यवस्थित एवं क्रमवद्ध कार्य प्रारम्भ होते हैं। कभी-कभी इसका अर्थ यह होता है कि किसी वात का ज्ञान, जो पूर्व से प्राप्त न था, प्राप्त होना प्रारम्भ हो गया है। सोचने की योग्यता का कोई-न-कोई लक्ष्य होता है, जिसके दोनों अन्तिम सिरो का अनुभव करके किसी वात को स्वीकार

अथवा अस्वीकार किया जाता है। (विचार-शक्ति द्वारा) मध्य का मार्ग तत्काल निकाल लिया जाता है। यदि मध्य के मार्ग एक से अधिक है तो फिर इनमें से एक उचित मार्ग को चुनने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। सोचने की योग्यता की विधि यही है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया। इसी शक्ति के कारण मनुष्य अन्य पशुओ से भिन्न है।

तर्कशास्त्र का उद्देश्य यही है कि वह विचारपूर्वक कार्य करने की प्रवृत्ति को भूल से बचाये रखे। यह प्रवृत्ति यद्यपि सत्य की खोज में ही रहती है, किन्तु कभी-कभी इसे भी ठोकर लग जाती है और वह सन्मार्ग से विचलित हो जाती है और वह दोनो सिरों की कल्पना तथ्य के विरुद्ध कर वैठती है। तव समस्याओं की व्यवस्था एव उनका क्रमवन्धन सन्दिग्ध हो जाते हैं। तव तर्कशास्त्र ही इस विपय में उसका पथ-प्रदर्शक बनकर धोखे एवं भूल से उसे बचाता है, मानो तर्कशास्त्र एक कला है जो विचार-शक्ति को सन्मार्ग पर खीच लाती है और उससे उचित कार्य करा लेती है। क्योकि यह एक कला है और विज्ञान भी, अत. कभी-कभी इसकी आवश्यकता नही भी पडती। हमने स्वय अनेक विद्वान् ऐसे देखे है जिन्हें अपनी विद्या में कुशलता प्राप्त होती है, किन्तु तर्कशास्त्र से उनका परिचय तक नही होता, फिर भी उन्हें सफलता मिलती है, विशेष रूप से जव उद्देश्य भी ठीक हो और ईश्वर की कृपा पर उन्हें भरोसा भी हो। ऐसी अवस्था में उन्हें इन विज्ञानो की कोई आवश्यकता नही होती और यह होना भी न चाहिए, कारण कि कहाँ ईश्वर की कृपा और उसकी देन और कहाँ मनुष्यो के वनाये हुए ज्ञान-विज्ञान। तर्कशास्त्र की चिन्ता किये विना बुद्धिमानों का विवेक स्वत सन्मार्ग पर चलता है और मध्य मार्ग का पता लगाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थी के लिए एक कठिनाई यह भी है कि वह शब्दों के अर्थ समझे और उनके तात्पर्य को अपने दिमाग में रखे। जब कोई शब्द किसी पुस्तक मे देखे अथवा किसी से सुने तो उसके शुद्ध अर्थ को अपने मस्तिष्क में विठा ले। विद्यार्थी को इन सब कठिनाइयो को सुलझाकर अपनी सोचने की शक्ति को लक्ष्य की ओर लगाना चाहिए। -

सर्वप्रथम लेख बोले जानेवाले शब्दो को प्रकट करते है। इन्हें समझना सरल होता है। फिर बोले जानेवाले शब्दो द्वारा विचार व्यक्त किये जाते है। इसके अतिरिक्त विचारो को उचित रूप से व्यवस्थित करने के अलग नियम होते है, जिनका पता तर्क-शास्त्र की कला से चलता है और इन्ही से निष्कर्ष निकाले जाते है। अन्त में सुव्यव-

स्थित विचारो द्वारा चिंतन-शक्ति की सहायता से ईश्वर पर भरोसा करते हुए अपने उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है।

प्रत्येक व्यक्ति इन कठिनाइयो एव रुकावटो को तेजी से तथा सुगमतापूर्वक नही पार कर सकता। वहुत-से लोगो की वुद्धि शव्दो के गोरख-धधे में फँसकर रह जाती है अथवा दलीलो के मध्य में ठोकर खाने लगती है और विभिन्न मतो एव सन्देहो की शिकार हो जाती है। इससे थककर वह व्यक्ति अपने उद्देश्य को नही प्राप्त कर पाता। ईश्वर ही जिसका पथ-प्रदर्शन करे वही इन कठिनाइयो को झेलता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।

यदि विद्यार्थी को कही ये रुकावटें पेश आ जायँ या वह अपनी समझ के अनुसार चल-कर धोखा खा जाय, या उसका मस्तिष्क सन्देहो के कारण भटकने लगे, तो ऐसी अवस्था में उसको चाहिए कि शव्दो की उलझन से अपने आपको मुक्त करके सन्देहो से वच-कर निकल जाय। समस्त वैज्ञानिक सिद्धान्तो को त्यागकर स्वाभाविक चिन्तन-शक्ति से काम ले। मस्तिष्क में जो विचार उत्पन्न हो रहे हो उन्हें त्यागकर ध्यान को केवल वाछित लक्ष्य की ओर, जैसा कि वडे-वडे विचारक करते रहे है, लगाये। यदि विद्यार्थी हमारे वताये हुए नियमो का पालन करेगा तो विजय एव सफलता के द्वार उसके लिए उसी प्रकार खुल जायँगे, जिस प्रकार भूतकाल के लोगो के लिए खुले थे। जिस प्रकार वे लोग अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सके उसी प्रकार वह भी अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगा। उसकी चिन्तन-शक्ति उस सन्मार्ग को स्वत पा लेगी जिसका निर्देश ईश्वर प्रत्येक उचित चिन्तन शक्तिवाले के लिए किया करता है। जव वह इस अवस्था को प्राप्त हो जाय तो विचारो को दलीलो के साँचे में ढालने का उसे प्रयत्न करना चाहिए और तर्कशास्त्र के सिद्धान्तो द्वारा उन दलीलो की जाँच करनी चाहिए। फिर शव्दो के वस्त्र पहनाकर अपने विचारो को व्यक्त करना चाहिए।

यदि विद्यार्थी उस तथ्य को न समझ सका, जिसका हमने उल्लेख किया है और वह मतभेदो एव सदेहो के कारण दलीलो के जाल में उलझा रहा तथा झूठ एव सच के वीच झूलता रहा, तो इन सिद्धान्तो के वैज्ञानिक एव पारिभाषिक होने के कारण इनके विभिन्न रूप एक ही प्रकार के दृष्टिगत होगे और एक-दूसरे के समान एव अनुरूप होने के कारण सत्य एव असत्य में भेद न किया जा सकेगा। इस प्रकार सन्देह वढता जायगा और वास्तविक उद्देश्य तिरोहित होता जायगा। अन्त में विचारक थककर वैठ रहेगा। इस प्रकार आधुनिक काल के वाद-विवाद करनेवालो एव विचारको को इसी समस्या का सामना करना पडता है और उनमें भी उनको, जो प्रारम्भ में फारसी

भाषा-भापी थे, अथवा जिनको तर्कशास्त्र से अत्यधिक रुचि थी, यह बाधा अधिक सताती थी। वे तर्कशास्त्र को ही सत्य एव असत्य की कसौटी समझते थे। ऐसे लोग दलीलो एवं सन्देहो में पूर्णत खो जाते थे और उनकी मुक्ति बडी कठिनाई से हो पाती थी। वे इस तथ्य से अनभिज्ञ होते थे कि सत्य की खोज स्वाभाविक चिन्तन-शक्ति द्वारा उस समय हो सकती है जब उसे भ्रमो से मुक्त कर लिया जाय। सोचनेवाले की दृष्टि ईश्वर की कृपा की ओर लगी रहती है। तर्कशास्त्र का काम तो केवल इतना है कि वह इसी चिन्तन-शक्ति को विकसित तथा स्पष्ट करता है।

अब इस विषय को समाप्त करने के पूर्व हम यह आग्रह अवश्य करेंगे कि आप हमारी बातो पर विश्वास एव श्रद्धा की दृष्टि से देखें और जब कभी समस्याओ के समझने में कठिनाई हो तो ईश्वर की कृपा पर भरोसा रखें। ईश्वर ने चाहा तो दैवी प्रकाश एव प्रेरणा के द्वार आपके लिए खुल जायँगे और सत्य एव असत्य का मार्ग आपके लिए प्रकट हो जायगा।

"ईश्वर ही अपनी कृपा द्वारा पथ-प्रदर्शन करता है। ज्ञान केवल ईश्वर द्वारा ही प्राप्त होता है।"

(३३) सहायक विद्याओं को शिक्षा देते समय अधिक न पढ़ाना चाहिए और उनकी विभिन्न किस्में विस्तार से न पढानी चाहिएँ

प्रचलित ज्ञान-विज्ञान दो प्रकार का है। एक वह जो स्वत· सिद्ध और मूलोद्देश्यीय है, जैसे शरा सम्बन्धी कुरान की टीकाएँ, हदीसें, फिकह कलाम अथवा दर्शन-शास्त्रीय भौतिक विज्ञान एव आत्मविद्या। दूसरा वह ज्ञान जो उपर्युक्त विषयो के ज्ञान की प्राप्ति में सहायक एव साधन होता है। सहायक विषयो में अरबी भाषाशास्त्र, गणित एव वे सब अन्य विषय भी जो शरा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्तकर ने में सहायक होते है, शामिल है। तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र के ज्ञान के लिए सहायक होता है। आधुनिक काल के विद्वान् तो इसे कलाम एव फिकह के सिद्धान्तो के ज्ञान के लिए भी सहायक बताते है।

अब इनमें से जिन विद्याओ को मूल विज्ञान की श्रेणी प्राप्त है, यदि इन विषयो को सविस्तर समझाया जाय और समस्याओ की शाखा-प्रशाखाएँ निकाली जायँ, उनकी विभिन्न किस्में समझायी जायँ, दलीलो एवं प्रमाणों की प्रचुरता हो, तो इसमें कोई आपत्ति नही, अपितु लाभ ही है,कारण कि इस प्रकार उन विज्ञानो में रुचि रखनेवालो को उनका अभ्यास हो जाता है और बारीकियाँ पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाती है। इसके विपरीत

अरबी भाषाशास्त्र, तर्कशास्त्र इत्यादि सहायक विषयो का अध्ययन सरसरी तौर पर होना चाहिए अर्थात् वह इतना ही हो कि जिससे अन्य विज्ञान सीखने में उससे सहायता मिल सके। न तो उन विषयो का अधिक विस्तार करना उचित है और न समस्याओ की शाखाओ की शाखाएँ निकालना। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम उन्हें मूल विज्ञान की श्रेणी प्रदान करेंगे, न कि सहायक विद्या की। जब सहायक विद्या की श्रेणी उन्हें प्राप्त न रही तो उनका मूल उद्देश्य अपने स्थान से हट जाता है और उन विषयो का अध्ययन अनावश्यक एव निरर्थक हो जाता है। यदि सहायक विद्याओं का विस्तार से अध्ययन किया जाय, ताकि पूर्ण अभ्यास हो जाय और समस्याओ को फैलाया जाय, तो उनमें उलझकर मनुष्य प्राय मूल-विज्ञान से वचित रह जायगा, हालाँ कि उनका महत्त्व बहुत अधिक है। मनुष्य को अपने जीवनकाल में दोनो प्रकार के ज्ञान में कुशलता प्राप्त करना कठिन हो जाता है। विवश होकर उसे एक ही वस्तु के अध्ययन में अपना समस्त जीवन लगा देना पडता है, तो फिर ऐसी अवस्था में मनुष्य सहायक विद्याओ के लिए अपना जीवन क्यो नष्ट करे और अनावश्यक चीज़ में अपने प्राण किस कारण खपाये।

आजकल के विद्वान् इसी अनुचित मार्ग पर अग्रसर हुए है। व्याकरण, तर्कशास्त्र एव फिकह के सिद्धान्तो से वे बात में बात निकालते चले गये हैं और इस प्रकार उन्होंने बूंद को नदी और राई को पहाड बनाकर खडा कर दिया है। वे सिद्धान्तों की शाखाओ में से शाखाएँ निकालते चले गये हैं और दलीलो का गोरख-धधा उन्होंने अलग खडा कर दिया है। इस प्रकार वे सहायक विद्याएँ अपना स्थान भूलकर मूल विज्ञान बन गयी हैं। इन विद्याओ में कभी-कभी इतने लम्बे-चौडे वाद-विवाद खड़े कर दिये गये है जिनका न तो मूल विज्ञान से कोई सम्बन्ध है और न आवश्यकता। इस प्रकार यह शिक्षाविधि अनावश्यक एव विद्यार्थियो के लिए हानिकारक बन गयी है, कारण कि उन्हें मूल विज्ञान की अपेक्षा सहायक विद्याओ को अधिक महत्त्व देना पड़ता है। जब विद्यार्थी सहायक विद्याओं के अध्ययन में ही अपने प्राण खपा देंगे, तो वे जीवन का वास्तविक लक्ष्य मूल ज्ञान कब सीख सकेंगे? अत शिक्षको के लिए यह परमावश्यक है कि वे सहायक विद्याओ को अधिक विस्तार से न पढायें, अपितु विद्यार्थियो को केवल उसका उद्देश्य भर समझा दें। यदि कोई साहस करके उन्ही के पीछे लग जाय और उन्हीं का हो जाय तो फिर यह उसकी इच्छा है कि जितनी चाहे उनमें उन्नति करे।

"प्रत्येक व्यक्ति को उन्ही बातो में सफलता होती है जिनके लिए उनका सर्जन हुआ है।"

(३४) बच्चों की शिक्षा एवं इस्लामी देशों में शिक्षा की विभिन्न विधियाँ

इस्लामी नियमो के अनुसार कुरान शरीफ की शिक्षा बच्चो के लिए एक धार्मिक आवश्यकता कही गयी है। सभी नगरो में इसी प्रथा का पालन होता है। इसका उद्देश्य यह है कि इस शिक्षा से बच्चों के हृदय में धार्मिक विश्वास दृढ हो जाते है और कुरान शरीफ की आयतो पर उनका विश्वास जड़ पकड जाता है। कुरान शरीफ के साथ-साथ हदीस के कुछ उद्धरणो के पढाने की प्रथा भी पहले से चली आ रही है। सोचा यह गया है कि बच्चा जब प्रारम्भ से कुरान शरीफ पढना प्रारम्भ करेगा तो उसकी बाद की शिक्षा का आधार भी कुरान शरीफ ही रहेगा और समस्त ज्ञानो का निर्माण इसी शुभ नीव पर होगा, क्योकि बाल्यावस्था में पायी हुई शिक्षा बद्धमूल होती है। यह बात स्पष्ट है कि हृदय में जो चीज़ पहले आरूढ होगी वह भविष्य के अभ्यासो की जड़ बनेगी। यह बात भी स्पष्ट है कि जैसी नीव होगी वैसा ही भवन भी बनेगा।

कुरान शरीफ की शिक्षा देने के विभिन्न नियम विभिन्न देशो में प्रचलित है और जैसे नियम प्रचलित हैं, वैसे ही परिणाम भी होते हैं। मगरिबवाले अपने बच्चो को केवल कुरान शरीफ की शिक्षा देते है और इसके साथ-साथ लिखना भी सिखाते है एव कुरान शरीफ के विद्वानो के मध्य लिपि-विषयक जो मतभेद हैं उन्हें भी बताते जाते हैं। कुरान शरीफ के साथ हदीस, फिकह, पद्य एव अरबो की कविताओ में से कोई चीज़ उस समय तक नही पढाते जब तक कि कुरान शरीफ में उसे पूरी कुशलता न प्राप्त हो जाय, अथवा वह उसका अध्ययन न त्याग दे, और जब कुरान शरीफ का अध्ययन त्याग दिया तो मानो सभी विद्याओ से पृथक् हो गया। इस प्रकार मगरिब के नगरो एव उनसे मिले हुए बरबर कौम के ग्रामो में बच्चो की शिक्षा की यही विधि प्रचलित है, अपितु यदि कोई युवावस्था के बाद भी शिक्षा प्राप्त करने की रुचि के कारण कुरान शरीफ पढ़ना प्रारम्भ करे तो इसी विधि का पालन किया जाता है। यही कारण है कि मगरिब-निवासी कुरान शरीफ के हाफ़िज़ होते है और कुरान की लिपि का भी उन्हें बडा अच्छा ज्ञान होता है।

उन्दुलुस मे यह शिक्षा-विधि प्रचलित है कि कुरान शरीफ तथा अन्य पुस्तको को साथ-साथ पढाते है। क्योकि वे कुरान शरीफ को दीन (इस्लाम) एव दीन के ज्ञानो का स्रोत समझते है, अत उसे विशेष महत्त्व देकर उसके साथ अरबी पद्य और उसके मूल सूत्रो की शिक्षा भी देते है। अरबी भाषा-शास्त्र के नियम भी रटाते है, पत्र-व्यवहार

को भी विशेप महत्त्व देते है, यहाँ तक कि वालक युवावस्था को प्राप्त होते-होते अरवी भापा एव पद्य का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेता है। पत्र-व्यवहार एव सुलेख में तो वह पूर्ण रूप से दक्ष हो जाता है और इस योग्य हो जाता है कि यदि वहाँ उच्च शिक्षा का भी प्रवध हो तो वह अन्य विपयो में भी वहुत कुछ कुशलता प्राप्त कर सकता है। पर वहाँ उच्च शिक्षा का कोई प्रवध नही है। अत उसकी शिक्षा वस वही रुक जाती है। फिर भी यदि उसे कोई अच्छा गुरु प्राप्त हो जाय तो शिष्य में अच्छी खासी योग्यता पैदा हो जाती है, जो वाद में ज्ञान-विज्ञान के द्वार खोल देती है।

इफरीकियावालो के यहाँ शिक्षा की यह विधि है कि कुरान शरीफ की शिक्षा के साथ-साथ अधिकाश हदीस की भी शिक्षा दी जाती है और विज्ञान के सिद्धान्त एव समस्याएँ भी साथ ही साथ याद करायी जाती हैं। किन्तु कुरान शरीफ को अधिक महत्त्व दिया जाता है। कुरान शरीफ को भली-भाँति समझ लेने के उपरान्त उसके विभिन्न उच्चारणो की शिक्षा को वडा महत्त्व दिया जाता है और साथ-ही-साथ पत्र-व्यवहार की शिक्षा की भी उपेक्षा नही की जाती। संक्षेप में उनकी शिक्षा-विधि, उन्दुलुस की शिक्षा-विधि से वहुत कुछ मिलती-जुलती है, कारण कि इफरीकिया में शिक्षा उन्दुलुस के विद्वानो द्वारा, जव वे ईसाइयो से पराजित होकर स्वदेश त्यागकर तूनुस पहुंचे और तूनुसवालो ने उनसे शिक्षा प्राप्त करनी प्रारम्भ की, पहुँची है।

पूर्ववालो के विपय में भी यही सुना जाता है कि वहाँ भी क़ुरान शरीफ की शिक्षा के साथ अन्य विद्याओ की भी शिक्षा दी जाती है, किन्तु यह पता नही कि वे किस वात पर अधिक ज़ोर देते है। जहाँ तक हमें ज्ञात है, वे युवावस्था में कुरान शरीफ, धार्मिक विद्याओ तथा उनके सिद्धान्तो की शिक्षा देते है और लिखना साथ-साथ नही सिखाते, अपितु उसे सिखाने के लिए उनके यहाँ सुलेखवेत्ता पृथक् होते है, जो अन्य विद्याओ के समान सुलेख की शिक्षा अलग से देते है। सक्षेप में वच्चों की पाठशालाओ में इसका कोई उचित प्रवध नही। वच्चो को केवल तख्तियाँ दे दी जाती है जिन पर वे साधारण रूप से लिखना सीख जाते हैं। जिसको लिखने की कला में कुशलता प्राप्त करनी होती है वह अपनी योग्यतानुसार अलग से समय निकालकर इस कला में जो लोग कुशल होते हैं, उनके पास जाता है।

क्योंकि इफरीकिया तथा मग़रिववाले शिक्षा को कुरान शरीफ तक सीमित रखते है, अत उन्हें (अरवी) भापा का कोई ज्ञान नही हो पाता। कारण कि यह वात स्पष्ट है कि क़ुरान शरीफ मनुष्य की रचना नही, जिसे उदाहरण-स्वरूप अपने समक्ष रखकर उसीके समान लिखने का कोई अभ्यास कर सके। इसी कारण विद्यार्थियो को

रोका जाता है कि वे कुरान शरीफ की शैली का अनुकरण न करें, कारण कि मनुष्य ईश्वर की शैली का अनुकरण कर ही कैसे सकता है। उधर उन लोगो को कुरान शरीफ की रचनाशैली के अतिरिक्त किसी अन्य रचनाशैली का अभ्यास भी नही कराया जाता, जिनमें उन्हें कुशलता प्राप्त हो। इसी वजह से इफरीकिया तथा मगरिबवाले अरबी भाषा-शास्त्र के ज्ञान में कच्चे होते है और लेखो को आँख बन्द करके रटा करते है। यदि उन्हें किसी विषय पर कई तरीको से कुछ लिखने का आदेश दे दिया जाय तो उनका कोई बस नही चलता। इनमें भी इफरीकिया वालो को कुछ थोडा-बहुत आता भी है, कारण कि जैसा हम उल्लेख कर चुके है, वे कुरान शरीफ के साथ अन्य विद्याओ की भी शिक्षा पाते है। इस प्रकार मगरिबवालो की अपेक्षा उन्हें अरबी भाषा-शास्त्र का भी कुछ ज्ञान होता है, किन्तु अधिक योग्यता उनको भी नही होती। अब रहे उन्दुलुसवाले, तो वे विभिन्न विज्ञानो की प्रारम्भ से ही शिक्षा देते है और अरबी भाषा-शास्त्र एव पद्य में शुरू से ही अभ्यास कराने लगते है। अत. उनको पूर्ण कुशलता प्राप्त हो जाती है और अरबी भापा-शास्त्र में दक्ष लोग उनमें मिल जाते है। किन्तु यह भी सत्य है कि मूल विज्ञान, कुरान शरीफ एव हदीस का उनका ज्ञान कच्चा रहता है। उन्दुलुसवालो में अरबी भाषा-शास्त्र के बडे-बड़े विद्वान् भी मिलते है और साधारण ज्ञाता भी। बाल्यावस्था से ही जैसी शिक्षा लोगो को दी जाती है, वैसी ही उन्हें योग्यता प्राप्त हो जाती है।

काज़ी अबू बक्र बिन अल अरबी[1] ने "रेहलह" नामक अपने ग्रथ में शिक्षा-विधि का एक अनोखा नियम लिखा है और उसी पर बार-बार जोर दिया है। उसने उन्दुलुस वालो के समान अरबी भाषा-शास्त्र की शिक्षा को समस्त ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा पर प्राथमिकता प्रदान की है और इसका कारण यह लिखा है कि पद्य अरब के इतिहास एव साहित्य का स्रोत है, अत. अरबी भाषा-शास्त्र की रक्षा हेतु सर्वप्रथम पद्य की ही शिक्षा होनी चाहिए। तदुपरान्त उसने गणित की शिक्षा का महत्त्व बताया है। उसमे पूर्ण अभ्यास प्राप्त हो जाने के उपरान्त कुरान शरीफ की शिक्षा को महत्त्व प्रदान किया है। काज़ी अबू बक्र का मत है कि इस शिक्षा-विधि से कुरान शरीफ का पढना बड़ा सरल हो जाता है। उसने अपने देश की अशुद्ध शिक्षा-विधि पर खेद प्रकट किया है और लिखा है कि लोग क्यो बच्चो को प्रारम्भ से कुरान शरीफ रटाया करते है। वे एसी वस्तु को पढते है जिसे वे नही समझते और उन बातो के लिए परिश्रम करते है जिनका उनके लिए

१. उसने 'मराक़े अज़् ज़ुल्फा' नामक अपने ग्रन्थ में शिक्षा की समस्याओं पर बड़े विस्तार से लिखा है।

कोई महत्त्व नहीं। उसने वताया है कि सर्वप्रथम धर्म के सिद्धान्त, फिर फिकह के सिद्धान्त, उसके उपरान्त वाद-विवाद के नियम और फिर हदीस की शिक्षा दी जाय। क़ाज़ी अबू बक्र ने भी दो विद्याओ को एक साथ पढाने का विरोध किया है और इसकी अनुमति उसी अवस्था में दी है जब कि विद्यार्थी में असाधारण उत्तम बुद्धि एव विवेक पाया जाता हो।

इसमें सन्देह नही कि यह शिक्षा-विधि अत्यन्त समीचीन है। किन्तु प्रचलित प्रथा इसके विरुद्ध है। प्रथाएँ वडी प्रबल होती है। कुरान को सर्वप्रथम पढाने की प्रथा इसी प्रकार चली कि इसका उद्देश्य पुण्य तथा आशीर्वाद प्राप्त करना होता था। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य उस खतरे से बचना होता था जो किसी दुर्घटनावश बाल्यावस्था में ही शिक्षा की समाप्ति के कारण उत्पन्न हो सकता है, क्योकि उस हालत में बालक कुरान शरीफ की शिक्षा से भी वचित रह जाता है। फिर यह भी है कि बच्चा जब तक अबोध होता है तब तक वह हर प्रकार से अधिकार में रहता है। उसको जो चाहिए सिखाइए। पर जब वयस्क होकर वह अधिकार से बाहर हुआ तो न जाने किस मार्ग पर निकल जाय। इसी कारण कुरान शरीफ बाल्यावस्था में ही पढा देते है कि आगे चलकर क़ुरान शरीफ से तो वह अनभिज्ञ न रहे। यदि किसी प्रकार विश्वास हो जाय कि शिक्षा बन्द न हो जायगी, अपितु चलती रहेगी, तो फिर काज़ी अबू बक्र की विधि ही उचित है। वह पूर्व एव पश्चिम की शिक्षा-पद्धतियो से उत्तम है।

"ईश्वर ही निर्णय करता है और कोई भी उसके निर्णय में परिवर्तन नही कर सकता।"

(३५) विद्यार्थियो के प्रति कठोरता उनके लिए हानिकारक होती है

शिक्षा में कठोरता का प्रदर्शन बडा हानिकारक है। छोटे-छोटे बच्चो पर उसका विशेषत बुरा प्रभाव होता है, कारण कि यह अयोग्यता का प्रमाण है। केवल शिष्यो के ही प्रति कठोरता से हानि नही होती, अपितु दासो तथा सेवको के प्रति भी यदि कठोरता का व्यवहार किया जाय तो वे हताश हो जाते हैं। उनके हृदय में कोई उमग, उल्लास एव सतोष नही रह जाता है। वे शिथिल हो जाते हैं और झूठ, धूर्तता एव चालबाज़ी से काम लेने लगते हैं। कुछ दिन इसी प्रकार रहने से, ये सब दोष आदत एव स्वभाव के रूप में उनके हृदय में बैठ जाते हैं। यह सब कुछ दड एव कठोरता के भय से होता है। उससे विद्यार्थी के हृदय का स्वाभिमान एव मर्यादा-पालन तथा अपनी और अपने घरवालो की प्रतिरक्षा की क्षमता समाप्त हो जाती है। वह अन्य लोगो पर बोझ बन जाता है। न उसमें किसी योग्य बनने की रुचि रहती है और न नैतिक

आचरण की इच्छा। सक्षेप में वह मानवता के गुणो को भूल जाता है और अपावन बातों का आदी होकर अपमान के निम्नतम गर्त में गिर जाता है। केवल व्यक्तिगत जीवन की ही यह कहानी नही है, अपितु कौमो की भी यही दशा है। जब वे आतक एव कोप के बधनो में जकडी रहती है, अत्याचार एव जुल्म के वातावरण में पलती हैं, तो उनमें से मानवता निकल जाती है। यहूदियो की कौम को देख लीजिए कि उनके हृदय में दुष्टता कितनी आरूढ हो गयी है। प्रत्येक देश में वे दुष्टता, छल एव धूर्तता के लिए कुप्रसिद्ध है। इसका भी वही कारण है जिसका हमने उल्लेख किया।

इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए शिक्षक को अपने शिष्य के तथा पिता को अपने पुत्र के प्रति अधिक कठोरता एव दड का प्रयोग न करना चाहिए। मुहम्मद बिन ज़ैद ने शिक्षको एव विद्यार्थियो से सम्बन्धित आदेशो के विषय में जिस ग्रन्थ की रचना की है, उसमें लिखा है कि यदि बालको को दड देने की आवश्यकता ही पड जाय, तो तीन कोडो से अधिक न मारना चाहिए। हज़रत उमर का कथन है कि "जिन्हे शरा द्वारा शिक्षा नही प्राप्त हो सकती उन्हें ईश्वर शिक्षा नही प्रदान करता।" उनका उद्देश्य यह था कि वे आत्मा को अनुशासन सम्बन्धी दंड के अपमान से सुरक्षित रखना चाहते थे और उन्हें इस बात का विश्वास था कि अनुशासन सम्बन्धी जो दड शरा में बताये गये है, वे मनुष्य को नियत्रण में रखने के लिए पर्याप्त है, कारण कि शरा में मनुष्य के हित का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

इसी प्रकार रशीद ने जब अपने पुत्र मुहम्मद अल अमीन को उसके गुरु खलफ[1] बिन अहमर के सुपुर्द किया तो शिक्षा सम्बन्धी बडे बहुमूल्य आदेश दिये। उसने कहा— "अहमर ! तुम जानते हो कि मैंने अपनी जान तथा अपने दिल के टुकडे को तुम्हारे नियत्रण में दिया है। उस पर अपना पूरा अधिकार रखो। उसे अपना आज्ञाकारी बनाओ। उसके सम्मुख तुम अपना वही स्थान रखो जो मैंने तुम्हें प्रदान किया है। उसको कुरान पढाओ। इतिहास सुनाओ। पद्य एव कविता की शिक्षा दो। मुहम्मद साहब की सुन्नत की भी शिक्षा दो। उसको यह सिखाओ कि किस अवसर पर बात करे और किस प्रकार अपनी बात प्रारम्भ करे। विशेष अवसरो के अतिरिक्त उसको हँसने से रोको। इसकी आदत डालो कि जब बनी हाशिम[2] के गण्य-मान्य लोग आये

१. ख़लफ़ बिन अहमर की मृत्यु ७९६ ई० तथा ८०५ ई० के मध्य में हुई।
२. खलीफा के अब्बासी रिश्तेदार।

तो वह उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया करे। इसी प्रकार जब सेनापति आया करें तो भी वह उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया करे। सक्षेप में कोई क्षण ऐसा व्यतीत न हो जिसमें तुम उसे कोई न कोई शिक्षा न दो। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखो कि वह उकता न जाय। उसका उत्साह समाप्त न हो जाय और उसमें शिथिलता उत्पन्न न होने पाये। उसको अधिक छूट भी न दो कि वह स्वतत्र ही हो जाय और इसी का आदी बन जाय। सर्वप्रथम उसे नरमी एव कृपापूर्वक ठीक करो। यदि इस प्रकार वह ठीक न हो तो कठोरता एव दड से काम लो।"

(३६) ज्ञान हेतु स्वदेश त्यागने एवं समकालीन विद्वानो के साक्षात्कार से ज्ञान की वृद्धि होती है

इसका कारण यह है कि मनुष्य विज्ञान, नैतिकता, धर्म एव गुणो की शिक्षा या तो दीक्षा द्वारा प्राप्त करता है, या साक्षात् विचार-विनिमय द्वारा। किन्तु जो बात साक्षात् विचार-विनिमय द्वारा प्राप्त होती है, वह हृदयगम हो जाती है। शिक्षको की सख्या जितनी अधिक होगी उतना ही अभ्यास अधिक एव दृढ होगा। इसके अतिरिक्त शिक्षा के पारिभाषिक शब्द अलग-अलग तथा भिन्न-भिन्न होते है, यहाँ तक कि विद्यार्थी को इस बात का भ्रम हो जाता है कि ये पारिभाषिक शब्द उसी विज्ञान के अग है या नही। जब वह विभिन्न विद्वानो से भेंट करता है और उनकी नाना प्रकार की शिक्षा-विधियो से परिचित होता है तो उसकी आँखें खुल जाती हैं और वह पारिभाषिक शब्दो का विवेचन करने योग्य होता है और उन्हें वास्तविक विज्ञान से पृथक् समझने लगता है। उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है कि पारिभाषिक शब्द केवल शिक्षा के ऐसे साधन है जिनका विद्वान् लोग सुविधा के लिए प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका कोई मूल्य नही। अत मौलिक ज्ञान एव परिभाषाओ का अन्तर समझ लेने की योग्यता के कारण विद्यार्थी को दक्षता प्राप्त करने में सुगमता हो जाती है और विद्वत्ता के द्वार उसके लिए खुल जाते हैं। इन्ही कारणो से विद्यार्थियो का विद्वानो की गोष्ठी में उपस्थित रहना परमावश्यक बताया गया है और इसी कारण यात्रा करना भी उपादेय कहा गया है।

"ईश्वर ही जिसे चाहता है, सन्मार्ग हेतु उसका पथ-प्रदर्शन करता है।"

(३७) विद्वान् लोग राजनीति से अपरिचित एव अनभिज्ञ होते है[1]

१ इसका अनुवाद नहीं किया गया।

(३८) इस्लाम के अधिकांश विद्वान् अजमी है

यह एक आश्चर्यजनक बात है कि शरा तथा बुद्धि सम्बन्धी दोनो प्रकार के ज्ञानो में अजमियो को अरबो से अधिक श्रेष्ठता प्राप्त है, हालाँ कि इस्लाम धर्म अरब से निकला और स्वय हज़रत मुहम्मद अरबों में सर्वश्रेष्ठ थे, इसके विरुद्ध बिरला ही कोई उदाहरण मिलेगा। इसका कारण यह है कि अरब प्रारम्भ में बदवी एव सरल स्वभाव के होने के कारण ज्ञान-विज्ञान से अपरिचित तथा कला-कौशल से अनभिज्ञ थे। लोग शरा सम्बन्धी आदेशो को उचित तथा अनुचित कार्यो के रूप में एक-दूसरे तक पहुँचाते थे और मुहम्मद साहब एव उनके मित्रो की शिक्षा के आशीर्वाद से इन आदेशो के स्रोत कुरान तथा सुन्नत का उचित ज्ञान उन्हें हो चुका था। सम्यता की इस अवस्था को "अरब" अवस्था कहा जाता है। उस युग में वैज्ञानिक ढग से पठन-पाठन तथा ग्रथ रचना की चर्चा न थी और न उस समय तक उनको इनकी आवश्यकता ही पड़ी थी। मुहम्मद साहब के मित्रो तथा उनके बाद के लोगो में ज्ञान-विज्ञान एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति तक पहुँचते रहे और लिखित शब्दों एव पृष्ठो के बन्धन की उन्हें आवश्यकता नही हुई।

उस युग के विद्वान् कुर्रा की उपाधि द्वारा सम्बोधित किये जाते थे, कारण कि वे पुस्तकें पढ सकते थे, पर उनकी गणना उम्मियो में न होती थी। मुहम्मद साहब के मित्र क्योकि अरब (बदवी) थे, अत उनमें साधारण रूप से यह गुण पाया जाता था। इसी कारण कुर्रा की उपाधि द्वारा अल्लाह की किताब को पढनेवालो को सम्मानित किया जाता था। इस प्रकार वे अल्लाह की किताब एव मुहम्मद साहब की सुन्नत को पढनेवाले ही होते थे और उन्ही से शरा सम्बन्धी आदेश निकलते थे। हदीस को कुरान शरीफ की टीका के समान सम्मानित समझा जाता था। मुहम्मद साहब ने स्वय कहा है—"मैं तुम में दो चीज़ें छोड़े जा रहा हूँ। जब तक तुम उनको थामे रहोगे, कभी न बहकोगे। वे दोनों चीज़ें है अल्लाह की किताब तथा मेरी सुन्नत।"

रवायतो का क्रम जब व्यक्तिश मौखिक सवाद द्वारा चलते-चलते हारूनुर्रशीद के राज्य काल के प्रारम्भ तक मद पडा, तो इस बात की आवश्यकता हुई कि कुरान की टीका एव हदीस के ज्ञान को ग्रथो का रूप दिया जाय, ताकि ये ज्ञान कही इसी प्रकार नष्ट न हो जायँ। फिर साथ-साथ इस बात की आवश्यकता हुई कि ठीक-ठीक प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त किया जाय। रवायतो की चर्चा करनेवालो की सत्यता एव असत्यता की जाँच की जाय, ताकि ठीक हदीस को गलत हदीस से पृथक् किया जा सके। इसके उपरान्त जब साधारण से साधारण घटना का कुरान शरीफ तथा सुन्नत से प्रमाण

टूँडा जाने लगा तो अजम के मेल-जोल से अरबी भाषा में दोष आ गये। जब यह दशा हुई तो व्याकरण के नियम बनाये गये। शरा सम्बन्धी विषयो के लिए अन्य सहायक विद्याओ की भी आवश्यकता पड़ी, जिनसे अरबी भाषा-शास्त्र के नियमों का उद्भव हुआ और तुलनात्मक युक्तियो एव तर्क के सिद्धान्तो का भी प्रचार हुआ। क्योंकि इस्लाम में अधर्म भी प्रचलित हो गया था, अत इस बात की भी आवश्यकता होने लगी कि तर्क पर आधारित दलीलो द्वारा इस्लामी सिद्धान्तो एव नियमो की पुष्टि की जाय। उनके प्रति जो सन्देह किया जाता है तथा जो आलोचनाएँ होती है, उनका निराकरण किया जाय। अत इस ज्ञान-भण्डार ने कला का रूप धारण कर लिया और उसकी शिक्षा दी जाने लगी।

पिछले अध्यायो में हम यह सिद्ध कर चुके है कि कला का जन्म नगर के जीवन एव सभ्यता की उन्नति के कारण होता है, और यह भी उल्लेख हो चुका है कि अरब-वाले नगर की सभ्यता से अपरिचित थे, अत वे इस ज्ञान से भी अनभिज्ञ रहे। किन्तु अजम, मवाली तथा नगर-सभ्यता से परिचित अन्य कौमें, जो कला-कौशल में अजम के समान थी, नगर-सस्कृति एवं सभ्यता में दक्ष हो गयी। उनकी अतीत से यही दशा चली आ रही थी, अत. यह नया ज्ञान उन्ही के यहाँ अधिक प्रचलित हुआ। व्याकरण में सीबावै को और उसके बाद फारिसी तथा ज़ज्जाज को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। वे सबके-सब कुल-क्रमानुसार अजमवशी थे। किन्तु उन्होने अरबी भाषा-भाषियो के मध्य आँखे खोली थी और अरबो की गोष्ठियो में पले-बढ़े थे, अत उन्होने व्याकरण के नियमो को विज्ञान का रूप देकर भावी सतानो के लिए उन्हें सरल बना दिया।

इसी प्रकार हदीस के विद्वान् एव हाफिज़ भी अजम ही थे, जिनकी भाषा अरबी थी। इसी तरह फिकह एव कलाम के सिद्धान्तो के विद्वान् भी सबके-सब अजमी थे। कुरान शरीफ के टीकाकार भी अजमी ही हुए है। सक्षेप में इस्लाम के धार्मिक ज्ञान की रक्षा एव सकलन का ठेका इन्ही अजमवालो ने ले रखा था। मुहम्मद साहब ने सत्य ही कहा है कि "यदि विद्वत्ता आकाश के किसी कोने में अटक जायगी तो भी अजमवाले उसे प्राप्त कर लेंगे।"

इसके बाद वह युग आया जब अरबो का भी नगर की सभ्यता से परिचय हो गया और उन्होने बदवियत की पोशाक उतार फेंकी, किन्तु वे शासन एव राजनीति के झगडो में ऐसे फँस गये कि उनको किसी अन्य कार्य के लिए अवकाश ही न मिल सका। ऐसी अवस्था में भला वे ज्ञान-विज्ञान की चिन्ता किस प्रकार करते? इसके

अतिरिक्त उस काल में विद्वत्ता की गणना कला में की जाती थी और अरब लोग राज्य के स्वामी होने के कारण कला की उपेक्षा करते रहे थे। अतः ये लोग ज्ञान-विज्ञान से अनभिज्ञ रहे और उसकी रक्षा का उत्तरदायित्व अजम एव अजम की सतान को सौंप दिया गया। अरब लोग विद्वानों का बडा आदर-सम्मान करते थे, कारण कि वे अरब के ही धर्म एव ज्ञान का बोझ अपने कधो पर लिये हुए थे। फिर जब राज्यसत्ता अरबो के हाथ से निकलकर अजम के अधीन हुई तो ज्ञान-विज्ञान का कोई आश्रयदाता न रहा। अजमवाले भी उसी देश के निवासी हो गये। उन्होंने ज्ञान-विज्ञान से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। अब रहे अन्य विद्वान् तो उनका सम्मान समाप्त हो गया और उनके विषय में समझा जाने लगा कि वे ऐसे कार्यों में व्यस्त है जिनसे शासन अथवा राजनीति को कोई लाभ नही। इन्ही कारणो से शरा सम्बन्धी विषयो के विद्वान् प्राय अजम लोग ही हुए।

शरा सम्बन्धी ज्ञान की यह दशा थी। अब रहा बुद्धिवादी ज्ञान सो वह इस्लाम में उस समय आया जब विद्वानो एव लेखको का एक पृथक् वर्ग बन चुका और ज्ञान-विज्ञान ने कला-कौशल का रूप धारण कर लिया। अतः यह ज्ञान भी विशेष रूप से अजमवालो तक ही सीमित रहा और अरब उससे दूर ही रहे। उन्होंने उसकी ओर ध्यान न दिया। इस प्रकार इराक, खुरासान तथा मावराउन्नहर जो नगर की सभ्यता एव सस्कृति के केन्द्र थे, ज्ञान-विज्ञान के भी केन्द्र रहे। जब उनका पतन हुआ और सभ्यता मिटी तो उसके साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान का भी वहाँ अन्त हो गया और वह वहाँ जा पहुँचा जहाँ सभ्यता एव सस्कृति का राज्य था। आजकल मिस्र देश नागर सस्कृति का सबसे बडा केन्द्र, इस्लाम का घर तथा ज्ञान-विज्ञान एवं कला-कौशल का स्रोत समझा जाता है।

मावराउन्नहर मे अभी नागर सभ्यता के कुछ चिह्न पाये जाते है। इसी अनुपात से वहाँ ज्ञान-विज्ञान एव कला-कौशल की चर्चा भी है। इसका प्रमाण हमें वहाँ के एक बहुत बडे विद्वान् सादुद्दीन तफताज़ानी[1] के महान् व्यक्तित्व एवं उनकी उन रचनाओ से जो हमें प्राप्त हो सकी, मिलता है। अजम के शेष देशो में हमें इमाम इब्नुल खतीब एवं नसीरुद्दीन तूसी के अतिरिक्त ऐसा कोई अन्य प्रसिद्ध विद्वान् नही मिल सका जो विद्वत्ता में अद्वितीय हो।

(३९) अरबी भाषा-सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान।

(४०) भाषा एक वैज्ञानिक अभ्यास है।

१. मसऊद बिन उमर ७२२–७९२ हि० (१३२२ ई०–१३९०)।

(४१) सामयिक अरवी भाषा एक पृथक् भापा है और मुजर तथा हिमयार की भाषा से भिन्न है

(४२) नगर-वासियों तथा एक स्थान पर स्थायी रूप से निवास करने-वालो की भापा मुज़र की भापा से पृथक् है

(४३) मुज़र की भापा की शिक्षा

(४४) मुज़र की भापा के अभ्यास का अरवी भाषा-शास्त्र से कोई सम्वन्ध नही

(४५) साहित्यिक समालोचकों के अनुसार 'रुचि' का विवेचन और इसका प्रमाण कि जो अजमी, अरवो की नकल ही करते है उनकी 'रुचि' वे उत्पन्न नहीं कर पाते

(४६) जव स्वयं नगरवासी ही साधारण शिक्षा के वल पर अरवी भापा-शास्त्र का वास्तविक अभ्यास नही पैदा कर पाते, तव ऐसे लोगों के लिए जिनकी मातृ-भाषा अरवी नही उसमें दक्षता प्राप्त करना कष्टसाध्य होता है

इसका कारण यह है कि जव नगर का विद्यार्थी जिसका वैयक्तिक स्वभाव मूल अरवी जीवन और स्वभाव से भिन्न और अजमी स्वभाव से प्रभावित होता है, मूल अरवी भापा[1] सीखने का प्रयत्न करता है तो उसका स्वभाव ही उसके उद्देश्य की पूर्ति में वाधक होता है। उसे अरवी भापा-शास्त्र का अभ्यास नही हो पाता। इसी विचार से दूरदर्शी शिक्षक वच्चो को सर्वप्रथम भापा की शिक्षा देते है और व्याकरण के विद्वान्, व्याकरण के नियमो को सिखाते है, किन्तु भापा के शिक्षक ही ठीक मार्ग पर होते है कारण कि उपर्युक्त अभ्यास भापा की शिक्षा में ही व्यस्त रहकर प्राप्त हो सकता है यद्यपि व्याकरण से भी मनुष्य को थोडी वहुत सफलता प्राप्त हो जाती है।

जिन नगरवासियो की भापा अजम से अविक प्रभावित है और मुज़री भापा से वहुत दूर है वे मुज़री भापा सीखने एव उसमें कुशलता प्राप्त करने में असमर्थ रहेंगे, कारण कि जो विरोवाभासी वातें उनकी तथा मुज़र की भापा में है वे उनके लिए वाधक वनेंगी। नगरो की दशा पर दृष्टि डालकर आप हमारे कथन पर विश्वास कर लीजिए। इसका उदाहरण भी सामने है। इफरीकिया तथा मगरिववालों पर

१. मुज़र।

अजमियो की छाप पड़ी थी और वे मुज़री भाषा से अनभिज्ञ थे, अत वे शिक्षा द्वारा मुज़री भापा में अभ्यास न पैदा कर सके। इब्नुर्रफीक ने कैरवान के किसी सचिव का पत्र उद्धृत किया है जो वास्तव में विचारणीय[1] है।

उन्दुलुसवालो को नि सन्देह भाषा पर बडा अधिकार है। इसका कारण यह है कि उन्होने इस दिशा में घोर प्रयत्न किये हैं। उन्हें गद्य तथा पद्य, हर प्रकार की रचनाओं के उद्धरणो पर अधिकार प्राप्त है। इतिहासकार इब्ने हय्यान उन्ही लोगो में हुआ है। वह अरबी भाषा-शास्त्र का अद्वितीय विद्वान् था और उसने अपनी योग्यता के झडे गाड रखे थे। इब्ने अब्द रब्बेह अल-कस्तल्ली तथा अन्य कवियो ने मुलूकुत्तवाएफ के राज्य तक में बडी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। उस समय उन्दुलुस मे भाषा एव साहित्य को बडी उन्नति प्राप्त थी और सैकडो वर्षों तक वहाँ यही दशा रही। फिर ईसाइयो के प्रभुत्व के कारण जब लोगों ने स्वदेश त्यागना प्रारम्भ कर दिया तो ज्ञान-विज्ञान की ओर ध्यान देना भी छोड़ दिया और सभ्यता का पतन होने लगा। इस प्रकार समस्त कला-कौशल का ह्रास होने लगा। उन्दुलुसवालो की विद्वत्ता की काष्ठा ऐसी घटी कि उसकी दशा अवनततम हो गयी। अन्त में सालेह बिन शरीफ तथा मालिक बिन अल मुरह्हल, जो अशबीलिया के साहित्यकारो का शिष्य था, के बाद उन्दुलुसवालो की विद्वत्ता एव अरबी भाषा-शास्त्र ज्ञान का अन्त हो गया। स्वदेश त्यागते समय उन्दुलुस ने अपने विद्वान् अशबीलिया एव सिब्ता के समुद्रीय तट की ओर भेजे और उन्हें उन्दुलुस के पूर्व इफरीकिया की ओर रवाना किया, किन्तु वहाँ उनको प्रसिद्धि न प्राप्त हो सकी, कारण कि उनकी भाषा अजमी भाषा से अत्यधिक प्रभावित हो गयी थी और उसमें एव उन्दुलुसवालो की भाषा में बडा अन्तर था।

युग के परिवर्तन के कारण जब उन्दुलुस में पुन ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुई तो इब्ने शिवरीन, इब्ने जाबिर, इब्ने अल-जय्याब तथा उनके समान अन्य विद्वान् पैदा हुए। उनके पश्चात् इबराहीम अस्साहिली अत्तुवैजिन सरीखे विद्वान् हुए। तदुपरान्त इब्नुल खतीब का युग आया, किन्तु वह शत्रुओ की चुगली के कारण शहीद कर दिया गया। अरबी भाषा-शास्त्र में उसकी योग्यता अपार थी। उसके शिष्यों ने उसका अनुकरण करके उसकी ख्याति को अमर बना दिया। सक्षेप में इस समय उन्दुलुस में अरबी भाषा एव साहित्य बडी उन्नति पर है। उस देश की शिक्षा-विधि भी सरल है। ऊपर हम

१ पत्र का, जो अशुद्धियों से परिपूर्ण है, अनुवाद नहीं किया गया।

वता चुके हैं कि उन्दुलुसवालों ने साहित्य के विस्तार तथा प्रचार और उसकी रक्षा के प्रयत्न में वड़े कष्ट भोगे हैं। उन्होंने अरवी साहित्य के विज्ञानो की भली-भाँति रक्षा की है। जिन अजमियो की भाषा वहाँ विगडी हुई दृष्टिगत होती है, वे केवल वहाँ के अस्थायी निवासी हैं। अत उन्दुलुस में अजमी प्रभाव को स्थायित्व प्राप्त नही होता। इसके विपरीत मग़रिब एवं इफ़रीकिया के वरवर निवासी अजम से वुरी तरह प्रभावित थे, इसी कारण वे अरवी भाषा का पूर्ण ज्ञान न प्राप्त कर सके।

वनी उमय्या एव वनी अब्वास के राज्यकाल में पूर्वीय देशो की भी यही दशा थी। उनके यहाँ भी उन्दुलुस के समान अरवी भाषा का ज्ञान पूर्णरूप से वर्त्तमान था, कारण कि वे वहुत वडी सीमा तक अजमियो से दूर रहते थे। यही कारण है कि वहाँ वड़ी उच्चकोटि के गद्य एवं पद्य लिखनेवाले हुए। वहाँ खरे और ठेठ अरव मिलते थे। वे क्यो अपना रग वदलते। इसका खुला हुआ दृष्टान्त हमारे सामने "कितावुल अग़ानी" है जो अरव के उच्चकोटि के शुद्ध गद्य एव पद्य का अनुपम रत्न है। इसमें सव कुछ है और यह वास्तव में अरव की पूर्ण उन्नत एव श्रेष्ठ दशा का द्योतक है। इस ग्रथ में हमें अरवी भाषा, अरव के इतिहास और अरव के रसूल का जीवन वृत्त सभी कुछ मिलता है। उसमें अरवो के धार्मिक सगठन का भी वर्णन है और उनकी खिलाफत एव सल्तनत का इतिहास भी। इससे अरवो की कविता एव सगीत का भी ज्ञान प्राप्त होता है। सक्षेप में अरव के विषय में सविस्तर जानकारी का केवल एक यही ग्रन्थ है। इस प्रकार दोनो सल्तनतो के युग में अरवी भाषा-शास्त्र का अभ्यास दृढतापूर्वक होता रहा।

इसके उपरान्त फिर वह युग आया जव अरव की भाषा विगडी ही नहीं, मिट भी गयी। अरवो के राज्य एव शासन का युग समाप्त हुआ। प्रभुत्व अजमियो को प्राप्त हुआ और उनके राज्य भी स्थापित हो गये। यह समय वह था जव दैलम एव सलजूक वंशो का राज्य प्रारम्भ हुआ। उनका सम्पर्क नगर की वहुसख्यक जनता से था। ज़मीन उनकी भाषा वोलनेवालो से भर गयी थी और अजमी भाषाभाषियो को नगर की जनसख्या एवं सभ्यता पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया। इस प्रकार लोग अरवी भाषा तथा उसके अभ्यास से दूर हो गये। जो लोग इसका अध्ययन करते थे इस पर अधिकार न प्राप्त कर पाते थे। उनकी भाषा की आज भी यही दशा है। इससे उनका गद्य एवं पद्य दोनो ही प्रभावित है, यद्यपि दोनो में ही रचनाएँ पर्याप्त हो रही हैं।

"ईश्वर, जिस वस्तु का सर्जन करना चाहता है, करता है। सव कुछ उसी की इच्छा से होता है।"

(४७) भाषा के दो भाग–गद्य तथा पद्य।
(४८) गद्य तथा पद्य दोनों में एक साथ कुशलता बिरले ही किसी व्यक्ति की प्राप्त होती है।
(४९) पद्य एवं उसकी शिक्षा-विधि।
(५०) गद्य तथा पद्य शब्दों पर आधारित होते हैं, न कि विचारों पर।
(५१) भाषा में अभ्यास अरबों की रचनाओं को अधिक से अधिक संख्या याद करने से प्राप्त होता है।
(५२) उच्च श्रेणी के लोगों को कविता मे रुचि नही होती।
(५३) समकालीन अरबों एवं नगर-वासियों की कविताएँ।

अब हम प्रथम पुस्तक को यही समाप्त करते हैं, कारण कि यदि हमने अधिक कुछ लिखा तो हम अपने विषय के क्षेत्र से वाहर निकल जायँगे। हमने इस पुस्तक का विषय सम्यता एवं तत्सम्वन्धी समस्याएँ रखा था। हम समझते हैं कि इस विषय के अन्तर्गत सभी वातो का विवरण हमने दे दिया है। कोई वात छोड़ी नही है, किन्तु फिर भी सम्भव है कि हमारे वाद कोई वहुत बडा विद्वान् एव वुद्धिमान ऐसा पैदा हो जाय जो इन समस्याओ का हमसे अधिक विस्तार से उल्लेख कर सके। वास्तव में एक विज्ञान के आविष्कारक के लिए यह आवश्यक भी नही है कि वह उस विज्ञान की समस्त समस्याओ का उल्लेख कर दे। उसका कर्त्तव्य यह है कि वह अपने विज्ञान के विषयो को निश्चित कर दे, उनकी परिभापा वता दे तथा उनकी विभिन्न शाखाओं का उल्लेख कर दे। फिर वाद में आनेवाले लोग उन समस्याओ में थोडी-वहुत वृद्धि करके उस विज्ञान को पूर्ण कर देते है।

"ईश्वर जानता है और तुम नही जानते।"

पुस्तक का लेखक (ईश्वर उसे मुक्ति दे) कहता है, "मैंने इस प्रथम पुस्तक की रचना एव सकलन सशोधन एव सुधार को छोड़कर, पाँच मास में ७७९ हि० के मध्य (नवम्बर १३७७ ई०) में समाप्त कर लिया था। तदुपरान्त मैंने पुस्तक में सुधार एवं संशोधन किये। साथ ही साथ मैंने विभिन्न कौमो के इतिहास भी जिनकी योजना मै प्रारम्भ में वना चुका था और जिसका उल्लेख मै ऊपर कर चुका हूँ, जोड़ दिये।"

"ज्ञान ईश्वर की ओर से, जो शक्तिशाली एवं वुद्धिमान् है, प्राप्त होता है।"

परिशिष्ट

(१) .कुरैश की वंशावली
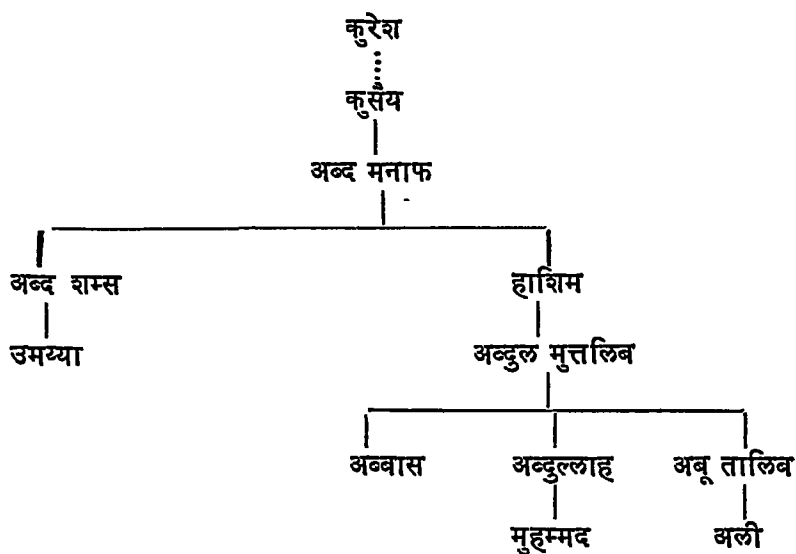
हज़रत मुहम्मद के प्रथम चार खलीफ़ा

हज़रत अबू बक्र	६३२-६३४ ई०
हज़रत उमर	६३४-६४४ ई०
हज़रत उस्मान	६४४-६५६ ई०
हज़रत अली	६५६-६६१ ई०

(२) बनी उमय्या की वंशावली
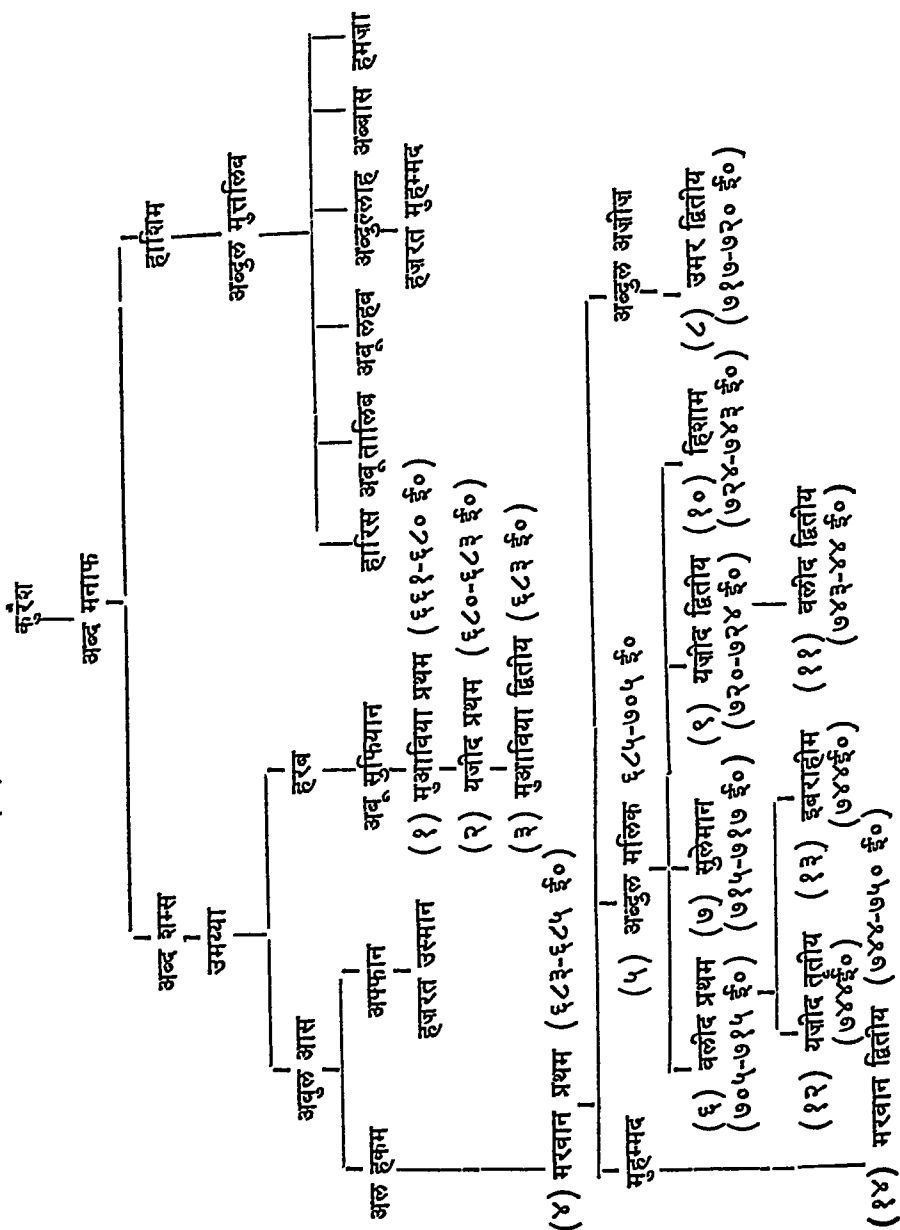
(३) बनी अब्बास की वंशावली

(४) बुवहिद प्रभुत्व काल के अब्बासी ख़लीफ़ा
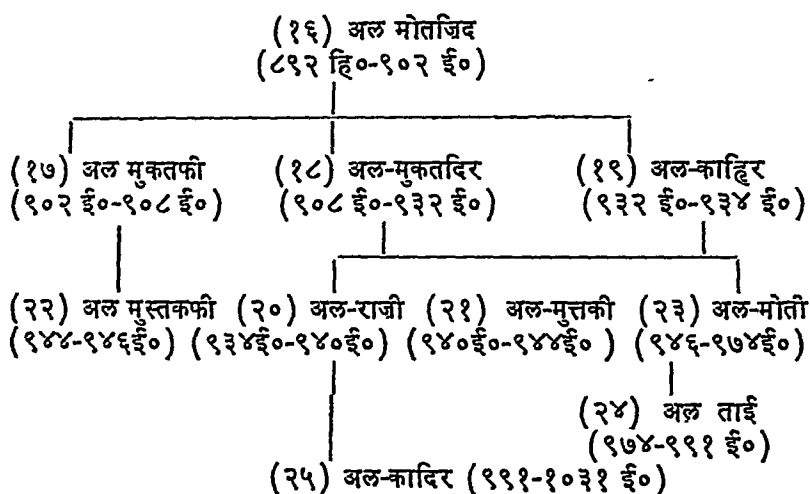
(५) सलजूक़ प्रभुत्व काल के अब्बासी ख़लीफ़ा

(२६) अल-काएम (१०३१-१०७५ ई०)
|
मुहम्मद
|
(२७) अल-मुकतदी (१०७५-१०९४ ई०)
|
(२८) अल-मुस्तजहिर (१०९४ ई०—१११८ ई०)

(२९) अल-मुस्तरशिद (१११८-११३५ ई०)
|
(३०) अल-राशिद (११३५-११३६ ई०)

(३१) अल-मुकतफी (११३६-११६० ई०)
|
(३२) अल-मुस्तनजिद (११६०-११७० ई०)
|
(३३) अल-मुस्तदी (११७०-११८० ई०)
|
(३४) अल-नासिर (११८०-१२२५ ई०)

(६) अन्तिम अब्बासी ख़लीफ़ा

(३४) अल-नासिर (११८०-१२२५ ई०)
|
(३५) अल-ज़ाहिर (१२२५-१२२६ ई०)
|
(३६) अल-मुस्तनसिर (१२२६-१२४२ ई०)
|
(३७) अल-मुस्तासिम (१२४२-१२५८ ई०)

(७) हज़रत अली के वंशज एवं १२ इमाम
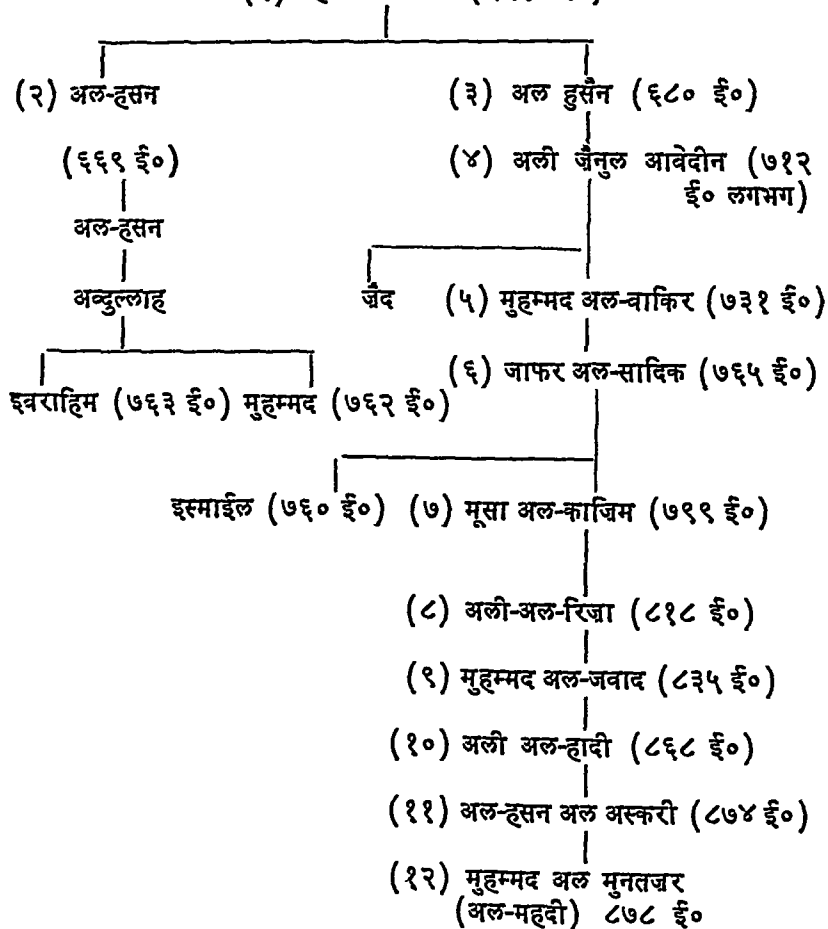
नोट—कोष्ठ में मृत्यु तिथि दी गयी है।

(८) क़ुरतेबा (कारडोवा) के उमय्या अमीर

(१) अब्दुर्रहमान प्रथम (७५६-७८८ ई०)
|
(२) हिशाम प्रथम (७८८-७९६ ई०)
|
(३) अल-हकक प्रथम (७९६-८२२ ई०)
|
(४) अब्दुर्रहमान द्वितीय (८२२-८५२ ई०)
|
(५) मुहम्मद प्रथम (८५२-८८६ ई०)
|
(६) अल-मुनज़िर (८८६-८८८ई०) | (७) अब्दुल्लाह (८८८-९१२ ई०)

(७) अब्दुल्लाह
|
मुहम्मद
|
(८) अब्दुर्रहमान तृतीय (९१२-९२९ ई०)
ख़लीफ़ा (९२९-८६१ ई०)

(९) कारडोवा के उमय्या ख़लीफ़ा
(१) अब्दुर्रहमान तृतीय (९२९-९६१ ई०)
२ अल हकम द्वितीय (९६१-९७६ ई०)
अब्दुल जब्बार
हिशाम
सुलेमान
अल-हकम
अब्दुल मलिक
मुहम्मद
उबैदुल्लाह
अब्दुर्रहमान
(३) हिशाम द्वितीय (९७६-१००९ ई०) (१०१०-१०१३ ई०)
(४) मुहम्मद द्वितीय (१००९-१०१० ई०)
(५) सुलेमान (१००९-१०१० ई०) (१०१३-१०१६) ई०
(६) अब्दुर्रहमान चतुर्थ (१०१८ ई०)
(७) अब्दुर्रहमान पचम (१०२३ ई०)
(९) हिशाम तृतीय (१०२७-१०३१ ई०)
(८) मुहम्मद तृतीय (१०२३-१०२५)

(१०) मिस्र के फ़ातेमी ख़लीफ़ा

(१) अल-महदी (९०९-९३४ ई०)
|
(२) अल-काएम (९३४-९४६ ई०)
|
(३) अल-मनसूर (९४६-९५२ ई०)
|
(४) अल-मुइज़्ज़ (९५२-९७५ ई०)
|
(५) अल-अजीज (९७५-९९६ ई०)
(६) अल-हाकिम (९९६-१०२१ ई०)
(७) अल-ज़ाहिर (१०२१-१०३५ ई०)
(८) अल-मुस्तनसिर (१०३५-१०९४ ई०)

(९) अल-मुस्ताली १०९४-११०१ ई० — मुहम्मद

(१०) अल-आमिर (११०१-११३० ई०) — (११) अह हाफिज (११३०-११४९ ई०)

यूसुफ — (१२) अल जाफिर (११४९-११५४ ई०)

(१३) अल-आज़िद (११६०-११७१ ई०) — (१३) अल फाएज़ (११५४-११६० ई०)

(११) मिस्र के बहरी ममलूक
(अल-सालेह अय्यूब)

शजर अल दुर

१ ऐबक (१२५०-१२५७ ई०)
- (२) नूरुद्दीन अली (१२५७-१२५९ ई०)

(३) कूतुज़ (१२५९-१२६० ई०)
- (५) बरकह (१२७७-१२७९ ई०)
- (६) सलामिश (१२७९ ई०)

(४) बैबर्स (१२६०-१२७७ ई०)

(७) कलावून (१२७९-१२९० ई०)
- (८) ख़लील (१२९०-१२९३ ई०)
- (९) अल-नासिर (१२९३-१२९४ ई०) (१२९८-१३०८ ई०) (१३०९-१३४० ई०)
  - (१३) अबूबक्र (१३४०-४१ ई०)
  - (१४) कूजूक (१३४१–२ ई०, १३४२ ई०)
  - (१५) अहमद (१३४२–५ ई०)
  - (१६) इस्माईल (१३४५–६ ई०)
  - (१७) अल-कामिल शाबान (१३४६–७ ई०)
  - (१८) अल मुज़फ्फर हाज्जी
  - (१९) अलहसन (१३४७–५१ ई०, १३५४–६१ ई०)
  - (२०) अल-सालेह (१३५१–४ ई०)
  - अलहुसेन
    - (२२) अल-अशरफ शाबान (१३६३–१३७६ ई०)
      - (२३) अलाउद्दीन अली (१३७६–१३८१ ई०)
      - (२४) अल-सालेह हाज्जी (१३८१–२ ई०, १३८९-९० ई०)
  - (२१) मुहम्मद (१३६१–३ई०)

(१०) कितबुग़ा (१२९४-१२९६ ई०)

(११) लाजीन (१२९६-१२९८ई०)

(१२) बैबर्स द्वितीय (१३०८-१३०९ ई०)

नोट—तारांकित लाइन स्वामी तथा दास के सम्बन्ध हेतु है।

(१२) मिस्र के बजरी ममलूक

(१) अल–जाहिर सैफुद्दीन बरकूक १३८२ ई०
(वहरी हाज्जी द्वारा राज्य पर अधिकार १३८९-९० ई०)

(२) अल नासिर नासिरुद्दीन फरज १३९८ ई०

(३) अल मनसूर इज्जुद्दीन अब्दुल अजीज़ १४०५ ई०
अल-नासिर फरज़ (पुन.) १४०६ ई०

(४) अल-आदिल अल मुस्तइन १४१२ ई०

× × ×

(२३) अल-अशरफ तूमान बाय १५१६-१५१७ ई०

सहायक-ग्रंथ-सूची

(केवल मुकद्दमे से सम्बन्धित)

अरबी

अली अब्दुल वाहिद वाफी	मुकद्दमा इब्ने खलदून (काहेरा १९५७-५८ ई०)
इब्ने खलदून	किताब-अल-इब्र, व-दीवान अल-मुब्तदा व-अल खबर (बूलाक १८६७-६८ ई०) ७ भागो में
	अत्तारीफ़ बे इब्ने खलदून व रहलतहू ग़रबन व शरक़न (काहेरा १९५१ ई०)
	Prolégoménes d 'Ebn-Khaldoun सकलनकर्ता E. Quatremere

उर्दू

अब्दुरहमान	मुक़द्दमये तारीखे इब्ने खलदून (लाहौर)
अहमद हुसेन इलाहाबादी	तरजुमये तारीखे अल्लामा इब्ने खलदून (इलाहाबाद)
साद हसन खा यूसुफी	मुक़द्दमये इब्ने खलदून

फ़ारसी

सईद नफीसी	इब्ने खदूलन फ़रहंग नामये पारसी (तेहरान १९५० ई०)

अंग्रेजी

वाल्टर जे फिशेल की सूची पर आधारित

Alatas, Husein:—"Objectivity and the Writing of History; The Conceptions of History by Al-Ghazali, Ibn Khaldun. . .. . ," *The Islamic Review* (Woking) XLII (1954)

Arendonk, Cornelis Van.—"Ibn Khaldun" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.) Cf. *Supplement*

Arnold, Sir Thomas Walker:—*The Caliphate.* Oxford, 1924.

Barnes, Harry Elmer:—"Sociology before Comte," *American journal of Sociology* (Chicago), XXIII, No. 2 (Sept. 1917).

Do *A History of Historical Writing.* Norman (Okla.) 1937.

Barnes, Harry Elmer and Becker, Howard:—*Social Thought from Lore to Science.* 2d ed. Washington, 1952. 2 vols.

Bel, Alfred:—"Ibn Khaldun" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.).

Boer, Tjitze J. De·—*The History of Philosophy in Islam.* London, 1903.

Bosch, Kheirallah G.:—"Ibn Khaldun on Evolution," *The Islamic Review* (Woking), XXXVIII (1950).

Brockelmann, Carl·—*History of the Islamic Peoples.* New York, 1947.

Browne, Edward Granville:—*A Literary Hisory of Persia.* London and Cambridge, 1902–1924 4 vols.

Bukhsh, Salahuddin Khuda·—"Ibn Khaldun and his History of Islamic Civilization," *Islamic Culture* (Hyderabad), 1. (1927).

Do tr. *Contributions to the History of Islamic Civilization* Calcutta, 1929-1930. 2 vols.

Cook, Stanley Arthur:—"The Semites: The Writing of History" in *The Cambridge Ancient History*. Cambridge University Press: New York, 1923-1951. 12 vols.

Darbishire, Robert S.:—"The Philosophical Rapprochement of Christendom and Islam in Accordance with Ibn Khaldun's Scientific Criticism," *The Moslem World* (Hartford), XXX (1940),

Donaldson, Dwight M.:—"The Shiah Doctrine of the Imamate," *The Moslem World* (Hartford), XXI (1931).

Enan, Muhammad Abdullah:—*Ibn Khaldun: His Life and Work*. Lahore, 1941; reprinted 1944; 2d ed., 1946.

Farrukh, Umar:—*The Arab Genius in Science and Philosophy*. The American Council of Learned Societies: Near East Translation Program, Publication 10. Tr. John B. Hardie. Washington, 1954.

Fischel, Walter Joseph:—*Ibn Khaldun and Tamerlane: Their Historic Meeting in Damascus*, A.D. 1401 (803 A.H.), A study based on Arabic Manuscripts of Ibn Khaldun's "Autobiography," with a translation into English, and a commentary, Berkeley and Los Angeles, 1952.

Do "The Biography of Ibn Khaldun" in *Year Book: The American Philosophical Society*: 1953. Philadelphia, 1954.

Do "Ibn Khaldun's Use of Jewish and Christian Sources" in *Proceedings of the 23rd International Congress of Orientalists*. Cambridge, 1954.

Do "Ibn Khaldun and Josippon" in *Homenaje a Millas-Vallicrosa*. Barcelona, 1954-1956. 2 vols.

Fischel, Walter Joseph.—"Ibn Khaldun's 'Autobiography' in the Light of External Arabic Sources" in *Studi Orientalistici in onore di Giorgio Levi Della Vida.* Rome, 1956. 2 vols.

Do "Ibn Khaldun's Sources for the History of Jenghiz Khan and the Tatars," *Journal of the American Oriental Society* (Baltimore), XXVI (1956).

Do "Ibn Khaldun. On the Bible, Judaism and Jews' in *Ignace Goldziher Memorial Volume.* Budapest, 1948; Jerusalem, 1956

Do "A New Latin Source on Tamerlane's Conquest of Damascus (1400–1401)·B de Mignanelli's *Vita Tamerlani* (1416), Translated into English with an Introduction and a Commentary," Oriens (Leiden), IX (1956).

Do "Ibn Khaldun's Contribution to Comparative Religion" in *University of California publications in Semitic Philology* (Berkeley and Los Angeles).

Flint, Robert —*History of the Philosophy of History in France, Belgium, and Switzerland.* Edinburgh, 1893.

Gibb, Hamilton Alexander Rosskeen:–*Arabic Literature.* Oxford, 1926.

Do "The Islamic Background of Ibn Khaldun's Political Theory," *Bulletin of the School of Oriental Studies* (London), VII (1933-1935).

Do "Tarikh" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.) 4. Supplement, pp. 233–45.

Do *Modern Trends in Islam.* Chicago 1947.

Goitein, Solomon Dob Fritz, "An Arab on Arabs. Ibn Khaldun's Views on the Arab Nation," *The New East, Quarterly of the Israel Oriental Society* (Jerusalem), 1 (1950).

Graberg Af Hemso, Jakob Grefve.—"An Account of the Great Historical Work of the African Philosopher Ibn Khaldun," *Transactions of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland* (London), III (1835)

Guillaume, Alfred·—"Arabian Views on Prophecy (Ibn Khaldun)" in *Prophecy and Divination among the Hebrews and Othoı Semites*. The Bampton Lectures. New York, 1938.

Do and Arnold, Sir Thomas Walker, eds.—*The Legacy of Islam*. Oxford, 1931.

Hitti, Philip Khuri:—*History of the Arabs*, London and New York, 1951.

Iqbal, Sir Mohammad:—*The Reconstruction of Religious Thought in Islam*. Oxford, 1934.

Issawi, Charles:—tr. *An Arab Philosophy of History: Selections from the Prolegomena of Ibn Khaldun of Tunis* (1332-1406). The Wisdom of the East Series. London 1950.

Do "Arab Geography and the Circumnavigation of Africa," *Osiris* (Bruges), X (1952).

Levy, Reuben.:—*An Introduction to the Sociology of Islam*. London, 1931-1933. 2 vols.

Do *The Social Structure of Islam*. Cambridge University Press, 1957.

Lewis, Bernard:—*The Arabs in History*. London, 1950.

Macdonald, Duncan Black:—*Ibn Khaldun: A Selection from the Prolegomena of Ibn Khaldun. With Notes and an English-German Glossary*. Semitic Study Series, iv. Leiden, 1905; reprinted 1948.

Do *Aspects of Islam*. New York, 1911.

Do *The Religious Attitude and Life in Islam.* 2d ed. Chicago, 1912.

Do "Kalam" and "al-Mahdi" in *Encyclopaedia of Islam* (q.v.)

Mahdi, Muhsin:—*Ibn Khaldun's Philosophy of History:—A Study in the Philosophic Foundation of the Science of Culture.* London, 1957.

Maqqari, Ahmad B Muhammad Al:—*The History of the Mohammedan Dynasties in Spain...* ..Tr. Pascual de Gayangos. London, 1840-1843. 2 vols.

Margoliouth, David Samuel:—*Lectures on Arabic Historians.* Calcutta. 1930.

Nashaat, Mohammad Ali·—"Ibn Khaldun, Pioneer Economist," *L'Egypte contemporaine* (Cairo), XXXV (1945).

Do *The Economic Ideas in the Prolegomena of Ibn Khaldun.* Cairo, 1944.

Nicholson, Reynold Alleyne.—*Translations of Eastern Poetry and Prose.* Cambridge, 1922.

Do *A Literary History of the Arabs.* London, 1923.

Prakash, Buddha:-"Ibn Khaldun's Philosophy of History," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXVIII (1954), XXIX (1955)

Qadir, Abd Al·—"The Social and Political Ideas of Ibn Khaldun," *The Indian Journal of Political Science* (Allahabad), III (1941).

Do "The Economic Ideas of Ibn Khaldun," *Ibid*, XXII (1942).

Ritter, Hellmut.—"Irrational Solidarity Groups: A Socio-Psychological Study in connection with Ibn Khaldun," *Oriens* (Leiden), I (1948)

Riza Hamid:—"Ibn Khaldun, the Philosopher of History," *Islamic Review* (Woking), XXVI (1938).

Rosenthal, Erwin Isak Jakob·—"Ibn Khaldun: A North African Muslim Thinker of the 14th Century," *Bulletin of the John Rylands Library* (Manchester), XXIV (1940)

Do "Some Aspects of Islamic Political Thought," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXII (1948)

Rosenthal, Franz·—*The Technique and Approach of Muslim Scholarship.* Analecta Orientalia, 24, Rome, 1947.

Do *A History of Muslim Historiography* Leiden 1952.

Do *Ibn Khaldun: The Muqaddimah, An Introduction to History.* New York (Bollingen Series XLIII) London, 1958 3 vols.

Sarton, George Alfred Leon.—*Introduction to the History of Science.* Carnegie Institution of Washington. Baltimore, 1927-1948. 3 vols.

Schmidt, Nathaniel:—"The Manuscripts of Ibn Khaldun," *Journal of the American Oriental Society* (Baltimore), XLVI (1926).

Do "Ibn Khaldun" in *The New International Encyclopaedia.* 2d. ed. New York, 1925. 25 vols.

Do *Ibn Khaldun. Historian, Sociologist and Philosopher.* New York, 1930.

Do "Ibn Khaldun and His Prolegomena," *The Moslem World* (Hartford), XXII (1932).

Sherwani, Haroon Khan:—"*Political Theories of Certain Early Islamic Writers,*" The Indian Journal of Political Science (Allahabad), III (1942).

Do *Studies in Muslim Political Thought and Administration* Lahore, 1945.

Do "The Genesis and Progress of Muslim Socio-Political Thought," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXVII (1953)

Syrier, Miya.—"Ibn Khaldun and Islamic Mysticism," *Islamic Culture* (Hyderabad), XXI (1947).

Toynbee, Arnold Joseph.—"The Relativity of Ibn Khaldun's Historical Thought" in *A Study of History*. London, 1934-1954. 10 vols.

नामानुक्रमणिका